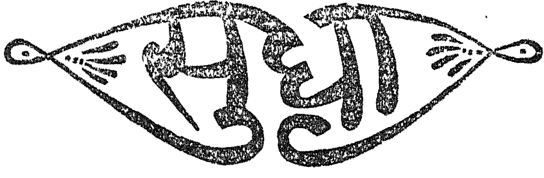
॥ श्रीः ॥



सुधा

सामाजिक और साहित्यिक

मासिक पत्रिका

वर्ष ६, खंड २

माघ-आषाढ़, ३१० तुलसी-संवत् (१९८९-९० वि०)

फ़रवरी-जुलाई, १९३३ ई०

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

(संपादक गंगा-पुस्तकमाला)

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

साधारण संस्करण		राजसंस्करण	
वार्षिक मूल्य	५)	वार्षिक मूल्य	१०)
एक प्रति का मूल्य	॥)	एक प्रति का मूल्य	१)
विदेश के लिये वार्षिक	६)	विदेश के लिये वार्षिक	१२)

मुद्रक तथा प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव, अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-
कार्यालय और गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

लेख-सूची

१—पद्य

२—गद्य

लेख-सूची (गद्य)

चित्र-सूची

क—रंगीन

ख—व्यंग्य

ग—सादे



सिंधु मथैं सुर ही लही नैंकु जु सतजुग माँहि,
सहज सुलभ सोई सुधा सबै समै सब काँहि।

वर्ष ६ | खंड २ — माघ, ३१० तुलसी-संवत् (१९८९ वि०)— फ़रवरी, १९३३ — संख्या १ | पूर्ण संख्या ६७

विचित्र विधान

[श्रीयुत पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध']

मिला जिससे जीवन का दान ,
सतत कर उसी तेल का नाश ,
निज प्रिया बत्ती को कर दग्ध—
दीप पाता है परम प्रकाश ॥ १ ॥

जी सके जिनसे पा रवि - ज्योति ,
उन्हीं पत्रों के हो प्रतिकूल ,
विटप बनते हैं बहु छवि-धाम--
लाभ कर नूतन दल फल-फूल ॥ २ ॥

हुआ है जिससे जिसका जन्म ,
जो बना जीवन शांति - निकुंज ,
धूल में उसी बीज को मिला—
अंकुरित होता है तरु - पुंज ॥ ३ ॥

छीनकर तारक - चय की कांति ,
भव - भरित तम करके पवि - पात ,
सहस कर से हर विधु का तेज—
भानु पाता है प्रिय अवदात ॥ ४ ॥

कुमुद - कुल को कर कांति - विहीन ,
कौमुदी - उर पर कर आघात ,
हरण कर रजनी का सर्वस्व—
प्रभा पाता है पुण्य प्रभात ॥ ५ ॥

वायु की शीतलता को छीन ,
आपको देकर बहु संताप ,
दिशाओं में भर पावक - पुंज—
प्रबल बनता है तप उत्ताप ॥ ६ ॥

अवनि में, नभ-तल में भर धूल ,
मावलि को दे - दे बहु दंड ,
हरण करके अगणित प्रिय प्राण—
वात बनता है परम प्रचंड ॥ ७ ॥

दमन करके दल दुर्दमनीय ,
विपुल नृप - भुज - बल का बन काल ,
लोक में भर प्रभूत आतंक—
सबल कहलाता है भूपाल ॥ ८ ॥

जीने का अधिकार किसको ?

[स्वामी श्रीसत्यदेव परिव्राजक]



संयुक्त राज्य अमेरिका की साउथ-डकोटा-रियासत में मैं एक किसान के खेत पर काम करने के लिये गया। मैंने कभी पहले इस प्रकार का कार्य नहीं किया था, इसलिये जब मजदूरों के कपड़े पहनकर मैं काम करने के लिये तैयार हुआ, तो खेत के मालिक ने बड़े प्रेम से मुझे समझाकर कहा—"इस खेत में, जहाँ आप काम करेंगे, बहुत-से निकम्मे पौदे जम गए हैं, वे मकई की खेती को नुक़सान पहुँचावेंगे, अतएव आप कृपा कर सबसे पहले इन्हें उखाड़-कर फेंक दीजिए, ताकि वे जमने न पावें।"

मैं ऐसे पौदों को नहीं पहचानता था, एतदर्थ बड़ी नम्रता से बोला—"महाशय, आप एक बार खेत में चलकर मुझे उन पौदों के दर्शन करा दें, और कृपया यह भी समझा दें कि वे मक्का की खेती को नुक़सान कैसे पहुँचाते हैं ?"

खेत का मालिक मुझे साथ लेकर खेत की ओर चला, और वहाँ पहुँचकर उसने कुदाली से उन पौदों को उखाड़कर बतलाया, और मुझे समझाने लगा—

"देख नौजवान, ये पौदे उस खाद को खा जायँगे, जो मैं मक्का की खेती के लिये इस भूमि में डालूँगा। वे केवल खाद ही नहीं खायँगे, बल्कि मक्का की बढ़ती को रोक देंगे, और उसके भोजन को स्वयं उड़ा जायँगे। ऐसी अवस्था में इनका उखाड़ देना ही कल्याणकारी है, ताकि मेरी खेती खूब फूले और फले।"

मैं काम में लग गया। मेरा मस्तिष्क भी गहरे विचार में डूब गया। मैं खेत में काम तो कर रहा था, लेकिन मेरे दिमाग़ में विचारों की बाढ़ आ गई थी। मैं सोचने लगा, संसार में कितने मनुष्य और स्त्री इन निकम्मे पौदों की तरह ज़िंदगी बसर कर रहे हैं। वे दूसरों का भोजन चट कर जाते और समाज को निर्बल बनाते हैं। लाखों भिखमंगे, अंधे, लँगड़े-लूले और अपाहिज हैं, जिनसे रत्ती-भर भी समाज का कोई काम नहीं होता। हज़ारों हट्टे-कट्टे, मुसंडे, फ़क़ीर, साधू, बैरागी आदि हैं, जो समाज की कोई सेवा नहीं करते, और अपने हिस्से का अन्न पैदा नहीं करते। वे धोखा-धड़ी से पेट पालते और इस प्रकार दूसरे ईमानदार और परिश्रमी मजदूरों का भाग खा जाते हैं। सैकड़ों हज़ारों भँगेड़ी, चरसी, गँजेड़ी और शराबी हैं, जिनका चौबीस घंटे धंधा यही है कि वे राष्ट्र के धन को नशे द्वारा फूँक दें। इसी प्रकार व्यभिचार के मद में चूर हज़ारों व्यक्ति ऐसे हैं, जो बीमार और निर्बल संतान उत्पन्न कर समाज का कचरा बढ़ाते हैं। हज़ारों ऐसे स्त्री-पुरुष भी हैं, जो ऐसी व्याधियों से ग्रस्त हैं, जिनका इलाज कभी नहीं हो सकता, और जो उन बीमारियों के कीटाणुओं को पीढ़ी-

दर-पीढ़ी अपनी संतान को दे जाते हैं। इस भाँति संसार के इस विशाल क्षेत्र में जो सुंदर पदार्थ प्रभु ने हमें भोगने के लिये दिए हैं, उनका पचास फ़ी सदी भाग बिलकुल निकम्मे लोगों के लिये खर्च होता है, और बाक़ी पचास फ़ी सदी ही उनके हिस्से में आता है, जिनके बूते पर समाज आगे बढ़ता और वंश की वृद्धि होती है।

क्या हमने कभी गंभीरता से इस महत्त्व-पूर्ण प्रश्न पर विचार किया है? सैकड़ों प्रकार के आचार्य, संत और धर्माचार्य भिन्न-भिन्न देशों में पैदा हुए, और उन्होंने थोथे सिद्धांतों का प्रचार कर समाज के इन निकम्मे पौदों की रक्षा करने का उपदेश जनता को दिया, कभी किसी ने भी उस साधारण किसान से इस विषय में शिक्षा ग्रहण न की। दूसरे जन्मों के सब्ज़बाग़ दिखलाकर और स्वर्ग-नरक का माया-जाल रचकर उन्होंने जनता को ऐसा बना दिया कि आज तक ऐसे महत्त्व-पूर्ण प्रश्न पर समाज-सुधारकों ने अपनी सारी शक्ति लगाकर कुछ परिणाम उत्पन्न करने की कोशिश नहीं की। संसार में रोटी का हाहाकार मचा हुआ है, और सदा मचा रहेगा। आबादी की बढ़ती होने से शक्तिशाली राष्ट्र दूसरे निर्बल देशों पर बल-पूर्वक क़ब्ज़ा करने का यत्न करते रहेंगे, ताकि उनको बसने का स्थान मिले। इसी जद्दो-जहद में वे समाज के बलिष्ठ सैनिकों को युद्धों में जुझाकर उन्हें तबाह कर देते हैं। और, उनकी विजय का भोग करनेवाले कौन होते हैं? अधिकतर वही निकम्मे पौदे, जिनका धंधा केवल समाज के परिश्रमी लोगों का भोजन चट करना है। यदि परस्पर युद्ध करने के बजाय, अपने बलिष्ठ सैनिकों की हत्या करने के स्थान पर, प्रत्येक वर्ष निकम्मे पौदों का नाश किया जाय, तो संसार में कभी रोटी का हाहाकार न मचे, और इस प्रकार आगे बढ़नेवाले वंशों को उन्नति करने का अवसर मिले। जो काम एक साधारण किसान कर सकता है, उसे बड़े-बड़े धर्माचार्य, विद्वान् और राजनीतिज्ञ नहीं कर सकते। इसमें क्या रहस्य है? इसके अंदर यही बात काम कर रही है कि मनुष्य-समाज के उन निकम्मे पौदों को हम स्त्री-पुरुष समझकर उनकी रक्षा और दया-दान का ढकोसला रचकर उनको संख्या-वृद्धि करते हैं। अंध-विश्वास ने हमारी बुद्धि पर इतना पर्दा डाल दिया है कि हम ऐसी स्पष्ट बात को भी नहीं देख सकते।

ज़रा सोचिए। अच्छी नसल का घोड़ा पैदा करने के लिये हम कितना प्रयत्न करते हैं? हमें अच्छे गाय-बैल चाहिए, इसके लिये कितनी प्रयोग-शालाएँ बनती हैं, लेकिन अफ़सोस! मानव-समाज में अच्छी नसल के स्त्री-पुरुष पैदा करने का कोई यत्न नहीं किया जाता। यहाँ आकर हम मिथ्या विश्वासों के जंगल में भटकने लगते हैं। भला सोचिए तो सही कि निर्बल, व्याधि-ग्रस्त और वीर्य-हीन स्त्री-पुरुषों को विवाह कर निकम्मे बच्चे पैदा करने का क्या अधिकार है। हमारे इर्द-गिर्द चारो तरफ़ ऐसे निकम्मे झाड़-झंकाड़ खड़े हैं, और नए उगते चले जा रहे हैं, जो दूसरों का भोजन हज़मकर समाज को बदले में लाभ देने के बजाय भारी हानि पहुँचाते हैं। क्या इन्हें जीने का अधिकार है?

क्यों वे पृथ्वी के भागों को घेरकर मुफ़्त की गंदगी बढ़ावें। जिस प्रकार किसान अपनी खेती की रक्षा करता है, उसे हानिकारक कीड़ों से बचाता है, उसे निकम्मे पौदों से दूर रखता और सदा बड़ी सावधानी से अधिकाधिक बलिष्ठ अनाज पैदा करने का यत्न करता है, उसी प्रकार हमें भी करना चाहिए, तभी मनुष्य-समाज उन्नति के पथ पर चल सकेगा, अन्यथा नहीं।

आप पूछेंगे, ऐसे निकम्मे भँगेड़ी, चरसी, गँजेड़ी, व्यभिचारी, बदमाश, नपुंसक और व्याधिग्रस्त स्त्री-पुरुषों के साथ क्या करना चाहिए ? मेरी सम्मति में हम जो सलूक निकम्मे पौदों के साथ करते हैं, वही हमें ऐसे स्त्री-पुरुषों के साथ भी करना चाहिए, तभी वंश बलवान् होगा, और सुंदर मस्तिष्क रखनेवाले सदस्यों की वृद्धि होगी, जो प्रभु के अनंत ज्ञान में से अच्छी-अच्छी बातें निकाल सकेंगे। दया और करुणा बड़े अच्छे गुण हैं, परंतु तभी तक, जब तक उनका उपयोग नीरोग और बलिष्ठ बीजों के साथ किया जाता है। भारतवर्ष में तो क़रीब साठ फ़ी सदी संख्या उन स्त्री-पुरुषों की होगी, जो भारत-माता पर केवल भार रूप हैं, जिनके अंदर से केवल बुराई के कीटाणु निकलते रहते हैं, जो विवाह कर भारी पाप करते और रोगी संतान की वृद्धि कर भारतीय प्रजा के साथ बड़ा अत्याचार करते हैं। ईश्वर ने जो पदार्थ हमें दिए हैं, वे उन्हीं के भोग करने के वास्ते हैं, जो संसार के ज्ञान की वृद्धि करें, और अपनी उपयोगिता से समाज को उन्नत बनावें। ऐसे स्त्री और पुरुष, जिनसे समाज को हानि-ही-हानि है, जीने का कोई अधिकार नहीं रखते। वीर स्पार्टा के लोगों ने अपनी समृद्धि के दिनों में ऐसा ही किया था, तभी वे ऊँचे दर्जे के नीरोग और शक्तिशाली स्त्री-पुरुषों को उत्पन्न कर सके थे। वंश की वृद्धि और उसकी उन्नति का प्रश्न बड़े महत्त्व का है। जो कपोल-कल्पित धर्मों और झूठे आडंबरों में फँसकर तीर्थों पर मगर पालते हैं, वृंदावन में कछुओं को हज़ारों मन आटा खिलाते हैं, और हनुमान के नाम पर बंदरों का सितम सहते हैं, ऐसे अज्ञानी लोग दया और करुणा, इन शब्दों का अर्थ भला क्या समझ सकते हैं। वे धन को ख़ातिर दूसरों के मकान नीलाम करा लेंगे; दुध मुँहे बच्चों को उनकी झोपड़ियों से निकालकर उन पर क़ब्ज़ा कर लेंगे, विधवाओं पर भारी ज़ुल्म करेंगे, और नारी-जाति के अधिकारों का कभी आदर नहीं करेंगे। ऐसे ही लोग दया-धर्म में फँसकर पशु-पक्षियों के लिये तो बड़े धर्मात्मा बन जाते हैं, परंतु समाज के उत्थान के प्रश्न पर कभी विचार नहीं करते। अतएव हम बड़ी नम्रता से 'सुधा' द्वारा अपने पाठकों से पूछते हैं कि क्या आपने कभी इस महत्त्व-पूर्ण प्रश्न पर ध्यान दिया है ? यदि नहीं दिया, तो कृपा कर अब दीजिए। भारतवासियों को तो बहुत शीघ्र इस कूड़े-कचरे को साफ़ करना ही होगा, नहीं तो उनकी आबादी उन्हें इस पर मजबूर करेगी; यहाँ घरेलू युद्ध हो जायँगे; दिन-दहाड़े डाके पड़ेंगे, और व्याधियाँ अपना टैक्स वसूल करेंगी।

संक्षेप में हमारा निवेदन यह है कि आज संसार के चिंताशील विद्वानों को इस महत्त्व-पूर्ण प्रश्न पर विचार करना ही होगा। वे युद्ध बंद करना चाहते हैं, यह बहुत ही अच्छी बात है।

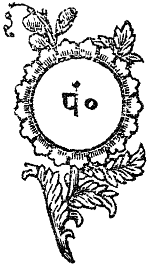
युद्धों में तो समाज का सर्वश्रेष्ठ तरुण-दल ही मारा जाता है, निकम्मे पौदे तो मजे में रहते हैं। यदि संसार में शांति लाने की इच्छा है, यदि रोटी के प्रश्न का हल भले प्रकार करना है, यदि अनंत ज्ञान की खोज करने के लिये योग्य स्त्री-पुरुषों को मैदान में खड़ा करना है, और यदि इस संसार को स्वर्ग बनाने की इच्छा है, तो आपको वैज्ञानिक ढंग से संसार के इस विशाल क्षेत्र में उगनेवाले पौदों की छाँट करनी ही होगी। जिन भद्दे क़ानूनों पर आज हम चल रहे हैं, उन्हें हटाकर समाज के लिये नए क़ानून बनाने होंगे, और जिन बातों को हम आज धर्म समझ रहे हैं, उन्हें मिथ्या विश्वासों के गढ़े में ढकेल देना होगा। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे, तो फिर प्रकृति तो करेगी ही। परंतु उससे मानव-समाज की उन्नति शताब्दियों के लिये रुक जायगी, जैसा कि पीछे होता आया है। यदि बौद्ध-काल के उत्तम गुणों से विभूषित समाज आगे चलकर झूठी दया और अहिंसा के मोह में न फँस जाता, और व्यर्थ के भिक्षुवाद की महत्ता को न बढ़ाता—केवल शक्तिशाली और योग्य स्त्री-पुरुषों को ही समाज में स्थान देता, तो कभी उसके लाखों भिक्षु मुसलमानों द्वारा गाजर-मूली की तरह न काट दिए जाते, और न बसे हुए नगर उजाड़ दिए जाते। प्रकृति के नियम अटल हैं। वे किसी का लिहाज़ नहीं करते। शताब्दियों का किया हुआ त्यागी बौद्ध-भिक्षुओं का काम इसीलिये मिट्टी में मिल गया कि उन्होंने अपने बिहारों में निकम्मे पौदों की अत्यंत वृद्धि कर ली। यही दशा सदा से होती चली आई है। इस कारण मैं मानव-समाज को चेतावनी देकर कहता हूँ कि आपको अभी से अपने खेत में फैले हुए निकम्मे पौदों को ठिकाने लगाने का कुछ प्रबंध सोचना चाहिए, ताकि यह रोटी का प्रश्न हल हो जाय, और समाज अपने आदर्श की ओर चल सके।

संभव है, मेरे बहुत-से प्रेमी पाठक इस विषय में मुझसे मतभेद रखते हों, या किसी बात को समझाने में मैं ही असमर्थ रहा हूँ, अथवा मेरे अभिप्राय को अधिक स्पष्ट समझने की इच्छा हो, तो वे कृपा कर १३, बाराखंभा रोड, नई देहली के पते पर मुझसे पत्र-व्यवहार करें। तब मैं एक दूसरा लेख लिखकर सब शंकाओं का समाधान करूँगा, और इस विषय पर और भी अधिक प्रकाश डालूँगा।

विमाता

[श्रीविश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक']

(१)



पं० सीताचरण मिश्र की वयस् इस समय ४१ वर्ष के लगभग है । उनका दूसरा विवाह हुए चार वर्ष व्यतीत हो गए । उनकी पत्नी की वयस् इस समय २३ वर्ष की है । पहली पत्नी से एक कन्या है, जो पंद्रह वर्ष की होने के कारण विवाह-योग्य है । दूसरी पत्नी से एक तीन वर्ष का पुत्र है । मिश्रजी की माता अभी तक जीवित हैं, परंतु आँखों की अंधी हैं ।

मिश्रजी की कन्या रेवती का लाड़-प्यार उस समय तक यथेष्ट रहा, जब तक मिश्रजी के पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ था । परंतु पुत्र उत्पन्न होते ही मिश्रजी का लाड़-प्यार रेवती पर से पुत्र पर हो गया । रेवती की विमाता पार्वतीदेवी ने, जो पहले रेवती के साथ दुर्व्यवहार करने के कारण मिश्रजी की कोप-भाजन होती थीं, पुत्र-प्रसव करके दोहरी विजय प्राप्त की । एक तो पति तथा सास की आदत हो गई, दूसरे रेवती पर कठोर शासन करने के लिये उन्हें पहले की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रता मिल गई । यद्यपि दादी का स्नेह रेवती पर पूर्ववत् ही था, परंतु नेत्रहीना होने के कारण वह पार्वती के अत्याचारों से रेवती की अधिक रक्षा नहीं कर सकती थीं ।

संध्या के पाँच बज चुके थे । मिश्रजी बैंक से लौटकर घर आए । घर में प्रवेश करते ही उन्होंने देखा कि रेवती एक मैली धोती पहने रसोई के पास बैठी हुई रो रही है । रेवती उस समय करुणा की मूर्ति बनी हुई थी । मिश्रजी उसे देखकर वात्सल्य में डूब गए । स्नेह से चुहचुहाते हुए स्वर में उन्होंने पूछा—"काहे रोती हो बिटिया, क्या हुआ ?" परंतु रेवती ने कोई उत्तर न दिया, और आँसू पोंछने लगी। मिश्रजी के हृदय में रेवती की स्वर्गीया माता की स्मृति जाग्रत् हो गई । मन में सोचने लगे—"मातृहीना है, उसकी निशानी है, इसे दुखी देखकर मेरे कलेजे पर चोट लगती है । पार्वती ने कुछ कहा होगा, वह दुष्टा इसे देख नहीं सकती, आज ज़रा डाट देना चाहिए ।" यह सोचते हुए कमरे के भीतर गए । पार्वतीदेवी पुत्र को गोद में लिए खड़ी थीं । पति का कंठ-स्वर सुनकर पहले ही से उनके स्वागत के लिये तैयार हो गई थीं । पिता को देखते ही पुत्र "बाबू आ गए !" कहकर मिश्रजी की ओर लपका । पार्वती-देवी ने आगे बढ़कर मुस्किराते हुए उसे मिश्रजी की ओर बढ़ाया । पुत्र हाथ फैलाकर उनकी ओर झुका । मिश्रजी का हृत्कमल खिल गया । रेवती तथा उसके संबंध के समस्त विचार उसी प्रकार विलीन हो गए, जिस प्रकार धूप निकलने पर ओस-बुंद विलीन हो जाते हैं । उन्होंने बाँह फैलाकर पुत्र को गोद में ले लिया, और उसका मुँह चूमते हुए बोले—"बड़ा बदमाश है, बड़ा पाजी है, बड़ा नालायक है ।" पार्वती-देवी के मुख पर विजय-मुद्रा प्रस्फुटित हो उठी, उन्होंने घृणा-पूर्ण मुस्कान के साथ उस ओर देखा, जिस ओर रेवती बैठी रो रही थी ।

पुत्र को चूम-चाट चुकने के पश्चात् मिश्रजी ने कपड़े उतारे, और कमरे के बाहर आए । बाहर आकर रेवती को देखा, उसी प्रकार बैठी है । मुँह बनाकर बोले—"आख़िर बात क्या है, कुछ बताएगी भी ?" रेवती ने कोई उत्तर न दिया । मिश्रजी उलटे पैरों कमरे के भीतर चले गए, और पत्नी से बोले—"आज रेवती क्यों रो रही है ?"

पार्वतीदेवी ने नाक-भौं चढ़ाकर उत्तर दिया—"इस लड़की के दिमाग़ आसमान पर चढ़ते चले जा

रहे हैं। भला तुम्हीं बताओ, यह धोती, जो पहने बैठी है, मैली है?"

मिश्रजी दबी ज़बान से बोले--"मैली तो ज़रूर है।" पार्वतीदेवी चिबुक पर उँगली रखकर बोलीं--"तब तो हो चुका। जब तुम भी मैली कहने लगे, तो उसके दिमाग़ कैसे ठिकाने रह सकते हैं। मुझे क्या करना है, तुम उसके लिये बनारसी साड़ी मँगाओ, जिसे हर समय पहने बैठी रहा करे। घर-गिरिस्ती में मैला-कुचैला भी पहनना पड़ता है। फिर जवान-जहान है और कुँआरी है, सिंगार किए फिरेगी, तो लोग क्या कहेंगे? मैं तो फूँक-फूँककर पैर धरती हूँ कि लोग यह न कहें कि सौतेली मा है, इससे लड़की की कोई देख-भाल नहीं होती, मनमानी करती रहती है।"

मिश्रजी नम्र होकर बोले--"तो क्या बस धोती ही की बात है?"

"और नहीं तो मैंने कौन बड़ा पाप किया है? मुझसे बोली--'संदूक़ से धोती निकाल दो।' मैंने कहा--'अभी तो यह धोती ऐसी कुछ बुरी नहीं है, ऐसा ही है, तो कल बदल लेना।' बोली--'नहीं, मैं तो यह धोती एक छिन भी नहीं पहनूँगी।' यह बात मुझे बुरी लगी। किसी समय चीज़ है किसी समय नहीं; इसमें ज़िद करने की कौन-सी बात थी? मेरे मुँह से निकल गया कि आज तो मैं नहीं निकालूँगी, बस इतनी-सी बात है। इस पर दो घंटे से बैठी आँसू बहा रही है। घर में ऐसे दो-चार बच्चे हों, तो कैसे निभे? अब तुम आए हो, जैसा समझ पड़े, करो। मैं तो इस लड़की से हार गई।"

मिश्रजी की समझ में भी पत्नी की बात आ गई। "धोती नहीं दी, तो कौन बड़ा भारी गुनाह किया? एक दिन मैली ही पहन लेती। और, कुँआरी लड़की को तो मैली-कुचैली ही रहना चाहिए।" यह सोचते हुए बाहर आए, और रेवती को एक ज़ोर की डाँट बताते हुए बोले--'एक दिन मैली ही पहन लेगी, तो क्या घिस जायगी, बड़ी रईसज़ादी बनी है।"

पिता की डाँट के सामने रेवती अधिक न ठहर सकी, चुपचाप उठकर अपनी दादी के कमरे में चली गई। मिश्रजी बड़बड़ाते हुए अपने कमरे में लौट आए। उसी समय दूसरे कमरे से माता का क्षीण स्वर सुनाई पड़ा--उन्हें पुकार रही थीं। पार्वतीदेवी बोलीं--"जाओ, बुला रही हैं। मुझसे लड़ चुकी हैं, अब तुम्हारी बारी है।" मिश्रजी यह कहते हुए--"इन्होंने तो उसे बिगाड़ ही रक्खा है।" माता के पास गए।

(२)

माता के कमरे में पहुँचे, तो देखा कि रेवती दादी की चारपाई से भिड़ी हुई बैठी सिसकियाँ ले रही है। मिश्रजी की माता मिश्रजी के आने की आहट पाकर उठ बैठीं और बोलीं--"वाह बेटा! तुमने भला न्याय किया। उस छत्तीसी को तो कुछ कहा नहीं, उलटे इसी को डाँटा!" मिश्रजी बोले--"तो ऐसी कौन बड़ी मैली धोती है। तुम्हें कुछ सूझ तो पड़ता नहीं, तुम नाहक़ दख़ल देती हो।"

"मेरे आँखें नहीं हैं, नाक तो है--कि नाक को भी आग लग गई? ज़रा नाक लगा के देखो तो, कैसी बदबू आ रही है। अरे, ऐसी धोती तो ग़रीब-से-ग़रीब भी नहीं पहन सकता। और न कुछ होगा, तो पैसे का साबुन लगाकर धो लेगा।"

"घर-गृहस्थी में सब चलता है।" मिश्रजी ने अंतःकरण से विद्रोह करके कहा।

"ख़ूब पढ़ रहे हो बेटा, जैसा मालकिन ने पढ़ाया है, वैसा ही पढ़ रहे हो। घर-गिरिस्ती में सब चलता है, तो वह भी एक दिन ऐसी ही पहनकर देखे। अपना तो आठों पहर पतुरिया की तरह सजी रहती है--दिन-भर में चार-चार धोती बदलती है, और दूसरों को घर-गिरिस्ती सिखाती है। वाह भई वाह! हम घर-गिरिस्त थोड़े ही रहे हैं--यह हमें घर-गिरिस्ती सिखाने आई है। क्या कहूँ, आँखों से लाचार हूँ, नहीं तो बताती कि घर-गिरिस्ती कैसी होती है।"

"तुम तो अम्मा, ख़ामख़ाँ बात का बतंगड़ बनाती

हो। ससुरी धोती कौन बड़ी न्यामत है, अब बदल ले, कोई मना करता है ?"

"हाँ, अब तो बदल ही लेगी। हँसी-ख़ुशी कोई काम थोड़े ही हो सकता है। जब तक कहा-सुनी न हो, रोवा-पीटी न हो, तब तक मजाल है कोई काम हो जाय। घर में चीज़ न हो, तो एक बात भी है। चीज़ धरी है, तब भी उसे निकालकर देने में आफ़त है। ऐसे में कोई नाते-रिश्तेदार के घर की आवें, और बिटिया की यह दशा देखें, तो अपने मन में क्या कहें ?"

हठात् इसी समय पार्वतीदेवी हाथ में एक धुली हुई श्वेत धोती लिए हुए कमरे के द्वार पर आईं, और वहीं से धोती को सास की चारपाई पर फेंक यह कहती हुई लौट गईं कि "लो, पहनाओ धोती, चें-चें न करो।"

धोती माता की गोद में गिरी। माता बोलीं— "और सुनो, हम चें-चें करती हैं। यह तेहा तो देखो। इसी चुड़ैल के भागों मेरी आँखें नहीं रहीं, नहीं तो आज जीभ चिमटे से पकड़कर खींच लेती। हम चें-चें करती हैं, यह जब बोलती हैं, तो फूल झड़ते हैं, कोयल कूकती है, हम चें-चें करती हैं।"

मिश्रजी के मुख पर मुस्किराहट दौड़ गई। स्नेह-सिक्त स्वर में बोले—"अच्छा, अब ख़तम करो, हो गया। बिटिया! धोती बदल डालो।"

"ख़तम नहीं हो गया। मुझसे रोज़ की यह दाँता-किलकिल नहीं देखी जाती। तुम जल्दी कोई लड़का ढूँढ़कर इसका ब्याह कर डालो। अपने घर जाय, बेचारी का संकट कटे।" माता ने कहा।

"संकट काहे का? लड़ाई-झगड़ा तो सभी के यहाँ होता है। इसमें संकट की कौन-सी बात है ?"

"संकट तुम्हें नहीं है, पर मुझे बड़े संकट हैं। मुझसे बिटिया की दुर्दशा नहीं सही जाती। और अब सयानी भी हो गई है, ब्याह तो करना ही है, अपने-पराए सब टोकते हैं।"

मिश्रजी बोले—"हाँ, यह कहना तुम्हारा ठीक है। ब्याह तो अब कर ही डालना चाहिए। देखो, मैं जल्दी कोशिश करता हूँ।"

"हाँ, जल्दी कोशिश करो। मेरी ज़िंदगी का कोई ठिकाना नहीं। अपने जीते-जी ब्याह कर जाऊँ। फिर न-जाने क्या हो, क्या न हो।"

"होगा क्या? भगवान् चाहेगा, तो सब अच्छा ही होगा।"

(३)

मिश्रजी की पत्नी पार्वतीदेवी जिस दिन से ब्याह कर आईं, उस दिन से उन्हें किसी ने प्रफुल्ल चित्त नहीं देखा। वह सदा खिन्न तथा चिड़चिड़ी बनी रहती थीं पास-पड़ोस की स्त्रियों में से यदि उनसे कोई उनके इस स्वभाव का कारण पूछती, तो वह उत्तर देतीं—"जो तुम्हारा ब्याह भी किसी बूढ़े से हुआ होता, तो तुम्हें पता लगता।" इस पर यदि कोई कहती—"अरे क्या कहती हो, ऐसे बूढ़े भी नहीं हैं, अभी चालीस-बयालीस के तो हुई हैं।" तो पार्वतीदेवी कहतीं—"बूढ़े होने में कसर ही क्या है? छः-सात बरस बाद बूढ़े हो जायँगे।" जब पार्वतीदेवी के पुत्र उत्पन्न हुआ, तब उनके स्वभाव में थोड़ा परिवर्तन हुआ, और वह कुछ प्रसन्न-चित्त रहने लगीं। परंतु फिर भी सास तथा रेवती के साथ उनका वही चिड़चिड़ेपन का व्यवहार रहता था।

रेवती के विवाह का प्रश्न उठने पर पार्वतीदेवी ने उसमें बड़ी दिलचस्पी दिखाई। पति से बोलीं— "रेवती के लिये मैं ही लड़का ढूँढूँगी, तुम्हारे ढूँढे न ढूँढ़ा जायगा।"

मिश्रजी प्रेम-तरंगों में हिलोरें खाते हुए बोले— "आख़िर तुम माता ही हो, तुम्हें चिंता न होगी, तो किसे होगी ?"

"परंतु सासजी तो समझती हैं कि मैं उसकी दुश्मन हूँ।"

"तुम्हारी सास तो सठिया गई हैं। सौतेली

मा हो न, इसलिये उनको ऐसा भ्रम है। परंतु यह नहीं समझतीं कि सब सौतेली माताएँ एक-सी नहीं होतीं। मैंने ऐसी-ऐसी सौतेली माताएँ देखी हैं, जो अपनी निजी माता से अधिक प्रेम करती हैं। ख़ैर, उनको जो वह समझें, समझने दो; परंतु मैं जानता हूँ कि तुम रेवती को कितना चाहती हो। इसलिये मैं कहता हूँ कि तुम उसके लिये लड़का ढूँढने का प्रयत्न करो।"

"तुम्हारे कहने की ज़रूरत नहीं है। मैंने अपने मायके लिखा है, और भगवान् चाहेगा, तो चार-छ दिनों ही में ख़बर आना चाहती है।"

"सच?" मिश्रजी ने प्रसन्न होकर पूछा।

"सच्ची, मैंने भैया को लिखा है।"

"तो बस फिर क्या चिंता है। माताजी का भी भ्रम दूर हो जायगा। मैं उनसे पूछूँगा कि अब कहो, यह सब किसने किया।"



पंद्रह दिन के पश्चात् पार्वतीदेवी का बड़ा भाई आया। पार्वतीदेवी ने उसे अलग ले जाकर पूछा—"कहो, कुंडली लाए?"

भाई बोला—"हाँ, कुंडली तो लाया हूँ, परंतु दूसरी बनवानी पड़ी।"

"क्यों?" पार्वतीदेवी ने पूछा।

"असली कुंडली में तो बयालीस बरस की उमर है, इसमें चौंतीस की करवाई है।"

"हाँ-हाँ, यह अच्छा किया। पर उनको देखने में इतना फ़र्क़ खुल तो न जायगा?"

"फ़र्क़ तो नहीं खुलेगा। दाँत उनके सब अभी मज़बूत ही हैं, ख़ाली बाल कुछ सफ़ेद पड़ चले हैं। सो बालों का क्या, आजकल जवानों के बाल सफ़ेद हो जाते हैं।"

"मैंने रेवती की कुंडली जो भिजवाई थी, उससे मिल तो गई होगी।"

"कुछ मिल भी गई, कुछ कसर थी, तो इस नई कुंडली में ठीक करवा ली। (मुस्किराकर) फिर क्या किया जाय, किसी तरह उनका ब्याह तो करवाना ही है।"

"हाँ और क्या। तो बस, सब ठीक है। लेन-देन की बात पूछें, तो कह देना कि वह कुछ ठहराते नहीं, जो आप लोग दे देंगे, सो ले लेंगे।"

"यह तो कहूँगा ही। और यह बात सच्ची है, उन्हें रुपया-पैसा नहीं चाहिए। वह तो यह चाहते हैं कि किसी तरह ब्याह हो जाय।"

"सो ब्याह तो भगवान् चाहेगा, मैं करवा ही दूँगी।"

शाम को मिश्रजी बैंक से लौटे, तो साले साहब को देखकर बड़े प्रसन्न हुए, बोले—"कहो, क्या समाचार है?"

"समाचार सब अच्छे हैं, सब ख़ैर-सल्लाह है।"

"फ़सल कैसी है?"

"फ़सल तो गड़बड़ ही है।"

साले से मिलकर मिश्रजी पार्वतीदेवी के पास पहुँचे। पार्वतीदेवी मुस्किराकर बोलीं—"रेवती के लिये लड़का मिल गया!"

"मिल गया!" मिश्रजी प्रसन्न-मुख होकर बोले।

"हाँ, मिल गया, और बड़ा अच्छा मिला। लेन-देन का कोई झगड़ा नहीं; जो दे दिया जायगा, सो ख़ुशी से ले लेंगे।"

"शाबाश है! ऐसा ही मैं चाहता भी था। हम लोगों में लेन-देन का बड़ा झगड़ा होता है, इसी से जी डरता था। चलो यह भी अच्छा हुआ। भगवान् ने यह यश तुम्हारे ही भाग्य में लिखा था। कुंडली-उंडली लाए हैं?"

"हाँ लाए हैं, अब तुम मिलवाकर देख लो।"

"उम्र क्या है?"

"उमर यही कोई तेंतीस-चौंतीस बरस की है। कुछ अधिक थोड़े ही है।"

मिश्रजी का मुख गंभीर हो गया। कुछ क्षणों तक सोचकर बोले—"उम्र तो बहुत है। रेवती की उम्र तो अभी पंद्रह ही बरस की है।"

"पंद्रह की काहे को है, एक महीने बाद सोलह बरस की हो जायगी।"

"अरे पंद्रह-सोलह एक ही बात है। लड़के की उम्र तो अधिक है।"

"तुम्हारे कहने से अधिक है। और तुम जो चालीस बरस के हमें ब्याह लाए—तब न यह सोचा। हम पराई बिटिया थीं न ? इसलिये ! और यह अपनी बिटिया है। क्यों न ? हमारे मा-बाप थोड़े ही थे ? हम अपने मा-बाप की दुलारी थोड़े ही थीं ? तुम्हारी बिटिया बड़ी दुलारी है।"

मिश्रजी के ऊपर सैकड़ों घड़े पानी पड़ गया। निरुत्तर होकर पार्वतीदेवी का मुँह ताकने लगे। पार्वतीदेवी पति को निरुत्तर देखकर व्यंग्य-पूर्वक मुस्किराते हुए पुनः बोलीं—"तुम्हारी चालीस बरस की उमर अधिक नहीं थी, इसकी चौंतीस बरस की अधिक है ? कहते लाज भी नहीं लगती। बीस-बाईस बरस का लड़का ढूँढोगे, तो गठरी-भर रुपया भी तो देना पड़ेगा—सेंत (मुफ़्त) में थोड़े ही मिल जायगा। मैंने तो यह सोचा कि काम भी हो जाय, और लेन-देन का झंझट भी न हो। हमारी इतनी औक़ात नहीं, जो अधिक दे सकें। यह भी तो देखना है।"

मिश्रजी गला साफ़ करके बोले—"यह तो बड़ी अच्छी बात है। रही उम्र की बात, सो मुझे तो कोई ख़याल नहीं है। चौंतीस वर्ष कुछ अधिक नहीं हैं, परंतु नाते-रिश्तेदार लोग कुछ ख़याल न करें।"

"नाते-रिश्तेदार सबके होते हैं, हमारे भी हैं। पर आदमी को अपनी बुद्धि से काम लेना चाहिए। नाते-रिश्तेदारों के कहने पर जायँ, तो बस हो चुका। और तुम्हारे तो एक लड़की भी थी, उसके तो चूहे का बच्चा तक नहीं है। रुपया-पैसा ख़ूब है, ज़मींदारी भी है। जाते ही रानी बन जायगी। मैंने तो यही देखा कि हमारी लड़की को सुख मिले। जवान ढूँढा, और ग़रीब हुआ, तो किस काम का ?"

मिश्रजी बोले—"हाँ, यह तो ठीक है। जब खाने-पहनने का ही सुख न हुआ, तो फिर सब बेकार है।"

"तुम्हीं सोचो। वैसे डील-डौल का अच्छा है। भगवान् की दया से घी-दूध की कमी नहीं। ख़ूब तंदुरुस्त है। गाँव के रहनेवाले शहरवालों से अधिक ताक़तदार होते हैं। जब तुम शहर के रहनेवाले अभी बुड्ढे नहीं हुए, तो वह गाँव के रहनेवाले चौंतीस बरस में ही कैसे बुड्ढे हो गए ?"

"तुम अभी बुड्ढे नहीं हुए" इस बात से मिश्रजी को अपार आनंद हुआ। पार्वतीदेवी उन्हें अभी बुड्ढा नहीं समझतीं, यह जानकर मिश्रजी मूछों पर ताव देते हुए बोले—"देखने में मैं चाहे बुड्ढा लगता होऊँ, पर अभी आजकल के नौजवानों से कहीं अधिक ताक़तवर हूँ।"

पार्वतीदेवी मुस्किराकर बोलीं—"देखने में भी अभी ऐसे कुछ बुड्ढे नहीं लगते। और उसे देखो, तो तुम ताज्जुब करो—बिल्कुल लाल चरा हुआ है।"

मिश्रजी बोले—"तो बस ठीक है। जब तुम ठीक समझती हो, तो अब मुझे कुछ नहीं कहना है। भगवान् का नाम लेकर संबंध पक्का कर लो।"

"कुंडली मिलवाकर देख लो। कुंडली मिल जाय, तो पक्का ही है।"

"हाँ, कुंडली आज मिलवा लूँगा। अभी थोड़ी देर में जाता हूँ।"

(४)

मिश्रजी ने कुंडली मिलवा ली। वह तो पहले ही से मिलवाकर बनवाई गई थी, इस कारण मिलने में कौन अड़चन थी। कुंडली मिल जाने पर विवाह की बातचीत पक्की होने लगी। मिश्रजी की माता ने वर के संबंध में पूछ-ताछ करते हुए कहा—"बेटा, अच्छी तरह देख-सुन लेना। मेरे तो आँखें नहीं हैं, नहीं तो मैं लड़के को अपने आप देख लेती।"

मिश्रजी ने कहा—"सब देख-सुन लिया है, समझ लिया है, तुम निश्चिंत रहो।"

"लड़के की उमर तो अधिक ही है, बस इतनी बात

मुझे खटकती है।" माता ने कहा। "अधिक नहीं है—तीस-बत्तीस बरस कौन अधिक हैं ? मेरा ब्याह तो तुमने चालीस बरस में किया।" "सो बात तो ठीक है। पर जहाँ तक होता, बीस-पचीस का लड़का होता, तो अच्छा था।"

"अब भी बुरा नहीं है, यह ध्यान अपने चित्त से निकाल दो। उसे मैं देख आया हूँ। अभी काफ़ी तंदुरुस्त है।"

"ख़ैर, तुमने देख लिया, तो ठीक है।" संबंध पक्का हो गया, और मिश्रजी बरिच्छा भी कर आए, और फलदान की तिथि नियुक्त कर आए।

इधर रेवती को जब पता लगा कि उसका ब्याह एक तीस-बत्तीस वर्ष के व्यक्ति से पक्का हो गया, तो वह बड़ी दुखी हुई। घर में तो उसने किसी से कुछ न कहा, परंतु इधर-उधर अपनी सहेलियों में चर्चा करते हुए उसने इस संबंध के प्रति घोर विरोध प्रकट किया। एक सहेली से तो उसने यहाँ तक कह डाला कि "मैं सब समझती हूँ। यह सब अम्मा की करतूत है। उन्होंने ही यह संबंध किया है। वह तो चाहती ही हैं कि किसी तरह मुझे ऐसे घर भेजें, जहाँ मुझे घड़ी-भर भी सुख न मिले। आज मेरी अम्मा होतीं, तो क्या ऐसा होने पाता ?"

इतना कहते-कहते उसके नेत्रों से अश्रुपात होने लगा।

सहेली ने कहा—"जब ऐसी बात है, तब तू अपनी दादी से क्यों नहीं कहती ?"

"क्या होगा कहने से। क्या उन्हें नहीं मालूम है। उन्हें सब पता है, पर जब वह अपने-आप कुछ नहीं बोलतीं, तो मेरे कहने से क्या होगा। उलटा मुझे बेहया और निर्लज्ज समझेंगी। जो कुछ भाग्य में बदा होगा, सो होगा, पर मैं तो कभी न कहूँगी।"

जब पास-पड़ोस की स्त्रियों ने यह सुना, तो उनमें से एकाध ने आकर रेवती की दादी से पूछा—"क्या बिटिया का ब्याह पक्का हो गया ?"

"हाँ, पक्का हो गया। घर अच्छा मिल गया। ज़मींदार हैं, और वैसे भी भलमंसी अच्छी है।"

"पर कुछ उड़ती हुई-सी ख़बर यह मिली कि लड़के की उमर अधिक है।"

मिश्रजी की माता मुँह बनाकर बोलीं—"न कहीं, यह तो दुनिया है। तीस-बत्तीस कौन अधिक है। हमारे मुन्नू (मिश्रजी) का ब्याह तो चालीस बरस में हुआ। कनौजियों में ऐसे ही ब्याह होते हैं—बराबर के ब्याह होते कब हैं। और साफ़ बात तो यह है कि बहन, जैसी अपनी बिटिया, तैसी पराई। जब हम पराई बिटिया अपने चालिस बरस के मुन्नू खातिर लै आईं, तब अपनी बिटिया क्यों न दें। क्यों, मैं बेईंसाफ़ी की बात कहती हूँ, तो कहो।"

"हाँ, यह तो ठीक ही है। और यह तो लड़की का भाग है। उसका भाग होगा, तो भगवान् चाहेगा फूले-फलेगी—सुख देखेगी। वैसे तो जवानों के साथ ब्याह होता है, और विधवा हो जाती हैं। इसका क्या, यह तो अपना-अपना भाग है।" एक दूसरी स्त्री ने कहा।

मिश्रजी की माता बोलीं—"यह तुमने कही। सारी भाग की बात है। भाग अच्छा हो, तो बूढ़ा भी जवान हो जाता है, और भाग खोटे हों, तो जवान बूढ़े से भी गया-बीता हो जाता है। दूसरी बात यह है बहन कि ज़रा अधिक उमर होने से लड़की को सुख रहता है। अधिक उमर का आदमी मेहेरिया (पत्नी) को प्यार बहुत करता है; और जवान दाढ़ी-जार तो अपनी टिर्रे में रहते हैं। वह समझते हैं कि एक मर जायगी, तो क्या होगा, दूसरा ब्याह हो जायगा। पर तीस-बत्तीस बरस का आदमी ऐसा नहीं सोचता। वह सोचता है कि यह मर गई, तो अब ब्याह होना कठिन पड़ जायगा।"

इस पर दोनो स्त्रियाँ हँस पड़ीं। उनमें से एक बोली—"हाँ, यह तो तुम पक्की बात कहती हो। यह तो हमने भी देखा है कि कुछ दिनार

(वयस्क) आदमी मेहेरिया को चाहता बहुत है। हाँ, पर ऐसा भी न हो कि बिल्कुल बुड्ढा ही हो।"

"सो कैसे ! तीस-बत्तीस में क्या आदमी बूढ़ा हो जाता है ?" मिश्रजी की माता ने कहा।

"नहीं, तीस-बत्तीस में बूढ़ा नहीं हो जाता, सच पूछो, तो पूरी जवानी तभी आती है।"

इस प्रकार पहले जिन्होंने इस संबंध पर कुछ आपत्ति भी की, उन्हें समझा-बुझाकर ठीक कर दिया।

दीपावली के पूर्व फलदान भी चढ़ गया, और मार्गशीर्ष में विवाह होना निश्चित हो गया।

❀ ❀ ❀

दीपावली की संध्या थी। मिश्रजी लक्ष्मी-पूजन करके उठ गए थे। पार्वतीदेवी तथा रेवती दीपक लेकर इधर-उधर रख रही थीं। पार्वतीदेवी एक थाली में कुछ दीपक रखकर बाहर की ओर चलीं। हठात् उनका आँचल कंधे पर से खिसककर थाली के ऊपर गिरा, और गिरते ही भभककर जल उठा। पार्वतीदेवी ने चौंककर हाथ से थाली छोड़ दी। थाली उनके पेट पर रगड़ खाती हुई झन-से नीचे गिरी। दीपकों के तेल से पार्वतीदेवी की साड़ी भीग गई। रेवती दौड़ी, और साड़ी का आँचल बुझाने की चेष्टा करने लगी, परंतु कुछ ही क्षणों में सब साड़ी ने आग पकड़ ली, और पार्वतीदेवी का समस्त शरीर जलने लगा। वह चीत्कार करती हुई इधर-उधर दौड़ने लगीं।

❀ ❀ ❀

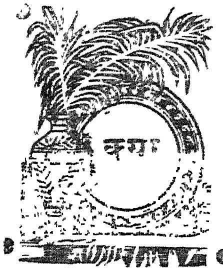
पार्वतीदेवी बहुत बुरी तरह जल गई थीं। डॉक्टरों ने उनको बचाने की बहुत चेष्टा की, परंतु सब चेष्टा निष्फल गई। रेवती की भी दोनो आधी बाँहें साड़ी बुझाने की चेष्टा में जल गई थीं। जब पार्वतीदेवी का अंत निकट आ गया, तो उन्होंने पति को पास बुलाकर कहा—"देखो, रेवती का ब्याह जहाँ कर रहे हो, वहाँ से संबंध हटा लो। उसकी उमर बयालिस बरस की है। मैंने यह बात उस समय नहीं बताई। सोचा था कि जिस तरह तुमने मुझसे ब्याह करके मेरा जीवन नष्ट किया है, उसी के बदले में तुम्हारी लड़की का जीवन भी नष्ट कर दूँगी। आह ! उसी का बदला भगवान् ने दिया। रेवती ने तो अपना हक़ अदा कर दिया—मुझे बचाने का बहुत उपाय किया—बेचारी ख़ुद भी जल गई। ....उसका ब्याह कोई जवान लड़का ढूँढ़कर करना।..............अपना ब्याह न करना,.............नहीं मेरे बच्चे को तकलीफ़ होगी।.................उसे अच्छी तरह रखना।"

पार्वतीदेवी की आँखें बंद हो गईं, और दो मिनिट पश्चात् प्राण-पखेरू उड़ गए।

रूस में दादी की शिक्षा

(खास सुधा के लिये)

[श्रीयुत बालकृष्ण गुप्त]



क्या बच्चे बुड्ढों को पढ़ावें ? क्या बच्चों का यह काम उचित है कि वे किसी मज़दूर के घर में घुस पड़ें, आलस्य के लिये उसे भला-बुरा कहें, और जब तक वह कारख़ाने में जाकर दूसरों के साथ दौड़ में अपना नियत काम पूरा करने का वादा न करे, उससे बहस जारी रक्खें ? जब शिक्षा-संबंधी मामलों में ख़ास दिलचस्पी लेनेवाले हमारे दल को किंचिन कम्यून के पंद्रह वर्ष के सभापति ने यह ख़बर दी कि उनके सामाजिक विभाग का काम आलसीयों व खाट-तोड़ों के घर जाना और उन्हें अपने कर्तव्य में उत्साहित करना है, तो हम बड़े विस्मित हुए। यह कम्यून बालक-बालिका अनाथों के लिये स्वयं उन्हीं के द्वारा संचालित संस्था है। हमारे देश में शुरू से ही बच्चों की बड़ों के प्रति इज़्ज़त व अदब की आदतें डाली जाती हैं, अतएव मुझे यह अच्छा न लगा कि बच्चे कहें, या बड़ों को यह समझने को मजबूर करें कि वे सम्मान के योग्य नहीं। ऐसी दशा में शासन व प्रभाव का क्या होगा ? गुणों की सूची में आज्ञा-पालन को कौन-सा स्थान मिलेगा ? समाज की भित्ति किस वस्तु पर रहेगी ?

इस रूस की तले-ऊपर, उलटी दुनिया में, जहाँ ठीक काम करनेवाला कारख़ाने का मज़दूर सर्वश्रेष्ठ सम्मान का पात्र माना जाय, वे यह विश्वास नहीं करते कि माचातोड़ एवं शराबी आदमी ही, केवल उमर में बड़ा होने के कारण, पूजनीय हो, और ऐसा होने का गुमान रक्खे। बच्चों को बड़ों की उस समय भी इज़्ज़त करने को कहना, जब ज़ाहिर में वे इसके क़ाबिल नहीं, इन अनोखे रूसियों द्वारा गुणों की हत्या करना समझा जाता है। दूसरी बातों के साथ-साथ इसके माने ये भी हैं कि बुड्ढों के चरित्र की सतह भी कम-से-कम बच्चों से ऊँची हो।। इस भाव ने उनके समक्ष एक अत्यंत जटिल समस्या उपस्थित कर दी है। मूर्ख, मिथ्याधर्मी व अपने इस विश्वास में कट्टर किसान की संस्कृति को आज-कल स्कूल जानेवाले बच्चों की सम भूमि में कैसे लाया जाय ? सुधार-विभाग में कार्यकर्ताओं की भयंकर कमी के समय शराबी किसान का, जिस पर नशे के विरोध का कुछ असर नहीं होता, कैसे उद्धार किया जाय। बच्चे के गंदे गमछे व रूमाल नदी में धोकर पीने के पानी को अशुद्ध करनेवाली किसान-पत्नी के दिमाग़ में बीमारी के ख़तरे कैसे घुसेड़े जायँ ? निरक्षर किसान को कैसे पढ़ना-लिखना सिखाया जाय ? बिना इसके वह कृषि या शिल्प किसी में भी प्रवीण नहीं हो सकता। रूढ़ि-भक्त कृषक को फिर कैसे विश्वास दिलाया जाय कि गंडे-तावीज़ों व बुड्ढी औरतों के छू-मंतरों से रोग दूर नहीं होते, स्वास्थ्य व सफ़ाई के नियम पालन करना ही गुण-कारी है। साथ-साथ यह भी ध्यान में रखिए कि यू० एस्० एस्० आर० दुनिया का छठा हिस्सा दबाए हुए है।

इन व और कितने ही प्रश्नों को तत्काल हल करना है ? क्योंकि नशेबाज़, पाखंडी, गंदा व मूर्ख नर या नारी साम्यवादी देश में उपयोगी नागरिक नहीं हो सकता। जब सब वयः प्राप्त कार्यकर्ताओं

की स्कूलों व पैदायश में ज़रूरत है, तब इन फिसड्डी बुड्ढों के सुधार का काम कौन करे?

. हाँ, तो रूसी चाहे विदेशी राष्ट्रों के मनोविज्ञान को बिल्कुल ही न समझें, बच्चों के मन का उन्हें अद्भुत ज्ञान है, और इस समझ को वे काम में ला रहे हैं। वे बहुत अच्छी तरह जानते हैं कि बच्चे सच्चे काम करना बहुत पसंद करते हैं, क्योंकि वे अपने महत्त्व को महसूस करने लगते हैं। नक़ली डाकू या सैनिक के खेल खेलने में चाहे कितने ही मज़े हों, लेकिन दल बनाकर जुलूस निकालने, कारख़ानों पर धावे बोलने, मज़दूरों को घेर लेने, शराबी माता-पिताओं के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करने वा बहस-मुबाहसों के बाद सड़कों में अपनी विजय का डंका बजाते हुए मार्च करने में जो आनंद है, वह तुलना से परे है। सचेत अधिकारियों ने उपर्युक्त बात को ध्यान में रखकर जनता के पिछड़े हुए भाग की सांस्कृतिक सतह को ऊँचा उठाने में बच्चों से बड़ी मदद ली है। सोवियट रूस में यात्रा करनेवाले विदेशी को, जो शिक्षण-कला में दिलचस्पी लेता हो, बच्चों द्वारा बड़ों को शिक्षित करने का यह आंदोलन परेशान व हैरान कर देता है। कोई ऐसा काम नहीं, जिससे ये बच्चे डरकर पीछे पैर हटाते हों, जिसे ये अपने हाथों में लेने को तत्पर न हों। इनकी आयु ८ से १६ तक है। अगर काम शारीरिक परिश्रम से पूर्ण होने लायक़ न हो, तो बच्चे अपनी कोशिशों द्वारा बड़ों को शर्मिंदा कर उनसे करा लेते हैं। एक जगह स्कूल के छात्रों ने स्थानीय तालाबों से मलेरिया के मच्छरों को निकाल भगाने को कमर कसी। केमिकल दवाइयों द्वारा स्थानीय स्वास्थ्य-विभाग ने अंत में उस काम को पूरा किया। जब शराब, गंदगी, अज्ञान, अंध-विश्वास तथा रोगों के सवालों को वैज्ञानिक ढंग से हल किया जाता है, तब पहले धक्के स्कूल से लगने शुरू होते हैं। एक मिसाल में बच्चों को एक शराबी की और एक साधारण आदमी की, दो फेफड़ों व दिलों की तस्वीरें दिखाई गईं। बच्चों ने उसकी नक़ल के पोस्टर बनाए, और माता-पिता के लाभ के लिये घरों में टाँग दिए।

स्कूलों में प्रारंभिक कार्य पहलेपहल शिक्षकों की सहायता के बिना कुछ नहीं किया जा सकता। सोवियट साम्यवादी प्रजातंत्र में शिक्षकों से ग्राम या क़सबे के सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्य के केंद्र होने की उम्मीद की जाती है। यहाँ मास्को-ज़िले के एक स्कूल का उदाहरण है। कुछ वर्ष पहले एक शिक्षक ने सांस्कृतिक आंदोलन के समय बच्चों को एक शराब-विरोधी दिन मनाने में मदद दी। दो हफ़्ते तक उन्होंने मज़दूरों की व्यापार-समिति में एक प्रतिद्वंद्विता जारी रक्खी, जिससे पता लगे कि उनमें सर्वोत्तम पियक्कड़ कौन है। वोडका शराब की एक बोतल, हेरिंग मछली की पूँछ और हस्पताल की एक टिकट इनाम में रक्खी गई। मज़दूरों के वास्ते शराब के विषय में प्रश्नोत्तरोंवाला एक प्लैकार्ड बच्चों ने तैयार किया। इसके बाद वे सब मज़दूरों को सुधार-संबंधी अजायब-घर में ले गए।

एक दूसरे स्कूल ने किसानों द्वारा शराब में ख़र्ची जानेवाली रक़मों का हिसाब लगाया, और उनकी सूची बोर्ड पर टाँग दी। उन्होंने अंदाज़ लगाया कि प्रति किसान साल-भर में बढ़ई की बेंच, गाड़ी के पहिए, हल व कुश और जूतों की एक जोड़ी ख़रीदने में समर्थ रक़म शराब पर ख़र्च करता है। एक और नमूना लीजिए। गेलोगदा के विद्यार्थियों ने मशीन-घरों में पोस्टर लगाए कि "हम, तुम्हारे बच्चे, तुमसे नशा छोड़ने व शराब की दूकानें बंद करने में हमें मदद करने और उन्हें सांस्कृतिक संस्थाएँ, बच्चों के सभागृह, पुस्तकालय, वाचनालय आदि में परिणत करने की प्रार्थना करते हैं। शराबी के बच्चे हमेशा स्कूल की पढ़ाई में कमज़ोर रहते हैं। याद रक्खो, जो बोतल तुम पीते हो, वह तुम्हारे बच्चों के लिये एक किताब या कापी ख़रीद सकती है। हमारी पुकार को सुनो, और हमें पूर्ण विकसित, हृष्ट-पुष्ट, स्वस्थ एवं सुसंस्कृत पुरुष, स्त्री होने का अवसर दो। इसके

लिये हमारे घरों में स्वस्थ वातावरण की आवश्यकता है। तुम्हारे बच्चे, पायोनियर (अग्रगामी)।"

तब स्कूल के बैंड के पीछे-पीछे बाजे बजाता, रंग-बिरंगे कपड़ोंवाला बच्चों का जुलूस निकला, और मज़दूरों के मुहल्ले पर टूट पड़ा। हज़ारों व्यंग्य और ताने मारे गए। मज़दूर मैशीन-घर से बाहर आए। सभा की गई। बच्चों ने स्पीचें दीं। मज़दूरों ने हथियार डाल दिए, और शराब छोड़ने की शर्त पर रज़ामंद हो गए।

शायद सबसे महत्त्व का प्रश्न निरक्षरता का निवारण है। इस आंदोलन में बच्चों ने दिल व दिमाग़ से अपने को झोंक दिया है। वे अपने मुहल्ले के तमाम गली-कूचों में या गाँव के कोनों पर स्थित झोपड़ियों में गए, और तमाम निरक्षरों की सूची बना लाए। बहुधा उनका बड़ा बुरा स्वागत होता था। एक जगह ठंडे पानी के एक घड़े से बाल-वीर का स्वागत हुआ। नाम प्राप्त कर इन निरक्षरों को स्कूल में लाने का काम किया गया। कुछ दृष्टांतों में मदरसों में एक कमरा इसलिये नियत किया गया कि माता-छात्राएँ अपने दुध-मुँहों को किशोर बालकों की देख-रेख में छोड़ दें। कुछ बच्चों ने यह काम सँभाला, और बड़ी योग्यता से पूरा किया। माताओं को अपने सबक़ों में कोई बाधा न आने दी। बहुधा ग्रामीण स्कूलों में साधन व सामान दोनो की कमी थी। बच्चों ने गत्ते के अक्षर बनाए, चंदा करके किताबें व कापियाँ ख़रीदीं। तब शिक्षकों के नेतृत्व में उन्होंने अपने को पढ़ानेवाली टुकड़ियों में विभक्त किया, और वयस्क निरक्षरों को स्कूल में शिक्षा दी। जो मदरसे तक आने का कष्ट न उठाते या उठा सकते थे, उन्हें या तो उनके लड़के-लड़कियों या दूसरों ने आकर पढ़ाया।

१९२१ से १९२६ तक गाँवों में बड़ी दंगेबाज़ी व गुंडाशाही का राज्य था। एक दफ़े बच्चों ने फिर ज़िंदगी को बेहतर करने की लड़ाई में भाग लिया। एक गाँव में बच्चों ने एक ख़ास दिन की तमाम दंगों की वारदातें लिखीं, दो बड़े-बड़े पोस्टरों परउन्हें छापा, और ग्राम-समिति (सोवियट) व सहयोग-समिति के घर के सामने उन्हें टाँग दिया। इन पोस्टरों पर गुंडों के नाम, उनका जुर्म व भविष्य के आचरण के लिये सिफ़ारिश लिखी थी। दिन ख़त्म होने से पहले ही एक दंगई स्कूल के प्रधान के पास आया, उसने माफ़ी माँगी, और उसका नाम पोस्टर में रखकर ज़्यादा शर्मिंदा न करने की प्रार्थना की। उसे बच्चों के समक्ष उपस्थित किया गया। भविष्य में दुरुस्त चालचलन का वादा करने पर उसका नाम पोस्टरों से निकाल दिया गया। कुछ दिनों में उस ग्राम से गुंडेशाही ग़ायब हो गई।

एक छोटे क़स्बे में जहाँ गंदे गढ्ढों में सुअर व बकरे कीचड़ में स्नान करते थे, बच्चों ने स्कूल के दंत-चिकित्सक की सलाह से बच्चों व माता-पिता सबमें दाँत-ब्रुशों के प्रचार का आंदोलन शुरू किया। दो दिन में ही उनकी चेष्टाएँ फल लाईं, और हाथ-मुँह धोने के सामान में दाँतों के ब्रुश को स्थान मिल गया। अफ़सोस! व्यक्तिगत सफ़ाई के लिये जोशीले इन बच्चों के लिये एक नई अड़चन खड़ी हुई। कोई न जानता था कि ब्रुश को कैसे व्यवहार किया जाय। बच्चों को लोगों के घर जाकर अपने ब्रुशों से दाँत साफ़ करके दिखलाने पड़े, ताकि लोग ब्रुश को इस्तेमाल करना सीखें।

रूसी क़ानून के द्वारा घर या स्कूल में शारीरिक दंड की मुमानियत है। बच्चा पीटे जाने पर अपने बाप को न्यायालय में तलब करा सकता है। लेकिन पुराने रिवाज शैतान की-सी मौत मरते हैं। किसान ने साक्षर होने पर भी पैग़ंबर सुलेमान के आदेश नहीं त्यागे हैं। एक दिन मेरे एक परिचित रूसी का लड़का स्कूल से देर में वापस आया। पूछने पर पता लगा कि उसके क्लास के एक लड़के को बाप ने पीटा। मामला पायोनियर-दल ने अपने हाथ में लिया। बच्चों को पीटना असभ्यता, नीति-विहीनता व गिरावट की निशानी है। साम्यवादी जन-तंत्र में

इस पाशविकता को सहन नहीं किया जा सकता। प्रस्ताव हुआ कि उनमें से चार लड़के पिता से मिलें, और उसे अपने आचरण की ग़लती समझावें। ये सब प्रतिनिधि नौ वर्ष की उमर से कम थे। बचपन की गौरव-रक्षा के समर्थक ये छोटे-छोटे बालक जब मकान में दाख़िल हुए, तो वह आदमी स्वभावतः ही बड़े ग़ुस्से में आया, और उन्हें बाहर निकाल भगाने को तैयार हुआ। इन्होंने निकलने से इनकार किया। अटल बहस हुई। नतीजा यह हुआ कि चिड़चिड़े बुड्ढे को भविष्य में बच्चे को न पीटने का वादा करके पिंड छुड़ाना पड़ा।

इस क्षेत्र में बच्चों के काम की कितनी मिसालें दी जायँ, लेकिन इससे पहले ही मुझे पाठकों के विरोध की आवाज़ सुनाई दे रही है। कैसे सुअर की तरह वर्जनीय व दंगई ये लड़के-लड़कियाँ हैं। कितने शर्म की बात है कि बच्चों से स्कूल के बाहर इतना काम करवाया जाय। दूसरे विरोध पर तो यू० एस्० एस्० आर० के शिक्षा व स्वास्थ्य-विशेषज्ञों ने पहले ही जान लिया है कि बच्चों से बहुत वसूली की जा रही है। शिक्षा-सचिव बुवनोफ व स्वास्थ्य-सचिव लाडी-मारस्की ने स्कूल के बाहर काम की तादाद व घंटे सीमित कर दिए हैं। अब भी यह दूसरे देशों में स्कूल से बाहर किए जानेवाले सामाजिक काम से ज़्यादा है, लेकिन इँगलैंड व अमेरिका के सुसंपन्न मज़दूरों के बच्चों के उस काम से बहुत कम है, जो उन्हें घरेलू कामों की मदद की, या पारिवारिक आमदनी बढ़ाने के लिये बाहरी काम की शक्ल में करना पड़ता है।

सचमुच ये बच्चे देखने-सुनने में कैसे हैं? मुझे बीसियों ही नहीं, सैकड़ों से बातें करने का मौक़ा मिला है। स्कूल में, उनके अपने थिएटरों, आश्रमों, उपनिवेशों, कैंपों, सड़कों और घरों में। एक दफ़े मैंने बिना पहले सोचे-समझे कोई पचास लड़कों की एक मीटिंग लेनिनग्राड में हमारे ऑक्टोबर होटेल के सामने की। वे इसी उमर के अँगरेज़-बच्चों से ज़्यादा ज़िम्मेदार हैं। वे साम्यवादी देश के भावी नागरिकों की तरह अपने कर्तव्यों से पूर्णतया अवगत हैं। वे बड़े प्रसन्नवदन, जीवन और खेल-तमाशों के शौक़ीन, दूसरे देशों की बातों में बड़ी दिलचस्पी लेनेवाले, निःशंक और किसी क़िस्म भोंदे नहीं हैं। यह ख़याल रखना चाहिए कि संस्कृति के क्षेत्र में बच्चों का काम चिरस्थायी है। तजवीज़ के मुआफ़िक़ थोड़े दिनों में रूस में निरक्षर न रहेंगे, और गुणज्ञ, योग्य, वयस्क, संस्कृति व सुधार के क्षेत्र में काम करनेवालों की तादाद बहुत बढ़ जायगी, इतनी ज़्यादा कि बाल-शिक्षकों की ज़रूरत न रहेगी। शायद साम्यवादी संसार में शराबी पिता पर हमले-जैसे और भी कोई उत्साह-जनक काम बच्चे के लिये खोज निकाले जायँ।

आर्य-भवन ३०, बेलसाइज़-पार्क
लंदन N. W. 3.
३० नवंबर, १९३२ ई०

विश्व-रूप

[श्रीजगन्नाथप्रसाद खत्री 'मिलिंद']

मत मर्म-व्यथा छूने विद्युत् बन आओ;
बन निविड़ श्याम घन प्राणों में छा जाओ।
किरणों की उलझन चणिक न बनो सवेरा;
बन निशा डुबा दो छवि में जीवन मेरा।
अस्थिर जीवन-कण बन न नयन ललचाओ;
बन शांत मरण-सागर असीम लहराओ।
जो टूट पड़े चण में विनाश-इंगित पर;
वह तारक बन मत ध्यान भंग कर जाओ।
जिसकी अंचल-छाया में सोवे त्रिभुवन;
वह अंत-हीन आकाश नील बन आओ।

फिर उसी रूप से नयनों को न भुलाओ;
अभिनव अपूर्व छवि जीवन को दिखलाओ।
दर्शन-सुख की परिभाषा नई बनाओ;
लघु दृग-तारों में नहीं, हृदय में आओ।
वह विश्व-रूप बन आओ, मेरे सुंदर,
जो रेखाओं का बंदी बने न पट पर।
जिसको भर रखने को तप कर जीवन-भर;
उर बने एक दिन अंत-हीन नीलांबर।
अनुभव को दृग तक ही सीमित न बनाओ;
छवि से जीवन के अणु-अणु को भर जाओ।

हर झाँकी में विस्तृततर बनकर आओ;
जग के प्राणों की प्रतिचण परिधि बढ़ाओ।

संसार की आबादी

[प्रोफ़ेसर दयाशंकरजी दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]



गत तीन वर्षों में संसार के प्रायः अधिकांश देशों में मनुष्य-गणना हुई है, और उसके अंक हाल ही में प्रकाशित हुए हैं। सन् १६३१ में संसार-भर में २०१ करोड़ २७ लाख व्यक्ति निवास करते थे। संसार के प्रधान देशों की जन-संख्या उस वर्ष नीचे-लिखे अनुसार थी—

आफ्रिका महाद्वीप	१४	करोड़	२४	लाख
अमेरिका महाद्वीप—				
संयुक्त राष्ट्र	१२	,,	३६	,,
कनाडा	१	,,	३	,,
अमेरिका के अन्य देश	११	,,	७६	,,
योरप महाद्वीप—				
ग्रेटब्रिटेन और आयर्लैंड	४	,,	६०	,,
जर्मनी	६	,,	४७	,,
फ़्रांस	४	,,	१८	,,
इटली	४	,,	११	,,
रूस	१६	,,	१०	,,
योरप के अन्य देश	१४	,,	८१	,,
एशिया महाद्वीप—				
भारत	३५	,,	२४	,,
चीन	४५	,,	२८	,,
जापान	६	,,	४७	,,
एशिया के अन्य देश	२३	,,	३४	,,
आस्ट्रेलिया महाद्वीप			६८	,,
संपूर्ण संसार	२०१	,,	२७	,,

इस कोष्ठक से यह मालूम होता है कि आबादी की दृष्टि से चीन का सबसे प्रथम स्थान है, और दूसरा स्थान भारत का। भारत में संसार के १७½ प्रतिशत व्यक्ति रहते हैं। जापान की आबादी जर्मनी के बराबर है। फ़्रांस और इटली की जन-संख्या लगभग एक-सी है, और इँगलैंड की जन-संख्या उपर्युक्त सब देशों की जन-संख्या से कम है।

भारत में २६ फ़रवरी सन् १६३१ को मनुष्य-गणना की गई थी। इस समय की मनुष्य-गणना के अंक अधिक विश्वसनीय नहीं हैं। इसका कारण यह है कि उस समय देश में राजनीतिक हलचल थी, जिन व्यक्तियों को मनुष्य-गणना का कार्य सौंपा गया था, वे उसको ख़ूबी के साथ न कर सके। संभव है, कुछ व्यक्तियों के नाम दो या अधिक बार लिख गए हों, या कुछ व्यक्तियों के नाम छूट भी गए हों। परंतु अब १६४१ की मनुष्य-गणना तक हमको भारत की जन-संख्या-संबंधी बातों के लिये सन् १६३१ की मनुष्य-गणना की रिपोर्ट पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। नीचे के कोष्ठक में भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों की तथा देशी राज्यों की सन् १६२१ और १६३१ की जन-संख्या दी जाती है—

प्रांत या देशी राज्य	जन-संख्या (लाख में)		गत दस वर्षों में प्रतिशत वृद्धि
	१९३१	१९२१	
बंगाल	५, ०१	४, ६७	७. ३
युक्त-प्रांत	४, ८४	४, ५४	६. ७
मदरास	४, ६७	४, २३	१०. ५
बिहार और उड़ीसा	३, ७६	३, ४०	१०. ६
पंजाब	२, ३६	२, ०७	१३. ९
बंबई	२, २२	१, ९३	१५. ०
मध्यप्रांत और बरार	१, ५५	१, ३९	११. २
बर्मा	१, ४७	१, ३२	११. ०
आसाम	८६	७५	१५. ६
उत्तरी-पश्चिमी सीमा-प्रांत	२४	२२	७. ७
ब्रिटिश भारत का अन्य भाग	१९	१६	१८. ७
ब्रिटिश भारत—	२७, १७	२४, ६८	१०. १
देशी राज्य—	८, ०७	७, २१	१२. ०
संपूर्ण भारत—	३५, २४	३१, ८९	११. १

उपरि-लिखित कोष्ठक देखने से पता लगता है कि ब्रिटिश भारत की अपेक्षा देशी राज्यों में जन-संख्या की वृद्धि अधिक हुई। ब्रिटिश भारत में सबसे अधिक वृद्धि आसाम, बंबई और पंजाब में हुई, और सबसे कम युक्त-प्रांत में। भारत में जन-संख्या प्रतिवर्ष १ प्रति सैकड़ा से अधिक की गति से बढ़ रही है। जन-संख्या का इतना अधिक बढ़ना, जब कि वार्षिक मृत्यु-संख्या भी भारत में ३० प्रति हज़ार से अधिक है, और करोड़ों व्यक्ति आधा पेट भोजन पाकर ही अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं, यह बतलाता है कि यहाँ की जन्म-संख्या बहुत अधिक है, और यदि इस जन्म-संख्या को कम करने का प्रयत्न शीघ्र न किया जायगा, या देश की आर्थिक उन्नति न होगी, तो मृत्यु-संख्या अवश्य ही और भी अधिक बढ़ेगी, जिससे देश में रोग और दुःख की वृद्धि होगी। जन्म-संख्या कम करने के साधन हैं जनता का ब्रह्मचर्य का पालन करना, और बाल-विवाह का एकदम बंद कर देना। आशा है, देश-प्रेमी सज्जन इन बातों की तरफ़ पूरा ध्यान देंगे।

भारत में जन-संख्या की वृद्धि सबसे अधिक नगरों में हुई है। नीचे के कोष्ठक में भारत के २१ प्रधान नगरों की सन् १९३१ और १९२१ की जन-संख्या दी जाती है, और यह भी बतलाया जाता है कि गत दस वर्षों में प्रत्येक में प्रतिशत कितनी वृद्धि या कमी हुई—

नगर	जन-संख्या		प्रतिशत वृद्धि या घटी
	सन् १९३१	सन् १९२१	
(१) कलकत्ता (हावड़ा-सहित)	१४ लाख १९ हज़ार	११ लाख ३२ हज़ार	११. ५
(२) बंबई*	११ ,, ५८ ,,	११ ,, ७५ ,,	—१ . ५
(३) मदरास	६ ,, ४७ ,,	५ ,, २६ ,,	२२. ८
(४) दिल्ली	४ ,, ४७ ,,	३ ,, ४ ,,	४६. ९
(५) लाहौर	४ ,, ३० ,,	२ ,, ८२ ,,	५२. ५
(६) रंगून	४ ,, ०० ,,	३ ,, ४२ ,,	१५. ९
(७) हैदराबाद*	३ ,, ७७ ,,	४ ,, ०४ ,,	—६ . ७
(८) अहमदाबाद	३ ,, १० ,,	२ ,, ७४ ,,	१४. ०
(९) बंगलोर	३ ,, ६ ,,	२ ,, ३७ ,,	२८. ९
(१०) लखनऊ	२ ,, ७५ ,,	२ ,, ४० ,,	१४. २
(११) अमृतसर	२ ,, ६५ ,,	१ ,, ६० ,,	६५. ३
(१२) कराँची	२ ,, ६१ ,,	२ ,, १६ ,,	२०. १
(१३) कानपुर	२ ,, ४४ ,,	२ ,, १६ ,,	३१. १
(१४) आगरा	२ ,, ३० ,,	१ ,, ८५ ,,	२३. ८
(१५) नागपुर	२ ,, १५ ,,	१ ,, ४५ ,,	४३. २
(१६) बनारस	२ ,, ५ ,,	१ ,, ९८ ,,	३ . ५
(१७) इलाहाबाद (प्रयाग)	१ ,, ८४ ,,	१ ,, ५७ ,,	१७. ०
(१८) मदुरा	१ ,, ८२ ,,	१ ,, ३९ ,,	३१. ०
(१९) श्रीनगर	१ ,, ७३ ,,	१ ,, ४१ ,,	२२. ५
(२०) पूना*	१ ,, ६३ ,,	२ ,, १५ ,,	—२४. ६
(२१) पटना	१ ,, ५८ ,,	१ ,, २० ,,	३१. ८

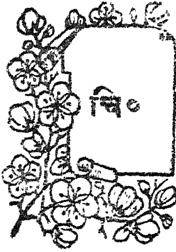
इस कोष्ठक से मालूम होता है कि पंजाब के नगरों में, ख़ासकर लाहौर और अमृतसर में, सबसे अधिक वृद्धि हुई। वह ५० प्रतिशत से अधिक है। दिल्ली और नागपुर में वृद्धि भी एक तिहाई से अधिक है। बंबई, हैदराबाद और पूना में जन-संख्या कम हो गई। पूना में सबसे अधिक कम हुई। बंबई में जन-संख्या कम होने के कारण कलकत्ता को फिर से प्रथम स्थान मिल गया।

जन-संख्या के संबंध में अन्य बातें अगले लेखों में देने का प्रयत्न किया जायगा।

* इन नगरों में जन-संख्या कम हो गई है।

इंदिरा के लिये पत्र

[सौ० कमलाबाई किबे, इंदौर]



सौ० इंदिरा को सप्रेम अनेक आशीर्वाद ।

तुझे ससुराल गए हुए चार दिन हो गए, और आज यह पाँचवें दिन का सूर्य उदय हुआ है । उस सहस्ररश्मि के प्रकाश में ही मैं यह पत्र लिखने की शुरुआत कर रही हूँ । इस समय होनेवाली मेरे अंतःकरण की बेचैनी की कल्पना तुझे कहाँ से होगी ? मातृ-विरह की दारुण कल्पना तुझे कभी स्पर्श न करे, ऐसी मैं उस दयालु जगत्पालक से नम्र भाव से प्रार्थना करती हूँ । वह करुणेश मेरी प्रार्थना व्यर्थ न जाने देगा, और उस पर दुर्लक्ष्य नहीं करेगा । उसके पास दया, न्याय तथा सत्य का निवास है, अतः वह कृपालु जहाँ तक होगा, मेरी विनय को स्वीकार ही करेगा, ऐसा मुझे दृढ़ भरोसा है ।

पर मैं क्या लिख रही थी । मेरा विस्मरण मुझे बार-बार अटकाएगा, क्योंकि तेरे विरह में मैंने ये चार दिन मानो चार संकट-रात्रियों के समान निरंतर विचार-पूर्ण स्थिति में काटे हैं । इन चार दिनों में खाने में, बोलने में, नींद में तेरी मूर्ति मेरी दृष्टि के आगे से क्षण-मात्र के लिये भी दूर नहीं हुई । मेरे शरीर के साथ तेरी मूर्ति छाया-रूप से रहती है, ऐसा मुझे भास होता है, परंतु इंदिरे ! यह सचमुच आभास ही है, केवल आभास, इससे आगे मैं क्या कहूँ ? इन चार दिनों में सोना या खाना कैसा होता है, यह मुझे मालूम नहीं । मुझे अपने इस मोह को प्राप्त हुए मन को क़ब्ज़े में रखना चाहिए । परंतु तेरे विरह में मुझे लगभग पागल ही बन जाने की नौबत आ जायगी, ऐसा मालूम होने लगता है । यदि दुःख अतिरेक को प्राप्त हो गया हो, तो उसे सहन करने में बड़ा कष्ट होता है, और उसे निवारण करनेवाला यदि कहीं दिखाई पड़ जाय, तो दुखी मन को समाधान होता तथा उत्साह प्राप्त होता है, परंतु वह भी कितना क्षणिक ! इस असार संसार में यदि ये सभी बातें क्षणिक मान ली जायँ, तब भी सद्व्यवहार और सद्गुण कहीं भी और किन्हीं भी परिस्थितियों में अजेय तथा अमूल्य होने के कारण अमर रहेंगे । तीनो काल में भी उनका नाश करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है । ख़ुद परमेश्वर भी इन दोनो बातों का नाश नहीं कर सकता, ऐसा मुझे मालूम होता है । क्योंकि सद्व्यवहार और सत्य, ये उसी के स्वरूप हैं ! फिर अपने हाथों से अपनी ही प्रतिमा को क्या कोई भी बुद्धिमान् मनुष्य नष्ट कर सकता है । वही परमेश्वर तेरे इस वियोग को सहन करने की शक्ति मुझे देगा । पर यह क्या, मैं अपना ही क़िस्सा गाए जाती हूँ, वहाँ तेरे मन की क्या अवस्था हुई होगी ।

इंदिरा ! तू जब से ससुराल गई तब से, बल्कि जब तेरा विवाह हुआ, उसी घड़ी से, यह कहना चाहिए कि तेरे जीवन में भारी क्रांति हो गई । पर ससुराल पहुँचते ही उस जीवन-श्री का आरंभ हो गया है । पराई जगह पराए मनुष्य तथा सब पराए व्यवहार को अपना-सा मानना पड़ेगा, अर्थात् हम अपने लिये न होकर केवल इस नई जन-मंडली के सुख के लिये अपनी आयु ख़र्च करेंगे, इसी दृढ़ भावना से प्रेरित होकर तुझे वहाँ व्यवहार करना पड़ेगा । ऐसे व्यवहार में तेरे हाथों से चूक न हो, इसकी ख़बरदारी रखना चाहिए । नए घर में यद्यपि तुझे परायापन मालूम पड़ेगा, फिर भी अपने घराने को व प्रचलित आर्य-स्त्रियों के नाम को तेरे हाथों से कालिमा न लगे, इसकी हमेशा फ़िक्र रखना चाहिए । क्योंकि तेरे

हाथ से होनेवाली ग़लतियों से अपना घराना, समस्त स्त्री-जाति और तेरी ससुराल का घराना, इन तीनो पर कालिमा लग जायगी। वह अपवित्र और कलंकित मुख से फिरनेवाली कालिमा सदा दूर रहे, ऐसी उस जगन्नियंता परमात्मा से मेरी प्रार्थना है।

यहाँ पर तू मुझको व अपने पिता को जैसे प्रेम और आदर से मानती थी, उसी प्रकार, बल्कि उससे भी अधिक प्रेम और आदर से तू अपने सास-ससुर से व्यवहार करके उनका प्रेम प्राप्त कर। उसमें भेद-भाव मत कर। यह याद रख कि उनके काम में चूक न हो। मनोभाव से उनकी सेवा करने से गृह-देवता तुझ पर प्रसन्न रहेंगे, तथा तेरी आयु शांति और आनंद में कब निकल जायगी, यह तुझे मालूम भी नहीं पड़ेगा। अपने शास्त्रों में यह लिखा हुआ है कि यदि कन्या गुणवान् और पवित्र आचरणवाली निकले, तो वह दोनो घरानों का उद्धार करेगी। यदि इसके विपरीत हो, तो दोनो घरानों के नाश का कारण होगी।

किन्हीं मा-बाप के कन्या नहीं होती। कन्या हो जाने पर वे उसके प्रति तिरस्कार का व्यवहार करते हैं। परंतु उस बेचारी का क्या दोष? कन्या होना-न-होना यह क्या उसके हाथ की बात है? यदि यह बात विधाता के अधीन न होती, तो आज संसार में दिखाई देनेवाला स्त्री-समाज कहीं भी न पूछा जाता, और स्त्रियों का जन्म लेना बहुत-से लोगों ने अस्वीकार कर दिया होता। तुझे यह सब लिखने का मतलब सिर्फ़ यही है कि तू कर्तव्य-भ्रष्ट मत होना। बहुत जगहों पर सास-बहू की पटती नहीं, और झगड़ा होता है। "ताली एक हाथ नहीं बजती", इस कहावत में भी सत्यता भरी हुई है। अतः तू सास को मेरी जगह पर मानकर उनकी हरएक बात आदर-पूर्वक और चतुरता से करती जा। अपने हाथ से लापरवाही न होने देने का ध्यान रख। तू घर में नई आई है, ऐसा समझकर वह तुझसे जो कुछ काम करने को कहेंगी, एक ही बार कहेंगी। ख़ूब ध्यान से तथा समय पर काम करने की पद्धति को याद रख। आजकल की जो शिक्षित लड़कियाँ हैं, उन्हें लिखना-पढ़ना तो ख़ूब आता है, पर घर में उनसे पीने के लिये पानी लाने को कहा जाय, तो उन्हें जल का पात्र भी ठीक तरह से लाने का ज्ञान नहीं होता। यह दोष लड़कियों का नहीं, बल्कि उन्हें मिलनेवाली अपूर्ण व बिगड़ी हुई गृह-शिक्षा का है। घर में मा-बाप को ही रीति-भाँति नहीं मालूम, तो उनकी लड़कियों में कहाँ से आवेगी।

ईश्वर का निर्माण किया हुआ वर-वधू-संबंध केवल दंपति को ही लागू नहीं होता, बल्कि उसके धागे दोनो घरानों के सगे संबंधियों और इष्ट-मित्रों तक पहुँचते हैं। केवल वधू पर अक्षत पड़ते ही यह प्रेममय नातेदारी का जाल उसके आस-पास फैल जाता है। उस जाल के सब छिद्र क़ायम रखने की ज़िम्मेदारी उन दोनो पर आ पड़ती है। धागा न टूटते हुए उस जाल में रहकर किस प्रकार व्यवहार किया जाय, यह दिखानेवाली परम चतुर व सच्ची मार्ग-दर्शक सास ही होती है। उसके गुरुजनों के-से व्यवहार को तू अच्छी तरह ध्यान-पूर्वक देख। उसका मन न दुखे, उन्हें कोई बात दो बार कहने का मौक़ा न आवे, और अपने हाथ से कोई ग़लती न हो, इसका भी ध्यान रख। सास को जिससे सुख हो, ऐसा काम करने का मन में निश्चय कर ले, और उसका निर्वाह होने के लिये सर्वशक्तिमान् प्रभु के चरणों में नित्य भक्ति-पूर्वक व पवित्र भाव से लीन हो। वह तुझ बालिका की प्रार्थना की ओर दुर्लक्ष्य नहीं करेगा, यह विश्वास रख।

इंदिरे, घर को मंदिर के समान पवित्र समझ। इस मंदिर में मुख्य मूर्तियाँ तेरी सास, ससुर व पति हैं। विवाह के अंत में जो गृह-प्रवेश होता है, उसके लिये जब हम तुझे ससुराल पहुँचाकर वापस लौटे, तभी तेरा पाँव उस गृह-मंदिर में प्रविष्ट होने का शुभ मंगल दिवस समझ। इस मंगल-दिवस को तूने अपने चरित्र में शुभ पवित्रता लाने की पहली सीढ़ी पर पाँव रक्खा है। अब भी उसकी सीढ़ियों पर चढ़ना बड़ा कठिन काम है। इसको अपने हाथों से अच्छी तरह,

उत्तरदायित्व-पूर्वक निभाने के लिये छोटी लड़कियों को बड़े-बूढ़ों की मर्ज़ी के अनुसार अपना व्यवहार रखने का ध्यान रखना चाहिए। नहीं तो 'थोड़ी चूक का घोर परिणाम' यह कहावत सार्थक होने का समय आ जाता है। गृह रूपी धर्म-मंदिर को अपने आचरण से अपवित्र व मलीन न होने देकर तू उन मूर्तियों की सेवा मनोयोग-पूर्वक करती रह। यह सेवा निर्मल मन से करते रहने से तेरा अंतःकरण सात्त्विक आनंद से भर जायगा। तूने बचपन से ही आज्ञा-पालन का गुण ख़ूब अपना लिया है। किंतु जब तेरी ससुराल के लोग तेरे इस गुण का तारीफ़ करेंगे, तभी उसका मूल्य होगा। हमको प्रेम के कारण तू कितनी भी अच्छी लगती हो, पर वह गौण है। यदि तुझे ससुराल से अच्छे व्यवहार का प्रशंसा-पत्र मिल गया, तो मेरे मन से एक बड़ी फ़िक्र का बोझ दूर हो जायगा।

प्रिय इंदिरे! उसे दूर करना सर्वथा तेरे अधीन है। सुमार्ग और कुमार्ग को देखकर, योग्य दिशा से जाकर, अपने जीवन को सुखकर बनाने का मार्ग निश्चित कर ले। नहीं तो यह नाव अपक्व परिस्थिति के समाज की वायु से ग़लत दिशा में जाकर एकाध चट्टान से टकरा जायगी। ऐसा अवांछनीय अवसर न आवे, यही इच्छा बड़े-बूढ़ों की रहती है। इसीलिये वे छोटों की ग़लती को देखते ही, उसे दूर कराने की चिंता से, फ़ौरन् उपदेशामृत पिलाकर रोग नाश करते हैं। कारण यह कि अविचार द्वारा बढ़नेवाले जंतु फिर न उत्पन्न हो जायँ, इसके लिये उन्हें कभी-कभी छोटों के हृदय रूपी कमल पर उपदेश के खनिज द्रव्यों का कड़ा प्रयोग करना पड़ता है। अन्यथा ये जंतु प्लेग की तरह यदि घर-भर में फैल गए, तो नाश हो जाता है। इस कारण शुरू से ही ध्यान रखना चाहिए। ग़लती से हो जानेवाली दिशा-भूल को बड़े-बूढ़े लोग बतला देते और मीठे शब्दों से समझा भी देते हैं। इसी प्रकार फिर वैसी ग़लती न हो, इसलिये प्रायः डाट-डपट का भी प्रयोग उन्हें करना पड़ता है। ऐसा करते हुए उनके अंतःकरण को कष्ट होता है, परंतु वे बड़ा आत्मसंयम करके अपना कर्तव्य करने में नहीं चूकते। बड़े-बूढ़ों को अनुभव अधिक होता है, वे इस संसार में अनुभव की अधिक बरसें बिताए हुए होते हैं, जग के खरे-खोटे का भी अनुभव उन्हें अधिक होगा, अतः उनके मत के अनुसार ससुराल में लड़कियों का व्यवहार करना, मानो बड़े-बूढ़ों का हेतु पूर्ण करना है। उनके अनुरोध के अनुसार चलना अपना धर्म है, कर्तव्य है। इसका पालन हमें योग्य रीति से करना चाहिए। सास भी तो बड़ी उत्कंठा से कहती है, 'बहू चाहिए, बहू चाहिए', सो किस कारण? इसलिये न कि उसकी ढलती उम्र में उसके शरीर का ध्यान रखके बुढ़ापे में प्रेम से उसकी सेवा करनेवाली, अत्यंत प्रेम की मूर्ति, सच्ची लगन की, सद्गुणी वधू उसे मिले। इसका कारण यही है कि असहाय स्थिति में अपनी सच्ची फ़िक्र करनेवाला कोई मौजूद है, यह जानकर मन को धीरज बँधता है। इसके विपरीत जिनके दुर्दैव से ऐसे साधन नहीं होते, वे बेचारे दुखी रहते हैं। इसका कारण यही है कि सुख की सब उम्र कब बीत जाती है, यह मालूम भी नहीं पड़ता, परंतु वृद्धावस्था बड़ी कठिन व करुणामय है। उस अवस्था का प्रत्येक जन तिरस्कार करता है। अपने नाते-रिश्तेदार ही अपना अनादर करते हैं। उन्हें बूढ़ों का बोलना और साथ-रहना भी अच्छा नहीं लगता। पर ऐसी शोचनीय अवस्था में भला जाय भी कहाँ? बूढ़ा मनुष्य दिखाई दिया कि जवानों के मुँह उनकी ओर फिरते भी नहीं, मानो बूढ़े आदमी प्लेग ही हों। प्लेग का डर भी इन लोगों को कभी-कभी कम लगता है, और उचित सावधानी रखने पर प्लेग से बचाव भी हो जाता है, पर वृद्धों का दुस्सह परिचय तिल-मात्र भी काम का नहीं है, ऐसा उन्हें मालूम होता है। ऐसे समय पर वृद्धों का सब भरोसा, उनकी आशा, उनकी भावी कल्पना, उनका विश्वास, उनका प्रेम और उनकी आत्मा, उनके लड़कों पर, अर्थात् कर्ता-धर्ता पुत्र पर, अवलंबित

रहती है। उनके मनोरथों को भंग न होने देना सुपुत्रों का कर्तव्य है। वृद्ध माता-पिता को सुपुत्र के कारण जितना अभिमान और संतोष मालूम होता है, उतना द्रव्यादि से नहीं। द्रव्य को वे मिट्टी के समान समझते हैं। पुत्र का आदर-युक्त एक-एक शब्द उन्हें सुंदर रत्नों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् प्रतीत होता है। उसके सामने रत्न भी गौण ही हैं। तब पुत्रों को माता-पिता की सदिच्छा पालन करने में बेफ़िक्र क्यों रहना चाहिए? नहीं-नहीं, सुपुत्र कभी माता-पिता की सेवा से विमुख नहीं होगा। यह हुई लड़कों की बात! पर उनका विवाह हो जाने पर एक अपरिचित स्त्री का घर में प्रवेश होता है। उस प्रवेश से घर का जन-समूह नई बहू को देखकर आनंदित होता है। छोटे बच्चे 'भावी आई, नई भावी आई', यह कहकर हर्ष से नाचते-कूदते हैं; और अपने अति हर्ष के कारण की बात को सब लोगों से कहते फिरते हैं, फिर उनकी बात कोई ध्यान से सुने या न सुने, इसकी उन बाल-गोपालों को तनिक भी परवा नहीं रहती। वह आनंद उनके पेट में न समा सकने के कारण उनके छोटे अंतःकरण की पीड़ा उड़ जाती है। उनमें वह आनंद सहन करने की शक्ति नहीं होती, इसी-लिये जो कोई उन्हें मिलता है, उसी से अपने जी की बात कह डालते हैं। अपनी भावज देखकर उन्हें आनंद होता है, सास को अपनी वधू देखकर अपना जीवन सार्थक जान पड़ता है। ऐसा सुख का दिन दिखाने के एवज वह ईश्वर का हृदय से उपकार मानती है, और नए वर-वधू को सुखी रखने के लिये बड़ी एकाग्रता और करुणा से ईश्वर से प्रार्थना करती है। 'नई वधू' अहाहा! कितना मधुर और सार्थक नाम है। हरएक नई बहू को एक कुटुंब का भावी आशांकुर ही समझना चाहिए, और उस आशा-लता में मधुर फल लगते हुए देखने का सौभाग्य जिन कुटुंबों को प्राप्त होता है, उनके बड़प्पन का क्या कहना। किसी रास्ते में यदि सुंदर रंग के फूलों से भरा हुआ कोई सुंदर वृक्ष किसी राहगीर की दृष्टि पड़ जाता है, तो क्षण-भर के लिये उसके नेत्रों को भी उस सुकुमार फूल की ओर देखने की इच्छा स्वभावतः होती है। इसमें न उन नेत्रों का दोष है, और न उस फूल का, बल्कि वह दोष या गुण उस फूल में निर्माण किए हुए सौंदर्य का है। किसी बात का निर्णय कराना रसिकों के हाथ से ही ठीक होता है। ऊपर के उदाहरण के समान ही सुखी कुटुंब देखनेवालों को आनंद होता है, और वे हृदय से अपने भाग्य की सराहना करते और यह इच्छा प्रकट करते हैं कि उनका वह सौख्य नित्य वैसा ही बना रहे। सास अपनी बहू की प्रशंसा करती है। ऐसे समय में हाल ही में ब्याही हुई तुझ-सरीखी लड़की के नए व्यवहार का मानो अभी प्रभातकाल ही है। उस प्रभातकाल का दृश्य बड़ा रमणीय दिखाई देता है। परंतु उसके बाद आनेवाला दोपहर का समय किस प्रकार बिताया जाय। इस काल को उत्तम प्रकार से व्यतीत करने की इच्छा यदि तू रक्खेगी, तो ईश्वर उसे अवश्य अंत तक पहुँचाने में मदद देगा। ऐसी भावना से कोई सत्कार्य करता रहे, इस प्रकार मन को धैर्य प्राप्त होकर शांति मिलती है।

इंदिरे! ससुराल में तू सबकी मर्ज़ी के माफ़िक़ आचरण करना, और जब मैं उन लोगों को तेरी तारीफ़ करते हुए अपने कानों से एक बार सुन लूँगी, तब ऐसा समझूँगी कि तुझे दी हुई शिक्षा का उचित उपयोग हुआ। अन्यथा प्रेम के कारण मुझको तू कितनी ही सुंदर और सुशील ज्ञात होती हो, फिर भी यदि उन लोगों ने तुझे सुशील न बताया, तो तेरे गुण किस काम के? परंतु मेरा तुझसे यही कहना है कि तू जैसा प्रेम अपने छोटे भाइयों से करती है, वैसा ही, बल्कि उससे भी ज़्यादा तू अपने छोटे देवरों और ननदों से करती रहना। उनसे कभी दुख मत मानना। उनके काम प्रेम और चतुरता से, वक़्त पर, करती रहना। तू अपना बर्ताव ऐसा रख कि तेरा काम देखकर उन लोगों को तेरे प्रति प्रेम और आदर उत्पन्न हो। तेरे

छोटे भाई जिस प्रकार तुझसे बहुत दिनों बाद भेंट होने पर 'जीजी'-'जीजी' कहकर प्रेम से पास दौड़ आते हैं, वैसी ही अवस्था तेरे देवरों और तेरी ननदों की होना चाहिए । यह सब तेरे हाथ में है। तू जिस प्रकार का व्यवहार उनसे करेगी, उसी तरह का बर्ताव वे लोग भी तुझसे करेंगे। अपनी छोटी ननदों के बाल गूँथ देना, उन्हें कपड़े पहनाना और रखना, ये सब काम तू ही करती जा। इससे तुझे काम का भी ज्ञान होगा, और शरीर में फुर्ती भी मालूम होगी। इसी प्रकार छोटे देवरों को खिलाने-पिलाने आदि का काम भी तू समय पर, आलस्य छोड़कर, करती जा। कभी-कभी वे पढ़ने-लिखने में कोई बात पूछें, तो उन्हें अच्छी तरह समझा दे । छोटे बच्चों को यदि तू ही सिखावे, तो अच्छा होगा । किराए की शिक्षा और प्रेमी मनुष्यों के सहवास से मिली हुई शिक्षा में बड़ा भारी अंतर है। तनख़्वाह पानेवाले शिक्षकों के द्वारा तैयार किए हुए लड़के, गृह-शिक्षण में तैयार हुए लड़कों की अपेक्षा, सदा नीचे दर्जे के ठहरेंगे। इसलिये यदि तू फ़ुरसत के समय अपने छोटे देवरों और ननदों को सिखाने का अभ्यास रक्खेगी, तो तेरा अभ्यास भी रोज़-रोज़ ताज़ा होता रहेगा । इस रीति से तेरे छोटे देवर और ननदें तेरे मीठे स्वभाव से आनंदित होकर तुझसे अधिक ममता का व्यवहार करेंगी, और उनके प्रेम-युक्त व्यवहार के कारण तुझे यहाँ के भाइयों की याद भी न आएगी।

इंदिरे, इस रीति से तुझे सुखी देखकर मेरी आत्मा आनंदित होगी । ईश्वर के बुद्धि और चातुरी से निर्माण किए हुए इस संसार में 'कुटुंब' के समान रमणीय और उदात्त विचारों से भरा हुआ स्थल दूसरी जगह खोजने से भी नहीं मिलेगा। मानव प्राणी इस पवित्र और स्वर्गीय स्थल का अपने हाथ से ही नाश कर देता है। यह नाश रोकने की सामर्थ्य उत्पन्न करनेवाली विवेक-शक्ति का वास जब तक गृह-राज्य के व्यक्तियों में उत्पन्न नहीं होता, तब तक स्वर्गीय गृहों में चलनेवाला मौजूदा कलह, क्रोध और अशांत वातावरण बंद होने का कोई मार्ग दिखाई नहीं देता, ऐसा बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है।

अपने हाथ से उत्तम कार्य करने के लिये ही ईश्वर ने इस पृथ्वी पर हमें जन्म दिया है। ईश्वर के इस हेतु में ऐसा कोई व्यवहार अपने हाथ से न हो जिससे तिल-मात्र भी कमी आवे, यह हमें सदा ध्यान रखना चाहिए; नहीं तो मनुष्य और पशु में अंतर ही क्या है? यह अंतर क़ायम रखने के लिये ही ईश्वर ने मनुष्य को अधिक बुद्धि का बल देकर एक बड़ी देन दे दी है । उसका उपयोग करना क्या मनुष्य का कर्तव्य नहीं है? इस कर्तव्य में चूक करना गोया जान-बूझकर हम मनुष्य प्राणी हैं, यह ज्ञान भूल जाना है, ऐसा कहना यथार्थ होगा। संसार में आनेवाली अड़चनें तेरी समझ में पूरी तरह नहीं आवेंगी, इसलिये घर के बड़े-बूढ़े मनुष्यों से पूछे बिना छोटे लड़के-लड़कियों को स्वतंत्र रूप से कोई भी बात करने का साहस नहीं करना चाहिए, इसी में उनका फ़ायदा है। इसका कारण यह है कि उनकी अज्ञानता और अनुभव-हीनता का फ़ायदा उठाने के लिये लुच्चे आदमी हमेशा तैयार रहते हैं। वृद्ध मनुष्यों का संसार से अधिक संबंध रह चुका है, अतः उन्हें मनुष्य-परीक्षा अच्छी होती है। इसीलिये ऐसी चाल है कि अपने बड़े-बूढ़ों की बात हमेशा सुनना चाहिए। बड़ों की आज्ञा मानना लड़कियों का कर्तव्य है, और इसी में उनका कल्याण है । इसलिये, इंदिरे, तू भी घर के बड़े-बूढ़ों की मर्ज़ी के मुताबिक़ चलकर इस लोक में सुख प्राप्त करके दूसरे लोक के लिये पुण्य संचय कर। कम-से-कम मेरा तो ऐसा विचार है कि जो लोग यहाँ पर नीति और धर्म से रहकर दूसरों के अंतःकरण और उनके दुख को जानते हैं, वे देवता हैं। चारो ओर कपट, द्वेष, असंतोष और दरिद्रता आदि के रहते हुए भी सद्गुणी मनुष्यों का आयुष्य-क्रम बिलकुल सीधा-सच्चा रहता है। उनका मन संकट से नहीं डरता, वे अल्प संतुष्टता के आनंद में गड़े हुए

होते हैं। लोभ का तो उनके पास नाम भी नहीं होता। द्रव्य न रहने पर यदि वे लोग कठिनाइयों में पड़ गए हों, तो भी वे पाप-मार्ग से द्रव्य कमाने की इच्छा कभी नहीं करते। नुक़सान की ओर वे तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं। सर्प को देखकर जिस प्रकार अपना मन डरता है, उसी प्रकार वे द्रव्य से डरते हैं। वे संकट को कुछ नहीं समझते। वे अपने नैतिक बल की सामर्थ्य पर भरोसा रखकर शांत चित्त से भविष्य-काल के मार्ग की ओर देखते हैं। केवल नीति के पवित्र बल के कारण वे देवतों तक के लिये अजेय हो गए हैं। उनका प्रतिकार करने की सामर्थ्य प्रत्यक्ष ईश्वर तक को भी नहीं हो सकती। ऐसे लोग ईश्वर की सत्ता तक को नहीं मानते, परंतु किसी बात को ईश्वर की कही हुई जानकर ही सुनते हैं। तात्पर्य यह कि मनुष्य प्रेम का दास है। इंदिरा, ससुराल के सब लोगों से तू प्रेम और ममता का व्यवहार करके उनका प्रेम प्राप्त कर। ऐसा करने पर अनेक लड़कियों को जो ऐसा मालूम पड़ता है कि ससुराल एक डर की जगह है, वैसा तुझे नहीं मालूम पड़ेगा। किसी भी स्थल को दुःखद बना लेना प्रायः अपने ही हाथ में है। अपना स्वभाव यदि मीठा है, तो अपने पास-पड़ोस के सब लोग भी अपने साथ प्रेम का व्यवहार करने से न चूकेंगे। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अपना व्यवहार सीधा-सच्चा होने पर भी कुछ लोग उसका अर्थ उलटा लगाकर अपने साथ ज़रा गर्व लिए हुए आचरण करते हैं। ऐसे समय में अपने मन को क़ाबू में रखकर विवेक के साथ उनके शब्दों को सुनना और उनके व्यवहार को देखना चाहिए। उत्तर का प्रत्युत्तर देने की झंझट में पड़ने से विवाद अधिक बढ़ता है। उसको बंद करने का सहल और सहज-साध्य उपाय स्वयं उत्तर न देना ही है। अनेक ससुराल-वासी लड़कियाँ इस सहल रीति को छोड़कर अपनी तरफ़ से किसी प्रश्न का समर्थन करने लग जाती हैं। उस समय, यद्यपि उनका कहना सच भी हो, फिर भी, वह बड़े-बूढ़ों को रुचता नहीं, और उनकी कुछ ऐसी ग़लत समझ हो जाती है कि यह लड़की उद्दंडता से बोलती है। इसके लिये तू इतना हमेशा ध्यान में रख कि बड़े-बूढ़ों के कहने पर तू हमेशा 'हाँ' कहती जा। कभी-कभी बड़े लोगों के हाथ से भी ग़लती की कोई बात हो जाती है, परंतु 'सासजी, यह ग़लती है', ऐसा कहने का बहू को अधिकार नहीं है। ग़लत बात को भी आज्ञा मानकर करना ही चाहिए। उसमें आलस्य या लापरवाही किसी काम की नहीं। ऐसे समय में कभी-कभी सारा-सार-विचार-शक्ति का बिलकुल लोप हो जाता है। अपने को वह चूक स्पष्ट दिखाई देती है, परंतु अपने ससुराल-वासी होने के कारण अपने से उसका निषेध करते नहीं बनता। सबसे अच्छा यही है कि चुपचाप बैठकर यह देखता रहे कि क्या होता है। एक और भी बात तुझे ध्यान में रखना चाहिए। वह यह कि घर के नौकर-चाकरों से भी बोलते समय तुझमें तिरस्कार का लेश भी न होना चाहिए। वे लोग यद्यपि अपने सेवक हैं, फिर भी उनसे प्रेम का व्यवहार करने में ही अपनी शोभा है, तथा तिरस्कार और घमंड के साथ उनसे व्यवहार करने से उनका सेवक होने का दुर्भाग्य और भी दूना हो जाता है। उन लोगों की भी हमें हर बात में ज़रूरत पड़ती है, फिर उन्हें कम क्यों समझा जाय? उनके बिना पग-पग पर हमारा काम अटकेगा। वे भी बेचारे घर-द्वार, स्त्री-बच्चों को छोड़कर केवल पेट के लिये अपनी प्यारी जन्मभूमि छोड़कर यहाँ आते हैं। पैसे के लिये वे कितने भी कठिन काम बिना कहे-सुने करते हैं। उनकी ऐसी दीन स्थिति में उन्हें मिलनेवाले मालिक अथवा मालकिन के उदार होने से उन्हें बड़ा आनंद होता है। फिर कष्टकारक काम करने में भी उनका उत्साह दूना बढ़ जाता है। किंतु यदि उनसे कोई क्रोध से या ज़बरदस्ती से काम ले, तो वे लोग असंतुष्ट रहकर उद्दंडता का

वर्ताव करने लगते हैं। हमें उन्हें ऐसा करने का मौक़ा ही न देना चाहिए। उनसे कोई काम करने के लिये कहने में हमें नम्रता से पूछना चाहिए—"यह काम तुम थोड़ी देर में कर लोगे न ?" फिर वह फ़ौरन् "हाँ" कहेगा। और यदि कभी भूल से काम रह गया, तो उसके लिये उसे शर्म लगेगी। आदमी के हाथ से ग़लती हो जाने पर उस पर क्रोध न करके यदि मीठे शब्दों में कह दिया जाय, तो वह बड़ा लज्जित-सा हो जाता है। क्रोध करने से जितना परिणाम होता, उसका दसगुना परिणाम मीठा बोलकर उन्हें समझा देने से होता है, और उन्हें यह मालूम होने लगता है कि आगे ऐसी ग़लती न हो, इसकी फ़िक्र रखना चाहिए। यदि उनसे बहुत क्रोध से बोला जाय, तो वे लोग और भी अधिक लापरवाही का बर्ताव करते हैं। कभी-कभी अपने हाथ से काम करने में सुख प्रतीत होता है, परंतु दूसरे का कहा हुआ काम करने में मनुष्य को ऐसा प्रतीत नहीं होता। यह मनुष्य-स्वभाव की एक बड़ी विचित्रता ही समझना चाहिए।

मुझे ऐसा मालूम होता है कि बेचारे नौकर लोग पेट के लिये नौकरी करते हैं, तो क्या उन्होंने दुःख-सुख आदि मनोविकार भी छोड़ दिए हैं? कई जगह बड़े लोगों की समझ इसी प्रकार की हो जाती है, ऐसा पद-पद पर अनुभव मिलता है। दोपहर की परछाईं के समान, क्षण-मात्र रहनेवाली सूर्य की छाया के समान, बल्कि इससे भी अधिक चंचल व्यवहारवाली इस लक्ष्मी के क्षणिक ऐश्वर्य के मोह में भूलकर हममें से हज़ारों लक्ष्मीवान् लोग यह समझकर कि ग़रीब लोगों में जीवन नहीं है, प्राण नहीं है, मान नहीं है, अपने ऐश्वर्य-मद में मस्त होकर हज़ारों जीवों के प्रति लापरवाही दिखाते हैं। उनमें से किसी को क्या कभी यह ज्ञान पैदा हुआ कि ऐसा कार्य अपने हाथ से न होना चाहिए? यदि उन्हें यह ज्ञान हो गया होता, तो उन्होंने अपने इस नित्य के अपराध का प्रायश्चित्त अवश्य कर लिया होता। परंतु विवेक उत्पन्न होकर प्रायश्चित्त करने का सौभाग्य बहुत थोड़े लोगों को ही प्राप्त होता है। इसके लिये भी भाग्य की ज़रूरत होती है। हमेशा ऐसी बुद्धि लक्ष्मी-पुत्रों को होना दुर्लभ ही है। कितनी ही श्रीमानों की स्त्रियाँ भी पुरुषों से हाथ-भर बढ़-चढ़कर अपनी श्रीमती की शान दिखाती हुई देखी जाती हैं। उनकी यह ऐंठ देखकर सद्गुणी मनुष्यों को बड़ा बुरा लगता है, और वे समझने लगते हैं कि ऐसे लोगों का साथ बिलकुल छोड़ देना चाहिए।

इंदिरे, तेरा भी घराना सुख-संपन्न होने के कारण तू भी हलके दिलवाली स्त्रियों की तरह अपने मन को हलका न बनाकर सदा उच्च विचारों तथा प्रेम के साथ नौकरों से बर्ताव कर। उनसे काम कराने में हुकुम-सा न देकर मीठे शब्दों में कहना चाहिए कि अमुक काम करो। इस प्रकार उन्हें भी मालूम पड़ता है कि मानो यह बात अपने घर के ही किसी मनुष्य ने कही है, और वे अपना काम अधिक मेहनत से करने लगते हैं। उन्हें मालूम होता है कि मानो यही हमारा घर हो। नौकरों को यदि एक बार बड़-बड़ करने की आदत हो गई, फिर वह सहसा नहीं जाती। फिर उनसे मन से काम किया ही नहीं जाता। एकाध बार काम चूक जाने पर नौकर से ग़ुस्सा भी होना चाहिए, परंतु दूसरी बार फिर ममता से पूछना चाहिए कि "क्या तूने खाना खा लिया?" अन्यथा उसके हृदय में मालिक के प्रति तिरस्कार उत्पन्न हो जाता है। नौकरों के मन में असंतोष उत्पन्न हो, ऐसा बर्ताव न करना चाहिए। क्योंकि किस वक़्त उनसे क्या काम पड़ जायगा, इसका भरोसा नहीं है। इसलिये नौकरों और उनके सुख-दुखों की ओर हमें हमेशा ध्यान देना चाहिए। उन्हें कुछ अड़चन या पैसे की ज़रूरत पड़े, तो हमें उदार मन से उनकी ग़रज़ दूर करना चाहिए, इससे उन्हें संतोष होता है। जब उन्हें छोटी-सी बात में ही

संतोष हो सकता है, तो वह बात क्यों न करनी चाहिए। 'ठीक तरह से काम करो', ऐसा नौकरों से कहने से पहले अपने मन में यह अच्छी तरह से सोचना चाहिए कि हमने ठीक तरह का बर्ताव किया है या नहीं। क्योंकि जब ख़ुद हमने नियमित समय पर नियमित कार्य नहीं किया है, तो नौकरों पर भी अपना प्रभाव नहीं पड़ेगा, और उन्हें प्रत्येक बात में टालमटोल करने की आदत पड़ जायगी। उनकी ऐसी आदत न पड़े, इसके लिये हमें ही शुरू से ध्यान रखना चाहिए। तुझे इतना सब लिखने का कारण यह है कि अभी तू छोटी है, तुझे संसार का परिचय अब कहीं होने लगा है। ऐसे समय में यह संसार तुझे अत्यंत सुंदर व मोहक मालूम होता होगा। ऐसे सुंदर मालूम होनेवाले संसार में वास्तव में अनन्वित कार्य करने में और उनके कार्य-कारण-भाव खोजने में बहुत देर तक कुछ पता नहीं लगता, और मन मूढ़ हो जाता है। ऐसे विस्तीर्ण संसार में किस प्रकार का बर्ताव करना चाहिए, इस विषय में मन बावला हो जाता है। इसलिये कम-से-कम छोटी अवस्था में बड़े-बूढ़ों की आज्ञा में ही रहने में चातुर्य तथा कल्याण है। जिनसे यह नहीं होता, उनकी थोड़े ही काल में अधोगति होती हुई दिखाई पड़ती है। ऐसे दुःखद प्रसंग मनुष्य को अविचार के ही कारण आते हैं। उनके आने पर मनुष्य को दुख होता है, और उस दुख से जीव बिलकुल घबरा जाता है। जब दिमाग़ में सारासार-विचार करने की शक्ति ही नहीं रहेगी, तो मनुष्य के कर्तव्य कार्य में अनेक इल्लतें सामने आवेंगी, और फिर हाथ में लिया हुआ काम व्यवस्थित रीति से पूरा होना कठिन ही है। मनुष्य के हृदय में यदि पूर्ण शांति हो, तो उसके हाथ से कोई भी कार्य अधिक उत्साह तथा ठीक प्रकार से होगा। यदि सूक्ष्म रीति से अवलोकन किया जाय, तो संसार में मनुष्यों के भाग्य में शांति बहुत ही थोड़े परिमाण में दिखाई देगी। शांति अतिशय प्रिय होने पर भी किसी चंचल रमणी की तरह उससे दूर-दूर भागती रहती है। वह प्राणी हृदय से शांतिदेवी की आराधना करता है, तब भी वह उसकी ओर तिरस्कार की दृष्टि से देखती हुई बिजली की भाँति क्षण में अदृश्य-सी हो जाती है, तथा मनुष्य की ओर देखती हुई हँसती-हँसती निकल जाती है। इंदिरे, कहने का अर्थ यह कि ससुराल में तुझे अनेक बार मनस्ताप सहन करने का प्रसंग आवेगा, तो उस समय तू अपने मन की समता बिगड़ने न देने का प्रयत्न कर। कोई ग़लती से यदि अनुचित बात कह दे, तब भी तू यही समझ कि आत्मसंयम न करने की पहली सीढ़ी यही है। जब तेरे मन में उत्तर देने की इच्छा हो, तो तू बड़े कष्ट के साथ मेरे इस कहने की याद रख। ऐसा बर्ताव करने से तेरा कल्याण होगा, और इस योग से शांति के रमणीय उद्यान में तुझे इच्छित क्रीड़ा करने का अवसर मिलेगा। ऐसे अवसर को तू कभी, कैसे भी समय पर व्यर्थ मत गँवा। हम लोग हमेशा कहते हैं कि गया क्षण कभी वापस नहीं आता, फिर उसके लिये चाहे कितने ही प्रयत्न किए जायँ। इसलिये ज्ञानी लोग द्रव्य की अपेक्षा समय की क़ीमत अधिक मानते हैं।

धन से सौगुने महत्त्व-पूर्ण समय को व्यर्थ गँवाना आयुष्य का क्षय करना है। इस कारण निरर्थक जीवन क्या जीवन न होने के समान ही नहीं है? जीवन को निर्जीव बना देना आत्मघात के समान ही है। मेरे विचार से आत्मघात से जितना पाप लगता होगा, उससे भी अधिक पाप निरर्थक दुराचरण में वक़्त लगाने में होता होगा। इस कारण, लाड़िली इंदिरे! तू अपने अमूल्य समय का सदा ध्यान रख। जो वक़्त मिले, उसे सदा पति-सेवा में लगाती रह। इस लोक की हम आर्य-महिलाओं के लिये परम पूज्य तथा भक्ति-पूर्वक आराधना के योग्य स्थान अथवा देव-मंदिर पति ही है। इस मंदिर में देवता अर्थात् पति की एकनिष्ठता से, दिखावटी भावों को छोड़कर, सेवा करना हम आर्य-महिलाओं का पुण्यकारक धर्म है। तू अपने आचरण में उस पवित्र धर्म का पालनकर,

यही तेरी प्रेमल माता की इच्छा है। इसे पूरा करना सर्वथा तेरे हाथ में है। मैंने तुझे अब तक जो शिक्षा दिया है, उसका तू उचित उपयोग करेगी, यह मुझे विश्वास है। क्या मैं आशा रक्खूँ कि तू इस विषय में कभी निराश नहीं करेगी ?

(असमाप्त)

काठ का घोड़ा

[श्रीमोहनलाल महतो]

चलता नहीं काठ का घोड़ा !

मा चिंतित होंगी, ले चल घर, देख बचा दिन थोड़ा।

सोने की थी बनी अटारी,
हाय! लगाई थी फुलवारी,
फूल रहो थी क्यारी-क्यारी,
फल से लदे वृक्ष थे, पर मैंने न एक भी तोड़ा।

छोड़ दिया सुख-दुख क्षण-भर में,
गिरे खिलौने बीच डगर में,
पड़े रहे कुछ सूने घर में,
सखा और संगिनियों से तो अब बरबस मुँह मोड़ा।

बड़ी लगन से मेरे प्रियवर,
शुष्क लकड़ियों को चुन-चुनकर,
रख अपनी छाती पर पत्थर,
एक-एक टुकड़े को बाँधा, जोड़-जोड़ फिर जोड़ा।

है यह चिड़िया-रैन-बसेरा,
बना ख़ूब तू वाहन मेरा,
चल दे, पथ है अगम, अँधेरा,
आगे की सुधि ले, सपना था, जो कुछ पीछे छोड़ा।

चलता नहीं काठ का घोड़ा !

नेपाली जाति

[कर्नेल मेघराज शमशेर जंगबहादुर राणा]



भारतवर्ष में नेपाल हिंदू-गौरव की पताका फहराते हुए खड़ा है। नेपाल को इस बात का गर्व है कि आज तक उसकी पवित्र भूमि में किसी का पदार्पण नहीं हुआ। जिस क़दर उसे अपनी स्वाधीनता का गर्व है, उसी तरह अपने देश को सुंदर और शक्ति-संपन्न देखने का भी अभिमान है।

आज से १६४ वर्ष पूर्व यह देश भी छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त था। अपने अपूर्व पराक्रम से विजय-दुंदुभी बजाते हुए सबको मिलाकर एक 'राष्ट्र' निर्माण कराने का श्रेय गोरखाधिपति महाराजाधिराज पृथ्वीनारायण शाहदेव को है। आप हिंदू-कुल-शिरोमणि प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप के वंशज हैं। आपकी प्राचीन राजधानी गोरखा है, जो काठमांडू से ३२ कोस पश्चिम की ओर है। इसी से लोग नेपाल को गोरखा और नेपाल-निवासियों को गोरखाली भी कहते हैं। नेपाल की सीमा पश्चिम में जिला पीलीभीत से पूर्व में दार्जिलिंग तक ६०० मील लंबी है। उत्तर में हिमालय से दक्षिण में चंपारन तक २०० मील चौड़ी है। इसका पहाड़ी प्रांत हरा-भरा, नाना प्रकार के प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण, अत्यंत रमणीय प्रदेश है। तराई की भूमि भी हरी-भरी, सुंदर है, और अत्यंत उपजाऊ होने से स्वर्णप्रसूता है।

नेपाल की राजधानी काठमांडू है, जो समुद्र-तल से ४,५०० फ़ीट ऊँची है। काठमांडू के अलावा भादगाँव, पाटन दो और शहर भी हैं। ये नैसर्गिक रूप से परिवेष्टित और आधुनिक सभ्यता से सुसज्जित अत्यंत सुंदर नगर हैं। काठमांडू से दो मील पूर्व पशुपतिनाथ का मंदिर है। शिवरात्रि में अनेकों यात्री वहाँ दर्शन के लिये जाते हैं। काठमांडू, भादगाँव और पाटन में कई दर्शनीय मंदिर हैं, जो अपनी प्राचीन कारीगरी के लिये प्रसिद्ध हैं।

नेपाल में कई प्रसिद्ध स्थान हैं, जिनसे भारतवर्ष ही नहीं, संसार परिचित है। शांति-धर्म-प्रवर्तक भगवान् गौतमबुद्ध की राजधानी कपिलवस्तु होने का सौभाग्य नेपाल ही को है। कपिलवस्तु के विषय में एक विद्वान् का कहना है कि संसार में अनेक देश हैं, जो भारतवर्ष का नाम भी न जानते होंगे; पर कोई ऐसा देश, कोई ऐसा विद्वान् नहीं होगा, जो कपिलवस्तु का नाम न जानता हो। अमेरिका, जापान, चीन-जैसे सुदूर देशों से अनेकों यात्री केवल कपिलवस्तु देखने के लिये वहाँ आते हैं। जिला बस्ती के शोहरत-गंज स्टेशन से १४ मील उत्तर नेपाल में कपिलवस्तु है। कपिलवस्तु से १४ मील पूर्व लुंबिनी कानन है, जहाँ राजकुमार सिद्धार्थ का जन्म

हुआ था। लुंबिनी में एक अशोक-स्तंभ है। कपिलवस्तु से दो मील उत्तर निगलिहवा-नामक एक गाँव में भी एक स्तंभ गिरा पड़ा है। कपिल-वस्तु के आस-पास बहुत-से पुराने खँडहर हैं। इन खँडहरों की खुदाई का काम नेपाल-सरकार की ओर से शुरू हो गया है। पौराणिक तीर्थ-स्थानों में हिमालय का गोसाईं-कुंड और मुक्ति-क्षेत्र, जहाँ से गंडक निकलती है, ये दो मुख्य स्थान हैं। अयोध्याधिपति भगवान् रामचंद्र की प्यारी ससुराल परम ज्ञानी राजा जनक की राजधानी जनकपुर भी नेपाल में है।

नेपाल की भूमि उर्वरा है। नाना प्रकार की वनौषधि, साल-देवदारु आदि उपयोगी वृक्षों से परिपूर्ण जंगल, अगणित नदियाँ, झील-झरने, लोहा, ताँबा और सुवर्ण आदि की खानें तथा अनेक उपयोगी पत्थर इत्यादि के होने से यह देश संपत्तिशाली है।

नेपाल की सबसे बड़ी संपत्ति है उसकी अपनी प्यारी प्रजा। नेपाल की प्रजा राजभक्ति को परम धर्म समझती है। यहाँ की प्रजा की राजभक्ति अनुपम है। जो राजा की निंदा करता है, उसे प्रजा अत्यंत घृणा की दृष्टि से देखती है। राजा भी प्रजा-वत्सल होते हैं। अपनी प्यारी प्रजा की भलाई के लिये सब कुछ करने को तैयार रहते हैं। वर्तमान महाराज युद्ध शमशेर जंग-बहादुर राणा का एकमात्र लक्ष्य है "प्रजा की भलाई किस तरह हो।" यही प्रधान कारण है कि आज नेपाल में सुख-शांति है।

नेपाली जाति का रहन-सहन जानने के लिये नेपाल को दो भागों में बाँटना चाहिए, क्योंकि स्वयं प्रकृति ने पहाड़ और तराई के जल-वायु के साथ-साथ उनका रहन-सहन भी अलग-अलग कर दिया है।

पहाड़ी प्रांत में ब्राह्मण, क्षत्रिय, मगर, गुरुंग, लामा, लेपचा, लिंबु, किराती, सुनार, लोहार, दर्ज़ी और मोची की बस्तियाँ हैं। इनमें लामा, मगर और लिंबु की भाषा अलग-अलग है, पर सब लोग नेपाली भाषा ही का व्यवहार करते हैं। इन छोटी-छोटी जातियों की भाषा में इतने कम शब्द हैं कि उनसे उनके अपने घरेलू काम भी मुश्किल से चलते हैं। काठमांडू, भादगाँव, पाटन में नेवार-जाति की भाषा है, जो नेवारी भाषा कहलाती है। यह भाषा प्राचीन भाषा है, और साथ ही संस्कार-पूर्ण भी। इसकी लिपि भी अलग है, पर अब तो यह लिपि प्राचीन शिला-लेख और पुस्तकों में ही देखने में आती है। काठमांडू और पहाड़ में कुछ मुसल-मान हैं, जो क़रीब ढाई-तीन सौ बरस से आबाद हैं। पहाड़ के निवासी मुसलमानों के तो भाषा-भेष, रहन-सहन सब पहाड़ के निवासियों की तरह हो गए हैं, केवल काठमांडू के मुसलमानों की भाषा उर्दू है।

नेपाल का प्रधान धर्म सनातन धर्म है। कुछ नेवार और लामा बौद्ध हैं, पर नेपाल में सनातन धर्म और बौद्ध-धर्म ऐसे मिले हैं कि सहसा पता नहीं चलता कि कौन किस धर्म का अनुयायी है। नेपाल में किसी भी संप्रदायवाले के रहने की मनाही नहीं है, पर धर्म-परिवर्तन करना मना है, क्योंकि उससे अशांति उत्पन्न होती है। नेपाल में शांति का साम्राज्य है। समस्त प्रजा

अपने-अपने धर्म पालन करते हुए हिल-मिलकर रहती हैं।

पहाड़ की जातियाँ कृषि-जीवी, परिश्रमी हैं। ये बड़ी नेक, धीर, वीर और स्वामिभक्त होती हैं। इस जाति के 'गोरखा वीरों' की वीरत्व-गाथा से संसार के इतिहास के पृष्ठ उज्ज्वल हैं। इनकी धीरता, वीरता, सरलता और कष्ट-सहिष्णुता की तारीफ़ की जाय, तो एक अलग पुस्तक ही बन जायगी।

राजधानी की नेवार-जाति प्राचीन जाति है। इनमें कृषक भी हैं, पर अधिकांश व्यवसायी हैं। राजधानी का व्यापार कुछ मारवाड़ी, कुछ इन्हीं लोगों के हाथ में है। यह जाति उद्यमी, व्यवसाय-प्रिय और साथ ही कलाविद् भी है। इनकी कारीगरी प्राचीन मंदिरों में देखने में आती है। यह लोग भारत के सब प्रधान नगरों के अतिरिक्त तिब्बत में भी जाकर व्यवसाय करते हैं।

तराई को हम लोग मधेस (मध्यदेश) भी कहते हैं। तराई में तिवारी, दुबे, मिश्र, चौबे, पाँडे, सुकुल, झा आदि ब्राह्मण, राजपूत, बनिया, ग्वाला, कुर्मी, तेली, कलवार, मोची, दुसाध, हेला आदि हिंदू और मुसलमानों की बस्ती है। ये सब जातियाँ कृषि-जीवी और बड़े निपुण किसान हैं। तराई का रहन-सहन जो प्रांत ब्रिटिश भारत के जिस प्रांत से मिला है, उसी प्रांत का-सा है। चंपारन से पुरनिया तक का प्रांत उत्तरीय बिहार से मिले होने से उसकी भाषा, रहन-सहन सब उत्तरीय बिहार के-से हैं। गोरखपुर से पीलीभीत तक से मिले प्रांत में वही भाषा और वही रहन-सहन है। ये तराई-वासी जातियाँ परिश्रमी और बहुत सरल तथा सीधी हैं।

तराई में थारू एक जाति है, जो प्रायः जंगल के आस-पास रहती है। यह जाति बड़ी सरल, श्रमशील और स्वावलंबी है। ये लोग निपुण किसान तो हैं ही, साथ ही अपनी ज़रूरत की चीज़ें स्वयं तैयार कर लेते हैं। वही आदमी हल भी चलाता है, बढ़ई का काम भी करता है। लुहारी भी करता है, बाँध, नहर वग़ैरह का भी इंतज़ाम करता है, कपड़ा साफ़ करता है, जंगलों में जाकर शिकार करता है। झूठ, कपट, छल से तो ये लोग कोसों दूर रहते हैं। इनकी औरतें बहुत साफ़-सुथर होती हैं। चाहे कितने ही धनी की स्त्री क्यों न हो, सबके साथ हिल-मिलकर काम करती है। ये हाथ बाँधकर रहना नहीं जानतीं। फ़ुरसत के वक़्त पंखा वग़ैरह बनाना, चटाई बुनना, कपड़ा सीना इत्यादि काम करती रहती हैं। ये बहुत हँसमुख और बड़ी सती होती हैं। यह थारू-जाति आनंद करना भी जानती है। विनोदी तो पूरे होते हैं। ये लोग नाटक भी करते हैं, नाटक के बाद सामाजिक विषय को लेकर जो स्वाँग करते हैं, वह देखते ही बनता है।

आसाम, बर्मा, शिलांग, दार्जिलिंग, देहरादून में भी नेपाली जाति की बस्ती है। ये प्रवासी नेपाली कहलाते हैं।

नेपाल की प्रधान भाषा नेपाली-भाषा है। यही नेपाल की राष्ट्र-भाषा है। चाहे पहाड़ का हो, चाहे तराई का, एक-एक बच्चा नेपाली-भाषा को प्यार करता, आसानी से बोल सकता और समझ सकता है। नेपाली-भाषा प्रचलित हिंदी से

मिलती-जुलती, बड़ी सरल भाषा है। पाठकों के मनोरंजनार्थ नेपाली-भाषा की कुछ पंक्तियाँ नीचे देता हूँ—

"भारतवर्ष मा नेपाल एक बहुतै सुरम्य देश छ। नेपाली भाषा पनि यति सरल छ कि हामि सहज मा बुझ्न सकछौं।

"नेपाल का वर्तमान महाराज बहुतै लोक-प्रिय प्रजा-वत्सलता-पूर्ण शासक होइ बक्संछ। वहाँ ले अल्प समय मानै धेरै सुधार गरी संसार मा यश-भाजन होई बक्सीयो।

"सुधा का संपादक श्रीदुलारेलालजी भार्गव योग्य संपादक रसाथै बड़ा मिलनसार, हँसमुख हुनू हुंछ।

"लखनऊ को गंगा-पुस्तकमाला मा हिंदी का उत्तमोत्तम पुस्तक पाईन्छनू।"

स्वागताध्यक्ष का भाषण*

[श्रीयुत रावसाहब लक्ष्मणभास्कर मुले, शिक्षा-सचिव, ग्वालियर]

माननीय प्रतिनिधि बंधुओ तथा उपस्थित सज्जनो व महिलाओ,

"साधु-संत येती घरा, तोचि दिवाळी दसरा।"



उक्त कथन महाराष्ट्र के विख्यात संत-शिरोमणि कविवर महात्मा तुकारामजी का है। मैंने अपने स्वागत पर भाषण का आरंभ मराठी वाक्य से किया, इसका दोष कृपया मुझे न दीजिए, बल्कि यहाँ के मेरे उन मित्रों को दीजिए, जिनके प्रेमाग्रह ने पात्र-अपात्र का विचार न कर मुझे आप-जैसे माननीय शारदा-भक्त व साहित्यानुरागियों का स्वागत करने का सुअवसर दिया है। दूसरा दोष यदि आप चाहें, तो उक्त मराठी अभंग को ही दे सकते हैं। क्योंकि उसमें यदि ऐसा सुंदर, समया-नुकूल, प्रयोजक व हृदयस्पर्शी भाव भरा न होता, तो उसे आपके सम्मुख उपस्थित करने का न तो मुझे मोह ही उत्पन्न होता, और न मुझसे ऐसा साहस, प्रमाद या धृष्टता ही हो पाती। तीसरा दोष, चाहें तो, आप उपस्थित गण्य-मान्य साहित्या-चार्यों को दें। यदि उनकी वाणी में प्रसाद न होता, तो मुझे उनके स्वागत के हेतु संत तुकाराम की प्रसाद वाणी का आश्रय न लेना पड़ता। अस्तु, इस अभंग का तात्पर्य यह है कि एकाध लौकिक त्यौहार या उत्सव ही नहीं, किंतु हमारे सारे त्यौहार व महोत्सव मिला देने से हमारे हृदय को जो कुछ आनंद हो सकता है, वह संतों के आगमन से होनेवाले आनंद के सामने तुच्छ है। संतागमन की इस महिमा का वर्णन करने के लिये उक्त शब्दों से बढ़कर आदरानंद-भाव-पूर्ण, सुंदर शब्द मुझे अन्यत्र मिलना कहाँ संभव था?

सज्जनो! आप सच मानिए। आपके शुभागमन से ग्वालियर की साहित्य-प्रेमी जनता का अंतःकरण जिस हर्ष व प्रेमानंद के भाव से उमड़ उठा है, उसे व्यक्त करने के लिये मेरे पास अन्य शब्द नहीं हैं। अँगरेज़ी भाषा और भाव का यदि मैं अवलंबन या अनुसरण करता, तो मुझे यह कहना पड़ता कि आज का दिन ग्वालियर के साहित्यिक इतिहास में सुवर्णाक्षरों से अंकित करने योग्य है। सुवर्णाक्षर ही क्या, बल्कि रत्नाक्षर होने पर भी वह जड़ शब्द चैतन्यमय आनंद को व्यक्त करने के लिये कैसे समर्थ तथा योग्य हो सकते हैं? हमारे इस समय के आनंद की तुलना हृदय के किसी समलक्षण भाव के साथ की जाने से ही शब्द द्वारा वह परमानंद कुछ व्यक्त हो सकता है; और इसी-लिये मुझे संत तुकाराम के उपर्युक्त अभंग का आश्रय लेना पड़ा, जिसे आप क्षमा करें।

मेरे अधीन आपके आगत-स्वागत का कार्य किया गया है, मैं उसकी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करूँगा, और न मुझमें ऐसा अतिक्रमण करने की सामर्थ्य ही है। यद्यपि स्वागत के लिये अल्प-स्वल्प सामग्री काफ़ी होती है, तो भी मुझे यह कार्य बड़ा कठिन प्रतीत हो रहा है। सती गांधारी की ऐसी लोकोत्तर पति-निष्ठा कि उसने पति के अंधे होने के कारण खुद भी अपने नेत्रों का उपयोग करना छोड़ दिया था, यानी उसे पूर्ण दृष्टि-सामर्थ्य व साधन अनुकूल होते हुए भी पति जिस दृश्यानंद का अनुभव नहीं ले सकता था, उसका उपभोग उसे इतना असह्य

---

* यह भाषण अखिल भारतवर्षीय २२वें हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, ग्वालियर में स्वागताध्यक्ष के पद से दिया गया था।—सुधा-संपादक

हुआ कि उसने केवल इच्छा-बल से अपने नेत्र आजन्म बंद कर रक्खे, या लक्ष्मणजी का इतना अपूर्व शील कि उनकी दृष्टि बंधु-पत्नी सीताजी के चरणों के सिवा उनके किसी अन्य अंग की ओर कभी भूल से भी नहीं गई, और वह सिवा चरणा-भूषणों के उनके अन्य किन्हीं भी आभूषणों को न पहचान सके, अथवा उनका अपने ज्येष्ठ भ्राता तथा उनकी पत्नी के प्रति इतना श्रेष्ठ आदर-भाव कि वन में एक के पीछे एक चलते समय जिस भूमि या धूल को उस दंपति में से किसी का पादस्पर्श हो जाता था, उसे बचाकर वह अपना क़दम डाला करते थे। यह और इनके सदृश अन्य सैकड़ों उदाहरण इतनी श्रेष्ठ कोटि के भाव और कल्पनाओं का नमूना हैं, जिनके समान जोड़ हमें संसार के अन्य किसी साहित्य में नहीं मिलते। ऐसी उच्चतम भाव-धारा में जो शारदा-भक्त नित्य सुस्नात हो रहे हैं, उनके स्वागत के लिये अंतःकरण में योग्य भाव होने पर भी उन्हें प्रकाशित करने के लिये अनुकूल शब्द कहाँ से प्राप्त हो सकते हैं, यह भी मेरे लिये एक समस्या ही है।

पहली त्रुटि तो यह है कि मैं स्वयं साहित्यशास्त्री या भाषा-पंडित नहीं हूँ, न मुझसे अब तक कुछ उल्लेखनीय साहित्यिक कार्य ही हुआ है। मैं साहित्योपासक नहीं, किंतु साहित्य-सेवियों का एक भक्त हूँ। मेरे लिये दूसरी दिक़्क़त यह है कि स्वागत का कोई एक बँधा हुआ मार्ग नहीं है, जिसका अवलंब लेने से कार्य सिद्ध हो जाय, बल्कि उसके दो प्रकार हो सकते हैं—एक आधुनिक सभ्यता का और दूसरा प्राचीन आर्य-सभ्यता का। आधुनिक प्रकार यह है कि जब कभी कोई प्रतिष्ठित सज्जन अपने यहाँ पधारते हैं, तो उनसे हस्तांदोलन करके यानी हाथ मिलाकर या पान, तंबाकू, सिगरेट आदि देकर अथवा कभी-कभी चाय पिलाकर उनका स्वागत कर दिया जाता है। इन सब प्रकारों में कुछ-न-कुछ दोष पाया जाता है। उदाहरणार्थ हाथ मिलाने के शिष्टाचार को ही लीजिए। हाथ जोड़ने के नम्र भाव के बजाय अब हाथ मिलाने का प्रचार बढ़ रहा है। वैसे तो हाथ मिलाना हमारे लिये कोई नई बात नहीं है। भेद इतना ही है कि हम कुश्ती के समय अखाड़े में कुश्ती लड़नेवाले से हाथ मिलाया करते थे। अर्थात् चित्त में हराने की कामना रखकर बाह्यतः स्नेह-भाव की चेष्टा करने के कपट-भाव के कारण हमारे लिये यह आचार दूषित अर्थात् निंद्य एवं त्याज्य है। प्राचीन सभ्यता के अनुसार आगत-स्वागत किया जाय, तो उसके लिये पूजन के बिना अन्य मार्ग नहीं दिखलाई देता, और फिर भी प्रश्न बना रहता है कि जो पूजन किया जाय, वह षोड़शोपचार हो या पंचोपचार? यथार्थ में यह निर्भर है पूजन-सामग्री की अनुकूलता पर। अगर षोड़शोपचार पूजन का साहित्य संग्रह करने में हम अपने को असमर्थ पावें, तो पंचोपचार पूजन द्वारा ही अपना समाधान कर लेना हमारे लिये उचित है।

साहित्याचार्यों का पूजन करना साक्षात् शारदा माता का पूजन करने के बराबर है; क्योंकि आप उसकी चैतन्य रूप प्रतिमाएँ हैं। शारदा माता का सारे विश्व को आधार है, तो उसके लिये कौन-सा आसन उपस्थित किया जाना संभव है? एक आसन अलबत्ता उपलब्ध है, और वह है हमारा हृदय! उसी को हम आपके सम्मुख उपस्थित करके आपसे आरूढ़ होने की प्रार्थना करते हैं। इस कामना के साथ कि उस स्थान पर आपकी आसीनता ऐसी अटल बनी रहे कि वहाँ से अन्य किसी भाषा का साहित्य हिंदी-साहित्य को कदापि च्युत तथा भ्रष्ट न करने पावे। यह एक विचार हुआ। दूसरा यह कहा जा सकता है कि आसन का कार्य है आधार। अखिल जड़-चैतन्य सृष्टि का आधारासन निसर्गोत्पन्न भूमि है। उसी प्रकार साहित्य-सृष्टि के लिये भाषा को ही आधारासन का स्थान प्राप्त है। आज आप इस समय एक ऐसे बड़े देशी राज्य की राजधानी में उपस्थित हैं, जहाँ की भूमि सिंधिया नरेशों के स्वदेशी राज-शासन-संस्कार से पुनीत होने के कारण शारदा-भक्तों के आसन के लिये सर्वथा पात्र है। इस पर भी उसने

विशेष पात्रता इस कारण पाई है कि सिंधिया नरेशों की मातृभाषा मराठी होते हुए भी प्रजा पर वे अपनी भाषा लादने के मोह में नहीं पड़े, वरन् प्रजा के हित व हिंदी के प्रेम से प्रेरित होकर अपनी प्रजा की हिंदी-भाषा को ही सरक्यूलर द्वारा १९५८ विक्रम-शताब्दी से शासन-कार्य में राजभाषा बना दिया। यह एक ऐसा सुंदर उदाहरण है, जो अन्य कई संस्थानिकों के लिये और साम्राज्य के सौभाग्य-प्राप्त देशों के लिये सर्वथा अनुकरणीय है। हमारे चिरस्मरणीय स्वर्गीय माधव महाराज के उक्त सरक्यूलर अथवा आज्ञा-पत्र को राज्य की जनता यदि हिंदी-भाषा का magna-charta समझे, और उसके लिये उनकी चिर-कृतज्ञ हो, तो उसमें आश्चर्य ही क्या है? क्योंकि उससे राज्य की भाषा का वैसा ही गहरा उपकार हुआ है। राजभाषा बदलने के कार्य में स्वर्गीय माधव महाराज के अग्रसर होने से उनकी यह कृति अन्यान्य शासकों को मार्ग-दर्शक हो गई। इसके पश्चात् ही कुछ राज्यों में और संयुक्त-प्रांत के न्यायालयों में भी वह प्रस्थापित हुई। इसे हम यहाँ के उदाहरण का ही परिणाम समझें, तो अनुचित न होगा। सारांश यह कि भाषा के विषय में इस प्रकार से सुसंस्कृत भूमि आपके आसनार्थ उपस्थित है।

उक्त आसन पर आरूढ़ हुए आप-जैसी चैतन्यानंद मूर्तियों का पाद-प्रक्षालन भी हम पार्थिव जल से नहीं, किंतु उस मनोत्साह-सूचक आनंदाश्रु के स्रोत से करते हैं, जो आपके शुभागमन से हमारे अंतःकरणों में न समाकर रोम-रोम से फूट निकलने की चेष्टा कर रहा है, और यदि पार्थिव जल बिना आपका संतोष न होता हो, तो लीजिए, वह भी आपके सम्मुख यहाँ के सूर्य-कुंड पर मौजूद है। इस सूर्य-कुंड के जल का माहात्म्य, जो दंतकथा द्वारा उपलब्ध है, यह है कि उससे न केवल शरीर-मल ही धुलता है, बल्कि कुष्ठ के समान महारोग से भी शरीर की निवृत्ति हो जाती है। ग्वालियर का दुर्ग, जो भारतीय दुर्ग-माला का एक अमूल्य मोती कहा जाता है, उसके निर्माता राजा सूरजपाल कुष्ठ-रोग से पीड़ित थे। वह एक दिन मृगया करते हुए ऐसे समय उस स्थान के निकट पहुँचे, जब वह थककर तृषा से अत्यंत व्याकुल हो रहे थे। जल की खोज में फिरते-फिरते उनको एक तपस्वी का दर्शन हुआ। उनके पूछने पर तपस्वी ने जल का स्थान बता दिया। राजा ने उस जल का पान किया, तो तत्क्षण सारी थकान मिट गई, और चित्त को अपूर्व प्रसन्नता प्राप्त हुई। तत्पश्चात् वह तपस्वी के निकट जा बैठे, और उन्हें साथ लाया हुआ जल अर्पण किया। राजा को उदास देखकर तपस्वी ने खिन्नता का कारण पूछा, तो मालूम हुआ कि राजा कुष्ठ-रोग से पीड़ित है। तपस्वी ने राजा के सौजन्य से प्रसन्न होकर उससे कहा कि रविवार के दिन वह सकुटुंब वहाँ के जलाशय में यथाविधि स्नान करेगा, तो रोग से निवृत्त अथवा पाक हो जायगा। तदनुसार वह राजा स्नान करने पर रोग-मुक्त हो गया। उसने तपस्वी का भक्ति-भाव-पूर्वक पूजन-अर्चन किया। तपस्वी ने राजा से कहा कि वह उस स्थान पर एक दुर्ग बाँधे, और आनंद से राज्य करे। जब तक उसके वंशजों के नाम के साथ 'पाल' शब्द बना रहेगा, उसका वंश उस प्रदेश का राज्य करता रहेगा। अस्तु।

आसन और प्रक्षालन के पश्चात् आपके विलेपनार्थ हम महाराजा दौलतरावजी के समय के राजाश्रित नाथपंथी संतकवि महिपतिनाथ के कथन या पद्य-रचनाएँ भक्ति-पूर्वक समर्पित करते हैं। ये रचनाएँ विमल और शीतल चंदन के समान ज्ञान तथा शांति-रस-प्रधान हैं। इन पद्यों की सुगंध का परिमल न केवल ग्वालियर-राज्य के कोने-कोने में, किंतु अन्य देशों में भी फैला है, और भक्त जनों के चित्त को अब भी मुग्ध कर रहा है, तथा भविष्य में भी करता रहेगा, इसमें संदेह नहीं।

इस राज्य के संस्थापक पुण्य-श्लोक श्रीमंत महादजी सिंधिया-विरचित भक्ति-भाव-परिमल-पूर्ण 'माधव-विलास'-नामक कविता-ग्रंथ व श्रृंगार-रसाचार्य पद्माकर-जी की नानावर्णालंकृत मनोहर कविताएँ—जिन्हें सुन-कर महाराजा दौलतरावजी सिंधिया-जैसे साहित्य-प्रेमी

इतने मुग्ध हो गए कि उन्होंने एक लाख रुपया व एक हाथी कविवरजी को प्रदान कर दिया—यह ग्वालियर-राज्य की कुसुम-रचनाएँ—आपकी पूजा के वास्ते हमारी पुष्प-सामग्री है, उसे हम समर्पण करते हैं।

पूजन में पंचम उपचार फलाहार का है, उसके लिये तो हमारे चिरस्मरणीय स्वर्गीय माधव नरेश ने ग्वालियर के राज्य को अत्यंत सुसमृद्ध कर रक्खा है। ज़मींदार-हितकारी, पशु-चिकित्सा, सुख की कुंजी, स्वयं संशोधित हिंदी-क्रमिक पाठ्य पुस्तकें और पॉलिसी-नामक राजनीति-शास्त्र-विषयक बारह भागों का बृहद् ग्रंथ—जिनके कारण उक्त महाराज का नाम हिंदी-साहित्य के इतिहास में सदा अमर बना रहेगा—हम आदर-पूर्वक आपके सम्मुख रखकर प्रार्थना करते हैं कि आप इन मधुर व उपयुक्त कंद, मूल व फलों का स्वाद लेने की अवश्य ही कृपा करें। कैलासवासी माधव महाराज ने इन ग्रंथों तथा उपर्युक्त आज्ञा-पत्र द्वारा हिंदी-भाषा का इतना उपकार किया है कि वैसा सौभाग्य शायद ही किसी हिंदी-भाषा-भाषी नरेश को प्राप्त हुआ होगा। इसी से माधव महाराज के विषय में ठीक ही कहा गया है—

'स्वयं' बोलकर, लिखकर हिंदी
हिंदी का सम्मान किया;
हिंदी को निज रामराज्य में
पूरा स्वत्व प्रदान किया।
स्वराज्य भाषा बना इसी को
इस ही में व्यवहार किया;
सूख गई थी लता नागरी,
फिर जीवन-संचार किया।

फलों में एक यह विशेषता होती है कि वे केवल उस समय की क्षुधा-तृप्ति के लिये ही उपयुक्त नहीं होते, बल्कि उनमें भावी उपयोगिता का बीज भी मौजूद होता है। स्वर्गीय माधव महाराज की ये रचनाएँ इसी प्रकार की उपयोगिता से भरी हुई हैं। उदाहरणार्थ हिंदी-क्रमिक पाठ्य पुस्तकें लीजिए। उनमें विषयों का निर्वाचन इस प्रकार किया गया है कि बालकों को भाषा-ज्ञान के साथ-साथ व्यवहारोपयोगी विषयों का ज्ञान भी हो जाय। ऐसे ही उनकी भाषा, बोल-चाल की-जैसी सरल, सीधी-सादी हिंदी है, जिसके द्वारा न केवल हिंदी-भाषा का प्रचार बढ़ाना, बल्कि उसे राष्ट्र-भाषा-पदारूढ़ करना भी सुगम हो जायगा, इसमें किंचित् संदेह नहीं। इस विषय में मैं आगे चलकर विशेष निवेदन करूँगा।

सज्जनो! आज पहला ही दिन है, जब कि इस नगरी में इतने समारोह के साथ हम हिंदी-भाषा-भाषी साहित्य-सरस्वती के चरणों पर श्रद्धाभक्ति-रूपी पुष्पांजलि सप्रेम और सादर अर्पण करने के लिये जमा हुए हैं। माता सरस्वती के आवाहन के प्रीत्यर्थ स्वागतकारिणी समिति ने मुझे अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया है, इसका कारण उनकी सौजन्यता ही है। यद्यपि मैं महाराष्ट्रीय हूँ, और मेरी मातृ-भाषा मराठी है, तथापि हिंदी-भाषा-भाषी प्रांत में रहने के कारण मैं अपने नित्य व्यवहार में राष्ट्र-भाषा का ही उपयोग करता हूँ, तथा शिक्षा-विभाग से मेरा संबंध है, जिसके द्वारा राज्य में यथासंभव हिंदी का प्रचार हो रहा है। संभवतः इन्हीं बातों को सोचकर ही स्वागत-समिति ने मुझे प्रस्तुत पद के लिये निर्वाचित किया होगा। इसी विचार से मैंने भी स्वागत-समिति के सदस्यों के प्रेम तथा सहकारिता के बल पर ही उसको स्वीकार कर लिया है; अतएव मैं सानंद आपका स्वागत करता हूँ। आशा है, हमारी कठिनाइयाँ, सम्मेलन की तैयारी के लिये अल्प समय आदि के देखते यदि कोई त्रुटि आप अनुभव करें, तो उसके लिये क्षमा करेंगे।

ग्वालियर का साहित्यिक इतिहास

सज्जनो! आप इस समय जिस राजधानी में उपस्थित हैं, उसका संक्षिप्त साहित्यिक इतिहास आपके सम्मुख निवेदन करने की आवश्यकता है, जिससे सिद्ध हो जायगा कि यह स्थान साहित्य-संबंधी चर्चा एवं नूतन आयोजनाएँ करने के लिये सर्वथा उपयुक्त है। यद्यपि ग्वालियर से सिंधिया-

वंश का संबंध, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, लगभग डेढ़-पौने दो सौ वर्षों का ही है, और इस अल्पकाल में भी सिंधिया-राजकुल के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष आश्रय-प्रश्रय से हिंदी-भाषा की बहुत कुछ उन्नति हो चुकी है, और कई नामी-गिरामी साहित्यिक भी यहाँ पर हो गए हैं, तथापि इसके पूर्व से भी ग्वालियर का भारतीय और हिंदी-साहित्य से घनिष्ठ संबंध रहा है। केवल साहित्य ही क्या, वरन् विविध ललित कलाओं की उन्नति में ग्वालियर ने यथेष्ट हाथ बटाया है।

आधुनिक काल में यहाँ पर हिंदी-साहित्य की चर्चा व कार्य सन् १९०२ से प्रारंभ हुआ। इस वर्ष नागरी-हितैषी नाम की एक सभा जनकगंज स्कूल के अध्यापक और विद्यार्थियों ने अपना हिंदी-वाचन और लेखन सुधारने के हेतु स्थापित की। आगे चलकर, संवत् १९६४ में, उसका हिंदी-साहित्य-सभा में रूपांतर हुआ, और उसके उद्देश्य तथा कार्य-क्षेत्र की मर्यादा बढ़ा दी गई। सभा के प्रयत्न तथा प्रोत्साहन से हिंदी में अच्छे-अच्छे ग्रंथों का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। काशी-नागरीप्रचारिणी सभा का प्रथम-से-प्रथम पदक स्व० गणपति जानकीराम दुबे को 'मनोविज्ञान'-नामक ग्रंथ के लिये ही प्राप्त हुआ। ऐसे ही श्री० ठाकुर सूर्यकुमारजी हिंदी में बालोपयोगी साहित्य 'बालसखा-माला' के द्वारा निर्माण करने में अग्रसर हुए। इसके अतिरिक्त सभा ने लेखकों को प्रोत्साहन देकर 'मनोरंजक ग्रंथ-माला' नाम की एक पुस्तकमाला प्रकाशित करने का कार्य चलाया, जिसमें स्वर्गीय बनवारीलाल तिवारी का 'वीरव्रत'-नामक ग्रंथ, सरदार रामरावकृष्ण जठार का 'अव्यक्त बोध' या 'स्वानंद-साम्राज्य' नामी तत्त्वज्ञान-विषयक ग्रंथ और श्री० सूर्यकुमारजी के बायजाबाई सिंधिया-प्रभृति, इतिहास-प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषों के जीवन-चरित्र विशेष उल्लेखनीय हैं।

ग्वालियर-राज्य में पत्र-पत्रिकाओं की संख्या भी उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। ऐसी दशा में यहाँ साहित्य की अभिरुचि जाग्रत् होने का स्पष्ट प्रमाण अन्य क्या हो सकता है। अब तक राज्य में 'जयाजी-प्रताप'-नामक केवल एक ही हिंदी-समाचार-पत्र निकलता था। आज सौभाग्य का विषय है कि संपूर्ण रियासत में इस पत्र के अतिरिक्त अनेक समाचार-पत्र हिंदी में प्रकाशित हो रहे हैं। उदाहरणार्थ हाल ही में उज्जैन से प्रकाशित होनेवाला 'कल्पवृक्ष' तथा 'खादी-जीवन' और लश्कर से श्री० मार्तंड दामोदर पुस्तके के संपादकत्व में प्रकाशित होनेवाला 'आरोग्य-मित्र' आदि पत्र उल्लेखनीय हैं। इन पत्रों के अलावा इसी वर्ष से यहाँ से महिलाओं के लिये भी 'महिला'-नामक एक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित होने लगी है, जिसका संपादन श्रीमती चंद्रकलासहाय-नामक विदुषी करती हैं। यह सब पत्र स्वावलंबी होकर थोड़े ही काल में अच्छे समाज-प्रिय हो गए हैं। 'आरोग्य-मित्र' हिंदी में अपने रूप का एक ही मासिक पत्र है। इसका उद्देश्य सर्व-साधारण समाज को रोचक लेखों और लघु कथाओं के सहारे स्वास्थ्य के मूल मंत्र बताना है। जयाजी-प्रताप के संपादकों में स्वर्गीय रामचंद्रजी गुप्त का और प्रस्तुत श्री० युधिष्ठिरजी का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने उस पत्र की भाषा और भावों में सराहनीय परिवर्तन कर डाला है।

बंधुओ! हमारे प्रांत के प्रतापशाली महाराजा विक्रमादित्य, मंदसौर के गुप्त सम्राट् तथा राजा भोज-जैसे साहित्य-रसिक राजपुरुष और कवि-कुल-गुरु कालिदास, महाकवि मयूर और राजशेखर-जैसे साहित्य-सम्राटों का परिचय कराने की आवश्यकता नहीं है। पर हिंदी-भाषा के इतिहास की दृष्टि से हमारे लिये कितने गौरव की बात है कि हिंदी-भाषा के आदि कवि 'पुहुप' अर्थात् 'पुष्प' महाशय हमारे ग्वालियर-राज्य के अंतर्गत उज्जैन के ही निवासी थे, जिनका समय ईसवी सन् की ७वीं शताब्दी बतलाया जाता है। वल्लभ-पंथ के अष्ट महाछाप में से गोविंद महाप्रभु आंतरी के निवासी थे। शृंगार-रसाचार्य महाकवि

बिहारीलालजी, जिनके एक-एक दोहे पर एक-एक अशर्फ़ी जयपुर-नरेश जयसिंह द्वारा प्रदत्त होना प्रसिद्ध है, ग्वालियर के क़स्बा गोविंदपुर के निवासी कहे जाते हैं। नरवर के महाराज छत्रसिंह, रामसिंह उनके आश्रित नवाब ईस्वीख़ाँ, चंदेरी के महाराज देवीसिंह, आतरी के गुलाब कवि, उज्जैन के दत्तात्रय, बजरंगगढ़ के श्रीधरजी और प्रसिद्ध ख़याल नाच के रचयिता गुरु बालमुकुंदजी, शाजापुर के 'तुर्राकलँगी'-अखाड़े के प्रचारक श्रीधरजी आदि प्राचीन हिंदी-सेवियों ने हिंदी की जो सेवा की है, वह कभी भुलाई नहीं जा सकती। आधुनिक काल में भी हमारे प्रांत ने उत्कृष्ट संपादक, इतिहासकार, उपन्यास और नाटक-लेखक तथा निबंध-कार हिंदी-जगत् को प्रदान किए हैं, जिनसे हिंदी-जगत् पूर्णतया परिचित है। उदाहरणार्थ स्व० पं० माधवरावजी सप्रे, अमर शहीद श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी आदि और विद्यमान पुरुषों में श्रीवृंदावनलाल वर्मा, श्रीसिद्धनाथ माधव लोंढे आगरकर, श्रीयुत हरिभाऊ उपाध्याय, श्रीयुत बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', श्रीयुत प्रवासीलाल वर्मा आदि सज्जनों के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सब ऐसे सज्जन हैं, जो ग्वालियर के हैं, किंतु इस समय जिनका कार्य-क्षेत्र ग्वालियर-राज्य के बाहर है। इन ग्वालियर के सुपुत्रों ने अपनी प्रतिभा को ग्वालियर-प्रदेश में ही परिमित नहीं रक्खा, किंतु अपनी योग्यता का सिक्का बाहर जाकर भी जमाया। अस्तु।

इस स्थान पर राज्य के दो समाज-सुधार-प्रिय पुरुषों ने हिंदी-भाषा के प्रचारार्थ और एक ऐसी जाति के सुधार के लिये, जो नितांत जंगली जाति है, जो प्रशंसनीय प्रयत्न किए, उनका उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। निस्संदेह उनके यह प्रयत्न देश के अन्यान्य प्रांतों के लिये अनुकरणीय हैं। राज्य के प्रसिद्ध साहित्य-भक्त वाणी-भूषण लक्ष्मणाचार्य और स्व० आत्माराम बापट सूबा ने रियासत के अमझेरा-नामक ज़िले में बसनेवाली भील-भिलाला जाति का सुधार करने में बहुत परिश्रम किया है। यह जाति पहले नितांत जंगली अवस्था में थी, जंगल में फल-फूल और मांसादि खाकर नग्न दशा में रहना और लूट-मार करते फिरना यही इसका मुख्य जीवन-क्रम था, सभ्यता की तो मानो इन्हें गंध भी नहीं थी। यह वही जाति है, जिसमें किसी समय भक्तप्रवरा शबरी-जैसी अपूर्व भक्ति-भाव की दीपिका चमक उठी थी। इसके उद्धार का प्रयत्न उक्त सज्जनद्वय ने पहलेपहल आरंभ किया, और उनके पश्चात् श्रीयुत कृष्णरावजी क़दम सूबा ने इस संबंध में विशेष तत्परता के साथ परिश्रम किया, जिसका यह परिणाम है कि आज भीलों के सैकड़ों युवक शिक्षा का संस्कार पाकर सभ्यता के क्षेत्र में प्रविष्ट हो रहे हैं, अर्थात् ऐसी पिछड़ी हुई जाति में भी हिंदी-भाषा और नागरी-लिपि का प्रचार करने का प्रथम सौभाग्य ग्वालियर-राज्य को ही प्राप्त हुआ है। भील भिलालों के अतिरिक्त इस राज्य के उत्तरी भाग में एक अन्य जंगली जाति है, जिसे 'सहरिया' कहते हैं, और दक्षिण भाग में 'मोघिया' नाम की जाति है, जो सभ्यता में बहुत गिरी हुई थी। ये दोनो जातियाँ अब तक लूट-मार से ही अपनी जीविका चलाती थीं, किंतु अब इन जातियों की शिक्षा के लिये स्थानीय शिक्षा-विभाग से ख़ास-ख़ास पाठशालाएँ खोल दी गई हैं, जिनमें उक्त जाति के बालकों को हिंदी की शिक्षा दी जाती है।

राजदरबार से मोघिया-जाति की एक ख़ास बसा-हत (Colony) मीरकाबाद स्थान पर करा दी गई है, जहाँ के मोघियों में इतना सुधार हो गया है कि उनमें और अन्य ग्रामीण जनता में अब कुछ भेद नहीं दिखलाई देता। इसका प्रधान श्रेय श्रीमंत खासे साहब पवार होम मेंबर तथा श्रीयुत अय्यर महोदय को है।

सज्जनो! उक्त संक्षिप्त विवेचन से आपको ग्वालि-यर तथा ग्वालियर-प्रांत के प्राचीन व अर्वाचीन काल की साहित्य-सेवा का पता चल गया होगा। अतएव हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का यहाँ पर निमंत्रित करना सर्वथा उपयुक्त और योग्य ही था। वास्तव में ऐसे साहित्यिक दोच (?) से आशा ही नहीं, अपितु

विश्वास है कि आप लोग मनोनीत सभापति महोदय के नेतृत्व में ऐसे आयोजन का अवलंबन करेंगे, जिसके द्वारा हिंदी-भाषा का महान् हित होकर इस अधिवेशन के साथ ही ग्वालियर का नाम भी हिंदी के इतिहास में चिरस्थायी हो जाय।

'साहित्य' की व्याख्या

सज्जनो! मैं साहित्य की व्याख्या और तत्-संबंधी चर्चा करके आपका अधिक समय लेने की चेष्टा नहीं करूँगा; क्योंकि वह कार्य मनोनीत सुयोग्य सभापति महोदय तथा इस समारोह में उपस्थित अन्य-अन्य साहित्य-महारथियों का है; पर हमारी आवश्यकताओं के देखते हुए प्रत्येक विचार-शील मनुष्य का कर्तव्य है कि वह तत्संबंधी अपने विचार प्रदर्शित करके विचार-विनिमय के साधन जुटाए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि 'सत्यं-शिवं-सुंदरम्' यही एकमात्र साहित्य की यथार्थ व्याख्या हो सकती है; पर यह ऐसी सरल नहीं, जिससे साहित्य का मर्म सुगम हो जाय। इस कारण इस विषय की कुछ विशेष चर्चा करने की मैं धृष्टता करता हूँ।

साहित्य शब्द इतना सुंदर व प्रयोजक है कि उसी से ही उस शब्द के अर्थ का बोध हो सकता है। साहित्य यह 'सहित' शब्द से बना होकर योगार्थी है। वाक् अथवा शब्द और अर्थ-सहित हो, वह सब साहित्य है। कवि-कुल-गुरु कालिदासजी ने भी साहित्य-देवी को निम्न श्लोक में इसी भावार्थ से नमन किया है—"वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ-प्रतिपत्तये; जगतः पितरौ वंदे पार्वतीपरमेश्वरौ।" या यों कहिए कि भाव व भाषा का पूर्ण सम्मेलन साहित्य है। यहाँ पर साहित्य-शब्द का प्रयोग सामग्री अथवा साधनवाचक नहीं है, किंतु फल-वाचक है। इससे प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या वाङ्मय और साहित्य दोनो शब्द समानार्थी हैं? नहीं, वाङ्मय शब्द विशेष व्यापक है। वाङ्मय में प्रायः सब प्रकार के लेखों का समावेश होता है, किंतु साहित्य में नहीं। साहित्य में सुंदर अर्थ और भाव से संचरित सुंदर शब्द-रचनाओं की अथवा लेखों की अर्थात् रसभरित रचनाओं की ही गणना हो सकती है, अन्य की नहीं। किसी भाषा के विज्ञान आदि विषयक ग्रंथ उसका वाङ्मय कहलाता है, न कि साहित्य। इससे सिद्ध है कि केवल शब्द और अर्थ के योग से साहित्य-सृष्टि निर्माण नहीं हो सकती; किंतु उसके लिये एक और साधन के योग की अपेक्षा होती है, वह है भावों से पूर्ण संचरित वृत्ति। तात्पर्य यह कि जो लेख अथवा रचनाएँ—फिर चाहे वह गद्य में हों या पद्य में—शब्द, अर्थ तथा भाव-संचरित वृत्ति, इन तीन गुणों के योग अथवा तादात्म्य से जो सृष्टियाँ निर्माण होती हैं, वही साहित्य-पदवी को प्राप्त करती हैं।

जैसा कि मैं पहले ग्वालियर-राज्य के साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर कह चुका हूँ, बाह्य जगत् इंद्रियों द्वारा हमारे मन के अंदर प्रवेश करता रहता है, और वहाँ उसका प्रवेश होने पर एक दूसरा जगत् बन जाता है। यह मानसिक जगत् केवल बाह्य जगत् का फ़ोटो यानी चित्र नहीं होता, किंतु उसके साथ हमारा अच्छा-बुरा तथा प्रिय-अप्रिय लगना, हमारा भय-विस्मय, हमारा सुख-दुःख इत्यादि भाव तथा उनसे उत्पन्न होनेवाले विचारों का उस पर रंग चढ़ता है। यह हृदय का जगत् 'क्रिया व प्रतिक्रिया' (Action and reaction) के नियमानुसार बाह्य जगत् में फिर व्यक्त होने की अर्थात् फिर बाहर प्रकट होने की सतत चेष्टा करता रहता है। व्यक्तिगत भाव और भावनाओं से रँगे हुए मानस-जगत् को दुबारा बाहर प्रकाशित करने के लिये उस पर विशेष रंग-पुट देने की अपेक्षा रहती है, क्योंकि वैयक्तिक आंतरिक भाव उस व्यक्ति के हृदय के अति सन्निकट होने के कारण उसे जितना सुस्पष्ट प्रतीत होते हैं, अन्य हृदयों को, जिनका अंतर उसके हृदय की अपेक्षा बहुत दूरी का होता है, उतना ही सुस्पष्ट प्रतीत कराना अर्थात् उनका पुनः प्रकाशन उसके लिये असंभव

हो जाता है। यह रंग-पुट तब तक देना असंभव है, जब तक व्यक्तिगत (Individual and personal) आंतरिक भाव-भावनाओं का विश्व-मानव (Universal and impersonal) मन के भाव और भावनाओं में उत्कर्ष तथा उत्सर्जन न हो जाय। नहीं तो उन भाव-भावनाओं से उस भावधारी मनुष्य का व्यक्तित्व नहीं छूटता, और उन्हें वह दूसरों के हृदयों में पूर्णतया संचारित करा देने के लिये असमर्थ होता है। अतः ऐसे रंग-पुट देने और उसे दुबारा प्रकाशित करने में केवल वे ही महानुभाव सफल होते हैं, जिनकी व्यक्तिगत आंतरिक भाव या भावनाएँ परमोत्कर्ष पाकर विश्व-मानव-मन के भाव व भावनाओं में विलीन हो जाती हैं। इस प्रकार आत्मा की परमोच्च भाव और भावनाओं से रँगी हुई सृष्टि आत्मा के तुल्य 'सत्यम्, शिवम्, मंगलम्' ही प्रतीत होती है। 'हृदय-चित्र' का ऐसा पुनः प्रकाशन 'चित्र, नाद अथवा भाषा' द्वारा ही हो सकता है, अर्थात् भाषा के द्वारा इस तरह पुनः प्रकाशित चित्र ही साहित्य है, और वह 'सत्य, शिव व मंगल'-रूप होता है।

प्राचीन साहित्य

यदि हम प्राचीन हिंदी-साहित्य के इतिहास पर नज़र दें, तो निस्संकोच कह सकते हैं कि उक्त प्रकार का साहित्य हमारी भाषा में वर्तमान है। यहाँ पर हमारे भावी ध्येय को निश्चित करने के लिये हमें अपनी परंपरागत संपत्ति का भी अवलोकन करना आवश्यक है, पर मैं उस विषय के विवेचन में आपका अधिक समय नहीं लूँगा, तो भी संक्षेप में इतना ही कहूँगा कि समाज की आवश्यकता के अनुसार साहित्य-निर्माण होता है। इसी से हमें वीर-गाथा-काल के पृथ्वीराज-रासो, परमाल-रासो, कविवर भूषण की रचना सुजान-रासो-जैसे अपूर्व वीर-रसात्मक काव्य प्राप्त हुए हैं। धार्मिक क्रांति के युग में जहाँ मीराबाई, कबीरदास, नाभाजी, सूरदास, तुलसीदास आदि ने शांत-रस के द्वारा धार्मिक साहित्य की पूर्ति की, वहाँ राजपूताना और बुंदेलखंड के राजा-महाराजों और मुसलमान बादशाहों की विलास-प्रियता के कारण मतिराम, देव, बिहारी, पद्माकर आदि कवियों ने हमारे ललित साहित्य शृंगार-रस के अभाव की भी ख़ूब पूर्ति की। इस प्रकार प्राचीन हिंदी-साहित्य वास्तव में अपूर्व है। उस समय अन्य लौकिक व व्यावहारिक ज्ञान-प्रदायक साहित्य की भी किसी क़दर रचना हुई थी, पर वह अल्प रूप में है।

सारांश यह कि हमारे यहाँ के आरंभिक कवियों ने हिंदी-भाषा को उत्तम ढाँचे में ढाल दिया; भक्त कवियों ने उसमें भक्ति, श्रद्धा, प्रेमादि मानवी और दैवी भाव फूँक दिए, तथा शृंगार-रस के कवियों ने उसको उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण पहनाकर सर्वांग-सुंदर बना दिया। इस प्रकार संपूर्ण रूप से तथा अलंकारादि से युक्त, सर्वांग-सुंदर नवयौवना हिंदी-काव्य-साहित्य-सुंदरी हमारी भाषा में अटल स्थान पा चुकी है।

वर्तमान साहित्य

पश्चिमीय विस्तृत ज्ञान और सभ्यता के समागम से अब हमारी आवश्यकता भी बढ़ गई है, और यद्यपि हिंदी-भाषा के इतिहास की दृष्टि से यह समय Period of transition अर्थात् संक्रमण-युग है, तथापि हर्ष की बात है कि विगत १०-५ वर्षों में हिंदी में आवश्यकताओं के अनुसार विविध साहित्य का भी निर्माण हो रहा है। वास्तव में हमको अपने प्राचीन आदर्श का स्वरूप न बिगाड़ते हुए वर्तमान आवश्यकताओं के अनुसार भावी उन्नति के लिये कुछ पुरानी बातों को भूलना होगा, कुछ बातें औरों से उधार लेकर अपनानी, और कुछ स्वतंत्र रूप में नवीन दृष्टिकोण से प्रकट करनी होंगी। अब हमारी शक्ति वाक्-पांडित्य और निर्वाहोपार्जन में ही व्यय हो जाती है, अतएव इस समय हमको वीर-रस की आवश्यकता नहीं रही। सुख के साम्राज्य में तो नायिका-भेद, शृंगार आदि के चोचले सुहावने लगते

हैं, पर आज देश में लाखों-करोड़ों अध-पेट भूखे रहते हैं। धार्मिक कट्टरता का यह युग नहीं रहा, और भौतिकवाद के शिकंजे में संपूर्ण जगत् दब जाने के कारण हमको अब यूटीलिटी अर्थात् उपयोगितावाद को अपनाना चाहिए, अतः अब नवीन शांत-रस की रचनाओं से, प्राचीन श्रेष्ठ सामग्री के होते हुए, कोई उपकार नहीं हो सकता। तथापि यह भूलना उचित न होगा कि हमको अपनी प्राचीन सभ्यता और आदर्श का स्वरूप कदापि बिगड़ने नहीं देना चाहिए। आर्य-सभ्यता का एकमात्र, आदर्श यह है कि मनुष्य-कोटि पशु व देव-कोटि का सम्मिश्रित तथा माध्यम रूप है। ऐसी दशा में हमारी कोई कृति—चाहे वह साहित्य-विषयक हो या अन्य—ऐसी नहीं होनी चाहिए, जो मनुष्य को देव-कोटि की ओर बढ़ने से रोके या पीछे हटाए।

मैं अपना भाषण समाप्त करने से पूर्व हिंदी-भाषा-संबंधी एक प्रश्न की ओर आपका चित्त आकर्षित करना आवश्यक समझता हूँ। यह मानी हुई बात है कि किसी देश के भाषा-साहित्य की उन्नति उस देश के राजकीय स्थित्यंतरों पर निर्भर करती है। यह स्थित्यंतर हमारे देश को सबसे अधिक देखने पड़े हैं। हमारे यहाँ अँगरेज़ी शासन आरंभ होने के पूर्व का इतिहास हमें यह स्पष्ट बतलाता है कि उस समय हमारे देश पर किसी एक का एक-सा सार्वभौमत्व न रहा, और यदि समय विशेष पर, कुछ काल के लिये, कुछ अंशों में, रहा भी हो, तो भी देश के विभिन्न प्रांतों में अन्यान्य शासक भी बने ही रहे, किंतु अँगरेज़ी-राज्य की स्थापना होने के पश्चात् वह दलबंदी दूर हो गई, और उसकी जगह संपूर्ण देश पर सर्वांग रूप से एक ही का सार्वभौमत्व होकर उसी का प्रांत-प्रांत पर एक तथा समान शासन होने लगा। फलतः विभिन्न प्रांतों में बसनेवाले समाज से प्रांतीयत्व के भेद-भाव उत्तरोत्तर मिटते जाकर उनकी जगह समान भावनाओं की उत्पत्ति होने लगी। थोड़े ही समयमें शांत और सुख के उत्कर्ष के साथ-साथ Means of communication अर्थात् व्यवहार-कार्योपयोगी उपकरणों की वृद्धि और आविष्कार होने लगे। परिणाम यह हुआ कि देश के प्रांत-प्रांत से लोगों के पारस्परिक संबंध बढ़ गए, और उनसे अनायास ही उनके हृदय का द्वैत सामूहिक हित के विषयों में अपने आप नष्ट होने लगा, और उसकी जगह समान भाव और भावनाओं ने दख़ल कर लिया। इसी समान भाव और भावनाओं के संचार से ही आज समस्त भारत में राष्ट्रीयता की कल्पना उठने लगी है, किंतु अभी उसमें कमी इतनी ही है कि समान भाव और भावनाओं के देश-व्यापी संचार के साथ-साथ देश की भाषा भी एक राष्ट्र-भाषा न हो पाई है। भाषा, भाव व भावना के बाह्यांग का अधिकार रखती है, अर्थात् आंतरिक भाव व भावना को भाषा रूपी बाह्यांग की प्राप्ति होना भी अत्यंत आवश्यक है, किंतु यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि राष्ट्रीयता की कल्पना मनुष्य के शरीर की तरह दो पैरों पर ही टिक सकती है। वही दो पैर भावना और भाषा हैं।

खेद है कि देश से भाव और भावनाओं के भेद तो बहुत कुछ मिटते जा रहे हैं, पर अभी भाषा-भेद दूर नहीं होने पाया है। वास्तव में यह हमारी त्रुटि है। मुझे आशा है, इस संबंध में सम्मेलन अवश्य-मेव कोई स्थायी और ठोस कार्य-क्रम निर्धारित करेगा।

इसमें संदेह नहीं कि राष्ट्र के लिये एक भाषा होने की अत्यधिक अपेक्षा है। देश के अधिकांश लोगों की मातृ-भाषा हिंदी होने से राष्ट्र के लिये वही थोड़े प्रयास से एक भाषा हो सकती है। परंतु शर्त यह है कि उसमें प्रांतीयता की संकीर्णता का समावेश न हो। भारत में अँगरेज़ी भाषा राष्ट्रीय भाषा का स्थान पाने की धृष्टता इसी बल पर कर रही है कि उसका रूप प्रांतीय नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं कि मैं यहाँ पर यह प्रतिपादन करना चाहता हूँ कि भारत में ऐसी हिंदी का प्रचार किया जाय, जो देवनागरी में लिखी जाने पर हिंदी कहलाए, और उर्दू-लिपि में लिखी जाने पर उर्दू। किंतु मेरा कहने का अभिप्राय यही है कि

उसमें से हिंदीपन की प्रांतीयता उर्फ़ संकीर्णता निकालकर उसे विशुद्ध हिंदोस्तानी की विशालता प्राप्त करा दी जाय। इसमें हमें संकोच करने का कोई भी कारण प्रतीत नहीं होता। आर्य-भाषा के अब तक के इतिहास की ओर लक्ष्य देने से एक स्पष्ट सिद्धांत यह दृष्टिगोचर होता है कि हमारी भाषा प्राचीन काल से ही काल और परिस्थिति के अनुसार बदलती रही है। जब-जब परिस्थिति-वश लोगों को प्रचलित भाषा का समझना कठिन हो गया, तब-तब वह भाषा ऐसे मिलते-जुलते रूप में परिवर्तित की गई, जिससे बहुजन-समाज उसे भली भाँति समझ सके, और व्यवहार में ला सके। इसके उदाहरण स्वरूप वैदिक भाषा का संस्कृत में, संस्कृत का प्राकृत में, प्राकृत का पाली में तथा पाली का प्रस्तुत प्रांतिक भाषाओं में रूपांतर हुआ। फिर क्या कारण है कि आज की परिस्थिति के अनुसार हम प्रचलित हिंदी को विशेष सरल सीधी-सादी हिंदोस्तानी न बनाएँ, और यह दुराग्रह कर बैठें कि वह सदा के लिये विशुद्ध हिंदी ही बनी रहे? इससे हिंदी का उपकार न होकर उलटे अपकार होना ही अधिक संभवनीय है। कारण, उस दशा में वह राष्ट्र-भाषा का उच्च पद न पाकर सदा के लिये प्रांतीयता के संकीर्ण क्षेत्र में ही फैली रहेगी। मेरी समझ में हमारे स्वभाव की यह inconsistency (असंबद्धता) अत्यंत हानिकारक है। विचार करने की बात है कि हम न केवल किसी काल में भ्रष्ट हुए लोगों को ही शुद्ध कर लेते हैं, बल्कि जन्मजात अन्यान्य मनुष्यों को भी शुद्ध करके हिंदू-समाज में मिलाने को प्रसन्नता-पूर्वक तैयार हो जाते हैं, फिर क्यों न हम अपनी भाषा में अन्य भाषाओं के सरल और सीधे-सादे शब्द, जो सर्व-साधारण के बोल-चाल में रूढ़ हो रहे हैं, उनकी अपने व्याकरण से शुद्धि कर उन्हें समाज की प्रचलित भाषा में मिला लें? इसमें संकोच करने की बात ही क्या है? मेरा तो यह दृढ़ विश्वास ही नहीं, अपितु आप उपस्थित सज्जनों के प्रति ज़ोर देकर कहना है कि यदि हम प्रस्तुत हिंदी को सरल बनाकर उसे सारे भारतवासियों के समझने योग्य करने के लिये कटिबद्ध न होंगे, तो निश्चय ही इसके बराबर हिंदी-भाषा का अपकार दूसरा न हो सकेगा।

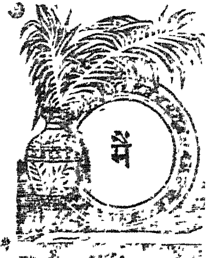
संतोष का विषय है कि हमारे हिंदी-भाषा-भाषी विद्वान् हमारी वर्तमान आवश्यकताओं को जान गए हैं। इसी से निकट भविष्य में हिंदी-भाषा का भंडार उपर्युक्त तथा सर्वांग-पूर्ण होने के चिह्न दिखाई देने लगे हैं। पं० रामचंद्रजी शुक्ल का हिंदी-साहित्य का इतिहास, महामहोपाध्याय ओझाजी और प्रो० बेनीप्रसादजी के ऐतिहासिक ग्रंथ, प्रो० सुधाकरजी का मनोविज्ञान, प्रो० रामदासजी गौड़ और प्रो० भार्गव-जी के वैज्ञानिक ग्रंथ, प्रेमचंदजी के उपन्यास, प्रसादजी के नाटक, गुप्तजी, उपाध्यायजी, पंतजी आदि के काव्य-ग्रंथ आदि आधुनिक हिंदी रचनाएँ; काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन-कार्यालय, प्रयाग और हिंदुस्थानी एकेडेमी-जैसी संस्थाएँ, सुधा, विशाल भारत, माधुरी, सरस्वती-जैसे मासिक-पत्र, प्रताप, कर्मवीर, स्वराज्य, अभ्युदय-जैसे साप्ताहिक तथा आज, लोकमत-जैसे दैनिक जिस भाषा में प्रकाशित हों, उसका भविष्य उज्ज्वल अवश्य है, पर अभी तो हम साहित्य-सर के तट पर ही विचरण कर रहे हैं। हमें उसके अथाह सागर में डुबकियाँ लगाकर अमूल्य सामग्री निकालनी होगी। हमें इच्छा भी है, और उसको कार्य-रूप में परिणत करने की शक्ति का भी अभाव नहीं है। अतएव अब हमको पूर्ण आशा है कि आप सम्मेलन के इस अधिवेशन के मनोनीत सभापति महोदय के नेतृत्व में ऐसी आयोजनाएँ करेंगे, जिससे हिंदी का स्थायी लाभ हो, और वह जगत् की अन्य सर्वांग-पूर्ण भाषाओं का मुक़ाबला कर सके।

अंत में मैं पुनः आप सज्जनों का सादर स्वागत करके प्रार्थी हूँ कि हमारी त्रुटियों के प्रति क्षमा करते हुए सम्मेलन को सफल बनाने में हमारा हाथ बटावें।

कुसुमलता

[श्रीलक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव बी० ए०]

(१)



अब भी एक विश्वविद्यालय का विद्यार्थी हूँ. परंतु मुझमें अब न तो वह विद्यार्थि-सुलभ चंचलता है, और न खेलों में उतनी उत्सुकता। यह सब एक छोटी-सी घटना का फल है, जिसने मेरे जीवन-चक्र को उलटा घुमा दिया है।

तीन वर्ष हुए, जब मैं गर्मियों की छुट्टियों में घर गया था। वहाँ पर मेरी छोटी बहन के विवाह की तैयारियाँ हो रही थीं। मैं भी उनमें भाग बँटाने लगा। निमंत्रण सब संबंधियों के पास पहुँच चुका था, और उनमें से किसी का अकेला तथा किसी-किसी का सपरिवार आना प्रारंभ हो गया था। दूसरे दिन—जब मैं अपने कमरे में बैठा हुआ अपने एक मित्र से यह सलाह कर रहा था कि बारात का स्वागत किस प्रकार किया जाय—एक आवाज़ ने मुझे पीछे की ओर से पुकारा। मैंने मुँह मोड़कर देखा, तो मंत्र-मुग्ध-सा रह गया। वह एक सुंदरी बालिका थी। उसकी बात का उत्तर देने का मुझे ज्ञान न रहा। आह! उसकी सरलता और सुंदरता आज भी मेरी आँखों के सामने नाच रही है। वह विना कुछ उत्तर पाए ही चली गई—अब मुझे होश आया। हृदय में एक अचानक वेदना की उत्पत्ति हुई कि एक सुकुमार वस्तु का मैंने अपमान किया। नीचे उतरा, तो सुनाई दिया—

"क्यों कुसुम! नहीं आते क्या? कुछ काम कर रहे हो?"

अहा! उस वाणी में कितना माधुर्य और कितनी मादकता थी। वह नाम कितना सुंदर और प्रेमोत्पादक था। आगे बढ़ा, तो माता ने कहा—"इतनी देर से बुला रही हूँ। सुनते ही नहीं हो। बारात के लिये कितने पान लगाने होंगे; बतला दो, तो कुसुम वग़ैरा लगा डालें।" "कुछ नहीं।" मैंने कहा—"कोई १२० पान लगाने होंगे, सो तो लग जायँगे; जल्दी की क्या बात है।"

"नहीं।" माता ने कहा—"उस समय फिर जल्दी-जल्दी में ठीक न रहेगा।" "अभी से लगा लिए जायँ, उसमें हानि ही क्या है।" कुसुम ने कहा। इसका विरोध मैं न कर सका, अतः मैंने स्वीकार-सूचक शब्दों में कहा—"अच्छा है, लगा लीजिए।"

विवाह समाप्त हो गया, और सब संबंधी चले गए। कुसुम भी अपनी माता के साथ चली गई, परंतु चलते समय भी मुझे उसके दर्शन न हो सके।

(२)

छुट्टियों के बाद कॉलेज आया। अब न पढ़ने में, न खेलों में और न सिनेमा आदि में ही रुचि रही थी। अपने कमरे में पड़े-पड़े केवल कुसुम का ही चिंतन किया करता था। एकांत ही अच्छा लगता। मित्रों को मेरी इस दशा पर अत्यंत शोक होता था। वे मेरे इस अचानक परिवर्तन का कारण पूछते, और मुझे समझाते, परंतु उन्हें निराश लौट जाना पड़ता।

दशहरे की छुट्टियों में फिर घर आया, तो देखा कि मेरी शादी का बाज़ार गरम है। पिता कहते—"बनारसवाली शादी अच्छी है।" माता इलाहाबाद में मेरी शादी करना चाहती थीं, और भाई साहब अपनी साली से ठीक किए बैठे थे। केवल मेरी सम्मति की देर थी। मैंने पहुँचते ही भाभी से स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मैं विवाह न करूँगा।

इसके पश्चात् कॉलेज में पिता के कई पत्र आए, और एक में उन्होंने लिखा—"बनारस में विवाह निश्चित हो गया है, और बरिच्छा भी रख ली गई

है।" इसके उत्तर में मैंने पिताजी को लिख दिया कि बरिच्छा वापस कर दी जाय। मैं इस पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा कर ही रहा था कि पिताजी की बीमारी का तार आया। मैं तुरंत चल पड़ा, परंतु मेरे घर पहुँचने के पहले ही पिताजी स्वर्गवासी हो गए। अब मेरी दशा इतनी शोचनीय हो गई कि उसका वर्णन करना मेरी शक्ति के परे है।

परीक्षा समाप्त होने के पश्चात् गर्मियों की छुट्टियों में फिर घर गया। वहाँ फिर पिता की स्मृति ने मुझे बेचैन कर दिया। मुझे ऐसा ज्ञात होता था कि मेरा भी अंत शीघ्र ही हो जायगा। मेरा वहाँ रहना असह्य हो गया। इसी बीच में मुझे एक मुक़द्दमे के संबंध में उरई जाना पड़ा, जहाँ मैं एक पुराने संबंधी के यहाँ ठहरा। दूसरे दिन सबेरे एक बालिका मुझे पान देने आई। उसे देखकर मैं अचंभे में रह गया। वह कुसुम ही थी। वह मुझे पहचान गई, और कहने लगी—"आप तो इधर कभी आते ही नहीं हैं।"

"इधर आने का अवसर कम मिलता है।" मैंने कहा।

"कभी-कभी चले आया कीजिए।"

इसके उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही कुसुम चली गई।

मैं वहाँ तीन दिन ठहरा, परंतु उससे बातचीत करने का बहुत कम अवसर मिला। हृदय तड़प रहा था कि अपने मन का संपूर्ण रहस्य खोल दूँ, परंतु इसके परिणाम से बहुत डर रहा था।

वहाँ से गाड़ी चार बजे सबेरे छूटती थी, अतः मैंने शाम को ही सामान बाँध लेना अच्छा समझा। सूटकेस लेने के लिये कमरे में गया, तो वहाँ कुसुम को उपस्थित पाया।

"बी० ए० पास करने के बाद आप क्या करेंगे?" कुसुम ने पूछा।

अब मुझसे न रहा गया, मेरे मुँह से निकल गया—"क्या बतलाऊँ? जिन दो के लिये मेरा जीवन था, उनमें से एक भी न मिला। अब तो मेरा संसार में रहना व्यर्थ है।"

"वे दो क्या हैं?" कुसुम ने पूछा।

'मेरे पिता और एक बालिका, जिसको मैं प्यार करता हूँ।" मैंने उत्तर दिया।

"वह बालिका कौन है?"

"न बतलाऊँगा।" मैंने उत्तर दिया।

इतने में ही उसके चचा आ गए, और मुझे घूमने के लिये पकड़ ले गए। इच्छा तो न थी, परंतु कोई बस न था। सिर में दर्द अधिक था। घूमकर लौटने पर पड़ रहा, और सोने का प्रयत्न करने लगा। झपकी लगी ही थी कि कानों में वही पूर्व-परिचित शब्द पड़े—"शायद सो गए?"

मैं शीघ्र ही उठ बैठा, और देखा कि कुसुम दरवाज़े के पास खड़ी है।

"नहीं तो।" मैंने उत्तर दिया—"अभी जग रहा हूँ।" उसने करुण दृष्टि से मेरी ओर देखा, और कहा—"तो बतला दीजिए वह कौन है?"

मैं केवल साहस इकट्ठा करने के लिये चुप रहा। उसने फिर वही प्रश्न किया। इस बार साहस करके मैंने उत्तर दिया—"तुम्हें दुःख होगा।"

"मुझे क्यों दुःख होगा।" कुसुम ने उत्तर दिया।

"नहीं, होगा।" मैंने भर्राई हुई आवाज़ में कहा।

"अच्छा, नहीं होगा।" कुसुम ने उत्तर दिया—"आप कहिए।" मैं बहुत साहस करने पर भी इसका उत्तर न दे सका। मुझे चुप देखकर कुसुम ने फिर प्रश्न किया।

"अच्छा! कब बतलाइएगा?"

"जब तुम्हारी शादी हो जायगी।" मैंने डरते हुए कहा।

वह चुप रही, परंतु एक मिनट के बाद कुछ ऐसा ज्ञात हुआ कि वह रो रही है, जो उस समय बिलकुल स्पष्ट हो गया, जब उसने कहा—"नमस्ते' और शीघ्र ही चली गई।

निस्तब्धता का राज्य था। मैं जहाँ-का-तहाँ करवटें बदलता रहा, परंतु नींद कहाँ? तीन बजे मोटरवाला जगाने आया, मैं तो पहले ही जग रहा

था । कुसुम के पिता को बुलाया, और एक मिनट बाद देखा, कुसुम स्वयं किवाड़ खोल रही है ।

उसने फिर वही प्रश्न किया—

"कृपया बतला दीजिए वह कौन है ?"

इतनी दयार्द्र वाणी मैंने कभी न सुनी थी । अब मुझसे न रहा गया, और मैंने कह डाला—

"कु...सु...म...ल...ता" और इसका प्रभाव देखने के लिये उसकी ओर देखने से ज्ञात हुआ कि वह रो रही है । मुझसे कुछ न कहा गया, और मेरी आँखों से भी अश्रु-धारा बह निकली ।

कुसुम ने करुण दृष्टि से मेरी ओर देखा और कहा—"आप झूठ बोलते हैं ।"

मैंने आवेग में उत्तर दिया—'क्या तुम्हें अब भी विश्वास नहीं ? अच्छा होता, यदि मुझे तुमको अपना हृदय दिखाने का अवसर मिला होता ।"

"परंतु" कुसुम ने उत्तर दिया—"इसका क्या परिणाम होगा ?"

"ईश्वर जाने ।" मैंने अन्यमनस्क होकर कहा । इतने में उसके पिता उतर आए, और हम लोग मोटर में बैठकर चल दिए ।

(३)

घर पहुँचकर बीमार हो गया, परंतु माता की स्नेहमयी सुश्रूषा से शीघ्र स्वस्थ हो गया । एक दिन जब दुर्बलता की दशा में कुसुम के ध्यान में संलग्न था, अचानक दरवाज़े खुले, और माताजी सम्मुख आ खड़ी हुईं । उनकी आँखों से अश्रु-धारा बह रही थी । मैं बहुत व्याकुल हुआ । आह ! जिस जन्म-दायिनी माता के लिये मैं संसार में असह्य कष्ट भी आनंद-पूर्वक सहन कर सकता हूँ, उनकी ऐसी दशा कैसे देख सकता था । मैंने सजल-नयन होकर पूछा—

"मा ! क्यों रो रही हो ?"

"मैंने सुना है, तुम विवाह नहीं करना चाहते ।" मा ने उत्तर दिया ।

"मा ! यह तो सत्य है ।"

माता ने मेरे ऊपर हाथ रख दिया । आह ! कितना शांतिदायी माता का पाणि था । उस शीतलता का अनुभव मैंने उसी दिन किया । उस पाणि-पीयूष ने थोड़ी देर के लिये मेरी व्याकुलता की ज्वाला को शांत कर दिया । माता ने उसी प्रकार हाथ रक्खे हुए कहा—

"बेटा ! तुम्हें ज्ञात ही है कि मेरी क्या दशा है । बूढ़ी हो गई हूँ । हमेशा बीमार रहती हूँ । केवल एक इच्छा यही थी कि छोटी बहू भी जीते-जागते देख लेती, परंतु देखती हूँ, शायद तुम उस बुढ़ापे के एकमात्र सुख को मुझे न देखने दोगे ।"

इतना कहकर वह रोने लगीं । मैं भी आँसू न रोक सका । दुःखी तो पहले से था ही, माता के चरणों से लिपटकर ख़ूब रोया, परंतु उनकी बात का कोई उत्तर न दे सका । मुझे चुप देखकर माता ने फिर पूछा—

"तो बोलो ! मेरे ऊपर कुछ दया आई या नहीं ?'

अब मुझसे न रहा गया । मैंने सब कुछ कह डालने का दृढ़ संकल्प करके कहा—

"तो मा ! मैं तो उरई में विवाह करूँगा ।"

"ना बेटा ।" मा ने उत्तर दिया—"वहाँ तो किसी प्रकार नहीं हो सकता ।"

"क्यों ?" मैंने पूछा ।

क्या तुम्हें नहीं मालूम कि वे बिरादरी से अलग हैं । उनकी विधवा बुआ एक नाई के साथ निकल गई थी ।" मा ने उत्तर दिया ।

"मा !" मैंने कहा—"तो उसमें उस बेचारी बालिका का क्या अपराध है ? वह तो पवित्र, और शरच्चंद्र के समान निर्मल है ।"

"यह तो सब ठीक है, परंतु बिरादरी तो न मानेगी ।" मा ने उत्तर दिया ।

"तो ऐसी बिरादरी से संबंध रखना ही व्यर्थ है ।"

"परंतु" मा ने करुण स्वर में कहा—"बेटा ! संबंध तो रखना ही पड़ता है ।"

"कुछ भी हो ।" मैंने आवेग में कहा—"मैं तो वहीं विवाह करूँगा । यदि वहाँ न हुआ, तो अविवाहित ही रहूँगा ।"

"तू बड़ा हठी है बेटा ! अब पूछूँगी कि इसमें बिरादरी की क्या सम्मति है।" माता तो इतना कहकर चली गईं, परंतु मेरी दशा शोचनीय थी। विवाह कुसुम के साथ होना एक प्रकार से असंभव ही था। यदि समाज की कुरीतियों को ठुकराकर वहाँ विवाह करता, तो शायद मुझे अपना परिवार सदा के लिये छोड़ना पड़ता, और उसके साथ अपनी स्नेहमयी माता भी। और, यदि ऐसा नहीं करता, तो हृदय की कोमल कल्पना का बलिदान करना पड़ता था। अतः मेरी दशा साँप-छछूँदरवाली थी, परंतु कोई उपाय न समझ में आता था। यही सोचते-सोचते सो गया।

(४)

बड़े दिन की छुट्टियों में फिर मुझे डरई जाने का बहाना मिल गया। वहाँ पहुँचा, तो फिर कुसुम के दर्शन हुए। अब की बार उसमें एक नवीन सुंदरता और स्निग्धता की आभा पाई, जो कदाचित् मैंने पहले कभी न देखी थी। अब वह बालिका नहीं, एक लज्जाशील युवती थी, परंतु उसमें पूर्व सरलता का अभाव न था। पहले की तरह अब की बार भी वही पान देने आई, और निराशा-पूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखकर बोली—

"आप आ ही गए। मुझे तो आशा न थी। शायद बिलकुल भूल गए।"

"नहीं प्रिये !" मैंने उत्तर दिया—"इस जन्म में तुम्हें भूलना तो असंभव है, दूसरे जन्म की नहीं कह सकता। दिन-रात तुम्हारा ही ध्यान किया करता हूँ।"

"ख़ैर, एक ख़ुशख़बरी सुनिएगा ?"

"हाँ, क्यों नहीं।"

"तो सुनिए ! मेरा विवाह बनारस-निवासी बाबू विश्वेश्वरनाथ के सुपुत्र से निश्चित हुआ है। इन्हीं गर्मियों में होगा।"

यह सुनकर मैं मूर्तिवत् बैठा रहा। ऐसी दशा मेरी शायद कभी न हुई होगी। काटो, तो ख़ून नहीं। परंतु सूखी हँसी का प्रयत्न करके बोला—"मुझे यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई ! मेरी तो अब ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वह तुम्हें गृहस्थ-जीवन की कठिनाइयों को वहन करने की शक्ति दे।"

"धन्यवाद भगवन् !" कुसुम ने हँसकर कहा।

"और मुझे पूर्ण आशा है कि तुम सुख-पूर्वक विवाह कर लोगी।" मैंने शांति-पूर्वक कहा।

"कर लूँगी।" कुसुम ने उत्तर दिया, और तीक्ष्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा। वह उस समय ऐसी प्रतीत होती थी, मानो साक्षात् देवी दुर्गा का अवतार हो। मैंने घबराकर पूछा—"क्या ?"

"बतला दूँ।" उसने शीघ्रता से उत्तर दिया।

"हाँ।" मैंने कहा।

वह शीघ्रता से गई, और अपने संदूक़ से एक पुड़िया निकाल लाई, जिसे उसने मुझे दूर ही से दिखाया। वह एक विष की डली थी। उसने हँसते हुए कहा—"अब इसमें विलंब ही क्या। आपके सामने ही क्यों न खा लूँ।" इतना कहकर वह विष उसने मुँह में रखना चाहा, परंतु तब तक मैं वहाँ पहुँच चुका था। मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। कुसुम ने हाथ छुड़ाने के बड़े यत्न किए, परंतु सब असफल हुए। मैंने वह विष की डली छीन ली। इस पर क्रोधित होकर उसने कहा—"क्या आप समझते हैं कि मुझे अब और विष नहीं मिल सकता ? मैं चाहती थी कि आपके सामने ही प्राण छोड़ देती, परंतु अब ऐसा न करूँगी।"

"अच्छा ! प्रतिज्ञा करो कि अब ऐसा कभी न करोगी।" मैंने घबराई हुई आवाज़ में कहा।

"प्रतिज्ञा न करूँगी।" उसने दृढ़ता-पूर्वक कहा—"तुम्हें मेरी ही सौगंध है, जो कभी ऐसा प्रयास करो।" यह सुनकर कुसुम रोने और हाथ जोड़कर अत्यंत करुण स्वर में कहने लगी—

"मेरे देव ! कृपया इतना अत्याचार मेरे ऊपर न कीजिए। मैं अबला हूँ। मेरे एकमात्र अस्त्र

को भी न छीनिए। मेरा जीवन आपके बिना व्यर्थ है।"

मैंने रुँधे हुए कंठ से कहा—

"अच्छा, तो कुछ दिन और ठहर जाओ, फिर यदि कुछ न हो सका, तो दोनो आदमी साथ-साथ विष-पान करेंगे।"

"यदि आप यह आज्ञा के रूप में कहते हैं, तो मुझे शिरोधार्य है। परंतु आपको अपने जीवन का अंत करना अच्छा नहीं।"

कुसुम ने निराशा-पूर्ण होकर कहा।

इतने ही में उसकी माता आ गईं, अतः दूसरे विषयों पर बातचीत होती रही। दूसरे दिन मैं चला आया।

(४)

अब कॉलेज आया, तो मैंने एक प्रकार की शून्यता का अनुभव किया। ऐसा ज्ञात होता था, मानो संसार में मेरा कोई नहीं है। मुझे चारो ओर अंधकार ही दिखाई देता था। घंटों बैठकर सोचा कि इस समस्या को किस प्रकार हल किया जाय, परंतु इससे उलझन ही बढ़ती गई। फल यह हुआ कि मेरी दशा एक उन्मत्त की-सी हो गई। जहाँ पड़ जाता, वहाँ घंटों पड़ा ही रहता। खेलता, तो बिना सुध-बुध के और हँसता, तो हँसता ही रहता। इस सब का कारण केवल एक मित्र को ज्ञात था। उसने मुझे एक मंत्र दिया। उसी दशा में उसी के अनुसार दूसरे दिन फिर उरई पहुँचा। चार बजा था, सब लोग निद्रा-देवी की गोद में अठ-खेलियाँ कर रहे थे। मैंने दरवाज़े पर आवाज़ लगाई। दो मिनट के बाद कुसुम ने दरवाज़ा खोल दिया, मानो वह मेरी प्रतीक्षा ही कर रही थी। उसने 'नमस्ते' किया, उत्तर में मैंने घबराई हुई आवाज़ में कहा —"कुसुम! मैं इस समय बहुत जल्दी में हूँ; एक आवश्यक कार्य-वश तुम्हारे पास आया हूँ।"

"तो क्या काम है? बतलाइए।" उसने उत्तर दिया।

"पहले प्रतिज्ञा करो कि तुम उसे करोगी।" मैंने उसी प्रकार कहा।

यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि कुसुम यह समझी थी कि मुझे कुछ रुपयों की आवश्यकता है, क्योंकि उसे मेरी आर्थिक दशा का पूर्ण रूप से ज्ञान था, और इस विषय पर उससे बातचीत भी हो चुकी थी।

"अच्छा, कर दूँगी।" उसने शीघ्रता से कहा।

"तो मेरी क़सम खाओ कि करोगी।"

"क्या आपको मेरा विश्वास नहीं? मैं आपके लिये क्या नहीं कर सकती?"

कुसुम ने आवेग में कह डाला।

"तो जो तुम्हारा विवाह बनारस में निश्चित हुआ है, वहीं कर लो, उसमें कोई आपत्ति न करो।" मैंने डरते हुए कहा।

यह सुनकर कुसुम फूट-फूटकर रोने लगी, और पृथ्वी पर गिर पड़ी। कदाचित् इस शोक का भार उस नन्हे-से कोमल हृदय पर बहुत अधिक था। मैं भी उसके मस्तक-पर-मस्तक रखकर ख़ूब रोया। जब कुछ ज्ञान हुआ, तो उठ खड़ा हुआ। कुसुम अब भी पड़ी हुई थी। उसका सुंदर मुख पीला पड़ गया था, और आँखें बंद थीं। उसके मुख पर एक विचित्र सौंदर्य की आभा विराजमान थी। मुझसे न रहा गया, मैंने उसके मस्तक का स्पर्श किया। कुसुम उत्तेजित होकर उठ बैठी, और आँखें लाल करके बोली—

"अच्छा! तुमने भी धोखा दिया। तुमसे ऐसी आशा न थी। मैं अब विवाह कर लूँगी, क्योंकि वचन दे चुकी हूँ, परंतु तुम्हें ईश्वर की क़सम है, आज से कभी इस जीवन में मुँह न दिखाना। शायद तुम्हें यह नहीं मालूम कि भारत-ललनाओं का हृदय मनुष्यों-ऐसा नहीं होता।"

इतना कहकर कुसुम शीघ्रता से चली गई।

सबेरा हो चुका था, परंतु अभी लोग सो रहे थे। मैं नित्य-क्रिया से निश्चिंत होकर बैठा, तो ज्ञात हुआ

कि कुसुम बीमार है। ताप-मान प्रतिक्षण गिर रहा है। डॉक्टर बुलाया गया। औषधियों के प्रयोग से कुसुम शाम तक बिलकुल अच्छी हो गई, केवल दुर्बलता शेष थी। जब शाम को मैं उसे देखने गया, तो मुझे देखते ही मुँह फेर लिया, मानो घृणा से। दो एक बार मैंने पूछा भी—

"कुसुम! अच्छी तो हो?"

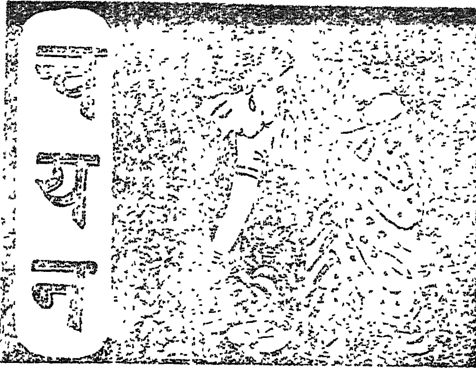
परंतु इसका कोई उत्तर न मिला। मुझे निराश होकर लौट आना पड़ा।

इस घटना को दो वर्ष बीत गए। मैंने अभी तक अपना विवाह नहीं किया, और न करने का विचार ही है। कुसुम को मुँह भी नहीं दिखाया। कम-से-कम इस जीवन में उसकी इस आज्ञा का अवश्य पालन करूँगा।

हिंदी-सेवक का परिवार



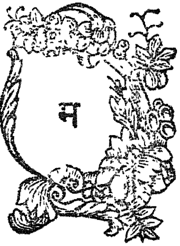
[जिस हिंदी-भाषा के बोलने और समझनेवाले व्यक्ति, इस संसार में, इस समय २०-२५ करोड़ से कम न होंगे, उसी के सेवक का परिवार रोग-ग्रस्त हो भूखों मर रहा है। इस दयनीय दशा का कारण क्या है? —हिंदी-संसार में पुस्तक-प्रेमी पाठकों की कमी। जो संपन्न हैं, वे भी पुस्तक मोल लेकर पढ़ना—अपने घर में छोटी-सी लाइब्रेरी रखना पाप समझते हैं। इस संबंध में हमारा नोट 'विचार' में पढ़िए।—सुधा-संपादक]



१. "'कुछ' का 'सब कुछ', 'सबका' 'कुछ-कुछ'"

अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रं
स्वल्पं तथायुर्बहवश्च विघ्नाः ;
सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु-
हंसैर्यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ।

(पञ्चतन्त्रम्)



नुष्य का मस्तिष्क बड़ा कोमल होता है, उस पर प्रत्येक आकर्षक युक्ति एक गहरी रेखा खींच देती है, उससे आकुल होकर वह चाहता है कि इस युक्ति को मैं पूर्णतया अपना लूँ। अपनाने के लिये मानव-हृदय को कुछ दुर्बलताएँ भी सहारा देती हैं। पहली दुर्बलता है सकल-कला-विशारद बनने की महत्त्वाकांक्षा। इसके कारण वह जिस सुंदर विषय को सामने देखता है, बस उसी का शिकार बन जाता है। अधिकांश व्यक्तियों के कार्य की अपूर्णता का एकमात्र कारण यही दुर्बलता होती है। दूसरी दुर्बलता है प्रतियोगिता। जब वह देखता है कि दूसरा व्यक्ति इस कार्य में सफलता पा रहा है, तब उस सफलता की ओर आँख मूँदकर जुट पड़ता है। वह न तो उस कार्य की असुविधाओं की ओर देखता है, न उस मार्ग में भीड़ हो जाने के परिणाम को, जैसा वर्तमान प्रतियोगिता के युग में उसे पग-पग पर देखने को मिलता है। तीसरी दुर्बलता है उस विषय की बाह्य सुगमता।

इन दुर्बलताओं के अतिरिक्त एक मनोवैज्ञानिक कारण भी होता है, वह है वर्तमान की कटुता। वह स्वभावतः वर्तमान से असंतुष्ट-सा रहता है। वह निन्नानबे के फेर में पड़कर आधी को छोड़कर पूरी को दौड़ता है। उसका परिणाम यह होता है कि वह उस आधी से भी हाथ धो बैठता है। वह कल्पना के कार्य-रूप में परिणत होने का लोभ संवरण करने में असमर्थ-सा हो जाता है। जिस समय उसे यह धुन सवार हो जाती है कि हम अपना व्यक्तित्व अथवा स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करें, वहाँ वह भूल जाता है कि यह नवीन मार्ग को पूरा कर सकेगा या बीच में ही हार-थककर सामाजिक अस्तित्व को भी खो बैठेगा। कभी-कभी वह अपने ज्ञान के विस्तार के लिये भी सब कामों की ओर दौड़ पड़ता है। मन चंचल होता है, अतः मन के साथ वह भी दौड़ लगाने लग जाता है। यह विचार भी उसके हृदय में नहीं आ सकता कि यह मिट्टी का पुतला मन के साथ नहीं दौड़ सकता। मन को शासन में रखने का आलस्य भी उसकी इस प्रवृत्ति का सहायक बन जाता है। मेरी समझ में मन को शासन में न रख सकनेवाले अन्य इंद्रियों के भी वशीभूत होकर अपना सर्वनाश कर बैठते हैं। जिस प्रकार चक्षु, श्रवण आदि इंद्रियों के कारण प्राणी को कष्ट उठाने पड़ते हैं, उससे कहीं अधिक मन के साथ दौड़ लगानेवालों को विपत्तियों

का सामना करना पड़ता है। यह बात कहने में तो कुछ विवाद-ग्रस्त-सी प्रतीत होती है, किंतु है ध्रुव सत्य। इस पर सभी महर्षियों, महात्माओं और कवियों ने ख़ूब प्रकाश डाला है। इस विषय के अनेक उदाहरण तथा कविताएँ संस्कृत, हिंदी एवं अन्य भाषाओं में प्रस्तुत हैं।

अंततोगत्वा यह निर्विवाद सिद्ध है कि मनुष्य को अनेक विषयों पर थोड़ा-थोड़ा ज्ञान हो जाने पर एक किसी विशेष ज्ञान को पूर्ण करने का प्रयत्न करना ही श्रेयस्कर है। सबका सब कुछ ग्रहण करने के फेर में न पड़कर कुछ का ही सब कुछ ग्रहण करे, तो उसको सब कुछ सार्थक हो जायगा।

कहा भी है—

"एकहि साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।"

हमारी एकांत धारणा है कि हरफ़न मौला, सकल-कला-पारंगत होने का आदर्श हमारी अवनति का कारण है। हाँ, ईश्वर की प्रेरणा से यदि कोई व्यक्ति सर्व-गुण-संपन्न हो, तो हम उसे ईश्वर की देन के अतिरिक्त और कुछ नहीं कह सकते।

रामनारायण शर्मा 'किसान-बालक'

× × ×

२. उषा-गीत

स्वर्णिम रथ से वह उतरी।

दीप्त भाल पर भूषित कुंतल,
हीरक-हास-भरी, मृदु, चंचल,
बसी सहज प्राणों में निश्छल,
प्रखर प्रभामय अरुण परी।

विधि के अतुल रूप की प्रतिमा,
स्वर्ग-सदन की विस्मय-गरिमा,
सुंदर, शुचितर, निज ही उपमा—
नग्न गगन में अचिर खड़ी।

गिरीशचंद्र पंत 'अनंग'

× × ×

३. आँखें ❀

जरा भी हम जानने पाए नहीं, इस भाँति ये भेद दुरा ले गईं;
हमसे मिल के हमीं से दगा की, सँग ये अपकार बुरा ले गईं।
फिर होश भी आया, तो क्या करते? जब शांति सभी बिछुरा ले गईं;
बस के मेरी आँखों में आँखें तेरी मन-मानिक मेरा चुरा ले गईं।

हैं जब से इनको छल ले गईं तेरी महाअपकारनी आँखें;
हो गई हैं तब से सब भाँति गरीबिनी मेरी उदारनी आँखें।
दूसरी साध नहीं इनके, अब हो दया की अधिकारनी आँखें,
चाहती केवल प्रेम-भरी मुसकानि की भीख भिखारनी आँखें।

इन्हें भीख भी दे न सके तुम हा! यदि भीख भी माँगने को चलीं ये;
इसी से हो निराश महा मन में प्रतिवाद के आँसुओं रो चलीं ये।

❀ सुधा-संपादक श्रीदुलारेलालजी द्वारा एक चाँदी के गिलास से पुरस्कृत।

अपनी इस हानि से आकुल हो अपने अरमान भी धो चलीं ये ;
कुछ माँगने आईं यहाँ तुमसे, अपना ही यहाँ कुछ खो चलीं ये।

जानतीं थीं जो नहीं दुख को, अब वे दुख-सागर में बहने लगीं ;
ज्ञात जिन्हें थी वियोग-व्यथा नहीं, वे विरहाग्नि में दहने लगीं।
अंत में पीर से धीर न हो सकीं, आँखें अधीरता ही गहने लगीं ;
नीरव भाषा से आँसुओं के मिसि प्रेम-व्यथा की कथा कहने लगीं।

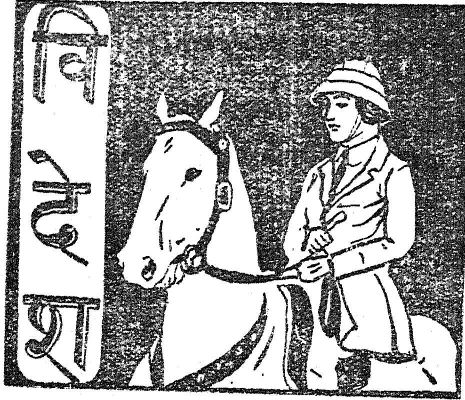
इन्हें व्यर्थ न जानो सखे, इनमें अनुराग की मूक व्यथा भरी है ;
इनकी इस निर्झरिणी गति में कुछ प्रीति की रीति यथा भरी है।
मत ये समझो उर प्रेमियों के यह रत्न की रासि वृथा भरी है ;
इनमें किसी के दुखी जीवन की करुणामयी दीन कथा भरी है।

मानते अश्रु के बिंदु अमोल, जो मोतियों के तुम गाहक होते ;
ठानते ऐसी न निष्ठुरता कभी, जो दुख-सिंधु के थाहक होते।
देख के प्रेमी चकोर की यातना यों परेशान न नाहक होते,
जो तुम भी किसी के मुख-चंद से प्रेम-पियूष के चाहक होते।

दिल में तुम्हें देखती हैं यदि, तो तुम जानते हो यह सो रही हैं ;
तुम्हीं से मिलने की उतावली हैं, इसी से यह बावली हो रही हैं।
बहते हुए अश्रुओं के कणों से मत ये समझो, यह रो रही हैं ;
इन मोतियों से ये तुम्हारे लिये इक मंजुल माला पिरो रही हैं।

मानती सीख हमारी नहीं, हमसे भी बनीं यों वियोगिनी आँखें ;
हैं जपती अँसुवाँन को बेगुन माल सदा यहाँ सोगिनी आँखें।
क्या 'कमलेश' कहे इनको, यह प्रेम के रोग की रोगिनी आँखें ;
बावली-सी हो वियोग में आपके हैं बनी जोग ले जोगिनी आँखें।

'कमलेश'



१. वनवासी नागरिक



स राजनीतिक उथल-पुथल के युग में राजनीतिक विचारों का संघर्ष एक साधारण घटना हो गई है। जिस देश में एक विचार के लोगों के हाथ में ताक़त आती है, वे अपने विरोधी विचारवालों को बिलकुल ही कुचल देना चाहते हैं। इसीलिये जो अपने राजनीतिक विचारों पर दृढ़ हैं, वे राजनीतिक हत्या तक करके भी अपने देश से भाग जाते हैं, और अभी तक अंतर्राष्ट्रीय क़ायदा तो यह है कि राजनीतिक अपराधी कभी किसी राज्य को नहीं लौटाए जाते। इन्हें दूसरे राज्य में शरण मिलती है। सदियों तक फ्रांस के राजनीतिक अपराधी ब्रिटेन में तथा ब्रिटेन के फ्रांस में रहते आए हैं। जब इस प्रकार भागे हुए राजनीतिक अपराधियों की संख्या बहुत बढ़ जाती है, तो एक समस्या उठ खड़ी होती है। बहुत-से देशों में ख़ुद ही बे-रोज़गारी है। वे दूसरों की प्रजा नहीं चाहते। बहुत-से केवल इसलिये कि उनका पड़ोसी राज्य बुरा न माने, राजनीतिक अपराधियों को, या किसी भी कारण स्वदेश छोड़कर भागे हुए लोगों को शरण नहीं देना चाहते। कुछ केवल अपने पड़ोसी या शत्रु के अपराधियों को केवल शरण ही नहीं देते, उनका भरण भी करते हैं। पर इन 'वनवासी नागरिकों' की राष्ट्रीयता का प्रश्न भी खड़ा हो जाता है।

इसलिये यह समस्या राष्ट्र-परिषद् के सामने आई। वनवासियों की संख्या कहीं-कहीं बड़ी दुर्दशा में है। खाने तक का ठिकाना नहीं है। इसीलिये डॉ० नैनसन ने इस प्रकार के 'रिफ़्रिजियों' के लिये एक अंतर्राष्ट्रीय कार्यालय ही खोला है, जिसकी चारो ओर शाखाएँ हैं। सभापति हैं डॉ० मैक्स-ह्यूबर। यह संस्था विश्व-मात्र के rofugees की तालिका रखती है, और उनके हक़ों और दुर्दशा-निवारण का प्रयत्न करती है। राष्ट्र-परिषद् को इस संस्था के कार्यों के प्रति बड़ी सहानुभूति है। परिषद् के प्रस्तावों की (ऑक्टोबर ३२) जो ताज़ी फ़ेहरिस्त हमें प्राप्त हुई है, उसमें इस विषय में बड़ी रोचक सूचना है। असेंबली ने जो प्रस्ताव पास किया है, उसको नीचे दे देना उचित होगा—

"असेंबली,

नानसेन अंतर्राष्ट्रीय कार्यालय की गवर्निंग शाखा की उस रिपोर्ट पर बड़ा संतोष प्रकट करती है, जिसमें गत वर्ष घोर आर्थिक कठिनाइयों के होते हुए भी इस संस्था की विश्व-भर के पीड़ित वनवासियों की सेवा का ज़िक्र है।

"इस संस्था की शाखाओं, विशेषकर उसके

अध्यक्ष डॉ० मैक्स ह्यूबर को, जिनके प्रयत्न से इतना हो सका है, उनकी सेवाओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती है।

"आशा करती है कि सीरिया की इस प्रकार की आबादी तथा उसकी (राष्ट्र-परिषद् की) फ़रमान द्वारा शासन करनेवाली सरकार के बीच कोई समझौता कराने में वह (संस्था) समर्थ होगी।

"इस कार्यालय से प्रार्थना करती है कि आर्मेनियन (अरवियन) गण-तंत्र से ऐसा प्रबंध कर लें कि अन्य देशों में भागकर बसे हुए आर्मीनियनों में से जो वहाँ बसना चाहें, उनकी कम-से-कम २०,००० की संख्या को बसाने का प्रबंध कर दिया जाय।

"डॉ० नैनसन ने अरवियन (Ervian Armenian) गण-तंत्र में इन भागे हुए लोगों को बसाने के लिये जो योजना तैयार की है, उसमें माली सहायता देने का वादा कई देशों की सरकारों ने किया है। उसकी ओर कार्यालय का ध्यान दिलाया जाता है। उन सरकारों से प्रार्थना की जाती है कि जिस प्रकार की मदद का वे वादा कर चुके हैं, वह डॉ० नैनसन को देने की संभावना पर विचार करें।

"रूस की २०,००० जनता भागकर चीन में बसी हुई थी। वहाँ बाढ़ के कारण उसकी बड़ी दुर्दशा हो गई है। समिति इस कार्यालय से प्रार्थना करती है कि वह इनकी हालत सुधारने का उपाय करे।

"अन्य कई संस्थाएँ भी इसी प्रकार के लोगों की सेवा का कार्य कर रही हैं। इनसे प्रार्थना की जाती है कि वे कार्यालय के कार्य में सहयोग दें, तथा कार्यालय से निवेदन है कि वह अपने कार्यों की रिपोर्ट तुरंत असेंबली को दे।

"हरएक देश की सरकार से आग्रह किया जाता है कि यदि कोई आदमी उसके देश में भागकर आवे, और वह उसे अपने यहाँ न रहने देना चाहती हो, तो उसको तब तक अपने यहाँ रहने दे, जब तक वह किसी दूसरे देश से रहने की इजाज़त न हासिल कर ले।"

अस्तु, मैंने प्रस्ताव की दो-तीन धाराएँ विस्तार-भय से नहीं दी हैं। इन धाराओं से दो बातें स्पष्ट हैं—एक तो यह कि परिषद् यह स्वीकार करती है कि राजनीतिक विचारों की विभिन्नता अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से कोई 'अपराध' नहीं है। दूसरे, ऐसे अपराधियों की ज़रूर सहायता होनी चाहिए। और, सहायता का प्रयत्न भी हो रहा है।

पाठकों को स्मरण होगा कि अपने विचारों के कारण ही हमारे देश के राजर्षि महेंद्रप्रताप-ऐसे देश-भक्त विदेशों में नाना प्रकार की यातनाएँ उठा रहे हैं।

× × ×

२. रूस का पुनर्जन्म

मि० जे० विब्सन जार्वी ब्रिटिश साम्राज्य के प्रमुख बैंकरों में से हैं। यूनाइटेड डोमिनियंस ट्रस्ट-नामक प्रमुख ब्रिटिश संस्था तथा बैंकिंग-संघ के वह अध्यक्ष भी हैं, और ब्रिटिश साम्राज्य के सबसे बड़े बैंक, बैंक ऑफ़् इँगलैंड, के चेयरमैन मि० मांटेगू नार्मन से उनका प्रत्यक्ष संबंध भी रहता है। मि० जार्वी उन लोगों में से हैं, जिन्हें पूँजीपति तथा 'अनुदार' कहा जाता है। उन्होंने विश्व की पूरी यात्रा की है, और उसी सिलसिले में रूस भी गए थे। अपनी रूस की यात्रा के जो अनुभव उन्होंने प्रकाशित कराए हैं, वे बड़े रोचक हैं। विशेषकर इसलिये कि न तो वह साम्यवादी हैं, और न उन्हें रूस के साथ किसी प्रकार का पक्षपात हो सकता है। वह लिखते हैं—"रूसियों को या उनकी योजनाओं को तुच्छ महत्त्व मत दो। यह समझने की भी भूल न करना कि सोविएट सरकार टूटनेवाली है। ऐसा हो भी सकता है, क्योंकि इस दुनिया में कोई बात पूरी तरह तय नहीं है। फिर भी ऐसा होने का कोई चिह्न नहीं है। इस समय तो सोविएट सरकार काफ़ी मज़बूत है, और जिनकी पूँजी रूस में छिन गई है, वे चाहे जो कुछ कहें, नई पीढ़ी के हृदय में सरकार और उसकी आर्थिक योजना के प्रति बड़ा उन्माद-पूर्ण उत्साह है।

"इन युवकों और कार्यकर्ताओं में एक ऐसी चीज़ है, जो—बड़े दुःख की बात है—हमारे पूँजी-पति देशों में नहीं है, जिसका नाम है आशा। मैंने ऐसे बहुत-से श्रमिकों के साथ बात की है, ऐसे लोग नहीं, जो मेरे सामने बात करने के लिये लाए गए थे, बल्कि ऐसे लोग, जिनसे सड़क पर, कारख़ानों में, या कहीं इत्तिफ़ाक़न् मुझसे बात हो जाया करती थी, और मैंने यह देखा कि अपने देश तथा देश के भविष्य के प्रति उनके हृदय में धार्मिक उत्साह है।

"हमारी तुलना में वहाँ के आदमी ज़रूर ग़रीब हैं, लेकिन वे कहते हैं कि हम अपने लिये निर्माण कर रहे हैं। आज का रूस एक आत्मा और एक आदर्श का देश है। रूसियों ने ग़लतियाँ की हैं, वे बहुत-सी ग़लतियाँ अभी और करेंगे, पर वे 'समय-समय पर पिछला काम' नहीं कर बैठते हैं। मुझे विश्वास है कि रूस का उद्देश्य ठोस है। मैं उसके सिद्धांत, उसके उपाय या कार्य-प्रणाली या उद्देश्य का समर्थक नहीं हूँ। वह प्रणाली 'सोशलिज़्म' (साम्यवाद) नहीं है, किंतु 'कम्यूनिज़्म' (वर्गवाद), 'राज्य पूँजीवाद' और 'निजी पूँजीवाद' का मिश्रण है; इनमें पिछली मात्रा को विशेष रूप से बढ़ाना चाहिए, और बढ़ाई जा रही है। पर रूस का उद्देश्य समग्र सभ्य जगत् के ध्यान का विषय है, इसमें कोई संदेह नहीं है।"

जो रूस को पतनोन्मुख समझते हैं, वे इन पंक्तियों पर ध्यान दें।

परिपूर्णानंद वर्मा



१. कहानी

रत्न-हार—लेखक, श्रीजगदीश झा 'विमल'; प्रकाशक, पं० जगदेव पांडेय पुस्तक-प्रकाशक तथा विक्रेता मुंगेर, चौक; पृष्ठ-संख्या २०० ; मूल्य १) मात्र ; छपाई और सफ़ाई उत्तम।

विषय-प्रवेश में लेखक ने रोचकता और निपुणता कहाँ तक फैलाई है, इसका निर्णय हम विज्ञ पाठकों पर ही छोड़ देते हैं। पुस्तक का पहला विषय है—'पत्नी के पत्र'। "किसी विधवा के प्रेम में फँसकर पतिदेव अपनी पत्नी को त्याग देते हैं। बेचारी अनाथिनी निर्वासिता अवस्था में भी अपने हृदय की उमंग एवं वेदना को बार-बार लिख भेजती है, किंतु वे पत्र पतिदेव तक पहुँच भी नहीं पाते। अंत में वह अपनी दाई द्वारा पत्र भेजती है, जिसका फल निरर्थक ही होता है। इधर विधवा के प्रेम ने असर फैलाया। फल-स्वरूप विधवा के एक पुत्र पैदा हुआ। लोक-लज्जा से बचने के लिये विधवा अपनी संतान को नदी में फेंकती हुई पुलिस के द्वारा पकड़ी जाती है। वह अपने पाप का भंडा फोड़ करती है। इस लज्जा में पड़कर पतिदेव फाँसी लगाकर मर जाते हैं!"

इसी प्रकार ११ विषयों पर पत्र लिखे गए हैं। पुस्तक अच्छी है।

× × ×

गल्प-मंजरी—संग्रहकर्ता, 'श्रीसुदर्शन'; प्रकाशक, पंजाब-संस्कृत-पुस्तकालय, सैदामिट्ठा, लाहौर ; मूल्य २॥) ; पृष्ठ-संख्या २६६।

"जैसा कि यह युग कहानियों का है।" इसी-विचार से प्रेरित होकर संग्रहकर्ता ने हिंदी के सिद्ध-हस्त एवं सुप्रसिद्ध लेखकों की जीवनी-सहित कहानियाँ संग्रह की हैं। पुस्तक वास्तव में हिंदी-साहित्य का अनुपम ग्रंथ-रत्न है। परिचय का ढंग आलोचना की कसौटी पर कसा गया है, यह मुझे खटकता है। अधिकांश गल्पें सुंदर हैं।

× × ×

२. कविता

सुहाग—लेखक, श्रीमाहेश्वरीसिंह 'महेश'; प्रकाशक, श्रीअनूपलाल मंडल साहित्यरत्न, युगांतर साहित्य-मंदिर, अयोध्यागंज बाज़ार, पूर्णियाँ; मुद्रक, श्रीप्रवासीलाल वर्मा मालवीय, सरस्वती-प्रेस, काशी; पृष्ठ-संख्या ३७ ; मूल्य ।); छपाई-सफ़ाई सुंदर तथा रंगीन।

समालोच्य पुस्तक में लेखक की २५ उत्तमोत्तम कविताओं का संग्रह है। विषय-सूची के पूर्व श्री-'सुधांशु' द्वारा लिखित छ पृष्ठों में सुहाग का 'अंतर्दर्शन' है, जिसमें 'सुधांशु'जी ने 'सुहाग' का सत निकालकर छोड़ा है, अर्थात् 'सुहाग' की विशेष उल्लेखनीय उद्धरण-योग्य पंक्तियों को अपने

अंतर्दर्शन ही में उद्धृत कर दिया है। निस्संदेह उपर्युक्त पद्यों में लेखक ने हृदय खोलकर रख दिया है। संगृहीत पद्यों में प्रायः सभी पद्य पाठ-योग्य हैं। संकलित पद्यों की कितनी ही पंक्तियाँ तो मनन-योग्य भी प्रमाणित होने योग्य हैं, अतएव, सच पूछिए तो, पुस्तक नव-विवाहित दंपति के बड़े काम की है। अस्तु। आशा है, नवयुवक-समाज में पुस्तक का अच्छा प्रचार होगा। लेखक महोदय एक होनहार कवि प्रतीत होते हैं। पुस्तक का मूल्य 'चार आना' कुछ अधिक मालूम होता है।

× × ×

प्रेम-प्रलाप—रचयिता, श्रीकपिलदेव नारायणसिंह 'सुहृद्'; प्रकाशक, श्रीराजकृष्ण-भवन, सिताब दियारा (छपरा); गुटका साइज़; मूल्य ।); छपाई-सफ़ाई सुंदर; पृष्ठ-संख्या ६४।

समालोच्य पुस्तक लेखक की स्फुट कविताओं का संग्रह है। पुस्तक उलावाधीश श्रीचंद्रचूड़देवजी के अनुज—श्रीचंद्रमौलीजी—के कर-कमलों में समर्पित हुई है, तदनुसार प्रारंभ में श्रीचंद्रमौलीदेवजी का मनोहर चित्र भी है। तदनंतर लेखक का चित्र है। पाठ्य विषयों के प्रारंभ में लेखक द्वारा 'मेरी दो बातें'-शीर्षक एक निबंध है।

पुस्तक दो विभागों में विभाजित है—(१) एक संचित संपत्ति, तथा (२) कुछ बिखरी विभूतियाँ। दोनो में लेखक ने अपना अ-कवि-हृदय का दिग्दर्शन बड़ी ख़ूबी से कराया है। कुछ पंक्तियाँ वास्तव में अच्छी बन पड़ी हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में बहुत-सी भूलें भी रह गई हैं। आशा है, लेखक महोदय भविष्य में इस प्रकार की भूलों से अपने को वंचित रक्खेंगे। इसमें संदेह नहीं कि पुस्तक पठनीय है।

'विह्वल'

× × ×

३. नाटक

बाण-शय्या—लेखक और प्रकाशक, श्रीलक्ष्मणप्रसाद 'मित्र' अमीरगंज, महमूदाबाद (अवध); पृष्ठ-संख्या १३८; मूल्य ॥); छपाई-सफ़ाई सुंदर।

इस नाटक के नायक हैं भीष्मपितामह। 'मित्रजी' ने उनकी कर्तव्य-परायणता, अद्वितीय भक्ति, आदर्श वीरता तथा भगवान् कृष्ण की भक्त-वत्सलता, धनुर्धारी अर्जुन की बाण-वर्षा, धर्मराज युधिष्ठिर की धर्म-प्रियता आदि सुपात्रों की योग्यताओं का दिग्दर्शन भली भाँति कराया है। साथ ही आपने कॉमिक दृश्यों को चित्रित करने में भी अपनी बुद्धि की प्रखरता का काफ़ी परिचय दिया है।

शायद यह आपका प्रथम प्रयास है, अतएव कहीं-कहीं त्रुटियों का रह जाना अनिवार्य है। आशा है, पुस्तक की पुनरावृत्ति में सुधार दी जायँगी। पुस्तक पठनीय एवं संग्रह योग्य है।

सखीचंद

× × ×

४. पत्र-पत्रिकाएँ

'वैशाली' की पहली संख्या—श्रीमान् बाबू भुवनेश्वरसिंहजी 'भुवन' मेरे बहुत दिन के परिचित मित्र हैं। आपने छोटी ही अवस्था में हिंदी-साहित्य-जगत् में प्रतिष्ठा लाभ की है। आप कवि भी हैं। कई वर्ष पहले आपने 'लेख-माला'-नामक एक त्रैमासिक पत्र निकाला था, जिसमें विद्यापति के विषय में मुझे अपना एक लेख प्रकाशित कराने का सौभाग्य मिला था। किसी कारण वह पत्र बंद हो गया। अब आप 'वैशाली'-नामक एक मासिक पत्र निकाल रहे हैं, जिसकी प्रथम संख्या आपने मेरे पास भेजकर मुझे अनुगृहीत किया है। मैं इस संख्या पर दो बातें कहता हूँ—

पद्य

(१) 'वैशाली के आँगन में' कविता बहुत रोचक है। मैं इसके कवि प्रोफ़ेसर मनोरंजनदासजी को मुबारकबादी दिए विना नहीं रह सकता।

(२) कविवर मैथिलीशरण गुप्त प्रसिद्ध कवि हैं, और हम-सरीखे नगण्य व्यक्तियों की प्रशंसा या निंदा

के अतीत हैं। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि आपकी 'भगवान् से' कविता में छायावाद की जो झलक मिलती है, वह मनोहर है।

(३) श्रीयुत सत्यव्रतजी शर्मा की 'बिछुड़न की घड़ी' भी सरस है।

(४) 'वह स्मृति' के लेखक स्वयं संपादक भुवनेश्वरसिंहजी हैं। आपने इस कविता में अच्छी कवित्व-शक्ति का परिचय दिया है।

(५) कविरत्न केदारनाथजी के 'मेघ-महल' में कल्पना का चमत्कार दिखाया गया है।

(६) श्रीयुत उमाशंकरप्रसादजी की 'भारती' पढ़ने से सूरदास की 'डोलति बाँकी कुंज-गली' का-सा झंकार मिलता है।

(७) स्वर्गीय रत्नाकरजी की 'गंगा-गरिमा' हिंदी-साहित्य का एक अमूल्य रत्न है।

गद्य

(१) श्रीयुत मदनप्रसादजी के 'पाटलिपुत्र का प्राचीन साहित्य'-शीर्षक लेख में असाधारण खोज का परिचय मिलता है। यह लेख अनेक महत्त्व-पूर्ण तथ्यों से भरा है, और लेखक ने इसकी रचना में बहुत कृतित्व दिखलाया है।

(२) श्रीयुत 'मनोज' की 'वैशाली' भी तथ्य-पूर्ण और सुलिखित है।

(३) 'स्पोर्टस्मैन'-लिखित हास्य-रसात्मक 'विनोद-विंदु' की रचना का ढंग निराला है। लेखक आजकल के मासिक पत्रों में प्रकाशित लेखों के संपूर्ण अभिज्ञ और वक्रोक्ति के उपयोग में सिद्ध-हस्त मालूम होते हैं।

(४) 'हिंदी में अनुवाद'-शीर्षक लेख में छवि-नाथजी पांडेय ने कुछ सच्ची बातें कही हैं, जो बहुत अनुवादकों को रुचिकर न होंगी।

(५) 'दीनता का पुरस्कार'-नामक छोटी कहानी के लेखक श्रीयुत रामधारी प्रसादजी ने ज़मींदारों के अत्याचारों का एक सजीव चित्र हमारे सामने रख दिया है।

(६) 'आधुनिक भारतीय भाषाओं में मिथिला-भाषा का स्थान'-शीर्षक लेख का प्रतिपाद्य है मिथिला-भाषा आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं में सबसे प्राचीन है। लेखक श्रीयुत भोलालालदासजी का मातृ-भाषा-प्रेम सराहनीय है। उन्होंने अपनी उक्ति के समर्थन के लिये बहु-संख्यक प्रमाण उपस्थित किए हैं, जिनसे उनकी विद्वत्ता का परिचय मिलता है। वह कहना चाहते हैं कि 'वर्णन-रत्नाकर'-प्रणेता ज्योतिरीश्वर ठाकुर १४वीं शताब्दी के मध्य या प्रथम भाग में विद्यमान न थे, प्रत्युत उन्होंने उस समय से १०० वर्ष पहले नरसिंहदेव के राजत्व-काल को अलंकृत किया था। मैं किसी पक्ष का अवलंबन न कर यह अवश्य कहूँगा कि लेखक की शोध तथा शक्ति का यथेष्ट परिचय मिलता है, और उनकी युक्तियों का खंडन आवश्यक है।

किंतु परिताप का विषय है कि लेखक में इतनी शक्ति रहने पर भी वह मिथिला-भाषा की उन्नति के प्रति ध्यान न देकर हिंदी-भाषा की सेवा कर रहे हैं। वह ख़ुद ही कहते हैं कि मिथिला-भाषा के प्रति मैथिलों की अक्षम्य उदासीनता के कारण उस भाषा की खेद-जनक दुरवस्था हो रही है। उनका कहना ठीक है। इस परिस्थिति के परिवर्तन की ओर मैथिलों का उद्यम जितना होना चाहिए, उसके शतांश का एकांश भी नहीं है। अवहेलन के कुछ कारण कदाचित् ये हैं—(१) मिथिला-भाषा-भाषियों की संख्या बहुत कम है। (२) उनमें प्राचीन काल से संस्कृत की चर्चा बहुत होती आई है। उसी अनुशीलन में वे बराबर लगे रह गए—उन्होंने मिथिला-भाषा का अनुशीलन निष्प्रयोजन समझा। (३) विद्यालयों में मिथिला-भाषा की पढ़ाई न होना। (४) उनमें मिथिला-भाषा के स्थान में हिंदी की पढ़ाई जारी रहना। (५) इस कारण युवकों का हिंदी के प्रति अनुराग। (६) देवनागरी-लिपि को अपनाना। इन सबों का नतीजा यह हुआ कि मैथिल में हिंदी व्याकरणिक तथा शाब्दिक प्रयोग होने लगे, और अधुना लोग हिंदी-भाषा में पत्र-व्यवहार करने लगे हैं।

इस जगह यह प्रश्न उठ सकता है कि "आप बंगाली होकर हिंदी की चर्चा क्यों करते हैं, और हिंदी में लेख क्यों लिखते हैं?" मेरा उत्तर यह है कि मैं हिंदी के साथ-साथ बँगला की चर्चा भी करता हूँ, और बँगला में भी लेख और पुस्तकें लिखता हूँ। यदि मैं बँगला न भी लिखूँ, तो बँगला की रक्षा के लिये इस समय २० हज़ार लेखक मौजूद हैं।

पाठकगण यह न समझें कि मैंने मैथिली की ग्लानि के अभिप्राय से इन बातों की अवतारणा की है। मैं मिथिला-भाषा का प्रेमी हूँ, और उस भाषा-भाषियों का शुभ-चिंतक हूँ। परिस्थिति ही ऐसी आ पड़ी है कि मिथिला-भाषा को अब शीघ्र बँगला, हिंदी, मराठी इत्यादि की समता में लाना कठिन है। किंतु हताश होना उचित नहीं। हिंदी-भाषियों ने अदम्य उत्साह के द्वारा हिंदी-भाषा की विस्मयकर उन्नति की है। मिथिला-वासियों को भी अपनी भाषा की श्री-वृद्धि के लिये ऐसी ही अदम्य और प्राण-पण-चेष्टा करनी चाहिए।

अंत में बहुत हर्ष की बात है कि 'वैशाली' का अभ्युदय हुआ है, और उसकी प्रथम संख्या ऐसी सुंदर सामग्रियों का भांडार है। संपादक महोदय को संपूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। मैं इस पत्र की दीर्घजीवन-कामना करता हूँ।

नलिनीमोहन सान्याल
(एम्० ए०, भाषातत्त्वरत्न)



इस स्तंभ में हम हिंदी-प्रेमियों की जानकारी और सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई पुस्तकों के नाम देते हैं। पिछले महीने में निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—

(१) 'ख़वास का ब्याह' (उपन्यास)—लेखक, श्रीचतुरसेन शास्त्री; संपादक, श्रीदुलारेलाल भार्गव सुधा-संपादक ; मूल्य १), सजिल्द १॥)

(२) 'धात्री-शिक्षा' (स्त्रियोपयोगी)—लेखक, श्रीअत्रिदेव गुप्त वैद्य विद्यालंकार ; संपादक, श्रीदुलारेलाल भार्गव सुधा-संपादक ; मूल्य २), २॥)

(३) 'ब्रह्मचर्य-साधन' (नवयुवकोपयोगी)—लेखक, श्रीचतुरसेन शास्त्री ; संपादक, श्रीदुलारेलाल भार्गव सुधा-संपादक ; मूल्य ॥), १)

(४) 'रेखागणित के खेल' (बालकोपयोगी)—लेखक, श्रीजी० पी० श्रीवास्तव ; मूल्य ॥=), १=)

(५) 'हिंदू-पति प्रताप' (जीवनी)—लेखक, श्रीगणेशदत्त शर्मा गौड़ 'इंद्र' ; मूल्य ।)

(६) 'दीपमालिका' (कहानियाँ)—श्रीपं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी ; मूल्य १॥)

(७) 'आविष्कार की कहानियाँ' (बालोपयोगी)—लेखक, श्रीजगपति चतुर्वेदी ; मू० ॥।)

(८) 'चित्र-पट' (कहानियाँ)—लेखक, श्रीबा० शंभुदयालु सकसेना ; मूल्य १॥)

(९) 'कार्लमार्क्स' (जीवनी)—लेखक, श्रीसत्यभक्त ; मूल्य ।॥)

(१०) 'तुलसी-सतसई' (काव्य)—टीकाकार, श्रीअच्युतानंद ; मूल्य १॥)

(११) 'तीस दिन में अँगरेज़ी'—लेखक, एच्० एम्० झा० बी० ए० ; मूल्य १)

(१२) तीस दिन में संस्कृत'—लेखक, श्रीहरीमोहन झा एम्० ए० ; मूल्य १)

(१३) 'डीवेलेरा' (जीवनी)—लेखक, श्रीनारायणप्रसाद अरोड़ा ; मूल्य १)

(१४) 'कन्या-दर्पण' (स्त्रियोपयोगी)—लेखक, आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री ; मूल्य १)

(१५) 'अमीरों के रोग' (चिकित्सा)—लेखक, आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री ; मूल्य १)

(१६) 'विप्लव' (निबंध)—लेखक, श्रीराधामोहन गोकुलजी ; मूल्य १)

(१७) 'विद्यासागर' (जीवनी)—लेखक, श्रीपं० शिवप्रसाद पांडेय बी० ए०, एल्० टी० ; मूल्य ।)

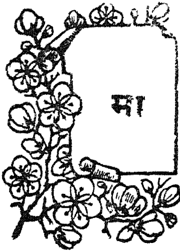
(१८) 'शिवाजी' (जीवनी)—लेखक, श्रीपं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी ; मूल्य ।)

(१९) 'श्रीकृष्ण' (जीवनी)—लेखक, श्रीपं० विद्याभास्कर शुक्ल ; मूल्य ।)

(२०) 'अकबर' (जीवनी)—लेखक, पं० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' बी० ए० ; मूल्य ।)



१. भारतीय और अँगरेज़ी-साहित्य



नवीय जीवन और विकास की तरह भारतीय साहित्य का अँगरेज़ी-साहित्य से पृथक् अपना विकास है। पृथ्वी की जो दो मुख्य सभ्यताएँ हैं, उनमें एक है भारतीय, दूसरी ग्रीक। अँगरेज़ी-साहित्य की दीवार ग्रीक-बुनियाद पर ही उठी हुई है, इस तरह कि जिस लाटिन का प्रभाव तमाम योरप पर पड़ा, उससे प्रसूत रोमन सभ्यता ग्रीक सभ्यता से प्रभावित हुई। इसीलिये अँगरेज़ी के विख्यात आलोचक मैथ्यू आरनाल्ड की मृत्यु होने पर किसी ने कहा था, हमारा अंतिम ग्रीक जा रहा है।

ग्रीक सभ्यता बहिर्मुख, देश-विजय-कामिनी, स्वामिनी बनने की लालसा रखनेवाली थी। अरस्तू की महाप्रतिभा महावीर सिकंदर को इसी तरफ़ उत्तेजना देती है। भारत के महानीतिज्ञ चाणक्य चालों से उसे मात देते हैं या नहीं, यहाँ हम यह नहीं कहेंगे। कहना यह है कि चाणक्य भारतीय साहित्य के कोई सर्वोत्तम विकसित रूप नहीं, पर अरस्तू अपने साहित्य का है।

ग्रीकों के बाद रोमनों का विकास और भी बहिर्मुख होता है। इसके बाद योरप के अपर देशों का क्रम-जागरण, उत्थान, संगठन और शक्ति-संचय। समुद्र की शत-शत तरंगों, आवर्तों से चक्कर खाती हुई बालुका-राशि जैसे जमकर निस्तल गर्भ से द्वीपाकार उठती है, इँगलैंड के साहित्य-संगठन का इतिहास ऐसे ही अनेक कारणों से बदलता, बनता हुआ एक पुष्ट शक्ति से जीवन प्राप्त करता है। परंतु प्राणों में उसी ग्रीसियन सभ्यता की बहिर्मुख धड़कन बनी हुई है। ग्रीक सभ्यता के उसी समय से, जब से पाश्चात्य सभ्यता इतिहास के जड़ प्रमाण पर विश्वास रखकर निर्मित हो रही है, भारत क्रमशः गिरता हुआ भी अपनी विशेषता में आज भी भारत है। शताब्दियों के आक्रमण, वैदेशिक प्रभाव उसकी विशेषता से उसे नहीं च्युत कर सके।

महारानी एलिज़ाबेथ के समय अँगरेज़ी-साहित्य की मौलिकता के सूर्य का उदय के बाद पहला पहर था। किसी-किसी ने इसे साहित्यिक दूसरा युगांतर, किसी-किसी ने तीसरा माना है। महारानी विक्टोरिया के समय अँगरेज़ी-साहित्य के काव्य का अंतिम विकास हुआ। पंडितराज जगन्नाथ के बाद जैसे अब तक संस्कृत-साहित्य में कोई कवि नहीं माना जाता, वैसे ही इधर रॉबर्ट ब्रिजेज़-जैसे सुकवियों का विकास होने पर भी टेनिसन से ही अँगरेज़ी-साहित्य की कविता का समय समाप्त कर दिया जाता है। फ़्रांस के राष्ट्र-विप्लव के बाद धीरे-धीरे योरप की समृद्ध शक्तियों में गद्य का

प्राधान्य हो चला। ज्यों-ज्यों साधारण-जनों की जीवन-समस्याएँ जटिल होती गईं, त्यों-त्यों पश्चिमी साहित्य में गद्य की धाक जमने लगी। एक कारण और है। वह है व्यवसाय। व्यवसाय में पद्य की नहीं, गद्य की ज़रूरत है। ज्यों-ज्यों योरप की जातियाँ भिन्न देशों पर व्यावसायिक प्रभाव फैलाने लगीं, त्यों-त्यों उन्हें भावनाओं से अधिक उपकरणों की आवश्यकता मालूम दी। पद्य के बाद गद्य और गद्य के बाद विज्ञान का यही क्रम-माहात्म्य है। अँगरेज़ी-साहित्य की भी योरप के अपर उन्नत साहित्यों की-सी दशा रही। परंतु कुछ श्रेष्ठ आलोचकों ने वैज्ञानिक उन्नति का मूल पद्य बतलाते हुए पद्य के भीतर से वैज्ञानिकों को बढ़ने की सलाह दी। पद्य की लड़ियाँ पेश कर-कर उन लोगों ने सिद्ध भी किया कि ये जो भावनाएँ कवियों ने पहले लिखी हैं, आज वैज्ञानिक उन्हें ही जनता के उपयोग के लिये यंत्रों द्वारा सिद्ध कर रहे हैं। उन्होंने कहा, जब और भी बड़े-बड़े सत्य पद्य में आविष्कृत होंगे, तब विज्ञान और अधिक तरक़्क़ी करेगा। बात यह कि साहित्य की पहली सुखद सृष्टि, पद्य की इस समय भी अँगरेज़ी और अपर योरपीय साहित्य को ज़रूरत है। यहाँ आलोचकों द्वारा मार्के की एक बात हम प्रत्यक्ष करते हैं, वे पद्य की आवश्यकता वैज्ञानिक सिद्धि के लिये बतलाते हैं, जो भौतिक, बहिर्मुख और जड़ है। इस प्रकार, हम देखते हैं, ग्रीक सभ्यता के प्रारंभ से ही योरपीय सभ्यता अनेकानेक धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, दार्शनिक और साहित्यिक विवर्त्तनों से स्वरूप बदलती हुई भी उसी एक विजय-लक्ष्य से लक्ष्मी प्राप्त करने की ओर बढ़ रही है। अँगरेज़ी-साहित्य के भीतर भी यही धारा प्रवाहित है।

भारतीय साहित्य इससे बिलकुल विपरीत है। उसका सर्वोत्तम विकास जैसे संसार को देखना ही नहीं चाहता। ऐतिहासिक युग से ही देखिए, बुद्ध, शंकर, रामानुज, कबीर, तुलसीदास, चैतन्यदेव, रामदास आदि-आदि भारत के अंतिम श्री-काल से इस पराधीनता के मुसलमान-शासन तक साहित्य, समाज और दर्शन की वही प्राचीन अंतर्मुखी गति रखते हैं। मुसलमान-सभ्यता के पूर्ण प्रभाव के समय संस्कृत को छोड़कर जनता की भाषा में जातीय महत्त्व भरकर भीतर से प्राणोत्सर्ग के लिये भी तैयार करनेवाले इन महात्यागी तपस्वी साधु साहित्यिकों ने कितना बड़ा विक्रम प्रकट किया। तमाम प्रांतीय भाषाएँ जीवित हो उठीं। पुनः-पुनः फ़ारसी को मुँह-तोड़ जवाब मिलने लगा। ब्राह्मणगण जंगलों के बेल, बेर, कैथे, आम, महुए और शाक भोजन कर, शास्त्र छोड़ शस्त्र धारण कर, समाज को साथ ले अपनी शीर्ण दुर्बल बाहुओं से धर्म की विशेषता बचाने लगे। फ़ारसी के साथ पूरा असहयोग किया। व्रजभाषा के यौवन की पूर्ण ज्योतिर्मयी मूर्ति के साथ सखियों की तरह मैथिली, बँगला, गुरमुखी, गुजराती, मराठी आदि प्रांतीय भाषाएँ हँस-हँसकर भारतीय सुषमा भरने लगीं। जनता अपनी ही भाषा के भीतर से सजग हो गई। बौद्ध काल से आज तक योरपीय इतिहास से कम परिवर्तन भारत में नहीं हुए। पर भारत भारत ही रहा। जब से अँगरेज़ी सभ्यता फैली, हम देखते हैं, फिर वही प्राचीन क्रम प्रचलित है। परमहंस श्रीरामकृष्णदेव, ऋषि दयानंद, स्वामी विवेकानंद, महर्षि देवेंद्रनाथ, स्वामी रामतीर्थ आदि महापुरुष अपने-अपने साहित्य तथा साधना के भीतर से भारत का वही लक्ष्य निर्देश करते हैं। अँगरेज़ी-साहित्य ने संसार को छा लिया है। पहले जो प्राण कवियों ने उसमें भरे थे, उनका पूर्ण परिचय उसके जातीय रूप में लक्षित है। उसी प्राण-शक्ति से अँगरेज़-जाति संसार में प्रसरित हुई। ग्रीक सभ्यता-काल से ही योरपीय जातियाँ आगे चलकर प्रसार करती हैं, ऐसा ही अँगरेज़ी-साहित्य ने किया। वैदिक सभ्यता-काल से भारतीय पीछे जाकर, जन्म-मृत्यु का रहस्य-द्वार पारकर, पूर्णत्व प्राप्त करते हैं। अँगरेज़ी-साहित्यिक प्रसार से भारतीय निरोध कम नहीं, कदाचित् अधिक महत्त्व रखता है, अधिक प्रसरित होता है, क्योंकि

पूर्णता प्राप्त करता है, जहाँ से प्रसार के लिये फिर जगह नहीं रह जाती। इसीलिये यहाँ का साहित्य बिलकुल दूसरे ढंग का है। आज के साहित्य में हमें दो महापुरुष मिलते हैं—विश्वकवि रवींद्रनाथ और महात्मा गांधी। दोनो संसार-प्रसिद्ध अपनी-अपनी तरफ़ से सर्वोत्तम मनुष्य हैं। परंतु इनमें भी हम भारत का पूर्व-कथित सिद्धांत पाते हैं। रवींद्रनाथ की प्रतिभा पद्य के भीतर जो जातीय सामंजस्य करती है, उसका उद्गम वेदांत है, वेदांत के साथ कुछ पश्चिमी विचार-धाराओं को मिलाना चाहें, तो मिला सकते हैं, पर मुख्य वेदांत ही है। इसी ज्ञान की विजय-वैजयंती योरप और विश्व के आकाश में उड़ रही है, अनेकानेक छंदों में, रूपों में यही एक तत्त्व अपनः वैचित्र्य दिखा रहा है। महात्माजी की अपार सहानुभूति, अहिंसा-वाद में जो जैन या वैष्णव-धर्म परिदृष्ट है, उसका भी प्रपात महाज्ञान वेदांत-समुद्र से मिलता है। कारण, किसी भी खंड-सत्य का उद्गम महासत्य ही है। महात्माजी के साथ टॉलस्टॉय या किसी साहित्यिक ऋषि की विचार-धारा मिलती हो, इससे कोई ज़रूरत हमें नहीं; हम उनका केवल माध्यम देखना चाहते हैं, उसका विकास और परिणति। एक बात और। जहाँ अँगरेज़ी-साहित्य को कवियों की ज़रूरत पड़ी है भौतिक विज्ञान की उन्नति के लिये, वहाँ भारतीय साहित्यिकों को आवश्यकता हुई है संसार को यांत्रिक उन्नयन से निरस्त करने की। ऐसा ही रवींद्रनाथ भी कहते हैं, और महात्मा गांधी भी। भारतीय साहित्यिक यांत्रिक उन्नयन से संसार की यंत्रणा का ही विस्तार देखते हैं। इसी-लिये उन्होंने यहाँ बराबर इसका विरोध किया। मय दानव बड़ा ही सुंदर कारीगर था। पर भौतिक उन्नति करनेवाला होने के कारण वह दानव कहलाया।

अँगरेज़ी-साहित्य का जो विकास बहिर्मुख होने के कारण हुआ, भारतीय वैदिक साहित्य का वही अंतर्मुख होकर हुआ था, और इसी प्रकार फिर होगा। अपनी शक्ति का पता अपने ही भीतर है, बाहर नहीं। इसलिये यहाँ अंतर्मुख होने की शिक्षा दी गई। अँगरेज़ कवि जो बड़ी-बड़ी कल्पनाएँ कर गए हैं, इसका कारण उनका अंतर्मुख होना था। पर इसका दुरुपयोग यदि मनुष्यों को भौतिक साधनों की उन्नति द्वारा किया जायगा, तो गत महायुद्ध की तरह कोई विस्फोट अवश्य होगा। हम जड़-विज्ञान और धर्म-विज्ञान के समानार्थ पर फिर लिखेंगे। यहाँ सूत्र-रूप इतना ही कहते हैं, दोनो में पूर्ण सामंजस्य है। भारतीय साहित्य इससे भी बहुत आगे है। इसीलिये शक्ति के परिचय का यथासाध्य वर्जन है। भारतीय स्वतंत्रता साहित्यिक पूर्णता है, जिसके भीतर विश्व का समस्त साहित्य भरा जा सकता है। पीछे चलने पर, मन के उद्गम का पथ पकड़ने पर, सभी गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं। हम अभय होकर अपनी सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक दशा दूसरे देशों से और अच्छी तरह सुधार सकते हैं।

× × ×

२. युद्ध-ऋण

ऋण की सभी देशों और सभी समाजों ने निंदा की है। माँगने के बराबर कोई भी पाप नहीं समझा जाता, परंतु फिर भी लोग माँगने से बाज़ नहीं आते, न ऋण लेने से ही हाथ खींचते हैं। ऋण-कारी ऋण निकालने के लिये बड़े-बड़े असत्यों का आश्रय लेता है; अपनी इस दुर्वृत्ति को छिपाने के हेतु बड़े-बड़े रूपक रचता है। जिस प्रकार अपना दुष्कार्य साधने के लिये शैतान भी शास्त्रों के प्रमाणों की शपथ उठाता है, उसी प्रकार ऋणकारी भी ऋण निकालने के कारणों को बतलाता, और अपनी दयनीय स्थिति का रंगीन चित्र खींच संसार की सहानुभूति को अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है। संभव है, कभी ऋण लेना आवश्यक ही हो जाता हो, परंतु अधिकांश लोग झूठे आदर्शों के पीछे भी ऋण निकाला करते हैं, ऐसा बहुत मनुष्यों का विचार है।

पिछले महायुद्ध में संसार की लगभग सभी महती शक्तियों ने ऋण लिया और दिया है। ऋण देनेवाली शक्तियों में सर्वप्रथम स्थान अमेरिका का है। इसने सब मिलाकर लगभग २,०५५ लाख पौंड मित्र राष्ट्रों को बतौर ऋण दिया है। अमेरिका के उपरांत इँगलैंड का नंबर है। इसने भी योरप की अन्य शक्तियों को लगभग १,६०० लाख पौंड उधार दिया है। फ़्रांस ने भी सहायक राष्ट्रों को लगभग ४६० लाख पौंड क़र्ज़ दिया है। फ़्रांस और इँगलैंड, दोनो को अमेरिका का ऋण चुकता करना है। इटली भी अमेरिका का क़र्ज़दार है। इस ऋण का कुछ भुगतान प्रतिवर्ष दिसंबर में किया जाता है। पिछले साल संसार की आर्थिक स्थिति में घोर संकट होने से अमेरिका ने अपने क़र्ज़दारों को वर्ष-भर की मुहलत दे दी थी, पर इस साल वह अपना पूरा-पूरा रुपया चाहता है। इँगलैंड, फ़्रांस आदि ऋणकारी देशों का कहना है कि ऋण चुकाने की तिथि अभी और बढ़नी चाहिए। उनका यह भी कथन है कि युद्ध-ऋण की समस्या पर पुनः भली भाँति विचार किए जाने की आवश्यकता है। पर अमेरिकावाले इन विचारों से सहमत नहीं, वे पाई-पाई अपना भुगतान चाहते हैं। शेक्सपियर के प्रसिद्ध पात्र यहूदी शायलाक के सदृश वे अपना सेर-भर मांस लेने पर अड़े हैं। इस समय अमेरिका की बन आई है, वह अपने क़र्ज़दारों को हर तरह दबाना चाहता है।

इँगलैंड और फ़्रांस के इस कथन में बहुत कुछ सत्य है कि जिस स्थिति और जिस भाव में ऋण लिया गया था, उसमें आज बहुत परिवर्तन हो गया है। सन् १९२३ में इँगलैंड ने ३३० लाख पौंड क़र्ज़ के भुगतान में दिए। पौंड के भाव में घटी होने से यही संख्या १९३१-३२ में ३३८ लाख पौंड हो गई, और इस समय यही बढ़कर लगभग ५६० लाख पौंड हो गई है। अर्थ-शास्त्रियों का कहना है कि आजकल के ये ५६० लाख पौंड सन् १९२३ में ५०० लाख पौंड के बराबर मूल्य रखते! इस प्रकार यदि देखा जाय, तो इँगलैंड को एक प्रकार से इस समय अपने नियत अंश से लगभग तिगुना अधिक देना पड़ रहा है। यही दशा बहुत कुछ फ़्रांस, इटली, ऑस्ट्रिया और जर्मनी की भी है।

संसार की आर्थिक स्थिति ठीक करने के लिये बहुत-से विद्वानों का यह विचार है कि युद्ध-ऋण अब आगे न भुगताया जाय, और अमेरिका अब तक जो कुछ उसे मिल चुका है, उसी में संतोष करे। परंतु अमेरिकावाले इस मत को स्वीकार नहीं करते। अमेरिकावालों ने हाल ही में ब्रिटेन के नोट का जो उत्तर दिया है, उसमें यह स्पष्ट रूप से कह डाला है कि वे ऋण को माफ़ नहीं करना चाहते। साथ-ही-साथ यह भी कहा है कि वे इसके भी इच्छुक नहीं हैं कि संसार की आर्थिक स्थिति आज की-सी ही बनी रहे। अतः वे ऋण में कुछ छूट कर देने का तो विचार रखते हैं, पर यह चाहते हैं कि इस छूट से उन्हें जो हानि हो, उसकी किसी अन्य रूप में पूर्ति की जाय। दूसरे शब्दों में अमेरिका यह चाहता है कि यदि उसकी वस्तुओं को विदेशों में खपत का सिलसिला बँध सके, तो वह छूट के प्रश्न पर विचार करे। तात्पर्य यह कि वह ख़ाली माफ़ी देना नहीं चाहता।

इधर इँगलैंड ने अपना प्रत्युत्तर भी भेज दिया है। परंतु हमारा तो ऐसा विचार है कि इन उत्तर-प्रत्युत्तरों से कुछ होने का नहीं, और अमेरिका १५ दिसंबर के दिन अपना पूरा-पूरा ऋणांश ले ही लेगा। ऋणदाता के आगे शक्तिशाली ऋणकारी को भी दबना पड़ता है। इँगलैंड, फ़्रांस, इटली, ऑस्ट्रिया, जर्मनी, बेल्जियम आदि सभी तो ऋण में दबे पड़े हैं। इस ऋण का कारण बहुत-से विगत महायुद्ध को बताते हैं, परंतु कुछ मनुष्य इसका कारण उस तृष्णा को समझते हैं, जो साम्राज्य-वृद्धि और सम्मान-वृद्धि के आदर्शों पर आश्रित है। इस वर्ग का यह मत है कि यदि ये ऋणकारी देश सच्ची शांति के प्रेमी होते, तो न महायुद्ध छिड़ता, न ऋण निकालने की नौबत ही आती। इसका यह भी कहना है कि अमेरिका को

चाहिए कि यदि ये योरपीय राष्ट्र भविष्य में युद्ध न करने का प्रण करें, तो वह इनके क़र्ज़ को माफ़ कर दे। परंतु माफ़ी देने से पूर्व सभी शक्तिशाली राष्ट्रों को भली भाँति निःशस्त्र करे, तत्पश्चात् स्वयं भी शस्त्र-रहित हो जाय। इसी क्रम से संसार में शांति स्थापित होने की संभावना है, और यह निर्विवाद है कि शांति के आगमन से भविष्य में युद्ध-ऋणों की आशंका भी न रहेगी। क्या यह सपना कभी सच्चा हो सकेगा?

× × ×

३. फ़ारस की तैल-समस्या

फ़ारस में पेट्रोल और मिट्टी के तेल का व्यापार एक कंपनी के हाथ में है, जिसका नाम ऐंग्लो-परशियन ऑयल-कंपनी है। यह कंपनी कई वर्षों से फ़ारस में काम करती है। सन् १९०१ में इस कंपनी ने फ़ारस की सरकार से ६० वर्ष का ठेका ले लिया था। इस कंपनी को इस व्यापार से करोड़ों रुपयों की आय होती है, और इसकी गणना संसार की प्रसिद्ध तेल-कंपनियों में है।

फ़ारस में जब से श्रीरज़ाख़ाँ पहलवी का आधिपत्य हुआ है, तब से वहाँ सब ओर जागृति के चिह्न दिखाई दे रहे हैं। टर्की के ग़ाज़ी मुस्तफ़ा कमालपाशा की भाँति श्रीरज़ाख़ाँ भी अपनी स्थिति हर तरह सुधार रहे हैं। इन्होंने सेना में बहुत कुछ परिवर्तन कर डाले हैं। शासन-व्यवस्था भी बहुत कुछ बदल डाली है, और अब नौ-सेना-विभाग का सुसंगठन कर रहे हैं। हाल ही में इन्होंने कई व्यापारी तथा युद्ध के जहाज़ इटली में तैयार करवाए हैं, और अपने यहाँ के कई जवानों को नौ-सेना की शिक्षा के लिये फ़्रांस और इटली भेजा है। इनके पास इस समय एक छोटा-सा जहाज़ी बेड़ा हो गया है।

इस समय अधिकांश जहाज़ यद्यपि लकड़ी, कोयले और भाप द्वारा चलाए जाते हैं, तथापि धीरे-धीरे यह मत ज़ोर पकड़ रहा है कि कोयले के स्थान में तेल का प्रयोग होना चाहिए। आजकल के कई जहाज़ तेल द्वारा ही चलाए जाने लगे हैं। जहाज़ों के अतिरिक्त मोटर, हवाई जहाज़, मशीन आदि के लिये भी तेल की बड़ी आवश्यकता है, अतः तेल की महिमा बढ़ती जा रही है। इस समय जिस देश के पास तेल है, वह बहुत कुछ धनी है, और उसकी ऋद्धि दिन-दूनी हो रही है। फ़ारस यह सब समझने लगा है। उसके पास तेल है, परंतु वह उसका पूरा-पूरा उपयोग नहीं कर सकता, क्योंकि तेल का सारा कारोबार ऐंग्लो-परशियन कंपनी के हाथ में है। इससे वह कुछ झिझक उठा है, और हाल में उसने इस कंपनी को यह नोटिस दे दिया है कि उसने उसका ठेका तोड़ दिया है। ठेका तोड़ देने का अर्थ है कि फ़ारस-सरकार तेल के ऊपर या तो अपनी निगरानी रक्खेगी, या किसी अन्य कंपनी को ठेका दे देगी। इस धमकी से ऐंग्लो-परशियन कंपनी में बड़ी खलबली मच गई है। कंपनी का कहना है कि फ़ारस-सरकार उसके ठेके को छीन नहीं सकती। उसने विज्ञप्ति की है कि सरकार अपने नोटिस को वापस ले ले। इस कंपनी के मामले पर पार्लियामेंट में किए गए एक प्रश्न के उत्तर में केप्टेन इडेन ने कहा कि ब्रिटिश सरकार के राजदूत ने फ़ारस-सरकार की इस धाँधली का तीव्र विरोध किया है, और यह भी कहा है कि ब्रिटिश सरकार यथासंभव सभी प्रकार से कंपनी के स्वत्वों की रक्षा करेगी। केप्टेन इडेन ने यह भी बतलाया कि कंपनी और फ़ारस-सरकार के बीच जो ६० वर्ष का ठेका हुआ था, उसमें यह कोई भी शर्त न थी कि ठेका ६० वर्ष से पूर्व रद्द कर दिया जा सकेगा। फ़ारस-सरकार ने उत्तर दिया है कि इसका उसे पूरा अधिकार है कि वह जब चाहे, ठेके को रद्द कर दे। इस पर इँगलैंड ने उसे चेतावनी दी है कि यदि १९ दिसंबर तक फ़ारस-सरकार अपने नोटिस को वापस न ले लेगी, तो वह सारा मामला हेग के अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के सामने रख देगा। देखें, इस चेतावनी का फ़ारस के ऊपर क्या प्रभाव पड़ता

है ! फ़ारस-सरकार और कंपनी का यदि परस्पर कुछ ठीक समझौता न हुआ, तो परिस्थिति के भयंकर हो जाने की भी बहुत कुछ संभावना है ।

× × ×

४. हिंदी-सेवक का परिवार

इस शीर्षक का एक चित्र इस बार सुधा में प्रकाशित किया गया है । इससे पाठकों को मालूम हो जायगा, राष्ट्र-भाषा की सेवा के लिये जिन लेखकों, पत्रकारों और प्रकाशकों ने अपना जीवन दिया है, उनमें से अधिकांश की आर्थिक दशा अब भी इतनी ही बिगड़ी हुई है !

राष्ट्र को ज़ोरदार बनाने का पहला साधन राष्ट्र की भाषा है । जिस तरह माल का एक देश से दूसरे देश को चालान हुआ करता है, ख़रीद-फ़रोख़्त जारी रहती है, जहाज़ और रेल इसके साधन बनते हैं, उसी तरह भावों का भी एक देश से दूसरे देश को चालान आया करता है, और उसका साधन भाषा है । भावों के रत्न भाषा की थैली में बंद होकर संसार के साहित्य में आते-जाते रहते हैं । हिंदी अभी दूसरी-दूसरी स्वतंत्र जातियों की भाषाओं के मुक़ाबले बहुत ही पिछड़ी हुई है । इसीलिये उसमें अच्छे-अच्छे ग्रंथों का, जो अन्य भाषाओं में प्रकाशित हैं, अनुवाद जारी है । स्वतंत्र रूप से भी अपर साहित्य से भाव-राशि लेकर लेखकगण हिंदी में नवीन भावनाएँ भर रहे हैं । इसी तरह एक पराधीन भाषा उठ सकी है, और उठेगी । संसार के बड़े-बड़े व्यवसायियों से भी इन लेखकों का दर्जा बढ़कर है । क्योंकि वे माल, वस्तुओं, रत्नों या कल-पुर्ज़ों के व्यवसायी हैं, पर ये भावों के, जिनके द्वारा जाति को असली जीवन प्राप्त होता है, जिनके द्वारा सदियों तक जाति जीवित रह सकती है । कुछ वर्ष पहले, कानपुरवाले साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर स्वागताध्यक्ष की हैसियत से भाषण करते हुए, हमारे सर्वमान्य आचार्य पूज्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने राष्ट्र का सबसे पहला आवश्यक अंग भाषा को बतलाया है । यदि बोलनेवाली शक्ति अपनी नहीं, तो समझना चाहिए कि राष्ट्र की शैशवावस्था ही है । इससे अनुमान किया जा सकता है कि हिंदी के सेवकों का स्थान कितना महत्त्व रखता है ।

जो देश स्वतंत्र हैं, वहाँ के लेखकों की आमदनी एक राजा की आमदनी के मुक़ाबले की है । उनकी प्रतिष्ठा उनके देश के बड़े-बड़े राजपुरुष तो करते ही हैं, वे विदेशों से भी निमंत्रित होते हैं, और वहाँ के बड़े-बड़े प्रतिष्ठित घराने के मनुष्य उनका आदर-सत्कार करते हैं । पर हमारे साहित्यिकों की दशा इतनी गिरी हुई है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । दूसरे देशों से इज़्ज़त प्राप्त करना तो दरकिनार, वे घर में भी भर पेट भोजन नहीं पाते, अपनी ही भाषा के बोलनेवाले प्रतिष्ठित लोग उन्हें अवज्ञा की दृष्टि से देखते हैं । हिंदी-लेखकों का परिवार किसी किसान के परिवार से भी बदतर है । जाड़े में वस्त्र नहीं, धूप से बचने को छाता नहीं, वर्षा में छत टपकती है, लड़के अशिक्षित—शिक्षा के लिये अर्थ नहीं, कन्या बीस साल तक अविवाहिता बैठी—ब्याह कर देने को दहेज़ की कमी । कहाँ तक कहें, बीमारी में इलाज हो, इसके लिये भी पैसे नहीं । किसी तरह क़लम की कमाई से परिवार का पेट पाल रहे हैं । यह है राष्ट्र-भाषा के सेवकों का हाल !

जिस हिंदी को बोलने और समझनेवालों की बीस-पचीस करोड़ के लगभग जन-संख्या हो, जो हिंदी राष्ट्र-भाषा है, उसी के सेवकों का यह हाल ! यहाँ हमारी मनोवृत्ति का सच्चा रूप खिंचा हुआ है, यहाँ हम देश का सच्चा चित्र देख लेते हैं । जिन्हें कुछ शिक्षा मिली है, वे अँगरेज़ी के प्रकाशकों को पुस्तकें ख़रीद-ख़रीदकर प्रोत्साहन देते हैं, और हिंदी के लिये दुःख के साथ समालोचनात्मक एक वाक्य दे देते हैं—हिंदी में कुछ नहीं है ! हिंदी में कुछ हो कैसे ? जब आप लोग किताबें ख़रीदें, पढ़ें, लिखें, लेखकों, प्रकाशकों और आपकी आत्मा को साहित्यिक प्रोत्साहन प्राप्त हो, तब न मौलिक उत्कृष्ट साहित्य

तैयार हो ? अभी तो अगर कोई परिश्रम करके कोई उत्कृष्ट ग्रंथ लिखता भी है, तो पाठकों के अपार हिंदी-ज्ञान के कारण पुस्तक प्रकाशक के यहाँ रक्खी ही रह जाती है, फिर दोबारा वह भी ऐसी पुस्तक निकालने की क़सम खा लेता है ! फलतः लेखक और साहित्य की क्या दशा रहती है, आप अनुमान कर लीजिए। हिंदी के प्रेमियों से हमारी कर-बद्ध प्रार्थना है, वे हिंदी के प्रसार और प्रचार के लिये पूरा-पूरा प्रयत्न करें। राष्ट्र की यही सबसे बड़ी सेवा है। और, यह तभी संभव है, जब हिंदी-भाषा-भाषी संपन्न व्यक्ति पुस्तकों को मोल लेकर पढ़ना सीखें, इधर-उधर से माँगकर नहीं। अपनी आय का बीसवाँ हिस्सा भी यदि आप पुस्तकें ख़रीदने में लगाएँ, तो फिर हिंदी की उन्नति विद्युत्-वेग से हो सकती है।

× × ×

५. काव्य और कला

हिंदी में अभी काव्य के साथ कला का घनिष्ठ संबंध बहुत कम देखने को मिलता है। कुछ ही कवियों की रचनाओं में इसके दृष्टांत मिलते हैं। कला कविता-कुमारी के अंगों को नए यौवन की तरह ऋजु, पृथुल, सुंदर, मृदुल और लावण्य-युक्त कर देती है। किस तरह की व्यंजना में कैसे शब्द होने चाहिए, कहाँ चित्र का दर्शन ठीक होगा, परिणति किस काव्य की कैसी होनी चाहिए, यह सब समझाना और ठीक करना कला का काम है।

हिंदी में अनेक प्रकार की असुविधाएँ कवियों को हैं। मुख्य तो शब्दों की कर्ण-कटुता है। शब्दों को काव्योपयोगी बनाने में ही कुल शक्ति ख़र्च हो जाती है, बल्कि पंक्तियों को मधुर करने से पहले ही शक्ति का भाप उड़ जाता है। फिर अपर-अपर अंग जो पुष्टि के लिये बच रहते हैं, वे बचे ही रह जाते हैं। एक और मुख्य कारण दो-एक को छोड़कर कवियों में चिंताशीलता की कमी है। अध्ययन-विशेष नहीं। संसार के काव्य-साहित्य और कला का बहुत थोड़ा ज्ञान। फिर भी हिंदी का काव्य-साहित्य बहुत कुछ अग्रसर है—

"उदासी घोर निशि में छा रही थी,
पवन भी काँपती थर्रा रही थी।
विकल थी जाह्नवी की वारि-धारा,
पटककर सिर गिराती थी करारा।
घटा घन घोर नभ में घिर रही थी,
बिलखती चंचला भी फिर रही थी।
न थे वे बूँद, आँसू गिर रहे थे,
कलेजे बादलों के चिर रहे थे।
खड़ी शैव्या वहीं पर रो रही थी,
फटी दो टूक छाती हो रही थी।"

शैव्या जब श्मशान-घाट पर अपने मृत पुत्र को लेकर पहुँची, तब प्रकृति में कैसी उदासीनता 'सनेही'-जी ने प्रदर्शित की है! शैव्या की करुणा के साथ समस्त प्रकृति का रूप करुण है,—यह कला है।

"भालो बेसे सखि, आदरे जतने
आमार नामटी लिखियो,
तोमार मनेर मंदिरे;
आमार पराणे जे गान बाजिछे
ताहार तालटी सिखियो,
तोमार चरण-मंजीरे।
आमार लतार एकटी मुकुल
भुलिया तुलिया राखियो,
तोमार अलक-बंधने;
आमार स्मरण शुभ सिंदुरे
एकटी विंदु आँकियो,
तोमार ललाट-चंदने।"

(ऐ सखि, सप्रेम, सयत्न, सादर मेरा नाम अपने मनोमंदिर में लिख लेना ; मेरे प्राणों में जो गीत बज रहा है, उसकी ताल अपने चरण-नूपुरों में सीखना। मेरी लता से एक कली भूलकर तोड़कर अपने अलक-बंधन में खोंस लेना, मेरी स्मृति के शुभ सिंदूर से अपने ललाट-चंदन में एक बिंदु बैठा लेना।)

बँगला के भीतर कला का बड़ा ही मनोहर विकास हुआ है। छंद, भाषा और भाव सभी आकर्षक हैं।

"तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन,
गंध-हीन तू गंध-युक्त बन,
निज अरूप में भर स्वरूप मन,
मूर्तिवान बन निर्धन !"

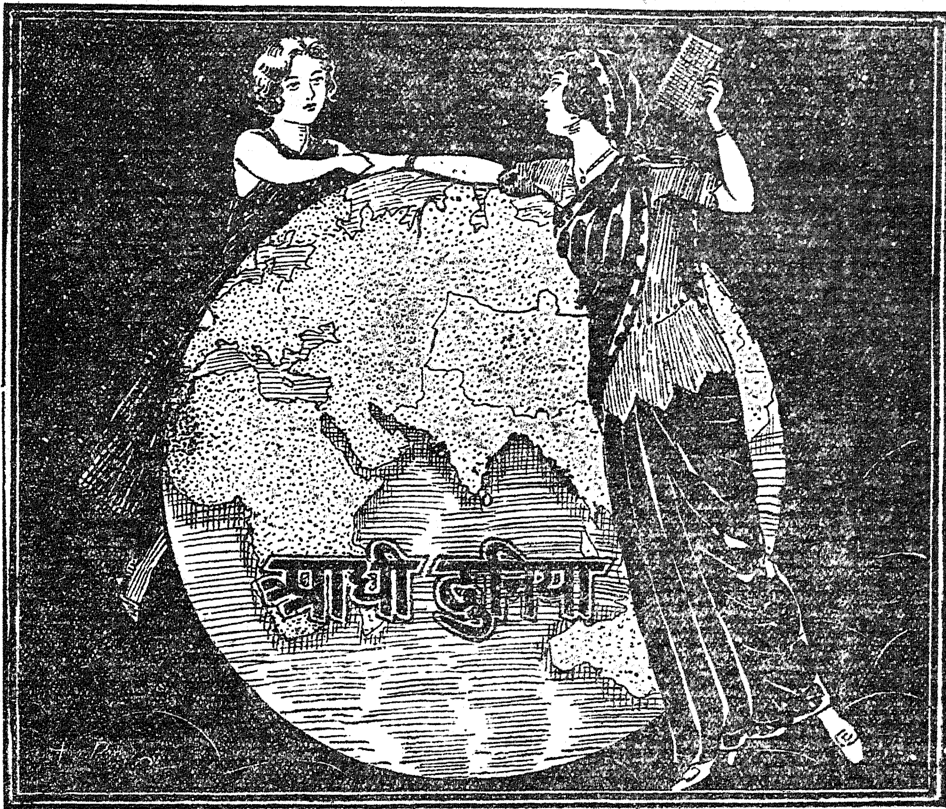
—सुमित्रानंदन पंत

यहाँ पंतजी की कला का सुंदर विकसित रूप मिलता है। मुक्ति के बाद बंधन के लिये यह तर्क काव्य-संगत है कि निर्धन, तू अनेकानेक रूपों से मूर्तिमान् बन। 'मूर्तिवान' व्याकरण की दृष्टि से त्रुटि है। काव्य की दृष्टि से अच्छा लगता है। पर 'मूर्तिमान्' हमें अधिक पुष्ट और सुंदर जान पड़ता है।

"दृगों की कलियाँ नवल खुलीं।
रूप-इंदु से सुधा-बिंदु लह
रह-रह और तुलीं।
प्रणय-श्वास के मलय-स्पर्श से
हिल-हिल हँसतीं चपल हर्ष से,
ज्योति-तप्त-मुख तरुण वर्ष के
कर से प्रखर धुलीं।
नहा स्नेह का पूर्ण सरोवर
श्वेत-वसन लौटीं सलाज घर,
अलख सखा के ध्यान लक्ष्य पर
डूबीं अमल घुलीं !"

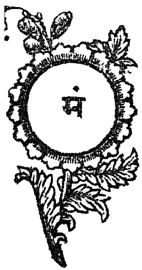
'निराला'

यह भी एक दर्शनीय रचना है। इसमें काव्य-कला का अच्छा विकास हुआ।


सारी दुनिया



१. मातृस्नेह



गलमय विधाता ने पशु और मनुष्य दोनो के हृदय में कैसा अमृत-समान मातृस्नेह का संचार किया है, जिससे माता अपने सुख-दुःख की चिंता भूलकर अपनी संतान की सेवा में लगी रहती है।

यहाँ हम दो ऐसे अपूर्व मातृस्नेह के दृष्टांत देती हैं, जिन्हें पढ़ने से हृदय में माता के चरणों में प्रेम उत्पन्न हो जाता है।

(१) एक बिल्ली के दो-तीन बच्चे थे, उन्हें कोई उठा ले गया। उनकी माता मातृस्नेहाधीन होकर जंगली चूहों के दो-तीन बच्चे उठा लाई, और अपना दूध पिलाकर बड़े स्नेह से उनका पोषण करने लगी। मातृस्नेह ने उसे भी अपने पवित्र भाव से रँग दिया। चूहों की महाशत्रु होते हुए भी वह उन्हें पुत्रवत् पालने लगी।

(२) स्विट्ज़रलैंड के निवासी जन्मांध डॉक्टर नीलस जुरीगीस एक नवयुवक बड़े गणितज्ञ हुए हैं। वह जन्म से ही अंधे थे। उन्हें दर्शन-शास्त्र में सुइडेन के विश्वविद्यालय की सर्वोच्च उपाधि मिली है। कहते हैं, उनके सारे सम्मान की मूल उनकी स्नेहमयी माता हैं, जो उनके ज्ञानारंभ से कई साल तक उन्हें उच्च स्वर से पढ़कर सुनाती थीं, जिससे प्रिय पुत्र की पढ़ाई में सहायता मिले, और उसके जितने प्रबंध थे, स्वयं लिखतीं। इस तरह उस स्नेहमयी माता ने अपने जन्मांध पुत्र को उन्नति के शिखर पर चढ़ाया।

क्या हमारी शिक्षिता माताएँ अपनी संतानों के जीवन को शांति-सुख देने के लिये यह आदर्श नहीं लेंगी?

(श्रीमती) हेमंतकुमारीदेवी चौधुरानी

× × ×

२. महाकवि सूरदास

यह हिंदी का सौभाग्य है कि समय-समय पर हिंदी-भाषा का भंडार अपूर्व कवि-रत्नों की कमनीय कविताओं से भरपूर किया गया है। जिस प्रकार अँगरेज़ी भाषा की श्री-वृद्धि करने की कीर्ति शेक्सपियर को प्रदान की गई है, तथा संस्कृत के कविता-कुंज में कलोल करनेवाले कालिदास को ही कवि-शिरोमणि बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, इसी प्रकार सुकवि-कला-निधि भक्त सूरदास हिंदी-साहित्य को अपूर्व कीर्ति प्रदान कर अजर-अमर हो गए। जब तक हिंदी-भाषा के प्रेमी इस भव्य भारत में राष्ट्रीय गान गाते रहेंगे, जब तक सूर्य और चंद्रमा अटल रहेंगे, और जब तक कविता का साम्राज्य विश्व के कोने-कोने में रहेगा, तब तक सूरदास की प्रतिष्ठा, श्रद्धा तथा भक्ति इसी प्रकार अटल रहेगी, जिस प्रकार ध्रुव तारा। कालिदास, शेक्सपियर, होमर, मिल्टन, भवभूति आदि सुप्रसिद्ध

महाकवियों की भाँति इनकी कविता भी इनके मानव-जीवन का जीता-जागता ज्वलंत चित्र रहेगी।

सूरदासजी के जीवन की सभी बातों का निर्णय करना शक्ति से बाहर है, क्योंकि जितने भी ग्रंथ देखने में आते हैं, प्रत्येक में भिन्न-भिन्न बातें पाई जाती हैं। किसी ग्रंथ में कोई बात किसी प्रकार से पाई जाती है, तथा किसी में किसी तरह।

'चौरासी वार्ता' की टीका में लिखा है कि दिल्ली के पास सीही गाँव में इनका दरिद्र माता-पिता के घर जन्म हुआ, यह बात कहीं नहीं आई। यह एक बड़े कुल में उत्पन्न हुए थे, और आगरे के गोपाचल में इनका जन्म हुआ था। यदि यह मान लिया जाय कि मुसलमानों के युद्ध में इनके छ भाइयों के मारे जाने के पीछे भी इनके पिता जीते रहे, और एक दरिद्र अवस्था को पहुँचकर सीही गाँव में जाकर रहने लगे, तो बात माननीय हो सकती है। इनके पिता सारस्वत ब्राह्मण थे। इनका नाम रामदास था।

इनकी जन्म-तिथि में भी बहुत-सी दंत-कथाएँ हैं, कोई कुछ लिखता है, और कोई कुछ। परंतु यदि इनको वल्लभाचार्य महाप्रभु का शिष्य मान लिया जाय, तो कोई झगड़ा नहीं। क्योंकि महाप्रभु का जन्म सं० १५३५, वैशाख कृष्ण ११ को हुआ था, और मृत्यु १५८७ आषाढ़ शुक्ल ३ को। यह भी सुना जाता है कि श्रीबिट्ठलनाथजी के समय में इनकी मृत्यु हुई। बिट्ठलनाथजी का जन्म १५७२ में हुआ, और मृत्यु १६४२ में, इसलिये यह निश्चय माना जा सकता है कि इनका जन्म और मरण इस १०७ वर्ष के भीतर हुआ, अतः यह माननीय हो सकता है कि इनका जन्म सं० १५४० में हुआ, और मृत्यु १६१५ में। इनकी आयु ८० वर्ष के लगभग मानी गई है।

किसी-किसी का कथन है कि आप जन्म के ही अंधे थे। यह मानना सरासर भूल है, क्योंकि इनकी कविता पढ़ने से प्रतीत होता है कि इन्होंने जिन-जिन रंगों का, ज्योति का तथा प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया है, उनको एक नेत्र-हीन मनुष्य कभी कल्पना भी नहीं कर सकता। यह माननीय हो सकता है कि होमर और मिल्टन की भाँति मध्यावस्था में ही आप नेत्र-हीन हुए हों। इनके अंधे होने के विषय में एक दंत-कथा प्रसिद्ध है कि एक बार आप कहीं घूम रहे थे, वहाँ आपने एक सुंदर युवती देखी, उस पर मुग्ध हो गए, और एकटक उसकी ओर देखते रहे। यहाँ तक कि जब वह अपने घर चली गई, तो आप उसके द्वार पर जाकर बैठ गए। कुछ देर बाद उस स्त्री का पति आया। उसने पूछा, द्वार पर कौन बैठा है। घर आए अतिथि का निरादर नहीं करना चाहिए। तब वह युवती आपके पास आई, और कहने लगी कि जितना प्रेम तुम इस अस्थि-पिंजर से कर रहे हो, यदि इतना ईश्वर से करो, तो तुम्हारी मुक्ति निश्चय हो। यह सुनकर आपकी आँखें खुलीं। आपने कहा, मुझे दो सुइयाँ दो। आज्ञानुसार उस स्त्री ने सुइयाँ दे दीं। आपने तुरंत वहीं अपनी आँखें फोड़ डालीं। तब से श्रीकृष्ण भगवान् के अनन्य भक्त बन गए।

एक दिन आप कुएँ में गिर पड़े, सात दिन तक उस अंधे कुएँ में पड़े रहे, किसी ने न निकाला। आठवें दिन भगवान् ने निकालकर अपने दर्शन दिए, पूछा कि कुछ माँगना है, तो इन्होंने वर माँगा कि आपका रूप देखकर और रूप न देखूँ, मुझे दृढ़ भक्ति मिले, तथा शत्रुओं का नाश हो। भगवान् 'ऐसा ही होगा' कहकर अंतर्धान हो गए। भगवान् के अंतर्धान होते समय इनके मुँह से एका-एक निकल पड़ा—

"बाँह छुड़ाए जात हो निबल जानि के मोहि;
हिरदे सों जब जाइहो, तो जानूँगो तोहि।"

अर्थात् मुझे निर्बल जानकर, मेरा हाथ छुड़ाकर भागे जा रहे हो, यदि हृदय से भी इसी प्रकार भाग जाओगे, तो जानूँगा। अर्थात् हृदय से दूर नहीं हो सकते, शरीर से चाहे दूर हो जाओ।

इनके हृदय में वास्तव प्रेम का समुद्र उमड़ रहा था। यह भगवान् को सखा कहकर पुकारते थे।

इन्होंने सवा लाख पद निर्माण किए हैं, जिनमें से आजकल सबका तो पता नहीं चलता, किंतु सूर-सागर ही सर्वश्रेष्ठ तथा माननीय है। कोई भी हिंदू-घराना ऐसा न होगा, जो आपके नाम से परिचित न हो। जिस प्रकार तुलसीदासजी ने राम-चरित्र लिखने में क़लम तोड़ दी है, उसी प्रकार सूरदासजी ने श्रीकृष्ण-चरित्र-वर्णन करने में अपनी प्रतिभा का अनुपम सौंदर्य प्रकटाया है। इनके भजनों को पढ़कर कौन ऐसा पाषाण-हृदय होगा, जो आनंद और प्रेम में न डूब जाता हो।

आपकी कविता के लालित्य और माधुर्य के विषय में जो कुछ कहा जाय, थोड़ा है। वह कौन-सी विशेषता नहीं, जो इनकी कविता में नहीं पाई जाती। कोई ही हिंदू ऐसा होगा, जो इनका एक-आधा भजन बड़े प्रेम तथा श्रद्धा से न गाता तथा सुनता हो। गवैए भी इनके भजनों को बड़े प्रेम तथा उत्साह से गाते हैं। कृष्णजी का बाल-चरित्र कविता में क्या वर्णन किया, साक्षात् आँखों के सामने ही चित्र खींचकर दिखाने में अलौकिक पटुता प्रकट की है। इनका जितना वर्णन किया जाय, थोड़ा है। ऐसा कोई भी कवि नहीं, जो इनकी समानता का दावा करने का साहस करे। बड़े-बड़े कवि ख़म ठोककर इनकी समता करने को साहित्य-क्षेत्र में आए, परंतु किसी का साहस न पड़ा कि कोई भी इनके सामने दम भरे। बेचारे अपना-सा मुँह ले-लेकर लौट गए। क्योंकि कहा भी है—"किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर; किधौं सूर को पद लग्यो, तन-मन धुनत शरीर।" सूर्य के उदय होने पर तारों की टिमटिमाहट कितनी देर के लिये ठहर सकती है, तथा सिंह के होते हुए भेड़िया कहीं वन का राजा माना जा सकता है? किसी ने सत्य कहा है—

सूर सूर, तुलसी ससी, उडुगन केशवदास ;
अब के कवि खद्योत-सम जहँ-तहँ करत प्रकास।

इनकी कविता की न केवल विद्वानों ने ही प्रशंसा की है, किंतु अल्प-बुद्धि गाँववालों ने भी अपनी गँवारी भाषा में कैसी मधुर प्रशंसा की है।

जो कुछ रहा सो अँधरा कहिगा, कठवत कहसि अनूठी ;
बचा-खुचा सो जोलहा कहिगा, और कहै सो झूठी।

वास्तव में इनकी कविता की चाशनी जिसने चखी है, वही अनुभव कर सकता है। जिस प्रकार गूँगा गुड़ का स्वाद नहीं बता सकता, उसी प्रकार तत्त्व को न जाननेवाले लोग प्रशंसा नहीं कर सकते। गोपियों के विरह-वर्णन में, हृद्गत भाव झलकाने में सूरदास ने अपनी सारी प्रतिभा की इतिश्री कर डाली। यद्यपि इनके पदों से कहीं भी यह प्रतीत नहीं होता कि इन्होंने गृहस्थ जीवन भोगा, परंतु बाललीला, रासलीला और मानलीला आदि के पढ़ने से ज्यों-का-त्यों चित्र आँखों के आगे आ जाता है। इनकी कविता प्राकृतिक है, कृत्रिमता का लेश-मात्र भी नहीं।

'कवि पैदा होते हैं, बनते नहीं' यही बात इनकी कविता से स्पष्ट प्रतीत होती है। इन्होंने कहीं भी ज़बरदस्ती उपमा या उत्प्रेक्षा लाने का प्रयत्न नहीं किया, बस जहाँ जो भाव आया लिख दिया। तुलसी-दासजी ने भी प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन ऐसे विस्तार से नहीं किया, जैसा इन्होंने किया है। राधा और कृष्ण का रूप वर्णन करने में भी जो अनुपमता झलकाई है, वह अद्वितीय है। इनकी कविता की भाषा ब्रज-भाषा है। इन्होंने अपनी कविता में इसकी मनो-हरता को तथा लालित्य को और भी विभूषित करके, परा काष्ठा को पहुँचाकर चित्ताकर्षक बना दिया है। वास्तव में सोने में सुहागे का काम कर दिखाया है। एक तो भाषा ही ऐसी मनोहर, दूसरे सूरदासजी की प्रौढ़ कल्पना-शक्ति तथा चमत्कारिक प्रतिभा, तीसरे गोपिका-वल्लभ का प्रेम, उस पर भी गायन योग्य भजनों की अनुपम रचना इत्यादि कारणों से सूरदास की कविता साहित्याकाश में प्रभाकर की भाँति देदीप्यमान हो रही है। जैसा कहा भी है—

तत्त्व-तत्त्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठी ;
बची-खुची कबिरा कही, और कही सब झूठी।

महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के उपदेश से वह

भागवत के कथानक के आधार पर स्वतंत्र कविता में अनुपम रीति पर एक बृहत् और उत्कृष्ट काव्य (सूरसागर) की रचना कर संसार में अमरत्व की पदवी पा गए।

यहाँ पर इनकी कविता के दो-एक नमूने देकर लेख समाप्त करती हूँ—

मोरे कृष्ण, देव, भगवाना;
करनहार जग पालन आना।
अंध, दीन, बल-हीन न कोहीं;
पोषन करत दैव प्रभु सोहीं।
मथुरा-प्रांत विप्र-वर-गेहा—
भा उत्पन्न भक्त हर-नेहा।
जन्म-अंध, दृग-ज्योति-विहीना,
जननि-जनक कछु हर्ष न कीना।

चंद्र खिलौना लैहौं मैया मेरी।
धौरी को पय पान न करिहौं,
बेनी सिर न गुथैहौं।
मोतिन-माल न धरि हौं उर पर,
झँगुली कंठ न लैहौं।
जैहौं लोट अबहिं धरती पर,
तेरी गोद न ऐहौं।

ऊधो, अँखियाँ अति अनुरागी।
इकटक मग जोवति अरु रोवति,
भूलेहु पलक न लागी।
बिन पावस पावस-ऋतु आई,
देखत है विदमान।
अब धौं कहा कियो चाहत है,
छाँड़हु निर्गुन ज्ञान।
सुनि प्रिय सखा श्यामसुंदर के
जानत सकल सुभाई।
जैसे मिलै सूर के स्वामी
तैसी करहु उपाई।

छाँड़ मन, हरि-विमुखन को संग।
जाके संग कुबुधि उपजत है
परत भजन में भंग।
कागहि कहा कपूर खवाए
स्वान न्हवाए गंग।
खर का कहा अरगजा लेपन
मरकट भूषन अंग।
पाहन पतित बान नहिं बेधत
रीतो करत निषंग।
सूरदास खल कारी कामरि
चढ़त न दूजो रंग।

बड़ी है राम-नाम की ओट।
शरण गए प्रभु काटि देत
नहिं करत कृपा के कोट।
बैठत सभा सबै हरिजू की
कौन बड़ो को छोट।
सूरदास पारस के परसे
मिटत लोह के खोट।

इत्यादि पदों के देखने से प्रतीत होता है कि इनके विषय में जो कहा जाय, थोड़ा है। क्योंकि किसी ने ठीक कहा है—

उत्तम पद कवि गंग के, उपमा को बरबीर;
केशव अर्थ-गँभीरता, सूर तीन गुनधीर।

और भी—

कविताकर्ता तीन हैं—तुलसी, केशव, सूर;
कविता-खेती इन लुनी, सीला बिनत मजूर।

(कुमारी) शकुंतला गुप्ता (बी० ए०, हिंदी-प्रभाकर)



दूध की नमश



चार सेर दूध को इतना औटावे कि आधा रह जाय । औटाने में ऐसा करे कि मलाई न पड़ने पावे । जब इस विधि से दूध औटा चुके, तो आग से उतारकर, जिस पात्र में दूध हो, उसे वस्त्र से ढाँपकर, रात्रि को बर्फ़ में दबाकर रक्खे । सुबह आध सेर मिश्री, तीन तोले समुद्रझाग लेकर, छिलका उतार बारीक पीसकर आधपाव केवड़ा या गुलाब उस दूध में मिलावे । पुनः इन सबको रई से मथकर जो झाग निकले, उसे एक पात्र में भरता जाय । इसी झाग का नाम नमश है । जब दूध बिलकुल न रहे, और सख़्त भी हो, तभी खानी चाहिए । यह बहुत स्वादिष्ठ होती है ।

आँवले का मुरब्बा

समूचे, बेचोट और बेदाग़ बड़े-बड़े आँवले २½ सेर लेकर उन्हें तीन दिन पानी में भीगने दे । तदनंतर काँटे से भले प्रकार गोदकर एक तोला चूना घुले हुए पानी में तीन दिन तक और भीगे रहने दे । फिर स्वच्छ, ताज़े पानी से ख़ूब धोकर १ छटाक मिश्री ३ पाव पानी के शर्बत में उबाल लो । तदुपरांत १ सेर पीछे २½ सेर चीनी की तीन तार चासनी बनाकर उसमें पका लो । जब ख़ूब गल जायँ, तो इलायची-दाने का चूरा आदि डालकर उतार ले । पुनः बोतल में भरकर रख ले ।

आलू की बीड़ियाँ

बंधगोभी के चौड़े तथा कोमल पत्तों में हल्दी डाल थोड़ा-सा उबाल ले । फिर आलू भी उबाल ले । पुनः आलू को बारीक पीसकर, काली मिर्च, तथा लाल मिर्च और नमक डाल दे । उन बंधगोभी के पत्तों में सब कुछ भरकर ऊपर धागे से लपेट दे । पुनः लौंग तथा हींग का तड़का देकर बीड़ियाँ बीच में डाल दे । जब कुछ रसा गाढ़ा-सा हो जाय, तो अमचूर, काली मिर्च तथा धनिया भी डाल दे । फिर बीड़ियों को सूखा कर, नीचे उतारकर, धागा खोलकर मज़े से खाय ।

कटहल के पकौड़े

थोड़े-से चावल भिगो दो । भीग जाने पर पीस लो । पुनः प्याज़, धनिया, हल्दी इत्यादि मसाला रगड़कर पीसे हुए चावलों में मिला दो । फिर कटहल के टुकड़ों को आग पर थोड़ी-सी भाप दिखाकर उन्हें नीचे उतार तथा निचोड़कर चावलों के आटे में टुकड़ों को लपेट-लपेटकर तल लो । ये पकौड़े बहुत ही ख़स्ता होते हैं ।

(कुमारी) अमृतलता स्नातिका (हिंदी-प्रभाकर)

× × ×

मूँग की दाल का हलुआ

एक सेर मूँग की दाल पानी में भिगो दो । जब

दाल खूब भीग जाय, तो उसे मसलकर, छिलके उतारकर खूब महीन पीस लो तीन पाव घी में भूनो। जब पिट्ठी खूब भुन जाय, तब उसमें शकर का शीरा डाल दो, और गाढ़ा होने पर उतार लो। फिर ऊपर से केशर छ रत्ती, इलायची-दाना तीन माशे, काली मिर्च तीन माशे, पिस्ता तीन माशे और बादाम तीन माशे आदि मेवा उसमें डाल दो। यह हलुआ स्वादिष्ट, क्षुधा एवं रुचि-वर्धक और बल-वर्द्धक होता है।

कच्ची इमली की कढ़ी बनाने की विधि

अच्छी, पकी हुई इमली को उबाल लो। जब उबल जायँ, तब खूब मसलकर अँगौछे से छान लो। बाद को बेसन या मूँग की पकौड़ी बनाकर इमली के रस को बेसन मिलाकर हींग, ज़ीरा, राई, मेथी और मिर्च से छौंक दो, और फिर खूब पका लो।

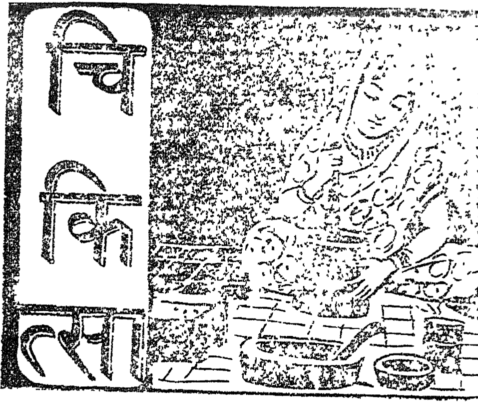
श्रीखंड बनाने की विधि

अच्छा, ताज़ा, बढ़िया जमा हुआ दही दो सेर, मिश्री का चूरा डेढ़ पाव, लौंग एक माशा, काली मिर्च एक तोला, केशर चार माशे, जावित्री चार माशे, जायफल दो माशे, थोड़े बड़ी इलायची के दाने और एक तोला चार माशे सेंधा नमक।

दही को एक साफ़ कपड़े में बाँधकर उसका सब पानी निकाल डालो। फिर किसी क़लईदार बर्तन में रखकर दही को खूब फेटो। जब दही खूब फिट जाय, तब उसमें मिश्री और नमक मिलाकर फिर फेटो, जिससे सब बराबर हो जाय।

अब सब मसाले घोट-पीसकर मिला दो, और थोड़ी देर तक बर्तन में ढककर रख दो। इसमें ऊपर से दो बूँद गुलाब की रूह के डाल दो। बस, श्रीखंड तैयार हो गया।

श्रीराजरानी देवी



बिच्छू के विष की दवा



मली के बीज छ माशे, आक का दूध छ माशे, दोनों को एक साथ पीसकर, बेर बराबर गोली बनाकर धूप में सुखा लो। जब कहीं बिच्छू डंक मारे, तो आक के ही दूध में में घिसकर लगा दो।

दाद, खाज, फोड़ा-फुन्सी की दवा

कच्चा सुहागा एक तोला, कबीला एक तोला, फिटकरी एक तोला और सरसों का तेल पाँच तोला। सुहागा और फिटकरी भूनकर डालना चाहिए।

मोहन अंजन

गिलोय का सत, शीतलचीनी, इलायची-दाना, काला सुरमा, सफ़ेद सुरमा, मिश्री, सेंधा नमक, इन सबको समान भाग लेकर भँगरे के रस में इतना घोटो कि शुष्क हो जाय। फिर इसमें थोड़ा-सा भीमसेनी कपूर पीसकर मिला दो, और शीशी में भर दो। दिन में तीन बार सलाई द्वारा लगाने से नेत्रों की ललाई, जलन, धुँधलापन, कम दिखाई देना आदि ठीक होकर ज्योति बढ़ती है।

अतीसार की दवा

आम और जामुन की छाल का रस एक तोला, खाने का चूना ४ रत्ती डालकर दिन में दो-तीन बार पिलाने से उसी दिन दस्त बंद होंगे।

बालामृत चूर्ण

सफ़ेद निसोथ एक तोला, बड़ी हड़ का छिलका एक तोला, सूखा पोदीना छ माशे, अतीस तीन माशे, इन सबको कूटकर चूर्ण बना लो। फिर इस चूर्ण को माता के दूध के साथ एक तुलसी-दल डालकर बच्चों को चटाओ। दिन में दो बार देने से बालकों के ज्वर, दस्त, कास, श्वास, पेचिश, दूध न पचना, क़ै आदि रोग दूर होते हैं।

प्लेग की गिल्टी बैठालने की दवा

नागफनी का मोटा पत्ता लेकर गरम राख के भीतर रखकर पका लो। बाद में उसे छीलकर पीस लो, और गुनगुना करके गिल्टी पर बाँध दो। गिल्टी दब जायगी।

वैद्यराज

× × ×

नेत्र-रोग

पठानी लोध, रसवत, फिटकरी, गेरू, अफ़ीम, घिसा हुआ रक्त चंदन, केशर।

इन सब द्रव्यों को सम भाग लेकर जल से पीस अग्नि पर थोड़ा पका लो। तत्पश्चात् नेत्र पर लेप कर लो। लेप लगाते समय उष्ण होना चाहिए। इस प्रयोग से आँख की पीड़ा, सूजन,

ललाई, अभिघातज वेदना इत्यादि अनेक रोग अति शीघ्र दूर हो जाते हैं।

कर्ण-रोग

सुरती के पत्ते को जल में भिगोकर उसका रस निकाल, गरम कर कान में छोड़ो। इससे कर्ण-शूल, कान से पूय-स्राव का होना इत्यादि विकार अवश्य नष्ट हो जाते हैं।

चंद्रदत्त शास्त्री (आयुर्वेदाचार्य)



केकड़े और बंदर की लड़ाई



सी जमाने में, एक दलदल में, एक केकड़ा रहता था। एक दिन उसे कहीं से चावल की एक रोटी मिल गई। वह उसे खाने जा ही रहा था कि इतने में उधर से एक बंदर आ निकला। बंदर के पास खजूर की एक गुठली थी। बंदर ने केकड़े से प्रस्ताव किया कि गुठली ले ले, और उसके बदले में रोटी दे दे। केकड़े ने उसकी बात मान ली, और गुठली के बदले में रोटी बंदर के हवाले की। बंदर इस सौदे पर खुश होता-होता घर गया।

उधर केकड़े ने घर जाकर गुठली जमीन में गाड़ दी। धीरे-धीरे उसमें अंकुर जमा, और समय पाकर वहाँ खजूर का एक बड़ा-सा पेड़ लग गया। फिर उसमें फल आने लगे, और पहली फ़स्ल तो इतने ज़ोरों की आई कि सारा पेड़ फलों से लद गया।

एक दिन केकड़ा फल तोड़ने का इंतजाम कर ही रहा था कि इतने में वही बंदर फिर वहाँ आ पहुँचा। उसने केकड़े से कहा—"यदि हुक्म हो, तो मैं पेड़ पर चढ़ जाऊँ, और तुम्हें मीठे-मीठे फल खिलाऊँ।" केकड़े ने उसकी बात मान ली, और बंदर पेड़ पर चढ़ गया। पर बंदर था शरारती, पके और मीठे फल तो वह खुद खाने और उनसे अपने कोट की जेबें भरने लगा, और कच्चे फल केकड़े को देने लगा।

केकड़े को यह बात पसंद न आई। उसने बंदर से कहा—"बस करो। अब उतर आओ। मगर सिर नीचे करके उतरना।" बंदर उसके आज्ञानुसार सिर नीचे और पैर ऊपर किए उतरने लगा। इसका नतीजा यह हुआ कि उसकी जेबें उलट गईं, और सब-के-सब फल, जो उसने जमा किए थे, जमीन पर आ गिरे। केकड़ा यह तो चाहता ही था; उसने सब फल बीन लिए, और अपने घर में जाकर छिप रहा।

इस बात से बंदर चिढ़ गया, और छिपकर उसके निकलने का रास्ता देखने लगा। जब केकड़ा बाहर निकला, तो उसने बेचारे को खूब पीटा, और कहीं घूमने चला गया।

केकड़ा बहुत मिलनसार था, इससे उसकी बहुतों से दोस्ती थी। शहद की मक्खी, अंडा,

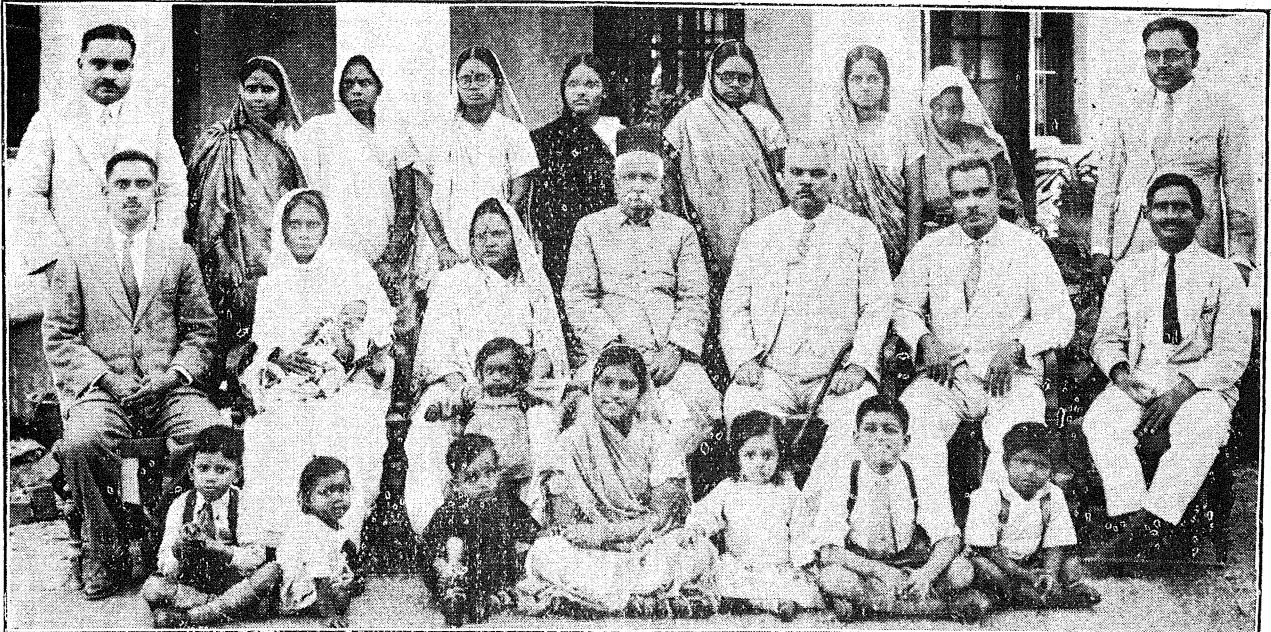
काई और ओखली उसके जिगरी दोस्त थे। उन्होंने अपने मित्र की बहुत दवा-दारू की, जिससे वह फिर चंगा हो गया। अब सब मिलकर बंदर से बदला लेने का इंतज़ाम करने लगे।

निदान, सब बंदर के घर जा पहुँचे। उस समय बंदर कहीं गया हुआ था। इससे सब उसके घर में जहाँ-तहाँ छिपकर बैठ गए।

आखिरकार बंदर आया। आते-ही-आते उसे चाय पीने की इच्छा हुई। इससे वह अँगीठी में आग बनाने लगा। वहीं अँगीठी में अंडा बैठा हुआ था। आग के जलते ही वह इतने ज़ोर से फूटा कि बंदर के मुँह पर तड़ाक से बैठा। बंदर का मुँह जल गया, और वह चिल्लाता हुआ आग के पास से भागा। उधर शहद की मक्खी और काई ने भी धावा बोल दिया। एक साथ दो-दो शत्रुओं से मुक़ाबला करना उसके वश की बात न थी, इससे वह घर के पिछवाड़े की ओर जान छोड़कर भागा। पर काई ने ऐसा बेढब फंदा लगाया कि धड़ाम से ज़मीन पर गिर पड़ा। एक तो गिरने से चोट लगी, दूसरे ऊपर से ओखली ने धर दबाया, बेचारे की जान निकल गई।

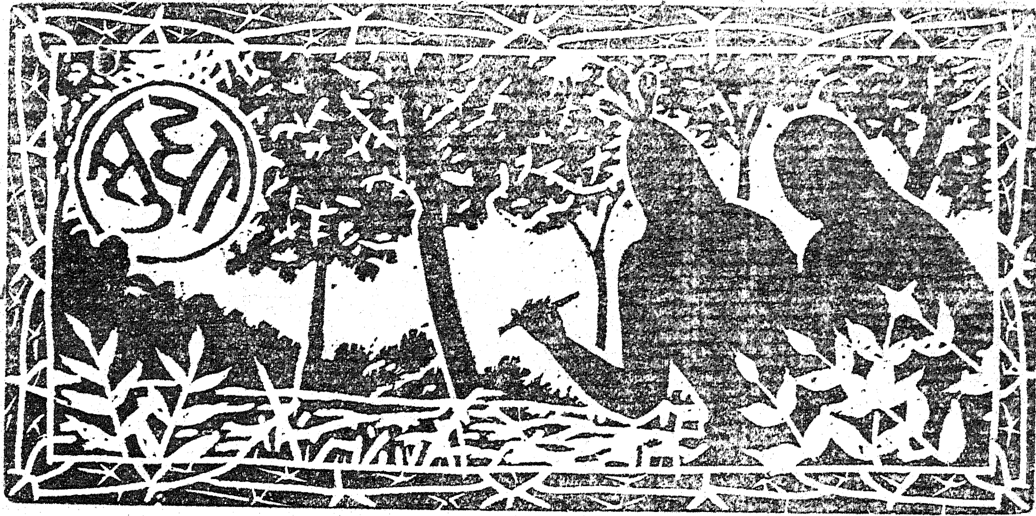
केकड़ा फिर मज़े से रहने लगा।

भूपनारायण दीक्षित (बी० ए०, एल्० टी०)



पत्नी-रहित लाला सीतारामजी का परिवार

पहली पंक्ति (खड़े) बाईं ओर से—कप्तान डॉक्टर ब्रजराजकिशोर, दो बहुएँ, चार पोतियाँ, नाती-बहू और डॉक्टर श्यामबहादुर सिंह। दूसरी पंक्ति (बैठे)—श्रीरघुराजकिशोर, अनंतकिशोरी पौत्र-समेत, बड़ी बहू, रायबहादुर लाला सीताराम, बाबू गिरिजाकिशोर, बाबू कोशलकिशोर, श्रीप्रद्युम्नकुमार। तीसरी पंक्ति (बैठे)—मारुतिकिशोर, शशिप्रभा, प्रभंजनकिशोर, (पीछे खड़ी डाली), ब्रजेशकिशोरी, बेबी, केसरीकिशोर, चंद्रप्रभा। एक पुत्रवती नतिनी अनुपस्थित है।



सिंधु मथै सुर ही लहीं नैंकु जु सतजुग आँहि,
सहज सुलभ सोई सुधा सबै समै सब काँहि।

वर्ष ६ खंड २ | फाल्गुन, ३१० तुलसी-संवत् (१९८९ वि०)— मार्च, १९३३ | संख्या २ पूर्ण संख्या ६८

बसंत-बिलास

[श्रीयुत मुंशी अजमेरीजी]

अवनि आज अपूरब ओप सों—
सजत स्वागत को रितुराज कें;
पथ मनोरथ को अथ सों खुल्यौ,
मधुर मन्मथ की मुरली बजी।
उर-जगी रतिनायक-जोति जो—
प्रकृति आकृति की कृति में लगी;

छितिज लों, छिति-छोर अजंत लों—
दिग-दिगंत मनोरम ह्वै उठे।
गिरि सकेलि सपूरन संपदा—
अवनि-ओर बिभोर बहा चले;
नद-नदी, सर - निर्झर - बावरी—
सबहि के जल निर्मल ह्वै गए।

सर जगे निज जीवन-जोति सों,
कमल की पँखियाँ अँखियाँ खुलीं;
अनिल सीतल-मंद सुगंध लै—
बह चली मचली-मचली भई।
सरित कूल-सिवार-दुकूल सों—
निज सरोज-उरोजन को ढँकै,
उझकि तौ लाग मच्छ सुअच्छ-से—
करि कटाच्छ कटा करिबे लगे!
न अति घाम न सीत, समान हैं,
बँधि रह्यौ सुषमावलि को समा;
बिरछ तान बितान लतान के—
छबि-छतान भए गलतान-से!
खिल उठो कलिका बर बृंत पै,
निखिल कोष-लुटावन-लालसा—
उर-भरी, उभरी मिस गंध के;
मधुप दौर परे मद-अंध ह्वै।
प्रिय पलासन के परिवार मैं—
लखि परी कमलासन की कला,
मधुप-मस्तक में गज-दंत हैं,
कलित किंसुक हैं सुक-चंचु-से!
बसुमती पर बृच्छ बिराजहीं,
बृछन पै नव पल्लव हैं घने,
नवल पल्लव पै पहुपच्छटा,
पहुप पै तितलो चितली लसें।
मद-भरी मृदु-मंजुल मंजरी—
ललित-लोल-लगी कलगी लुरै,
कचन की रचना कचनार है,
तिलक-सी तिलकावलि भाल में।
दृगन अंजन-सी अलिमालिका,
लसत चंपक चंपकली भली;

पगन जावक लाख लगा रही,
सज सिंगार बनी सु-बनी बनी!
मधु बन्यो बनरा बनराजि को—
कुसुम के सुम कंकन धारि के,
बसन त्यों सरसों-सुमनावली,
रुचिर मौर सु-मौर रसाल को!
तब बरात बनी रितुराज की,
सज चले सब पुष्प-पखेरुवा,
जँचत कीर-कबूतर जाँगड़ा,
पिक-पुकार धुकार नकीब की!
नगर-कानन-बीच बरातिया—
बृछन, बेलि-बितानन में टिके;
बगर-डोलन बोलन बीथि में—
कछुक गुंजन कुंजन में लगे।
मुदित मोर नचैं, लहरैं-लचैं,
रसिक रास रचैं रँग में रचे!
पढ़त पंचम के सुर में पिकी—
मदन-मोहन मंत्र सुतंत्र ह्वै।
बिसम को, सम को रुख राखि के,
लखि अतीत-अनागत भेद को;
भरत सप्तक के सुर साधि के
करत गान सिखी-सुक-सारिका!
कितहुँ तीतर भीतर बोलहीं,
प्रियन-टेर बटेर-लवा लुकें;
सुर समूल चँडूल सुनावहीं,
सबन की नकलैं-अकलैं हरें!
ललक लाल गुलाल लगा रहे—
मुखन पै मुखरा मुनियान के;
पहुप तें अनुराग-पराग लै—
पवन बीर अबीर उड़ा रह्यौ!

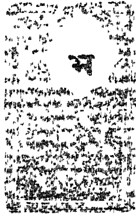
निरत हैं नित ब्याह-उछाह में—
सब समाज बरात-बरात के;
बर अनूपम यौवन-रूप में,
सरस भाग - सुहाग - भरी बधू।

तरुनई उनई अँग-अंग सों,
सजनई नव रंगन में नई;
बिभव-सेवित देवि बनस्थली
रत लखात बसंत-बिलास में!

मेड़ते का सरदार

[आचार्य श्रीचतुरसेनजी शास्त्री]

(१)



यानक गर्मी थी। प्रातःकाल का समय था। जोधपुर के महाराज जसवंतसिंह मर चुके थे, और उनके ज्येष्ठ पुत्र भी दिल्ली में मार डाले गए थे। राजमहिषी और सरदार दुर्गासिंह उदयपुर-महाराणा की शरण में थे। जोधपुर का क़िला शाही दख़ल में था। बादशाह आलमगीर के साले का भतीजा मिर्ज़ा निज़ामतुल्ला वहाँ का क़िलेदार नियत किया गया था। वह एक तलैटी की पहाड़ी पर बनते हुए नए क़िले के मज़दूरों की रेल-पेल देख रहा था।

जहाँ क़िलेदार खड़ा था, उसके नज़दीक ही, दाहने हाथ की तरफ़, वह विशाल और मज़बूत क़िला तैयार हो रहा था। उसकी ऊँची और साफ़ सफ़ेद पत्थर की दीवारों और बुर्ज़ियों ने मानो उस छोटी-सी पहाड़ी को सुंदर मुकुट पहना दिया था। जिस पर प्रातःकाल की सुनहरी किरणों ने एक अपूर्व चमक उत्पन्न कर दी थी। क़िले के बाईं ओर एक सड़क थी, जो क़िले के मुख्य फाटक तक जाती थी। इस सड़क पर उस तेज़ धूप में कितने ही मनुष्य और पशुओं का झुंड पत्थर के भारी-भारी टुकड़ों और लकड़ी के वज़नी शहतीरों को ढो-ढोकर क़िले के फाटक की ओर बढ़ रहे थे। पसीने से तर-ब-तर आदमी हाँफते हुए और गर्मी से घबराए हुए बैलों, भैंसों एवं ऊँटों को बराबर हाँक रहे थे। कभी वे उन्हें आगे ढकेलते, कभी पीछे से धक्का देते, और कभी क्षण-भर पशु को विश्राम देने के लिये ठहर जाते और स्वयं अपना पसीना भी पोंछ लेते थे।

क़िले के भीतर भी काम करने की आवाज़ आ रही थी। भारी-भारी हथौड़ों की चोट और पत्थर तोड़ने के शब्द तथा लोगों के चिल्लाने-पुकारने का शोरोगुल उस गर्म वातावरण में भर गया था। क़िला लगभग बन चुका था, और अब क़िलेदार उसी में रहने भी लगा था। पर किसी गूढ़ उद्देश्य से पत्थरों के ठोकों और खंभों से मज़बूत तथा ऊँची सफ़ीलें और बुर्ज़ियाँ तैयार की जा रही थीं, जो वर्षों तक बेख़तर मोर्चा ले सकती थीं।

आदमी और पशु, जो यहाँ काम कर रहे थे, उमरावों और सरदारों के थे, जो क़िलेदार ने उनसे बेगार में लिए थे।

यह लाज़मी था कि प्रत्येक सरदार क़िलेदार को बेगार दे, इसलिये सभी ने उसकी आज्ञा का पालन किया था; क्योंकि प्रत्येक सरदार को ज्ञात था कि उसकी आज्ञा का उल्लंघन करने में ख़ैर नहीं है। इससे तुरंत ही भयानक विपद् आने की संभावना है, इसलिये उन्होंने अपने मनोभावों के विपरीत उसे बेगार दी थी।

क़िलेदार सड़क से थोड़े ही फ़ासले पर खड़ा ख़ूब ध्यान से यह सब देख-सुन रहा था। उससे कुछ हटकर उसके अमीर-उमराव और सरदार खड़े धीरे-धीरे फुस-फुस करके बातचीत कर रहे थे, परंतु इनकी नज़र क़िलेदार की ओर थी।

एक बूढ़े सरदार ने अपनी सफ़ेद डाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—"आज निश्चय क़िलेदार साहब गुस्से में हैं। देखो, वह किस तरह होंठ चबा रहे हैं। मदद तो ठीक चल रही है; इस भीषण गर्मी में क्या यह कुछ आसान है।" बूढ़े ने एक लंबी साँस ली, और विषाद-भरी दृष्टि से क़िले की ओर देखा। बूढ़े सरदार की बात सुनकर एक युवक सरदार धीरे से हँस दिया। इसकी आँखें ख़ूब चमकीली और काली थीं। यह उस बूढ़े के पास ही खड़ा था; उसने विनोद के स्वर में कहा—"क़िलेदार साहब अपने पापों के प्रायश्चित्त

के भय से भयभीत हैं।" इसके बाद उसने गंभीरता से धीमे स्वर में कहा—"वह दिन आ रहा है, नहीं कहा जा सकता कि कब दुर्गादास इनके सिर पर आ धमके।" इसके बाद उसने क़िलेदार पर दृष्टि डाली।

बूढ़े सरदार ने उसी भाँति फुसफुसाकर कहा—"निस्संदेह वह समय आ गया है, जब दुर्गादास पूर्ण लवाज़मे से महाराणा की सहायता के लिये यहाँ आ सकेगा।"

युवक सरदार ने कहा—"यही तो, क़िलेदार साहब इस बात से बेख़बर नहीं हैं। उन्हें पूरा भय है, और वह संगीन तैयारी इसी मतलब से कर रहे हैं।" पीछे से किसी ने फुसफुसाकर कहा—"सच जानो, दुर्गादास का भूत आठो पहर उसके सिर पर सवार रहता है।"

पाँच-छ आवाज़ें धीमी, किंतु दृढ़ता-पूर्वक उठीं—"बिलकुल ठीक, दुर्गादास का उस पर ऐसा ही दबाव है।" (कुछ और धीरे से) "और, मेड़ते के रावसाहब से भी वह बहुत भयभीत और शंकित रहता है।"

एक सरदार ने वक्र दृष्टि से देखकर कहा—"क्यों? अब ऐसा कैसे कह सकते हैं।" "इसलिये कि वह युवक सरदार सशक्त, धर्मात्मा और सुजन है। (कुछ और झुककर) फिर वह दुर्गादास का जिगरी दोस्त और सहायक भी है। क्या आपने नहीं देखा कि वह किस भाँति क़िलेदार साहब से दूर-दूर ही रहता है। बिना आज्ञा कभी दरबार में आता भी नहीं। आना चाहता भी नहीं। वह सिर्फ़ समय की प्रतीक्षा कर रहा है।" इतना कहकर वह सरदार तनिक हँस दिया।

वृद्ध सरदार बोला—"सचमुच, तब आज के दरबार में भी तो वह बुलाया गया है। वह आज आया भी है या नहीं। इसमें तो संदेह नहीं कि वह युवक सरदार बड़ा धीर और सरल-चित्त है।"

इस पर उसी सरदार ने बहुत धीरे से कहा—"वह आया है। क़िलेदार ने जब तक उसे देख नहीं लिया, वह निश्चिंत नहीं हुए।" धीरे-धीरे सरदारों में कानाफूसी बढ़ चली। क़िलेदार अभी तक वहीं खड़ा था। वह उदास और चिंतित था, पर क़िले के काम को ध्यान से देख रहा था। वह सोच रहा था, मैं निस्संदेह सुरक्षित हूँ। क़िले की ये नई तेहरी सफ़ीलें दुर्भेद्य हैं। अब चाहे जो कोई आवे। उसने क़िले की तरफ़ अभिमान-पूर्ण दृष्टि से देखा, और कमर में लटकती तलवार की गंगा-जमनी काम की मूठ पर हाथ रक्खा। फिर गुन-गुनाकर कहा—"यह काफ़ी है, काफ़ी से भी ज़्यादा है।" उसने एक हुंकार भरी, और ख़ूब तनकर खड़ा हो गया। उसके कान में उसके भाग्य ने कहा—"ऐ भाग्यवान् बादशाह के साले के भतीजे, अब तू अजेय है। काफ़िर राजपूत तेरा बाल बाँका भी न कर सकेंगे।"

एक हास्य-रेखा उसके होठों में फैल गई। उसने पीछे फिरकर बारह कोस की दूरी पर स्थित मेड़ते के दुर्ग की धुँधली छाया पर दृष्टि डाली। सुदूर पर्वत-शृंग पर स्थित क़िले की विशाल बुर्ज़ियों पर उसकी दृष्टि अटकी। नीचे का विस्तृत वन और जंगल की घाटियाँ उस प्रभात के धीमे प्रकाश में धुँधली-सी दिखाई दे रही थीं। "मैं अब अजेय हूँ", उसने मानो स्पष्ट कहा, और वह धीरे से हँस पड़ा। क्या समुद्र पर रस्सियों का पुल बँध सकता है? क्या चाँद पर बैल चढ़ सकता है? उसने फिर चारो तरफ़ देखा। असंभव है, असंभव है। मैं अजेय हूँ। भय क्या है, परंतु वह मेड़ते का राव........वह एकाएक चौंक पड़ा। उस पथरीली पहाड़ी सड़क पर उसी समय दो छोटे, थके हुए, सफ़ेद बैल एक भारी शहतीर को गाड़ी में ढोए लिए आ रहे थे। यह बोझा बेचारे जानवरों के लिये बहुत ही अधिक था। पर वह धीरे-धीरे, बड़ी तकलीफ़ और धैर्य से, उसे खींच रहे थे। सूरज की तेज़ चमकती धूप झुलसाए डालती थी। उस स्थान से थोड़ा आगे बढ़कर, जहाँ क़िलेदार खड़ा था, एक बहुत बड़ा ढलाव था, जो शीशे की भाँति चिकना और फिसलनेवाला था। थकान और गर्मी से अधमरे जानवर इस दशा में भी अपना बोझा ढो रहे थे। उनको हाँकनेवाला

आदमी चाबुक मार-मारकर और चिल्ला-चिल्लाकर हाँक रहा था। ज्यों ही वह क़िलेदार के पास से होकर गुज़रे कि एक बैल का पाँव फिसल गया, और वह घुटनों के बल गिर गया। उसके साथ ही दूसरा बैल और भारी वज़न भी ऊपर से गिर पड़ा। दोनो जानवरों ने भरपूर ज़ोर लगा, पर अंत में पड़ गए। भारी बोझ ऊपर और भयानक ढलाव नीचे था। हाँकनेवाले ने हताश दृष्टि से नीचे की ओर देखा, और फिर क्रोध-भरी दृष्टि से क़िलेदार को देखकर होंठ चबाने लगा। पीछे जो गाड़ियाँ और मज़दूर आ रहे थे, उनके लिये रास्ता बिलकुल ही बंद हो गया।

क़िलेदार की भौंहें तन गईं। क्षण-भर वह गिरे हुए बैलों और रुके हुए मनुष्यों एवं गाड़ियों को देखता रहा। फिर उसने उस भूरी दाढ़ीवाले सरदार को हाथ के इशारे से बुलाकर बैलों की ओर उँगली से संकेत करके पूछा -"ये जानवर किस शख़्स के हैं?"

सरदार ने कहा—"जनाब, ये जानवर मेड़ते के राव दुर्जन हाड़ा के हैं ; परंतु निस्संदेह......" वृद्ध सरदार की बात मुँह में ही रही। क़िलेदार ने तड़पकर, चिल्लाकर कहा—"क्या मेड़ते के राव के?" उसका मुँह क्रोध से लाल हो गया। उसने क्रोध से काँपते हुए कहा—"मेरे लिये उसने यह जानवर भेजे हैं। उसकी यह हिम्मत? क्या उसके यहाँ ऐसे ही जानवर हैं! कदापि नहीं। यह मेरी तौहीन की गई है। मेरा मख़ौल उड़ाया गया है।" उसने अपने हाथों की उँगलियों को मसल डाला। उसका मुख भयंकर हो गया। उसने निकट खड़े हुए सभी सरदारों पर एक ज्वालामयी दृष्टि डाली, और फिर चिल्लाकर कहा—

"मैं उसकी अच्छी तरह तंबीह करूँगा, मैं बता दूँगा कि बादशाह के रिश्तेदार के काम में ग़फ़लत करने का क्या नतीजा होता है। और, यह भी अच्छी तरह बता दूँगा कि शाही क़िलेदार का हुक्म किस तरह माना जाता है। इस बैल की जगह उसके कंधों पर जुवा रक्खा जायगा। और, जब तक वह आकर इस ढिठाई के लिये क्षमा न माँगेगा, मैं उसे कदापि न माफ़ करूँगा। उसके मग़रूर और सरकश सिर को कुचल डालूँगा, और उसे धूल में मिला दूँगा।"

सरदारों में सन्नाटा छा गया। सब पत्थर की मूर्ति की भाँति खड़े रह गए। वह भूरी दाढ़ीवाला सरदार आगे बढ़ा। वह कुछ कहना चाहता था, परंतु एक युवक—जो निकट खड़ा था, जिसकी आँखें काली और चमकीली थीं, और जो समझ गया था कि क्या होनेवाला है—वहाँ से खिसककर बेतहाशा भागा।

रानी ने तनिक उत्तेजित होकर कहा—"क़िलेदार साहब, वह स्वयं आपके स्वागत करने की खटपट में व्यस्त हैं। शीघ्र ही वह आपकी ख़ातिरदारी को आपके सम्मुख हाज़िर होंगे। तब आप चाहें, तो उनके कंधे पर जुवा रखकर अपना बोझा उनसे ढुला सकते हैं। पर अभी इसमें कुछ समय लगेगा। तब तक यहाँ पर्वत की उपत्यका में मज़े में विश्राम कीजिए। आपके सिपाहियों के लिये मीठा पानी और घोड़ों के लिये घास यहाँ बहुत है।"

रानी यह कहकर वहाँ से हटी, और क़िलेदार ने क्रोध से फेन उगलते हुए क़िले पर आक्रमण करने का हुक्म दिया।

❀ ❀ ❀

एक सप्ताह बाद क़िला धायँ-धायँ जल रहा था। बड़े-बड़े फाटक भीषण शब्द करके, जल-जलकर गिर रहे थे। गजमहल राख हो गया था, और उसके साथ ही रानी और उसके सहचरों—राजपूत वीरों—के खंड-खंड हुए पड़े थे। उनकी तलवारें इधर-उधर पड़ी थीं, और उन पर का लोहू सूखकर पपड़ा गया था। टूटे हुए भाले धरती में गड़े थे। क़िले में एक भी जीवित जंतु न था।

क़िलेदार जोधपुर लौट रहा था। उसने देखा,

सामने धूल का बादल उमड़ रहा है। क्षण-भर बाद ही उसने चमचमाती तलवारें और उल्लसित सेना का जय-नाद सुना। वह क़िले की लपटों को लक्ष्य करके दौड़े चले आ रहे थे। क़िलेदार जब तक सेना को व्यूह-बद्ध करे, राजपूत उस पर टूट पड़े। सबसे आगे अपने कुम्मैत घोड़े पर युवक सरदार था। उसके हाथ में नंगी तलवार थी। वह अपने मोती के समान दाँतों से होठ चबा रहा था। उसने तनिक घोड़े की रास खींच, पीछे मुड़कर राठौर दुर्गादास से कहा—"ठाकराँ, आज्ञा दो, इस पतित हत्यारे के रक्त से अपनी तलवार की प्यास बुझाऊँ।" वह उत्तर के लिये रुका नहीं। वह तीर की भाँति शत्रु-दल को चीरकर उसमें घुस गया। लोग भयभीत होकर भागे। वह सुंदर सरदार इस समय साक्षात् काल-रूप हो रहा था।

वह अपने घर-द्वार, स्त्री-बच्चों की बर्बादी और क़त्ल के बदले के लिये बेचैन था।

क़िलेदार हाथी पर सवार था। उसने मेड़ते के युवक राव को दाँतों से घोड़े की रास पकड़े, दोनो हाथों से तलवार चलाते, सेना को चीरते हुए सीधे अपनी ओर आगे बढ़ते हुए देखा। उसके पीछे वीर दुर्गादास राठौर अपने पाँच हज़ार चुने योद्धाओं के साथ दबाए चला आ रहा था। वह भय से पीला पड़ गया, उसने पहाड़ी रास्तों पर दूर तक फैली राजपूत-सेना की चमचमाती तलवारें देखीं। वह पत्ते की भाँति काँपने लगा। युवक सरदार ने हाथी पर बर्छे का वार करके ललकारा—'ओ पतित, स्त्री-हंता! यह मग़रूर सरदार हाज़िर है। ले, इसके कंधों पर जुवा रख।" दूसरे ही क्षण वह भयानक काल-रूप बर्छा उसकी छाती के पार था।

वह चीत्कार करके गिर गया। हाथी सैनिकों को कुचलता हुआ भाग खड़ा हुआ। शत्रु-सेना भाग चली। युवक सरदार ने दुर्गादास के निकट आकर कहा—

"ठाकराँ, मेरी इच्छा तो पूर्ण हो चुकी। अब चलो, जोधपुर का उद्धार करें।"

एक सप्ताह बाद जोधपुर में राठौरों का वैसा ही अधिकार था। परंतु वह वीर युवक सरदार अपनी पतिव्रता वीरांगना पत्नी और पुत्रों को खोकर अधिक नहीं जी सका। वह उस युद्ध के भीषण घावों तथा मानसिक आघातों के चपेट में चल बसा।

आज भी मेड़ते के वृद्ध उस वीर-वंशज वीर युवक के साहस और वीरता की गाथाएँ रात को कहानियों में सुनाते हैं।

मानो वह अमर है।

(२)

दरबार का समय बिलकुल निकट आ गया था। गद्दियाँ क़रीने से बिछ चुकी थीं। बीच में क़िलेदार का उच्चासन था। क़िले का एक विशाल भवन इसके लिये सजाया गया था। द्वार के पास हाथी और पैदल सेनाएँ एवं ऊँटों की क़तारें सज्जित खड़ी थीं। मेड़ते का युवक राव इसी भवन में खिड़की और सिंह-द्वार के बीच चहल-क़दमी कर रहा था। उसका लंबा क़द, चौड़ी छाती और सुंदर मुख उसकी महत्ता का परिचय दे रहा था। वह पीले साटन की पोशाक पहने था, और सिर पर मोटड़े की महीन पाग थी। उसके नीचे उसके काले, चिकने घुँघराले बाल लहरा रहे थे। वह हँस-हँसकर वहाँ काम-काज में व्यस्त सिपाहियों और कर्मचारियों से बातें करता जा रहा था। वह कह रहा था, अब क़िलेदार साहब नाहक़ देर कर रहे हैं। इधर भूख के मारे मेरा पेट उलट-पलट हो रहा है। धूप की तेज़ी तो देखते ही हो, यह समय तो चुपचाप खा-पीकर घर में बैठने का है। कुछ मुँहलगे कर्मचारी उसकी बात पर हँसकर एकाध शब्द कह देते थे। वह बीच-बीच में ज़ोर से हँस भी देता था।

अभी हास्य से उसके हीरे के समान स्वच्छ दाँतों की एक छटा देखी ही थी। वह युवक हाँफता हुआ, फाटक पार करता उसके पास पहुँचा। युवक सरदार अपने विश्वस्त अनुचर को इस भाँति व्यस्त होकर आता देख चौंक पड़ा। उसने आगे बढ़कर उसके

कंधे पर हाथ धरा और कहा—"मानिक, क्या बात है? कह।" "महाराज!" उसने सूखे कंठ और भयभीत नेत्रों से धीमे स्वर से कहा—"जल्द भागिए, कुशल नहीं है। दुष्ट क़िलेदार श्रीमानों का भयानक अपमान किया चाहता है।"

युवक राव ने सुनकर सिर ऊँचा उठाया। उसकी छाती फैल गई, और नथुने फूल गए। उसने तलवार की मूठ पर ज़ोर से हाथ दे मारा। उसके ख़ास वीर चारों तरफ़ से इकट्ठे हो गए। उनकी तलवारें खनखना उठीं। उनके बीच में कठिनाई से साँस लेते हुए युवक अनुचर ने सारा माजरा कह सुनाया। अंत में उसने कहा—"अन्नदाता, प्राण और प्रतिष्ठा लेकर भागिए, वह आपे में नहीं है।"

सरदार का मुँह लाल अंगारे की भाँति हो गया। उसने लरजती ज़बान से कहा—"घोड़ा, मेरा घोड़ा कहाँ है?"

"श्रीमान्, वह पीछे की खिड़की पर तैयार है, आप चोर दरवाज़े से......।"

"महाराज की जय हो, सावधान जाइए, यहाँ हम मर मिटेंगे। पर आपका पीछा होने में पग-पग पर बाधक होंगे।"

सरदार का कुम्मैत असील घोड़ा हवा में उड़ रहा था। जोधपुर का क़िला क्षण-भर में मीलों रह गया था। गर्द का गुबार उसके पीछे उड़ रहा था।

(२)

लूनी नदी ज़ोर पर थी। किनारे पर नाव खड़ी थी। नाविक ने ज़ोर से पुकारकर कहा—"क्या श्रीमान् पार जायँगे?"

"हाँ, अभी।"

"आइए दरबार!"

"पर लोगे क्या?"

"एक रुपया अन्नदाता।"

सरदार की जेब ख़ाली थी, वह सब कुछ वहीं भूल आया था, उसने जेबों में हाथ डाला, और पीछे की ओर मुड़कर देखा। कुछ ही फ़ासले पर सैकड़ों सवार पीछे दौड़े आ रहे थे, गर्द का बादल उठ रहा था। उसने हँसकर कहा—"किंतु मेरे पास देने योग्य यह तलवार और यह घोड़ा है। घोड़ा इस वक़्त नहीं दूँगा। तुम तलवार ले लो, एक रुपए से बहुत अधिक मूल्य की है।" सरदार फिर हँसा। उसकी धवल दंत-पंक्ति फिर दिखलाई पड़ी।

नाविक ने मुजरा किया और कहा—"महाराज की जय हो, दरबार शीघ्रता करें, यह तलवार तो श्रीमानों के कर-कमलों में ही शोभा देने योग्य है। मैं मज़दूरी ड्योढ़ियों से ले आऊँगा। शायद शत्रु सिर पर आ गए।"

घोड़ा और सवार सकुशल उस पार पहुँच गए। सरदार ने मल्लाह पर एक दृष्टि फेंकी, और घोड़ा छोड़ दिया।

घोड़ा उड़ा जा रहा था। सूरज आग बर्षा रहा था। पानीदार जानवर और वीर सरदार तीर की तरह रास्ता चीरते मेड़ते की ओर बढ़ रहे थे। उसने एक ऊँचे टीले पर चढ़कर क्षण-भर पीछे मुड़कर देखा। बहुत दूर सिपाहियों की एक टुकड़ी घोड़ों की टापों से गर्द उड़ाती हुई, धूप में तलवारें चमकाती हुई धावा मार रही थी। बिना क्षण-भर ठहरे उसने घोड़ा छोड़ दिया। वह जानता था कि क़िलेदार और उसके सैनिक पीछा कर रहे हैं, और इस दौड़ में उसके प्राणों की बाज़ी है।

अंत में उसे मेड़ते के क़िले की बुर्जियाँ स्पष्ट दिखाई पड़ने लगीं, और वह धीरे-धीरे निकट आ गया। वह विशाल फाटक, जो उसका प्यारा और चिर-परिचित था, सम्मुख सिर उठाए खड़ा था। खाई का विशाल पुल गिरा हुआ था। घोड़ा थकावट से बेदम हो रहा था। उसे कूदकर पार करना असंभव था। उसने चिल्लाकर पहरे के संतरियों को हुक्म दिया—"पुल को उठा दो, पुल को उठा दो, जल्दी और जल्दी।"

तत्काल भारी-भारी ज़ंजीरों से लुढ़कता हुआ पुल ठिकाने आ लगा। सरदार ने उस पर क़दम रक्खा, और अघाकर साँस ली। अब वह सुरक्षित था।

(४)

वह प्रकाशमान् दो नेत्रों के समान दो पुत्रों की माता थी। सरदार की आवाज़ सुनकर वह घबराई हुई पति की ओर झपटी। सरदार पसीने और धूल से तर-ब-तर घोड़े के पास खड़ा था। घोड़ा तड़पकर धरती में दम तोड़ रहा था। भयानक दौड़ और कड़ी मंज़िल से उसकी छाती फट गई थी। वह मुँह और आँख-कान से ख़ून गिरा रहा था। उसने पूछा—

"स्वामिन्, माजरा क्या है?"

"कुछ नहीं प्रिये, परंतु मेरा प्यारा यह जानवर आज बिछुड़ा।" उसने वेदना-पूर्ण दृष्टि से पशु को देखा। उसकी आँखों से दो स्वच्छ आँसू टपक पड़े।

राजपूत-बाला ने स्वामी का हाथ पकड़ा और कहा—"स्वामिन्, और सब तो कुशल है?"

"वह भेड़िया क़िलेदार मेरे पीछे आ रहा है। शोक इतना ही है कि इस समय मैं युद्ध नहीं कर सकता। दुर्गादास आज भी नहीं आए। नौमी तो परसों ही व्यतीत हो गई।"

युवक अधीर होकर होठ चबाने और टहलने लगा।

"नाथ, अधीर न हूजिए; आपको यहाँ न ठहरना चाहिए। यह सुरंग की चाभी है। मेरे लिये सौ राजपूत बहुत हैं। इनसे मैं क़िले की रक्षा कर लूँगी। शेष दो सौ सिपाही लेकर आप इसी क्षण उदयपुर को प्रस्थान करें।"

"भगवान् मंगल करेगा। परंतु प्रिये, क्या मैं कायर की भाँति भागूँ? विशेषकर तुम्हें इस विपत्ति में अरक्षित छोड़कर?"

"नहीं स्वामी, यह भागना नहीं, रक्षा करना है। राजपूतनी कभी अरक्षित नहीं रहती। जाइए, क्षण-भर खोना भी भयानक है।" इतना कहकर उसने एक बूढ़े राजपूत की ओर देखकर कहा—"महाराज का घोड़ा तैयार है?"

"हाँ माता।"

"और कौन-कौन तैयार हैं?"

तीन सौ तलवारें एक साथ नंगी हो गईं।

"परंतु देखना, केवल महाराज के प्राणों और प्रतिष्ठा का ही प्रश्न नहीं है। जोधपुर का उद्धार भी महाराज के निर्विघ्न उदयपुर पहुँचने पर है।"

"राजमाता निश्चिंत रहें।" राजपूतों ने गर्जकर कहा।

राजपूतनी ने घोड़े की रास पकड़ी, और सरदार के निकट ले गई। वह चुपचाप किसी गूढ़ चिंता में निमग्न था। उसने तनिक तीखे स्वर में कहा—"सवार हूजिए स्वामी, राजपूत ऐसे समय में सोच-विचार नहीं करते।"

द्वार पर आघात लगने लगे। सरदार चौंक पड़ा, उसने घोड़े की बाग थामी, और ज़ोर से होंठ काटकर उछला। घोड़ा दौड़ने को अधीर हो रहा था। सरदार ने तलवार नंगी करके कहा—"प्रिये! क़िला ख़ूब सुरक्षित और दृढ़ है, और तुम उससे भी अधिक। वह द्वार पर आ पहुँचा है, पर वह इतने शीघ्र लौटने की कल्पना भी नहीं कर सकेगा। मैं अब यहीं आकर अन्न-जल ग्रहण करूँगा।"

उसने पत्नी की ओर प्यार से देखा, और फिर कहा—"प्रिये, तुम्हें और बच्चों को यों छोड़कर जाना धिक्कार-योग्य है, परंतु प्रिये......" वह आगे कुछ न बोल सका। उसने हाथ बढ़ाकर पत्नी का हाथ थाम लिया। कुछ ठहरकर उसने अवरुद्ध कंठ से कहा—

"प्रिये! राजपूत का जीवन बहुत कठिन है।"

"और राजपूतनी का उससे अधिक।"

वह मुस्किराई, पर उसकी आँखों से दो मोती-से आँसू गिर गए। उन्हें पोंछकर उसने व्यग्र स्वर में कहा—"ओह! अमूल्य समय नष्ट हो रहा है।"

सुंदर सरदार ने एक बार फिर पत्नी पर दृष्टि डाली। और "प्रिये! बिदा", कहकर लोहे के छोटे फाटक की ओर बढ़ा। उसके पीछे धीरे-धीरे १०० राजपूत भी उसी सुरंग में विलीन हो गए।

(५)

सिंहद्वार पर भीषण आघात हो रहे थे। वह स्वयं अपना व्यथित हृदय लिए क़िले की बुर्जी पर आ

खड़ी हुई। उसके हाथ में नंगी तलवार और कमर में रत्न-जटित कटार थी। उसके पीछे १०० राजपूत योद्धा थे। उसने सबसे कह दिया था। मैं स्वयं ही बात करूँगी। कोई न बोले, न शस्त्र चलावे।

बुर्ज पर से देखा, सहस्रों सिपाही सफ़ील के नीचे शस्त्र चमका रहे और शोर मचा रहे हैं। उनका सरदार स्वयं क़िलेदार था। वह एक सफ़ेद घोड़े पर चढ़ा था। रानी को देखते ही उसने गर्जकर कहा—"मैं हुक्म देता हूँ कि क़िले को खोल दो।"

"आप कौन हैं, और क्यों ऐसा हुक्म देते हैं?"

"मैं शाहनशाह आलमगीर का रिश्तेदार और जोधपुर का क़िलेदार हूँ। मैं कहता हूँ, दरवाज़ा खोल दो। वह मग़रूर सरकश सरदार कहाँ हैं? उसे इसी वक्त मेरी ख़िदमत में हाज़िर करो, वरना क़सम कलामे-पाक की है, मैं इस क़िले की ईंट से ईंट बजा दूँगा।"

रानी ने धीर-गंभीर स्वर में, संयत भाषा में कहा—"आप ऐसे प्रतिष्ठित शाही मेहमान के लिये द्वार खोलने में मैं बिल्कुल ही असमर्थ हूँ। वे ख़ूब मज़बूती से बंद हैं। आप अपना इरादा तो बताने की कृपा करें।"

इसके बाद उसने पास खड़े एक राजपूत से धीरे-से झुककर कहा—"देखो तो—क्या सुरंग की पिछली खिड़की से सरदार पार हो चुके?"

"अभी नहीं।" राजपूत ने नम्रता से कहा। क़िलेदार ने झुँझलाकर कहा—"मेरा इरादा, तुम मेरा इरादा पूछती हो। और मुझसे ही! ख़ुदा की क़सम, मैं इस गुस्ताख़ी को नहीं बरदाश्त कर सकता। मेरा इरादा अपने उस घमंडी सरदार से ही क्यों नहीं पूछ लेतीं। मैं फिर कहता हूँ, दरवाज़ा खोल दो।" रानी ने तलवार की नोक पत्थर में गाड़कर, उस पर झुककर, सरलता से नीचे झाँककर पूछा—"आख़िर, आप-ऐसे प्रतिष्ठित शाही रिश्तेदार से रावसाहब के झगड़े का कारण क्या है?"

क़िलेदार गुस्से से लाल हो गया। उसने गर्जकर कहा—

"क्या तुम मेरा हुक्म नहीं सुनतीं? क़िला मेरे सुपुर्द कर दो, और सरदार को मेरे हवाले करो।"

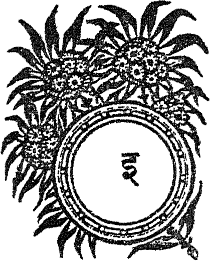
रानी ने फिर सहज-गंभीर स्वर में कहा—"आपको किसने इतना क्रुद्ध किया है?" इसी समय एक राजपूत ने झुककर कहा—"सरदार इस समय सुरंग के बाहर यहाँ से १२ कोस के फ़ासले पर पहुँच गए। अब वह सुरक्षित हैं।"

रानी ने संतोष की साँस ली। उसने हुक्म दिया—"सुरंग के उस मुख को अब पाट दो, और उसे छिपा दो।" राजपूत ने आज्ञा-पालन के लिये प्रस्थान किया।

क़िलेदार अधीर हो रहा था। उसने अग्निमय नेत्रों से क़िले को देखा, और आपे से बाहर होकर कहा—"मैं प्रत्येक को तलवार के घाट उतारूँगा, और क़िले की ईंट से ईंट बजा दूँगा। अगर अब तुमने एक पल-भर भी मेरा हुक्म मानने में देरी की। अभी उसे मेरे सामने लाओ। मैं तुम्हें हुक्म देता हूँ, वह कहाँ है?"

जॉन गाल्सवर्दी

[प्रो० जीवनशंकर याज्ञिक एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]



इस वर्ष साहित्य का नोबेल-पुरस्कार जॉन गाल्सवर्दी को दिया गया है। संसार के सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक को ही यह सम्मान प्राप्त होता है। अतएव पाठकों के मनोरंजनार्थ जगद्विख्यात गाल्सवर्दी की साहित्यिक सेवाओं का संक्षेप से उल्लेख किया जाता है।

नोबेल-पुरस्कार और उसके उदार दाता का हाल तो कदाचित् सभी जानते होंगे। डॉ० अल्फ्रेड नोबेल स्वीडन के बड़े वैज्ञानिक और इंजीनियर थे। उन्होंने डिनामाइट का आविष्कार किया है। रेल-पथ बनाने के लिये पहाड़ों को काटने में बड़े समय और मेहनत की आवश्यकता होती थी। सुरंगों द्वारा डिनामाइट की मदद से यह काम अब सहज में हो जाता है। परंतु डिनामाइट युद्ध-काल में भयकर प्राण-हानि भी खूब करता है। डॉ० नोबेल के आविष्कार से हानि और लाभ दोनो ही अतुल हुए हैं, और इसके द्वारा उनको भी यश और धन दोनो खूब मिले। परंतु इतना भयंकर विस्फोटक संसार को दे जाने के प्रायश्चित्त रूप वह पाँच पुरस्कारों की योजना कर गए। आठ-आठ हज़ार पौंड के पुरस्कार प्रतिवर्ष दिए जाते हैं। उनमें से एक साहित्य-महारथी को भी मिलता है। डॉ० रवींद्रनाथ ठाकुर ने साहित्य का और डॉ० सर सी० वी० रमण ने भौतिक विज्ञान का पुरस्कार प्राप्त कर भारत का मस्तक संसार में ऊँचा किया है।

जॉन गाल्सवर्दी तीसरे अँगरेज़ हैं, जिन्होंने साहित्य-क्षेत्र में इस विजय को प्राप्त किया है। इनसे पहले रुडयार्ड किपलिंग को १९०७ ई० में और बर्नार्ड शॉ को सन् १९२५ ई० में यह पुरस्कार मिला था। गाल्सवर्दी भी सर्व प्रकार से इस सम्मान के योग्य हैं, और उनके पुरस्कृत होने से साहित्य-प्रेमियों को और विशेषकर उनको, जिन्होंने गाल्सवर्दी के ग्रंथों का आनंद लिया है, इस सुअवसर पर आनंदित होना स्वाभाविक है।

गाल्सवर्दी का जन्म १८६७ ई० में हुआ था। हैरो के सुविख्यात स्कूल में शिक्षा पाकर वह ऑक्सफ़ोर्ड-युनिवर्सिटी के न्यू कॉलेज में पढ़े, और फिर १८९० ई० में बैरिस्टर हो गए। परंतु वकालत का पेशा उन्हें पसंद न आया। साहित्य की ओर झुक पड़े, और साहित्य-सेवा ही को अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया। आपका क़ानून का ज्ञान उच्च कोटि का है, जैसा उनकी पुस्तकों से ज्ञात होता है। भ्रमण भी आपने खूब किया है, परंतु इसकी झलक कृतियों में दिखाई नहीं देती।

गाल्सवर्दी ने पहले उपन्यास लिखे, और फिर नाटकों की रचना की। सबसे प्रथम जो उपन्यास प्रकाशित हुए, उन्होंने पाठकों को विशेष

रूप से आकर्षित नहीं किया; परंतु जब एक बार उनकी धाक जम गई, और गुणी जनों ने उनकी कला में विशेषता पा ली, तो गाल्सवर्दी की गणना सफल लेखकों में होने लगी, और उनका यथोचित सम्मान भी होने लगा। वैसे तो उनका पहला उपन्यास सन् १८६८ में निकला था, और फिर वे बराबर निकलते रहे, परंतु उनको ख्याति 'फ़ोरसाइट सागा' के १६२२ में प्रकाशित होने पर मिली। 'दी कंट्री हाउस' और 'दी पैट्रिशियन' जो पहले निकल चुके थे, लोगों को बहुत पसंद आए थे। उपन्यासकार का ध्येय क्या होना चाहिए, और स्वयं अपनी कला में गाल्सवर्दी किस बात का विशेष ध्यान रखते हैं, वह उन्होंने बतलाया है। उनके मतानुसार उपन्यासकार को वस्तु या परिस्थिति का यथावत् ज्ञान करा देना चाहिए। जैसे एक दीपक निष्पक्ष होकर अच्छी और बुरी सभी वस्तुओं को समान रूप से आलोकित कर देता है, वैसे ही उपन्यासकार को भी जीवन और संसार के सभी पहलुओं को यथावत् दिखा देना चाहिए। यदि वर्णन या चित्रण में कोई विकृति आ जाय, तो यह दोष लेखक का समझना चाहिए। कभी-कभी पाठकों को ऐसा जान पड़ता है कि गाल्सवर्दी बड़े ठंडे मिज़ाज से, भावावेश से बिलकुल बचते हुए रचना करते हैं। अपनी कृतियों पर अपने स्वभाव, रुचि आदि का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ने देते। जैसे एक न्यायकर्ता समवेदना के भाव से भावित हुए बिना दो प्रतिपक्षियों में न्याय करता है, वैसे ही गाल्सवर्दी भी अपने पात्रों से तटस्थ रहते हैं। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि सामाजिक समस्याओं का उन्होंने बड़े निष्पक्ष भाव से विवेचन किया है, परंतु ध्यान-पूर्वक उनके उपन्यासों को पढ़ने से यह बात सहज ही अवगत हो जाती है कि उनको दुःखी, निर्बल और असहाय लोगों के साथ बड़ी गहरी सहानुभूति है। केवल समस्या का रूप बाँधने में वह पक्षपात-शून्य रहते हैं। रूस के उपन्यासकारों ने जैसे अन्याय और स्वार्थ-साधन पर ख़ूब मज़मून बाँधे हैं, वैसे ही गाल्सवर्दी ने भी किया है। उनकी सहृदयता की धारा अंतस्तल में गहरी बहती है। हठात् उसका देख लेना संभव नहीं, इसी कारण बहुत-से पाठकों को यह भ्रम हो जाता है कि न्यायकर्ता की तरह गाल्सवर्दी भी भावावेश में कभी नहीं आते।

'फ़ोरसाइट सागा' में भी यही बात प्रमाणित होती है। यह कहानी बहुत बड़ी है, और उसमें मध्यम श्रेणी के धन-लोलुप लोगों का एक अच्छा नमूना दिखाया गया है। मुख्य पात्र संसार की सभी अच्छी वस्तुओं के पीछे दौड़ता है। विक्टोरियाकालीन विचार और उद्देश और उसके बाद में जो परिवर्तन हुए, उनका भले प्रकार मिलान किया गया है। यदि इसी पुस्तक के संबंध में कुछ थोड़ा भी लिखा जाय, तो एक पूरा लेख भी काफ़ी नहीं हो सकता। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आधुनिक काल की आशाएँ, मनोभाव और बेचैनी का जैसा अच्छा चित्र इस पुस्तक में मिलता है, वैसा कदाचित् दूसरे किसी उपन्यास में देखने को नहीं मिलता। कोई प्रश्न ऐसा नहीं, जिसके लिये मनुष्य व्याकुल होकर उधेड़-बुन में नहीं लग रहा, और गाल्सवर्दी ने इस उपन्यास में उसे स्थान न दिया हो।

विषय के अतिरिक्त भाषा, शैली आदि में विशेषता न होने पर कोई सफल उपन्यासकार नहीं बन सकता। गाल्सवर्दी की भाषा बड़ी मार्जित और संस्कृत है। शैली में आत्मविश्वास की पूरी झलक है। छोटे-छोटे नुकीले वाक्य बड़ी गहरी चोट करते हैं। उनका वार कभी खाली नहीं जाता। उनके उपन्यासों में घटना का बाहुल्य नहीं है। इसीलिये सजीव भाषा बिना उनमें नीरसता आ जाने का भय था। परंतु गाल्सवर्दी इस दोष से साफ़ बच गए। कहानी में रवानी खूब है, और कहीं-कहीं तो भाषा इतनी सुंदर हो जाती है कि पढ़नेवाले को मुग्ध कर देती है, और वह कथानक, चरित्र-चित्रण को भी भूलकर भाषा की ही सराहना करता रह जाता है। जिस दिन गाल्सवर्दी के उपन्यासों के विषय पुराने हो जायँगे, और इन सामाजिक प्रश्नों की बहस न रहेगी, तब भी भाषा और शैली के लिये उनका आदर सदा रहेगा।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, गाल्सवर्दी एक सफल उपन्यास-लेखक ही नहीं, नाट्यकार भी हैं। उपन्यासों में जैसी भावना गाल्सवर्दी की मिलती है, वैसी ही नाटकों में भी है। संसार और जीवन का प्रकृत दृश्य ही दिखा देना उनको अभीष्ट है। अपनी कृतियों से स्वयं बेलगाव रहना और निष्पक्ष साक्षी बनकर सब ओर दृष्टि रखना उनका उद्देश है। मानो वह पाठकों को यह बताना ही नहीं चाहते कि उनके मन का झुकाव किसी ओर है भी कि नहीं। परंतु उपन्यासों में जिस प्रकार सहृदयता की एक सूक्ष्म धारा ध्यान-पूर्वक खोजनेवाले को मिल जाती है, उसी प्रकार नाटकों में भी उसका पता चल जाता है। नाटक में कथानक, चरित्र आदि का विस्तृत वर्णन तो हो नहीं सकता, जैसा उपन्यास में संभव है। इसी कारण से लेखक के मनोगत भावों को भले प्रकार दबा रखना या उनको अत्यंत सूक्ष्म भाव से लक्षित करना पड़ता है। गाल्सवर्दी के नाटकों में उनकी सहृदयता उपन्यासों की अपेक्षा कुछ अधिक चमक उठती है। यह बात साधारणतः उलटी मालूम होती है। क्योंकि उपन्यास में रचयिता को अपना व्यक्तित्व दिखाने का जितना अवसर मिलता है, उतना नाटक में नहीं। फिर भी गाल्सवर्दी के नाटकों द्वारा उनके मनोगत भावों का परिचय सहज में मिल जाता है। नाटकों का आधार प्रायः कोई नैतिक या सामाजिक प्रश्न होता है। उनका उद्देश सुधार होता है, और सुधार-दृष्टि इतनी प्रबल होती है कि कला से भी उसका महत्त्व बढ़ जाता है। एक प्रकार से यह दोष कहा जा सकता है। क्योंकि साहित्य में कला प्रधान होनी चाहिए, और अन्य उद्देश गौण होना चाहिए। उन्होंने स्वयं एक जगह नाटक का भविष्य बतलाते हुए लिखा है कि उसकी गति दो धाराओं में प्रवाहित होगी। एक तो फ़ोटोग्राफ़ की नाईं संसार के दृश्यों को यथावत् अंकित करने में और दूसरी सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने में। हम नहीं कह सकते कि आगे चलकर ये दोनों धाराएँ बिलकुल स्पष्ट रूप से अलग हो जायँगी या दोनों मिली रहेंगी। परंतु गाल्सवर्दी की नाट्यकला पर उनके विचारों का और नाटक के उद्देश का पूरा प्रभाव पड़ा है, और यह स्वाभाविक ही है। जो उनका सिद्धांत है, उसी

के अनुसार उनकी रचना भी होती है। यहाँ केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि गाल्सवर्दी की कला उस उच्च कोटि की नहीं है, जिसमें कलाकार अपने को भूल जाता है, और उसके मनोगत भाव प्रवाह रूप से निकलते चले आते हैं। जो कहने की बात है, उस पर अधिक ध्यान और ज़ोर है, और उसको किस ढंग से कहा जाय, इसको अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता। प्रधानतः सामाजिक समस्याओं की ओर उनका ध्यान विशेष जाता है। परंतु वह अपने सिद्धांतों को किसी के माथे ज़बरदस्ती नहीं लादते। जो दशा है, उसको वह ठीक दिखाते हैं। यह पाठकों का काम है कि नाटकों को पढ़कर अपना ही सिद्धांत स्थिर करें। सिलवर-बॉक्स (चाँदी की डिबिया) उन्होंने सन् १६०६ में प्रकाशित किया, और फिर 'स्ट्राइक़' और 'जस्टिस' प्रकाशित हुए। न्याय धनियों का पक्षपात करता है, निर्धन के साथ उग्र व्यवहार करता है। जब मिल के कारीगरों और पूँजीपतियों में झगड़ा होता है, हड़ताल होती है, तो बेचारे मजदूरों को कहीं अधिक हानि होती है, और पूँजीवाले थोड़े नुक़सान को सहज में बरदाश्त कर लेते हैं। लड़ाई बराबरी की नहीं होती। इन्हीं बातों को नाटक के रूप में गाल्सवर्दी ने दिखाने का सफल प्रयत्न किया है। एक बात साथ में और याद रखने योग्य है कि नाटककार की दृष्टि केवल आजकल होनेवाले सामाजिक बखेड़ों में ही नहीं उलझी रहती। वह सुदूरवर्ती भविष्य को भी देखता है। समस्याएँ भले इसी काल की मालूम होती हों, वास्तव में नाटककार की विचार-पद्धति कुछ मौलिक सिद्धांतों पर अवलंबित है, जिसका प्रभाव मनुष्य-समाज पर सदा रहा करता है।

'सिलवर-बॉक्स' में एक अमीर और एक ग़रीब चोरी करने के अपराध में पकड़े जाते हैं। ग़रीब पर तो अदालत में इलज़ाम लगाया जाता है, और अमीर ख़ाली गवाह की हैसियत से आता है। दोष दोनो का एक-सा है। एक को डाट-फटकार देकर जज अपना कर्तव्य पूरा करता है, और ग़रीब को जेल भेजता है, जिसके कारण उसके परिवार की दुर्दशा हो जाती है। जुर्म दोनो का एक, परंतु सामाजिक स्थिति में भेद होने से सज़ा अलग-अलग मिलती है। ग़रीब की सज़ा से उसके परिवार तक को व्यर्थ में कष्ट भोगना पड़ता है। संसार में यही तो रोज़ हो रहा है। जो जुर्म क्लाइव ने किया, और वह एक महान् व्यक्ति कहलाया, उसी जुर्म के करने पर साधारण मनुष्य जेल भोगते हैं।

'स्ट्राइक़' में धनी और ग़रीब मज़दूरों की लड़ाई का परिणाम दिखाया गया है। दोनो पक्ष अपनी-अपनी बात पर अड़ गए हैं। हड़ताल हो गई है। कारख़ानों में काम बंद है। मज़दूर भूखे मरते हैं, और मिल-मालिक केवल आर्थिक हानि उठाते हैं। जिन शर्तों पर समझौता पहले ही हो सकता था, अंत में उन्हीं को मानना पड़ता है, परंतु दोनो पक्षों की ख़ूब हानि हो जाने पर। यही दशा सर्वत्र देखने को मिलती है। एक पक्ष को घाटा उठाना पड़ता है, तो दूसरे के प्राण पर आ बनती है। फिर भी झगड़े हुए बिना नहीं रहते।

इसी प्रकार 'जस्टिस' में भी समाज का एक

दूसरा रोग दिखाया गया है। मुसीबत पड़ने पर एक व्यक्ति लाचार होकर जाली चेक बनाता है, और फिर पकड़ लिया जाता है, जेल भोगता है। और छूटकर जब आता है, तो फिर वही आर्थिक कठिनाइयों से घबरा उठता है, और कोई उपाय न देखकर फिर जाल बनाता है, और अंत में आत्महत्या कर लेता है। समाज ने जालियों, चोरों, डाकुओं से अपनी रक्षा का पूरा प्रबंध कर रक्खा है। ठीक है, परंतु समाज ने कभी यह भी अपना क़ानूनी कर्तव्य समझा है कि जो ईमानदारी से अपना निर्वाह न कर सकें, उनको क्या मदद दी जाय ? निष्ठुर समाज का कहना यही है कि भूखे मर जाओ, पर चोरी से पेट मत भरो। न्यायकर्ता यह देखता ही नहीं कि कैसी दशा में कोई व्यक्ति चोरी या जाल बनाने के लिये बाध्य हुआ था। चोरी करने की आवश्यकता किसी ईमानदार आदमी को हुई, तो कुछ अंश में तो समाज भी उत्तरदायी है।

गाल्सवर्दी के और भी कई नाटक बहुत लोकप्रिय हैं। जिन विषयों को बड़े-बड़े नाटककारों ने अपनाया है—जैसे प्रेम, ईर्ष्या, द्वेष आदि—उन भावों को गाल्सवर्दी ने अधिक स्थान नहीं दिया। उनमें दया है, लोकोपकार की प्रबल भावना है, और एक सच्ची लगन है। इन्हीं के कारण उनके नाटक सजीव हो उठते हैं। एक बड़ा दोष यह कहा जा सकता है कि गाल्सवर्दी में हास्योत्पादक भाव की बिल्कुल कमी है। उनके विवेचन में, कटाक्ष में कुछ कटुता है, इसका कारण एक तो लेखक का अपना स्वभाव है, और दूसरा यह है कि उनको अपनी कृतियों को किसी प्रकार सजाने की ज़रा भी परवा नहीं है। भाषा भी उनकी बोल-चाल की है। कहीं बनावट का नाम नहीं। जैसे पात्र और जैसी वे भाषा काम में लाते हैं, वैसे ही गाल्सवर्दी लिखते भी हैं। इन सबके होते हुए भी नाटकों में दुर्बलता नहीं आने पाई है।

इसमें संदेह नहीं कि जो सम्मान गाल्सवर्दी को नोबेल-पुरस्कार विजयकर प्राप्त हुआ है, उसके लिये वह सर्व प्रकार से अधिकारी हैं। यहाँ उनके सब ग्रंथों के नाम भी देने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। दो-चार की रूप-रेखा ही दिखाई गई है। उनको न्यू कॉलेज ने अपना ऑनरेरी फ़ेलो बनाया, और सेंट एंड्रूज़ ने डॉक्टर की पदवी से विभूषित किया, और बादशाह ने ऑर्डर ऑफ़् मेरिट सन् १९२९ ई० में प्रदान किया, और इस वर्ष नोबेल-पुरस्कार तो मिला ही है।

गॉल्सवर्दी के नाटकों के हिंदी-अनुवाद हिंदोस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित होंगे। श्रीप्रेमचंदजी अनुवादक हैं। हिंदी का इससे बहुत हित होगा, इसमें संदेह नहीं *।

---

* अभी समाचार-पत्र से ज्ञात हुआ कि जॉन गाल्सवर्दी का ३१ जनवरी को, विलायत में, देहांत हो गया! लेख समाप्त होते ही सूचना मिली।

अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति

[श्रीयुत परिपूर्णानंद वर्मा]

ख़तरे की घंटी



अभी हाल ही में लंदन में प्रसिद्ध पत्रकार मि० रैटक्लिफ़ का एक महत्त्व-पूर्ण भाषण हुआ है। मि० रैटक्लिफ़ ने आज के तीस वर्ष पहले एक पत्र का संपादन करने के लिये भारत में प्रवेश किया था। उस समय की एशिया की परिस्थिति पर आप इन शब्दों में प्रकाश डालते हैं—

"जनता में कुछ जागृति उत्पन्न हो गई थी। कलकत्ते में ही यह जागृति स्पष्ट देख पड़ती थी। पर भारत की राष्ट्रीयता कुछ अँगरेज़ी पढ़े-लिखे लोगों तक ही सीमित हो गई थी। वे अपना आदर्श तथा विचार अँगरेज़ों से ही ग्रहण करते थे। लॉर्ड कर्ज़न जब वाइसराय थे, नौकर शाही अपनी पूर्णता की चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी।

"जापान अपनी नवीन दुनिया के निर्माण की तैयारी में लगा हुआ था, और ज़ार के रूस को चुनौती देने के लिये कमर कस रहा था। चीन में मंचू-शासन का दीपक बुझना ही चाहता था। एशिया का तुर्किस्तान अभी तक निद्रा में था। फ़ारस ब्रिटेन तथा रूस के प्रभाव-क्षेत्र के टुकड़ों में बँटा हुआ था। एशिया माइनर से चीनी सीमा तक समूचा प्रदेश सदियों की नींद सो रहा था।"

लेकिन आज तो एशिया में बड़ा परिवर्तन हो गया है। मि० रैटक्लिफ़ के ही शब्दों में—

"तुर्की साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े हो गए हैं। पूर्व में रहनेवाले योरपियनों को कल्पना भी न थी कि मुसलिम दुनिया इतनी जल्दी बदल जायगी। लेकिन वे देख रहे हैं कि फ़ारस का पुनर्निर्माण श्रीरज़ाख़ाँ पहेलवी ने कर दिया है; तुर्किस्तान का कमालपाशा ने। अरब में नए ही राज्य पनप उठे हैं। फ़िलस्तीन में नया प्रयोग हो रहा है। किंतु दुःख यह है कि जिस ब्रिटेन ने तुर्की के सुलतान के क्रूर शासन से अनेक देशों को स्वतंत्र होने में सहायता दी थी, वही इस नवीन युग में, मध्यपूर्व में अपनी नैतिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने में असफल रहा।

"किंतु इस समय एशिया में दो स्थान बहुत ही ख़तरे के हैं—चीन और भारत। चीन में बड़ी कठिन समस्या है। जापान ने मंचूरिया में एक नवीन साम्राज्यवादी नीति प्रारंभ की है। इस नीति का परिणाम अराजकता—और अंत में जापानी शक्ति में वृद्धि होगा। किंतु चीनी जनता के हित के विपरीत जो भी बात होनेवाली हो, वह केवल चीन ही नहीं, किंतु पश्चिम के ही हित के विरुद्ध है।

"यही बात भारत के लिये भी है। हमको केवल अपने व्यापार का ही ख़याल नहीं करना चाहिए। कभी वहाँ पर पुलिस का राज था। फिर गोल मेज़ की नीति बरती गई। उसके बाद आज फिर राज-नीतिक नेता जेल में हैं, और उनके हज़ारों अनुयायी भी। पुलिस रोज़ दमन कर रही है। इससे जनता नाराज़ होती जा रही है। ज़रा सोचो तो, आगे दस वर्ष में एशिया में क्या होगा? पश्चिमीय सभ्यता के लिये कितने ख़तरे और कितनी आशाएँ हैं?"

मि० रैटक्लिफ़ चीन और भारत को भावी विपत्ति का केंद्रस्थल मानते हैं, और उनकी सम्मति में "व्यापार का ख़याल छोड़कर इन देशों के साथ उदारता का व्यवहार करने में सभ्यता की रक्षा हो सकती है।"

अभी हाल ही में इँगलैंड के मज़दूर-दल के प्रसिद्ध पत्र 'डेली हेरल्ड' में ब्रिटिश पत्रकार-जगत् में क्रांतिकारी परिवर्तन करनेवाले नार्थ-क्लिफ़ पर मि० हानेन स्वाफ़र ने एक लेख लिखा है। लेख बड़ा रोचक है, तथा उसकी प्रत्येक पंक्ति पढ़ने लायक़ है। उसमें मि० स्वाफ़र लिखते हैं—"इस समय ब्रिटिश साम्राज्य क्षत-विक्षत हो रहा है। उसके टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं।" आप लिखते हैं—

"आस्ट्रेलिया हमारी कुछ भी चिंता या परवा नहीं करता, और अंतरीय तो यह कहकर कि 'आफ्रिका आफ्रिकनों का है', अपना अलग झंडा भी फहरा रहा है। कनाडा तो पूरा अमेरिकन हुआ जा रहा है। मिश्र हाथ से निकल गया। भारत मत-भेदों का घर है। आयर्लैंड बलवा कर बैठा है, यहाँ तक कि नाम-मात्र की शपथ भी उसे अब मंज़ूर नहीं है। वेल्स और स्कॉटलैंड में 'होम रूल' के आंदोलन उमड़ रहे हैं, जिनका परिणाम कल्पना से परे है।"

आगे चलकर आपने साम्राज्यवाद को 'क्रूरता' कहा है, तथा उसकी रक्षा का उपाय बतलाया है—"एक नवीन, उदार तथा उन्नत नीति ही परिस्थिति को सँभाल सकती है।"

ख़तरे का कारण

ऐसा क्यों है कि ब्रिटिश साम्राज्य इस समय इतनी विपत्ति में है? भारत ख़तरे का घंटा क्यों है? आस्ट्रेलिया क्यों नहीं परवा करता? जहाँ एक ओर ओटावा में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिनिधि एकत्रित होकर साम्राज्य-वस्तु-संरक्षण की नीति स्वीकार करते हैं, तथा मि० बाल्डविन*-ऐसे ज़िम्मेदार व्यक्ति ओटावा को ब्रिटिश दूरदर्शिता की सबसे बड़ी विजय मानते हैं, वहीं ब्रिटेन के मज़दूर पक्ष, कनाडा का मज़दूर-दल, आस्ट्रेलिया का स्वतंत्र दल—सब एक स्वर में ओटावा के निर्णयों की भर्त्सना कर रहे हैं, और भारत के विषय में तो सबसे सुंदर बात श्रीघनश्यामदास बिड़ला ने लिखी है। वह लिखते हैं—

"शुद्ध आर्थिक बुनियाद पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि भारत और ब्रिटेन का समझौता या साझा अन्याय-युक्त तथा असमान रूप से हुआ है। चीज़ों की मात्रा तथा गुण दोनो दृष्टि से भारत की गहरी हानि हो रही है। हमारे उद्योग और व्यवसाय को धक्का पहुँचेगा, हमारे अधिक मात्रा के निर्यात के व्यापार में गड़बड़ हो जायगी, तथा हमारे ऊपर गहरा बोझा पड़ेगा।...इस निर्णय से जहाँ ब्रिटेन को ३७ करोड़ का लाभ होगा, वहाँ हमको केवल साढ़े दस करोड़ का—वह भी संदिग्ध है।"

ब्रिटेन की इस नीति का क्या रहस्य है? क्या इसी नीति के कारण तो वेल्स और स्कॉटलैंड आज़ाद होना नहीं चाहते हैं; मि० रैटक्लिफ़ के शब्दों में "भारत में पुलिस-राज है" और मि० स्वाफ़र के शब्दों में "भारत मतभेदों का घर है, और मिश्र तो हाथ से निकल ही गया!"

ब्रिटेन को मिश्र की रुई की तथा भारत के कच्चे मालों की ज़रूरत और लोभ है। चीन में विदेशी राष्ट्रों का शुद्ध स्वार्थ है अपना व्यापार। इसीलिये ऐसा प्रतीत होता है कि ख़तरे की घंटी केवल व्यापार के कारण बज रही है।

अभी हाल ही में मि० लिओनिल कर्टिस* की एक किताब प्रकाशित हुई है। उसमें मि० कर्टिस ने बड़े सरल शब्दों में लिखा है—

"योरपियन शक्तियों की यह सबसे बड़ी भूल है कि वे यह समझते हैं कि चीन के साथ उनका केवल व्यापार का ही संबंध है। जिस नीति का उद्देश्य केवल व्यापार होगा, उससे अंत में व्यापार ही न

* ओटावा से लौटने पर लंदन में व्याख्यान देते समय कहा था।

* The Capital question of China—Lionel Curtis.

रह जायगा। इससे बेहतर नीति तो यह है कि चीन की सभी कठिनाइयों को स्वीकार कर लिया जाय, तथा शांति और व्यवस्था की स्थापना में उसकी सहायता की जाय। चीनी जनता का कल्याण ही पश्चिम का कल्याण है।" मि० रैटक्लिफ़ यही बात भारत के लिये भी कहते हैं। इससे यह प्रकट हुआ कि व्यापार का लोभ ही भावी भय या विपत्ति का कारण है। क्या व्यापार इतनी बड़ी वस्तु है कि उसकी बलि-वेदी पर मनुष्यता ही निछावर कर दी जाय?

मंचूरिया का प्रश्न

चाहे अनुचित ही क्यों न हो, पर इस समय तो मनुष्यता व्यापार की बलि-वेदी पर निछावर हो रही है। मध्य योरप में एक दूसरे राज्य का व्यापार चौपट करने के लिये चुंगी की दीवालें इसी बुनियाद पर खड़ी की गई हैं कि पड़ोसी का सत्यानाश हो। सभी अपने पड़ोसी के सत्यानाश की कामना करते हैं। इससे व्यापार पनप नहीं पाता। पैसे को 'आँख' आ गई है। रुपए की बाज़ार तंग हो गई है। चारो ओर बड़ी विपत्ति है। सभी अब इस बात को महसूस करते हैं कि चुंगी की दीवाल अनुचित है। इसे दूर करना चाहिए। पर अगर कोई ऐसी दीवालों को तोड़ने की कोशिश करता है, तो उसके दुश्मन उठ खड़े होते हैं। चुंगी की दीवाल तोड़ने का अर्थ राजनीतिक ऐक्य समझा जाता है, और इसीलिये आज दो वर्ष से जर्मनी और आस्ट्रिया अपनी चुंगी की दीवार तोड़ना चाहते हैं, पर फ्रांस के मारे ऐसा नहीं हो पाता।

जापान मंचूरिया को निगल जाना चाहता है। अभी जापान की महासभा में विदेश-मंत्री ने सूचित किया है कि जापान की सहायता (षड्यंत्र) से, चीन की राष्ट्रीय सरकार से स्वतंत्र, जो राजतंत्र शासन-प्रणाली मंचूरिया में स्थापित कराई गई है, जापान उसे जायज़ सरकार मंज़ूर कर लेगा।

संयुक्तराज्य अमेरिका जापान की शक्ति नहीं बढ़ने देना चाहता। प्रशांत महासागर में वह जापानी प्रभुता बढ़ने का विरोधी है। चीन की राष्ट्रीय सरकार अपनी महत्त्वाकांक्षा का यह अनादर नहीं स्वीकार करना चाहती। उसने राष्ट्र-परिषद् के ज़रिए जापानी योजना का पूरा विरोध किया, पर जापान अब अपने मन की करने का निश्चय कर चुका है।

ऐसा क्यों? जापान एशिया की ही शक्ति है, पर वह एशिया को अपने लोभ में खा जाना चाहता है। मंचूरिया में उसको खानों का, प्राकृतिक साधनों का, जापान की बढ़ती आबादी बसाने का लोभ है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये वह सब कुछ नोचता कर सकता है।

अमेरिका की स्वार्थपरता

अमेरिका में, वहाँ की सरकार की सहायता से, संयुक्तराज्य की विदेशी नीति के संबंध में एक पुस्तक प्रतिवर्ष प्रकाशित हुआ करती है*। इस पुस्तक में अमेरिका की विदेशी नीति का वर्णन और समर्थन रहता है। समर्थनवाली पुस्तक में ही साफ़ शब्दों में लिखा हुआ है कि दक्षिण अमेरिका में, संयुक्तराज्य के दक्षिण में अमेरिकन सरकार ने अपने राज्य के आर्थिक हितों के लिये जनता की स्वाधीनता का अपहरण किया है, तथा उसके साधनों को लूटकर 'अपनी' जनता का पेट भर दिया है। पनामा की नहर के लोभ से निकारागुआ में हज़ारों का निरपराध रक्त बहाया गया, और २४ घंटे के अंदर विप्लव कराकर पनामा को ब्रेज़िल से अलग करा दिया गया। अब भी वारसैंडिनो निकारागुआ में अमेरिकन-स्वार्थों से संघर्ष कर रहा है, और आए दिन राष्ट्रीयता के नाम पर दो-चार जानें जाती हैं। निकारागुआ का प्रधान व्यापार अमेरिकन सरकार के हाथ में है।

कोस्टारिका, क्यूबा, सैंडोमिंगो, होंडुराज, गुआटे-

* Survey of American Foreign Relations—Prepared under the Direction of Charles P. Howland, Pub. New Havan, Yale University, New York.

माला, क्यूबा सभी पर अमेरिकन प्रभुता की छाप है, और सारा लाभदायक व्यापार उसने अपने हाथ में कर रक्खा है। प्रजा इसका विरोध करती है, इसलिये इन स्थानों के सभापति या राष्ट्रपति अमेरिकन सेना की देख-रेख में चुने जाते हैं। इसी प्रकार पचास वर्ष तक फ़िलीपाइन द्वीपसमूह को चूसने के बाद अमेरिकन कांग्रेस ने अब से आठ वर्ष बाद उसे स्वराज्य देने का वादा किया है।

इस प्रकार विश्व में चारो ओर स्वार्थों का संघर्ष हो रहा है। व्यापार, पैसा, लोभ, बस इनका ही शासन है। यही नीति के निर्माता और प्रणेता हैं। इसका परिणाम क्या होगा?

प्रजातंत्र का पतन

कहते हैं, प्रजातंत्र में प्रजा की इच्छा और कल्पना से काम होता है। वह अपने हित को पहचानकर अपने प्रतिनिधियों से इस स्वार्थ-वृत्ति को दूर करने का आदेश करेगी। पर इस समय प्रजातंत्र कहाँ पर है? अमेरिका में कुछ पूँजीपति व्यवसायी ही राज कर रहे हैं। इस दुःखद सत्य पर विशेष प्रकाश डालना ही व्यर्थ है। जापान में सेना—सैनिक-नेता का शासन है। सैनिक-इच्छा के विपरीत जाने पर राजनीतिज्ञों को गोली मार दी जाती है। सैनिक-इच्छा को उसी समय शांति मिलती है, जब शंघाई के निरपराध चीनियों का रक्त बहाया जाता है।

चीन में पुनः चांग-के-शंक का निरंकुश शासन हो गया। चांग की निरंकुश प्रभुता से ऊब-कर चीनियों ने उनको त्याग दिया था, पर जापान के आक्रमण ने सिद्ध कर दिया कि चीन को अभी 'डिक्टेटर' की ही ज़रूरत है। तुर्की में कमालपाशा, फ़ारस में रज़ाशाह, अरब में इब्न-सऊद, अफ़ग़ानिस्तान में नादिरशाह—कहाँ है प्रजातंत्र! एक व्यक्ति ही शासन-चक्र का धुरीण है। कह सकते हैं कि प्रजा उसे पसंद करती है। जनता क्या पसंद करती है, यह तो कोई नहीं कह सकता। वह क्षणिक सुख चाहती है, अपने अधिकार का उपयोग नहीं। जिस समय इँगलैंड की गद्दी पर एलीज़बेथ-ऐसी चतुर शासिका थी, जनता ने पार्लिया-मेंट को भूलकर भी याद नहीं किया। वही जनता चार्ल्स के समय इतनी उग्र हो गई कि पार्लियामेंट की डिग्री से नरेश का गला तक काट डाला गया।

रूस के स्टैलिन, इटली के मुसोलिनी, फ्रांस के हेरियट, ब्रिटेन के बाल्डविन और आयर्लैंड के डिवि-लेरा क्या हैं? इनमें कौन-सी ऐसी बात है, जो इन्हें डिक्टेटर नहीं साबित करती?

जर्मनी का विप्लव

डिक्टेटरों की बात करते-करते जर्मनी का स्मरण हो आता है। हिंडेनबर्ग जर्मनी के राष्ट्रपति हैं। क़ैसर के इस सेनापति को जर्मनी के प्रजातंत्र का कट्टर पक्षपाती समझा जाता था, पर हिंडेनबर्ग ने क्या किया? क्रमशः उन्होंने जर्मनी की स्वाधीनता को हड़प लिया है। अभी कुछ मास पूर्व राष्ट्रपति के पद पर उनका फिर से चुना जाना असंभव था। सुयोग्य राजनीतिज्ञ डॉ० ब्रूनिंग ने अपनी सारी शक्ति लगाकर उनका चुनाव करवाया। उसके कुछ समय बाद ही हिंडेनबर्ग ने ब्रूनिंग को बर्ख़ास्त कर दिया, और जर्मनी के चांसलर या प्रधान मंत्री एक पुराने सेनापति हरवॉन पापेन को बनाया। इस सेनापति की नियुक्ति का विरोध राष्ट्रपति ने निरंकुश फ़रमान निकालकर दबा दिया। वॉन पापेन के पास जर्मनी के पुनः निर्माण का कोई कार्य नहीं है। यदि कार्य या कार्य-क्रम है, तो जर्मनी के नाज़ी या फ़ासिस्ट-नेता हर हिटलर के पास। हर हिटलर तथा वॉन पापेन का अपनी निरंकुशता पर विजय प्राप्त करने के लिये युद्ध हो रहा है। जर्मनी तबाह तथा बर्बाद हो रहा है। वॉन पापेन पार्लियामेंट में बहुमत के बिना ही, हिंडेनबर्ग की क़ानूनी डिग्रियों के बल पर राज कर रहे हैं।

नाज़ी दल ने अपने समर्थन के लिये नाज़ी सेना तैयार की। वॉन पापेन का समर्थन कर रहा है 'स्टील हेलमेट' दल। यह सेना एक प्रकार से राजतंत्र-वादियों की है। यद्यपि इसका उद्देश्य जर्मनी का

प्राचीन गौरव पुनः प्राप्त करना है, पर इस गौरव में राज-गौरव भी छिपा हुआ है। अभी इस सेना का वृहत् प्रदर्शन बर्लिन में हुआ था। उस अवसर पर डेढ़ लाख जर्मन उपस्थित थे। बड़ा उत्साह था। भूतपूर्व युवराज सबसे सम्मानित स्थान पर थे। वॉन पापेन इस सेना के 'वेश' में थे।

इस प्रकार जर्मनी में दो दल अब अपनी सेना लेकर लड़ेंगे। राजतंत्र की कैसी विजय तथा प्रजातंत्र की कैसी पराजय है ?

सेना चाहिए

निरशस्त्रीकरण की बात ही व्यर्थ है। इस समय डिक्टेटरों को अपने समर्थन के लिये सेना चाहिए। फिर वास्तविक निरस्त्रीकरण क्या और कैसे हो सकता है ?

इस समय राष्ट्र अपने वैमनस्य के कटु गर्त में हैं। मानवी विचार तो तिरोहित हो गए। फ्रांस ज़बर्दस्ती जर्मनी को निरस्त्र रखना चाहता है। जर्मन-सरकार ज़बर्दस्ती अपनी सेना बढ़ाना चाहती है। उसने अभी फ्रांस को चैलेंज दे भी दिया है। इटली जर्मनी का साथ दे रहा है। फ्रांस इटली और जर्मनी के साथ से घबराता है। इटली से रूस से दोस्ती है। रूस से तुर्किस्तान से अभी दोस्ती हो गई है। तुर्किस्तान ने रूस से ८० करोड़ सिक्के क़र्ज़ लिए हैं। फ़ारस और रूस से मैत्रेय है।

रूस मंचूरिया का जापानी-करण नहीं देख सकता। वह इसके विपरीत है, विरुद्ध है। अमेरिका भी रूस की इस नीति से सहमत है, पर ब्रिटेन रूस, अमेरिका और जापान का वैभव नहीं चाहता है। ब्रिटेन का एकमात्र मित्र फ्रांस ही बच जाता है।

ऐसी स्थिति में क्या होगा ? क्या सचमुच चीन तथा भारत ख़तरे की घंटी नहीं हैं ? यदि चीन की समस्या न सुलझी ? यदि भारत की अशांति दूर न हुई ? यदि जर्मनी में राजतंत्र फिर संस्थापित हो गया ? या निरंकुशता ने जन्म ले लिया ? या जर्मनी इटली, रूस और तुर्किस्तान की संधि हो गई ? या अमेरिका रूस की ओर हो गया ?

स्वार्थपरता इस समय चरम सीमा पर पहुँच चुकी है। मानव-जीवन की कविता का लोप हो चुका है। जीवन का स्वाद चला गया है। अब तो सदैव निरंतर संघर्ष है ! विग्रह है ! कलह है !

स्वार्थ तथा परार्थ का, हित-अनहित का, भले-बुरे का, राष्ट्रीयता और अंतर्राष्ट्रीयता का एक भीषण युद्ध ज़रूर होगा। कोई शक्ति इसे अब रोक नहीं सकती। अब हम इसी युद्ध, इसी विप्लव, इसी क्रांति की ओर चले आ रहे हैं। यह क्रांति नहीं, महाक्रांति ही होगी। क्या इसकी चिनगारी भारत या चीन में पनप रही है ? ईश्वर ही जाने।

नेत्र, उनकी रक्षा और सौंदर्य

[श्रीबुद्धिसागर वर्मा बी० ए०, एल्० टी०]

(गतांक से आगे)



नेत्रों की चमक और शोख़ी—नेत्रों की वास्तविक चमक मारी जाने पर बनावटी चमक उत्पन्न करने के लिये आँख में 'बेलाडोना' या 'ऐट्रोपीन' डालना ठीक नहीं। यदि ताज़ी नारंगी का अर्क़ आँखों में डाला जाय, तो आँख बहुत चमकीली और शोख़ हो जाती है। इसका प्रभाव लगभग एक घंटा बाद देखने में आता है, और कई घंटों तक स्थिर रहता है। यह प्रयोग शृंगार-वृद्धि के साथ-साथ नेत्रों के लिये हितकर भी है। अर्क़ डालने का सर्वोत्तम ढंग तो यही है कि इसे उस पिचकारी की सहायता से डाला जाय, जिससे आँख में दवा के बूँद टपकाए जाते हैं। इस पिचकारी को अँगरेज़ी में ड्रॉपर कहते हैं। दूसरा ढंग यह है—निचले पपोटे को नीचे की ओर खींचकर, उस पर अर्क़ की कुछ बूँदें गिराकर उसे बंद कर लिया जाय, तो अर्क़ सारी आँख में फैल जायगा। कुछ समय पश्चात् आँख में थोड़ा-सा कष्ट जान पड़ेगा, किंतु इस क्षणिक कष्ट से डरना नहीं चाहिए। अनुभव बतलाता है कि इस प्रकार नेत्र प्रकाशमान् एवं चमकीले ही नहीं हो जाते, वरन् उनकी ज्योति भी तीव्र हो जाती है। किंतु स्मरण रहे कि यदि आँखें दुखती या सूजी हुई हों, तो उक्त प्रयोग भूलकर भी न करना चाहिए। अर्क़ डालने के प्रथम निश्चय कर लो कि तुम्हारी आँख में कोई ख़राबी नहीं है। यह प्रयोग केवल नीरोग आँखों के लिये ही लाभदायक हो सकता है।

भोजन—घृत का सेवन नेत्रों के लिये अत्यंत हितकर है। पहले घी बहुत सस्ता था। घर-घर घी-दूध की धाराएँ बहा करती थीं। तभी पुराने आदमियों की दृष्टि गरुड़ के समान तीव्र रहकर वृद्धावस्था तक में निर्बल नहीं होती थी। आजकल शुद्ध घी प्राप्त नहीं होता। यही कारण है कि नेत्र-संबंधी विविध रोग सर्वत्र विराजमान हैं। ऐनक तो आजकल हाथ धोकर पीछे पड़ी है। धारोष्ण दुग्ध भी नेत्रों के लिये बहुत उपयोगी है। आँवला नेत्रों का ख़ास पोषक है, इसे जिस प्रकार, जिस अवस्था में हो सके, नित्य सेवन करते रहना चाहिए। भोजनोपरांत नियम से सदा सौंफ़ चबाना या पान में रखकर खाना कठिन-से-कठिन नेत्र-रोगों से आयु-पर्यंत सुरक्षित रखता है। शलजम, नारियल, मिश्री, हल्दी, ज़ीरा, केशर, दालचीनी, लौंग, मेवे, मुलहटी, हड़, काली मिर्च, हींग आदि-आदि पदार्थों का सेवन नेत्रों के लिये हितकर है। नेत्रों को सुरक्षित रखनेवालों को तैल, खटाई, बैंगन तथा समस्त बादी पदार्थ, भुने हुए चने, जुवार आदि की अधिकता से यथाशक्ति बचना चाहिए। मदिरा, गाँजा, चरस तथा अन्य मादक द्रव्यों को आँख का शत्रु समझो। कोकीन का अधिक सेवन भी नेत्रों के लिये अहितकर है। तंबाकू खाने-पीने और सूँघने का आम रिवाज पड़ गया है। आरोग्यता-पद्धति के रचयिता श्रोत्रिय पं० लक्ष्मीधर शर्मा वैद्यराज तंबाकू के विषय में लिखते हैं—"परीक्षा से अच्छी भाँति निर्णय हो चुका है कि तंबाकू खाने से आँख, दाँत एवं मस्तिष्क निर्बल पड़ जाते हैं, तथा बुद्धि भी मंद हो जाती है।" शिलाजीत, ब्राह्मी, च्यवनप्राश, शंखपुष्पी बूटी आदि का नियम-पूर्वक सेवन नेत्रों की ज्योति को ख़ूब बढ़ाता है।

साधन—(१) नासिका के अग्रभाग में दोनो आँखों की दृष्टि ध्यान-पूर्वक जमाना चाहिए। जितनी भी देर तक इस प्रकार दृष्टि स्थिर रक्खी जा सके, उतना ही अच्छा है। जब दृष्टि थक जाय, एकदम उसे किसी दूर के पदार्थ पर स्थिर करो। यह पदार्थ चाहे आपके कमरे में हो अथवा किसी बाहरी दृश्य में। एक-दो मिनट वहाँ स्थिर करके फिर अपनी दृष्टि दोनो भौंहों के बीच के स्थान पर स्थिर करनी चाहिए। नासिकाग्र दृष्टि से भ्रूमध्य दृष्टि कुछ कठिन है। पहलेपहल दोनो स्थानों पर कठिनता प्रतीत होगी, किंतु दो-तीन मास के निरंतर अभ्यास से दृष्टि स्थिर होने लगेगी। इस प्रकार दृष्टि की स्थिरता से उसमें एक प्रकार का वीर्य आता है। दृष्टि वेधक बन जाती है, और नेत्रों की चंचलता हटने लगती है।

(२) नेत्रों को सुंदर बनाने का एक और भी साधन है। एकांत में बैठकर आइना सामने रक्खो। आँखों को ध्यान-पूर्वक देखो। फिर पहले दाहनी आँख पर दाहने हाथ की मध्यमा और अनामिका उँगली पानी में भिगोकर धीरे-धीरे नाक की ओर से कान की ओर फेरो, और बाईं आँख से देखते रहो। इस समय मनःशक्ति (Will Power) का प्रयोग करो, अर्थात् ध्यान जमाओ कि तुम्हारी आँख नीरोग, सुंदर एवं बलवान् हो रही है। उँगली फेरने का यह काम कम-से-कम ३०-४० बार होना चाहिए। इसी प्रकार बाईं आँख पर बाएँ हाथ की उँगलियों से करना चाहिए। इससे एक प्रकार की विद्युत्-शक्ति उत्पन्न होगी, जो नेत्रों को वास्तव में दीर्घ, प्रकाशमान् एवं सुंदर करेगी। इसमें संदेह नहीं।

उषःपान—भाव मिश्रजी लिखते हैं—"जो व्यक्ति प्रातः उठकर नित्यप्रति नासिका द्वारा जल पीता है, वह बड़ा बुद्धिमान् और नेत्र-दृष्टि में गरुड़-समान दूर-दर्शी हो जाता है।" फिर लिखते हैं —"तीन अंजलि जल नासिका द्वारा (सूर्योदय के प्रथम) नित्य पीना व्यंग्य रोग (झाईं आदि), बाल पकना, पीनस, स्वरभंग, कास-श्वास, शोथादि रोगों को नष्ट करने के अतिरिक्त रसायन है, और नेत्रों की ज्योति बढ़ाता है।" नासिका द्वारा जल पीने की क्रिया कुछ कठिन नहीं है। ८-१० दिन के अभ्यास से ही सहज में आ सकती है। मेरे स्वर्गीय पूज्य पिता श्रीयुत कन्हैयालाल-जी आर्यवैद्य को नासिका द्वारा जल पीने का इतना अभ्यास हो गया था कि वह जल-पात्र को नासिका से लगाकर इस भाँति जल पी जाते थे, जैसे कोई मुँह से पीता है। परिणाम यह हुआ कि उनकी ऐनक छूट गई, और वह बिना किसी कठिनता के भली भाँति लिख-पढ़ लेने लगे। उषःपान की महत्ता इसी से समझी जा सकती है। विधि यह है—पहले नासिका के मल को निकालकर जल से धो डालो। फिर अंजलि में जल लेकर ऊपर नाक से खींचने या सुड़कने से पानी ऊपर चढ़कर छिद्र द्वारा (जो तालू में होकर मुख को आता है) मुख में आ जाता है। इस प्रकार २-३ बार पानी नाक से खींचकर मुख से निकाल देना चाहिए। पश्चात् मुख में न लाकर गले के नीचे उतारना चाहिए। यही क्रिया है। अथवा इसके पहले दो-चार दिन यह क्रिया कर लो कि एक बालिश्त लंबा, मोटा सूत का तागा लेकर उस पर मोम रगड़ लो, वह खूब चिकना हो जाय। फिर नासिका के छिद्र में डालकर तालू के छिद्र से होकर मुख में निकाल लो। इस भाँति तागे का एक किनारा मुख में और दूसरा नाक के बाहर होगा। अब दोनो किनारों को एक-एक हाथ से पकड़कर धीरे-धीरे फेरो। इस भाँति नित्य दो-एक मिनट तक करने से नासिका के भीतरी छिद्र स्वच्छ हो जाते हैं, और पानी पीने में कोई कठिनता नहीं होती। इस प्रकार नासिका द्वारा जल पीने (उषःपान*) से

* तरुण-भारत-ग्रंथावली दारागंज, प्रयाग द्वारा प्रकाशित श्रीलल्लीप्रसाद पांडेय-लिखित 'उषः-पान'-नामक पुस्तिका में इस विषय का संक्षिप्त रूप से अच्छा विवेचन किया गया है। मूल्य केवल ।) है। पाठक और पाठकाओं को मँगा-कर पढ़ना चाहिए।— लेखक

साँस लेने में बड़ी सहायता मिलती है, इसी से यह क्रिया विशेष गुणकारी है। किंतु जिसने स्नेह-पान किया हो, जिसके शरीर में घाव हों, फोड़ा हो, जिसका पेट फूल जाता या गुड़गुड़ाता हो, जो ज्वरादि रोगों से पीड़ित हो, जिसे हिचकी आने का रोग हो, जिसे कफ और वात-संबंधी रोग हो, उसे नासिका द्वारा जल नहीं पीना चाहिए। यह भाव मिश्र का मत है।

साधारण उपचार— गर्द-गुबार, धुआँ, सर्द वायु, दूषित जल, आग, लू आदि से नेत्रों को बचाए रक्खो। तेज़ धूप से बचो, यदि आवश्यकता-वश निकलना ही पड़े, तो छाता लगा लो, अथवा कोई कपड़ा सिर पर डाल लो, ताकि नेत्रों की रक्षा होती रहे। बढ़िया मेल की हरी ऐनक (Goggles) धूप के लिये बहुत उपयोगी है। बहुत सफ़ेद अथवा चमकीले पदार्थों का देखना नेत्रों के लिये हितकर नहीं है। बहुत महीन अक्षर विशेषकर रात्रि में न पढ़ो। इसी नियम की उपेक्षा करने से आजकल अँगरेज़ी पढ़नेवालों को अधिकतर ऐनकें लगानी पड़ती हैं। नीला और हरा रंग आँखों के लिये हितकर, किंतु लाल रंग अहितकर है। अतः हरे वृक्षों और सुरम्य वाटिकाओं की ओर ख़ूब देखा करो। प्राकृतिक सुमनोहर दृश्यों की छवि का अवलोकन करो। इसीलिये वाटिकाओं में और नदियों के किनारे हरी-हरी घास में टहलना उपयोगी है। शौक़िया, बिना आवश्यकता, ऐनक कभी मत लगाओ। फीके प्रकाश में, संध्या-समय अथवा चाँद के उजाले में कभी पढ़ने-लिखने, सीने-पिरोने का प्रयत्न न करो। बहुमैथुन से यथाशक्ति बचना चाहिए। इसका प्रभाव नेत्रों पर बहुत ही बुरा पड़ता है। पेट के बल न सोया करो। नाक के बाल कभी मत उखाड़ो, इससे भी नेत्रों की ज्योति को हानि पहुँचती है। चाँद नेत्रों का सखा है, इसकी ओर टकटकी लगाकर ख़ूब देखा करो। जो वस्तु प्यारी लगे, और जिसे देखने से नेत्रों को सुख प्राप्त हो, उसे अवश्य देखो। लैंप अथवा चिराग़ को नेत्रों के सामने कभी न रक्खो, दाएँ-बाएँ अथवा पीछे रखना उत्तम है। तात्पर्य यह कि प्रकाश की ओर नहीं देखना चाहिए, और विशेषकर झिलमिलाती हुई ज्योति या हिलनेवाले प्रकाश का देखना तो बहुत ही अहितकर है। यदि नेत्रों में कोई भी शिकायत जान पड़े, तो शीघ्र किसी अच्छे डॉक्टर या वैद्य को दिखलाओ। ऐनक की आवश्यकता हो, तो डॉक्टर की उचित सलाह लो, यों ही, बिना आँखों का निरीक्षण कराए, मत ख़रीद लो। चलती हुई सवारी पर महीन अक्षरों की पुस्तक न पढ़ो। इससे निगाह पर बल अधिक पड़ता है, और दृष्टि ख़राब हो जाती है। लेटे-लेटे पढ़ना या गाना भी ठीक नहीं। हाँ, यदि सिरहाने तकिया इतना ऊँचा हो कि आधा धड़ कुछ ऊपर उठा रहे, तो कोई हर्ज नहीं। मिट्टी का तैल आँखों के लिये बहुत बुरा है। इसका प्रयोग आजकल बहुत होता है, किंतु आँखों से प्यार करनेवालों को बहुत सावधानी से इसे वर्तना चाहिए। आजकल मिट्टी का तैल आँखों पर बड़ा ग़ज़ब ढा रहा है। सरसों और रेंडी के तैल का प्रकाश उत्तम होता है। सत्यानासी (कटीला) के बीजों के तैल का प्रकाश नेत्रों के लिये सर्वोत्तम है। सीने-पिरोने या लिखने-पढ़ने के समय इस प्रकार बैठो कि गर्दन न झुकानी पड़े, अन्यथा नेत्रों पर ज़ोर पड़ता है। तमाम दिन नेत्रों से काम लेते रहना, अर्थात् पठन-पाठन, सीने-पिरोने में संलग्न रहना भी ठीक नहीं। नेत्रों को थोड़ी देर आराम भी दिया करो। घी जलाते और सालन पकाते समय आँखों को धुएँ से बचाए रक्खो। आग जलाते समय मुँह से फूकना नेत्रों के लिये बहुत अहितकर है, अतः पंखा अथवा धौंकनी से काम लेना चाहिए। जाड़ों में आग तापना साधारण-सी बात है, विशेषकर बुढ़िया तो ख़ूब पैर सेकती हैं, उन्हें याद रखना चाहिए कि पैरों का सेकना आँखों के लिये हानिकर है। कान में यदा-कदा कड़ुए तैल का छोड़ना बहुत उपयोगी है, इससे जहाँ कान में रोग नहीं होते, वहाँ आँख की ज्योति भी बढ़ती है। गर्मियों में मस्तक पर चंदन-काफ़ूर तथा सर्दियों में चंदन-केशर घिसकर लगाना नेत्रों

की ज्योति के लिये हितकर है। इन सब बातों के अतिरिक्त कोष्ठबद्धता (बदहज़मी) कभी मत होने दो, इसका सर्वोपरि ध्यान रक्खो, यही सब रोगों की जड़ है।

शिशु-रक्षा—यदि बचपन से ही ख़याल रक्खा जाय, तो आयु-पर्यंत आँख बिगड़ नहीं सकती। माताओं को इन बातों की जानकारी अत्यंत आवश्यक है। उन्हीं की असावधानता से बच्चों के अंग-प्रत्यंग आगे चलकर विकृत हो जाते हैं। यदि गर्भावस्था में स्त्री गरी (नारियल)-मिश्री खाया करे, तो यह बात अनुभव-सिद्ध है कि बच्चे की आँख अवश्य बड़ी होगी। माताओं को निम्न-लिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(१) बच्चे की आँख कभी मैली न रहने पावे। नित्य प्रातः सोकर उठने के बाद आँखें धोकर साफ़ कर देना चाहिए।

(२) प्रायः जब बच्चा रोता है, तो उसका जी बहलाने के लिये मूर्खा स्त्रियाँ दीपक की ओर दिखाने लगती हैं। चूँकि उसमें प्रकाश होता है, अतः बच्चों का आँख सहज ही उस ओर आकृष्ट हो जाती है, किंतु यह बड़ी भारी भूल है। देर तक बच्चे को दीपक देखने देना उसके नेत्रों के प्रति शत्रुता करना है। कदाचित् जापानी माताएँ यह बात नहीं जानतीं। जब एक जापानी बालक अपनी माता की पीठ पर बँधा हुआ सो जाता है, तो उसकी गर्दन कुछ पीछे झुक जाती और चेहरा प्रकाश की ओर हो जाता है, अतः सूर्य की किरणें बच्चे की आँख पर पड़ा करती हैं। वैद्यों का अनुमान है कि शायद इसी कारण जापानी नेत्र-रोग से अधिक पीड़ित हुआ करते हैं।

(३) बच्चों को आँखें मलने की बुरी आदत से बचाना चाहिए।

(४) बच्चों को अपनी आँखों से प्यार करना सिखाओ।

(५) उन्हें यह भी सिखाओ कि भोजन के बाद दोनो हाथ आपस में रगड़कर आँखों पर फेर लिया करें।

(६) उन्हें पेट के बल कभी मत सोने दो।

(७) गर्द-गुबार और धुएँ आदि में उन्हें मत बैठने दो।

(८) जब बालक काफ़ी बड़ा हो जाय, तो उसे कभी-कभी लकड़ी के खूँटीदार खड़ाऊँ भी पहनाया करो। किंतु दिन-भर खड़ाऊँ ही पहने रहना भी उचित नहीं, इससे हानि पहुँचने की संभावना है। बालकों के खड़ाऊँ बहुत कम ऊँचे और हलके होने चाहिए।

(९) यदा-कदा छोटे-छोटे बच्चों को हरी-हरी घास पर नंगे पैरों दौड़ने और खेलने-कूदने दिया करो, यह नेत्रों के लिये बहुत हितकर है।

(१०) काजल बच्चे की आँख में नित्य लगाना चाहिए।

(११) बालकों को पैर के नाख़ून मत कटवाने दो, नहीं तो, संभव है, उनकी दृष्टि मंद पड़ जाय। शायद यही कारण है कि हिंदुओं में विवाह से प्रथम पैरों के नाख़ून कटवाने की प्रथा नहीं है।

(समाप्त)

उखड़ा हुआ वृक्ष

[श्रीरामनारायण मिश्र एम्० एस्-सी०]

सूर्य-रश्मि तारों से बजाकर सितार-सा,
वायु में बहाकर पीयूष-पारावार-सा,
किसी वृद्ध कवि के समान ग्रीव भंग कर,
उर में उमंग भर
गाता था जो गीत निज उन्नत अतीत के,
नित्य नए चाव से
कंपित स्वरों में ओज-पूर्ण भक्ति-भाव से
चित्र-से दिखाकर अनेकों हार-जीत के;
या कि किसी ऊर्ध्वबाहु सिद्ध योगिराज-सा
(शत-शत द्विज-कुल*-जीवन-जहाज-सा)
बीसियों शिशिर-ग्रीष्म-पावसें ढकेलकर
आपदाएँ झेलकर
उपकार-मग्न लग्न होके हरि-ध्यान में
अगणित पल्लव-रदों से गुण-गान में
साज कुसुमांजलि अयुत प्रतिवर्ष जो
चरणों में इष्ट के चढ़ाता था सहर्ष हो;
आगतों को अन्य बहु भाँतियों से जो तथा
देता साधना की मौन सीख-सी सदैव था;
वही भीमकाय नीम असहाय सर्वथा
वीर-गति-प्राप्त कोई शूर हो पड़ा यथा;
कर मद-गंजन प्रभंजन का बार-बार
तालियाँ बजाकर निमंत्रण दे युद्ध का
पाकर प्रचंड वार
अविराम हारे हुए खीझे वायु-क्रुद्ध का
रह न सका खड़ा—
होकर पतित अस्त-व्यस्त आज है पड़ा।

* पक्षि-कुल।

खाकर झकोर नीड़ छिटके हैं दूर-दूर;
उनमें मचा है शोर
भूख से सताए हुए शुक-शावकों का घोर,
आह, अरी आँधी क्रूर!
इन बेकसों को शोक-सागर अगाध में
तूने दिया डाल बोल किस अपराध में?

❀ ❀ ❀

व्योम-चुंबी डालों के हिंडोलों पर मोद में
झूलती थीं करती विहार वायु-गोद में
जो सदैव प्यार से;
तथा जो दुलार से
प्रेयसी-सी मंद-मंद
विजन डुलाकर, बुलाकर पथिक-वृंद,
हरती हरीतिमा से श्रम हिय-संग थीं;
भरती हरी-हरी उमंगमयी अंग थीं;
और पशुओं की बात दूर, ऊँट तक भी
उच्च होके जिनका न पाते खूँट तक भी,
उन पत्तियों को भू-पतित आज देखकर
भाग्य निज लेखकर
बजा जय-दुंदुभी
खा रहा है लूटकर हाय, अजा-वृंद भी!

❀ ❀ ❀

पीन पिंड पर ग्राम्य बालक चढ़े हुए
खेल हैं मचाए लिए हौसले बढ़े हुए।
एक ओर डालें, एक ओर मूल-जाल है;
हर-डमरू-सा पड़ा वृक्ष ये विशाल है।
डालें और मूल, है समान जाल दोनों का
यद्यपि; है किंतु भिन्न-भिन्न हाल दोनों का।

ओढ़के दुशाले एक वायु में विहरतीं;
नग्न महि-मग्न हो उसासें अन्य भरतीं।
एक हैं प्रकाश में, तो दूसरी अँधेरे में;
एक मुक्त हैं तो, दूसरी हैं रुद्ध घेरे में।
एक ऊर्ध्व-गामिनी हैं, दूसरी अधोमुखी;
एक हैं प्रसन्न, दूसरी हैं दीखती दुखी।
इस भिन्नता का भेद ज्ञानी जन जानते,
कवि-से लवज्ञ इतना ही पहचानते—

शीत-घाम सहकर
शांत मौन रहकर
एक नित्य छाया-फल-फूल-दान-रत हैं;
कोटिमुखी सर्पिणी-सी
स्वार्थमयी दर्पिणी-सी
दूसरी रसा का उर चूसती सतत हैं।
लोक-उपकार और स्वार्थ के फलों का योग
उच्च और नीच वृक्ष-विश्व में रहे हैं भोग।

इंदिरा के लिये पत्र

[श्रीमती कमलाबाई किबे]

(गतांक की पूर्ति)



जिस घर में पत्नी पति की सेवा नहीं करती, तथा जिस स्थान पर पति निष्ठुरता से अपनी सहधर्मिणी को पद-दलित करता है, उस घर में लक्ष्मी का वास बिलकुल नहीं रहता। वह उस घर को छोड़कर दूसरी जगह सद्गुण-मंडित दंपति की खोज में निकल जाती है। उसे उस कलह के स्थान पर रहना अच्छा नहीं लगता। ऐसी जगह रहने में उसका वक़्त भी व्यर्थ जायगा। इसलिये जान-बूझकर वह भी अपना नाश क्यों करे? चतुर मनुष्य अपने हित का मार्ग देखकर उसी ओर क़दम डालते हैं। उनकी सावधानी के कारण उन्हें कभी इधर-उधर क़दम डाल देने का अवसर नहीं आता। उनकी सावधानी देखकर हमें आश्चर्य होगा। किंतु यदि हम भी इतनी ही सावधानी रक्खें, तो उसका स्मरण क्या हमें हो सकता है। एक का पूर्ण विस्मरण और दूसरी वस्तु के लिये पूर्ण दुख, ऐसी भिन्न परिस्थिति संसार में पग-पग पर मिलती है। यह विरोध देखकर बुद्धिमान् मनुष्य भी क्षण-मात्र आश्चर्य-चकित हुए बिना नहीं रहता। इंदिरे, संसार में अनेक ऐसी बातें होती हुई देखकर—जिनसे बड़े-बड़े बुद्धिमान् लोगों को भी बड़ा आश्चर्य होता है—तुझे तो वे एक पहेली की भाँति मालूम पड़ेंगी, और तू घबरा जायगी। ऐसे समय पर घबराहट न करके एकनिष्ठता से अपना कर्तव्य करना सीख। उस कर्तव्य से पदच्युत न हो। प्राप्त किए हुए शिक्षण का उपयोग करने का एक वही समय है। ऐसे समय पर यदि अपने हाथ से कर्तव्य योग्य रीति से किया गया, तो 'शिक्षण प्राप्त करना सार्थक हुआ', ऐसे शुभ उद्गार लोगों के मुख से निकलते हैं। इंदिरे, ऐसे उद्गार सुनने का सौभाग्य बहुत थोड़े लोगों को मिलता है। ऐसी भाग्यवान् स्त्रियों में से तू भी एक है। मेरा तुझे अंतःकरण-पूर्वक आशीर्वाद है। पूर्ण करने में समर्थ जगदीश है। तुझ पर उसकी अक्षय कृपा हो।

यदि हम सदाचरण से रहें, तो अपने अंग में एक प्रकार की दिव्य शक्ति (तेज) आती है। उसका हम जितना अधिक संचय करें, उतना ही अधिक हम ईश्वर के यहाँ जाने योग्य ठहराई जायँगी। इस प्रकार हम पवित्र कर्तव्य से अंग में आनेवाली ऐसी प्रचंड शक्ति को विकार-वश होकर किंवा घड़ी-भर के अज्ञान से व्यर्थ गँवा देती हैं। क्या उसे न गँवाने का प्रयत्न प्रत्येक गृहिणी को न करना चाहिए? ऐसा न करने से सिर पर कर्तव्य-पराङ्मुख होने का पाप आता है। फिर कर्तव्य-पालन-सरीखे सच्चा सुख, शांति और मोक्ष को देनेवाले सुलभ और पुण्यकारक मार्ग को छोड़कर दूसरे बिना देखे और टेढ़े मार्ग से भला क्यों जाय? जाने से फ़ायदा कुछ भी नहीं होता, प्रत्युत नुक़सान होकर ऊपर से लोकापवाद और हँसी पल्ले पड़ती है। इसलिये सद्गुणी स्त्रियों के लिये एक ही प्रशस्त और सुंदर मार्ग है, वह है पति के पद-चिह्नों पर प्रेम तथा विचार-पूर्वक चलना। इस मार्ग से जाते हुए जो त्रास, दुःखादि आवें, उन्हें पतिमय होकर सहन करना चाहिए, फिर कपट, लोक-निंदा, दुराचरण आदि किसी बात का भी भय नहीं रहेगा। पति के साथ रहने पर फिर अन्य संकटों का भय कैसे रहेगा? फिर तो भय को भी भय लगेगा कि इस सती-साध्वी के सामने हम जायँ किस प्रकार? और वह दूर

रहेगा। जब भय को भी भय लगेगा, फिर भय शब्द ही कहाँ रहा ? वह कहीं ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा। कारण यह कि सद्गुणी मनुष्यों की सच्छीलता का दिव्य प्रभाव पंचमहाभूतों पर भी बहुत पड़ता है, अन्यथा वे सद्गुणों की प्रभा से इतने दीप्यमान दिखाई न देते। पंचमहाभूतों का भय मनुष्य को लगता है, तथा उसी मनुष्य-जाति में के विशिष्ट व्यक्तियों के प्रभाव से ये महाशक्तिशाली पंचमहाभूत भयभीत होते हैं, यह किसका प्रभाव है ? केवल पति-सेवा के योग से तथा उस व्रत के द्वारा अंग में आई हुई पुण्य-शक्ति की ही यह सब महिमा है। इन सब बातों में लड़की का पति से संबंध ही सबसे मुख्य है, और दूसरी सब बातें उसकी अंगभूत हैं। इंदिरे ! तेरे हाथों से पति-सेवा का व्रत अखंड रूप से चलता रहे, इस विषय में तू हमेशा ध्यान रख।

यदि तेरे हाथों से पति-सेवा का व्रत उत्तम रीति से निभ गया, तो स्वर्ग से देवता भी तेरी ओर धन्य-वाद-पूर्ण दृष्टि तथा आदर से देखेंगे। स्वर्ग को हम जो इतना मीठा समझते हैं, उसका कारण यह है कि स्वर्ग में जाने पर चाहे जो वस्तु तथा चाहे जो सुख तुरंत प्राप्त हो जाते हैं, इनकी वहाँ रेलपेल है, ऐसा हम लोगों का विश्वास है। स्वर्ग में दुख का नाम नहीं है, कपटी मनुष्यों के लिये स्थान नहीं है। वहाँ सदा सुख-ही-सुख है। किंतु जिस स्वर्ग को हम सब परम सुखों का निवासस्थान समझते हैं, वहाँ भी ऊपर बताई हुई बहुत-सी बातों की बड़ी कमी है। ऐसी स्थिति में स्वर्ग यदि सुंदर हुआ, मोहक हुआ, वैभवशाली हुआ, फिर भी उसका वैभव मृत्युलोक के वैभव की अपेक्षा कम दर्जे का ठहरेगा, यह बात सूक्ष्म विचार करनेवाले प्रत्येक मनुष्य की समझ में आए बिना नहीं रह सकती। मृत्युलोक में जब स्वर्ग से भी अधिक उच्च मार्ग से जाने के साधन उपलब्ध हैं, फिर इस लोक को प्रचंड मानकर लोग तिरस्कार की दृष्टि से न-जाने क्यों देखते हैं। स्वर्ग में तो एक ही इंद्र है, परंतु इस मृत्युलोक में हज़ार इंद्रदेव पैदा करने की सामर्थ्य है। वहाँ अनेक पुरुष, स्त्रियाँ व बच्चे ऐसे हैं, जिनका जन्म यद्यपि मृत्युलोक में हुआ है, फिर भी जिनकी कृति के आगे इंद्र को इंद्र-पद छोड़-कर, भय से भागकर किसी गिरि-कंदरा का आश्रय लेना पड़ेगा। अतः श्रेष्ठता की दृष्टि से मृत्युलोक को ही अधिक मानना ठीक है। यदि लोक-रुचि देखी जाय, तो लोगों को सर्व सुखों की कल्पना ही अधिक मीठी लगती है, और मृत्युलोक तो उन्हें एक दलदल-सा मालूम पड़ता है। अंग में कर्तृत्व-शक्ति न होने से तथा इसी कारण जो बड़े-बड़े दुख और संकट उन्हें भोगने पड़ते हैं, उन्हें देखकर मानव-हृदय भय से दब जाता है। ऐसे समय में धैर्य बँधानेवाला, दृढ़ निश्चय का बल ही है, जिसके न होने से क्षतीहत होती है। जिसके अंग में धैर्य, दृढ़ निश्चय और दीर्घ उद्योग है, उसे कर्तव्य करने के लिये यह मृत्युलोक भी अपर्याप्त ज्ञात होता है। उनके कर्तव्य का प्रभाव अपार होता है, उनका दृष्टिक्षेत्र, उनकी मानसिक इच्छा प्रबल होती है। सतत दृढ़ निश्चय से वह अपनी इच्छा को निर्विघ्नता के साथ पूर्ण करके दृढ़ निश्चय के तेज को संसार पर प्रकट कर देता है। यदि मनुष्य ने सुविचार के साथ कार्य को समाप्त करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है, तो वह कार्य को अवश्य समाप्त करेगा, तथा परमेश्वर उसे अवश्य यशस्वी बनाएगा।

ईश्वर ने मनुष्य के अंग में इतनी दिव्य शक्ति दी है, तो प्रत्येक मनुष्य को उसका उचित परिपालन करने की शीघ्रता करना चाहिए। वहाँ स्त्री और पुरुष का भेद क्षुद्र है। श्रेष्ठ कर्तव्य के आगे इस क्षुद्र भेद को स्थान देना बुद्धिमानी नहीं है। तेरा श्रेष्ठ कर्तव्य पति-सेवा ही है। तू उस कर्तव्य को यदि सुख-दुख की बिलकुल परवा न करके करती रहेगी, तो तुझे कर्तव्य करने का आनंद उपभोग करने को मिलेगा, और तेरे हाथों से सच्ची सहधर्मचारिणी के योग्य धर्म का पालन होगा। इस प्रकार तुझे इस लोक में कर्तव्य-सुख तथा परलोक में ईश्वर-कृपा की अधिकारिणी

होने का सौभाग्य प्राप्त होगा। पति का सुख ही अपना सुख है। उसके दुखी होते हुए यदि हम सुख में हुए, तो उसका दुख देखकर अपने मन में सुख ठहरेगा कैसे ? अपनी प्राचीन आर्य-महिलाओं ने पति के आगे किसी की भी परवा नहीं की। उन्होंने पति-देवता के लिये वैभवशाली राज्यों को दूर फेंककर अपार कष्ट सहन किए, तथा अपना सब जन्म पति-सेवा में बिताया।

इंदिरे, तू विचार कर। जिन श्रेष्ठ स्त्रियों ने ऐसे अनेक कष्ट व दुख उठाए, जिनकी कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, तथा जिन्होंने उपवास तक किए, ऐसी रमणी-रत्नों के नाम तक आजकल की सुशिक्षित कहलानेवाली स्त्रियों को—दो-चार को छोड़कर—मालूम नहीं हैं, यह कितनी लज्जा तथा कितने दुख की बात है। उनके किए हुए दिव्य कर्तव्यों को देखकर उनके प्रति आदर व्यक्त करने का कोई भी मार्ग क्या उनके पीछे की पीढ़ियों को नहीं बचा ? हम उनके चरित्रों का वर्णन भी ध्यान तथा आदर-पूर्वक न पढ़ें, इससे अधिक शोचनीय बात और क्या हो सकती है। फिर वे स्त्रियाँ भी साधारण स्थिति की न होकर उच्च घरानों की थीं, अर्थात् राजों की कन्याएँ तथा वधुएँ थीं। उन्होंने अपने बालपन में आयुष्य का बहुत-सा भाग सखियों के साथ रमणीय उद्यानों तथा विशाल राजमहलों में बिताया था। जब उन्होंने कर्तव्य की सीढ़ी पर पैर रक्खा, तथा पति-सेवा के व्रत को अंत तक पहुँचाने के लिये सब सुखों का त्याग करके श्रेष्ठ नारी-धर्म को स्वीकार किया, तो ऐसा करने में क्या उन्हें मानसिक यातना न हुई होगी ? राजसुखों को छोड़कर भयंकर जंतुओं से भरे हुए घोर वनों में प्रवेश करते हुए क्या उन्हें व्यथा न हुई होगी। फिर भी उन्होंने धैर्य से अपने पति-सेवा-व्रत को पूर्ण करके लोगों से धन्यवाद प्राप्त किए। सीताजी ने तो इस प्रकार एक-दो नहीं, चौदह वर्ष वन में बिताईं। ऐसे संकट के समय में भी जिनका धीरज नष्ट न हुआ, वे सचमुच नीति की संरक्षक देवियाँ थीं, ऐसा कौन बुद्धिमान् मनुष्य नहीं मानेगा। इन देवियों के कारण हिंदू-स्त्रियों के पातिव्रत-धर्म को अधिक उज्ज्वल स्वरूप प्राप्त हो गया है, उस उज्ज्वलता को क़ायम रखना प्रत्येक विवाहित स्त्री का क्या परम पवित्र कर्तव्य नहीं है ?

इस समय अपरिपक्व शिक्षण के कारण शिक्षित तरुण कन्याओं का मन पूर्ण विकसित न होकर उन्हें गर्व हो जाता है, तथा इसी कारण पुरानी स्त्रियाँ उन कन्याओं के व्यवहार को पसंद नहीं करतीं। कम-से-कम प्रौढ़ लड़कियों को तो बड़े-बूढ़े लोगों को, जितना उनसे हो सके, संतोष देना चाहिए। क्या यह उनका कर्तव्य नहीं है ? वह यदि थोड़े परिश्रम से सहज में ही प्राप्त होता है, तो ऐसी संधि को व्यर्थ क्यों गँवाया जाय। 'शिक्षण से लड़कियाँ उद्भट हो जाती हैं', कम-से-कम इस अपवाद को दूर करने के लिये ही नवीन शिक्षा से भूषित विवाहित कन्याओं को अपने व्यवहार से यह साबित करना चाहिए कि वे उस अपवाद से दूर हैं। पढ़ी-लिखी लड़कियों के व्यवहार तथा सुशीलता में फ़र्क़ दिखाई देना चाहिए, जिससे बड़े-बूढ़ों को उनका व्यवहार देखकर प्रसन्नता हो। इस प्रकार बड़े-बूढ़ों के दिल में ऐसा विश्वास जमाना चाहिए, जिससे वे आग्रह करने लगें कि लड़कियों को शिक्षण अवश्य मिलना चाहिए। उनका यह आग्रह क़ायम रखने के लिये लड़कियों को उनकी सेवा करना चाहिए। इस प्रकार कार्य करने से पुण्य तो होगा ही, साथ ही अपने शील के उद्धार करने का श्रेय भी तुम्हारे ही हिस्से में आवेगा।

पहले सास-ससुर की व्यवस्था देखकर फिर पति के काम में भी चूक मत कर। किसी-किसी लड़की को यह लापरवाही का उत्तर देने की आदत पड़ जाती है कि मैं अमुक का काम कर रही थी, इसलिये यह रह गया। यह आदत छोड़ने का प्रयत्न करना चाहिए। बहुत-सी लड़कियों को केवल अपने पति का काम करने की आदत पड़ जाती है, जो बहुत

बुरी है। क्योंकि ऐसे कामों से एक तो बड़े-बूढ़े लोगों को गुस्सा आता है, तथा दूसरी ओर केवल पति का ही काम करने की बुरी आदत की अन्य लोग निंदा करते हैं, तथा उस लड़की को भी स्वार्थी रीति से काम करने की आदत हो जाती है। बहुत-सी बहुओं का कार्य-क्रम यह होता है कि वे पति के सामने तो काम करती रहती हैं, और वे कॉलेज या ऑफ़िस गए कि कार्य के नाम से शून्य रह जाती हैं। घर के अन्य छोटे-बड़े लोगों का काम करने में उनके माथे पर सत्रह सौ गाँठें पड़ जाती हैं। ऐसी दशा में उनसे काम करने को कहनेवालों को भी बड़ा दुःख और भय लगता है। उस ससुराल-वासिनी बहू की गाँठें देखकर घर के सब लोगों के कपालों में भी उसके प्रति तिरस्कार से गाँठें पड़ जाती हैं, और उन्हें मालूम होता है कि अपना काम खुद ही कर लेना चाहिए। इससे कोई काम करने को न कहना चाहिए, और इस प्रकार इसकी गाँठें न देखनी चाहिए। ससुराल-वासी लोगों का जब ऐसा ख़याल हो गया, तो फिर बहू के सुधर जाने पर भी वे लोग उसे आदर की दृष्टि से नहीं देखते, और उसका अनादर ही क़ायम रहता है। हिंदी में एक कहावत है—"बूँद से गई, सो हौज़ से नहीं आती।" इसका अर्थ यह है कि एक बार अकबर बादशाह जब अपने शरीर में इत्र लगा रहा था, तो उसके हाथ से इत्र की एक बूँद ज़मीन पर गिर गई, और उसने उस बूँद को धीरे-से ज़मीन पर से पोंछकर हाथ में लगा लिया। उसका यह कृत्य उसका चतुर मंत्री बीरबल देख रहा था। बादशाह भी ताड़ गया कि इसे बीरबल ने देख लिया है, और उसे खेद भी हुआ। फिर भी वह हँसकर रह गया। कुछ दिन बाद अपनी उदारता दिखाने के लिये उसने इत्र का हौज़ भरवाकर लोगों को बँटवाया। उस समय बीरबल ने ऊपर लिखी कहावत कही। बादशाह ने उसका अर्थ समझ लिया, और वह बड़ा लज्जित हुआ। इसलिये लड़कियों को कुमारी अवस्था में माँ-बाप की, विवाह के बाद सास-ससुर की, और जन्म-भर पति की आज्ञा-पालन करके स्त्री-जन्म को सार्थक बनाना चाहिए। अपने इस कर्तव्य-पालन और व्यवहार से लोक में धन्यवाद पाकर उन्हें परलोक का भी मार्ग निष्कंटक करना चाहिए। इस विषय में संस्कृत में एक श्लोक है, जिसका अर्थ यह है कि स्त्रियों को अपना सब जन्म दासता में ही बिताना चाहिए। स्वतंत्रता उनके लिये बिलकुल उपयोगी नहीं है। स्वतंत्रता से उनका दुराचारिणी हो जाना संभव है। इंदिरे, संस्कृत का उक्त श्लोक यदि तेरे पढ़ने में आया, तो तुझे भी यह विधान पढ़कर गुस्सा आवेगा और दुःख होगा। किंतु मुझे इस श्लोक से बिलकुल बुरा नहीं लगा। मैं इसका अर्थ इतना ही करती हूँ कि स्त्री को सदा किसी-न-किसी की सहायता की ज़रूरत रहती है। किसी भी स्थिति में यदि गहन विचार किया जाय, तो यह ज्ञात होगा कि मनुष्य ने जहाँ कोई कर्तव्य किया कि वह कर्तव्य-बद्ध होने के कारण परतंत्र हो जाता है। किंतु ऐसे उत्तम कार्य के बंधन को यदि कोई बंदीपन और परतंत्रता ठहरावे, तो क्या वह हास्यास्पद नहीं है? बिलकुल कर्तव्य-हीन मनुष्य तो संसार में कहीं भी दिखाई न देगा। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को परिस्थिति के अनुसार व्यवहार करना चाहिए। उसे परिस्थितियों में सुधार करना चाहिए, परंतु उसके विषय में शिकायत करना व्यर्थ है। स्त्रियों को यदि परतंत्रता के विषय में तिरस्कार मालूम हो, तब भी उन्हें यह विचार भली भाँति करना चाहिए कि उसमें क्या लाभ तथा क्या-क्या हानियाँ हैं। यद्यपि दूसरों ने मनमाना विधान बनाकर उनके प्रति अनादर व्यक्त करने का प्रयत्न किया है, फिर भी उन्हें विवेक के साथ तथा शांत चित्त से विचार करने की आदत डालकर अपने हाथ से अविचार-मूलक व्यवहार न करना चाहिए। इस प्रकार हमारे अंग में दूसरों के दिखाए हुए दोष भी सहन करने की शक्ति आती है, और मन एकाग्र होकर उस पर दुःखद बातों का प्रभाव नहीं होता। इसलिये इंदिरे, मेरी यह अभी-

इच्छा है कि तू स्त्रियों के जवाबदारी के पुण्यकारक कामों को उत्तम रीति से पूरा करने में समर्थ हो। वास्तव में इस अपार और अनंत संसार में भूमंडल के समान सर्वांग-सुंदर, रमणीय तथा अत्यंत पवित्र और सर्वव्यापी संस्था दूसरी नहीं है, और यह संस्था विवाह के कारण ही इतनी रमणीय और पवित्र बनकर संसार के सुव्यवस्थित व्यवहार को उत्तेजन देती है। विवाह के कारण संसार की सुंदरता हज़ारों गुनी बढ़ जाती है।

इंदिरे, क्या यह नयन-मनोहर दृश्य सचमुच आश्चर्य-पूर्ण नहीं है? विवाह-सरीखे पवित्र बंधन से मनुष्य के चरित्र को कितना उज्ज्वल और पवित्र स्वरूप प्राप्त होता है। किंतु उसी विवाह के कारण सैकड़ों कुटुंबों में अनर्थ हो जाने के सैकड़ों उदाहरण दिखाई पड़ते हैं। फिर भी इस विवाह-संस्था को बुरा तथा हलके दर्जे का ठहराने का घोर पातक आगे रहकर उद्धतपन के साथ कौन करता है? विवाह के पवित्र बंधनों को धीरे-धीरे अपवित्र करने का प्रयत्न करने की आदत बहुत-से समाज-सुधारकों में दिखाई देती है, और उनकी सहायता करनेवाली हममें से कुछ सुशिक्षित स्त्रियाँ भी चार भूषणास्पद अक्षर अपने नाम के आगे लगाकर इस पवित्र विवाह-संस्था के संबंध में उक्त सुधारकों के अनीति-युक्त कुतर्कों का समाज में प्रचार करती हैं। क्या इस संबंध में उन पर कुछ उत्तरदायित्व नहीं है?

इंदिरे, तू भी ऐसी अधकचरी शिक्षा के कारण कभी, कैसी भी स्थिति में, किसी का अनुकरण करने की बात मन में न लाना, अन्यथा तू अपनी सच्ची शिक्षा पर अपने ही हाथों से कालिमा लगाने का पाप अपने सिर पर लेगी। शिक्षण से पवित्र हुए हृदय में पाप तथा कुविचार आना ही क्यों चाहिए। क्या यही विद्या की महिमा है? अमृत का सेवन करते हुए मद्य पीने की वासना क्यों होनी चाहिए? प्रत्यक्ष परमेश्वर जब दर्शन दे रहा हो, तो राक्षस, पिशाच को प्रसन्न करने का प्रयत्न क्यों करना चाहिए? इस प्रकार इसमें कहीं भी कुछ भूल अवश्य है, और यह चूक यह है कि अधकचरी शिक्षा से अपना समाज गर्व से फूल जाता है। कुछ स्त्रियों को तो मालूम होता है कि अब हमें सीखने के लिये कुछ रहा ही नहीं, हम सर्वज्ञान-संपन्न हो गईं, और हमें विद्यासंपन्नता के कारण अशिक्षित स्त्रियों की ओर तिरस्कार से देखने का अधिकार प्राप्त हो गया है। ऐसी भ्रामक कल्पनाओं से इन स्त्रियों का दिमाग़ भर जाता है। ऐसी नूतन शिक्षा पाई हुई स्त्रियों के विषय में पुरानी स्त्रियों का तिरस्कार तथा अनादर से देखना उचित ही है, क्योंकि व्यवहार में दिखाई देनेवाली चतुरता पुस्तकीय शिक्षण से कभी प्राप्त नहीं होती। व्यवहार-कुशल पुरुष या स्त्री को यदि माता की उत्तम शिक्षा भी मिले, तो वह इस प्रकार चमकने लगती है, जैसे सोने की अँगूठी में हीरा। तथा इन दोनों बातों से युक्त पुरुष या स्त्री को यदि आधुनिक शिक्षण भी प्राप्त हो जाय, तो उसे देखते ही एक प्रकार का आदर-युक्त भाव उत्पन्न होता है, और उसके व्यवहार को उत्तम पद्धति देखकर इच्छा होती है कि हम भी उसका अनुकरण करें। इसी प्रकार यदि स्त्री व्यवहार-कुशल न होकर केवल विद्या-संपन्न हो, तो उसका समावेश पुराने लोग पढ़ी-लिखी मूर्खाओं में करते हैं। फिर उन लोगों के कार्य से नई स्त्रियों को क्यों नाक सिकोड़ना चाहिए? इसलिये व्यवहार में मनुष्य को दूसरों के दोष न निकालकर गुणों को ही बड़े आदर से तथा मूल्यवान् देन समझकर संग्रह करना चाहिए। दोषों को दूर करने का उपाय न सोचकर उन्हें दुर्गुण समझ उनसे दूर ही रहना चाहिए। दुर्गुणों का भय शत्रु से भी अधिक रहता है, क्योंकि यदि वे अपने व्यवहार में घुस गए, तो इतने अनर्थ करते हैं कि समस्त कुटुंब का नाश किए बिना घर से नहीं निकलते। इसीलिये प्यारी इंदिरे! तू अपनी ससुराल में उत्तम रीति से व्यवहार करके घर के बड़े-बूढ़ों से लगाकर नौकर-चाकर तक सबकी प्रिय हो, और 'इंदिरा'

नाम को सार्थक कर। फिर तेरी माता की दी हुई शिक्षा का उचित उपयोग हुआ देखकर किसे प्रसन्नता न होगी? इंदिरा का दूसरा अर्थ 'लक्ष्मी' भी होता है, परंतु तू लक्ष्मी के समान अपना स्वभाव चंचल न रखकर, सदा प्रफुल्ल-वदन रहकर, गृह के सब कार्यों को कर्तव्य समझकर धैर्य तथा आनंद से करती जाना। ऐसा देखकर तेरे सास-ससुर को भी संतोष होगा, और उनका संतोष देखकर तेरे प्रथम-पूज्य पतिदेव भी तुझे प्रसन्नता-पूर्वक प्रेम-दृष्टि से देखेंगे। इस संतोष से भी अधिक तू किस सुख की आशा करेगी? सब सुखदायक बातें इस सुख के सामने कुछ नहीं हैं। सब संसार के अमूल्य रत्नों की क़ीमत लगाई जाय, तो भी पति-प्रेम के आगे उनकी क़ीमत अथवा योग्यता बिलकुल कम है। इसलिये स्त्रियों के अमूल्य रत्न जो पति हैं, उन्हें तू अपने हृदय के गुप्त संदूक़ में सावधानी से रख, और उनका चिंतन करने की सुबुद्धि ईश्वर तुझे दे। यही परमेश्वर के पास जाने की कुंजी है, यही अपना स्त्रियों का सच्चा और पुण्यमय स्वर्ग है, और यही मोक्षपद को पहुँचने का मुख्य व राजमान्य मार्ग है। जिस मार्ग को अपनी आर्य-महिलाओं ने साध्य, सुगम और व्यवस्थित कर दिया है, तथा जिसे आज हज़ारों वर्षों से अपनी पवित्र और सतीशिरोमणि स्त्रियों ने पुनीत किया है, उसी मार्ग से तू भी जाने का निश्चयकर—अपने अमूल्य आयुष्य में एक यह दृढ़ व्रत पालने का संकल्प कर। ऐसा करना भारतमाता की सच्ची कन्या का धर्म है। इस धर्म से संसार में अनेक अज्ञात शक्तियाँ, ज्ञान तथा दिव्यताएँ अनायास सिद्ध की जा सकती हैं। तपस्वी अत्रि ऋषि की धर्मपत्नी अनसूया के नाम की ओर आज भी सब भारतीय समाज आदर से देखता है, तथा उसका नाम उच्चारण करते ही सुननेवालों के हृदय में एक प्रकार की पूज्य बुद्धि उत्पन्न होती है। यह सभी जानते हैं कि इसके मूल में उसका पातिव्रत ही है। अतः ऐसा उत्तम धर्म छोड़कर मन-चाहा धर्म सीखने की तथा आजकल की समाज-सुधारक स्त्रियों में मनमाना व्यवहार करने की आदत पातिव्रत की दृष्टि से घातक तथा अमंगलकारक है, और राष्ट्रीय दृष्टि से भी यह आदत हिंदू-समाज की आदर्श रमणियों के नाम निश्चय ही हलकापन लानेवाली है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी से जो बात पवित्र मानी गई है, उसकी अपवित्रता संसार के सामने लाकर तथा अपने व्यवहार से उसकी बरबादी करके ये स्त्रियाँ संसार में केवल अपनी हँसी कराने में अग्रसर हो रही हैं। इसके विपरीत समाज-दृष्टि से अशिक्षित, पर अपने सद्गुणों से शोभित भारतीय ललनाएँ पातिव्रत तथा उसके लिये प्रयत्न करने के लिये अपना अमूल्य समय व्यय करती हैं। क्या इन सद्गुणी स्त्रियों की सभा-भरके किसी समाज-सुधारक द्वारा अभिनंदन किए जाने का एक भी उदाहरण सुनाई दिया है? ऐसी रमणी-रत्न यद्यपि संसार की दृष्टि में तुच्छ हों, फिर भी उस दयालु परमेश्वर के घर उन स्त्रियों का अवश्य सम्मान होता रहेगा, तथा इस दृढ़ भरोसे पर ही वे अपने पति-धर्म का पालन करती हैं। कम-से-कम इसलिये ही अपने समाज को उनका शाब्दिक गौरव करना चाहिए। उनके अंग में फ़ैशन चाहे न हो, साफ़-सुथरापन न हो, परंतु क्या हृदय में सात्विक विचारों से भरे हुए मन की कुछ क़ीमत नहीं है? नहीं है, यह खेद के साथ कहना पड़ता है। क्योंकि यदि परिस्थिति के चित्रों का भली भाँति निरीक्षण किया जाय, तो विचारवान् मनुष्य की दृष्टि में सर्वत्र निराशा का ही घोर साम्राज्य फैला हुआ दिखाई देगा।

इंदिरे, तुझे इतना सविस्तर और ज़रा अधिक व्यापक पत्र लिखने का कारण यह है कि मेरी यह बड़ी इच्छा है कि ऊपर बताए हुए दोष तेरे हाथ से न हों। तुझे दिए हुए शिक्षण का उपयोग करते हुए उनका दुरुपयोग करने की बुद्धि तुझे न हो, इसीलिये मैंने इतनी स्पष्टता के साथ ऊपर की बातों का उल्लेख किया है। तुझे दिखाए हुए मार्ग पर ध्यान से चलना तेरा कर्तव्य है। इस मार्ग की विघ्न-बाधा

ढूँढकर निकालना तेरी बुद्धि पर छोड़ देना ही उचित है, क्योंकि जब तू मेरे पास थी, तब मुझे तेरी प्रत्येक बात पर बड़ी बारीक निगाह रखनी पड़ती थी, जो प्रत्येक मा का कर्तव्य है। यदि मा इस कर्तव्य में चूक जाय, और उस चूक के कारण कन्या के हाथ से कोई अपराध हो जाय, तो सब लोग यही कहेंगे कि वह अपराध लड़की का नहीं है, बल्कि उसकी माता की दी हुई शिक्षा में व्यवस्था न होने के कारण हुआ है। जिन कुटुंबों में ठीक व्यवस्था नहीं है, वहाँ के बालकों और बालिकाओं के स्वेच्छाचारी हो जाने के उदाहरण बहुत जगह देखने को मिलेंगे। ऐसी बुरी गिनती में तू कभी अपना समावेश न कर, यह मेरी एक अंतःकरण-पूर्वक सूचना—अथवा आज्ञा—है। उसे पूरा करना सर्वथा तेरे हाथ में है। ईश्वर पर भरोसा रखके सदाचरण से व्यवहार कर, इससे तेरा जीवन पवित्र और सुखमय होगा। कैसी भी ज़रूरत हो, कैसा ही त्रास हो, दुःख हो, परंतु ऐसे प्रसंग में भी तू ऐसे नास्तिक उद्गार—कि दयालु ईश्वर इस संसार में बिलकुल नहीं है—कभी मत निकाल। ऐसे उद्गारों से तेरे मन में शांति प्राप्त न होकर दुःख का वेग ही बढ़ता रहेगा। भगवान् के प्रति भक्ति-पूर्वक भावना न रखने के कारण बहुत-से मनुष्य वृद्धावस्था में पश्चात्ताप-युक्त और शांति-रहित जीवन बिताते हुए दिखाई देते हैं। इसलिये तुझे ऊपर की बातों पर अधिक कुछ लिखने की बिलकुल ज़रूरत नहीं है। परंतु अतिशय प्रेम के कारण माता का हृदय बच्चों के विषय में बड़ा कोमल होता है, इसलिये बच्चों में यद्यपि अच्छी ही आदत हो, फिर भी प्रेम के कारण माता के हृदय में यह शंका होती है कि क्या यह आदत अच्छी है। यद्यपि इस शंका की निरर्थकता आँखों के आगे प्रमाणित हो जाती है, फिर भी उसके विषय में माता को डर लगा रहता है। प्रत्येक विचारवान् माता को यह ध्यान रहता है कि उसकी लड़कियाँ उद्धतपन के कारण सुशीलता की मर्यादा का उल्लंघन न कर जायँ, इसलिये मुझे भी यदि इस बात की फ़िकर हो, तो इसमें तुझे आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। इस पत्र का अधिक विस्तार देखकर संभव है, तू एकदम उकता जाय। मनुष्य-स्वभाव ही ऐसा है कि उसकी दृष्टि अच्छी बातों की ओर बहुत कम जाती है, और बुरी बातों की ओर उसका झुकाव स्वभावतः अधिक होता है। इसका प्रमाण हमें पग-पग पर देखने को मिलेगा। किंतु मनुष्य को किसी बात का निरीक्षण ध्यान पूर्वक करने की आदत डालना चाहिए, फिर अपने अंग में दोष कौन-से हैं, यह जान लेने में भी देर नहीं लगेगी। जिन मनुष्यों में इतनी जागृति है, उनके हाथों से चूक हो जाने की संभावना बहुत कम होती है। तुझसे कोई ऐसी चूक न हो, इस बात का सदा ध्यान रख। संसार में यदि पाप से भी अधिक बुरी कोई बात है, तो वह है मनुष्य का जान-बूझकर सदसद्विवेक-बुद्धि को दूर हटाकर भूल या ग़लत बात करना। अनेक बार लबार मनुष्य कोई चूक करके बड़े आग्रह से कहते हैं कि हम प्रायश्चित्त करके शुद्ध होने के लिये तैयार हैं। ऐसे लोगों का क्या भरोसा? उन्हें तो यही कहकर चुप किया जाय कि चूक करना ही क्यों चाहिए, तब उन्हें अपने हाथ से चूक करने में भय लगेगा। कभी-कभी समझते हुए भी मनुष्य विकार के अधीन होकर चूक करने में प्रवृत्त होता है। ऐसा अपराध कभी क्षम्य नहीं है। हमेशा चूक करनेवालों को प्रायश्चित्त करना अपने मन तथा शास्त्र को धोखा देना है। यह योजना तो प्राचीन समय के विचारवान् धर्माधिकारियों ने इसीलिये बनाकर रक्खी है, जिससे मनुष्य के अंतःकरण को समाधान हो। इतना सच है कि यह पापी लोगों को भी संतोष प्राप्त कराने का एक साधन है। किंतु यदि बालकपन में माता किसी के मन में पाप ही न करने का निश्चय भर दे, तो फिर शास्त्रार्थ का काम ही नहीं रहता। यदि छोटेपन में धर्म, अधर्म, शील वग़ैरा के संबंध में दुर्लक्ष्य न

किया जाय, तो मनुष्य के मनोविकारों का नाश हो जाय, और अधःपतन से रक्षण करने के लिये वह उसे शील सिखानेवाले बड़े-बूढ़े लोगों का अत्यंत आभारी रहे। यदि छोटेपन में ग़लत शिक्षण मिले, तो वह मनुष्य अपना समस्त जीवन ही व्यर्थ हो जाने के पाप को फिर किसके सिर मढ़े। बालकपन में शीलवान् बनाया जाकर भी यदि कोई पुरुष या स्त्री बुरे मार्ग पर चले, तो उसका दोष उसका ख़ुद का अथवा उसके आसुरी मनोविकारों के प्रभाव का समझना चाहिए।

इंदिरे! संसार में अनेक व्यक्ति, उनके विविध प्रकार के काम तथा उनका अच्छा या बुरापन ये सब बातें धीरे-धीरे तुझे देखने को मिलेंगी। तेरा मन ये बातें देखकर चकित हो जायगा। इसलिये तुझे केवल याद दिलाने के लिये मैं यह लिखती हूँ कि तू भूलकर भी उनके कपट-नाटक के पास मत जाना तथा बहुत सँभलकर रहना। तुझसे तेरी प्रेमल माता का यही कहना है। अब तेरे ससुराल चले जाने के बाद यहाँ जो-जो बातें हुईं, उन्हें लिखती हूँ।

तेरा प्यारा बसंत तेरी बड़ी याद करता है। उसे समय बड़ा भारी लगता है, और उकताकर मुझसे पूछता है—"मा, जीजी वापस कब आवेंगी?" उसके इन शब्दों में भगिनी-प्रेम भरा हुआ होता है। उस समय उसके मुख पर तेरे प्रेम के सिवा एक क्षण के लिये भी और कोई विकार दिखाई नहीं देता। जब मैं उसे यह उत्तर दे देती हूँ कि "बच्चे, जीजी जल्दी ही आ जायँगी", तो उतने समय के लिये उसे कुछ समाधान हो जाता है, और फिर वह भारी पाँवों से खेलने को चला जाता है। उसके मन की स्थिति समझने में मुझे देर नहीं लगती। तेरी गुइयाँ, पिछाड़ीवाली गंगू, तो शाम को खेल का वक़्त होते ही कहती है—"बाई! इंदिरा के बिना कुछ नहीं सुहाता।" और यह कहकर खिन्न होकर बैठ जाती है। तेरा प्यारा कुत्ता मोती तेरा नाम लेते ही हक्का-बक्का-सा होकर चारो तरफ़ देखने लगता है, और जब तू दिखाई नहीं देती, तो उसकी आँखें आँसुओं से भर आती हैं। उसके एकनिष्ठ प्रेम की कल्पना करने में अधिक देर नहीं लगती। तेरे बालपन की यहाँ की प्रेम-युक्त बातों की याद दिलाकर मैं तेरा मोह नहीं बढ़ाना चाहती। अब मैं पत्र समाप्त करने का विचार कर रही हूँ। क्योंकि तेरे प्रति प्रेम के कारण मुझे तेरे बालपन से अब तक की एक-एक बात याद आ रही है, जिससे पत्र समाप्त करने में मुझे कष्ट होता है, किंतु संसार की रीति पर दृष्टि डालने से मन को कुछ समाधान हो जाता है।

हाँ, एक बात लिखने से और रह गई। वह यह कि तू ससुराल में नई ही गई है, इसलिये तुझे वहाँ बहुत-से स्त्री-पुरुष दिखाई देंगे, उन सबको तू सास द्वारा नमस्कार करने की आज्ञा मिलने से पहले ही नमस्कार कर लेने की याद रखना। कहने से पहले ही यदि कोई उचित बात कर ली जाय, तो अच्छा रहता है। आजकल की स्थिति में लड़कियों को उच्च शिक्षण तो मिलता है, परंतु व्यवहार की यह एक साधारण-सी रीति भी उन्हें मालूम नहीं होती, अतः वे दूसरों का अनादर-सा करती हैं। तुझे यही समझ लेना चाहिए कि यह रीति देखने में तो साधारण है, परंतु व्यवहार में बड़े महत्त्व की है। पता नहीं कि इसी बात पर नव-विवाहित लड़कियों से पग-पग पर भूल क्यों होती है। इसमें थोड़ा-बहुत दोष बालपन की शिक्षा का अवश्य है। आजकल की लड़कियों से सास को बड़ी निराशा से यह कहने का प्रसंग आता है कि "इनको नमस्कार कर।" तात्पर्य यह कि ऊपर कहे अनुसार नमस्कार करने में तनिक भी चूक मत कर, अन्यथा तू भी साधारण व्यवहार से अपरिचित कहलावेगी।

तेरा अत्यंत प्यारा बकुल-वृक्ष दुख से धरणी माता पर फूलों की टप-टप वर्षा करता है। उसकी यह कुसुमरूपी अश्रु-वर्षा तेरे लिये तो नहीं है, ऐसा

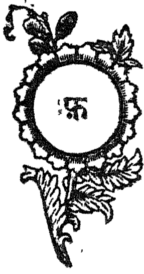
मुझे भास होता है। उसके दुःख से निर्जीव हुए पत्तों को उद्दन पवन धक्का देकर नीचे गिराती है। उसका निवारण करने की भी शक्ति उस वृक्ष में नहीं रही है। उसके फूलों को बीनकर गजरा बनानेवाली तेरी मूर्ति इस समय कहाँ है? तू हमसे कितनी भी दूर हो, परंतु तेरी स्मृति मैंने अपने हृदय में सँभालकर रख ली है। उससे मेरा जितना समाधान होता है, उतना संसार की किसी भी मोहक वस्तु से नहीं होता। न-मालूम ईश्वर ने मातृप्रेम को इतना व्यापक क्यों बनाया है। परंतु कुछ भी हो, प्रेम ईश्वर-रूप है, इसलिये प्रेम ऐसा क्यों है, वैसा क्यों है, आदि निरर्थक तर्क करने में कुछ लाभ नहीं है। प्रेम जिसके पीछे एक बार लग जाता है, वह एक प्रकार से पागल ही हो जाता है। अस्तु, इतना सच है कि जिस प्रकार कोई खोई हुई वस्तु को खोजता है, उसी प्रकार, तेरे चले जाने के बाद, तू मुझे कल्पना-रूप में दिखाई देती है।

तेरे खेल, तुझे प्रिय पढ़ने की पुस्तकें, तेरी बुनी हुई चीज़ें आदि जब मुझे दिखाई पड़ती हैं, तो मुझे वे निःसत्व, निर्विकार और उदास दिखाई देती हैं। किंतु मुझे अब तेरे विषय के प्रेममय विचारों को ज़रा आत्मसंयम करके रोकना चाहिए। वह सर्वव्यापी दया-धन इस कार्य में मेरी पूर्ण सहायता करेगा, यह दृढ़ भावना हृदय में रखकर तुझे व्यवहार करने की शक्ति दे, यह हृदय से प्रार्थना करके मैं यह लंबा पत्र समाप्त करती हूँ। क्योंकि तेरे बालपन की स्मृतियों के कारण मेरे अंतःकरण की सुध-बुध बिलकुल बिसर गई है, प्रेम-सागर में विकारों की लहरों ने शुभ्र फेन-ही-फेन पैदा कर दिए हैं। क्या उस क्षीराब्धि को हटाकर दूर करने की सामर्थ्य किसी मानवी शक्ति के हाथ में है। बड़े-बड़े तपस्वियों में भी इस मोह को दूर करने की शक्ति नहीं है। यह मोह जिस व्यक्ति ने तोड़ डाला, उसका जन्म वास्तव में धन्य है। उसके दिव्य दर्शनों के प्रभाव से देखनेवाले के नेत्र धन्य हो जाते हैं, इसमें बिलकुल शंका नहीं है। अस्तु। इंदिरे! लाड़ली इंदिरे! मैं अब यहीं बड़े कष्ट के साथ तुझसे बिदा लेती हूँ। विशेष आशीर्वाद।

अत्याचारी का अंत

[श्रीयुत पृथ्वीपालसिंह बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

[फ़िरदौसी के 'शाहनामा' में फ़ारस की वीर रमणियों की चटपटी कथाएँ ऐतिहासिक ढंग पर लिखी हुई पढ़ने को मिलती हैं। 'फ़रनाक'-नामक कथा को लेखक ने कहानी के रूप में पाठकों के मनोरंजन के लिये लिखा है—पाठक पढ़ेंगे, मज़ा आएगा।—सं०]



रनाक के सौंदर्य की बड़ी चर्चा थी। थी भी वह बला की ख़ूबसूरत। तूरान-नरेश की सबसे लाड़ली संतान थी। फूल-सी फ़रनाक पिता को जी-जान से प्यारी थी। उसके रूप-लावण्य पर लोग हज़ार जान से न्योछावर थे। उसके हुस्न में ग़ज़ब की मादकता थी। उसके सौंदर्य-सुरा की एक घूँट ही लोगों को पागल बना देती थी। इस मदिरा का प्रभाव एक युग तक नहीं जाता था।

संसार के राजा-महाराजा, मनचले नवयुवक सभी इसी चिंता में थे कि किसी प्रकार सुंदरी फ़रनाक उनका प्रेम स्वीकार कर ले। राजकन्या इन दीवानों की ओर फूटी आँख भी न देखती थी।

❀ ❀ ❀

उस दिन की बात है। तूरान की राजधानी दीप-मालाओं से जगमगा रही थी। नगर की सड़कें गुलाब-जल से सींच दी गई थीं, उन पर फूलों की पंखड़ियों के अंबार-से लग गए थे। सुनते हैं, कुछ ही घड़ी पूर्व उन सड़कों से होकर नव-वधू—फूलों की रानी फ़रनाक की सवारी गुज़री थी, और तभी तूरान के सुप्रसिद्ध उपवनों की सुमनोहर क्यारियों के मधुर पुष्पों ने अपनी सखी फ़रनाक का धूम से स्वागत किया था। उस बड़ी शादियाने बज रहे थे। ख़ुशियाँ मनाई जा रही थीं। जिधर देखिए, उधर ही कुमारी फ़रनाक के निकाह की चर्चा थी। लोगों की कुछ विचित्र अवस्था थी। लोग दाँतों-तले उँगली दबाते थे। आश्चर्य करते थे। जिस राजकुमारी की मधुर मुसक्यान पर सहस्रों अपना जीवन बलिदान करने को तैयार थे—जिसके लिये अनेकों अपना सर्वस्व लुटाने को प्रस्तुत थे, उसका विवाह एक राहचलते साधारण श्रेणी के सैनिक के साथ! सभी एक दूसरे की ओर देखते थे, और उस बटोही सैनिक के भाग्य की दाद देते थे।

❀ ❀ ❀

फूलों के पलने में पली हुई वह अलबेली सुंदरी ईरान-नरेश जमशेद के वंशज अबतीन-नामक एक अल्हड़ नवयुवक के गले का हार बन गई—कुमारी का विवाह अबतीन के साथ बड़ी धूमधाम से हो गया।

अबतीन एक सजोल-गठीला जवान था। उसके अंग-अंग से सौंदर्य और शक्ति की रश्मियाँ-सी फूट रही थीं—उन रश्मियों ने फ़रनाक पर अजब जादू कर दिया। सुंदरी फ़रनाक के प्रेम का मूल्य कोई न लगा सका, उसे कोई न रिझा सका। वह उस भाग्यवान् यात्री के सौंदर्य के हाथों बिना दाम ही बिक गई। संसार हाथ मलता रह गया।

❀ ❀ ❀

विवाह हुए कई मास बीत चुके थे। नव-विवाहित कुमारी और कुमार की छेड़-छाड़ और चुलबुलाहट की रसमय घड़ियाँ ढल चली थीं। अबतीन और फ़रनाक बड़ा सुखमय गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत कर रहे थे। पहले अबतीन फ़रनाक को देखा करता था और फ़रनाक अबतीन को—दोनो ख़ाली समय में एक दूसरे

के सौंदर्य को सराहा करते थे—अब फ़रनाक एक पुत्र-रत्न की माता हो गई थी, उसके विवाहित जीवन का दूसरा अध्याय प्रारंभ हो चुका था। वह अपने नवप्रसूत सुंदर, सलोने पुत्र को गोदीमें लिए खिलाया करती थी—कभी उसे चूमती थी, कभी उसे हृदय से लगाती थी, और कभी उसके भोले-भाले चाँद-से मुखड़े को देखकर गद्गद उठती थी, और बड़े स्नेह से उसके गुलाब-से कोमल तथा सुंदर कपोलों को अपनी पतली-पतली रेशम-सी मुलायम उँगलियों से हिला देती थी। इसी प्रकार आमोद-प्रमोद में फ़रनाक का जीवन बड़े सुख से कट रहा था।

❀ ❀ ❀

कहीं चैन की वंशी बजती रहती है, तो कहीं चिंता और विषाद का तांडव-नृत्य होता रहता है।

अर्ध रात्रि की वेला थी। निस्तब्धता छाई हुई थी। संसार सुख की नींद सो रहा था। फ़ारस का विजेता बेबोलन-प्रदेश का ख़ूँख़ार शासक भी निद्रा की स्निग्ध तरंगों पर हिलोरें ले रहा था। स्वप्नावस्था में विविध चित्रपटों पर वह अपना भविष्य प्रतिबिंबित होते देखकर प्रसन्न हो रहा था। कभी वह अपने को फ़ारस के नव-विजेता के रूप में देखता था, तो कभी संसार की सारी शक्ति-संपदा के स्वामी-रूप में। एकाएक चित्रपट बदल गया। उसका कलेजा धड़क उठा, पसीने से तर-ब-तर हो गया। कैसा भयंकर दृश्य था! कैसा हृदयद्रावक स्वप्न था! गगन-मंडल में रण-वाद्य की विकट ध्वनि! बेबोलन पर अकस्मात् धावा! वैरियों से मुठभेड़! सम्राट् ज़ाक की हार और उनका बंदी होना तथा राज्य पर एक तेजस्वी वीर युवा का आधिपत्य हो जाना! सम्राट् ज़ाक के मुख से एक चीख़-सी निकल गई। राजप्रासाद की बाँदियाँ दौड़ पड़ीं। सम्राट् को डरते-डरते उन बाँदियों ने जगाया। सम्राट् जगा—और एकाएक उठकर खड़ा हो गया। वह पागलों की तरह बाँदियों की ओर देख रहा था, कभी अपने मस्तक को हथेली से ठोंकता था, कभी अपने घुँघराले केशों को उँगलियों से खींचता था। उसने बाँदियों को शयन-कक्ष से निकल जाने की आज्ञा दी, और स्वयं वहीं दीवाने की भाँति टहलने लगा।

उसने एकाएक अपने विशेष दूतों को राजदरबार के ज्योतिषियों और भविष्यदर्शी पंडितों को सोते से जगाकर शयनागार में ही ला उपस्थित करने की आज्ञा दी। राजधानी की सूनसान सड़कों पर सम्राट् ज़ाक के अश्वारोही दूतों के घोड़े सरपट दौड़ने लगे। बात-की-बात में दरबार के सभी भविष्यदर्शी पंडित आँख मलते हुए सम्राट् ज़ाक के शयनागार में आ उपस्थित हुए। सम्राट् ने उनसे अपने देखे हुए बीभत्स स्वप्न की सारी कथा कह सुनाई।

❀ ❀ ❀

ज्योतिषियों ने सुना, और सुनकर दहल उठे। उनके पैरों के तले से ज़मीन निकल गई। ज़ाक का अंधकारमय भविष्य उन भविष्यदर्शियों के नेत्रों के सामने नृत्य कर उठा। ज़ाक के भयंकर क्रोध और विकट क्रूरता से सभी परिचित थे। सब कुछ जानते हुए भी वे अनजान बन गए। सब कुछ समझते हुए वे नासमझ बन गए। किसी का कलेजा इतना बड़ा न था कि ज़ाक के सर पर खेलती हुई मौत से उसे परिचित करा दे। स्वप्न के आधार पर राजा के भविष्य पर विचार करने के लिये समय माँगकर वे सब बिदा हुए।

❀ ❀ ❀

२४ घंटे पूरे हो गए—अवधि समाप्त हो गई। परंतु किसी भी ज्योतिषी को साहस न हुआ कि वह राजा को उसका वास्तविक भविष्य बताए। अवधि पूरी हो गई, और ज्योतिषियों ने मुँह तक न दिखाया। ज़ाक के क्रोध की सीमा न रही। उसने तुरंत उन पंडितों को पकड़ बुलवाया, और तड़पकर बोला—"मेरा भविष्य क्या है, तुरंत बताओ, नहीं तो तुम्हारी ख़ैरियत नहीं है—तुम होगे और यह तलवार!"

जान खटाई में पड़ी देख भविष्यदर्शियों के नायक ने साहस किया, और आगे बढ़कर कहा—"सम्राट्, अभय दान दीजिए। स्वप्न प्रलयकारी है—फ़रीदून-नामक एक

बालक का शीघ्र ही जन्म होनेवाला है, वही आपके सर्वनाश का कारण होगा।''

ज़ाक ठक-से रह गया। उसके हृदय पर गाज-सी गिर पड़ी। वह कुछ ठिठका, सहमा और फिर एकाएक अपने बाहुबल तथा सत्ता के मद में चूर होकर उफन पड़ा। दीवाल से लटकती हुई शमशीर, शाह ने झपटकर हाथ में ले ली। शमशीर की नोक की ठोकर से उन ज्योतिषियों को शयन-कक्ष के बाहर कर दिया। राज्य-सेना के अध्यक्ष को बुलाकर आज्ञा दी—"सेनापति! जाओ, सैनिकों द्वारा राज्य का कोना-कोना छान डालो—नवप्रसूत बालक फ़रीदून का पता लगाओ—बालक फ़रीदून को सपरिवार क़त्ल कर दो, और इस शुभ-संवाद की सूचना लेकर तुरंत आओ।'' नतमस्तक हो सेनापति ने सम्राट् की आज्ञा शिरोधार्य की। क्षण-भर में बेबीलन-प्रदेश राज्यसैनिकों के घोड़ों की टापों को तुमुल-ध्वनि से गूँजने लगा। चारो ओर एक अजीब खलबली-सी मच गई।

❀ ❀ ❀

नवप्रसूत बालक फ़रीदून को सपरिवार क़त्ल कर दिए जाने की आज्ञा की ख़बर आग की तरह फैल गई। फ़रीदून के पिता के कानों में भी इस क्रूर आज्ञा की भनक पड़ गई। उसका प्यारा दुधमुँहा लाल माता की गोद से सदा के लिये लूट लिया जायगा, उसकी हृदयेश्वरी तलवार के घाट उतार दी जायगी—स्वयं भी प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा—इन भयंकर विचारों की शृंखला ने दुखी पिता को अस्त-व्यस्त कर दिया—उसका मस्तिष्क डूबने-उतराने लगा। अपना भला-बुरा समझने की भी उसमें शक्ति न रही। अपने प्राणों को वह अपने धड़कते हुए हृदय में छिपाकर ले भागा। न स्त्री की सुध ली, और न बच्चे की चिंता की। साम्राज्य की चारो दिशाओं में ज़ाक के सैनिक सर्वव्यापी भगवान् की तरह फैले हुए थे। मौत अबतीन को खींचे हुए काल के मुँह में लिए जा रही थी। सहस्रों सैनिकों की तीखी निगाहों से बचकर निकल जाना शैतान का काम था। अबतीन गिरफ़्तार हो गया। सैनिकों के सख़्त पहरे के बीच बंदी अबतीन ज़ालिम ज़ाक के सामने न्याय के लिये उपस्थित किया गया। ज़ाक ने अबतीन को देखा, और यह सुनते ही कि उसके साम्राज्य के भावी सर्वनाश करनेवाले का पिता तथा सृष्टिकर्ता यही अबतीन है—लाल हो गया, उसके नेत्रों से आग बरसने लगी। "राजद्रोही को जन्म देनेवाला न्याय की दृष्टि में उतना ही बड़ा अपराधी है, जितना कि स्वयं राजद्रोही।'' यह कहते हुए ज़ाक ने अबतीन को प्राण-दंड की आज्ञा सुना दी। अबतीन फ़रियाद करता रह गया, उसकी एक न सुनी गई। क्षण-भर में निर्दयी शमशीर उसके गले से उतर गई।

ख़ून के फ़व्वारे छूट रहे थे, धरती लोहू से लथपथ थी। अबतीन की दर्द-भरी आहें अब भी आकाश में गूँज रही थीं।

❀ ❀ ❀

अबतीन संसार से विदा हो चुका था। बेचारी फ़रनाक अपने हृदय के टुकड़े को अपने आँचल में छिपाए भागी चली जा रही थी। उसके जीवन की एकमात्र आशा, उसके उजड़े घर का टिमटिमाता हुआ दीपक, उसका सर्वस्व, वही नन्हा-सा बालक था, जिसे वह बड़े प्यार से हृदय से चपकाए हुए आँधी की तरह उड़ाए लिए जा रही थी। किधर, यह उसे स्वयं पता न था। ज़ाक के सिपाही बड़ी चुस्ती से फ़रनाक और उसके लाल को ढूँढ़ने में व्यस्त थे।

एकाएक गगन-मंडल धुँधला हो चला, हवा के दो-एक विकट झोंके आए—फिर तूफ़ान चल पड़ा। चारो ओर रेत उड़ने लगी—इस बुरी तरह से, कि साँस लेना कठिन हो गया—मुँह और आँखें रेत से भर गए, कसकसाने लगे। ज़ाक के सैनिकों की आँखों पर रेत की चादर पड़ गई। उनके घोड़ों ने इस भयंकर रेतीले तूफ़ान में आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। ग़ज़ब का तूफ़ान था। फिर भी देवी फ़रनाक के क़दम उसी गति से आगे बढ़ते चले जा रहे थे। फ़रनाक तूफ़ान की गोद में तितली की

तरह उड़ती फिरी, उसने अपने को तूफ़ान के हाथों में छोड़ दिया। वह रेत से लथपथ हो गई—वह अधमरी हो गई, परंतु उसने अपने हृदय के टुकड़े की बड़ी सावधानी से रक्षा की—उसे तूफ़ान की आँच भी न लगने दी।

झंझावत के विकट थपेड़ों ने देवी फ़रनाक को कोसों दूर, एक हरे-भरे स्थान पर पहुँचा दिया। तूफ़ान शांत हो चला था, हवा का प्रकोप बंद हो गया था, आकाश अब भी धुँधला था। फ़रनाक का बालक भूख से रो रहा था। उसका गला प्यास से सूख रहा था। फ़रनाक सजल नेत्रों—प्यासे चातक की तरह चारो ओर देख रही थी।

उस लहलहाते हुए मैदान में एक सुंदर गाय चर रही थी। उस गाय का बूढ़ा स्वामी निकट ही बैठा हुआ कुछ गुनगुना रहा था। बालक फ़रीदून के करुण क्रंदन की ध्वनि उस बूढ़े के कानों में पड़ी—वह चौंक उठा। उसने अपनी लाठी उठाकर अपने कंधे पर रख ली, और उसी ओर चल दिया।

विपत्ति की मारी देवी फ़रनाक उस वृद्ध के पैरों से चिपट गई। बूढ़े ने उसे सांत्वना दी, समझाया-बुझाया। देवी फ़रनाक ने अपनी करुण कहानी उस वृद्ध से कह डाली। वृद्ध का हिया पसीज उठा, बोला—"रो मत देवी! समय दुष्ट ज़ाक से बदला लेगा।" रोते हुए सुंदर खिलौने को बूढ़े ने उठाकर गले से लगा लिया। वह प्यासा था—भूखा भी था। बूढ़े ने उस गाय की ओर मुँह करके बीरमाया! बीरमाया! की पुकार लगाई। उस सुंदर गाय ने अपने स्वामी की पुकार कान खड़े करके सुना, और अपनी दुम उठाकर बड़े स्नेह-भाव से उछलती-कूदती अपने वयोवृद्ध स्नेही के पास आकर खड़ी हो गई। उस वृद्ध ने गाय के थन से चुल्लू-भर दूध दुहकर फ़रीदून को पिलाया। फ़रीदून ने आँखें खोल दीं। उसके फीके, मुरझाए हुए चेहरे पर एक कांति-सी आ गई। वृद्ध शरणागत अतिथियों को लेकर अपने घर की ओर चल दिया।

❀ ❀ ❀

एक टूटी-फूटी झोपड़ी में, नमदे के एक टुकड़े पर, फ़रनाक लेटी हुई थी। निकट ही बालक फ़रीदून मिट्टी के बरतनों से खेल रहा था। वह वृद्ध खाने-पीने के प्रबंध में व्यस्त था। वह स्वयं ही बड़े प्रेम से चूल्हे में लकड़ियाँ सजा रहा था—कदाचित् कुछ पकवान बनाने जा रहा था।

हँसते-खेलते कई सप्ताह बीत गए। देवी फ़रनाक उस वृद्ध के कुटुंब से इतनी घुल-मिल गई कि अपने-पराए में कोई अंतर नहीं रह गया। फ़रीदून सभी का लाड़ला हो रहा था। वह चाँद-सा सुंदर, विद्युत्-सा चपल बालक सभी का स्नेह-पात्र बन रहा था। बीरमाया भी उसे देखकर बड़ी प्रसन्न होती थी। अपनी दुम खड़ी करके सुंदर, मनोहर शस्य-श्यामला भूमि पर थिरकने लगती थी।

धीरे-धीरे नवागत अतिथियों की चर्चा अड़ोस-पड़ोस के गाँवों में फैलने लगी। देवी फ़रनाक भी खटकी, और वृद्ध को भी चिंता हुई कि कहीं ऐसा न हो कि ज़ाक के जासूसों को उनके शिकार की कानोकान ख़बर लग जाय। वृद्ध ने अतिथियों की रक्षा का तुरंत ही प्रबंध कर दिया। उसने देवी फ़रनाक को अलबुर्ज़-पर्वत पर रहनेवाले सुप्रसिद्ध तपस्वी का पता बताकर उसी के शरणागत होने की सलाह दी। चलते समय वृद्ध ने देवी को एक सुंदर तलवार भेट की, और कहा—"अपनी रक्षा के लिये तथा समय-कुसमय पर प्रयोग के लिये मेरा यह प्रसाद स्वीकार करो।" देवी फ़रनाक ने धन्यवाद देते हुए वह दुधारा अपनी कमर से लटका लिया।

चलते समय वृद्ध अपने नेत्र कपड़े से पोंछ रहा था, देवी फ़रनाक सिसकियाँ भर रही थी। फ़रीदून अपनी माता के कपोलों पर ढुलकते हुए आँसुओं को अपने नन्हे-नन्हे हाथों से बार-बार पोंछता था, और मुँह बिचका-बिचकाकर पूछता था—"माँ, लोती क्यों हो?"

❀ ❀ ❀

कितना भयंकर रास्ता था! खाई-खड्डों को पार

करती हुई, विकट कंटकाकीर्ण पगडंडियों के रास्ते निरंतर कई घंटे चलने के उपरांत देवी फ़रनाक अलबुर्ज-पर्वत पर जा पहुँची। उसके जी में जी आया।

अंधकार हो चला था। सामने की खोह से प्रकाश की छाया-मात्र प्रकट हो रही थी। हो-न-हो, वह तपस्वी इसी खोह में रहता है। फ़रनाक आगे बढ़ी—द्वार पर पहुँची ही थी कि आहट होते ही गुफा के अंतस्थल से गंभीर ध्वनि हुई—"कौन ?"

फ़रनाक ने सहमकर धीरे से उत्तर दिया—"शरणागत।"

दीपक हाथ में लिए वृद्ध तपस्वी द्वार पर आया। उसके मुख-मंडल पर एक अलौकिक आभा थी। उसका चेहरा दमक रहा था—तेज फूटा पड़ता था। उसकी दुग्ध-सी श्वेत, रेशम-सी जटाएँ और दाढ़ी, चौड़ा ललाट, हृष्ट-पुष्ट शरीर देखकर फ़रनाक प्रभावित हो पीछे हट गई। तपस्वी ने फ़रनाक को डरते देखकर कहा—"बेटी, डर मत, अपनी व्यथा का कारण तथा यहाँ तक आने का अभिप्राय बता।"

वह भी तपी हुई थी। कह चली, और एक साँस में उसने अपना हृदय-विदारक दुख-दर्द की कहानी तपस्वी को सुना डाली। तपस्वी ने फ़रीदून को गोद में उठा लिया और देवी-फ़रनाक से बोला—"जा, तू अपनेकिसी संबंधी के यहाँ सुख से जीवन बिता—मैं तेरे यशस्वी पुत्र की रक्षा करूँगा।"

माता अपने पुत्र से बिछुड़ने की बात सुनकर कैसे सहन कर सकती थी। उसकी आँखों से छल-छल-से आँसू निकल पड़े—"हाय मेरा लाल ! वह मेरे बिना कैसे रहेगा।" फ़रीदून तपस्वी की गोद में पहुँचते ही मोह-मुक्त-सा हो गया—वह स्वयं बोल उठा—"मा, तुम जाओ, मैं रोऊँगा नहीं।" तपस्वी ने देवी की ओर देखा, और यह कहते हुए कि "अपने नन्हे-से बालक के साहस-पूर्ण वक्तव्य से सबक़ ले," खोह का द्वार शिला से बंद कर दिया। वह चली गई—रोती-बिलखती चली गई। जाने के पूर्व देवी फ़रनाक तपस्वी को अपना पता बताती गई।

पति को ज़ाक ने छीन लिया। पुत्र को वह स्वयं एक तपस्वी को सौंप आई। वह अकेली थी—उसके चारो ओर अंधकार था।

❀ ❀ ❀

समय जाते देर नहीं लगती। एक-एक घड़ी करके कितने वर्ष बीत गए, पता न चला। ज़ाक ने इतने वर्षों में अपने क्रूर कारनामों से अपने पाप का प्याला लबरेज़ कर दिया। कितने घर उजड़ गए, कितने जीवों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। दिनों-दिन उसके अत्याचार बढ़ ही रहे थे।

इधर तपस्वी की देख-रेख में बालक फ़रीदून एक हृष्ट-पुष्ट तेजस्वी युवा हो गया था। वह देखने में बड़ा सुंदर था, सुशील था। वह जितना सुंदर था, उतना ही स्वस्थ और बलवान् भी था। उसकी रग-रग से उसका तेज प्रतिबिंबित हो रहा था। वह मनुष्य नहीं, शेर था।

वह अपनी माता के दर्शनों के लिये तड़पा करता था। तपस्वी सदैव यही कहकर टाल देता था कि "अभी तुम छोटे हो, मार्ग नहीं पाओगे—जब बड़े होगे, तब चले जाना।"

फ़रीदून अब बड़ा हो गया था। उसने तपस्वी से कहा—"मुझे अब जाने दो, अब मैं बड़ा हो गया हूँ, मार्ग नहीं भूलूँगा।" तपस्वी ने हँसते हुए उसे बिदा किया। चलते समय तपस्वी ने फ़रीदून के मस्तक पर हाथ रखते हुए आशीर्वाद दिया—"जाओ, अपने पिता के ख़ून का बदला सम्राट् ज़ाक से लो—विजयी हो, यही मेरा आशीर्वाद है।"

भोला फ़रीदून चौंक उठा ! "पिता !—कैसा पिता ? मेरा पिता और उसका ख़ून ! तपस्वी, मुझे बताओ, जल्दी बताओ, तुम क्या कह रहे हो ?" तपस्वी ने यह कहकर कि "तुम अपनी माता से निर्दिष्ट स्थान पर जाकर मिलो, वही तुम्हें सारी रामकहानी बतावेगी"—अपनी गुफा का द्वार बंद कर लिया। फ़रीदून ख़ून के नाम से आग हो उठा। वह तीर की तरह अपनी माता से मिलने के लिये चल पड़ा।

चिंता-ग्रस्त, परेशान युवा फ़रीदून घायल बाघ की तरह आगे बढ़ रहा था। तपस्वी के आख़िरी वाक्य उसके मर्म-स्थल पर लगे थे।

* * *

वह माता की जर्जर कुटिया पर पहुँच गया। "मा! मा!" की करुण पुकार फ़रनाक के कानों में पड़ी। माता को अपने बिछुड़े हुए हृदय के टुकड़े की याद आई। ओफ़्! यह स्वर तो मेरे लाड़ले फ़रीदून का-सा है। कई वर्ष हो चुके थे—तब तो फ़रीदून तुतलाकर बोलता था, फिर भी माता के कानों ने अपने पुत्र की कंठ-ध्वनि, इतने दिनों के बाद भी, पहचान ही ली। फ़रनाक ने बड़े तपाक से द्वार खोला—बड़ी उत्सुकता से वह अपने नन्हे-से बालक को गोद में उठाकर चूमने के ख़याल से दौड़ी थी। सामने एक युवा खड़ा था। वह बोल उठा—"मा!" मा का हृदय गद्गद् हो उठा। उसने दौड़कर फ़रीदून को गले से लगा लिया। बोली—"बेटा फ़रीदून, तुम तो इतने बड़े हो गए—मैं पहचान ही न पाई।"

फ़रीदून मा से गला छुड़ाकर अलग हो गया। बोला—"बताओ, मेरा पिता कौन था? ज़ाक कौन है? किसने मेरे पिता का ख़ून किया? मेरे इन प्रश्नों का तुरंत उत्तर दो, नहीं तो मैं तुमसे नहीं बोलूँगा।" मा रोने लगी। फ़रीदून का जी भर आया। बोला—"अच्छा, तू रो मत। मैं तुझसे ये प्रश्न नहीं पूछूँगा। चल, मुझे मेरे बूढ़े बाबा और मेरी प्यारी बीरमाया से तो मिला—मैं अभी उनको भूला नहीं हूँ। वह बूढ़ा बाबा मेरा कितना प्यार करता था। मैं उसकी श्वेत दाढ़ी से खेला करता था। वह गाय कितनी सीधी थी, मैं उसके थन में मुँह लगाकर दूध पिया करता था। मैं मिलूँगा अपने बूढ़े बाबा से, और एक बार फिर उनकी दाढ़ी से खेलूँगा। मैं मिलूँगा अपनी बीरमाया से और एक बार फिर उसके थन में मुँह लगाकर दूध पिऊँगा। कहाँ हैं मेरे प्यारे दोनो?"

माता ने आर्द्र नेत्रों, रुंधे हुए कंठ से कहना प्रारंभ किया—"सब तुम्हारी रक्षा के हेतु उसी हत्यारे ज़ाक—सम्राट् ज़ाक की क्रूरता के शिकार हुए। न तो तुम्हारा पिता है, न वृद्ध बाबा और न बीरमाया ही शेष है। तुम्हारे पिता अबतीन का वध उसी पिशाच ने करवाया था। उस पिता का एकमात्र अपराध था फ़रीदून का विधाता—जन्मदाता होना। किसी ने सम्राट् से कह दिया था कि अबतीन का नवजात बालक फ़रीदून ही उसका संहार करेगा। यही कारण है उसके रोष का—तुम्हारे पिता के वध का। तुम्हारे वृद्ध बाबा को इस अपराध पर फाँसी दे दी गई कि उसने एक भावी राजद्रोही को शरण दी थी। बीरमाया ज़ाक की आज्ञा से क़त्ल करके तुम्हारे जलते हुए मकान में इसलिये झोंक दी गई कि उसने एक भावी विप्लवकारी को दूध पिलाया था। तुम्हारे ही कारण इन सबका अंत हुआ है। वह अब भी तुम्हारी और मेरी खोज के लिये अपने आधे साम्राज्य की बाज़ी लगाए बैठा है।"

फ़रीदून ने अपने पिता के विषय में प्रश्नों की झड़ी लगा दी। मा ने रो-रोकर अपने पति का सारा जीवन-चरित्र, अपने सर्वनाश का सारा इतिहास कह सुनाया।

फ़रीदून का चेहरा ज़ाक के प्रति घृणा, क्रोध और प्रतिरोध की ज्वाला से लाल हो उठा। वह उठ खड़ा हुआ और बोला—"जाता हूँ।" मा ने पूछा—"कहाँ?" फ़रीदून ने गर्जकर कहा—"ख़ून का बदला ख़ून से लेने, ज्योतिषियों की भविष्यद्वाणी सच करने।"

"अकेले?"

"हाँ-हाँ, अकेले। आशीर्वाद दो माता! मुझे बिदा दो। जब तक मैं प्यारे पिता, बूढ़े बाबा और बीरमाया के वध का बदला न ले लूँगा, तुम्हें अपना मुँह न दिखाऊँगा।" वीर माता का चेहरा गर्व से चमक उठा। उसने अपने ओजस्वी पुत्र का माथा चूमा और गले से लगा लिया। माता फ़रनाक ने अपनी कमर से दुधारा खोलकर फ़रीदून के हाथ में

दे दिया और बोली—"शाबाश बेटा ! शाबाश ! यह लो बूढ़े बाबा का दिया हुआ प्रसाद। इसी शमशीर से तुम अपने पिता का बदला लो—अत्याचारी ज़ाक का संहार करो—विजयी हो—देश का उद्धार करो। जाओ, वीरों की तरह युद्ध करो। ख़बरदार ! वैरी से मुँह मोड़कर न आना—अपनी माता का दूध न लजाना।"

फ़रीदून ने शमशीर हाथों में लेकर चूम ली, और मस्तक से लगा ली। "जाता हूँ, बदला लेकर ही लौटूँगा।" यह कहकर मालूम नहीं, वह किस ओर बिजली की तरह तड़पकर निकल गया।

❀ ❀ ❀

इधर ईरान-निवासी भी ज़ाकशाही से ऊब उठे थे। ज़ाक ने ज़ुल्मों की हद कर दी थी। ज़ाक के राज्य में किसी के भी प्राण सुरक्षित न थे, किसी की भी धन-दौलत का ठिकाना न था। क्या जाने, किस घड़ी ज़ाक का फ़रमान आए, और जल्लाद की शमशीर उनके गले पर थिरकती दिखाई दे—शाह का हुक्म आए, और उनकी धन-दौलत दरबार के छकड़ों पर लदती नज़र आने लगे।

जब मनुष्य का हृदय अत्याचार सहते-सहते पक उठता है, तो उसके हृदय में नैराश्य प्रकट होता है—उसे जीवन निस्सार दिखाई देने लगता है—फिर एकाएक उसके हृदय में एक ज्योति का प्रादुर्भाव होता है, वह ज्योति ग़ज़ब की होती है। उसी ज्योति से प्रेरित होकर मनुष्य अत्याचार के विरुद्ध हथियार उठाता है—उसी ज्योति द्वारा राज्यक्रांति होती है।

ईरान के नर-नारी निराश हो उठे। एकाएक उनके हृदय में उसी अलौकिक ज्योति का प्रादुर्भाव हुआ। वे मरने-मारने के लिये उठ खड़े हुए। ज़ाकशाही का अंत कर देने की लगन उनके दिल में थी। उनके बाज़ुओं में बल था।

उस दिन की बात है। कावा-नामक लोहार के एकलौते लड़के को ज़ाक के सिपाही बड़ी बेदर्दी से घसीटते हुए घर से निकाल ले गए। जिस समय वह ज़ाक के सामने उपस्थित किया गया—वह मृत-प्राय था। उसकी पीठ पर ख़ून से चुहचुहाती हुई बेंत के विकट मार की बर्तें पड़ी हुई थीं—सर से लोहू बह रहा था, और मुँह से फेचकुर। ज़ाक ने कावा के नौजवान पुत्र की इस दर्द-भरी हालत पर ठहाका लगाकर, बड़ी कड़ुई हँसी हँसकर कई प्रश्न किए। क़ैदी ने उत्तर देने की कोशिश की, परंतु उसके मुँह से शब्द उच्चारण ही न हो सके। वह लगभग निर्जीव हो चुका था। ज़ाक ने गर्जकर कहा—"यह दुष्ट बड़ा गुस्ताख़ है, मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं देता। जाओ, इसे मेरे सामने से ले जाओ, और लगातार उस समय तक कोड़े लगाओ, जब तक यह ख़तम नहीं हो जाता।"

ज़ाक की इस आज्ञा को कावा के वीरपुत्र ने सुना और सुनकर हाथ मलता रह गया। उसके हृदय में यह तमन्ना रह गई कि सम्राट् ज़ाक की हस्ती वह स्वयं अपने हाथों न मिटा सका। वह गुप्त षड्यंत्र-कारियों का विकट नेता था। वह स्वयं मिट गया—ज़ाक और उसकी ज़ाकशाही अब भी क़ायम थी।

❀ ❀ ❀

ऐसी घटनाएँ तो नित्य ही हुआ करती थीं। लेकिन चढ़ी हुई तोप पर बत्ती रखने की ही देरी होती है, और प्रलय मच जाती है। ग़ुस्से में भरे हुए जन-समूह को मुँह चिढ़ा देना ही काफ़ी था। ईरान के नर-नारी तो अवसर ढूँढ़ ही रहे थे। अपने पथ-प्रदर्शक का अंत सुनकर षड्यंत्रकारियों का दल आग हो गया, भभक उठा। कावा ने विद्रोहियों का नेतृत्व ग्रहण किया, और ज़ाक के विरुद्ध 'बिजन' बोल दिया। विद्रोही कावा का रण-भेरी बजाना था कि ईरान का बच्चा-बच्चा उठ खड़ा हुआ। ईरान का हर बाल-वृद्ध राजविद्रोहियों की सेना में आकर मिल गया। विद्रोहियों का अपार दल भीषण गर्जन करता हुआ राजप्रासाद की ओर ऐसे बढ़ रहा था, जैसे धधकते हुए ज्वालामुखी के मुख से निकलते हुए लाल-

अंगारा कावा की प्रलयकारी विकट धार। तलवारें चमाचम चमक रही थीं—वे ज़ाक और उसके हिमायतियों को ढूँढ़ रही थीं—आकाश विप्लवकारियों के क्रांतिकारी ख़ूनी नारों से गूँज रहा था।

इतने ही में सामने से एक घायल शेर की तरह ख़ूँख़ार व्यक्ति, वही नवयुवक, हाथ में नंगी तलवार लिए हुए विद्युत्-वेग से आता दिखाई पड़ा। कावा ने आगे बढ़कर उस नौजवान को ललकारा—

"नौजवान! तू कौन है? आगे बढ़ने के पूर्व अपना परिचय दे।"

नवयुवक ने तड़पकर उत्तर दिया—

"मैं हूँ ज़ालिम ज़ाक के ख़ून का प्यासा स्वर्गीय सरदार अबतीन का पुत्र—फ़रीदून।"

फ़रीदून का नाम सुनते ही कावा ने झपटकर उसे गले से लगा लिया। ज्योतिषियों की भविष्यद्वाणी से ईरान के सभी नर-नारी ख़ूब परिचित थे। फ़रीदून का नाम सबकी ज़बान पर था। कावा ने विद्रोही-दल को संबोधित करते हुए कहा—"भाइयो! हमारे सुपरिचित स्वर्गीय सरदार अबतीन के सुपुत्र फ़रीदून अपने पिता के ख़ून का बदला लेने के लिये स्वयं उपस्थित हुए हैं। जिस फ़रीदून की जान के लिये ज़ालिम ज़ाक ने दुनिया की सारी ताक़तें सर्फ़ कर दीं, आज वही फ़रीदून ज़ाक को उसके पापों का मज़ा चखाने के लिये ख़ुद ही आ पहुँचे हैं। वह सम्राट् के ज्योतिषियों की भविष्यद्वाणी सच करने आए हैं। सरदार अबतीन के सुपुत्र फ़रीदून हमारे दल का नेतृत्व ग्रहण करेंगे—हमें उनके इशारे पर काम करना होगा। आज से आप हमारे सरदार हैं—सेनापति हैं। सब एक स्वर से कहो—सरदार फ़रीदून की जय!"

सरदार फ़रीदून की जय-ध्वनि से आकाश काँप उठा। असंख्य विद्रोहियों की तलवारों की झनकार से फ़रीदून का दिल दूना हो गया। फ़रीदून ने विद्रोहियों की पताका हाथ में उठा ली। फिर गगनभेदी भयंकर जय-ध्वनि हुई। सेनापति फ़रीदून ने कहना प्रारंभ किया—

"बहादुरो! ज़ाक के ज़ुल्मों का प्याला लबरेज़ हो गया है। आज हम सारे अत्याचारों का प्रतिरोध—अपने सहजनों के ख़ून का बदला ज़ाक से जी भरकर लेंगे। बोलो—वीर सैनिको—बोलो! तुम तैयार हो ख़ून का बदला ख़ून से लेने को?"

आकाश प्रलयकारी गड़गड़ाती हुई ध्वनि से गूँज उठा—"तैयार हैं!"

सेनापति ने गर्जकर कहा—"चलो, पहले कारागृह पर हमला किया जाय, अपने बेगुनाह भाइयों को मुक्त किया जाय, फिर ज़ाक के राजप्रासाद पर धावा हो।"

विद्रोहियों का भयंकर लश्कर जेल की ओर झुक पड़ा। जेल के पहरेदारों ने चूँ न की—चुपचाप विद्रोहियों के सामने हथियार डाल दिए। उलटे उन्होंने उनका स्वागत किया, और तुरंत उनके साथ हो लिए। वे भी ज़ाक से असंतुष्ट थे। बात-की-बात में जेल पर सेनापति फ़रीदून ने क़ब्ज़ा कर लिया। जेल के द्वार खोल दिए गए। बंदियों को आज़ाद कर दिया गया। एक के बाद दूसरा सैनिक जेल के द्वार से निकल-निकलकर विद्रोहियों की अपार सेना में सम्मिलित होता गया। जेल के सभी पहरेदार और बंदी बाग़ियों के दल में मिल गए। जेल पर बाग़ियों का झंडा फहराने लगा।

सेनापति फ़रीदून की जय-जयकार करता हुआ अपार जन-समूह आगे बढ़ा। विद्रोहियों का दल अभी कुछ ही दूर गया होगा कि सामने से ज़ाक की सेना रण-वाद्य बजाती हुई आती दिखाई दी। फ़रीदून ने अपनी सेना को सावधान किया और बोला—"जब तक मैं संकेत न करूँ, दुश्मन पर हाथ न चलाना।" यह कहकर सेनापति फ़रीदून एक हाथ में अपनी विजय-पताका और दूसरे हाथ में रक्त-रंजित शमशीर लिए हुए आगे बढ़ा, और वैरी-दल को संबोधित करके बोला—

"मैं हूँ, तुम्हारे पूर्व सेनापति अबतीन का पुत्र फ़रीदून। आज मैं विद्रोही हूँ, बाग़ी हूँ, ज़ाक के

ख़ून का प्यासा हूँ। मैं तुमसे लड़ने नहीं आया हूँ, तुम्हारे लिये लड़ने आया हूँ। मैं तो तुम्हारे लिये तुम पर किए गए अत्याचारों का बदला ज़ाक से लेने आया हूँ। तुम्हीं कहो—कलेजे पर हाथ रखकर कहो—क्या उसने तुम्हारी मा-बहनों का अपमान नहीं किया? क्या उसने सहस्रों बेगुनाह देशवासियों को जेल और फाँसी का दंड दे-देकर तुमसे उन्हें छीन नहीं लिया? तुम्हीं कहो, क्या तुम ऐसे ज़ालिम ज़ाक के शासन से प्रसन्न हो? क्या आज तुम उस क्रूर ज़ाक की रक्षा अपने भाइयों का ख़ून बहाकर करोगे? क्या तुम इतने कठोर-हृदय बन जाओगे? क्या तुम चंद चाँदी के टुकड़ों के मोह में इतने निष्ठुर, इतने क्रूर हो जाओगे? सोचो! समझो! इस ज़ाकशाही के विरुद्ध तुम भी लोहा लो। हम तुम मिलकर सम्राट् ज़ाक का संहार करेंगे। बोलो, वीर देशवासियो बोलो, तैयार हो?"

ज़ाक के सैनिकों ने उच्च स्वर से सेनापति फ़रीदून की ओजस्वी प्रार्थना स्वीकार कर ली। "तैयार हैं।" की थर्रा देनेवाली ध्वनि के साथ ज़ाक के सैनिक ज़ाक के ख़ून के प्यासे बन राजप्रासाद की ओर घूम पड़े। पल-भर में सैनिकों के टीड़ीदल ने राजप्रासाद के कोने-कोने पर अपना आधिपत्य जमा लिया। ज़ाक के पहरेदार भीगी बिल्ली की तरह हथियार डाल-डालकर जीवन-दान के लिये गिड़गिड़ाने लगे।

सेनापति फ़रीदून अपने कुछ सैनिकों के साथ अपनी चमचमाती हुई शमशीर हाथ में लिए ज़ाक को ढूँढ़ रहा था। एकाएक सामने उसे एक कमरा बंद नज़र आया। उसके द्वार पर ज़ाक के कुछ नमकहलाल सैनिक उसकी रक्षा के हेतु अपनी जान हथेली पर लिए खड़े थे। सेनापति ने उन वीर सैनिकों को चुपचाप हट जाने की, आत्मसमर्पण कर देने की कई बार सलाह दी, परंतु उन सैनिकों ने उस प्रार्थना का उत्तर प्रहार से दिया। फिर क्या था, दोनो तरफ़ से तलवारें चलने लगीं। ख़ून के पनाले बह निकले—मृत शरीरों का अंबार लग गया। ज़ाक के स्वामिभक्त सैनिकों का क्षण-भर में काया-कल्प हो गया।

दो-चार रेलों में ही सम्राट् ज़ाक के कमरे का दरवाज़ा चरचराकर बैठ गया। फ़रीदून अकेला ही सिंह की तरह तड़पकर उस कमरे में घुस गया। ज़ाक सामने खड़ा-खड़ा थर-थर काँप रहा था। उसने फ़रीदून को देखा, और उसके मुख से एक चीख़-सी निकल गई—उसके हाथ से उसकी तलवार छूटकर गिर गई। उसे कई वर्ष पुराने स्वप्न की स्मृति हो आई—ओफ़्! वह ख़ूँख़ार व्यक्ति, जिससे उसे अपने सर्वनाश की आशंका थी, सामने ही खड़ा है। उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया—उसके पैरों के तले से ज़मीन निकल गई—उसके देवता कूच कर गए। सेनापति ने ज़ाक को अपनी तलवार की नोक से हिलाकर पूछा—

"पहचाना! मैं ही हूँ तेरे ख़ून का प्यासा—तेरी जान का दुश्मन—सेनापति अबतीन का भयंकर पुत्र फ़रीदून। उठा—अपनी शमशीर उठा—कायर! अब बचकर कहाँ जायगा। ले अपने पापों का परिणाम, ले।" यह कहते हुए फ़रीदून ने ज़ाक की शमशीर उठाकर उसके हाथों में दे दी। ज़ाक के होश फ़ाख़्ता हो रहे थे—वह जानता था कि उसकी आख़िरी घड़ियाँ निकट हैं। फिर भी उसने शमशीर हाथ में ले ली, और सेनापति फ़रीदून पर बाज़ की तरह टूट पड़ा। सेनापति सचेत था—वह ज़ाक का प्रहार बड़ी सुंदरता से बचा गया। सेनापति ने प्रहार का उत्तर तुरंत ही दिया—दो ही चार हाथ में ज़ाक का काम तमाम कर दिया। ज़ाक के मृत शरीर को सेनापति फ़रीदून ने बड़े प्रेम से अपने दुधारे की नोक पर टाँग लिया। फ़रीदून ने कमरे की खिड़की खोल दी, और ज़ाक के मृत शरीर को खिड़की के बाहर कर दिया। सेनापति फ़रीदून ने संकेत किया, और राजप्रासाद पर विजय-पताका फहरा उठी। विद्रोहियों ने एक ओर ज़ालिम ज़ाक का लोहू टपकता हुआ शव देखा, और दूसरी ओर राजप्रासाद पर फहराती हुई विजय-पताका। हर्ष से विद्रोहियों का असंख्य समूह

पागल हो उठा। विकट कोलाहल मच गया। गगन-मंडल 'सेनापति फ़रीदून' की जय-ध्वनि से गूँजने लगा।

सेनापति ने शंख-ध्वनि की। पागल जन-समूह एकदम शांत हो गया। फ़रीदून ने हँसते हुए कहा—

"भाइयो, ख़ून का बदला ख़ून से ले लिया गया—अत्याचारी का अंत कर दिया गया। तुम्हें अधिकार है कि तुम किसी को अपना सम्राट् चुन लो...।" बात पूरी न होने पाई थी कि किसी ने पीछे से फ़रीदून के मस्तक पर राजमुकुट रख दिया। विद्रोहियों ने यह दृश्य देखा, और उन्मत्त होकर चिल्ला उठे—"सम्राट् फ़रीदून की जय।"

फ़रीदून चौंक उठा। उसने पीछे फिरकर देखा, तो उसकी माता खड़ी मुस्करा रही थी। फ़रीदून ने गद्गद होकर अपनी स्नेहमयी माता की ओर देखा और बोल उठा—"मा!"

मा ने हँसकर उत्तर दिया—

"क्या है सम्राट्?"

फ़रीदून माता के इस मीठे व्यंग्य पर हँस पड़ा।

चमत्कार (करामात)

[श्रीश्री १०८ स्वामी भोलानाथजी महाराज वेदांतभूषण, संस्थापक 'ईश्वरीय प्रेमसभा', लखनऊ]

बामा सख़ुन अज़ कश्फ़ो करामात मगोयद ;
चूँ मा अज़ कश्फ़ो करामात गुज़श्तेम ।



"मुझसे चमत्कारिक घटनाओं की बात मत कहो, मैं उनसे परे हो गया हूँ।"

चमत्कार वह घटना या काम है, जिसका कारण या परिणाम हम लोग नहीं जानते। साधारण बुद्धि उसे समझ नहीं सकती। विज्ञान आश्चर्य में पड़ जाता है। इस छोटे-से जीवन में हम लोगों की साधारण शिक्षा तथा अनुभवों ने हमारे ज्ञान को परिमित कर दिया है। यदि किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा कोई चमत्कारिक घटना होती है, तो हम लोग कहते हैं कि यह प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है। इस कथन से हमारा यह तात्पर्य होता है कि सर्वशक्तिमान् और अनंत सत्ता भी एक परिमित शक्ति है, और साधारण वस्तुओं की तरह वह भी सीमाबद्ध है। वास्तव में हम लोग इतना ही कहने के अधिकारी हैं कि जहाँ तक हमको मालूम है, ऐसी घटना इससे पहले कभी नहीं हुई। यह कहना ठीक नहीं है कि ऐसी घटना इस प्रकार से हो ही नहीं सकती। चमत्कारिक घटनाएँ, जिन्हें हम प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध समझते हैं, उस कार्य-क्षेत्र से संबंध रखती हैं, जिसका हमें अब तक पता नहीं है। चमत्कारिक घटनाओं का नाम सुनकर आश्चर्य में पड़ने की कौन-सी बात है, जब कि यह सारा विश्व, जिसे हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं, स्वयं एक भारी चमत्कार है। फिर यदि कोई नई घटना हो जाय, तो उस पर क्यों आश्चर्य किया जाय? हम क्यों कहें कि यह असंभव है?

ऋद्धि-सिद्धियों का संबंध आध्यात्मिक जीवन की उन्नति की ओर जानेवाले मार्ग की उस सीढ़ी से है, जहाँ बहुत बड़ी जोखिम है।

ये शक्तियाँ सत्य के सच्चे जिज्ञासुओं को सत्पथ से विचलित करनेवाली होती हैं। जब तक हम आध्यात्मिक जीवन की ओर ध्यान नहीं देते, तब तक सांसारिक पदार्थ (समृद्धि, संपत्ति, यश, शक्ति आदि) हम पर अधिकार जमाए रहते हैं। इनमें से एक या कई के पीछे हम दौड़ा करते और उन्हीं के प्राप्त करने में लिप्त रहते हैं। ज्यों-ज्यों हम उनके पीछे दौड़ते हैं, त्यों-त्यों वे और भी दूर भागते जाते हैं। कभी-कभी अभिलषित वस्तुएँ हमें प्राप्त हो भी जाती हैं, किंतु बहुधा हमें वे नहीं मिलतीं। अंत में हम देखते हैं, इस दौड़-धूप से हमें सच्चा सुख नहीं मिलता। जब इस दौड़-धूप से हम थक जाते हैं, तब उस सत्य की ओर गंभीरता-पूर्वक ध्यान देते हैं, जो प्रत्येक धर्म का ध्येय है। इस ध्येय की ओर थोड़ा चलने पर वे ही सांसारिक वस्तुएँ (समृद्धि, संपत्ति, यश आदि) अकस्मात् (चमत्कारिक रूप से) हमारे पास

आ जाती हैं। जिज्ञासु को ऐसा मालूम होने लगता है कि संसार के सारे पदार्थ इच्छा करते ही उसे प्राप्त हो सकते हैं, और सांसारिक पदार्थ यह दिखाना चाहते हैं कि वे सब हमारी सेवा में उपस्थित हैं। ऐसा मालूम होता है कि इस अवस्था में जिज्ञासु की विचार-शक्ति ने प्रकृति पर वास्तविक विजय प्राप्त कर ली है। परंतु यह एक बिकट जाल है, ऐसा गढ़ा है, जिसमें गिरकर फिर निकलना कठिन है। ईश्वर-भक्त इस अवस्था को बड़ी सावधानी से पार करते हैं ; क्योंकि यदि हम अपने ध्येय (सत्, ईश्वर, अद्वैत सत्ता—चाहे जिस नाम से पुकारिए) के मार्ग की इस मंज़िल से पार हो जायँ, तो फिर ये सांसारिक पदार्थ जिज्ञासु को दबा नहीं सकते। जब हम इस मंज़िल पर होते हैं, तो ऐसा भास होता है कि पूजा और भक्ति द्वारा हमने प्रकृति को जीत लिया है। तब भौतिक प्रकृति (माया) फूल उठती है और कहती है—"देखो, मैंने इसे फिर फाँस लिया।" इसके बिपरीत ईश्वर के सच्चे भक्त इस स्थिति और अवस्था से भी लाभ उठाते और यह विचारते हैं—"मैंने आध्यात्मिक जीवन को ओर अभी ही ध्यान दिया था, इसके फलस्वरूप मैंने इन सब शक्तियों को प्राप्त कर लिया। जब मुझे भगवान् के दर्शन—और स्वयं भगवान् ही मिल जायँगे, तो कैसा निःसीम आनंद मिलेगा।" यह एक दृष्टांत से स्पष्ट हो सकता है। हम एक उद्यान की ओर जा रहे हैं। मार्ग में हमको उद्यान से आती हुई शीतल, मंद और सुगंधित समीर मिलती है। हम वहीं बैठ जाते हैं, इस सुहावनी सुगंध का आनंद लेते हैं, और कहते हैं कि यह कैसी सुंदर और कैसी मनोमोहिनी है। हम उसी जगह बैठ जाते हैं, और फिर उठकर उस उद्यान तक पहुँचने का प्रयत्न नहीं करते, जहाँ से वह सुगंधित समीर आ रही है। थोड़ी ही देर बाद वायु का प्रवाह बदलता है, सुगंधि लोप हो जाती है। कहीं वह दिव्य आनंद भी नहीं रहता और हम आश्चर्य में पड़े रह जाते हैं। हम फिर पूछते हैं—"वह उद्यान कहाँ और किधर है ? क्या हम फिर उधर नहीं जा सकते ?" परंतु अब समय निकल गया। यह हृदयविदारक परिस्थिति जिज्ञासु को सत्य से मीलों दूर फेंक देती है। किंतु यदि सुगंधि आने पर हम सुरभित समीर का सुख भोगते हुए आगे ही बढ़ते जायँ, तो स्वयं उस उद्यान में पहुँच जायँगे, जो सुगंधि का केंद्र और स्रोत है। यहाँ असली सोमरस पीकर हम उन्मत्त और सदैव के लिये आनंदित हो जाते हैं। इसीलिये महात्मा लोग आध्यात्मिक पद की इस विभूति(ऋद्धि-सिद्धि)-वाली मंज़िल को बड़ी सावधानी से पार करते हैं। वे इन विभूतियों (ऋद्धि-सिद्धियों) को क्षणस्थायी, वास्तविक-आनंद-विहीन और अंत में दुःख देनेवाली प्रकृति का बाह्य प्रदर्शिनी-स्वरूप समझते हैं। वे इस पथ में 'उन्नति' या 'अवनति' को घृणा की दृष्टि से देखते और कहते हैं—

"ख़्वाब का कासा गदाई ताजशाही एक है ;
यह तनज़्ज़ुल, यह तरक़्क़ी दिल तेरा बहलाए क्यों।"

स्वप्न में राजा का मुकुट और भिखारी का भिक्षा-पात्र समान महत्त्व रखते हैं, इसलिये इस उत्थान या पतन में मन लगाने से क्या लाभ ?

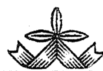
महात्माओं का कथन है कि परिमित क्षेत्र के भीतर जो कुछ भी उन्नति होगी, वह भी संकुचित ही होगी। वे एक जल-बिंदु की, समुद्र की तरंग की और नदी की सीमाओं में कोई भेद नहीं मानते। वे इन तीनों दृश्य पदार्थों में जल के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखते। वे समय और काम (इच्छा) के बंधन से पार जाना चाहते हैं। इन्हीं सब कारणों से यह जानकर कि ये विभूतियाँ प्रकृति के गोचर-विकार हैं, वे उनकी परवा नहीं करते, और खुल्लमखुल्ला कहते हैं—

"बचश्मे आशक़ाँ ग़ैरज़ ख़ुदा हेच ;
ज़मीनो आतिशो आबो हवा हेच।"

भक्तों की दृष्टि में ईश्वर, सत् या चिदानंद के अतिरिक्त और किसी का अस्तित्व ही नहीं है; या है भी, तो नहीं के बराबर। ऋद्धि-सिद्धियों को वे जड़वाद की उपासना का एक सूक्ष्म जाल समझते हैं। इन महात्माओं के संपर्क में आने से साधारण व्यक्ति भी विभूतियों को घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं। परंतु यह बात नहीं है कि ऐसे महात्माओं में चमत्कार दिखाने की शक्ति नहीं होती। महात्माओं में और ऐसे लोगों में, जो दिखलाने के लिये सबके सामने चमत्कारिक घटनाएँ करते हैं, यह भेद है कि ऐसे लोग इन कर्मों में लिप्त और इनके अधीन रहते हैं, किंतु महात्मा इन सब शक्तियों को अपने अधीन रखते हैं। महात्माओं का यह उद्देश्य रहता है कि जो मनुष्य उनके संपर्क में आवे, उसके ध्यान को सांसारिक जीवन से हटाकर आध्यात्मिक जीवन की ओर लगा दिया जाय। उनके सारे कार्य अहंकार अथवा स्वार्थ से परे होते हैं। चमत्कारिक घटनाओं के करनेवाले मनुष्य उन व्यक्तियों के समान हैं, जो रास्ते ही में सुगंधि-युक्त पवन को पाकर पागल हो जाते हैं, वे वहीं बैठ जाते हैं, और आगे नहीं बढ़ते। महात्मा उन लोगों के समान हैं, जो उद्यान तक पहुँच चुके हैं। ऐसे महात्मा अपनी दया-दृष्टि-मात्र से दूसरों को चमत्कारिक घटनाएँ करने की शक्ति प्रदान कर सकते हैं। परंतु उनका लक्ष्य यही होता है कि दूसरे भी उद्यान तक पहुँचाए जायँ। इन महात्माओं के दरबार में ऋद्धि-सिद्धि, विभूतियाँ सदा हाथ जोड़े खड़ी रहती और सेवा के अवसर की आकांक्षा करती रहती हैं। सारांश यह कि चमत्कारिक घटनाओं से यह प्रतीत होता है कि हम लोगों की मस्तिष्क-शक्ति से परे एक और जीवन या विश्व है, जो हमको आश्चर्य में डाल सकता है, किंतु एक ऐसी भी महान् शक्ति है, जो उसे भी आश्चर्य में डुबा सकती है। जो मनुष्य आध्यात्मिक जीवन की इस अवस्था तक पहुँच चुके हैं, वे कहते हैं—

बामा सख़ुन अज़ कश्फ़ो करामात मगोयद ;
चूँ मा अज़ कश्फ़ो करामात गुज़श्तेम।

मुझसे चमत्कारिक घटनाओं की बात मत कहो, मैं उनसे परे हो गया हूँ।



सुधा-
चित्रावली





स्व० जॉन गाल्सवर्दी

[आपको 'फ़ारसेट सागा'-नामक उपन्यास पर जगत्-प्रसिद्ध नोबेल-पुरस्कार मिला था। उसके डेढ़ महीने के पश्चात् आपकी मृत्यु हो गई। आपकी जीवनी इस अंक में पृष्ठ १०३ पर देखिए।]



श्रीमती सजीदा बेगम

[आप उन्नाव के रईस सैयद हसन-रज़ा की धर्मपत्नी हैं। उन्नाव-डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड की सदस्या हैं। आपने सेंट मेरीज़ कॉनवेंट, नैनीताल और लॉरेंट्स कॉन-वेंट, लखनऊ में शिक्षा पाई है।]





कुमारी सकीना करामत बी० ए०, बी० एस्-सी० (अमेरिका)

[आप एम्० ए० बी० गर्ल्स स्कूल, अलीगढ़ की प्रिंसिपल हैं। आप शीघ्र ही गर्ल्स गाइड्स की एक ट्रूप आरंभ करने-वाली हैं।]



राजकवि श्रीयुत मुंशी अजमेरीजी

[आपको ओरछा-नरेश ने 'मधुकरशाह'-नामक पुस्तक पर १०००) रु० प्रदान किए हैं। और, आपके गुणों पर मुग्ध होकर 'राजकवि' की उपाधि और जीवन-पर्यंत ५०) रु० मासिक वृत्ति नियत की है। आपकी 'वसंत-विलास'-नामक कविता पृष्ठ ६३ पर देखिए।]





ऊहूँ

"परियों के स्वप्न-देश से क्या तुम जागी हो सोते-सोते ?" "ऊँ हूँ, भैया ने मारा है, भीगे कपोल रोते-रोते ।"



ताज़ीमी सरदार श्रीपुरोहित प्रतापनारायण 'कविरत्न'

[आप सुधा-पाठकों के परिचित कवि हैं। आपने 'काव्य-कानन' नाम की सुंदर पुस्तक लिखी है। कई स्वर्ण-पदक भी मिल चुके हैं। आपका 'नल नरेश'-नामक महाकाव्य गंगा-पुस्तकमाला से प्रकाशित हो रहा है।]

अनंत अभिसार

[श्रीरामेश्वर शुक्ल 'अंचल']

अरी पगली, उन्मत्त बयार !
चलीं किससे करने अभिसार ?

मुकुल मधु-सा कोमल सुकुमार—
नवल यौवन-सा चंचल गात—
कल्पना-सा मादक निस्सीम—
मदिर कविता-सा मृदु, अवदात
किसे करती हो सखि, तुम प्यार ?

मुक्त बेसुध अलकों के बीच—
बिंधा कितना सौरभ का भार—
मुग्ध व्याकुल मधुपों की आह—
लिए पीड़ा के कितने तार—
वेदना के उदास शृंगार—

कुसुम-बालाएँ मुग्ध अजान—
प्रथम चुंबन के सरस बखान—
मलय अलकों में देती गूँथ—
प्रणय के कितने मधुमय गान—
मिलन के मोहक मंजु मलार।

विश्व की नीरव निशि में आह—
तुम्हीं ने सीखा पहले प्यार।
तुम्हीं ने पाया प्रथम वियोग—
वेदना का निर्मम उपहार—
व्यथा का कंपित अल्हड़ भार।

तुम्हारा एक-एक उच्छ्वास—
बना पीड़ा का हास-विलास;
दग्ध उर के आकुल निःश्वास—
बने प्रलयंकर के परिहास
नाश के दाहक हाहाकार।

तुम्हारा रोदन हे सुकुमारि,
यहाँ गिरता बन पावस-धार,
अरे ! वे कुछ आँसू उद्भ्रांत—
मेघ के मणिमय नीलम हार—
भिगो देते सारा संसार।

तुम्हारे तप्त मुक्त निःश्वास—
यहाँ बनते निदाघ संभार।
तुम्हारा शीतल श्वास-समूह—
नाचता बन हेमंत प्रसार।
अनोखा है यह ऋतु-व्यापार।

किंतु यदि हँस पड़ती हो कभी—
सोच उनका सुंदर अधिवास;
धरित्री के अंचल पर सुखद—
बिखर जाता है नव मधुमास;
नाच उठता है कवि सुकुमार।

तुम्हारे प्रणय-पुष्प की रेणु—
कनक-कण-सी झरती अनजान;
तभी पुलकित हो उठते काँप—
बाल मुग्धा के भोले प्राण।
सिहर उठती हैं नव मनुहार।

वियोगिन की रानी हे सजनि !
लिए जाओ ये मेरी आह।
बिछा देना चुपके से कहीं—
बनें उनके चरणों की राह।
यही जीवन का उपसंहार।

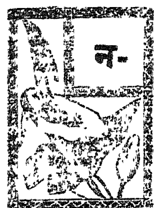
देख लो, हैं ये भग्न विदग्ध—
जल रही हैं बेसुध चुपचाप।
न झुलसें उनके कोमल चरण—
न भूमें इनका यह अभिशाप
लिए जाओ आँसू दो-चार।

❀ ❀ ❀

गए कितने चंचल युग बीत,
लुटे कितने स्वर्णिम संसार,
सजनि, कब सार्थक होगा आह!
तुम्हारा यह अनंत अभिसार।
मिलन का सुखद कल्पनागार;
अरी पगली, उन्मत्त बयार!

भारत की बेकारी और ग़रीबी दूर करने के उपाय

[कविविनोद, वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य (अमृतधारा)]



न-जाने राष्ट्रीय नेता इस आवश्यक प्रश्न को हल करने में क्यों नहीं लगते हैं। निर्धन जाति भी कभी स्वराज्य या कोई अधिकार प्राप्त कर सकती है? स्वराज्य निर्धनता दूर करने का भी उपाय है, किंतु निर्धन लोग उसको प्राप्त ही कैसे कर सकते हैं। अतः इसका उपाय सोचना ही होगा। "भूखा क्या पाप नहीं करता है।" पोलिटिकल लीडरों ने कहा कि सरकारी नौकरियाँ नहीं करनी चाहिए। कतिपय देश और जाति के हितचिंतकों ने छोड़ीं भी, परंतु इसके पीछे ही सरकार की ओर से जब छाँट हुई, तो कुछ लोग दफ़्तरों से निकाले गए, और बेकारी बढ़ी, पर वे मारे-मारे आज तक फिर रहे हैं। किसी दफ़्तर में एक जगह ख़ाली हो, तो सैकड़ों प्रार्थना-पत्र पहुँच जाते हैं।

बेकारी कितनी बढ़ी हुई है

लाहौर में ऐसे ही एक व्यक्ति ने इसलिये आत्महत्या कर ली थी कि वह घर का बोझ सँभालने के अयोग्य था। कई कारणों से मुझे बेकार लोगों के देखने का अवसर मिलता रहता है। राष्ट्र के बड़े-बड़े नेताओं के पास जाकर शायद ये लोग अपने दुखड़े नहीं रोते, जो उनका हृदय भी पसीजे। एक व्यक्ति अपनी माता के साथ एक बार आया। वह स्टेशन-मास्टर था। बेकारी के कारण सब एकत्रित धन खा चुका। अब खाने का घर में न था। वह चपरासी की नौकरी तक करने को तैयार था। एक दिन आर्य-समाज में बैठे हुए एक व्यक्ति को देखा कि एक फटी हुई धोती और कुरता पहने बैठा था। उसको अलग ले जाकर पूछा, तो ज्ञात हुआ कि इंट्रेंस पास है, नौकरी कहीं नहीं मिली, घर से रोज़गार ढूँढ़ने निकला है। नौकरी कोई मिली नहीं, अब छाबड़ी लगाई है, जिससे रोटी का गुज़ारा रात को कर लेता है, पर कपड़ों के लिये कहाँ से लावे।

बीसों ऐसे लोग आते हैं, जो कहते हैं कि वे भूखों मर रहे हैं, यदि चंद दिन उनको कोई कार्य न मिला, तो न-जाने वे जीवित रहें या नहीं। 'सरकारी नौकरी न करो' की आज्ञा का अब पालन नहीं हो सकता। लोग तो तरस रहे हैं कि उनको कोई नौकरी मिले। तीन वर्ष हुए, एक लड़का मिलिटरी एकाउंट्स दफ़्तर से अलग हुआ। तीन वर्ष तक घर में बैठकर खाने और दैनिक अर्ज़ियों और सिफ़ारिशों की भरमार के बाद बड़ी कठिनता से ३६) की रेलवे में नौकरी पाई, तब शांति हुई।

कई दिन हुए, एक सज्जन ने मुझे पत्र लिखा कि उसके बाल-बच्चे भूखों मर रहे हैं, यदि सहायता न मिली, तो ईसाई होने पर बाधित होगा, क्योंकि ईसाई उसको नौकरी देना स्वीकार कर रहे हैं। यह व्यक्ति स्वराज्य-मंदिर की सैर कर चुका है,

और शायद समाज का उपदेशक भी रह चुका है, परंतु पेट उसको गिराने पर बाध्य कर रहा है। प्रताप-जैसे वीर ने भी जब बालकों को भूखा तड़पते देखा था, तो एक बार उनका हृदय भी दहल गया था। दफ़्तरों में जाकर देखो, बी० ए० और एम्० ए० तक कई-कई मास तक मुफ़्त काम करते रहते हैं, जिससे पचास-साठ रुपए की नौकरी जब ख़ाली हो, उनको मिल जाय।

विलायत की अवस्था

हमारे समाचार-पत्र भी नक़ल कर देते हैं कि इँगलैंड में आज दो लाख बेकार बैठे हैं, और अब पचास सहस्र बेकार हैं। वहाँ तो गणना हो सकती है। वहाँ की गवर्नमेंट बेकार मज़दूरों को, जब तक वे बेकार हैं, भोजन के लिये लगभग ३० शिलिंग मासिक देती है। वहाँ गणना हो जाती है, परंतु क्या इन समाचार-पत्रों को कभी ख़याल हुआ कि वह अपने घर का भी हिसाब लगावें। यहाँ तो बेकारों की संख्या लाखों से करोड़ों तक पहुँच जाती है, और दिन-प्रति-दिन बढ़ रही है।

क्यों?

इसलिये कि प्रतिवर्ष सहस्रों, प्रत्युत लाखों नौकरियाँ चाहनेवाले नए पैदा हो रहे हैं, और नौकरियाँ थोड़ी हैं। ब्रिटिश सरकार का जब भारतवर्ष पर अधिकार हुआ, तो उसको आवश्यकता थी कि लोग उसके दफ़्तरों का काम सँभालें। नौकरी उस समय एक आदरणीय वस्तु समझी जाती थी। थोड़ी तनख़्वाहवालों का भी बड़ा सम्मान होता था। आय भी उनकी अच्छी होती थी। बहुत-से लोग इस ओर झुके। अब तक भी जो पढ़ता है, नौकरी ही का इच्छुक दिखाई देता है। केवल थोड़े-से मनुष्य ही व्यापार के लिये शिक्षा प्राप्त करते हैं।

जितने लोगों की संख्या अब पढ़ने लगी है, उसके दसवें भाग को भी नौकरियाँ नहीं मिलती हैं। तब गवर्नमेंट का कर्तव्य था कि शिक्षा का रूप बदल देती। थोड़ी प्रारंभिक शिक्षा के पीछे विविध उद्योग-धंधों की शिक्षा के कॉलेज बन जावें, किंतु न केवल गवर्नमेंट ने ऐसा नहीं किया, प्रत्युत ईसाइयों, मुसलमानों, हिंदुओं, आर्यों इत्यादि जिस किसी ने भी शिक्षा का प्रबंध किया, उसने भी प्रायः वही क्लर्क बनाने की मशीनें बनाईं। क्या लीडर यह सोचने का कष्ट न उठाएँगे कि प्रत्येक वर्ष सहस्रों विद्यार्थियों को जो स्कूल लीविंग सर्टिफ़िकेट मिल जाता है, वे कार्य क्या करेंगे।

यहाँ एक कठिनाई और भी है

वह यह कि जो शिक्षित पुरुष भूले-भटके कोई व्यवसाय करना चाहता है, उसको कोई काम दिखाई नहीं देता है। कोई काम चलता नहीं है। हमारे देश के बड़े-बड़े सौदागर हैं क्या? सब विलायत के एजेंट हैं। कोई लोहे का व्यापारी है, तो कोई कपड़े का, कोई तेल का सौदागर है, तो कोई रंग का। सैकड़ों लोग भारतवर्ष की कच्ची पैदावार बाहर भेजने में लगे हैं। वे अपने विचार से बहुत कमाने में लगे हैं, परंतु देश का धन औरों के हाथ बेचने के एजेंट हैं। ज़रा अपने चारो ओर दृष्टिपात करके देखो तो सही, तुम्हारे पास अपना है क्या? सारे संसार की वस्तुएँ खपाने के लिये भारतवर्ष पर ही सबकी दृष्टि जाती है।

योरप में मैं जहाँ कहता कि भारतवर्ष सब देशों से कंगाल है, उसकी आय प्रति मनुष्य केवल दो पौंड वार्षिक है, तो वे लोग अचंभा करते और कहते—"अजी, हिंदुस्थान ही तो हमारा माल ख़रीदता है।" सारे देशों को यही धुन लगी रहती है कि कोई ऐसी वस्तु बनाएँ, जो हिंदुस्थान में अधिक खपे। वाह रे हिंदुस्थान! जिन वस्तुओं की आवश्यकता नहीं, वह भी करोड़ों की मँगवाता है। हमारे सौदागर उनके एजेंट वही ख़बरें उनको देते रहते हैं। रबड़ के फुँकने फूँक मार-मारकर बालक उड़ाते हैं, लाखों रुपयों के यही आ जाते हैं। जर्मनी, जापान से नित नए खिलौने आते हैं, और खिलौनों का मूल्य करोड़ों रुपयों तक पहुँचता है। आवश्यक सामान का तो कहना ही क्या है। प्रत्येक देश की यह इच्छा रहती है कि वह कुछ न कुछ हिंदुस्तान से कमावे। स्विट्ज़रलैंड छोटा-सा देश है, जहाँ कोई पैदावार ही नहीं होती है। घास और चंद फलवाले पेड़ हैं। मुसाफ़िरों के आने से जो आय होती है, उससे गुज़ारा करते हैं। कश्मीर के लोगों की भाँति वे भी दस्तकारी जानते हैं। लाखों रुपयों की शाल जर्मनी से आकर वहाँ उनके ऊपर काम होता है, और वह हमारे हिंदुस्थानी सौदागर मँगवाकर देशी करके बेचते हैं। धोतियों और शालों के किनारे गट्ठों-के-गट्ठे हिंदुस्थान को जाते रहते हैं। घास पर गाएँ अधिक पालकर सारे जगत् में अपना दूध पहुँचाते हैं। लेते हैं, तो देते भी हैं। घड़ियाँ तो वहाँ की प्रसिद्ध ही हैं। जर्मनी का तो कहना ही क्या है। वह तो नित्य नई चीज़ें केवल हिंदुस्थान के लिये बनाता रहता है। बेचनेवाले एक ही वस्तु की नई-नई शक्लें बनाते रहते हैं, जिससे कभी एक रूप में कोई वस्तु बिके, कभी दूसरे में।

इटली कितना कपड़ा यहाँ भेजता है! सूफ़ इत्यादि सब वहाँ से आते हैं। इसके अतिरिक्त राजों और अमीरों के बग़ीचों, महलों, चित्रशालाओं में लाखों रुपयों की पत्थर की मूर्तियाँ इटली देता है। झाड़-फ़ानूस और शीशे की असंख्य वस्तुएँ अमीरों के घरों की शोभा हैं। कभी मेज़ पर बैठे बाबू ने विचार किया है कि उसका अपना क्या है? जिस पत्र पर वह लिख रहा है, वह अपना नहीं, होल्डर अपना नहीं, निब अपनी नहीं, पेंसिल अपनी नहीं, दवात अपनी नहीं, स्याही अपनी नहीं; यदि अपनी है, तो कई चीज़ें इसमें मिलानेवाली विलायत से आती हैं। ब्लाटिंग पेपर अपना नहीं, स्टैंड अपना नहीं। कोई पैड या पेपर-वेट पड़ा है, तो वह अपना नहीं। मेज़ का कपड़ा विलायती है। मेज़ यदि अपने देश में बनी है, तो उस पर रंग अपना नहीं, जिन औज़ारों से बनी है, उनमें अनेक विलायती हैं, उसके कील-काँटे विलायती हैं। लैंप और उसका तेल, यहाँ तक कि बत्ती भी यहाँ की नहीं बनी है। पुस्तक यदि यहाँ छपती है, तो छापे की मशीनें और स्याही तथा उसको बनानेवाला प्रत्येक औज़ार किसी बाहर के देश का है।

दूसरी ओर शृंगार की मेज़ पर दृष्टि डालिए। शीशा विलायती है, अस्तुरा विलायती है, साबुन विलायती, ख़ुशबू विलायती, ब्रुश विलायती। अब ऊपर नज़र डालिए, तो कपड़े सिर से पाँव तक विलायती या विलायती मशीनों से बने हुए। कपड़े टाँगनेवाली खूँटी भी तो विलायती है।

बटन विलायती, सीने का धागा विलायती, सुई विलायती, सीने की मशीन विलायती, कहाँ तक गिनाता जाऊँ, हमारे घर के बरतनों की चादर भी विलायत से आती है। छुरी, काँटा, पिर्च, प्याला, खाँड़ इत्यादि विलायती है। हमारे खाने का आटा जिन मशीनों से पिसता है, वह भी विलायती हैं। सोना और चाँदी भी विलायत से मोहर लगकर आता है, तब बिकता है। हमारे गहने साफ़ करने की रेत भी तो विलायत से आती है। कभी किसी नगर में, किसी बाज़ार में, फिर तो जाओ, कितने दुकानदार कोई अपनी चीज़ यहाँ बेच रहे हैं। शायद लाखों में, हज़ारों में कोई एक शुद्ध स्वदेशी वस्त्र जो पहनता है, उसमें भी सीने की मशीनें बिलायती और उन्हीं की जेब में रक्खी हुई घड़ी विलायती, फ़ाउंटेन विलायती, ऐनक विलायती, कौन व्यक्ति है, जो कह सके कि वह स्वदेशी है, जब कि जनेऊ (यज्ञोपवीत) भी जर्मनी बनाकर भेज रहा है। मैं यह जानता हूँ कि प्रत्येक देश में दूसरे देश की वस्तुएँ बरती जाती हैं, किंतु वे सब देश यदि दस वस्तुएँ लेते हैं, तो दस दूसरों को भी देते हैं। हिंदुस्थान की भाँति नहीं कि दे तो कच्ची वस्तुएँ और ले बनी हुई। हिंदुस्थान की पैदावार के कारण ही आज तक कुछ दम बाक़ी है, नहीं तो इसका ठिकाना कहाँ था।

बात साफ़ है

जब हमारी प्रत्येक वस्तु बाहर से आती है, और हमारे पास कोई काम इनके एजेंट होकर उनकी वस्तुएँ बेचने के अतिरिक्त नहीं है, तो वह काम भी कहाँ तक हो सकता है। इसलिये व्यापारी जो हमारे देश में हैं, वे भी परिमित संख्या में हैं। नौकरियाँ पहले ही भरी पड़ी हैं, फिर बताइए, लोग कहाँ जायँ? और कोई शक्ति है, जो इस परिस्थिति में देश की बेकारी को दूर कर सके।

तब प्रश्न होता है कि क्या किया जाय?

सबको चाहिए इसका हल सोचें। हम भी जो कुछ हमारी समझ में आता है, संक्षेप में नीचे लिखते हैं—

सबसे पहले तो यह आवश्यक है कि शिक्षा का कोर्स बदल जाय। ध्यान क्लर्की की ओर से हटकर शिल्प की ओर जाय। जितने राष्ट्रीय कॉलेज हैं, उनको इंडस्ट्रियल शिक्षा में अधिक प्रयत्न करना चाहिए। उच्च लिटरेरी शिक्षा जो आवश्यक समझें या शिक्षा में जिन्हें जाना है, वे प्राप्त करें। शेष लिटरेरी शिक्षा के साथ उद्योग की शिक्षा आवश्यक हो। शिक्षा पानेवालों के दिल बदल दिए जायँ। वे शिक्षा का उद्देश्य नौकरी न समझें, वरन् देश के लिये कोई चीज़ बनाना समझें, और शिक्षा के पीछे कोई इंडस्ट्री आरंभ करें। जर्मनी में हर बालक को टेक्निकल शिक्षा दी जाती है। एक मेले में मैंने देखा, खिलौने बिक रहे थे। वह क्या थे? हर प्रकार की मैशीनरी के नमूने लकड़ी से बने हुए। लड़के उनको खोलते और जोड़ते हैं। उनके मस्तिष्क ही हर प्रकार की मैशीनरी के समझने योग्य हो जाते हैं। इसीलिये तो नित नए आविष्कार होते हैं।

जो व्यय कर सकते हैं, और जिनके बालक भी इस योग्य हैं, वे अपने लड़कों को दूसरे देशों में किसी शिल्प के सीखने के लिये भेजें।

केवल बैरिस्टर बनने या कोई नौकरी के विचार से न भेजें। डॉक्टरी की डिगरियाँ प्राप्त करके भारतवर्ष में आकर—वहाँ के दवा बेचनेवालों के एजेंट बनने के स्थान वहाँ की दवा बनाने की विधि सीखकर आकर—यहाँ वही औषधियाँ बनाने का यत्न करें। धनाढ्य पुरुष होनहार विद्यार्थियों को विशेष इक़रारनामे लिखवाकर दूसरे देशों में कोई हुनर प्राप्त करने के लिये भेजें, जिससे वे आकर उनकी अध्यक्षता में कोई लाभदायक कारख़ाना खोलें।

इस कार्य में भी दो कठिनाइयाँ हैं

प्रथम यह कि कोई भी चीज़ यहाँ बनानी आरंभ करो, दूसरे देशोंवाले वैसी ही, प्रत्युत उससे भी उत्तम और सुंदर, उससे सस्ती चीज़ बनाकर भेज देंगे।

स्वदेशी कपड़े की लहर कुछ दिनों के पीछे उन्होंने मात कर दी। आपको खद्दर यदि ।≡) गज़ मिलता है, तो उससे नर्म, उससे सुंदर विलायती कपड़ा ।) गज़ मिल रहा है। कितने लोग हैं, जो ।) गज़ को छोड़कर ।≡) गज़ लेंगे, और यह सोच सकेंगे कि अपना लड़का मैला-कुचैला भी प्यारा लगता है।

जो अधिक व्यय कर सकते हैं, वे फ़ैशन और सौंदर्य को ढूँढ़ते हैं। स्वदेशी के प्रचारकों ने कहा कि मोटे-झोटे कपड़े पहनकर सादे बनो। स्वदेशी कपड़े बनानेवालों ने इसलिये सुंदरता की ओर ध्यान न किया, किंतु इस समय में कितने स्त्री-पुरुष फ़ैशन और सुंदरता से बेपरवा मिल सकते हैं। चाहिए यह था कि शर्त स्वदेशी की होती, चाहे वह कैसा सुंदर होता। इससे मिलें भी मुक़ाबला करतीं।

यह बिल्कुल सच है कि यदि महात्मा गांधीजी की केवल इतनी बात लोग मान लेते कि हाथ से कता और हाथ से बना हुआ कपड़ा पहनें, तो देश की अवस्था बदल जाती। न केवल करोड़ों रुपया बच रहता, वरन् जो बहुत-से लोग बेकार रहते हैं, वे भी सोसाइटी के लिये हितकर हो जाते। नगरों की स्त्रियाँ जो दिन-भर बेकार रहती हैं, उनको काम मिलता। ग्राम आदि के लोग जो वर्ष में ४ मास बेकार बैठे रहते हैं, काम करते और अपना रुपया बहुत-सा बचाते। पहाड़ी इलाक़ों में मैंने देखा है, वर्ष में ६ मास इनको काम नहीं है। ये लोग ६ मास यदि अंदर बैठे केवल कपड़ा कातने-बुनने का काम करें, तो कितना लाभदायक हो सकता है। वैसे भी इसके बहुत-से लाभ हैं, किंतु देश का दुर्भाग्य कि यह लहर ढीली हो गई है। वे दुकानदार जिन्होंने खद्दर इत्यादि की दुकानें निकाली थीं, फिर विदेशी कपड़ा मँगवाने लगे हैं। पूछो, तो कहते हैं कि क्या भूखे मरें, कोई लेने नहीं आता है। किंतु जब लेने आता था, तब क्या शुद्ध स्वदेशी खद्दर मिलता था। नहीं। यहाँ भी मशीनों ने खद्दर तैयार करना आरंभ किया। जुलाहों ने यहाँ की और बाहर की मिलों का सूत लेकर खद्दर बुनना आरंभ किया या व्यापारियों ने जापान इत्यादि का बुना हुआ बहुत खद्दर मँगवाकर बेचना आरंभ किया। हाथ से कता और बुना प्रत्येक अपने लिये तैयार करे, किंतु व्यापार तो इसका हो नहीं सकता। इस प्रकार की बातों ने भी पब्लिक पर बुरा प्रभाव डाला। किंतु भूल एक हुई। खद्दर से हटकर स्वदेशी वस्त्र तक रहना

चाहिए था, चाहे वह किसी मिल का हो या हाथ का, किसी रंग-ढंग का हो या फ़ैशन का। परंतु गिरावट एकदम हुई, और विदेशी कपड़ों के जलानेवालों ने ही फिर विदेशी मोल लिए, तब सर्वसाधारण का तो कहना ही क्या!

हाँ, मैं वर्णन कर रहा था कि दूसरे देशों के लोग जैसी चीज़ की भी हिंदुस्थान में खपत हो, हमसे सस्ती बनाकर भेज सकते हैं। फुलकारियाँ तक जब विलायत से बनकर आ गईं, तो वह हमको और क्या काम करने देंगे।

किंतु यदि यह बात सोचकर हम लोग कार्य आरंभ न करें, तो फिर देश के उठने की कभी आशा ही नहीं है। जातियाँ एक दिन में बनती-बिगड़ती नहीं हैं। यहाँ मज़दूरी सस्ती होने से बहुत-सी वस्तुएँ हम सस्ती भी तैयार कर सकते हैं। आवश्यकता के बढ़ने से मशीनरी, जो दूसरे देशों से आ रही है, यहाँ भी बननी आरंभ होगी। चाहिए केवल यह कि जाति के प्रत्येक व्यक्ति के मन में अपने देश की बेबसी और निर्धनता का ख़याल हो जाय, और उसके दूर करने की उसको इच्छा हो। जाति के नेता अपने प्रयत्नों का बड़ा भाग इस बात में ख़र्च किया करें कि लोग स्वदेशी बनी हुई चीज़ें ख़रीदें। स्वदेशी चीज़ों के लिये चाहे वे अधिक सुंदर न हों, लोगों के मन में प्रेम उत्पन्न करें।

लोगों में प्रायः यह विचार हो कि जो चीज़ देशी मिल सकती है, वह विदेशी न ली जाय। जिस-जिस चीज़ के कारख़ाने खुलते जावें, उस-उस चीज़ के प्रचार में जाति के हितचिंतक अधिक यत्न किया करें।

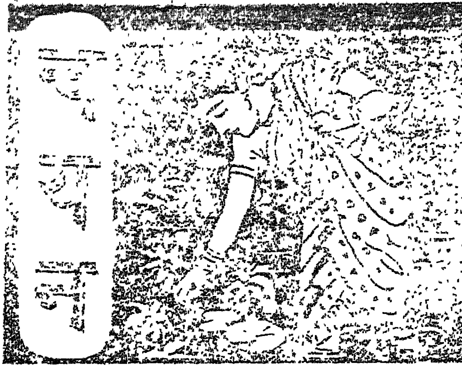
अनगिनत छोटी-छोटी चीज़ें हैं, जिनका धंधा हिंदुस्थानियों को करना चाहिए, और जिनको प्रत्येक काम में भी ला सकता है। एक-दो चीज़ें भी यदि केवल देशी व्यवहृत होने लगें, तो बहुत-से नवयुवक, जो बेकार बैठे हैं, काम में लग जायँ। तालों को लीजिए। अलीगढ़ इत्यादि में कैसे अच्छे तैयार हो रहे हैं, फिर भी विलायत से जितने आते हैं, उसका हज़ारवाँ भाग भी तैयार नहीं होते। क्यों न बहुत-से कारख़ाने प्रत्येक जगह खुलें, और उनके बाहर से आने की आवश्यकता न रहे। वैसे ही चाक़ू, क़ैंची, उस्तुरा, छड़ी, जुर्राब, तस्मे, तौलिए, टब, बाल्टी, कई प्रकार के खिलौने, होल्डर, लिफ़ाफ़े, पैड, साबुन, ब्रुश, स्याहियाँ, तैल, बटन, धागा, रील, लेश, फ़ीते, कई प्रकार के कपड़े, सुगंधियाँ, स्प्रिट, लैंप इत्यादि अनगिनत साधारण चीज़ों से आरंभ करके फिर बड़ी-बड़ी चीज़ों की ओर पग उठाना चाहिए। पहलेपहल मैशीनरी मँगवानी पड़ेगी, फिर मैशीनरी बनानेवाले पैदा होंगे। योरप, अमेरिका में प्रथम आवश्यकता उत्पन्न होती है, फिर मैशीन बनानेवाले उस काम के लिये नई मैशीन तैयार कर देते हैं। कैसे कितनी मैशीनें वहाँ तैयार होती रहती हैं, उसका कुछ वर्णन देखना हो, तो हमारी पुस्तक 'सैरे-योरप' में देखें।

इस विषय में दूसरी कठिनाई पूँजी की है। देश बहुत ग़रीब है, जो काम कुछ करना भी चाहें, उनके पास पूँजी नहीं है। इसके लिये जातीय नेताओं को आगे आना चाहिए। वे स्थान-स्थान पर अपने आदर्श छोड़ दें, जो बड़े

ईमानदार हों, जिनमें स्वदेश-प्रेम हो। वह लिमिटेड कंपनियाँ जारी करें, करावें, काम करनेवालों के लिये काम करने के हेतु इकट्ठे करें। यदि लीडरों का ध्यान इस ओर गया, तो यह कार्य आसान हो जायगा।

इसके साथ-साथ यह विचार भी देश में फैलना चाहिए कि वह देश की कच्ची उपज को बाहर भेजने के स्थान उससे कुछ-न-कुछ बनाकर भेजा करें। यथा तिल, सरसों, अलसी इत्यादि कच्ची भेज देने से उनका तेल बनाकर भेजना अधिक लाभदायक है। मूल्य अधिक मिलता है, और खली देश में रहती है।

कपास से अच्छी रुई, रुई से उत्तम धागा और धागे से उत्तम कोई विशेष प्रकार का कपड़ा, जो उधर पसंद किया जाय। खाने की चीज़ों की उनको बहुत आवश्यकता है। फिर प्रत्येक की शिक्षा और रुचि के अनुसार काम निकलते ही आवेंगे। साथ ही जन-साधारण में यह ख़याल होना चाहिए कि वे जहाँ तक संभव होगा, विदेशी चीज़ न मोल लेंगे, सुंदर वस्तु मोल लेंगे। परंतु जो मिले, सो अपनी ही। जो मनुष्य स्वदेशी चीज़ को छोड़कर विदेशी चीज़ लेता है, वह देश के भीतर बेकारी बढ़ाता है, निर्धन देश को और कंगाल बनाता है। जब तक देश के भीतर सेवन होनेवाली ही नहीं, वरन् बाहर देशों में भी भेजी जानेवाली चीज़ें तैयार नहीं होती हैं, निर्धनता दूर न होगी, और जब तक निर्धनता दूर न होगी, हमारी शारीरिक, आध्यात्मिक, सामाजिक कोई उन्नति भी दुस्तर ही दिखाई देती है।



१. साक़ी से

बहा दे साक़ी ! मधु की धार !
न आता अवसर बारंबार ।
स्वर्ण-पात्र में सुरा घोलकर
देख रहा तू किसकी ओर ?
क्यों न छकाकर आज पिला दे
और बना दे आत्म-विभोर ?
सदा मानूँगी यह उपकार !
बहा दे साक़ी ! मधु की धार !
न आता अवसर बारंबार ।
लख तो, कलियाँ खिल-खिल हँसतीं,
भौंरे गाते मधुमय राग ;
पहन प्रकृति वासंती साड़ी
भरती अपना अचल सुहाग ।
विहरती वन-वन विहँस बहार ।
बहा दे साक़ी ! मधु की धार !
न आता अवसर बारंबार ।
यौवन-रूप सँजोकर सब विधि
जाती हूँ प्रियतम के पास ;
बिखरी लड़ियों के गुथने की
होती तो है कुछ-कुछ आस ।
नेक तू खोल मिलन का द्वार !
बहा दे साक़ी ! मधु की धार !
न आता अवसर बारंबार ।

'प्रेम'

× × ×

२. पानी और दूसरी पीने की चीज़ें

मनुष्य के लिये वायु के बाद सबसे आवश्यक वस्तु पानी है । पानी से मेरा आशय है शुद्ध पानी, या ऐसा पानी, जिसमें कुछ मिलाया न गया हो ।

यह देखा गया है कि यदि मनुष्य बिना किसी प्रकार के भोजन के रहे, तो वह कम-से-कम नब्बे दिन बिना किसी हानि के जीवित रह सकता है, पर बिना पानी के तो वह चौबीस घंटे भी बिना हानि उठाए नहीं रह सकता ।

प्रकृति ने हमारे पीने के लिये शुद्ध पानी बनाया है, और जिस प्राकृतिक दशा में प्रकृति हमें पानी पीने को देती है, उसी दशा में हमें उसे पीना चाहिए । सुयोग्य प्रकृति की बनाई हुई वस्तुओं को हम उन्नत नहीं बना सकते । शुद्ध पानी आप जितना चाहें पी सकते हैं, जितनी बार चाहें पी

सकते हैं; आपको किसी प्रकार का नुक़सान नहीं पहुँच सकता। पानी को गर्म करके या उसमें बर्फ़ मिलाकर कदापि न पीना चाहिए। यह प्रकृति के विरुद्ध है, और इसीलिये ऐसा करना हानिकारक है। गले की ज़्यादातर बीमारियाँ जो आए दिन प्रायः हो जाया करती हैं, उनका कारण बर्फ़ मिला हुआ पानी पीना है। शराब इत्यादि मादक द्रव्य का इस्तेमाल तो वास्तव में हानिकारक है ही। चाय और क़हवा, जिसका प्रचार दिनोदिन बढ़ता जाता है, हमारे शरीर और दिमाग़ को बड़ा नुक़सान पहुँचाते हैं। चाय तो अब इस क़दर ज़्यादा प्रचलित है कि हर घर में आपको मिल सकती और छोटे-से-छोटे क़स्बे में भी ख़रीदी जा सकती है। 'पुख़्ता' और 'ख़ाम' दावतों का तो अब नाम ही मिटनेवाला है, अब तो ज़्यादातर 'पार्टी' हुआ करती है, और वह भी अधिकतर 'टी-पार्टी'। कुछ फ़ैशन ही ऐसा हो गया है। चाय बेचनेवाले भी ख़ूब इश्तहारबाज़ी करते चले जाते हैं, और इस क़दर ज़ोरदार दावे के साथ कि "चाय गर्मी में ठंडक पहुँचाती है और जाड़े में गर्मी।" उनको विज्ञापनबाज़ी से लाभ भी होता है, और चाय का प्रचार दिन दूना रात चौगुना बढ़ता चला जा रहा है। आजकल के सभ्य-समाजवाले तो बिना चाय के कुछ काम ही नहीं कर सकते।

शुद्ध जल के अतिरिक्त आप ताज़े फलों से तैयार किया हुआ शर्बत पी सकते हैं।

मेरा इस छोटे-से लेख लिखने का यह आशय था कि मैं पाठकगण को यह बतलाऊँ कि पानी के लिये शुद्ध पानी ही एक उत्तम वस्तु है, और वह भी उसी शकल में, जिसमें वह हमको प्रकृति से मिलता है। शराब, चाय, क़हवा इत्यादि मादक द्रव्य, बर्फ़दार शरबत, सोडा इत्यादि—ये सब हमारे शरीर और मस्तिष्क के लिये हानिकारक हैं। उनसे जल का काम कभी नहीं निकल सकता और न जल का फ़ायदा ही हासिल हो सकता है। हाँ, दूध पानी के स्थान की थोड़ी पूर्ति कर सकता है, बहुत नहीं।

(डॉ०) छैलविहारीलाल
(एम्० डी०, डी० सी० एच्० एम्०)

× × ×

३. कवि और संसार

(१)

कवि के अथाह हृदय में भावों की मंदाकिनी अठखेलियाँ करती हुई बह रही थी। ज्ञान-सूर्य की किरणें नीचे उतर-उतरकर उसकी ललित-लोल लहरियों को चूम रही थीं। किनारे पर खड़ा-खड़ा संसार की इस छबीली छटा को देखकर मचल रहा था। पर कवि को स्वयं इसका कुछ भी अनुभव नहीं था। वह उदास बैठा था।

(२)

समय तेज़ी के साथ बीतता जाता था। कवि की अभी तक अपनी प्रियतमा से भेंट नहीं हुई। वह प्रतीक्षा में मौन बैठा था। प्रेमावेश के कारण एकाएक उसके होठ हिल उठे, और उनसे कुछ दुःख-पूर्ण, अस्फुट किशोर स्वर निकल पड़े, जिनके प्रत्येक कोमल टुकड़े अपने सुनहले डैने फैला-फैला, शून्य वायुमंडल के बीच उड़-उड़कर प्रियतमा की खोज में विचरने लगे। मूर्ख संसार ने उसे एक गीत समझा, और ख़ुशी के मारे चिल्ला उठा—"शाबाश!" पर, वाहवाही की वह तुमुल ध्वनि यों ही हवा चीरती हुई निकल गई। उससे कवि को ज़रा भी उत्साह नहीं हुआ। उलटे उसके दुःख की मात्रा और बढ़ गई।

(३)

कवि को चैन नहीं था। विरही के लिये एक-एक पल पहाड़ होता है। अभागा वियोगी सिसककर रो पड़ा। उसकी आँखों से गर्म-गर्म आँसुओं का सोता फूट निकला। पर अंधे और अबोध मानव-संसार ने उन अश्रु-बूँदों को मोती समझा, और कवि की करुण सिसकन को सितार की झंकार समझ वह मस्ती में झूम उठा।

(४)

जीवन की घड़ियाँ बीतती जाती थीं। संध्या अंधकार की चादर ओढ़े आगे बढ़ती आ रही थी। कवि हृदयेश्वरी के लिये व्याकुल हो रहा था। शक्तियाँ क्षीण होती जाती थीं। कवि अधीर था। पर दुनिया इसे एक सुंदर तमाशा समझकर हँस रही थी।

(५)

अब असह्य हो उठा। एकटक प्रियतमा की राह देखते-देखते कवि की आँखें चौंधिया गईं। उसने आँखें मूँद लीं। आँखों को बंद करते ही कवि ने एक नया ही नूर देखा। उसने सहसा एक तेज-पूर्ण आलोक के बीच प्रियतमा को मुस्किराती हुई पाया।

आनंद-मग्न संसार नेत्र खोलकर भी कुछ नहीं देख सका। पर कवि ने आँखें मूँद करके दुर्लभ प्रियतमा की मंजुल मोहिनी मूर्ति का दर्शन किया।

(६)

कल्पना के करों से खींचकर कवि ने प्रियतमा को गले लगाया, और उसको हृदय-साम्राज्य की रानी बनाया।

(७)

प्रियतमा की छाती में छाती चिपकाए कवि मौन-मुग्ध था। मस्त था। बड़ी देर के बाद जब उसने आँखें खोलीं, तो संसार का रंग फीका पड़ गया था। वह बिल्कुल नीरस हो गया था।

(८)

दुनिया मन-मारे चुपचाप उदास बैठी थी। उसकी सारी हँसी कवि के होठों पर जा अड़ी थी। कवि हँस रहा था। पर संसार की उदासी उससे देखी नहीं गई। समवेदना में उसने अपनी वीणा उठाई। उसके तार-तार के मधुर झंकार शून्य वायुमंडल में ठुमक-ठुमककर नाचने लगे।

(९)

संसार तलमला उठा। पर अब की उसके मुख पर उस विचार-शून्य ओछी हँसी की रेखा नहीं थी। विमुग्ध होकर गंभीरता में वह अमृत की बूँद पी रहा था।

(१०)

कवि हँस रहा था। संसार भी हँस रहा था। अब की बार शायद वह कवि के मर्म को कुछ-कुछ समझ सका था। बदले में सहृदय कवि ने जीवन-मकरंद टपकाया, जिसकी एक-एक बूँद कोमल कुसुम-दल पर ओस-कण की नाईं संसार के हृदय में बिखर गई, और अपार सागर के रूप में लहराने लगी। उनकी लहरियों पर संसार का हृदय अनंत की ओर जाती हुई नौका की तरह थिरकने लगा।

विश्वनाथप्रसाद (एम्० ए०)

× × ×

४. बीज

कृषि की सफलता के अनेक सहायकों में से अच्छे बीज का एक विशेष स्थान है। यदि किसी किसान ने खाद, पानी आदि आवश्यक वस्तुओं के सहित अपने खेत को परिश्रम से कमाकर स्वस्थ, बढ़िया बीज बोया है, तो प्रकृति के अनुकूल रहने पर वह एक अच्छी भरपूर फ़सल की आशा कर सकता है, परंतु इसी के समांतर उन्हीं सब अनुकूल व्यवस्थाओं के होते हुए भी ख़राब बीज बोकर एक उत्तम फ़सल की आशा करना अपने को धोके में डालना होगा। किसान की सफलता में अनेक ईश्वरीय अथवा प्राकृतिक विधान (वर्षा, पाला, ओले, टिड्डी आदि) रोड़े डालते रहते हैं, परंतु बीज का उपयोग तो किसान के हाथ की बात है, और वह अच्छे बीज बोकर वास्तव में अपनी दशा सुधार सकता है। सरकारी फ़ार्मों और किसानों की प्रति एकड़ उपज में दुगुना-तिगुना अंतर रहता है, जिसका एक मुख्य कारण अच्छे बीज के उपयोग की महानता ही है।

बुरे बीजों से हमारा अभिप्राय उन्हीं बीजों से है, जिनमें उपजने की और भरपूर पैदावार देने की स्वाभाविक शक्ति नहीं है। इसमें भी कई श्रेणियाँ संभव हैं—

१. थोड़ी पैदावार देनेवाले बीज, जो अधपके ही काट लिए गए हों।

२. जिनमें अन्य बीजों का मिश्रण हो।

३. साफ़ करते समय अथवा खलियान में टूट-फूट गए हों।

४. गोदाम में पानी अथवा कीड़ों द्वारा बिगाड़े अथवा नष्ट किए गए हों।

किसानों को अधिकतर महाजनों से ही बीज उधार लेना पड़ता है, जिन्हें न किसानों से अधिक सहानुभूति ही होती है और न कृषि से अभिज्ञता। वे खत्तियों में ही कई प्रकार के मिले हुए बीज रखते हैं, जिनमें से ९० प्रतिशत से अधिक खत्ती की सील से बोने के काम के नहीं रह जाते। इन बीजों के उधार लेने से तो यदि महाजन रुपया उधार दे दे, तो अन्य बीज-विक्रेताओं के यहाँ से अपना बीज मोल लेना उत्तम होगा। किसान यदि अपना बीज आगामी वर्ष के लिये स्वयं रक्खा करें (अथवा रख सकें), तो अति उत्तम हो। इससे उन्हें कोई कष्ट न होगा, और वे महाजन की व्यर्थ की मिन्नतें करने से भी बचेंगे।

किसान अपना बीज स्वयं रखने के लिये अपनी कारत अथवा अपने फ़ार्म के सबसे बढ़िया खेत को छाँटे, और अन्य प्रकार के पौदों को जड़ से उखाड़- (Rouging) कर दूर फेंक दे। इस छँटे हुए खेत में किसी प्रकार की बीमारी आदि न होनी चाहिए। दानों को पेड़ पर ही अच्छी तरह पकने देना चाहिए। इसके पश्चात् बीजों को बड़ी सावधानी से निकालकर और अच्छी तरह साफ़ करके धूप में सुखा लेना उचित है। बीजों को छानना और भी अच्छा है, ताकि छोटे, अधपके बीज और कूड़ा-करकट आदि दूर हो जायँ। इसके अनंतर बीज को छनी हुई बालू के साथ एक घड़े में भर देना ठीक है। कीड़ों के आक्रमण से बचने के लिये घड़े में फ़िनायल की गोलियाँ (नैप्थलीन) डाल देना अति उत्तम होगा। घड़े का मुँह चिकनी मिट्टी से भली भाँति बंद कर देना आवश्यक है, ताकि वायु का प्रवेश न हो सके। इस प्रकार रक्खा हुआ बीज अति उत्तम होता है। इसको बोने के समय ही खोलना चाहिए। बड़े कामों के लिये नई बोरियों में बीज भरकर अच्छे गोदाम में रख देना होता है। बोरियों के ऊपर भूसा अथवा बालू भी डाला जाता है। किसान को भी अपने बीजवाले घड़े को सूखी जगह में ही रखना उचित है।

यदि बीज मोल लेने की आवश्यकता आ पड़े, तो किसी विश्वसनीय दूकान से ही बीज ख़रीदना उचित है। अन्य देशों में, जैसे अमेरिका, आस्ट्रेलिया, जो आधुनिक कृषि में हमसे बहुत आगे हैं, केवल सरकार द्वारा प्रमाणित बीज-विक्रेता ही बीज बेच सकते हैं, और राजकर्मचारी समय-समय पर उनके बीजों का निरीक्षण भी करते रहते हैं। बीज मोल लेते समय निम्न-लिखित बातों पर ध्यान रखने से उत्तम बीज पाने में भारी सहायता मिलेगी—

१. बीज की पवित्रता।

२. बीज की उपजाऊ शक्ति।

बीज की पवित्रता—बाज़ार में बिकनेवाले बीजों के साथ कूड़ा-कर्कट, कंकड़, पुराने और खर-पतवारों के बीजों का मिश्रण रहता है, जिनसे निम्न-लिखित हानियाँ हो सकती हैं—

१. पुराने बीज बिलकुल ही न उपजेंगे।

२. यदि भिन्न-भिन्न प्रकार के बीज मिले होंगे, तो पैदावार कम और निम्न श्रेणी की होगी, और बेचने पर अच्छा मूल्य न मिलेगा।

३. खर-पतवारों के बीजों के साथ कोई पौदों की भयंकर छूत की बीमारी फैल सकती है, जिसकी हानि का अंदाज़ा कठिन है।

अच्छे बीजों की संख्या जानने के साधन भी वैज्ञानिक कृषि में प्रस्तुत हैं, परंतु किसान अपनी योग्यतानुसार अच्छे बीजों की संख्या स्वयं मालूम कर सकते हैं।

बीज की उपजाऊ शक्ति—इसको जानना कठिन नहीं है। कुछ गिने हुए बीजों को भीगी हुई बालू

अथवा दो भीगे हुए स्याही-सोख काग़ज़ों (Blotting papers) की तहों के बीच में रख दें। समय-समय पर पानी छिड़कने का ध्यान रक्खें, परंतु अधिक पानी कभी न दें, नहीं तो बीज सड़ जायँगे। इन सब वस्तुओं को हवादार जगह में ही रखना चाहिए। कुछ दिनों में बीजों में अंकुर दिखाई देने लगेंगे। इसी के साथ-साथ बीजों के जमने का क्रम भी जाना जा सकता है। जो बीज अच्छे प्रकार से और जल्दी जमते हैं, वे ही अच्छे होते हैं, परंतु इसके साथ यह न भूल जाना चाहिए कि भिन्न-भिन्न बीजों के जमने के समय की देरी भिन्न-भिन्न होती है। कोई २-३ दिन में ही निकल आते हैं, और कुछ २०-२५ दिन बाद जमते हैं। अतएव जिस प्रकार का बीज हो, अपने प्रयोग में वैसे ही समय का ध्यान रखना उचित है।

यहाँ तक तो हमने देशी बीजों के विषय में ही विचार किया है, परंतु कुछ समय से सरकार के कृषि-विभाग ने भी बीज की समस्या के ऊपर अधिक ध्यान दिया है, और कुछ ऐसी उन्नति-प्राप्त (Improved seeds) बीजों की क़िस्में निकाली हैं, जिनके बोने से समान परिश्रम और खाद-पानी से देशी बीजों की अपेक्षा दुगुनी और तिगुनी पैदावार होती है। ये बीज सरकारी गोदामों से, जो प्रायः प्रत्येक ज़िले में हैं, उधार भी मिल सकते हैं, और किसानों को खलियान में से सवाया (१¼) बीज सरकार को देना पड़ता है। यह बीज सबसे अच्छा होता है, और महाजनों से उधार लेने की अपेक्षा इसमें किसानों को सुबीता भी है, क्योंकि बीज बोने के समय से फ़सल कटने के समय भाव बहुत मंदा रहता है, और उस दशा में सवाया बीज देना किसान को न अखरना चाहिए। इन बीजों के भिन्न-भिन्न नाम हैं, जो कि एक ख़ास प्रांत में अच्छी पैदावार देते हैं। इनके विषय में अधिक पूछ-ताछ अपने यहाँ के गोदाम मुंशी से की जा सकती है।

इन उन्नति-प्राप्त बीजों को जन्म देनेवाली एक सरकारी संस्था (Government Agricultural Research Institute) पूसा (बिहार) में है, और केवल ईख की क़िस्में पैदा करनेवाली एक प्रयोगशाला (Experimental station) कोयंबिटूर (मद्रास) में है। इनमें बड़े-बड़े धुरंधर वैज्ञानिक अपने प्रयोगों द्वारा एक-से-एक अधिक पैदावार देनेवाली क़िस्में निकालते रहते हैं, परंतु अभी तक इनको प्रकृति के युद्ध में पूरी सफलता प्राप्त नहीं हुई। ये क़िस्में कुछ समय तक तो ठीक-ठीक पैदावार देती हैं, परंतु कुछ वर्ष पश्चात् उनमें दोष पैदा हो जाते हैं, और इनकी पैदावार मामूली देशी क़िस्मों के समान ही रह जाती है। अतएव पुरानी क़िस्मों के स्थान में नई क़िस्मों का पता लगाया जाता है, अथवा उन्हीं क़िस्मों का नया बीज बोया जाता है। नई क़िस्में पैदा करने का विज्ञान (Plant breeding) अभी नया-नया ही है, और उसके विषय में अभी तक वैज्ञानिकों के विचार परिपक्व नहीं हुए हैं। हमारे किसान को इन बारीकियों में न पड़कर कृषि-विभाग द्वारा समय-समय पर दी जानेवाली सलाहों के ऊपर ही काम करना उचित है। यदि किसी बीज में दोष दिखाई पड़ने लगते हैं, तो कृषि-विभाग उसके स्थान में दूसरा बीज पैदा करने की व्यवस्था करता है। अन्य देशों में बिगड़ते हुए बीजों की वृद्धि रोकना भारतवर्ष की अपेक्षा आसान है, क्योंकि वहाँ पर सरकार द्वारा प्रमाणित ही बीज-विक्रेता होते हैं। अतएव उन्हें कृषि-विभाग की आज्ञाओं का पालन शीघ्र ही करना होता है। उन्नति-प्राप्त बीजों को बोने से देश को कितना लाभ हो सकता है, इसका अंदाज़ पाठक केवल एक फ़सल से लगा सकते हैं।

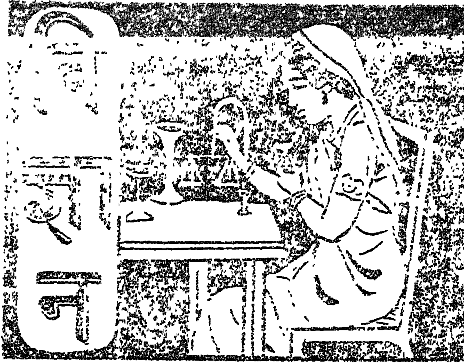
युक्तप्रांत में लगभग १४ लाख एकड़ भूमि पर ईख बोई जाती है, जिसमें देशी बीज होने से गुड़ की पैदावार ३० मन प्रति एकड़ होती है। इसी स्थान पर यदि कोयंबिटूर की ईखें बोई जाने लगें, तो ४ करोड़ मन गुड़ अधिक निकल सकता है, जिससे प्रांत को

कम-से-कम ८ करोड़ रुपए का लाभ प्रतिवर्ष हो सकता है।

ये केवल एक फ़सल की और एक प्रांत की संख्याएँ हैं, यदि पूरे भारतवर्ष में इसी प्रकार सब फ़सलें उन्नति-प्राप्त बीजों द्वारा बोई जाया करें, तो कितना लाभ हो सकता है?

उन्नति-प्राप्त बीजों को भी यदि प्रति तीसरे-चौथे वर्ष बदल दिया जाया करे, तो पैदावार की उत्तमता में अधिक अंतर नहीं आता। कानपुर कॉलेज फ़ार्म पर पूसा से आए हुए नए बीज की उपज फ़ार्म पर इकट्ठे किए हुए उसी बीज की क़िस्म से अधिक हुई थी।

मनोंद्रप्रसाद पालीवाल (विशारद)



जीवन-संसार का महान् रहस्य

(६)

घरों का विकास



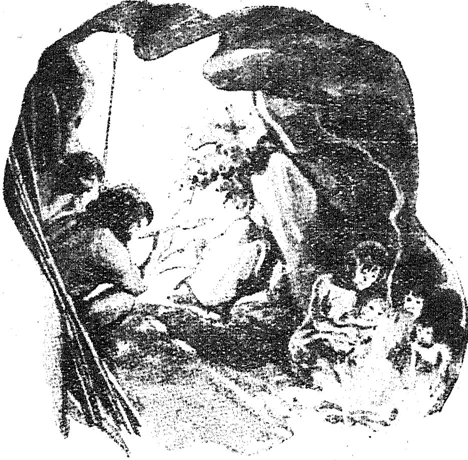
धा के गत कई अंकों में पाठकों ने जीवन के उद्भव का क़िस्सा पढ़ा है। यहाँ संक्षेप में हम मनुष्य के विकास के एक अंग पर प्रकाश डालेंगे। जिस समय हम किसी ऊँचे स्थल पर खड़े होकर अपने चारो ओर दृष्टि फेकते हैं, उस समय हमें अपने एक ओर बड़ी-बड़ी ऊँची अट्टालिकाएँ—जो किसी नगर को विभूषित करती हैं—दिखाई पड़ती हैं, तो दूसरी ओर फूस के झोपड़े दिखाई पड़ते हैं, जिनमें प्रवेश करने के लिये बच्चों को भी झुकना पड़ता है। अधिकांश स्थलों में एक ही स्थान पर दोनो श्रेणी की रचनाएँ मिल जाती हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से एक महल और झोपड़ी में लाखों वर्षों का अंतर है।

यह एक स्वयंसिद्ध बात है कि सारी उन्नति एक दिन की नहीं है, धीरे-धीरे हुई है। केवल रहने के स्थान की ही समस्या कितनी रहस्यमयी है। इस एकांत पृथ्वी पर जब मनुष्य विकास करता होगा, तब उसे निवास-स्थान की चिंता ने अवश्य ही घेरा होगा। हमारा अनुमान है, और वैज्ञानिक विकास-वाद से भी सिद्ध होता है कि सर्वप्रथम प्राणी—मनुष्य—वृक्षों पर ही निवास करते थे। वहाँ पर उनकी रक्षा कई जंगली जानवरों से हो जाती थी। हाँ, कुछ तकलीफ़ें अवश्य थीं। एक तो वे निद्रित अवस्था में सुरक्षित नहीं थे, दूसरे प्रकृति की भयंकर शक्तियों से अर्थात् जल, वायु आदि से उनकी रक्षा यथोचित नहीं हो पाती थी, और तीसरी अड़चन यह थी कि उनको तथा उनके बच्चों को जल और भोजन की सामग्री के लिये बराबर नीचे आना पड़ता था। यह अवस्था उस समय की थी, जब मनुष्यों ने अग्नि का उपयोग करना नहीं सीखा था। अच्छा, तो विकास के क्रम को समझने के लिये हमें अग्नि के उपयोग के काल का पता लगा लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

अभी हाल ही में पता चला है कि लगभग एक लाख वर्ष पूर्व मनुष्य अग्नि का उपयोग करने लगे थे। दो वर्ष पूर्व की बात है कि डॉ० डेवीडसन ने पेकिंग में दो मनुष्यों के पंजर एक गुफा से खोदकर निकाले थे। वैज्ञानिकों ने स्वीकार कर लिया है कि वे हड्डियाँ मनुष्यों की हैं। उनकी श्रेणी जावा-मनुष्य से भी ऊपर की है (इस संबंध में हम अपने गत किसी लेख में लिख चुके हैं)। उक्त डॉक्टर ने गुफ़ा की और भी खोज की। उसमें कोयला, राख, आधी जली हुई हड्डियाँ आदि वस्तुएँ प्राप्त कीं, जिनसे पता चलता है कि उक्त काल में अग्नि का उपयोग होने लगा था। उसी गुफ़ा में पत्थर के कुछ हथियार भी मिले, जिनसे स्पष्ट सिद्ध

होता है कि मनुष्य को सभ्यता की अनेकों सीढ़ियाँ चढ़ना पड़ी हैं।

आज एक पैसे की माचिस ख़रीदकर हम पल-पल में अग्निदेव की रचना किया करते हैं, परंतु हमारे



प्रथम निवास स्थान

[मानव-जाति का प्रथम निवास-स्थान गुफा ही थी।]

पूर्वजों की समस्या इतनी सरल नहीं थी। उन्हें प्रकृति से ही अग्नि प्राप्त हुई थी। जंगलों की आग ने ही अग्नि दान दिया, उसमें भुँजे हुए पशुओं के स्वादिष्ट मांस ने उनकी रुचि इस ओर खींची। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने अग्नि को प्राप्तकर सुरक्षित रखना प्रारंभ किया। क्योंकि एक बार बुझ जाने पर उन्हें महीनों बिना अग्नि के रहना पड़ता था, अतएव वे अग्नि को कभी बुझने न देते थे।

धीरे-धीरे उन्हें मालूम हुआ कि जब पत्थर से पत्थर में चोट लगाई जाती है, तब अग्नि की चिनगारी निकलती है। बाँस से बाँस रगड़ खाता है, तो जल उठता है। इन प्राकृतिक घटनाओं ने उन्हें अग्नि उत्पन्न करने की युक्ति सुझा दी। अतएव उन्होंने एक लकड़ी में पत्थर से गड्ढा बनाकर दूसरी लकड़ी उस गड्ढे में डालकर घुमाना प्रारंभ किया, और अग्नि उत्पन्न कर ली। यह कार्य अत्यंत कठिन था, परंतु वे हम लोगों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान् और परिश्रमशील मनुष्य थे। कुछ समय के बाद एक लोहे के टुकड़े और चकमक की रगड़ से अग्नि उत्पन्न की जाने लगी। हमें स्मरण रखना चाहिए कि सन् १८२८ के पहले माचिसों का आविष्कार नहीं हुआ था। हम आगे चलकर बतलावेंगे कि इस अग्नि का गृह-निर्माण-कला पर क्या प्रभाव पड़ा।

जब हम वर्तमान काल की गगनचुंबी इमारतों को देखते हैं, तब ऐसा ज्ञात होता है कि हमने गत हज़ार-दो हज़ार वर्षों में बड़ी उन्नति कर ली। परंतु वास्तव में हमारा यह भ्रम है। गेजह के पिरामिड—जो ईजिप्ट की आश्चर्य-जनक रचनाएँ हैं—ईसा से ४ हज़ार वर्ष पूर्व बने थे। उनकी उँचाई ४५० फ़ीट है, अर्थात् वे आधुनिक काल की ४० मंज़िल ऊँची इमारतों से किसी हालत में कम नहीं हैं। इसी प्रकार रोमवालों ने भी ऊँची इमारतें बनाई थीं। भारत के प्राचीन इतिहास में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। बुद्ध-काल में एक इसी प्रकार की लकड़ी की इमारत उत्तरीय हिंदुस्थान में बनाई गई थी। ईजिप्ट-निवासियों का गृह-निर्माण-कौशल हमें आश्चर्य में डाल देता है। वे पत्थरों के टुकड़ों को इस प्रकार

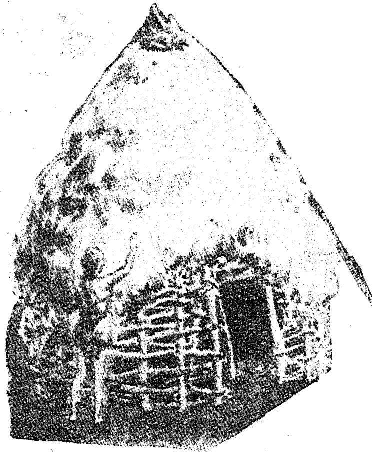


बाद का

[गुफा से झोपड़ी की ओर विकास]

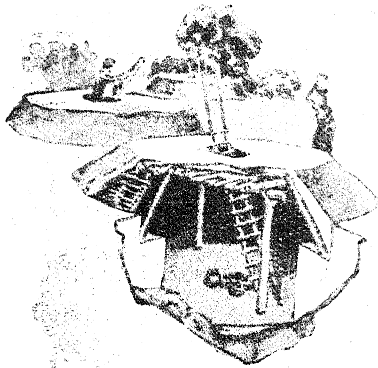
जोड़ना जानते थे कि उनके बीच में सीमेंट की भी आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इसी प्रकार रोमवालों ने जल-अभेद्य सीमेंट का पता लगाया था। आज भी भारतवर्ष के कई प्राचीन भग्न मंदिरों और इमारतों में लगे हुए चूने आदि को देखकर आश्चर्य में पड़ जाना पड़ता है।

ये तो बड़ी-बड़ी इमारतों की बातें हुईं। हमें तो



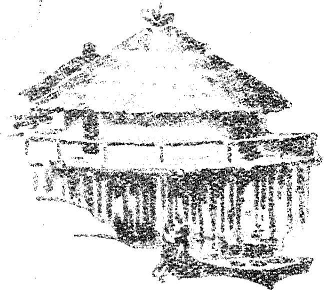
हज़ार वर्ष में

[झोपड़ी के चारो ओर लकड़ी की दीवालें तैयार करने में हज़ारों वर्ष लगे]



तलघर

[स्थान की संकीर्णता के कारण झोपड़ी के भीतर खोदकर तलघर बनाया गया]



रक्षा के लिये

[शत्रुओं की प्रेरणा ने झील के ऊपर झोपड़ी तैयार करवाई]



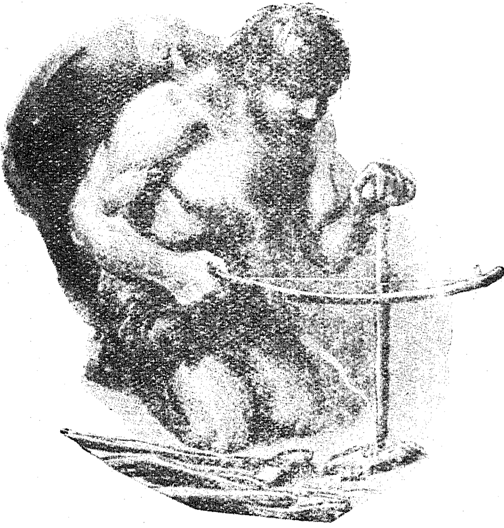
मकान

[कच्ची ईंटों के मकान लगभग १० हज़ार वर्षों से बनाने लगे]

अपनी झोपड़ी का पता लगाना है। वृक्षों के निवास की कठिनाइयों के बाद, ऐसा ज्ञात होता है, पशुओं के निवास-स्थानों को देख मनुष्यों को भी पृथ्वी-स्थित निवास-स्थानों की रुचि हुई। अतएव उन्होंने गुफाओं में निवास करना प्रारंभ किया। परंतु इनसे भी उनका कार्य पूर्ण रूप से न निकल सका। धीरे-धीरे उसने चमड़े के छप्पर को तानकर जल और धूप से अपनी रक्षा करने योग्य झोपड़ी बनाई, परंतु इस झोपड़ी में एक बड़ी कठिनाई थी। वह थी अग्नि को सुरक्षित रखने के संबंध की। वायु से रक्षा करने के लिये चारो तरफ़ से कुछ आड़ होनी चाहिए। यह कार्य चारो

तरफ़ लकड़ी इत्यादि लगाने से पूरा हो गया। स्थान की संकीर्णता ने भीतर की मिट्टी खोदकर बाहर निकालने के लिये बाध्य किया। इस प्रकार तलघर-युक्त झोपड़ी का अस्तित्व हुआ।

परंतु इस प्रकार के घरों में वे पूर्ण रूप से सुरक्षित न रह पाते थे। शत्रुओं के आक्रमण के कारण उन्हें अपने घर झीलों आदि के भीतर बनाने पड़े। चारों ओर दूर तक जल फैला रहता था। इस प्रकार के स्थानों में जंगली जानवरों से तो पूर्ण रक्षा हो जाती थी, साथ ही अन्य शत्रु भी शीघ्र आक्रमण कर सफल नहीं हो सकते थे। आज भी न्यूगिनी दक्षिण-अमेरिका आदि कई देशों में जल के भीतर जंगली जातियाँ अपने घर बनाती हैं। हमारा अनुमान है, इसी प्रकार के घरों के सभ्य रूप 'बोट हाउस' (नाव-स्थित गृह) हैं, जिनमें विलास-प्रिय प्राणी अपने दिवस काटते हैं।



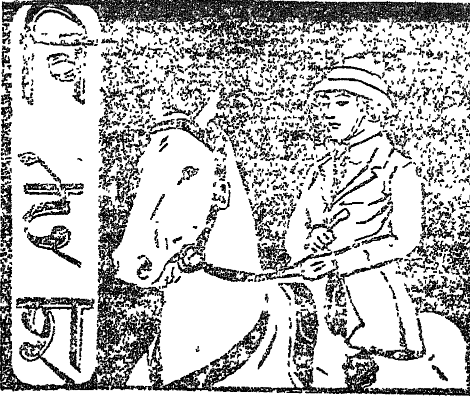
संसार का प्रथम वैज्ञानिक
[इसने दो लकड़ियों को रगड़कर अग्नि लगभग १ लाख वर्ष पूर्व उत्पन्न की थी।]

ऐसा ज्ञात होता है कि लगभग २० हज़ार वर्ष पूर्व से लोग कच्ची ईंटों का उपयोग कर मिट्टी के घर बनाने लगे। मेक्सिको और पेरु आदि में कई हज़ार वर्ष पुराने इस प्रकार के घर पाए जाते हैं। इसके बाद धीरे-धीरे लोगों ने पक्की ईंटें, चूना, गारा आदि की समस्या को हल कर लिया। आजकल तो लोहे का अधिक उपयोग होने लगा है। दीवालों में काँच की ईंटें लगाई जाती हैं। विद्युत् की सहायता से सीढ़ियों आदि का कार्य सरल हो गया है। समुद्र के ऊपर बड़े महल बनने लगे हैं। परंतु इससे अधिक कहीं आश्चर्य की बात है कुछ धनी लोगों का चार वायुयानों के ऊपर एक गगनचुंबी इमारत बनाना। यह इमारत यहाँ-वहाँ चल-फिर भी सकेगी। सभ्यता गृह-निर्माण-कला को कहाँ ले जायगी, कहा नहीं जा सकता।

एक कठिनाई फिर भी बहुत काल तक बनी ही रही। घर के भीतर अग्नि जलाने से धुआँ होता था। इस धुएँ को बाहर किस प्रकार निकालना चाहिए? योरपियन देशों ने इस कार्य के लिये गत ४ या ५ सौ वर्ष पूर्व चिमनी का आविष्कार किया। हिंदुस्थानी भाइयों ने फिर भी इस ओर ध्यान नहीं दिया। घर में जब रोटी बनती है, तो सारा कमरा धुएँ से भर जाता है, कपड़े ख़राब हो जाते हैं, और बैठना मुश्किल हो जाता है। इस कारण बीमारी फैलती है। प्रत्येक मकानवाले को इस हानिप्रद धुएँ को निकालने का सरल तरीक़ा काम में लाना चाहिए।

यहाँ पर हम अपने पाठकों को यह बतला देना चाहते हैं कि घरों के विकास के उक्त क्रम में भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न काल की आवश्यकता हुई थी। प्रत्येक देश का एक दूसरे से पूर्ण संपर्क न होने के कारण संपूर्ण संसार का विकास एक ही काल में नहीं हो सका। आज भी हमें पृथ्वी के कई स्थानों में ऐसे मनुष्य मिलेंगे, जो गुफाओं में रहते और कच्चा मांस खाते हैं। अतएव विद्वानों को चाहिए कि वे औसत बातों को ही लेख का आधार समझकर विचार करें।

नाथूराम शुक्ल (बी० ए०)



१. नोबेल-प्राइज़



बेल-प्राइज़ का नाम हम भारतीयों ने विशेषकर उस समय सुना था, जब डॉ० रवींद्रनाथ ठाकुर को उनकी 'गीतांजलि' के लिये एक लाख रुपया मिला था, और उसी रुपए से विश्व-भारती की शांति-निकेतन, बोलपुर में स्थापना की गई थी। तब से हम नोबेल-प्राइज़ के विषय में बहुत कुछ सुनते चले आ रहे हैं। यहाँ पर लंदन की 'सैटर्डे रिव्यू' से इस पुरस्कार के विषय में थोड़ा परिचय दे देना उचित होगा—

"स्वेडेन के उस तेजस्वी अन्वेषक तथा करोड़-पति अल्फ्रेड नोबेल के कुछ अस्पष्ट और अनेकार्थक वसीयतनामे से हर साल पाँच बराबर-बराबर इनाम बँटना चाहिए, जिन्होंने उसी वर्ष के अग्रिम साल में मनुष्यता की उन्नति में सबसे अधिक ठोस योग दिया है। ये पुरस्कार साहित्य, रसायन-शास्त्र, भौतिक शास्त्र, चिकित्सा-शास्त्र तथा शांति के लिये दिए जाते हैं। पिछली बात का निर्णय नारवे के पंडितों के तथा अन्य का निर्णय स्वेडेन के पंडितों के हाथ में है, और वे राष्ट्रीयता इत्यादि का बिना विचार किए पुरस्कार-निर्णय करते हैं। यह एक विशेष बात है कि शांति के लिये शायद ही कभी पुरस्कार-निर्णय होता हो। इसके लिये कोई समय नहीं निश्चित है। यह जानना आश्चर्य-युक्त न होगा कि इस साल शांति के लिये कोई इनाम नहीं दिया गया। हाँ, अन्य इनामों के लिये, ख़ासकर साहित्य-विषय के लिये, बड़ी प्रतिस्पर्द्धा तथा राष्ट्रीय द्वेष की होड़ होती है।

"यहाँ प्रायः सभी निर्णय पर काफ़ी कटु आलोचना होती है। यह कहा नहीं जा सकता कि निर्णेता किस आधार पर निर्णय करते हैं, क्योंकि कुछ इनाम जो दिए गए हैं, वे ही शंका पैदा करते हैं। अवश्य कई देशों के महान् कवि तथा लेखकों को पुरस्कार दिया गया है, पर ऐसे महारथी जैसे टॉल्सटॉय, चेख़ोव, इबसेन, स्टिंडेनबर्ग यद्यपि इस पुरस्कार के समय ज़िंदा भी थे, पर पुरस्कार न पा सके। वर्षों तक टॉमस हार्डी अँगरेज़ उम्मीदवार थे, पर उन्हें कभी इनाम न मिला। केवल पाँच ही ब्रिटिश लेखकों को पुरस्कार मिला है, जिनमें दो आयरिश हैं, और एक भारतीय। रडयार्ड कपलिंग को १९०७ में मिला, १९१३ में रवींद्रनाथ ठाकुर को मिला, १९२३ में विलियम बटलर यीट्स को, १९२५ में जॉर्ज बर्नार्ड शॉ को और, अंत में, इस साल जॉन गॉल्सवर्दी को।

"विज्ञान के विषय में कुछ कहना कठिन है। अभी तक ज़्यादातर इनाम जर्मनी को ही मिलता रहा है।

पर इस साल ब्रिटेन ने ही बाज़ी मारी है—साहित्य, चिकित्सा तथा भौतिक विज्ञान में।"

× × ×

२. चीनी सरकार और अफ़ीम

चीन के साथ यद्यपि हमारी काफ़ी सहानुभूति है, फिर भी कई बातें ऐसी हैं, जिन्हें छिपाने से ही चीन की हानि होगी। उनमें सबसे बड़ी बात चीन में अफ़ीम की खपत है। चीन में अफ़ीम की प्रयोग, कोकेन का सेवन बहुत काफ़ी होता है, और बहुत समय से इस दुर्व्यसन ने इस राष्ट्र को पंगु कर रक्खा है। चीन का शासन लगभग एक शताब्दी से केवल 'सेनापतियों' के ही हाथ में है, यह भी छिपाने योग्य बात नहीं है। अतएव अफ़ीम को एक दुर्गुण स्वीकार करते हुए भी ये सेनापति, धन के अभाव में, उसके प्रयोग को रोकना तो दूर रहा, उल्टे उससे आमदनी करते हैं। जिन खेतों में अफ़ीम की पैदावार होती है, उनसे विशेष कर वसूल किया जाता है। जो अफ़ीम की खेती नहीं करते, उन्हें अपरोक्ष रूप से इसके लिये बाध्य किया जाता है—जैसे उन पर 'आलसी-कर' लगा देना, और उस कर को उतना ही रखना, जितना अफ़ीम की खेती करनेवालों से लिया जाता है। इसीलिये कुछ स्थानों पर ७० से ६० प्रतिशत खेतों में केवल अफ़ीम ही बोई जाती है। ये सेनापति यदि चाहें, तो केवल एक ही बार ज़बान हुलाकर इस व्यसन को रोक सकते हैं, पर ऐसा नहीं करते।

राष्ट्र-परिषद् ने जब से अफ़ीम के विरुद्ध आंदोलन शुरू किया है, तब से चीन की राष्ट्रीय सरकार को इस दिशा में बहुत कुछ करना पड़ा है। पर उससे लाभ क्या हुआ? उसने 'अफ़ीम पीनेवालों' पर कर लगा दिया, अब लोग अफ़ीम की टिकिया खाते हैं। कियांगसू के गवर्नर ने घोषणा की थी कि "एकदम अफ़ीम पर रोक-थाम करना संभव न होगा। इसके व्यसनियों के लिये बड़ा अन्याय होगा। अतः धीरे-धीरे व्यसन छुड़ाया जायगा।" फलतः उन्होंने अफ़ीम पर कर लगा दिया। इससे सरकार की आमदनी बढ़ी, और कोई लाभ न हो सका।

अस्तु। इस विषय में एक रोचक लेख 'सिडनी सन' में प्रकाशित हुआ है। लेखक ने आँकड़े देकर अपनी बात को सिद्ध करने का प्रयास किया है। यद्यपि उन आँकड़ों में से कुछ तो, कोई उद्धरण न होने के कारण, विश्वसनीय नहीं हैं। फिर भी कुछ बातें बड़ी महत्त्व-पूर्ण और चीन के लिये लज्जास्पद हैं।

जैसे—"कहा जाता है कि हूपे-प्रांत की फ़ौज प्रतिवर्ष अफ़ीम से २०,००००० पौंड की (एक पौंड पंद्रह रुपए का) आमदनी करती है। अपनी तकलीफ़ बचाने के लिये अधिकारी कुछ केंद्रों को सौदागरों के ज़िम्मे कर देते हैं, और कर भी उन्हीं से वसूल कर लिया जाता है। सौदागर यह जानते हैं कि यदि कोई किसान अफ़ीम की—पोस्ते की—काश्त नामंज़ूर करेगा, तो उस पर फ़ौज के सिपाही ज़ुल्म कर सकते हैं।

"एक नई बात यह हुई है कि नैनकिंग को प्रधान स्थान बनाकर कियांगसू तथा चेकियांग-प्रांत का पूरा अफ़ीम का ठेका एक कैंटन के सौदागर को १९,००००० पौंड वार्षिक पर दे दिया गया है।

"टींसीन में अफ़ीम की खपत रोकने का प्रधान कार्यालय है, और वहीं से अफ़ीम के व्यापार तथा काश्त के लिये लैसंस दिया जाता है। इस लैसंस से इस दफ़्तर को २०,००० या ३०,००० पौंड वार्षिक की आमदनी होती है।"

अस्तु। कुछ ऐसी आत्माएँ भी हैं, जो चीन से इस ज़हर को क़तई दूर कर देना चाहती हैं। बहुत-से राष्ट्रीय नेता, विद्यार्थी, युवक तो चेष्टा कर ही रहे हैं, पर कुछ सरकारी आदमी भी एकदम उदासीन नहीं हैं। उसी पत्र में लिखा है—

"इनमें एक ऐसा भी अधिकारी है, जो अफ़ीम तथा अन्य नशीली चीज़ों की अपनी सीमा में बिलकुल मुमानियत रखता है, और वह है शांसी का गवर्नर-जनरल येन शी-शान, लेकिन पड़ोसी

ज़िलों से लुका-छिपी माल का आना रोकने में उन्हें कठिनाई हो रही है। शंघाई-म्युनिसिपल-कौंसिल की भी इस बारे में तारीफ़ करनी होगी, पर उसकी शिकायत है कि चीनी अधिकारियों से ज़रा भी सहायता नहीं मिलती।"

परिपूर्णानंद वर्मा



१. काव्य

अंतर्वेदना—लेखिका, स्वर्गीया श्रीमती पुरुषार्थवती; प्रकाशक, विश्व-साहित्य-ग्रंथमाला मैक्लेगन रोड, लाहौर; पृष्ठ-संख्या ७६; मूल्य १)

होनहार कवयित्री थी। अपनी अलौकिक प्रतिभा की प्रथम प्रभा दिखाकर चल बसी। इस बाला-कवयित्री की असामयिक मृत्यु से हिंदी-साहित्य को भारी क्षति पहुँची। मेरी बात का तभी विश्वास होगा, जब साहित्यिक 'अंतर्वेदना' की तड़पती हुई कविताओं का रस पान करेंगे। श्रीमती पुरुषार्थवती का जन्म ८ ऑक्टोबर, १९११ को हुआ था, और अवसान ११ फ़रवरी, १९३१ को हो गया। नन्ही-सी आयु में ही उन्होंने संसार से नाता तोड़ दिया। इसी बीच में उन्होंने जो कुछ भी लिखा है, ख़ूब लिखा है। इस बाल-कवयित्री की रचनाएँ 'जुगा'कर रखने की चीज़ हैं। कवयित्री अपनी 'पतझड़'-शीर्षक कविता में लिखती है—

"सुनी अनसुनी कर दो मेरी
नीरस-करुण-पुकार,
जाती हूँ वेदना भरे मन
से अनंत के द्वार!"

वह तो सचमुच ही अनंत के द्वार चली गई, परंतु हिंदी का हृदय ऐसा निष्ठुर नहीं कि उसकी भावुकता-पूर्ण करुण रचनाओं की उपेक्षा करे। उस स्वर्गीया कवयित्री की मँजी हुई लेखनी से अमृत बरसता था। 'लक्ष्य-हीन राही'-शीर्षक कविता बड़ी सुंदर है! हर पंक्ति से उसकी कला-कुशलता टपकती है। उसने कहीं-कहीं तो कमाल कर दिया है। 'विफल प्रतीक्षा'-शीर्षक रचना कवयित्री की रचनाओं में ऊँचा स्थान पाने योग्य चीज़ है। इतने सरस भाव, इतनी प्यारी कल्पना और ऐसी रसीली भाषा में—ग़ज़ब है! मैं तो मुग्ध हो गया।

"सोचा, वे आवेंगे—क्या हो
बिठलाने का साज?
टूटी-सी कुटिया में हा! मिल
सका न कुछ भी आज।
हुई निराशा—सँभल गई फिर,
दुखिया बने न दीन;
अस्तु, हृदय-मंदिर में ही वे
हो लेंगे आसीन।
चिंता हुई तभी मन में, क्या
दूँ उनको उपहार?
ढुलक पड़े दो आँसू नयनों
से अंतिम आधार।
पुलकित हो सोचा—इससे बढ़
क्या है जीवन-सार?
यही अश्रु की दो बूँदें दूँगी
चरणों पर वार।"

इतनी उच्च कोटि की रचना, और एक बाल-कवयित्री की लेखनी से ! उसमें ग़ज़ब की प्रतिभा थी—निखरने न पाई—क्रूर काल ने मसल दिया। 'अंतर्वेदना' में इसी देवी के काव्य-कुसुमों को उसके अभागे पति श्रीचंद्र गुप्त विद्यालंकार ने बड़े प्रेम से पिरोया है। अपनी प्रतिभाशालिनी स्वर्गीया पत्नी की अनमोल कृतियों को, सुंदर दूध-से श्वेत काग़ज़ पर, मोती-से अक्षरों में बड़े चाव से सजाया है। इस गुलदस्ते के बीच-बीच में कवयित्री के तीन-चार भव्य चित्र भी हैं। छपाई-सफ़ाई के विषय में कुछ भी कहना अन्याय करना है। पति ने अपनी पत्नी के भावों को, कल्पनाओं को सुंदर-से-सुंदर रूप में प्रकाशित करके हिंदी-संसार के सामने उपस्थित किया है। पुस्तक का मूल्य कुछ अधिक है। परंतु काव्य-रसिकों के लिये अंतर्वेदना की एक प्रति एक लाख अशर्फ़ियों में भी सस्ती है।

पृ० पा० सिं०

× × ×

२. स्वास्थ्य

स्वास्थ्य और व्यायाम—लेखक, श्रीकेशवकुमार ठाकुर ; प्रकाशक, छात्र-हितकारी पुस्तकमाला-कार्यालय दारागंज, प्रयाग ; मूल्य १।।), सजिल्द २)

व्यायाम मनुष्य-जीवन के लिये एक आवश्यक वस्तु है। व्यायाम से मनुष्य स्वस्थ रहता है। स्वस्थ रहने से वह अपनी और दूसरों की बहुत कुछ सेवा कर सकता है। मनुष्य यदि जीवन में कुछ करना चाहता है, तो उसकी सफलता स्वास्थ्य पर ही निर्भर है। व्यायाम भी अनेक प्रकार के हैं, किंतु किस व्यायाम को कौन मनुष्य कर सकता है, यह एक विचारणीय विषय है। इसके लिये प्रत्येक मनुष्य अपने मनोनुकूल व्यायाम चुन सकता है।

आलोच्य पुस्तक में लेखक ने भारतीय और पाश्चात्य सभी तरह के व्यायामों का बड़ी ही चतुरता के साथ संपादन किया है। सब मिलाकर संपूर्ण पुस्तक में २० विषयों का प्रतिपादन किया गया है, जो नीचे दिए जाते हैं—

१—जीवन में स्वास्थ्य का स्थान २—व्यायाम और सुख ३—स्वास्थ्य और सौंदर्य ४—स्वास्थ्य पर भोजन का प्रभाव ५—हमारी निर्बलता के कारण ६—योरप में व्यायाम का प्रचार ७—भारतवर्ष में व्यायाम का प्रचार ८—मन का स्वास्थ्य पर प्रभाव ९—देशी व्यायाम १०—विदेशी व्यायाम ११—सूर्य-व्यायाम १२—आसनों के व्यायाम १३—राममूर्ति के व्यायाम १४—स्त्रियों के व्यायाम १५—बालकों के व्यायाम १६—व्यायाम कहाँ और कैसे करना चाहिए १७—तैरना १८—टहलना और दौड़ना १९—कौन व्यायाम किसको करना चाहिए २०—स्वास्थ्य और व्यायाम के संबंध में संसार के प्रसिद्ध पुरुष।

प्रत्येक विषय में अनेक लाभकारी बातें बताई गई हैं। जो विषय व्यायाम-संबंधी हैं, उनमें चित्र देकर उनकी उपयोगिता और भी बढ़ा दी है, इससे पाठकों को उस कसरत का शीघ्र ज्ञान प्राप्त हो जाता है। आसन-प्रकरण में मुख्य-मुख्य आसनों के नाम और चित्र दे दिए गए हैं, इससे समझने में बड़ी आसानी होती है। ऐसे ही स्त्रियों के व्यायाम*-प्रकरण में भी आवश्यकीय कसरतें और उनके चित्र दे दिए हैं। इसी तरह जिस-जिस विषय में चित्रों की आवश्यकता समझी गई है, दे दिए गए हैं। कहने का तात्पर्य यह कि लेखक ने सभी तरह से पुस्तक को उपयोगी बनाया है। अंतिम विषय में स्वास्थ्य पर कुछ भारतीय और विदेशी पुरुषों के वाक्यों का संकलन किया है।

बाबू केशवकुमार ठाकुर ने इस उत्तम विषय पर पुस्तक लिखकर एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति की है। आशा है, व्यायाम-प्रेमी-संसार इस पुस्तक का यथेष्ट आदर करेगा। पुस्तक संग्रह करने योग्य है। भाषा बड़ी सरल है। थोड़ा पढ़ा-लिखा भी बड़ी आसानी से समझ सकता है।

'गि'

× × ×

* 'स्त्रियों के व्यायाम'-नामक पुस्तक गंगा-पुस्तकमाला से भी प्रकाशित हो चुकी है। मूल्य १।।), २)—संपादक

३. बालोपयोगी

महात्मा बुद्ध—लेखक, श्रीरामनरेश त्रिपाठी; प्रकाशक, हिंदी-मंदिर, प्रयाग ; पृष्ठ-संख्या ६४ ; मूल्य ४ आना ।

त्रिपाठीजी ने बड़ी सरल भाषा में तथा बड़े मनोरम ढंग से बुद्ध-चरित्र इस छोटी-सी पुस्तक में लेखनी-बद्ध किया है । पुस्तक हिंदी-मंदिर-चरितावली नाम से प्रकाशित होनेवाली पुस्तकमाला का प्रथम पुष्प है । १९ वर्ष तक की अवस्थावाले बालकों के लिये लिखी गई है । बुद्ध-चरित्र उपदेशों और नसीहतों का भंडार है । प्रस्तुत पुस्तक में बुद्ध का चरित्र-विकास ऐसे सुंदर ढंग से चित्रित किया गया है कि बालकों पर इसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता । बालकों के पढ़ने की चीज़ है । यह पुस्तक उनके चरित्र-गठन तथा सुधार में सहायक होगी ।

मुझे कहीं-कहीं यह देखकर विस्मय हुआ कि त्रिपाठीजी भी 'वह' की जगह पर निधड़क 'वे' शब्द का प्रयोग करते हैं । 'वे' बहुवचन के रूप में प्रयोग करना सर्वथा न्याय-संगत है, एकवचन में नहीं । पृष्ठ ४ पर त्रिपाठीजी ने 'वह' शब्द ही प्रयोग किया है—"सिद्धार्थ ऐसे सुंदर थे कि 'वह' जिसके सामने जाते, वही उनको एकटक देखने लगता था ।" यों तो आपने अपनी आदत के अनुसार लगभग सभी जगह 'वह' के बजाय 'वे' की भरमार की है, उदाहरणार्थ पृष्ठ १ पर त्रिपाठीजी ने लिखा है—"'वे' भगवान् के अवतार माने जाते हैं", तथा पृष्ठ २ पर फिर लिखा है—"'वे' कहाँ और कब हुए थे ?" मेरी सम्मति में 'वे' नहीं, 'वह' का ही प्रयोग उचित और ठीक है ।

हाँ, एक बात और भी खटकी । त्रिपाठीजी 'हुए', 'आए' आदि शब्दों को 'हुये' और 'आये' लिखते हैं । 'ये' नहीं 'ए' लिखना चाहिए । मेरे गुरु ने तो मुझे यही पढ़ाया है ।

ये त्रुटियाँ छोटी हैं—फिर भी त्रुटियाँ हैं । संभव है, त्रिपाठीजी ने ध्यान न दिया हो, या प्रूफ़ की ही ग़लतियाँ हों । ख़ैर, ऐसी असावधानी दुबारा न होना चाहिए ।

पुस्तक की छपाई-सफ़ाई अच्छी है । मूल्य भी थोड़ा है । आशा है, त्रिपाठीजी की इस पुस्तक का बालकों में समुचित प्रचार होगा ।

पृ० पा० सिं०

× × ×

ख़ून का तालाब—लेखक, पं० विद्याभास्कर शुक्ल; प्रकाशक, साहित्य-निकेतन दारागंज, प्रयाग ; मूल्य ।–)

इस छोटी-सी पुस्तक में आठ शिक्षा-प्रद कहानियाँ हैं । कहानियाँ प्रायः सभी नई हैं । कवर-पृष्ठ पर सुंदर दुरंगा चित्र है । जो ख़ून का तालाब-नामक कहानी से संबंधित है । प्रत्येक बालक को ऐसी शिक्षा-प्रद कहानियाँ अवश्य पढ़नी चाहिए ।

× × ×

भारत के वीर बालक—लेखक, पं० विद्याभास्कर शुक्ल ; प्रकाशक, साहित्य-निकेतन दारागंज, प्रयाग ; मूल्य ।–)

लेखक ने छोटे-छोटे बालकों के लिये वीर अभिमन्यु, वीर लक्ष्मण, वीर लवकुश की जीवनियाँ बड़ी सरल भाषा में लिखी हैं । बच्चे बड़ी आसानी से इन कहानियों को हृदयंगम कर लेंगे । ऐसी छोटी-छोटी जीवनियों की बड़ी आवश्यकता है ।

× × ×

रामू और श्यामू—लेखक, पं० विद्याभास्कर शुक्ल; प्रकाशक, साहित्य-निकेतन दारागंज, प्रयाग ; मूल्य =)॥

इस छोटी-सी पुस्तक में तीन कहानी हैं, तीनो कहानी पद्यमय हैं । पद्यमय कहानी बालक बड़े चाव से पढ़ते हैं । लेखक ने बिलकुल सरल भाषा में पद्य-रचना की है । बालक बड़ी रुचि से इन कहानियों को पढ़ेंगे । कवर का चित्र दुरंगा है, और पहली कहानी से संबंध रखता है ।

× × ×

कनेटी पड़ाका—लेखक, पं० विद्याभास्कर शुक्ल ; प्रकाशक, साहित्य-निकेतन दारागंज, प्रयाग ; मूल्य ।–)

इसकी कहानियाँ भी पद्यमय हैं। प्रत्येक कहानी हास्य-रस से सराबोर है, और साथ ही अंत में शिक्षा भी मिलती है। ये सब कहानियाँ गद्य में भी प्रकाशित हो चुकी हैं, परंतु लेखक ने पद्यमय बनाकर सबों को एक नए ढाँचे में ढाल दिया है, इसलिये प्रत्येक कहानी में नवीनता आ गई है। प्रत्येक पुरुष को अपने बालकों को ऐसी कहानियाँ सुनानी चाहिए।

× × ×

भारत की वीर बालाएँ (दो भाग)—लेखक, पं० विद्याभास्कर शुक्ल; प्रकाशक, साहित्य-निकेतन दारागंज, प्रयाग; मूल्य प्रत्येक भाग का ।-)

इन दोनो पुस्तकों में उन वीर बालाओं का जीवन-चरित्र अंकित किया गया है, जिन्होंने अपनी प्यारी जन्मभूमि के लिये हँस-हँसकर प्राणोत्सर्ग कर दिए हैं। जब कभी भारतवर्ष का इतिहास नए सिरे से लिखा जायगा, तो इन वीर बालाओं का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित किया जायगा। देश में यदि ऐसी ही वीर माताएँ उत्पन्न हो जायँ, तो देश का कल्याण शीघ्र हो जाय। देश के होनहार बालकों को, जिन पर देश का भविष्य निर्भर है, ऐसी कहानियाँ अवश्य पढ़नी और इनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

'गि'

× × ×

निम्न-लिखित पुस्तकें भी प्राप्त हुई हैं, प्रेषक महोदयों को धन्यवाद।

१. जादू की कहानियाँ (बालोपयोगी सुंदर कहानियाँ)—लेखक, श्रीआनंदकुमार; प्रकाशक, हिंदी-मंदिर, प्रयाग; मूल्य ।=)

२. बुद्धि-विकास—संचयकर्ता और प्रकाशक, श्रीयुत पं० देवीप्रसाद चौबे, साईंखेड़ा; मूल्य =)

३. शिक्षा-संग्रह (तृतीय भाग)—लेखक और प्रकाशक, श्रीभैरोदान जेठमल सेठिया; मूल्य ।)॥

४. आदर्श चरितावली—लेखक, पं० टीकाराम तिवारी; प्रकाशक, नर्मदा-साहित्य-सदन, हरदा (सी० पी०); मूल्य ॥)

५. ऐतिहासिक स्त्रियाँ—संपादिका, श्रीप्रेमलता-देवी; प्रकाशक, मूलचंद-किसनदास कापड़िया, सूरत; मूल्य ॥)

६. संक्षिप्त जैन-इतिहास—लेखक, बा० कामता-प्रसाद जैन; प्रकाशक, मूलचंद-किसनदास कापड़िया, सूरत; मूल्य १॥)

७. संत नंदनार—लेखक, श्रीहृषीकेश शर्मा; प्रकाशक, दक्षिण-भारत-हिंदी-प्रचार-सभा ट्रिप्लीकेन, मदरास; मूल्य ।)

८. प्रबोध-सुधाकर—अनुवादक, श्रीमुनिलाल; प्रकाशक, गीता-प्रेस, गोरखपुर; मूल्य =)॥

संपादक



इस स्तंभ में हम हिंदी-प्रेमियों की जानकारी और सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई पुस्तकों के नाम देते हैं। पिछले महीने में निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—

(१) 'संघर्ष या सहयोग'—मूल-लेखक, प्रिंस क्रोपाटकिन ; अनुवादक, श्रीशोभालाल गुप्त ; मूल्य १॥)

(२) 'जीवन-सूत्र'—मूल-लेखक, टॉमस केंपिस ; अनुवादक, श्रीरामनाथलाल 'सुमन' ; मूल्य ॥।)

(३) 'बुद्बुद'—लेखक, हरिभाऊ उपाध्याय ; मूल्य ॥)

(४) 'मैं क्रांतिकारी कैसे बना'—लेखक, श्रीरामविलास शुक्ल 'उदय' ; मूल्य ॥।)

(५) 'ढपोर शंख' (बालोपयोगी)—लेखक, श्रीविद्याभूषण 'विभु' ; मूल्य ॥)

(६) 'बाल-कलोल' (बालोपयोगी)—लेखक, श्रीचंद्रभानुसिंह ; मूल्य ।=)

(७) 'खेलो भैया' (बालोपयोगी)—लेखक, श्रीविद्याभूषण 'विभु' ; मूल्य ॥)

(८) 'शेख़ चिल्ली' (बालोपयोगी)—लेखक, श्रीविद्याभूषण 'विभु' ; मूल्य ॥)

(९) 'ख़ून का तालाब' (बालोपयोगी)—लेखक, पं० विद्याभास्कर शुक्ल ; मूल्य ।-)

(१०) 'महाराणा प्रताप' (जीवनी)—लेखक, श्रीकेशवकुमार ठाकुर ; मूल्य ।)

(११) 'शिक्षा-सप्तशती' (काव्य)—लेखक, श्रीदीनानाथ 'अशंक' ; मूल्य ॥)

(१२) 'महात्मा बुद्ध' (जीवनी)—लेखक, श्रीगणेश पांडेय ; मूल्य ।)

(१३) 'महात्मा बुद्ध' (बालोपयोगी)—लेखक, श्रीरामनरेश त्रिपाठी ; मूल्य ।)

(१४) 'हमारा कलंक' (निबंध)—लेखक, श्रीमहात्मा गांधी ; मूल्य ॥=)

(१५) 'मधुकरशाह' (काव्य)—लेखक, श्री-मुंशी अजमेरी ; मूल्य ।)

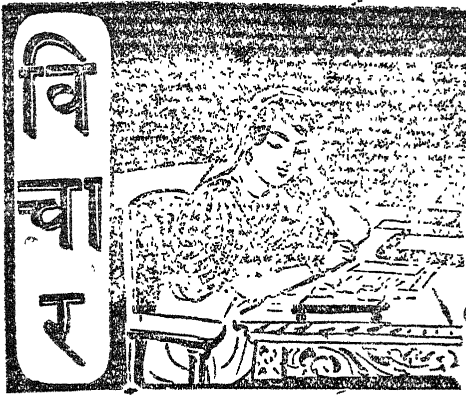
(१६) 'विप्लव-इच्छा' (गद्य-संग्रह)—लेखक, पं० चंद्रशेखर संतोषी ; मूल्य ।-)

(१७) 'जासूसी कहानियाँ'—लेखक, श्री-सुकुमार चट्टोपाध्याय ; मूल्य १)

(१८) 'भारत के वीर बालक' (बालोपयोगी)—लेखक, पं० विद्याभास्कर शुक्ल ; मूल्य ।-)

(१९) 'रामू और श्यामू' (बालोपयोगी)—लेखक, श्रीपं० विद्याभास्कर शुक्ल ; मूल्य ।-)

(२०) 'कनेटी पटाका' (बालोपयोगी)—लेखक, श्रीपं० विद्याभास्कर शुक्ल ; मूल्य ।-)



१. पाक्षिक 'सुधा'



गले एप्रिल से 'सुधा' को पाक्षिक करने का हमने निश्चय किया है। हिंदी में उच्च कोटि के मासिक और साप्ताहिक अनेक हैं, पर पाक्षिक एक भी नहीं। इसकी पूर्ति के लिये हमने ऐसा निश्चय किया है।

मुख्य एक कारण और भी है। वह है साहित्य का प्रचार और सस्ते-से-सस्ते में जहाँ तक किया जा सके। समय ऐसा आ गया है कि उचित दामों में सर्व-साधारण पत्र-पत्रिकाएँ नहीं ख़रीद सकते। वे प्रायः रुपए-पैसे से तंगदस्त रहते हैं। इससे साहित्य तथा संसार के प्रमुख समाचार जानने की इच्छा रहने पर भी वे नहीं जान सकते। पाक्षिक 'सुधा' द्वारा हमने यह सब सुलभ कर देने का प्रयत्न किया है। अस्सी पृष्ठों की, अनेक विषयों से सजी हुई 'सुधा' सिर्फ़ चार आने में पाठकों का मनोरंजन कर सकेगी।

हिंदी के प्रचार के लिये हमने हिसाब लगाकर देखा है, इस तरह हमें कम-से-कम एक वर्ष में छ हज़ार का घाटा होगा। महीने में एक सौ साठ पृष्ठ सिर्फ़ ॥) आने में होते हैं। ६) रुपए वार्षिक होता है। १२५ से १४० सफ़े तक की पत्रिका हिंदी में साढ़े छ या छ रुपए से कम में नहीं मिलती। पाठकों की सुविधा तथा हिंदी के प्रचार का विचारकर हमने 'सुधा' का मूल्य घटाकर पाँच रुपए कर दिया था। अब पृष्ठ बढ़ेंगे, पर मूल्य वही रहेगा। पुनः मास में दो बार निकालने के कारण टिकट का दूना ख़र्च होगा। इससे हिंदी के शुभ-चिंतक प्रेमी श्रीमान् तथा साधारण-जन हमारी कठिनाइयों का अनुमान कर सकते हैं। पाक्षिक होने के कारण 'सुधा' को बिलकुल ठीक समय पर निकालना होगा और काम भी बढ़ेगा, जिससे कंपोज़िंग का ख़र्च दूना बैठ जायगा। अपरंच, प्रेस को बाहरी छोटे-छोटे कामों (जॉब वर्क) से जो फ़ायदा होता है, वह भी कुछ या बहुत अंशों में बंद हो जायगा, अथवा हद और बढ़ाकर कार्य करवाने के कारण हमारे लिये व्यय-साध्य होगा।

हिंदी के हित का हमने जो विचार रक्खा है, हमें विश्वास है, चिंताशील हिंदी-प्रेमी सभी लोग समझेंगे। 'सुधा' द्वारा हम हिंदी-प्रचार तथा उससे होनेवाले लाभों पर काफ़ी प्रकाश डालते रहे हैं। हमें यह लिखते हुए बिलकुल संकोच नहीं कि हिंदी के अपर किसी पत्र को हिंदी-प्रेमी श्रीमानों ने जिस तरह समय-समय पर एक मोटी रक़म दे-देकर या सैकड़ों प्रतियाँ उस पत्र की ख़रीदकर सहायता दी है, 'सुधा' को इस तरह नहीं दी, यद्यपि साहित्य और समाज पर 'सुधा' की सेवा बड़े-बड़े आलोचकों की दृष्टि में सर्वोत्तम महत्त्व रक्खेगी। हिंदी के कोई-कोई पत्र बराबर अपील-पर-

अपील निकालते रहे, और अपने घाटे की आवाज़ लोगों तक पहुँचाते रहे। 'सुधा' चुपचाप घाटा बरदाश्त करती रही, और अपनी पूरी ताक़त से साहित्य-सेवा में तत्पर रही।

पर एक कार्यालय इस प्रकार प्रतिवर्ष घाटा नहीं उठा सकता, विचारशील पाठक सहज ही अनुमान कर सकते हैं। हम किताबों की बिक्री का रुपया भी 'सुधा' में लगाते रहे। पर अब ऐसा समय आ गया है कि हम भी निःशक्त हो गए हैं, अतः पाठकों तथा हिंदी के प्रेमी श्रीमानों से 'सुधा' के सहायतार्थ हमें प्रार्थना करनी पड़ रही है कि जिस तरह भी संभव हो, ग्राहक बढ़ाकर या 'सुधा' के संरक्षक होकर वे हमारी, हिंदी-लेखकों की तथा हिंदी की सहायता करें।

'सुधा' को छ हज़ार की सहायता की ज़रूरत है। सौ-सौ रुपए के साठ हिस्से हमने किए हैं। इस प्रकार 'सुधा' के साठ संरक्षक होंगे। जो महानुभाव सौ रुपए देकर हिंदी की श्री-वृद्धि के लिये 'सुधा' की सहायता करेंगे, हम 'सुधा' के संरक्षकों में उनका शुभ नाम 'सुधा' में प्रकाशित करेंगे। हिंदी के शुभचिंतक श्रीमानों के लिये यह कोई बड़ी बात नहीं। पर हिंदी का इससे बड़ा उपकार होगा। इस तरह की सहायता से, हमारा विश्वास है, 'सुधा' दूसरे वर्ष अपने पैरों खड़ी हो जायगी, और तब यदि संरक्षकों की इच्छा होगी, तो हम और भी बृहत्तर रूप देकर उसका प्रकाशन करेंगे, या यदि वे चाहेंगे, मुनाफ़े की रक़म से उनका रुपया उन्हें वापस कर देंगे। हमें विश्वास है, जिस हिंदी के बोलनेवालों में अनेक राजे-महाराजे, तअल्लुक़ेदार और धनी-मानी सज्जन हैं, उसके हित का यह उत्तम उपाय सफल होगा।

पाक्षिक 'सुधा' में भिन्न-भिन्न विषयों के धुरंधर विद्वानों के लेख, आलोचनाएँ, संवाद आदि रहेंगे। लेखक अपने-अपने विषय के प्रसिद्ध विद्वान् होंगे। हमें उनकी सहानुभूति प्राप्त हो चुकी है। पूरे प्रयत्न से और उचित पारिश्रमिक देकर उनसे लेख लिखवाने का हमने निश्चय कर लिया है। इस तरह भी 'सुधा' का ख़र्च पहले से बहुत अधिक बढ़ जायगा। समाज, विज्ञान, राजनीति, धर्म, साहित्य आदि-आदि भिन्न-भिन्न विषयों के गवेषणा-पूर्ण लेख, सामयिक विश्व-संवाद, मनोहर कविताएँ, चुटीली चुटकियाँ तथा युगानुकूल विचारों से पाक्षिक 'सुधा' की श्री वृद्धि होगी। बड़े समारोह से हिंदी के सामने यह विशद ऊँचे साहित्य का प्रमाण रक्खा जायगा। इससे हिंदी के पाठक, लेखक, साहित्य, वर्तमान स्थिति, सभी को ज्ञान, आनंद, अर्थ, उच्चता और अनुकूल सुखकर परिवर्तन प्राप्त होगा। पर हिंदी के हितैषी, हिंद के श्रीमान्, लेखक तथा साधारण-जन इस सामूहिक कार्य को सफल करें, उनसे हमारी विनम्र प्रार्थना है।

× × ×

२. मनुष्य-धर्म

धर्म के लिये सभ्य समाज के प्रायः सभी लोग जान देते हैं। केवल रूस और वहाँ के मत के अनुसार चलनेवाले अंशतः कुछ अपर देश धर्म से परेशान हैं। इनको निगाह से वहाँ का प्रचलित धर्म अनुयायियों की कमज़ोरियों के कारण गिर गया है। यही हाल धर्म के माननेवालों का है। उनमें भी अविश्वास, दुर्बलताएँ और मानसिक संकोच समा गए हैं। सनातन धर्म, बौद्ध धर्म, क्रिश्चियन धर्म और मुसलमान धर्म आदि जितने प्राचीन धर्म पृथ्वी पर हैं, सब-के-सब किसी-न-किसी प्रकार की दुर्बलता से पंगु हैं। अच्छी तरह जाँच करने पर मालूम होता है, हरएक धर्म के अनुयायियों में ही अपने धर्म का विश्वास नहीं रहा। क्रैस्त-धर्म के माननेवालों में वैज्ञानिक प्रसार ज्यों-ज्यों बढ़ा, धर्म पर आस्था त्यों-त्यों घटती गई। उनके अधिकांश लोगों में धर्म केवल एक सामाजिक शौक़ है। विज्ञान-व्यवसाय का क्रैस्त-धर्मवालों ने ज्यों-ज्यों पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भागों में फैलाव किया, वहाँ-वहाँ के धर्मों की जड़ जड़वाद के भूकंप से हिलने लगी। सनातन, पारसी, बौद्ध, मुसलमान, सभी धर्म इतिहास के पृष्ठों की तरह

अपनी प्राचीन सभ्यता के दिखलावे के तौर पर रह गए। उन-उन देशों के लोगों ने जड़वाद तथा भौतिक विज्ञान का ही हृदय से स्वागत किया। बौद्ध और मुसलमान देशों के स्वतंत्र राज्य भी योरपीय सभ्यता के क़ायल हो गए—उसे पूरी मात्रा में अपनी शिक्षा तथा शासन-प्रबंध में ग्रहण किया। भारतवर्ष पराधीन ही हुआ, तब राज-सत्ता का उस पर ओत-प्रोत प्रभाव स्वाभाविक है। इस प्रकार जड़वाद द्वारा सभी प्राचीन धर्म ग्रस्त हो गए।

इस प्रकार प्राचीन धर्मों के माननेवाले देशों का प्रभावित होना स्वाभाविक था। क्योंकि राज्य, शासन, समाज, व्यवस्था, आचार, विचार आदि सभी बहिर्मुख हैं। कोई देश राज्य-शासन करता हुआ, कोई राजा सिंहासन पर बैठा हुआ, कोई समाज पृथ्वी पर चलता हुआ अपने को अंतर्मुख नहीं कह सकता। इस प्रकार के संसार में रहनेवाले लोग कुछ हद तक अंतर्मुख हो सकते हैं, पर उनकी अधिकांश वृत्तियाँ उनके कर्माधिकार के अनुसार बहिर्मुख ही हैं। ऐसे बहिर्मुख लोग यदि बहिर्मुख जड़-विज्ञान के ऐश्वर्य से प्रभावित हो जायँ, तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं, न इससे यह सिद्ध होता है कि उनका वह प्राचीन धर्म इस नवीन भौतिकवाद से परास्त हो गया, क्योंकि उस धर्म को वे पहले भी न मानते थे; जितना मानते थे, वह नहीं के बराबर है, जब कि वह बहिर्मुख थे।

इसी 'मनुष्य-धर्म'-शीर्षक से निकले हुए अँगरेज़ी के 'कलकत्ता रिव्यू' नाम के प्रसिद्ध पत्र के कुछ कथनों की, जो धर्म पर कहे गए हैं, यहाँ हम आलोचना करते हैं। इस "The religion of man" विशाल प्रबंध के लेखक हैं के० सी० सेन। इनका पूरा नाम कार्त्तिकचंद्र सेन, कालीचरण सेन या कामिनीचरण सेन, ऐसा ही कुछ होगा। 'कलकत्ता रिव्यू' के लिखनेवाले और ऐसे गहन विषय पर और इतने उदात्त अँगरेज़ी स्वर-पात, भाषा-कौशल और भाव-प्रवणता से, ज़रूर कोई बड़े आदमी होंगे। विचार क्या हैं, कुल संसार "कर-तलगत आमलक-समान" है। आप लिखते हैं—

"What was at one time considered to be the ever-lasting religion of man-kind has lost its cash value, and humanity is anxiously waiting for a new religion."

अर्थात् जो एक समय मनुष्यों का चिरस्थायी धर्म समझा गया था, वह अपनी मौजूदा क़ीमत खो बैठा है, और मनुष्यता उत्कंठा से एक नए धर्म की प्रतीक्षा कर रही है।

छान-बीन करने पर यह सारा वाक्य निरर्थ है, यद्यपि यों पढ़ने पर एक अर्थ निकलता है। "जो एक समय मनुष्यों का धर्म समझा गया था।" सेन महाशय का यह कहना 'वेद', 'श्रुति' और 'वेदांत' में किसी का भी पर्यायवाचक नहीं, न यह 'निर्वाण' का ही ठीक-ठीक अनुवाद है, 'इस्लाम' का भी नहीं। सेन महाशय के कहने का ढंग देखिए; स्पष्ट जान पड़ता है, जैसे किसी या किन्हीं ने मनुष्य-समुदाय का एक चिरंतन धर्म बनाया हो, पर बात ऐसी नहीं, 'वेद' अपने ज्ञान-अर्थ से ही चिरंतन है, ऐसा ही अपर धर्मार्थों के लिये भी है। धर्माचार्य केवल ज्ञान के पूर्णालोक में लीन हुए थे, उसे बनाया नहीं। जो लोग देखकर लौटे, उन्होंने उस ज्ञान को ही पूर्ण कहा है, बिजली की रोशनी तैयार कर सूर्य के प्रकाश की व्याप्ति उससे जुदा करने की कोशिश नहीं की, जैसी सेन महाशय का अद्भुत प्रयत्न कर रहा है। वह ज्ञान-धर्म न नया है और न पुराना, वह सदा एकरस है। उससे छूटकर अलग होनेवाले लोग एक नहीं पचीस भावनाओं के भीतर से गुज़रें, पर वे भी एक ही पूर्ण ज्ञानाब्धि में मिलेंगी। यदि सनातन, बौद्ध या मुसलमान आदि शब्द प्राचीनता के ही कारण पुराने लगते हों, तो उनके अर्थों पर ध्यान देने की कृपा करें, इन भिन्न धर्मों के अर्थों में साम्य और आज की नवीनता मिल जायगी।

धर्म का जो सर्वोच्च सूत्र होगा, वही उसकी आत्मा या यथासत्य रूप कहा जायगा। ऐसे सूत्र सभी धर्मों में हैं। अतः मूलतः सभी धर्म अभेद हैं। भेद बाहरी दुनिया में, आचार-विचार, भाषा-वेश आदि हैं। पर वे कभी धर्म की आत्मा नहीं बन सके। "The religion of man" कभी अँगरेज़ों को धोती या बंगालियों को हैट न पहना पायगा; न अँगरेज़ टोस्ट छोड़ेंगे, न बंगाली भात, वहाँ फ़र्क़ देख पड़ता है। काले गोरे नहीं हो सकते, न गोरे काले। मन में सभी बराबर हैं, मनुष्य-मात्र के बराबर अधिकार हैं, यह सभी धर्मों का मूल उद्देश है।

सेन महाशय ने जो लिखा—'The religion of man' teaches us that all men form one personality actually and not merely potentially (मनुष्य-धर्म हमें बतलाता है कि सब मनुष्य एक व्यक्तित्व वस्तुतः गठित करते हैं, केवल संभवतः नहीं), यह प्राचीन धर्मों के लिये भी कोई नई बात नहीं। आपने 'actually' और 'potentially' द्वारा जो भेद किया, जान पड़ता है, नवीन और प्राचीन के भेद बतलाए गए हैं, वर्तमान जड़-प्राधान्य के वज़न पर मनुष्य-धर्म को ज़ोरदार करने के लिये 'actually' प्रयुक्त हुआ है।

मनुष्य-प्रगति की जैसी आलोचना आपने अपने निबंध में की है, और जन-समाज को बढ़ता हुआ बतलाकर जैसे 'मनुष्य-धर्म' की उद्भावना डॉ० रवींद्रनाथ की आड़ लेकर की है, यह सब लिखने और ऐसी ही समझवालों के समझने का दिल-बहलाववाला विषय होगा, कोई तत्त्व नहीं। जितनी भौतिक उन्नति हुई है, उसका दायरा प्राचीन धार्मिक उन्नति से बढ़ नहीं गया। आजकल बड़ी ख़ूबी से आधुनिक जड़-विज्ञान प्राचीन धर्म-विज्ञान के द्वारा सिद्ध किया जा रहा है। किसी भी पंडित ने जड़-विज्ञान को धर्म-विज्ञान से बड़ा हुआ नहीं स्वीकृत किया। फिर एक नए मनुष्य-धर्म की कल्पना कैसे की जा सकती है? क्या यह केवल एक कहने की ही बात न हुई? आपने लिखा है—The truth is that all existing religions are old and effete, while human life is progressive. (सच तो यह है कि वर्तमान सभी धर्म पुराने हैं और जीर्ण, जब कि मनुष्य-जीवन उन्नतिशील है), यहाँ मालूम हो जाता है, सनातन धर्म, बौद्ध धर्म, क्रिश्चियन धर्म या मुसलमान धर्म को पुराना कहकर उसका क्या अर्थ समझते हैं। फिर धर्मों के भिन्न नामकरण के कारण यदि मनुष्यों के मेल में दिक़्क़त जान पड़ती है, तो नया 'मनुष्य-धर्म' भी इनसे एक पृथक् धर्म ही होगा, जिसके माननेवाले, मुमकिन है, किसी-किसी धर्म के प्रचलन के अनुसार 'मनुष्य-धर्म' के खाते में नाम लिखाते हुए कहें—मैं हिंदू नहीं, बौद्ध नहीं, क्रिश्चियन नहीं, मुसलमान नहीं, मनुष्य-धर्म-दीक्षित हूँ। इस तरह एक नए संप्रदाय का निकलना भी अनिवार्य है। फिर इसके साथ किसी 'उसका' संघर्ष न होगा, मनुष्यता पशुता में परिवर्तित न होगी, कैसे कहा जा सकता है?

रही डॉ० रवींद्रनाथ की बात, सो हमें तो उनमें जो कुछ मिला, वह प्राचीन की ही एक सुंदर खिचड़ी है, कुछ यहाँ के चावल, कुछ वहाँ की दाल; हिंदोस्तान का पानी और योरप की बिजली की आग। पर पहले बिजली थी ही नहीं, यह आप ही कह लीजिए। हमें महाकवि रवींद्रनाथ में एक भी बात ऐसी नहीं मिली, जो पहले नहीं थी। मनुष्य का केवल मनुष्य-भाव उसे धर्म का रास्ता सुझा सकता है। यहाँ का वेदांत मनुष्य-धर्म का सर्वोत्कृष्ट मार्ग निश्चित है, क्योंकि वह केवल ज्ञान है, और किसी व्यक्ति की, रचयिता की आज्ञाकारिता से बाहर है।

× × ×

३. धार्मिक सहिष्णुता

'विशाल भारत' के सुयोग्य संपादक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'धार्मिक सहिष्णुता'-शीर्षक लेख,

जो उनके पौप के पत्र में प्रकाशित हो चुका है, प्रचारार्थ हमारे पास भेजा है। लेख बड़ा सुंदर है। इससे हिंदू-मुसलमानों का धार्मिक स्नेह सुदृढ़ होता है। मुसलमानों के प्रति विश्वास पैदा होता है।

क़ुरान पर हिंदुओं तथा संसार के अपर समाजों में जो भिन्न भावनाएँ फैली हुई हैं, उन्हें दूर करने के लिये क़ुरान के विशद विचारों से अलंकृत तीन खंडों के एक बृहत् ग्रंथ का पहला खंड संसार-प्रसिद्ध अरबी-फ़ारसी के पारदर्शी विद्वान् मौ० अबुलकलाम आज़ाद ने प्रकाशित कराया है, जिसका हिंदोस्तान के मुसलमानों में बड़ा आदर हुआ है। बिहार के प्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्ता श्रीयुत ज़हूरुलहुसेन हाशमी साहब ने मौ० अबुलकलाम आज़ाद ने जो कुछ लिखा है, उसके कई अध्याय हिंदी में अनुवादित कर लिए हैं। और वे अब पुस्तक के रूप में छप भी रहे हैं। इस हिंदी-पुस्तक की भूमिका देश-रत्न बाबू राजेंद्रप्रसादजी ने लिखी है। उसका कुछ अंश हम उद्धृत करते हैं—

"मेरा विश्वास है, इसे पढ़कर हिंदी-भाषी इस्लाम के महत्त्व और उदारता को समझ सकेंगे, और सारी ग़लतफ़हमियाँ, जो फैली हुई हैं, दूर हो सकेंगी, भारतवर्ष में हिंदू-मुसलिम-समस्या बहुत जटिल दिखाई पड़ती है। इसके बहुतेरे कारण हैं—ऐतिहासिक, सामाजिक तथा राजनीतिक। दोनो जातियाँ एक दूसरे के धर्म-संबंधी विचारों को संदेह की दृष्टि से देखती हैं, और सामाजिक तथा धार्मिक रीतियों के कारण स्थान-स्थान पर असहिष्णुता का प्रदर्शन करती हैं, जिसका रूप कभी-कभी भयंकर और अमानुषिक हो जाया करता है।

"इसलिये यह अत्यंत आवश्यक है कि दोनो जातियों को इसका सुअवसर और प्रोत्साहन दिया जाय कि एक दूसरे के धर्म-संबंधी जानकारी प्राप्त करें। अविद्या और अज्ञान बहुत अनर्थों का कारण हुआ करते हैं, और आज भारतवर्ष को जटिल समस्या के हल करने का एक साधन इस अविद्या और अज्ञान का दूर करना है। यह इस प्रकार की पुस्तकों के प्रकाशन और प्रचार से दूर हो सकता है, जैसी मौलाना अबुलकलाम आज़ाद साहब ने लिखी है। हिंदुओं में इस प्रकार का प्रयत्न एक दूसरे विद्वान् डॉ० भगवानदासजी की लेखनी द्वारा हो रहा है।

"सच पूछिए, तो सभी धर्मों के सर्वोच्च सिद्धांत थोड़े ही हैं, और वे एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं। सारे झगड़े आचार-व्यवहार, रीति-नीति और रस्म-रिवाज में भेद के कारण ही होते हैं। जैसा मौलाना साहब ने दिखलाया है, इनमें भेद होना अनिवार्य है, क्योंकि देश-काल की विभिन्नता से और अन्यान्य जातियों के बीच प्रचारित होने से सभी बातों में समानता होना संभव था। जब ईश्वर के संसार में दो मनुष्य, अथवा दो कोई चीज़ें, ठीक एक दूसरे के समान नहीं हैं, और इस वैचित्र्य में भी सुंदरता और शक्ति झलकती है, तो धर्म के सभी आचार-व्यवहार, रस्म-रिवाज एक समान कैसे हो सकते हैं? पर हमारी भूल यह है कि हम इन बाह्याडंबरों को धर्म का मुख्य अंग समझ बैठते हैं, और इनके कारण एक दूसरे का सिर तोड़ और पेट चीरकर ईश्वर के उन नियमों का गला घोटते हैं, जो सबों के लिये समान-रूप से मान्य हैं।"

हाशमी साहब के किए हुए अनुवाद का कुछ अंश—

"क़ुरान के तीन सिद्धांत ऐसे थे, जो उसमें तथा और धर्मों के अनुयायियों के बीच विरोध के कारण हो गए—

१. क़ुरान धार्मिक दलबंदी के भावों का विरोधी था, और धर्म का ऐक्य घोषित करता था। अगर धर्मों के अनुयायी यह मान लेते, तो उन्हें यह मानना पड़ता कि धर्म की सचाई किसी एक गरोह के हिस्से में नहीं आई है, सबको समान-रूप से मिली है; परंतु यही मानना यहूदियों की सांप्रदायिकता के लिये घातक था।

२. क़ुरान कहता था—मुक्ति और कल्याण का

दारोमदार कर्मों पर है, वंश, जाति, संप्रदाय अथवा बाह्य रीति-रिवाजों पर नहीं। अगर इस तथ्य को वे मान लेते, तो मुक्ति का द्वार बिना पक्षपात के मानव-मात्र के लिये खुल जाता, और किसी एक संप्रदाय की ठेकेदारी बाक़ी नहीं रहती, लेकिन इस बात के लिये उनमें से कोई तैयार न था।

३. क़ुरान कहता था, वास्तविक धर्म ईश्वरोपासना है। ईश्वरोपासना यह है कि एक परमात्मा की अनन्य उपासना की जाय, लेकिन दुनिया के समस्त संप्रदायों ने किसी-न-किसी रूप में बहुदेववाद और मूर्ति-पूजा के ढंग स्वीकार कर लिए थे। उनको इससे इनकार नहीं था कि वास्तविक धर्म ईश्वरोपासना ही है, और वह ईश्वर एक ही है, लेकिन अपनी रूढ़ियों और प्रथाओं से अलग हो जाना उन्हें बेतरह खलता था।"

हाशमी साहब ने मौलाना अबुलकलाम आज़ाद साहब के विचार बड़े अच्छे ढंग से रक्खे हैं। आपकी हिंदी मार्जित और शुद्ध है। जिस उत्तम विचार को सामने रखकर आपने ऐसा उत्तम अनुवाद किया है, हम हृदय से उसके पोषक और प्रचारक हैं। स्थल-संकोच के कारण हम अधिक उद्धरणों द्वारा पाठकों का पूरा मनोरंजन न कर सके।

× × ×

४. गंगा और नर्मदा पर दो बड़ी पुस्तकें

हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक पं० दयाशंकर दुबे गंगाजी और नर्मदाजी पर दो बड़ी पुस्तकें लिख रहे हैं। दोनो पुस्तकें सचित्र होंगी। पहली पुस्तक में गंगोत्री से लेकर गंगा-सागर तक के और जमुनोत्री से लेकर प्रयाग तक के तथा दूसरी में अमरकंटक से लेकर खंभात की खाड़ी तक उपर्युक्त नदियों के किनारे के स्थान आदि के ज्ञातव्य और महत्त्व-पूर्ण विषयों का वर्णन रहेगा। दुबेजी ने इन दोनो पवित्र नदियों के प्रेमियों के लिये निम्न-लिखित निवेदन प्रकाशित किया है—

"(१) यदि वे इन नदियों तथा इनकी सहायक नदियों के किनारे के किसी ग्राम या महत्त्व-पूर्ण स्थानों से परिचित हों, तो उसका संक्षिप्त वर्णन उनके पास, नीचे लिखे पते से, भेजने की कृपा करें। इस वर्णन में प्राकृतिक दृश्यों, घाटों, देवस्थानों, प्राचीन और नवीन मंदिरों तथा ऐतिहासिक बातों को स्थान देना आवश्यक है। साथ में यह भी बतलाना आवश्यक है कि वह स्थान किस ज़िले में है, किसी बड़े नगर से कितनी दूर है, नदी के किस किनारे पर है, और रेल द्वारा तथा सड़क से उस स्थान को किस प्रकार पहुँच सकते हैं।

(२) यदि उनके पास श्रीगंगाजी या नर्मदाजी के संबंध में कोई प्रकाशित या अप्रकाशित कविता या स्तोत्र हो, तो उसे उनके पास भेज दें।

(३) यदि उनके पास इन नदियों या इनकी सहायक नदियों के किनारे के किसी दर्शनीय स्थान (मंदिर, घाट, प्राकृतिक दृश्य) का फ़ोटो या चित्र हो, तो उसे उनके पास अवश्य भेज देने की कृपा करें। फ़ोटो या चित्रों में किनारे के दृश्यों का महत्त्व प्रकट होना आवश्यक है।

(४) यदि उनके पास श्रीगंगाजी और नर्मदाजी के किनारे निवास करनेवाले किसी महात्मा-साधु, संत या वीर पुरुष का फ़ोटो हो, तो वे उसे भी उनके संक्षिप्त जीवन-चरित्र-सहित भेजने की कृपा करें।

(५) इन पुस्तकों को उत्तम तथा और भी अधिक उपयोगी बनाने के लिये योग्य सम्मति भी देने की कृपा करें।"

सहायकों की शुभ नामावली पुस्तक में सधन्यवाद प्रकाशित होगी। चित्र और फ़ोटो का ख़र्च भी जो लेना चाहेंगे, उन्हें भेज दिया जायगा। आशा है, योग्य सज्जन इस पते पर सामग्री भेजकर ग्रंथों के प्रणयन में सहायक होंगे—पं० दयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, अर्थशास्त्र-अध्यापक, प्रयाग-विश्व-विद्यालय, प्रयाग।

× × ×

५. यू० पी० धर्म-रक्षण सभा, लखनऊ

अब के राजनीतिक अछूत-प्रश्न पर, महात्मा गांधी के उपवास के पश्चात्, देश में अछूतों के प्रति सहानुभूति का स्रोत हिंदुओं में उमड़ पड़ा। चिरकाल से धार्मिक भावना के भ्रम में भटकते हुए हिंदुओं के ऊँचे वर्णवाले लोग अब ठीक रास्ते पर आए। पर संस्कारों की प्रखरता के कारण अब भी अधिकांश लोगों के प्राण अछूतों को धर्म के प्रांगण में लाने के पक्ष में नहीं। यह कमज़ोरी है। समाज के दास ही समाज के शासक हो सकते हैं, जिनमें यह विचार नहीं, वे कभी दास्य के पाशों से मुक्ति नहीं पा सकते। हर्ष की बात है कि अछूतों के मंदिर-प्रवेश के पक्ष में, लखनऊ में भी, धर्म-रक्षण के नाम से एक सभा क़ायम हो गई है। इसके सभापति हैं ऑनरेबुल राजा सर रामपालसिंह के० सी० आई० ई०।

शूद्रों, अंत्यजों, अछूतों को भी अपर वर्णों की तरह मंदिर-प्रवेश का अधिकार है, इसकी विशद चर्चा शास्त्रीय उद्धरणों के साथ करते हुए पंडित मथुराप्रसाद नैथाणी ने सभा की ओर से एक विज्ञप्ति निकाली है, और संतों तथा पंडितों से अनुरोध किया है कि वे कृपा-पूर्वक इस विषय में अपनी सप्रमाण व्यवस्था सभा में भेजें। स्थल-संकोच के कारण हम नैथाणीजी के उद्धरण नहीं दे सकते, पर उनके साथ हमारा पूर्ण सहयोग है।

एक बात कहें। सृष्टि का कारण ब्रह्म है। कर्मानुसार यहाँ ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि हुए। अब म्लेच्छ-शासन में संस्पर्श दोष से वे जातियाँ भी नष्ट हो गईं हैं। सबकी बराबर इज़्ज़त और सबका कर्मों पर समान अधिकार है। फिर, जब अंत्यज भी ब्रह्म-संभूत है, चांडाल भी लोमश ऋषि का पुत्र है, तब ब्राह्मणों के संपूर्ण अधिकारों से युक्त अवश्य है, देव-दर्शन या मंदिर-प्रवेश तो विचार में लानेवाले प्रश्न हो ही नहीं सकते। ब्राह्मण और क्षत्रियों ने बलात् उन्हें मंदिर में प्रवेश करने से रोक रक्खा, उन्हें गुलाम बना रक्खा। जहाँ भक्ति-युक्त होकर भी भक्त भगवान् के मंदिर में नहीं जा पाता, वहाँ किसी विधान की ओर देखना ही पाप है। भक्ति और प्रेम किसी विधान के द्वारा नहीं किए-कराए जाते। पुनः, जब—तुलसी हरि को भगति बिन चारो बरन चमार—है, तब हरिजन हरि-भक्ति करके भंगी और चमार नहीं रहे, उन्हें रोकनेवालों पर ही संदेह हो सकता है।

× × ×

६. लखनऊ वीमेंस एसोसिएशन

लखनऊ का वीमेंस एसोसिएशन स्थानीय महिला-जागृति के क्षेत्र में प्रशंसनीय काम कर रहा है। नारी-समाज के संगठन-संवर्द्धन के लिये, उसके जीवन और जागरण के अर्थ, उसमें शिक्षा और सुरुचि के प्रसार के वास्ते इसने जो भी प्रयत्न किए हैं, वे स्तुत्य हैं। एसोसिएशन की इस प्रगति के श्रेय की अधिकारिणी उसकी सभानेत्री श्रीमती लेडी वज़ीरहसन साहबा हैं। एसोसिएशन की उन्नति के लिये किए गए आपके उत्साह-परिपूर्ण अनवरत प्रयत्नों से उसकी समस्त सदस्याएँ प्रभावित हैं, और भारतीय महिलाओं के उत्थान में दिलचस्पी रखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है।

हर्ष की बात है, एसोसिएशन की संरक्षिता में विगत १५ फ़रवरी, १९३३ से बालकों तथा विशेषकर परदे में रहनेवाली महिलाओं के लिये एक संगीत-पाठशाला प्रताप-निवास में खोली गई है। उसमें सुशिक्षित अध्यापकों द्वारा वैज्ञानिक रीति से संगीत की शिक्षा का प्रबंध किया जा रहा है। उचित परीक्षाओं का भी आयोजन हो रहा है। पाठशाला में संगीत की शिक्षा सोमवार के अतिरिक्त प्रतिदिन प्रातः ८ बजे से ९ बजे तक तथा दिन में १२ बजे से १ बजे तक होगी। पूरा हाल श्रीमती शावकशा, डार्लिंग रोड, लखनऊ से प्राप्त हो सकता है।

एसोसिएशन के प्रत्येक हितचिंतक को उसके अपने निजी भवन का अभाव बहुत दिनों से खटक रहा था। लखनऊ-निवासिनी महिलाओं के लिये ऐसे भवन की महत्ता, उपयोगिता तथा समाज-सेवा समय-

समय पर पत्रों में प्रकट की जा चुकी है। हर्ष का विषय है, उसके निर्माण के लिये प्रयत्न होने लगा है। एसोसिएशन की सदस्याएँ बड़े उत्साह और प्रेम से दान एकत्रित करने का कार्य कर रही हैं। भवन-निर्माण कमेटी को जो दान अब तक प्राप्त हुए हैं, या जिनके लिये वचन मिल चुके हैं, निम्न-लिखित हैं—

संख्या	नाम दाता	धन	विवरण
१.	लखनऊ वीमेंस एसोसिएशन-फ़ंड	१०००)	प्राप्त
२.	अमीर बहू साहबा द्वारा छोटी महारानी महमूदाबाद	१०००)	
३.	रानी साहबा पीरपुर	१०००)	,,
४.	श्रीमती लेडी वज़ीरहसन	५००)	
५.	रानी कसमंडा	५००)	
६.	बेगम मुहम्मदरज़ा	१००)	
७.	बेगम अलीज़हीर	१००)	
८.	रानी साहबा प्रतापगढ़	१००)	
९.	मेहरुन्निसा बेगम पुत्री छोटी महारानी महमूदाबाद	१००)	
१०.	बेगम ग़ुलाम इमाम	१००)	
११.	श्रीमती अब्दुलहसन	५१)	
१२.	श्रीमती अलीरज़ा	५०)	
१३.	श्रीमती नज़ीरहुसैन	५०)	
१४.	श्रीमती एफ़० टी० बहादुरजी	५०)	,,
१५.	श्रीमती आर० के० श्रीवास्तवा	५०)	
१६.	श्रीमती पी० एल्० भार्गवा	५०)	
१७.	श्रीमती कैंटनिवाला	२५)	,,
१८.	श्रीमती कुंदनलाल तथा श्रीमती कुंजबिहारीलाल	२५)	,,
१९.	श्रीमती शावकशा	१०)	,,
२०.	श्रीमती एच्० के० घोष	१०)	
२१.	श्रीमती ध्यानचंद्र मियार	५)	

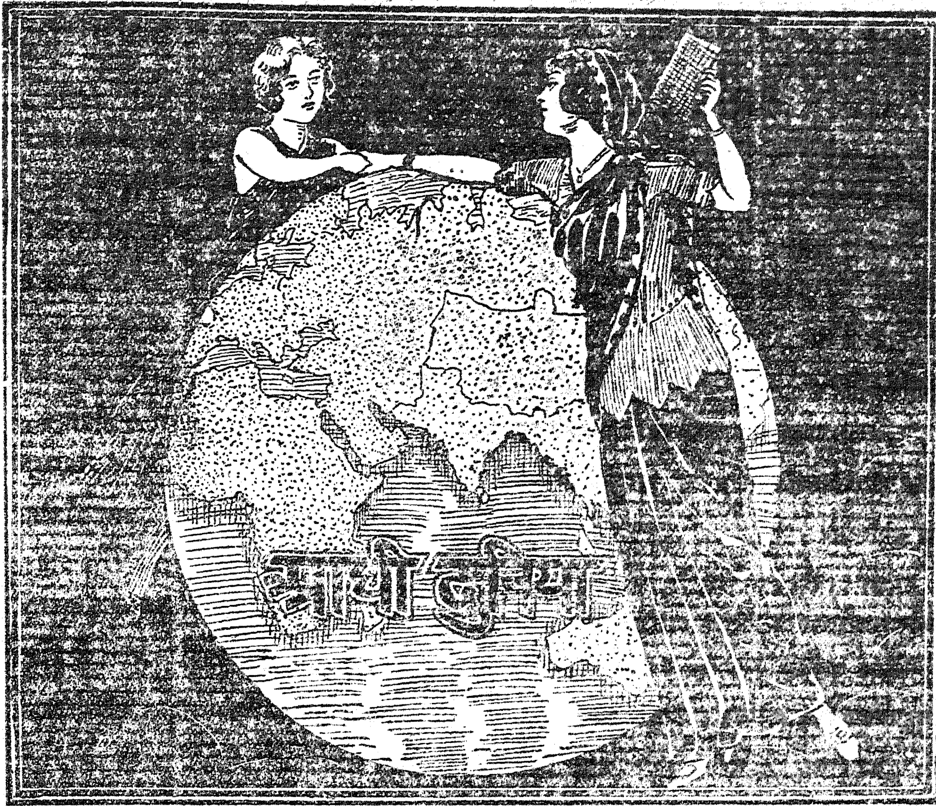
योगफल ४, ८८०)

महिलाओं के अभ्युत्थान की आकांक्षा रखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को श्रीमती चामर्स मंत्री वीमेंस एसोसिएशन, लखनऊ के नाम पर सहायता भेजनी चाहिए। समस्त दान इस पत्रिका में स्वीकार किया जायगा।

× × ×

७. राजकवि मुंशी अजमेरीजी

सुधा' के पाठक मुंशी अजमेरीजी के काव्य-कलाप का समय-समय पर आनंद लेते रहते हैं। आपने पिछले दिनों 'मधुकरशाह'-नामक एक कविता-पुस्तक लिखी है। महाराजा मधुकरशाह ओरछा-राज्य के पूर्वकालीन अधीश्वर वर्तमान महाराजा के पूर्वज थे। आपमें अनेक गुणों के साथ-साथ भगवद्भक्ति भी प्रचुर मात्रा में थी। 'मधुकरशाह' वर्तमान ओरछा-नरेश श्रीमान् सवाई महेंद्र महाराजा बहादुर वीरसिंहजू देव को अर्पित किया गया है। श्रीमान् ओरछा-नरेश का हिंदी-प्रेम प्रसिद्ध है। हर्ष की बात है, महाराज ने मुंशी अजमेरीजी को उक्त काव्य पर १०००) रु० प्रदान किए हैं, तथा उनकी काव्य-कुशलता, वचन-चातुरी और अन्य गुणों पर प्रसन्न होकर 'राजकवि' की उपाधि-सहित उनके जीवन-पर्यंत के लिये ५०) मासिक वृत्ति नियत की है। हम महाराज को इस संरक्षण के लिये अनेक धन्यवाद देते हैं तथा मुंशी अजमेरीजी को अनेक बधाइयाँ।





स्वरकार और शब्दकार—संगीत-अध्यापक श्रीहीराभाई ठाकुर

राग—पूर्वी

त्रिताल (मध्य लय)

तुम बिन अब प्रभु, कौन हमारो।
कपट - जाल में फँसे हुए हैं,
हाथ खींचकर हमें उबारो ॥ १ ॥
तव चरणों में पड़े दीन हैं,
कृपानाथ निज विरद विचारो ॥ २ ॥

०				३				×				२			
नि़	रे॒	ग	म॑	प	ध॒	म॑प	गम	ग	—	ग	म॑	ग	रे॒	सा	—
तु	म	बि	न	अ	ब	प्र-	भु-	कौ	—	न	ह	मा	—	रो	—
सां	नि	ध॒	प	म॑	पम॑	गरे॒	गम	ग	रे॒	ग	म॑	ग	रे॒	सा	—
तु	म	बि	न	अ	ब-	प्र-	भु-	कौ	—	न	ह	मा	—	रो	—

अंतरा १

नि़	सा	ग	रे॒	ग	म॑	पध॒	म॑प	सां	सां	सां	सांनि	ध॒	सांनि	ध॒	प
क	प	ट	जा	—	ल	में-	--	फँ	से	—	हु-	ए	--	हैं	—
म॑प	नि	ध॒	प	म॑	पम॑	ग	म	ग	रे॒	ग	म॑	ग	रे॒	सा	—
हा-	—	थ	खीं	—	च-	क	र	ह	में	—	उ	बा	—	रो	—

अंतरा २

०				३				×				२			
नि	रे	ग	रे	ग	म	पध	मप	सां	सां	—	सांनि	निसां	रें	सां	-
त	व	च	र	णों	—	में-	--	प	ड़े	—	दी-	--	न	हैं	-
निसां	गं	रें	सां	नि	ध	पम	गम	ग	रे	ग	म	ग	रे	सा	-
दु-	या	—	ना	—	थ	नि-	ज-	वि	र	द	वि	चा	—	रो	-



करुण कथा



मुझे पूर्णता से स्मरण है, जब निर्जीव को सजीव बनानेवाले, वन-उपवनों को सौंदर्य-युक्त, सुगंधित पुष्पों से महकानेवाले षट्पदों के दिव्य गान से पुष्पित वाटिकाओं को गुँजानेवाले तथा सुगंधित पुष्पों के पराग के भार से लदी हुई वायु की तीक्ष्ण गति को मदोन्मत्त बनानेवाले मधुमास का आगमन हुआ था। तथा जब नव-पल्लव-पुष्प-गुच्छों से हरे-भरे कुंज-पुंजों में कलकंठ कोकिल मानो अपने रूप से लज्जित होकर पल्लवावगुंठन में मुँह छिपाकर मधुर और हृदयाकर्षिणी ध्वनि से सरस वसंत का आगमन कर रही थी। तथा जब मधुर मधुमयी माधवी लता पर मँडराते हुए मकरंद-मत्त मधुकर एक पुष्प को छोड़ दूसरे पुष्प पर मोहित हो-होकर मानो मधुर गान से अपनी प्रियाओं को प्रसन्न कर रहे थे। तथा प्रत्येक कली अपने यौवन के मद से अपने सौंदर्य को प्रकट करने के लिये अपने अवगुंठन रूपी पत्रों को हटाकर अपना मुखारविंद दिखा-दिखाकर भ्रमरों की काम-पीड़ा को वर्धन कर रही थी। प्रत्येक वृक्ष तथा प्रत्येक लता अपने-ही-अपने यौवन के मद में मस्त थी। नवीन, कोमल लतिकाएँ अपने सुंदर-सुंदर पत्र रूपी हस्तों को फैला-फैलाकर सुंदर, सुगंधित पुष्पों की भेंट के मिस अपने प्रियतम को आलिंगन करने का भरसक प्रयत्न कर रही थीं। कभी उनको अपनी अलबेली चाल दिखाकर मोहित करना चाहती थीं, और कभी दीर्घ बाहुओं को फैलाकर गले में डालने का प्रयत्न करती थीं। किं बहुना? चारो ओर प्रकृति की अद्वितीय शोभा देखने से यही प्रतीत होता था कि चारो ओर कुसुमायुध भगवान् मन्मथ का ही साम्राज्य है। उस समय नव-किसलय से सुशोभित तथा मंजरी-युक्त आम्र-वृक्ष के नीचे एक साक्षात् सौम्य-मूर्ति षोडशवर्षीया कोमलांगी बालिका अपने प्रज्वलित हृदय की आहों को नेत्रों की राह से निकाल रही थी। कौन जानता था, उस समय उस दुखिया के हृदय में क्या ज्वालामुखी पहाड़ धधक रहा था! निरंतर अविरल अश्रु-धाराओं के गिरते रहने से उसके वक्षःस्थल का सुंदर वस्त्र बिलकुल भीग गया था। अपने बाएँ हाथ पर बायाँ कपोल रक्खे मानो दुर्भाग्य के दिन गिन रही थी। उसकी यह प्रकृति ठीक उस कमल के समान थी, जिसको किसी मदोन्मत्त हाथी ने मत्तता-वश टेढ़ा कर दिया हो। चंचल पवन उसके केश-पाशों से क्रीड़ा करती हुई उसकी काम-ज्वाला को अग्नि में घृत का कार्य करके अधिक प्रज्वलित कर रही थी। यद्यपि यह बालिका मौन धारण किए बैठी थी, तथापि कभी-कभी उसके मुखारविंद से अनायास ही ये शब्द निकल पड़ते थे—

"यदि गंध था देना नहीं, तो क्या खिलानी थी कली।" ये शब्द इस प्रकार निकल रहे थे, जैसे राख से आच्छादित अग्नि में से चिनगारी।

उसकी अवस्था उस समय ठीक इस प्रकार थी, जैसे जन-शून्य वनस्थली में सुरभित सुमन खिल-खिलकर निःस्पर्श और अज्ञात ही रह जाते हैं, उसी प्रकार वह मंजुभाषिणी, सुहासिनी भी उस वन में अपने दिन बिता रही थी। कई दिनों तक निरंतर निराहार रहने के कारण शरीर कुछ कृश पड़ गया था, क्योंकि कभी कुछ कंद, मूल, फल चुनकर खा लेती थी, कभी वे भी नहीं। हरिणी-शावकों पर बड़े प्रेम से हाथ फेरकर स्नेह करती थी, तथा स्तब्ध होकर पक्षियों का मनोहर कलरव सुनती। कभी कलकल निनादिनी, निर्मल जल-वाहिनी मंदाकिनी के जल-प्रवाह में से गागर में जल लाकर छोटे-छोटे वृक्षों को बड़े चाव तथा स्नेह से सींचती थी। यही उसके नित्य के कृत्य थे। कभी-कभी सघन आनंद-दायी निकुंजों में विहार करनेवाले पशु-पक्षियों की काम-किलोलें देखकर उसके मन में क्रूर कामदेव के पुष्प-शरों का आघात लगता था। हंत! कोई सहृदय विचार कर सकता है कि एक तो वह स्वयं नववयस्का, कोमल कमल-कलिका-सी सुकुमारी, दूसरे मन्मथ के तीक्ष्ण कुसुम-शरों का आघात तथा उस पर भी एकांत वसंत-वेष्टित वन में वास। इस प्रकार सभी कामोद्दीपन-सामग्रियाँ जहाँ प्रतिक्षण उसकी आँखों के आगे किलोलें करती थीं, भला वहाँ चंचल तारुण्य से आक्रांत अबला का निवास कितना कष्टकर होगा। कभी-कभी राकारमण के आगमन से समस्त धरातल को धवलित देखकर तथा उसकी शीतल, सुधा-वर्षिणी रश्मियों को अपने प्रत्यंग पर क्रीड़ा करते देखकर उसका मन-मयूर नाच उठता था। इस प्रकार कुछ काल व्यतीत हुआ। एक दिन अचानक एक नवयुवक अपनी मदोन्माती चाल से घूमता-फिरता उधर से आ निकला, जहाँ पर अरक्षिता का निवास था। तथा सघन छाया की खोज में उसी अशोक-वृक्ष के नीचे पहुँचा, जहाँ उस नव-वयस्का का मुखारविंद अपनी अनुपम छटा से उस स्थान को प्रकाशित कर रहा था। वह नवयुवक उस मनोमोहक रूप को देखकर किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर खड़ा रह गया।

उस पाषाण-हृदय का हृदय मोम की भाँति पिघल गया। उस सौंदर्य-पूर्ण सुंदरी की अनुपम छवि ने मैस्मिरेज़्म का काम कर दिखाया। उस विमोहक रूप से मोहित होकर मुख से एक भी शब्द न निकला। चित्रवत् खड़ा देखता ही रह गया। कुछ क्षण के पश्चात् डबडबी आँखें करके लड़खड़ाती वाणी से बोला--"हृदयाधिदेवते! मैं एक अपरिचित व्यक्ति होने पर भी क्या यह पूछने का साहस कर सकता हूँ कि आप किन शुभ अक्षरों को पवित्र करती हो? तथा किस भाग्यशाली देश को वियोग में तड़फता हुआ छोड़कर यहाँ पधारी हो?" चिरकाल तक कोई उत्तर न मिला। परंतु तत्क्षण कमल-नेत्रों ने मुक्ता-हार बनाने आरंभ कर दिए। मानो सुकोमलांगी अपने हृदयोद्गारों को मूक भाषा में प्रकट कर रही हो। युवक को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, और अन्य प्रश्न पूछने का साहस न हुआ। एक क्षण पहले मुखारविंद पूर्ण चंद्रमा की भाँति प्रकाशित हो रहा था, परंतु एकाएक भाद्रपद की भयंकर काली घटाओं से आच्छादित हो जल-शीकर वर्षाने लगा। यद्यपि युवक का हृदय पाषाण की भाँति कठोर था, तथापि जैसे चंद्रकांत-मणि चंद्रमा को देखकर पिघल जाने में विवश है, उसी भाँति उसका हृदय विदीर्ण हुए बिना न रह सका। उसने सोचा, केवल नाम-धाम ही पूछने का यह परिणाम हुआ, यदि और कुछ पूछने का साहस करता, तो न-जाने क्या-क्या गुल खिलते।

तदनंतर वह युवक वहाँ से कुछ दूर पर गया, और कंद, मूल, फल चुनकर लाया, तथा उस नवोढ़ा के सामने रख खाने की प्रार्थना की, और प्रेममयी दृष्टि से उसके मुखारविंद की ओर देखने लगा।

उस कोमलांगी ने धीरे से एक फल उठा लिया, पर लज्जा-वश खाने का साहस न हुआ, और प्रेम-भरी दृष्टि से एक बार युवक की ओर देखा, मानो उसको भी देने की प्रार्थना कर रही थी। परंतु युवक ने जल्दी से कोमल कमल के पत्ते को चारो ओर से चुनकर कमंडल बनाया, और उसमें निकटवर्तिनी नदी से निर्मल तथा शीतल जल भर लाया। फिर दोनो ने बड़े आनंद से फलों को खाया, और शीतल जल से अपनी प्यास को शांत किया।

अहा! सौंदर्य की भी अद्भुत गति है। कामदेव-जैसे कुसुमायुध को भी सौंदर्य ने नीचा दिखा दिया। नवयुवक ने एक बार फिर नवोढ़ा की ओर प्रेममयी दृष्टि से देखने का साहस किया। मानो उसके सौंदर्य को अपनी पलकों में रख लिया हो। जिस प्रकार प्रेमोन्मत्त मधुर कमलिनी को इतना रिझाता है कि वह अपने हृदय के सब गुप्त भेदों को खोलकर, भौंरे को भीतर बुलाकर, अपने स्निग्ध तथा सुगंधमय आवरणों के अंदर छिपा लेती है, जिससे उसकी सुंदरता पर अपना तन, मन, धन न्योछावर कर देने-वाले अनंत प्रेमी पर किसी का दृष्टि-पात न हो जाय, उसी प्रकार सुतन्वंगि ने भी उसे अपने हृदय-मंदिर का देवता बना लिया, तथा बड़े ही मंद और शोकातुर शब्दों में बोली—"हृदयेश्वर! तुम मुझसे क्या प्रश्न करना चाहते हो। यदि पुरुष-समाज स्त्रियों के शोकातुर हृदय पर हाथ रखता, तो आज संसार के कोने-कोने में अशांति का डंका न बजता। आकाश को नीलिमा का धब्बा न लगता।" इससे आगे उसके मुख से कोई शब्द न निकल सका। नवयुवक ने कहा—"प्राणाधिपते! ये निष्ठुर प्राण किस काम आवेंगे, यदि मैं आपकी कोई सहायता न कर सका? अपने हृदयोद्गारों को प्रकट करने की कृपा करो। यदि आपके लिये यह शरीर भी निछावर करना पड़ेगा, तो भी निर्भय होकर करने को तैयार हूँ।" "अहा! भारी आश्चर्य!! भारी आश्चर्य!!! यदि इतनी सहानु-भूति निष्ठुर पुरुष-समाज के हृदय में होती, तो नवयुवतियों को दर-दर की भिखारिन बनने का समय न आता। मेरी करुण गाथा को सुनकर तो कठोर पत्थर भी मोम की भाँति पिघलने में विवश हो जायगा, सदा हास्य करनेवाला चंद्रमा भी दो बूँद अश्रु की भेंट चढ़ा देगा। अच्छा! यदि तू मेरी करुण कथा सुनने को इतना उत्सुक है, तो सुन। देख, मेरी यौवन की उमंग चिता की प्रचंड पावक में भस्मीभूत हो चुकी है। इसका सौंदर्य किसी निर्जन वन में खिले हुए पुष्प के समान निःस्पर्श तथा निरर्थक है। इसके पवित्र प्रेम का प्रकाश प्रलयकारी काले बादलों की घटा से आच्छादित भादों की पूर्णिमा की भाँति भयंकर है। इसका अटल सौभाग्य रेगिस्तान में जौहरी के हाथ से खोए हुए अमूल्य रत्न की भाँति निस्सार है। अधिक क्या? दुर्भाग्य-वश राहु ने पूर्ण चंद्रमा को निर्दयता से ग्रस लिया, विधाता ने अमृत दिखाकर हलाहल विष पिला दिया। कली खिलाकर गंध छीन लिया।" यह कहते-कहते वह बाला आँधी से उखड़े हुए वृक्ष की भाँति मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। इस करुणामय दृश्य को देखकर नवयुवक भी दो आँसू बहाने में विवश हो गया।

(कुमारी) शकुंतलादेवी गुप्ता (बी० ए०, हिंदीप्रभाकर)



मीठे चावल बनाने की विधि



आध सेर सफ़ेद शकर, आध पाव घी, एक छटाँक दूध, इन सबको इकट्ठा करके रख लो। फिर एक सेर पानी में शकर का शरबत बनाकर चूल्हे पर रख दो। जब वह उबलने लगे, तब उसमें चावल साफ़ करके, धोकर छोड़ दो। जब चावल पक जायँ, तब उतार लो। ऊपर से उसमें घी और दूध डाल दो। फिर उस बर्तन का मुँह बंद करके रख दो। दस-बारह मिनट बाद इसको खाने के काम में लाओ। ये चावल बड़े स्वादिष्ठ होते हैं।

आलू का रायता बनाने की विधि

एक सेर आलू उबाल लो। फिर उनको छीलकर मसल डालो। लौंग छ माशे, इलायची एक तोला, काली मिर्च आधी छटाँक, लाल मिर्च, सफ़ेद और स्याह ज़ीरा एक-एक तोला, राई एक छटाँक, हींग चार रत्ती, नमक डेढ़ छटाँक और ढाई सेर दही। मसाले को पीसकर इकट्ठा कर लो। सब चीज़ों को इकट्ठा करके दही में मिला दो। बस, रायता तैयार हो गया। यदि कुछ पतला करना हो, तो पानी मिला दो।

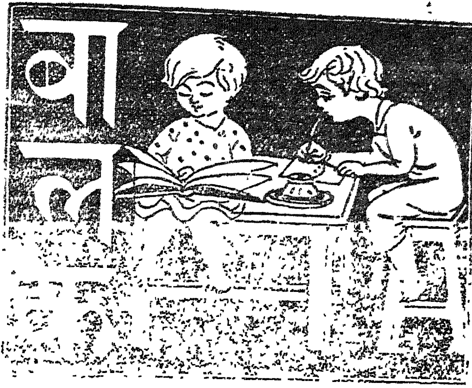
कुलफ़ी की बर्फ़ बनाने की विधि

टीन के पतले, ढक्कनदार, छोटे-छोटे गिलास बनवा लो। उनमें गर्म दूध भरकर थोड़ा-सा नीबू का रस और शकर डाल दो, और मुँह पर ढक्कन लगाकर आटे या उर्द की दाल से उनकी दराज़ें बंद कर दो। फिर उन कुलफ़ियों को घड़े में भरकर उनके ऊपर थोड़ा-सा नमक और बर्फ़ के टुकड़े डालकर घड़े को कंबल से लपेट दो। एक घंटे बाद बर्फ़ तैयार हो जायगी।

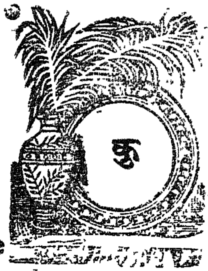
हरे चने की दाल बनाने की विधि

हरे छीले हुए चने आध सेर, हरी धनिया आधी छटाँक, थोड़ी-सी मिर्च, हल्दी पिसी हुई ½ तोला, चारो चीज़ों को कूटकर अधकुचला बना डालो। इसके उपरांत देगची में चढ़ाकर ऊपर से थोड़ा-सा नमक भी डाल दो। जब दाल पक जाय, तब आधी छटाँक अमचुर पीसकर छोड़ दो। ऊपर से गर्म मसाला छोड़ दो। बस, दाल तैयार हो गई।

राजरानीदेवी



१. सच्चा दान



कुछ समय पहले की बात है, दिल्ली में ग़यासुद्दीन नाम के एक बादशाह रहते थे, जो बादशाह होते हुए भी एक साधारण मनुष्य के समान रहा करते थे। इनके महलों में दास और दासियाँ नाम को भी न थीं। यहाँ तक कि बेगम साहबा को अपने कुटुंब के निमित्त खाना स्वयं पकाना पड़ता था। ग़यासुद्दीन अपने पीने के लिये नदी से पानी भरकर लाते और अपना तथा अपने बच्चों का पालन-पोषण किताबें लिख और बेचकर किया करते थे। बादशाह के इस व्यवहार को देख यदि कोई उनसे कुछ कहता, तो वह कह दिया करते थे—"भाइयो, खज़ाना मेरा नहीं, प्रजा का है। उसके मालिक वे ही ग़रीब और लँगोटी लगानेवाले किसान हैं, जो सदैव सिर का पसीना एड़ी तक बहाकर अपने बादशाह को मालामाल कर दिया करते हैं, स्वयं भूखे रहकर दूसरों का पेट पाला करते हैं।"

उन्हीं दिनों ईरान देश में मुहम्मदशाह नाम का एक फ़क़ीर रहा करता था। एक बार फ़क़ीर साहब ने विचार किया, चलो हिंदुस्थान की ओर चलें। बादशाह से मिलकर दक्षिणा माँग लावें। बस फिर क्या है, ज़िंदगी-भर की दरिद्रता एकदम काफ़ूर हो जायगी। आज घर में जहाँ कूड़े-कचड़े का ढेर लगा है, वहाँ एकदम लबालब धन भर जायगा।

मुहम्मद को धन पाने की पूर्ण आशा थी। वह एकदम अपने स्थान से अनेक मुसीबतें झेलता हुआ बादशाह ग़यासुद्दीन के दरबार में आ पहुँचा। बादशाह दयावान् और कर्तव्यशील तो था ही, उसने आए हुए फ़क़ीर का अच्छा स्वागत किया। कुशल-समाचार पूछने के पश्चात् जब ग़यासुद्दीन को उसके मन का भाव मालूम हो गया, तब उसने उसे अपना अतिथि बना लिया। पर यह क्या, जब फ़क़ीर ने बादशाह के साथ भोजनालय में प्रवेश किया, तब वह एकदम दंग होकर रह गया। क्या वह उस महल को शाही महल कह सकता था? जहाँ नौकर और नौकरानी नाम को भी नहीं हैं। इतना ही नहीं, जब भोजन

सामने आया, तब तो उसका वह कौतूहल इतना बढ़ा कि कुछ पूछिए ही नहीं। याने एक बादशाह के सामने जो भोजन परोसा गया था, वह वही था, जो साधारण मज़दूर लोग खाया करते हैं, अर्थात् मूँग की दाल और ज्वार की रोटियाँ।

किंतु बेचारा क्या करता, खाने को बैठ गया। उसकी सारी आशाओं पर पानी फिर चुका था। तमाम विचार मन ही में विलीन हो चुके थे। विचारा था, बादशाह के पास रहकर अच्छे-अच्छे माल उड़ाऊँगा, पर यहाँ मिलीं वे ही ज्वार की चपातियाँ। ख़ैर, जब फ़क़ीर के वापस जाने का समय आया, तब बादशाह ने उसे बड़े प्रेम से बिदा किया, और बिदाई में उसे दो आने पैसे दिए। अब तो कुछ पूछिए ही नहीं। फ़क़ीर का हृदय उस समय क्या कह रहा होगा। उसे वही समझ सकता है, जो इतनी बड़ी आशा कर इतनी दूर से आवे, और पावे दो आने पैसे।

फिर भी वह संतोषी था। क्या कहता, चुपचाप पैसे जेब में डालकर घर की ओर चलता बना। रास्ते में जाते-जाते विचार आया, जब बच्चे पैरों से लिपटकर कहेंगे, अब्बा जान, हिंदुस्थान से हमें खाने को क्या लाए हो, तब उन्हें क्या देकर समझाऊँगा। और यह भेट भी भाग्य से इतनी अधिक मिली है, जिसका मैं क्या लूँ, और क्या न लूँ, यही सोच हो रहा है। हो न-हो, यहाँ से कुछ आम ख़रीदकर ले चलूँ। ये आते भी तो हैं पैसे के पाँच-पाँच, और होते भी नहीं हैं हमारे देश में। बस, उसका विचार पक्का हो गया। उसने दो आने के आम ख़रीद लिए, और अपने घर की ओर चल पड़ा।

घर जाकर उसने वे फल बच्चों को खिलाए, और उनकी गुठलियाँ एक तरफ़ डाल दीं। भाग्य की बात है, एकाएकी ईरान के बादशाह बीमार पड़ गए, और ऐसी बुरी बीमारी में इस तरह फँसे कि वैद्यों ने कह दिया, आपको ओषधि में उस फल की गुठली की आवश्यकता है, जो हिंदुस्थान में होता है, और उसे वहाँ के निवासी आम कहा करते हैं। वह भी यदि जल्दी न आ सकेगी, तो जान की जोखिम है।

अब क्या था, सारे राज्य में मनादी पिटवा दी गई कि जो मनुष्य कल तक आम की गुठली हिंदुस्थान से ला देगा, उसे बादशाह की ओर से सौ गाँव जागीर में दिए जायँगे। मनादी सुनते ही फ़क़ीर की एकदम बाछें खिल गईं। वह चुपचाप दूसरे ही दिन सवेरे उन गुठलियों को लेकर बादशाह के दरबार में पहुँचा, जो उसने अपने घर के एक कोने में फेक दी थीं।

ओषधि मिल चुकी थी। अब रोग के भागने में क्या शक? बादशाह दिन-पर-दिन चंगे होने लगे, और एक समय वह आया कि वह पुनः अपनी पुरानी स्थिति पर आ गए। राज्य का सारा काम अपने हाथों चलाने लगे। उन्होंने अपने कहे अनुसार फ़क़ीर को सौ गाँव की जागीर इनाम में दे दी, और जन्म-भर उसका आभार माना। फ़क़ीर के भी दिन उसी भाँति फिर गए, जिस प्रकार कचरा घर के फिर आया करते हैं।

यह कहलाता है सच्चा दान।

हरिप्रसाद द्विवेदी 'श्रीहरि'

× × ×

२. सुक़रात

जब ग्रीस देश में पैरिक्लीज़ का शासन था, उस समय वहाँ सुक़रात का जन्म हुआ। उसी समय में दो अन्य तत्त्ववेत्ता विद्वान् उस देश में हुए। एक का नाम प्लेटो और दूसरे का अरिस्टॉटल था। तत्त्ववेत्ता उन विद्वान् मनुष्यों को कहते हैं, जो सदा ज्ञान और बुद्धि प्राप्त करने के इच्छुक होते और सांसारिक सुखों के बदले सत्य तथा न्याय की खोज में अपने जीवन का अधिकांश समय व्यतीत करते और दूसरे मनुष्यों को भी उसी मार्ग पर चलने के लिये तैयार करते और प्रत्येक वस्तु के कारण का विचार करने में सहायता प्रदान करते हैं।

प्लेटो और अरिस्टॉटल ने तो बहुत-से ग्रंथ लिखे, परंतु सुक़रात ने कोई ग्रंथ नहीं लिखा। हाँ, ज़ेनोफन के विषय में—जो सुक़रात की बड़ी प्रशंसा किया करता था— एक पुस्तक लिखी है, जिससे हमको सुक़रात का वर्णन प्राप्त होता है। प्लेटो जो सुक़रात का प्रधान शिष्य था, उसने जो पुस्तकें रची थीं, उनमें वार्तालाप के रूप में लोगों को उपदेश दिया था, जिनमें एक सुक़रात भी था। इससे हमको सुक़रात की शिक्षण-शैली का भी बोध होता है, क्योंकि वह केवल बुद्धिमान् और विचारशील ही नहीं, प्रत्युत हास्य-प्रिय भी था, और उसके मित्र उससे अत्यंत स्नेह करते थे।

यह एक अद्भुत बात है कि ग्रीस के निवासी, जो प्रायः सुंदर रूप के होते थे, यह मानने को प्रस्तुत नहीं थे कि एक मनुष्य जो कुरूप हो, वह बुद्धिमान् भी हो सकता है। सुक़रात स्वरूपवान् नहीं, परंतु बलवान् और पराक्रमी था। जब उसको एथेंस की सेना में लड़ने को जाना पड़ा, तब वह एक अच्छा और वीर सिपाही हो गया। परंतु उसकी यह एक विचित्र प्रकृति थी कि वह कभी-कभी ऐसी बेहोशी में हो जाता था, जैसी प्रायः भक्तों व योगियों को होती है। उस समय उसको बाहरी वस्तुओं का ज्ञान नहीं रहता था, परंतु जब वह अवस्था जाती रहती, तब वह अपना कार्य पूर्ववत् करने लग जाता, जैसे कि कोई घटना न हुई हो।

सुक़रात का यह मुख्य विचार था कि संसार में सबसे प्रधान वस्तु जो प्राप्त करने के योग्य है, वह ज्ञान है, और श्रेष्ठ ज्ञान आत्मज्ञान है, क्योंकि जितना अधिक तुम अपने विषय में ज्ञान प्राप्त करोगे, उतना ही तुमको अपने ज्ञान की कमी मालूम होगी। वह प्रायः मनुष्यों से यह प्रश्न करता कि तुम इस प्रकार के विचार क्यों रखते हो। इस तरह वह उनको कार्य और कारण का ज्ञान प्राप्त कराता था। परंतु वे मनुष्य जिनके विचारों का कोई उचित कारण न होता, इससे रुष्ट हो जाते, और जब उन्होंने यह देखा कि नवयुवक उन बातों को अनुचित और असत्य कहने लगे, जिनको वे अभी तक उचित मानते रहे, तो उन्होंने सुक़रात पर यह दोष लगाया कि वह एथेंस के नवयुवकों को बिगाड़ता था, इस अपराध के विचार के लिये वह न्यायालय में लाया गया, और उसे मृत्यु-दंड दिया गया। जब वह विष-पान कर रहा था, तब उसके मित्रों को उसके अंतिम दर्शन की अनुमति दे दी गई, वह उनको प्रसन्नता-पूर्वक मृत्यु के भय से रहित यह उपदेश देता रहा कि हमारे शरीर में आत्मा है, जो शरीर के नाश होने

पर भी अमर है, और नाश नहीं होता। ऐसा ही श्रीकृष्ण भगवान् ने गीता में उपदेश दिया है।

इसने संसार के तत्त्ववेत्ता मनुष्यों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया, और यूनान के इतिहास में इसका नाम चिरकाल तक बुद्धिमान् मनुष्यों में श्रेष्ठ गिना जायगा।

ब्रह्मदत्त मिश्र (एम्० ए०)



सिंधु मथैं सुर ही लही नैंकु जु सतजुग माँहि,
सहज सुलभ सोई सुधा सबै समै सब काँहि।

वर्ष ६ खंड २	चैत्र शुक्ल, ३१० तुलसी-संवत् (१९९० वि०)— एप्रिल (१), १९३३	संख्या ३ पूर्ण संख्या ६९

शुद्धोदन

(अप्रकाशित 'यशोधरा' से)

[श्रीमैथिलीशरण गुप्त]

चला गया रे, चला गया !
छला न जाय हाय ! वह, यह मैं
छला गया रे, छला गया !
चला गया रे, चला गया !

खींचा मैंने गुण-सा तान,
निकल गया वह बाण-समान !
ममते, तेरा मान महान,
दला गया रे, दला गया !
चला गया रे, चला गया !

स्वस्थ देह-सा था यह गेह,
गया प्राण-सा वह निःस्नेह !
अश्रु ! व्यर्थ है अब यह मेह,
जला गया रे, जला गया !
चला गया रे, चला गया !

उसे फूल-सा रक्खा पाल,
गया गंध-सा वह इस काल !
वह विष-फल, काँटे-सा साल,
फला गया रे, फला गया !
चला गया रे, चला गया !

धिक् सब राज-पाट, धन-धाम,
धन्य उसी का लक्ष्य ललाम !
किंतु कहूँ कैसे हे राम !
भला गया रे, भला गया !
चला गया रे, चला गया !

व्याकरणातंक

[श्रीपं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी]



योरप में जैसे पोतातंक है, वैसे ही हिंदी-संसार में आजकल व्याकरणातंक छाया है। हिंदी के बाल-गोपाल लेखक ही नहीं, कुछ बड़े-बूढ़े महारथी भी व्याकरण से बेतरह भयभीत हो रहे हैं। वह हिंदी की उन्नति में इसे बड़ी भारी बाधा समझते हैं। इसीलिये वह जी-जान से व्याकरण का विरोध करने लगे हैं। इसका प्रमाण रायबहादुर पं० श्यामविहारी मिश्र एम्० ए० 'शिरमौर' का भाषण है, जो उन्होंने बाईसवें हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति बन ग्वालियर में पढ़ा था। मिश्रजी के भाषण पर मुझे हँसते देख ग्वालियर के एक विद्वान् सज्जन कहने लगे—"आप हँसते हैं, और हम रोते हैं। हमारी आशाओं पर पानी फिर गया। हम साहित्य-सम्मेलन के सभापति से ऐसी बे-सिर-पैर की फालतू बातें सुनने नहीं आए थे। नाम बड़े और दर्शन थोड़े।" इत्यादि-इत्यादि।

मिश्रजी का भाषण जैसा ऊटपटाँग हुआ है, वैसा शायद ही किसी सभापति का हुआ हो। उनकी अन्यान्य अनर्गल बातों की चर्चा फिर कभी करूँगा। अभी तो उनके व्याकरण-विषयक विचित्र विचार पर ही कुछ कहता हूँ।

व्याकरण-वध के लिये लंबी-चौड़ी भूमिका बाँधकर मिश्रजी कहते हैं—"व्याकरणाचार्य पतंजलि को यह देखकर विशेष उद्विग्नता उत्पन्न हुई थी कि उनके समय की प्राकृत भाषा में बड़ी चंचलता एवं अस्थिरता थी, और इसका बहुत कुछ रोना गाकर उन्होंने उसे व्याकरण के अटल नियमों से जकड़ने की सम्मति दी।"

पतंजलि ने सम्मति दी या नहीं, सो मिश्रजी जानें। पर मेरा तो पूछना यह है कि रोना कब से गाया जाने लगा? अब तक तो रोना रोया और गाना गाया जाता था। पर अब मिश्रजी की मेहरबानी से गाना रोया जायगा, और रोना गाया जायगा। रायसाहब श्यामसुंदरदासजी बी० ए० तो 'चरखा गाते' हैं, फिर रायबहादुर मिश्रजी एम्० ए० ही रोना भी न गावेंगे, तो क्या करेंगे?

मिश्रजी की उक्ति है—"यदि आप हिंदी को भी व्याकरण के जटिल एवं दुर्बोध नियमों की बेड़ियाँ पहना देंगे, तो वह भी अति शीघ्र मृत भाषाओं की श्रेणी में जा पड़ेगी।" इत्यादि।

इस नई उपज के लिये—इस अनोखी सूझ के लिये—उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। पर यह समझ में नहीं आया कि व्याकरण हिंदी को कैसे मार डालेगा। व्याकरण का काम मारना नहीं, रक्षा करना है। इसके सिवा अँगरेज़ी में भी तो व्याकरण के नियम जटिल और दुर्बोध ही नहीं, अनर्गल और अस्वाभाविक भी हैं, फिर भी वह अभी तक मरी नहीं। फिर बेचारी हिंदी ही क्यों मर जायगी? अँगरेज़ी-व्याकरण के नियमों से हिंदी-व्याकरण के नियम तो बड़े सीधे, सरल और स्वाभाविक हैं। विश्वास न हो, तो मेरा 'निबंध-निचय' लखनऊ के गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय से मँगाकर देख लें।

मिश्रजी का कहना है—"हिंदी को गला घोटने-वाले व्याकरण की कदापि आवश्यकता नहीं।"

सत्य वचन। पर यह तो बताइए कि चरण दबाने-वाले व्याकरण किस भाषा में हैं? मिश्रजी तो अँगरेज़ी के एम्० ए० हैं। क्या बता सकते हैं कि He and she; I speak and he speaks; man, men and mouse, mice आदि गलाघोटू व्याकरण में हैं, या चरणदाबू में? मिश्रजी

के हम लोग बड़े कृतज्ञ होंगे, अगर वह कृपा कर हिंदी का एक चरणदाबू व्याकरण बना दें।

आगे चल आप पूछते हैं—"अपनी मातृभाषा बोलने और लिखने-मात्र की योग्यता प्राप्त कर सकने के लिये भला कौन दस-बारह वर्ष का परिश्रम करना स्वीकार करेगा ?"

वही करेगा, जो साहित्य का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहेगा—वही करेगा, जो साहित्याचार्य, सुलेखक, सुकवि, समालोचक और संपादक बनना चाहेगा। जो डिप्टी-कमिश्नर या दीवान बनना चाहेगा, वह भला हिंदी के लिये परिश्रम क्यों करने लगा ? अच्छा, यह तो मिश्रजी बतावें कि जिस भाषा में उनका भाषण लिखा गया है, वह क्या उनकी मातृभाषा है ? अगर है, तो 'हमपंचन के ट्वाला माँ' किसकी मातृभाषा है ?

यह कहकर तो उन्होंने अपनी रही-सही पोल भी खोल दी है कि "जो महानुभाव हिंदी का सर्वांग-सुंदर बृहद् व्याकरण तैयार कराने का परिश्रम करना (किया) चाहते हैं, वे वास्तव में अपनी मातृभाषा (?) के शत्रु हैं।"

जी नहीं, ऐसा न कहिए। वह शत्रु नहीं, परम मित्र और हितैषी हैं। शत्रु तो आप हैं, जो व्याकरण का बहिष्कार कर हिंदी का अंगच्छेद किया चाहते हैं। इसके सिवा आपका उक्त वाक्य अर्थ-हीन है। कोई हिंदी का सर्वांग-सुंदर व्याकरण बनावे या बनवावे, तो वह अपनी मातृभाषा का शत्रु कैसे हो जायगा। केलाग साहब ने हिंदी का बृहद् व्याकरण लिखा है, इसलिये क्या वह अपनी मातृभाषा अँगरेज़ी के शत्रु हो गए ? कदापि नहीं। फिर मिश्रजी ऐसा क्यों कहते हैं, सो वही जानें।

मिश्रजी विभक्ति प्रत्यय को प्रकृति से अलग लिखने की राय देकर फ़र्माते हैं—"रामस्य संस्कृत का एक शब्द है, तथा राम का हिंदी के दो शब्द हैं।" शब्द नहीं, पद कहिए। राम शब्द और रामस्य या राम का पद है। क्या यह भी आप नहीं जानते हैं ? अगर जानते, तो ऐसा कदापि न लिखते। ख़ैर, सुनिए और समझने की कोशिश कीजिए। जो रामस्य है, वही राम का है। इनमें कोई भेद नहीं। हाँ, भाषा-भेद अवश्य है। जब राम और 'स्य' मिलाकर लिखा जायगा, तब राम से 'का' क्यों अलग किया जायगा ? अगर अलग किया जायगा, तो उसका कोई अर्थ न होगा। समझे। आगे चल आप प्रश्न करते हैं कि "फिर ऐसे वाक्यों के लिखने में क्या करेंगे कि यह पुस्तक नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ में छपी ? इस वाक्य का 'में' शब्द (प्रत्यय कहिए) न प्रेस के साथ सटाकर लिखना उचित होगा, और न लखनऊ के साथ।"

लखनऊ के साथ 'में' लिखने में क्या अनौचित्य होगा, यह भी तो बता देते। आप कौड़ी तो बहुत दूर की लाए, पर अफ़सोस ! लाभ कुछ न हुआ। जिसे व्याकरण का तनिक-सा भी ज्ञान होगा, वह ऐसी लचर दलील कभी न पेश करेगा। व्याकरण के अनुसार लखनऊ के साथ 'में' लिखना उचित और शुद्ध है। इसी प्रकार विभक्ति-प्रत्यय भी प्रकृति के साथ लिखना चाहिए, अलग नहीं। जो अलग लिखते हैं, वह भूल और बेजा करते हैं।

सभापति मिश्रजी दुःखी हो अंत में कहते हैं—"हम ऐसा बहुत दिनों से कहते आते हैं, पर हमारा कथन अब तक प्रायः अरण्य-रोदन ही रहा है।"

मैं समझता हूँ, आपका कथन सदा ही अरण्य-रोदन रहेगा। कोई समझदार आपके कथन से व्याकरण का बहिष्कार न करेगा, और न कर सकता ही है।

परमात्मा आप-जैसे नादान दोस्तों से हिंदी को बचावे।

हमारा धार्मिक नेतृत्व

[श्रीठाकुर श्रीनाथसिंह]



कुछ लोगों की, विशेषकर प्राचीन धर्म-शास्त्रों पर अंध-श्रद्धा रखनेवाले पंडितों की यह धारणा है कि धार्मिक मामलों में उनके सिवा और किसी को बोलने का अधिकार नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि भारतवर्ष का धार्मिक नेतृत्व बहुत दिनों तक ऐसे ही पंडितों के हाथ में रहा है। परंतु इसीलिये वे वर्तमान समय में भी देश के धार्मिक नेता नहीं रह सकते। ज्यों-ज्यों वे अपने अधिकारों की चिल्लाहट मचाते हैं, त्यों-त्यों वे जनता की दृष्टि से गिरते जा रहे हैं।

हिंदू-धर्म कुछ पंडितों का ही धर्म नहीं है। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी हैं। किसी धर्म की एक-सी रूप-रेखा सदैव नहीं रह सकती। समय की आवश्यकताओं के अनुसार सभी धर्मों को अपनी प्राचीन कड़ाई कम करनी पड़ी है, और नए नियम बनाने पड़े हैं। जो धर्माचार्य इस प्रकार की उदारता नहीं दिखा सकते, वे अपने आसन पर बहुत दिनों तक टिक भी नहीं सकते। सभी धर्मों के इतिहास में इस बात के प्रमाण मिलेंगे। इसी प्राकृतिक नियम के अनुसार हिंदू-धर्म का नेतृत्व भी ब्राह्मणों के हाथ से निकलकर जनता के हाथ में जा रहा है। यदि ब्राह्मण लोग समय को देखकर चलते, तो उन्हें इस प्रकार पछताने का अवसर न आता।

धर्म के नाम पर पंडितों ने हिंदू-समाज पर बड़े-बड़े अत्याचार किए हैं। यदि इन ज्ञान-शून्य तर्काचार्यों को प्रसन्न करने के लिये अपनी इस घोषणा के अनुसार कि वह धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न करेगी, भारत-सरकार सती-प्रथा को रोकने का क़ानून न बनाती, तो आज भी भारतवर्ष में चारो ओर जीवित बालिकाएँ विधवा होने पर आग में जलकर खाक होती हुई दिखाई पड़तीं। धर्म से मनुष्य के सुख और शांति में वृद्धि होनी चाहिए। इसके विपरीत गुण रखनेवाला धर्म जनता का धर्म नहीं हो सकता, और न उसको मानने के लिये जनता को विवश ही किया जा सकता है। राजा राममोहन राय ने विधवाओं को इस अमानुषिक अत्याचार से बचाने के लिये सरकार के सामने यही तर्क उपस्थित किया था, और उसे सरकार ने स्वीकार किया था। विधवा-विवाह के संबंध में जो क़ानून बना था, उसमें भी सरकार के सामने यही दृष्टिकोण था। यही बात उस समय भी पेश थी, जब शारदा-ऐक्ट बना। शारदा-ऐक्ट अभी हाल की बात है, और समाचार-पत्रों के पाठक इस संबंध में पंडितों के विरोध से परिचित होंगे। इस बीसवीं सदी में भी भारतवर्ष के धर्माचार्यों का बाल-विवाह के लिये ज़िद करना देश और जाति दोनो के लिये बड़े लज्जा की बात थी। पर खैर, इसमें उनकी नहीं चली।

अब हरिजनों के मंदिर-प्रवेश का प्रश्न उपस्थित है । हिंदू होते हुए भी वे हिंदू-देवी-देवतों का दर्शन न कर सकें, उच्च वर्ण का ढोंग रचनेवाले हिंदुओं से वे दूर रहें, और धार्मिक मामलों में वे अपनी ज़बान न खोलें, यह कट्टरपंथी पंडितों की अब एकमात्र इच्छा है । उनकी चले, तो वह तोप और तलवार के ज़ोर से इस इच्छा को समस्त हिंदुओं पर सृष्टि के अंत तक लादे रहें ।

परंतु अब वह अंधकार का युग नहीं रहा । जब पंडितों ने लोक-कल्याण के लिये सोचना छोड़ दिया, और धर्मशास्त्रों की ग़ुलामी अख़्तियार कर ली, तब इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि जनता के नेता आगे आवें, और इस दिशा में भी उसके पथ-प्रदर्शक बनें । हरिजनों के मंदिर-प्रवेश के संबंध में महात्मा गांधी का वर्तमान आंदोलन देश की इसी आवश्यकता का फल है । सरकार की दुहाई देने से और यह चिल्लाने से कि सरकार धार्मिक मामलों में अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मौन रहे, यह आंदोलन नहीं रुक सकता । यदि इस आंदोलन के विरोध का कोई परिणाम हो सकता है, तो केवल यही कि जो थोड़ा-बहुत धार्मिक नेतृत्व पंडितों को प्राप्त है, वह भी उनके हाथ से निकल जायगा ।

यह सोचना कि इस संबंध में सरकार कट्टरपंथियों का साथ देगी, सर्वथा व्यर्थ है । सरकार उन्हीं की भाँति अपने को संसार की दृष्टि में हास्यास्पद नहीं बनाना चाहती । सरकार को धार्मिक मामलों में न बोलने की याद दिलाने के लिये कट्टरपंथियों का एक डेपुटेशन वायसराय के पास पहुँचा था । उसके उत्तर में वायसराय ने जो कुछ कहा, उससे सरकार की स्थिति स्पष्ट हो जाती है । वायसराय ने कहा था—"आप लोगों को इस बात का अवसर दिया जायगा कि जो तर्क आपने हमारे सामने रक्खे हैं, उन्हें आप जनता के सामने रक्खें, और उसी को इस बात के लिये राज़ी करें कि इस संबंध में क़ानून न बनना चाहिए । मैं नहीं समझता कि ऐसे विवाद से आपके धर्म को कोई ठेस पहुँचेगी । भविष्य में ऐसे प्रश्नों का आना अनिवार्य होगा । जो लोग प्राचीन पद्धति के अनुसार चल रहे हैं, उन्हें भी अब सार्वजनिक विवाद में पड़ना और अपनी बात को न्यायानुकूल प्रमाणित करना पड़ेगा ।"

इससे स्पष्ट है कि कम-से-कम धार्मिक मामलों में सरकार को वही मान्य होगा, जो जनता को । और, जनता में केवल पंडित ही नहीं हैं, उसमें भंगी, चमार, पासी सभी हैं । सबकी राय ली जायगी । जो धार्मिक अधिकार उन्हें अब तक नहीं मिले, वे अब उन्हें मिलेंगे । सरलता-पूर्वक न मिलेंगे, तो क़ानून बनेंगे । इस तरह सार्वजनिक हित में जितनी बाधाएँ आवेंगी, वे चाहे जितनी धार्मिक कही जायँ, उनकी रोक-थाम क़ानून द्वारा अवश्य की जायगी । मंदिर-प्रवेश, अस्पृश्यता, तलाक़, जाति-पाँति, सभी प्रश्न जो साधारण विवाद से हल न हो सकेंगे, क़ानून द्वारा हल किए जायँगे ।

इस संबंध में घबराने से, धर्मशास्त्र की दुहाई

देने से और सरकार को उसके कर्तव्य की याद दिलाने से पंडितों का काम न चलेगा। जब वे समय की गति के अनुसार समाज के आगे-आगे नहीं बढ़ सकते, तब उनका पीछे ही हट जाना ठीक है। यदि वे आधुनिक युग की आवश्यकता के अनुसार प्राचीन धर्मशास्त्रों में नए-नए अध्याय नहीं जोड़ सकते, तो धर्म के उच्च आसन पर बैठने का उनका अधिकार भी सुरक्षित नहीं रह सकता। हिंदू-धर्म तर्क, ज्ञान, सत्य, प्रेम और सहानुभूति का धर्म है। जो उसकी इन खूबियों को पहचानेगा, और अपने में विकसित करेगा, उसी के हाथ में अब हिंदू-धर्म का नेतृत्व रहेगा। यह कोई न पूछेगा कि वह कौन है, ब्राह्मण या भंगी?

चूड़ीवाली

[श्रीयुत शिवनारायण टंडन]

(१)



ओ बहूरानी !

मकान का दरवाज़ा बंद था। शायद आवाज़ अंदर तक न पहुँची हो, यह ख़याल कर चूड़ीवाली ने फिर पुकारा—"बहूरानी !"

"कौन है री ?" एक बाँदी ने झरोखे से झाँकते हुए पूछा—"बहूरानी-बहूरानी रट लगा रक्खी है, बहूरानी से तुझे क्या काम है ?"

"क्या इतनी जल्दी मुझे भूल गई दीदी ?" यौवन की मदमाती एक सुंदरी नीचे से मुस्किराते हुए बोली।

"अरे, तू है ! अच्छा, अभी आई ।" कहती हुई एक अधेड़ दाई आकर दरवाज़ा खोल गई। चूड़ीवाली इठलाती, मटकती, बतियाती ज़नानख़ाने में दाख़िल हुई।

(२)

ठाकुर महताबसिंह की ड्योढ़ी में इस चूड़ीवाली की अवाई-जवाई बराबर लगी रहती थी। चूड़ीवाली का नाम था चंपा। रंग चंपा-सा, गाल गुलाब-से, होंठ कुंदरू-से—अंग-प्रत्यंग पतले-से, सुडौल-से, मानो साँचे में ढाले थे। रेशम-से बाल एड़ी तक लहराते रहते, उसके चंचल दृगंचल न-जाने कितनों को घायल किया करते। राहगीर उसके अनूप रूप को लखने के लिये क्षण-भर ठिठक जाते। जिस राह से चंपा निकला करती, युवक उसके स्वागत में पलक-पाँवड़े बिछा देते। चंपा के अंग-अंग अनंग की तरावट से तर थे।

सुंदरता की उपासक सारी दुनिया है। कोई उषाकाल को देखकर मुग्ध होता है, तो कोई सायंकाल की छवि लखकर मग्न होता है। कोई जल के कल-कल नाद पर निसार है, तो कोई खिलती हुई, चटख़ती हुई कलियों के रूप-दर्शन पर अपलक है। किसी में रंग है, तो किसी में रूप है; किसी में प्रवाह है, तो किसी में सुरभि है। कामिनी तो इन सारे सद्गुणों का सरोवर है, संगम है—

लेकर रंग-रूप कंचन का,
देकर स्वाद सुधा का;
विरचा है विधि ने मुख तेरा,
सुख लेकर वसुधा का।

उसमें रूप है, रस है; लालसा है और जीवन की लाली है। किसी ने सच कहा है कि सौंदर्योपासक के लिये 'सुंदरी' प्रकृति का सबसे अनूठा और अद्भुत खिलौना है।

चंपा-सी रूप-यौवन से भरी हुई मदमाती सुंदरी पर अगर लोग रीझ जाते हैं, तो इसमें आश्चर्य और आपत्ति काहे की है। जो चंपा को खुलकर नहीं देखते, वे उसे पलकों से ताकते हैं। ठाकुर साहब की ड्योढ़ी के द्वारपाल तो उसे कनखियों से देखकर ही बाग़-बाग़ हो जाते हैं। उसके कई दिनों तक न आने-जाने से वे छटपटाने लगते हैं, और जब वह माथे में टिकुली और आँखों में अंजन लगाए उनके पास से गुज़रती है, तो वे उसे ललचाई हुई आँखों से लखकर दो-चार मीठे-मीठे बोल बोलकर थोड़ी देर तक अपने समीप अटका रखते हैं।

ठाकुर साहब के ज़नाने महल में आने के लिये दो ड्योढ़ियाँ पार करनी पड़ती हैं। ठाकुर महाराज परदे के कट्टर पक्षपाती हैं, इसलिये अंदर की हवेली के पट भी बंद रहा करते हैं। उस दिन दरवाज़ा खुलवाकर चूड़ीवाली जब अंदर पहुँची, तो बहूरानी नहा-धोकर, शृंगार से फ़ुर्सत पाकर ओसारे पर बैठी पान लगा रही थीं।

चूड़ीवाली मीना-काम की एक संदूकची बग़ल में दबाए ठीक उनके सामने आकर खड़ी हो गई।

"परनाम करती हूँ बहूजी!"

"अरी परनाम की नानी, अभी पूरे आठ दिन भी नहीं हुए, जब तू चूड़ी पहना गई थी, और आज फिर बकसिया दबाए आ धमकी!" ठकुरानी पान कतरते-कतरते बोलीं—"निकल यहाँ से, नहीं तो घंटों तक बैठे-बैठाए वृथा सर खायगी। अच्छा, बोल, तुझे कहना क्या है?"

चूड़ीवाली भला काहे को जवाब देती। वह मालकिन के पास जवाब-सवाल करने नहीं आया करती, अपना काम करने आती है। बैठ गई, और बक्स खोलते-खोलते बोली—"सो तो ठीक कहती हो बहूरानी, पर क्या करूँ, यह पेट बड़ा पापी है। घर में कोई पैदा करनेवाला तो है नहीं, अन्यथा काहे को यों दर-ब-दर भटकती फिरती। मुझ ग़रीबिन की रोज़ी आपकी बदौलत चलती है। जहाँ इतना ख़रच-पात होता है, वहाँ यह भी सही, एक राँड़-बेवा की परवरिश ही सही। और ठाकुर साहब ने तो स्वयं इस्तेवार चूड़ियाँ पहना जाने का हुक्म दे रक्खा है। सरकार, इसमें मेरा क्या क़सूर है। देखिए, कैसी नई चीज़ें बन-कर आई हैं। आज ही तो सीधे जापान से संदूक़ आया है।"

चूड़ियाँ सभी क़ीमती और नए फ़ैशन की थीं—"यह चौकड़ी सबसे बढ़िया है बीबीजी, इसके आगे ये पुरानी चूड़ियाँ आपके हाथों में नहीं सुहातीं।" कहते-सुनते उसने वे सुनहरी चूड़ियाँ धीरे-धीरे ठकुरानी की कलाई में सरका दीं। चूड़ियों का नया रंग-ढंग देखकर मालकिन का जी भी मचल गया, फिर तो बहुत-सी चूड़ियाँ छाँटी गईं। जो कसकी हुई थीं, वे अलग कर दी गईं, बाक़ी कलाई में सरका-सरकाकर देख ली गईं। चूड़ीवाली ने कहा—"आज मालिक से बढ़िया साड़ी की फ़रमाइश करूँगी।"

"अरी! राँड़-बेवा होकर रेशम की साड़ी पहनेगी? इतना रूप, इतना शृंगार, तिस पर अभी साड़ी की बहार बाक़ी है। मुझे तेरे रंग-ढंग देखकर कुछ खटका होता है। बोल, किसे फँसाने का विचार है?" बहू-रानी हँस पड़ीं।

"मैं किसे रिझाऊँगी रानी बहू! अगर यही होता, तो परमात्मा इतना दुख काहे को देता, इन हाथों को इतनी जल्दी क्यों नंगा कर देता। मुझ कूड़ा-करकट की ओर भला कोई काहे आँख उठावेगा।" ठकुरानी को चंपा की कातर वाणी पर दुख हुआ, उन्होंने फिर कुछ न कहा।

(२)

ठाकुर महताबसिंह बसंतपुर-इलाक़े के बड़े भारी ज़मींदार थे। उनके इलाक़े में कोई सौ-सवा सौ मौज़े थे। रियासत में किसी का हिस्सा-पाती तो था नहीं, ख़ुद ही सोलहो आना के मालिक थे। आमदनी, सब ले-देकर, लाख-सवा लाख की हो जाती थी। बसंतपुर उनकी राजधानी थी। बसंतपुर था तो छोटा-सा क़स्बा ही, पर ठाकुर साहब की कृपा से बड़ा गुलज़ार हो गया था। रियाया के साथ उनका बरताव बिलकुल भाईचारे का था। लगान घर बैठे वसूल हो जाता। उनके ताल्लुक़े में न तो कभी क़तल होते, और न सूदख़ोर किसानों की हड्डी चिचोरा करते। वह स्वयं ही स्वल्प सूद पर रुपया उधार दिया करते थे। परिणाम यह हुआ कि आस-पास की ज़मींदारियों को छोड़-छोड़कर लोग आ-आकर बसंतपुर में बसने लगे। इस बढ़ती के कारण आस-पास के ज़मींदार महताबसिंह से बहुत कुढ़ते थे। बसंतपुर में बाज़ारें लगने लगीं। धीरे-धीरे अनाज और कपड़े की पूरी मंडी भी लगने लगी। कहने का तात्पर्य यह कि बसंतपुर का ऐश्वर्य और आबादी धीरे-धीरे बढ़ती जाती थी।

बसंतपुर का दृश्य भी बड़ा मनोहर था। उस ताल्लुक़े में गंदगी का तो कहीं नामोनिशाँ भी नहीं था। सफ़ाई पर बहुत ध्यान रक्खा जाता था। टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों से होते हुए दर्शकों का समूह जब ग्रामीणों

की माटी की पवित्र कुटियों के सामने पहुँचता, तो वहाँ की स्वच्छता और शांति देखकर मुग्ध हुए बिना न रहता। पक्के, आलीशान, छ-सात खंड के, एक दूसरे से सटे हुए, काले-पीले और भूरे मकानों का नज़ारा भले ही बसंतपुर में न रहा हो, पर उन सफ़ेद मिट्टी से पुते हुए, खपरैलों से छये हुए, कद्दुओं की बेलों से मढ़े हुए, सादगी के साकार अवतार झोपड़ों में जो नज़ारा देखने को मिलता, वह बहुत समय तक भुलाए नहीं भूलता। ठाकुर साहब ज़मींदार थे, उनके अनुरूप ही उनका विशाल भवन था। मकान के आगे चौपाल थी, उसमें एक ओर बैलों और घोड़ों के दाने खाने की नाँदें थीं, और दूसरी ओर चरही बनी थी। मकान के दाहने और बाएँ हरे-भरे खेतों की बालियाँ लहलहा रही थीं। कहीं गेहूँ बुए थे, तो कहीं जौ लगे थे। कहीं सरसों फूल रही थी, तो कहीं चने रुपे थे। पिछवाड़े बड़ा भारी बाग़ था, जिसमें तरह-तरह के फल-फूल फूल रहे थे। प्रातःकाल के समय गेंदे और गुलाब अपनी लंबी-लंबी गरदनें निकाले, कलियों का किरीट पहने प्रातःकालीन समीर और सूर्य की रश्मियों का सेवन किया करते। ताल में कमल खिल रहे थे, आस-पास चारो ओर सुग्गापंखी-से पेड़ों के झुरमुट लगे थे, जिन पर शुक और सारिकाएँ बैठे हुए प्रातः और सायं प्रभु का गुण-गान किया करते थे।

महताबसिंह दयावान् और ज्ञानवान् थे, अवस्था तीस साल की थी, पर लगते पचीस के थे। स्वास्थ्य और स्वरूप के दोनो अतुलित वरदान करतार ने उन्हें दे रक्खे थे। ठकुरानी यद्यपि सुंदरी नहीं थीं, पर सुशीला और पतिभक्ता थीं। ठाकुर साहब उनका मान भी करते थे, पर कुछ मनचले ज़रूर थे। सुंदरियों को देखकर मचल जाते। चंपा (चूड़ीवाली) पर तो वह बहुत दिनों से आशिक़ थे।

उस दिन जब चूड़ीवाली तन्मयता से ठकुरानी को चूड़ियाँ पहना रही थी, ठाकुर साहब ड्योढ़ियों में आए। वह मन-ही-मन चंपा को चाहते थे, और उसके मुख-चंद्र के दर्शन करने ही आए थे। चंपा इन बातों से सर्वथा अनभिज्ञ हो, सो बात नहीं। उसमें रंग था, रूप था, और था यौवन का मद। ठाकुर साहब के रुख़ को उसने ख़ूब समझ रक्खा था। उस दिन चंपा ने काली-काली माँग के बीच मोतियों की क़तार सँजोई थी। ठाकुर साहब को देखते ही उसके दृग चंचल हो गए, अंचल सरक गया। ठाकुर साहब चोट खा गए, उनके कलेजे पर बरछी चल गई। इतने में ठकुरानी बोल उठीं—"क्या तुमने इस मुँहज़ोर चूड़ीवाली को खुला हुक्म दे रक्खा है कि मुझे आ-आकर बेहद परेशान किया करे?"

महताबसिंह—"क्यों री चंपा, मैंने तुमसे मालकिन को तंग करने को कब कहा है? हाँ, इतना ज़रूर कहा था कि जब नया सामान आया करे, तो इन्हें दिखला ज़रूर आया करो।"

चूड़ीवाली—"मैंने भी तो और कुछ नहीं किया है सरकार!" चंपा ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को मस्ती से घुमाते हुए कहा"—जापान से नया पारसल आया था, सारा माल लाकर बहूजी को दिखला दिया, जो पसंद पड़ा, वह इनके भाग्यवान् हाथों को पहना दिया। अब आप ही बतलाइए सरकार!" उसने खड़े होते हुए, लजाते-सकुचाते कहा—"इसमें मैंने क्या क़सूर किया?"

ठाकुर साहब मुस्किरा दिए। "तूने सब बहुत अच्छा किया!" कहती, मुँह बिचकाती ठकुरानी उठकर चौके में चली गईं। "इसी से तो चंपिया इतनी शेर हो गई है।" चौके की आग बुझी जाती थी, पति के लिये रोटियाँ सेकने की जल्दी थी, दस ही पाँच मिनट में चौके के अंदर से ठाकुर साहब की पुकार हो गई। उन्होंने पास बैठी हुई चंपा का बक्स खोलते-खखालते धीमे स्वर में कहा—"चंपा!"

चंपा ने अपनी कमल-सी आँखें ऊपर उठा दीं। रस बरस पड़ा। महताबसिंह ने एकटक हो आँखों में

आँखें डालकर—'मन भर जाय, हिया उतरावे, जग डूबे सारा-का-सारा'—अतुलित यौवन-मदिरा को ढाल-ढाल पिया। फिर वही प्रश्न उन्होंने किया—"चंपा!"

"कहिए सरकार!" आँखें नीची किए, शरमाते-सकुचाते, बंशी-सी तान छोड़ते चूड़ीवाली ने जवाब दिया—"कहिए, क्या हुक्म है?"

"कल शाम को नदिया के किनारेवाले मकान में मिलना। देखो, भूल न जाना, ज़रूर आना, तुमसे कुछ काम है।"

पहले तो वह ख़ामोश रही। इतने में चौके के अंदर से ठाकुर साहब की पुकार हुई। महताबसिंह के फिर कहने पर "बहुत अच्छा सरकार!" कहते हुए चूड़ीवाली चली गई। आज चंपा की चाल-ढाल में और दिनों की अपेक्षा ज़्यादा मस्ती थी।

(४)

दूसरा दिन था, शाम का वक्त था, नदी का किनारा था। ठाकुर साहब का दीवानख़ाना सजाया जा रहा था। महताबसिंह घर से यह कहकर आए थे कि आज कुछ मित्र आवेंगे, शायद रात में लौट न सकेंगे, पर वह चूड़ीवाली के स्वागत के लिये तड़प रहे थे। सूर्यास्त होते-न-होते चंपा की पालकी दीवान-ख़ाने के सामने आकर लग गई, और वह उसमें से क़हर ढाती, नागिन-सी बलखाती, पान चबाती, बड़े ठाठ-बाट से उतरी।

अरे ठाकुर साहब, यह क्या करते हो? ज़रा सोचो, ज़रा समझो; एक बार जहाँ पैर फिसला, फिर नहीं सँभलने का। पाप का पथ ऐसा भीषण है कि एक बार उस पर चरण पड़ते ही पथिक चुंबक की तरह चिपक जाता है। अपनी प्रजा पर, विधवा पर, अबला पर, नज़र डालना महान् पातक है। शरीर की धमनियाँ भड़क-भड़ककर नसीहतें देने लगीं। दिल की कली-कली चटख़-चटख़कर इस कुपथ से विपथ होने की सलाहें देने लगी, पर सब व्यर्थ! ठाकुर साहब के सर पर भूत सवार था, उन्होंने अपनी विवेक-बुद्धि खो दी।

उस दिन कार्तिकी पूर्णिमा थी, सहस्रों उज्ज्वल शीतल किरणें, चंद्रमंडल से निकल-निकलकर जल और थल पर सुधा-वृष्टि कर रही थीं। ठाकुर महताबसिंह की सजी हुई नौका नदी के निर्मल वक्षःस्थल पर विहार कर रही थी। नाव पर कोई माँझी न था, केवल चंपा बग़लगीर थी। नदी के बीचोबीच में साक़ी और साग़र का दौरदौरा चल रहा था। उस दिन ठाकुर साहब ने चंपा के पोर-पोर को क़ीमती गहनों से सजाया था। ठाकुर साहब के गले में बेशक़ीमत हीरों का कंठा था। यह सारा सामान ठकुरानी के लाख विरोध करने पर भी महताबसिंह ने ड्योढ़ियों से उठवा मँगवाया था। उस दिन उतनी रत्न-राशि देखकर चंपा का मन बदला। ठाकुर साहब नशे में चूर थे, जब उनका बजरा अर्ध-रात्रि का अवसान होने पर किनारे आकर लगा। साक़ी के हाथों उस दिन झलझल करती हुई अंगूरी इतनी पी ली थी कि वह बेहोश थे, बदहोश थे, नशे में पूरी तरह ग़र्क़ थे। "और पियो प्यारे!" के फ़िक़रे उस मोहिनी के मोहन मुख से जब-जब निकलते, तब-तब ठाकुर साहब बड़े प्यार और तपाक से गट-गट कर जाते। नतीजा यह हुआ कि ठाकुर साहब की बेहोशी बढ़ती ही गई। उनकी ग़फ़लत का फ़ायदा उठाते हुए उसने हीरे का कंठा उतारकर उन्हें आराम से पलंग पर सुला दिया, और स्वयं पौ फटते-न-फटते जिस पालकी पर आई थी, उसी पर बैठ घर का रास्ता लिया। भला उस समय, उस स्थल पर और उस वेला में चूड़ीवाली को रोकने-टोकनेवाला कौन था?

सुबह हुई, दोपहर हुई, शाम हुई और जब रात भी ढलने लगी, और ठाकुर साहब न जागे, तब तो ठकुरानी को शंका हुई। रात्रि का हाल-चाल उन्हें सब मालूम हो चुका था। ठाकुर साहब से बोलने तक को उनका जी न चाहता था। पर स्त्री का हृदय कहाँ तक कड़ुवा होता। पति की भयानक बेहोशी के हाल-चाल ने उनकी कठोरता का लोप कर करुणा का संचार किया। ठकुरानी की ममता बोल गई,

महावीरजी का प्रसाद चढ़ाया गया, डोला तैयार किया गया। ठकुरानी जब वहाँ पहुँचीं, तो पति की दीन दशा देखकर थर्रा गईं। वैद्यों और डॉक्टरों की लाम लग गई। महताबसिंह की गरदन ठकुरानी की जाँघों पर थी, घंटे-घंटे से दवा दी जा रही थी। बड़ी मेहनत और बड़े उपचार के बाद कहीं चौथे दिन ईश्वर की दया से ठाकुर साहब ने आँखें खोलीं। जिस दिन ठाकुर होश में आए, उसी क्षण ठकुरानी ने अपने शरीर के सारे गहने उतारकर बाँट दिए। उनके दिल की कली-कली खिल गई, जब महताबसिंह ने टुकुर-टुकुर ताकते हुए पुकारा—"कमलिनी!"

ठकुरानी का नाम कमलिनी था, उन्होंने प्रेम के आँसू बहाते हुए अपने ठाकुर के माथे पर हाथ फेर दिया।

"चंपा कहाँ गई? मेरा हीरे का कंठा कहाँ गया? अरे, मैं तो लुट गया! माफ़ करना कमलिनी, मैंने तुम्हारे प्रति बड़ा अत्याचार किया। मुझे इस बार माफ़ कर दो, अब आगे से कभी ऐसा न करूँगा।"

बेचारी अबला की आँखें छलछला आईं। चूड़ीवाली को बहुत खुजवाया गया, पर उसका कहीं पता न चला। ठाकुर साहब अब भी कभी-कभी सोते में चिल्ला उठते हैं—"चूड़ीवाली!" "चंपा, चूड़ीवाली!"

कौन ?

[श्रीपं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध']

(चौपदे)

अरुण - मुख रवि - सुषमा अवलोक।
रँगीली ऊषा से रस धार।
कांत कुसुमाकर से कर लाभ।
परम कमनीय कुसुम का हार ॥ १ ॥

मिल गए मंजु समय का अंक।
अति सरस सुंदर दिवस विलोक।
चल पड़े मादक मलय समीर।
हो गए बहु सुरभित सब ओक ॥ २ ॥

विपुल पुलकित दृग द्वारा देख।
हरित तम नूतन तरु परिधान।
सुविकसित सुमन - पुंज के काज।
बिरलकर प्रकृति-वधू मुसुकान ॥ ३ ॥

आम की मंजरियों को चूम।
मोल लेकर मानस - उन्माद।
सुन चपल चंचरीक - गुंजार।
कान कर कोकिल-कुल कलनाद ॥ ४ ॥

लोक - उर में भर अति उत्साह।
बहा तन रग-रग में रस धार।
विपुल कंठों को कर मधुदान।
छेड़ बहु मानस - तंत्री - तार ॥ ५ ॥

गगन को आरंजित कर भूरि।
अवनि पर रक्तिम चादर डाल।
उड़ाकर वारंवार अबीर।
दिग्वधू का कपोल कर लाल ॥ ६ ॥

पहुँच सेमल पलास के पास।
रंग - पूरित पिचकारी मार।
अनारों - कचनारों पर रीझ।
फूँक करके कुमकुमे अपार ॥ ७ ॥

रंग में डूबी गाती गीत।
मस्त हो चलती लटपट चाल।
कौन आई है भरी उमंग।
मंजु मुखड़े पर मले गुलाल ॥ ८ ॥

कोतवाली की नींव में आठ सौ बरस का पुराना कोतवाल

[रायबहादुर श्रीयुत हीरालालजी बी० ए०]



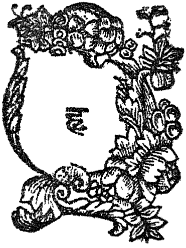
चार-पाँच वर्ष की बात है, जब जबलपुर शहर की पुरानी कोतवाली को फिर से बनाने के लिये काम आरंभ किया गया। उस समय नींव खोदते-खोदते एक पत्थर की बड़ी संदूक़ मिली, जिसका ढकना खोलने पर तीन-तीन सेर वजन के ताँबे के दो पत्र मिले। इनमें कुछ लेख लिखा था, परंतु कूड़ा-करकट जम जाने के कारण उसके अक्षर स्वच्छ नहीं दिखाई देते थे। रसायन-विधि से सफ़ाई करने पर जान पड़ा कि इन पर एक शासन लिखा था, जिसके द्वारा परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर त्रिकलिंगाधिपति श्रीमज्जयसिंह देव ने एक गाँव किसी ब्राह्मण को चंद्र-ग्रहण के समय प्रदान किया था। दान देते समय महारानी, महाराज-पुत्र, महामात्य राज-गुरु, महापुरोहित, धर्म-प्रधान, महाप्रधान लेखी, सांधिविग्रहिक, प्रतिहार, दुष्ट-साध्य, महासामंत, अक्षपटलिक, प्रमत्तवार, अश्व-साधनिक, भांडागारिक तथा ग्राम-निवासी उपस्थित थे।

इन कार्य-कर्ताओं में दुष्ट-साध्य एक विचित्र-सा ओहदा मालूम होता है, परंतु जान पड़ता है, वह नगर का कोई पुलिस-अफ़सर, अर्थात् कोतवाल था, जो दुष्टों को साधकर रखता था, ताकि वे किसी प्रकार की बदमाशी न कर सकें। अन्य लेखों में दुष्ट-साध्य का रूप दुःसाध साधनिक पाया जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि इन दुःसाध्यों की कालांतर में एक जाति ही बन गई थी, जिसका वर्तमान रूप दुसाध या दुसाढ़ पाया जाता है, जिस तरह कि ठगों की एक जाति बन गई थी, जो गुरिंदा कहलाती थी। इस प्रकार के अपराध करनेवाली अन्य जातियाँ भी थीं; जिनको ग्रामों में प्रवेश करने के लिये निषेध था। कई लेखों में 'प्रतिनिषिद्ध चाटभट-प्रवेशः' का वाक्य मिलता है, जिससे स्पष्ट है कि चाटों व भटों को गाँव में प्रवेश करने के लिये मनाई थी।

जयसिंहदेव त्रिपुरी के कलचुरि-वंश के राजा थे। त्रिपुरी जबलपुर से ६ मील पर है। जयसिंहदेव ने यह दान कलचुरि-संवत् ९१८, अर्थात् सन् ११६१ ई० में दिया था। वह कलचुरि-राज का प्रायः अंतिम राजा था, क्योंकि इसके लड़के के समय में त्रिपुरी का विशाल राज्य, जो कभी हिमालय से मलाबार तक विस्तृत था, दूसरों के हाथ चला गया।

अवरुद्ध

[श्रीबाबू वृंदावनलाल वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०]



हृदय के औंटे जाने के बाद वहीं एक भाप बननी होगी। वहाँ समा न सकती होगी, इसलिये वह उस कोमल स्थान पर ठोकर देती होगी, जिसको सभी लोग आँख कहते हैं। आँख अपराध करती है, तब हृदय उस विशेष षड्यंत्र में भाग लेता है। यदि आँख उस ओर जाती ही नहीं, तो बेचारा हृदय उस बवाल में क्यों घुलता? परंतु गौण अपराधी होने पर भी हृदय को जो दारुण संताप भुगतना पड़ता है, क्या वह वास्तव में उसके योग्य है?

जब वह उमड़ता है, जब उसको असह्य पीड़ा होती है, तब उसको स्वच्छंद मार्ग क्यों नहीं दिया जाता? अथवा वह उसको क्यों नहीं मिल पाता? वह चाहता है, अकेले में बैठकर घुलूँ। इधर-उधर के बंधन और लाज-सकोच को तोड़-फोड़कर बह निकलूँ। उसी समय कोई अनिच्छा-प्रवर्तक आगंतुक पूछता है—"आप मजे में हैं?" और तुरंत ही दूसरी श्वास में अपने स्वार्थ के सवाल को सामने रखता है। मजे में हैं? हाँ, हैं। हाड़-मांस सब साबित है! देखनेवाले प्रश्नकर्ता के क्या आँखें नहीं हैं? फिर क्यों ऐसा व्यर्थ प्रश्न करता है? परंतु उसका एक स्वार्थ है। वह शिष्टाचार के आवरण में अपने स्वार्थ को मेरे ऊपर ढकेलता है। यदि वह उस आवरण को हटाकर अपने स्वार्थ को नंगे रूप में मेरे सामने खड़ा कर दे, तो जरा भी ग्लानि न हो, बल्कि मेरे जी में उसके लिये शायद कुछ आदर हो। मजे में हैं! मेरा हृदय अंतःसलिल की भाप से चट्टानों को पिघलाने के लिये उमड़ता है, सबके पैरों से कुचली जानेवाली धूल में अपने निचोड़ को निवास देने के लिये विह्वल है, परंतु कोई-न-कोई अपने अनामंत्रित प्रक्षेप से उसका वहीं रुद्ध कर देता है। इस दखल का भी कुछ ठीक है! हम अपने घाव को सेंकना चाहें, और ये ऐसे लोग हठ-पूर्वक फेंकें उसके ऊपर पत्थर! भोथरे और हिम-सदृश ठंडे!

कोई ऐसा अलग स्थान मिल जाय, जहाँ अपनी उमेठ को समझ सकूँ। जहाँ अपनी उमड़ को आजादी का मार्ग दे सकूँ।

एक आए और हँसने लगे। लगे हँसाने की भी चेष्टा करने। मैं क्या करता? आँसुओं का जलागार एक जगह बंद था। वह दीवारों में दरारें करके न-जाने क्या-क्या साबित करने के लिये संतप्त था, और मैं उन आगंतुक को हँसी के साथ सहानुभूति प्रकट करने के लिये मजबूर किया जा रहा था। हँसने की चेष्टा करने में मैं पागल-सा हो गया। मेरा पीछा जल्दी छूट गया, नहीं तो कह नहीं सकता कि क्या होता। वह जलागार अपनी दीवारों को नष्ट-भ्रष्ट करके फूट पड़ता, अथवा वहीं जलकर ऐसी दहक उत्पन्न

करता कि अपने कारागार को भस्मीभूत कर डालता।

मैं चुपचाप अकेला अपने तीर्थ-स्थान पर पहुँचा। वहाँ पहुँचने पर मुझको विजय का-सा हर्ष प्राप्त हुआ। यहाँ कोई नहीं आवेगा। कोई नहीं पूछेगा, 'मजे में हो?' पूरी स्वाधीनता पाषाण और धूल को हृदय-वारि से सींचने की वहाँ थी। कविता की भाषा में कहते, 'मोतियों को बिखेरने के लिये।' मोतियों को? उस सीधे-सादे उष्ण जल को, जो नेत्रों को थोड़ी देर के लिये किसी बरसाती नाले का उद्गम-स्थान बना देता है, कौन मोतियों की लड़ी कहता है? वह जो चट्टान पर गिरकर सूख जायगा? चाहे जिसके पैरों से कुचली हुई धूल को सानकर अपनापन ही खो देगा? उसको कहते हैं मोतियों की वर्षा!

वहाँ पहुँचकर वैसा ही हर्ष प्राप्त हुआ, जैसा कि आत्मघात करने की इच्छा रखनेवाले को सुबीते का एक क्षण प्राप्त होने पर होता होगा।

जैसे ही मैंने हृदय-रुद्ध अपनी जल-राशि को मार्ग ले लेने की छुट्टी दी कि उनका मुस्किराता हुआ चित्र आँखों के सामने आ गया! वे डबडबा गई थीं, परंतु वह चित्र दिखलाई पड़ सकता था। मैंने स्पष्ट रूप से कहा—"क्यों आ गए? यह भी न करने पाऊँगा?"

ऐसा जान पड़ा, मानो उन्होंने कहा हो—"न करने पाओगे।"

"क्यों?"

"क्योंकि हम कहते हैं।"

आँखों की डबडबाहट छलक गई। उनका चित्र स्पष्ट दिखाई देने लगा। अंतस्तल में रुँधा हुआ जलागार वहीं हिलोरें मारने लगा।

मैंने आँख मूँदकर निहोरा-सा करते हुए कहा—"इसको निकल हो जाने दो।" और मैंने चेष्टा की कि उनकी मुस्किराहट को न देखूँ।

मुस्किराहट तो उन्होंने रोक दी, या शायद अपने आप बंद हो गई। परंतु ओष्ठ-पल्लवों के कोनों पर सदा विलास करनेवाला अर्द्ध-स्फुट हास लुब्ध-सा दिखलाई पड़ा।

ऐसा जान पड़ा कि अपने सुंदर नेत्रों को चढ़ाकर उन्होंने कहा—"यहाँ इस तरह उन मोतियों को फेकने का तुमको अधिकार नहीं है।"

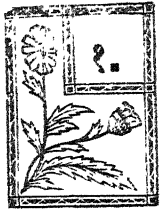
मेरी हिंसा-वृत्ति कुछ चेतन हुई। मैंने भी काँपते हुए गले से पूछा—"क्यों नहीं है?" तुरंत उत्तर दिया उस मूर्ति ने—"क्योंकि वे मेरे हैं। मेरी गोद उनका स्थान हो सकती है, ये चट्टानें और धूल नहीं।"

मैं सन्न हो गया। आँखें बिलकुल सूख-सी गईं। चारो ओर तारे-से छिटके हुए जान पड़े। टूटे-फूटे स्वर में मेरे कंठ से धीरे से निकला—"तब वह मेरी गोद कहाँ है, जिसको मैं तुम्हारे उन मोतियों से भर दूँ?"

ओफ्! मैं स्वेच्छा-पूर्वक रो भी न पाया।

कवि-चर्चा

[श्रीयुत व्रजरत्नदास बी० ए०, एल्-एल० बी०]



१. नीलकंठ या जटाशंकर—चिंतामणि, मतिराम, भूषण तथा जटाशंकर या नीलकंठ ये चारों भाई थे, ऐसा प्रसिद्ध है। एक सज्जन ने इसके विरुद्ध आंदोलन उठाया है, और येन केन प्रकारेण उसे सिद्ध हुआ मान रहे हैं। आपने एक मासिक पत्र में हाल ही में लिखा है कि नीलकंठ की कुछ कविता नहीं मिलती है, परंतु खोज में इनके एक ग्रंथ (अमरेश-विलास) का पता चला है, जो सं० १६६८ की रचना है। इसमें वीरराम तथा अमरेश के नाम आए हैं। अंतिम के लिये यह ग्रंथ लिखा ही गया था। हमारे संग्रह में पुराने बाँसी कागज के एक पत्रे पर एक कवित्त लिखा हुआ है, जिसके आरंभ तथा अंत में 'श्रीगणेशाय नमः' लिखा हुआ है। इस कवित्त में उदैभान की प्रशंसा है, जो इनके दूसरे आश्रयदाता ज्ञात होते हैं। सं० १६६८ वि० में रीवाँ की राजगद्दी पर अमरसिंह शोभायमान थे। इनके पूर्वजों में राजा वीरभानु तथा राजा रामचंद्र हुए, जिनमें प्रथम हुमायूँ के तथा दूसरे अकबर के समकालीन थे। रामचंद्र के पुत्र वीरभद्र थे, जो दो वर्ष राज्य कर सं० १६५१ में मर गए। इन्हीं वीरभद्र के पौत्र अमरसिंह थे। संभव है, इन्हीं के आश्रय में 'अमरेश-विलास' रचा गया हो। निम्न-लिखित कवित्त से यह ठीक पता नहीं लगता कि यह उदैभान कौन हैं, क्योंकि उसमें न किसी घटना का उल्लेख है, और न उदैभान का कोई अल्ल ही दिया गया है। क्या महाराजा जयसिंह द्वारा नियुक्त सिंहगढ़ का दुर्गाध्यक्ष उदैभान राठौर हो सकता है? कवित्त इस प्रकार है—

कसि तरकस बर कस परयो बैरिन्ह सो,
बड़ो सरकसि करकस ह्वै लरत है;
कर लै कमान मयदान में उदयभान,
कोटि कमनैतन के मानहिं हरत है।
सहमि-सहमि सूर परत समर माहँ,
खडगन मारे इमि सोणित झरत है;
'नीलकंठ' फागुन में फागु-सी बसत मानो,
चीर धर खेल में अबीर बिथरत है।

२. गोपीनाथदासजी—यह श्रीहितहरिवंशजी के तृतीय पुत्र ज्ञात होते हैं। इनकी 'श्रीराधारमणजी की आरती' प्राप्त हुई है, जो बहुत ही छोटी रचना है। इसमें चार पृष्ठ हैं, और प्रति पृष्ठ में ६ पंक्तियाँ हैं। अंत में रचयिता का नाम गोस्वामी गोपीनाथदास लिखा है। रचना-काल या लिपि-काल नहीं दिया है। इसमें इन्होंने गोपाल भट्ट तथा रूपसनातन स्वामियों के नाम दिए हैं। कुछ उद्धरण दिया जाता है—

मोर-मुकुट, पीतांबर सोहै, उर बैजंती माल;
शोभा उर बैजंती माल, प्राणधन श्रीराधारमणलाल।
कानन में मकराकृत कुंडल, बेंदी झलके भाल;
शोभा बेंदी झलके भाल, प्राणधन..........।

३. संकर्षण—मिश्रबंधु-विनोद में इनका नाम नहीं आया है। इनका एक पद प्राप्त हुआ है, जो नीचे दिया जाता है। इसकी भाषा से कवि राजपूताने का मालूम होता है—

राग रामकली

छबीली नागरी री, हरि सूँ मान न करिए ;
जाके रंग रँग्यो ब्रज सगरो वाकी मया की मया सूँ जीजै।
काहे कों बड़े बड़े नैंन भरत है अँसुअन अँचरा भाजै ;
'संकर्षन' प्रभु नील-कँवल-दल मधु कुंद रस पाजै।

४. हबीबखान—इनका भी नाम हिंदी-साहित्य-इतिहास में नहीं मिलता है। इनका भी एक पद मिला है, जो इस प्रकार है—

अजहूँ न आए स्याम, अजहूँ न आए पीव।
मोरे आनी तन में ॥ टेक ॥
हरी-हरी भूमि पर लाल-लाल तंबू ताने,
पावस को पेसखाना आइ परयो बन में।
बोलत है चातक मोर, पपीहा करत सोर,
कोकिला की कुहुक सुनि हूक उठी तन में।
कहत 'हबीबखान' कैसे राखौं थोर धान,
सूरवानै घाव कीन्हो पटखट रन में।

५. दासमनी—यह कोई कवयित्री हैं। इनकी रचना के केवल दो पत्र मिले हैं, जिनमें नौ पद हैं। इनमें श्रीकृष्ण, रामचंद्र तथा शिवजी के पद हैं। एक में कुछ ज्ञान भी है, पर अन्य सबमें भक्ति ही भरी है। दो पद उद्धृत किए जाते हैं—

राग मलार

सुधि लैहौ कब मोरी, सुनु प्रभुजी !
जब राचे दृग प्रेम हिए में तब हम बालक भोरी ;
वैस भई अब रंग रहसि कै प्रीति अचानक तोरी।
रूप दिखाइ कै मन हरि लीन्हौं कैटो नाम न बौरी ;
प्रेम के रस नेह पागे अब काहे बिष बोरी।
लोक के बस मोहि कीन्हों दीन्हीं न पंथ चकोरी ;
नित उठि खीकत संग सहेली काम-बिथा तन घेरी।
आसतोष संतोष हमारे दुजो न संघ सहारी ;
तो बिनु नाव को पार लगावै 'दासमनी' गति तोरी।

ये तन कहलै करिहो बौरे मन ॥ टेक ॥
मात-पिता कहैं हम तन सेया, त्रिया कहै पिय मेरो ;
जंबुक, स्वान तकैं यह तन कों का तन काग चुगैहौ।
धरति कहै हमहीं मिलि जैहै, पवन कहै मैं उड़ैहौं ;
अगिन कहै हम यह तन जरिबा, केतक बाँट करैहौ।
कंचन के घट अमृत चाही का घट बिषइ भरैहौ ;
यह रसना हरिनाम न लैहौ का मुख धूरि फँकैहौ।
जो गुरु तोहे रूप लखायो ताहि न जानत कहियो ;
'दासमनी' हरि-नाम-बिहीना जमपुर जाइ नसैहौ।

६. मीरन—इस नाम के एक कवि का नख-शिख सुना जाता है, और कुछ स्फुट कविता भी मिलती है। एक प्रति में ६८ दोहे मुझे मिले हैं, जिनमें अंतिम एक दोहे में मीरन का नाम आया है, पर अन्य किसी में भी नहीं है। अंतिम दो दोहे यहाँ उद्धृत किए जाते हैं—

बिरह दही पनघट गई, तपति तऊ न सिराय ;
भरी धरै सिर गागरी रीती ह्वै-ह्वै जाय।
'मीरन' बिछुरत ही पिया उलटि गयो संसार ;
चंदन, चंदा, चाँदिनी भए जरावनहार।

७. गणेश कवि—हिंदी-साहित्य के इतिहास में पं० रामचंद्र शुक्ल ने इनकी एक पुस्तक वाल्मीकि-रामायण श्लोकार्थ-प्रकाश का नाम दिया है। इसकी रचना अनुमानतः सं० १८५७ में हुई है। हस्त-लिखित हिंदी-पुस्तकों के संक्षिप्त विवरण में इनका समय सं० १८६२ दिया है, और इनकी तीन रचनाएँ लिखी हैं, जिनमें दो का रिपोर्ट का हवाला दिया है, पर प्रद्युम्न-विजय नाटक का नाम कहाँ से लिया गया है, इसका हवाला नहीं दिया हुआ है। हनुमत्-पचीसी का रचना-काल

सं० १६३१ है, और 'श्लोकार्थ-प्रकाश' महाराजा उदितनारायणसिंह के लिये लिखा गया था, जिनकी सं० १८६२ में मृत्यु हुई थी। अन्य दो की महाराज ईश्वरीनारायणसिंह के लिये रचना हुई थी। 'साहित्य-सागर' अर्थात् प्रद्युम्न-विजय नाटक सं० १६२१ के आषाढ़-शुक्ल २ गुरुवार को समाप्त हुआ था, इसलिये पूर्वापर विचार करने से इनका रचना-काल सं० १८६० से १६३५ तक मानना अधिक युक्ति-सम्मत है।

प्रद्युम्न-विजय नाटक की जो हस्त-लिखित प्रति मेरे पुस्तकालय में मौजूद है, उसमें १०५ पृष्ठ हैं, और प्रत्येक पृष्ठ में सत्रह पंक्तियाँ हैं। इसमें प्रायः चौदह सौ छोटे-बड़े पद हैं। बाँसी काग़ज़ पर मोटे अक्षरों में लिखा हुआ है। इसमें कहीं-कहीं जो अंश लिखने में छूट गए थे, वे हाशिए पर लिखे गए हैं। प्रति देखने से यह ज्ञात होता है कि इसे दो-तीन लेखकों ने लिखा है। यह नाटक सात अंकों में विभाजित है। इसमें कुल बातें कविता में हैं। नांदी मंगल-पाठ करता है, प्रद्युम्न प्रभावती से कहते हैं, इत्यादि सभी कविता में है। शायद पुस्तक-भर में दो-तीन जगह एक-एक पंक्ति वार्ता में है।

इसका कथा-वस्तु इस प्रकार है कि वज्रनाभ-नामक दैत्य के प्रबल होने से इंद्र श्रीकृष्णजी से सहायता माँगने आए। उन्हें बिदा करके श्रीकृष्णजी ने भद्र-नामक नट को, जो वर के कारण सर्वत्र जा सकता था, पुत्र-वधू खोजने को भेजा। उसने लौटकर वज्रनाभ की कन्या प्रभावती की बड़ी प्रशंसा की। नटों का छद्म वेश धारणकर भद्र के अधीनस्थ नट-समाज के साथ प्रद्युम्न कई भाई तथा वीरों के साथ वज्रनाभपुर को चले। इधर इंद्र ने एक हंसिनी को द्वारका भेजा, और उससे वज्रनाभ को नष्टकर उसकी पुत्री से अपने पुत्र प्रद्युम्न का विवाह करने को श्रीकृष्ण से संदेश कहलाया। यह संदेश पहुँचाकर हंसिनी वज्रनाभपुर गई, और कुछ हंसों के साथ दैत्यराज का दरबार किया। हंसिनी महल में पहुँची, और प्रभावती को प्रद्युम्न के सौंदर्य का वृत्तांत सुनाकर उसमें उसका प्रेम उत्पन्न किया। इसी बीच नटों के साथ प्रद्युम्न, गद और सांब वज्रनाभपुर पहुँच गए। भद्र ने पहले दिन शृंगी-शांता-विवाह तथा दूसरे दिन नल-कूबर का नाटक दिखलाकर वज्रनाभ को प्रसन्न किया। इसके अनंतर प्रद्युम्न ने हंसिनी की सहायता से अंतःपुर में जाकर प्रभावती से विवाह किया, और प्रभावती की सम्मति से उसकी दोनो छोटी बहनों से गद और सांब का विवाह किया। नारदजी से इन विवाहों का पता पाकर वज्रनाभ युद्ध को आया, और मारा गया। ये तीनो अपनी वधुओं के साथ द्वारावती लौट गए।

वास्तव में यह काव्य है, नाटक नहीं। केवल अंकों में विभाजित करने, पात्रों द्वारा कथित होने इत्यादि से यह नाटक कहा गया है। इसमें मात्रिक, वर्णवृत्त सैकड़ों प्रकार के छंदों के उदाहरण हैं। अनेक रस, भाव, विभाव, अलंकारादि के उदाहरण लाए गए हैं। इसीलिये इसका दूसरा नाम कवि ने साहित्य-सागर रक्खा है। उदाहरण के लिये दो-एक पद दिए जाते हैं—

सूछम ते सूछम कला के अनुरूप रूप ,
 नाभी कृद कंठ ह्वै कै नाद रूप ठानी है ;
चौथे पद आनन मैं करिकै नेवाम कही ,
 मद्दा महि-मंडल मैं महिमा बखानी है ।
सुषमा अनंत बोध्य बोधक प्रभाव करि ,
 भूपति जहाँ न जन भूरि सुख-दानी है ;
मो मुख-सरोज रंग-भूमि पर घूमि-घूमि ,
 सोई रस भाव तूमि नाचै वाक् बानी है ।

बसुमती

भूपति ऐसे, आवहु जैसे ;
राह यहाँ है, जानु यहाँ है ।
इत देखिए हे मित्र , वर साँब के सुचरित्र ।
जिनके सुभुज परधान, तिन कर चले जे बान ।
तिन ते गिरे भट-वृंद , कबि-बिरद बरनत छंद ।
 मरि बीर उद्दंड अखंड लजे ,
 रवि-मंडल भेदि बहेत गए ;
 रन-मंडल कै नभ-मंडल मैं ,
 हथियार लै बाम नछाय लए ।
 हरिवाजब भ्रात सबै परिवार ,
 महा भुजदंड प्रचंड ठए ;
 खर-दूषन घालि बिहाल कियो ,
 छन मध्य मैं दानव कोटि हए ।

८. सरदार कवि —यह ललितपुर-निवासी हरिजन के पुत्र तथा काशिराज महाराज ईश्वरीप्रसाद-नारायणसिंह के आश्रित थे । हस्त-लिखित पुस्तकों के संक्षिप्त विवरण में इनको आठ पुस्तकों का उल्लेख हुआ है, जिनके सिवा साहित्य-सरसी, हनुमत-भूषण तथा तुलसी-भूषण तीन नाम पं० रामचंद्र शुक्ल ने नए दिए हैं । आपने व्यंग्य-विलास के स्थान पर वाग्विलास और रामरत्नाकर के स्थान पर रामरत्नाकर नाम शायद भूल से दे दिया है । मेरे पुस्तकालय में इनकी दो ऐसी रचनाएँ हैं, जिनका नाम ग्रंथों में नहीं आया है । उनका विवरण दिया जाता है—

(१) ऋतु-विलास—खोज में षट्-ऋतु-वर्णन नाम जिस ग्रंथ का दिया गया है, उसके जो उद्धरण उसमें दिए गए हैं, उनमें कोई नाम नहीं दिया गया है । यह नामकरण स्वतः कर लिया गया है । खोज की प्रति में २४३ पद हैं, ऐसा लिखा गया है, पर जो प्रति मेरे पुस्तकालय में है, उसमें २०५ ही पद हैं । प्रथम और अंतिम कवित्त दोनो ही में एक ही है । प्रथम कवित्त के बाद ही यह दोहा है—

सेवक जिनके जानिए औघदसिंह खवास ;
तिनके हित सरदार किय रितु रुचि परब बिलास ।

११५ पदों में छ ऋतुओं का वर्णन है, और ६० पदों में सुरति, प्रोषितपतिका, जानकीजी, जमुनाजी, गंगाजी, काशी, हनुमानजी और शनिश्चर देवता का वर्णन है ।

(२) मानस-रहस्य—इसकी लीथो में छपी हुई जो प्रति मेरे पुस्तकालय में है, उसके मुख-पृष्ठ पर लिखा है कि कार्त्तिक कृष्ण ७ सं० १९०६ को प्रारंभ और कार्त्तिक शुक्ल ११ सं० १९०६ को समाप्त । यह इस ग्रंथ के छपने का समय है, और इसका रचना-काल इस प्रकार है—

फल अकास ग्रह आतमा, माघ शुक्ल बुधवार । (१९०९)

यह रीति-ग्रंथ है, और इसमें सभी काव्यांग का संक्षेप में विवरण दिया गया है । काव्य-लक्षण, प्रयोजन, आभास, शब्द-शक्ति, रस, नायिका-भेद, अलंकार, गुण तथा पिंगल सभी पर कुछ लिखा गया है । इस ग्रंथ में उदाहरण विशेषतः रामचरित-मानस से लिए गए हैं, और इसी कारण इसका ऐसा नामकरण हुआ है । यह छिआलिस पृष्ठ में समाप्त हुआ है,

और प्रत्येक पृष्ठ में २५ पंक्तियाँ हैं। उदाहरण—

"अथ तुल्य जोगिता-लच्छन—

तुल्य जोगिता तीनि बिधि लच्छन नाम प्रवान।

कहूँ वर्न-वर्न की। कहूँ अवर्न-अवर्न की। कहूँ वर्न-अवर्न की।

वर्न-वर्न जथा—

गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं—
मुदित भए पुनि-पुनि पुलक काहीं।

इहाँ सब वर्न हैं।

अवर्न-अवर्न जथा—

कमल कोक मधुकर खग नाना,
हरषे सकल निसा अवसाना।

इहाँ कमल-कोकादि अवर्न हैं। वर्न-अवर्न जथा—

बरवा—नित्य नेम करि अरुन उदय जब कीन;
निरखि निसाकर नृप-मुख भए मलीन।

नृप वर्न निसाकर अवर्न की तुल्य जोगिता।"

९. अज्ञात—अपह्नुति-संग्रह—मेरे पुस्तकालय में एक हस्त-लिखित प्रति है, जिसमें ६६ पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ में पंद्रह-पंद्रह पंक्तियाँ हैं। यह प्रति बिना घोटे हुए मोटे बाँसी काग़ज़ पर खूब काली स्याही से सुंदर अक्षरों में लिखी हुई है। पहला पृष्ठ श्रीगणेशाय नमः से शुरू होता है, और ५३वें पृष्ठ तक ७०१ बुझौवल खत्म हुए हैं। अंतिम बुझौवल १६ वीं पंक्ति में समाप्त हुई है, जो नियम के विरुद्ध अधिक है। ५४वें वर्क़ से बुझौवल के उत्तर आरंभ होते हैं। लेखक ने इसके बाद भी ६५ बुझौवल बनाए, जो उत्तर के पृष्ठों के हाशियों पर लिखे गए हैं। इनमें से केवल ३४ के उत्तर तो अंत में लिखे गए हैं, बाक़ी के नहीं। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह प्रति या तो रचयिता की निजी प्रति है, या उस प्रति की ज्यों-की-त्यों नक़ल है।

इस प्रति में रचयिता का नाम या रचना-काल नहीं दिया है। इसके आरंभ के सादे पृष्ठ पर किसी अन्य सज्जन ने कांठोआल हरूफ़ में लिखा है—"श्रीसंवत् १८६३ मि० अगहन-सुदी ६ वार बड़े सवेरे।" इससे यह ज्ञात होता है कि यह प्रति सवा सौ वर्ष से पहले की अवश्य है। इसका रचयिता संस्कृत-हिंदी का ज्ञाता तथा हिंदी-साहित्य का प्रेमी ज्ञात होता है। इसकी भाषा साहित्यिक है। उदाहरण—

चार खूँट डोलत फिरै बिना सीस बिन पाँव।
सकल जगत को बस कियो सिव रास है नाँव॥ १॥

काजल-सी उसकी सब देही,
नारिन की वह बाल-सनेही;
सकल अंग उसका रस-भीना,
पिय-सम्मुख उन मुख नहिं कीना॥ २॥

भाग-भरी हरषत परी, तन-मन अधिक उछाह।
रूप भूप दल साजिकै लीनी माँग बियाह॥ ३॥
माथ गहे पौढ़ी रहै, तनक न करवट लेह।
कनक बरन, तन पातरी, रतन भरी सब देह॥ ४॥

१०. गोपाल मिश्र—यह दक्षिण रायपुर के अंतर्गत कांकेर-राज्य के अधिपति नृहरिदेव के आश्रित थे, और भक्त-चिंतामणि-नामक ग्रंथ की रचना का आरंभ

"सुभ संवत सत्रह सै उनसष्ठहि
मारग मास उजागर मैं;
बसु बासर पुष्य बधै अवतार
बिचारि मति अति आगर मैं।"

हुआ, और ग्रंथ के अंत में एक सवैया में समाप्ति का समय इस प्रकार दिया है—

इंदु मही हग नाग मिलै,
करि संवत मान गुनौ बुधि ज्ञानौ ;
कार्तिक मास मिलै वसु वासर,
वार दिवाकर दर्शन मानौ ।
श्रीमद्भागवते दशकंध परीकृत
छंद 'गोपाल' बखानौ ;
भक्ति-चिन्तामणि नाम धरौ
हरि-केलि-चरित्र सुधा-रस-सानौ ।

इस ग्रंथ का जो प्रकाशित प्रति मेरे पास है, वह सं० १९[illegible] वि० का छपा हुआ है । यह काशी ही के हरिप्रकाश-यंत्रालय में छापी गई थी । इसका साइज वर्तमान आदि पत्रिकाओं का-सा है । इसमें २२२ पृष्ठ और प्रत्येक पृष्ठ में ३० पंक्तियाँ हैं । यह श्रीमद्भागवत का विविध प्रकार के मात्रिक तथा वर्णिक छंदों में पद्यानुवाद है । अनुवादक महोदय सुकवि, विद्वान् तथा सहृदय सज्जन थे । भाषा पर भी इनका अच्छा अधिकार था । भरती के तथा टूटे-फूटे, तोड़े-मरोड़े शब्द काम में नहीं लाए गए हैं । भावों तथा घटनाओं को प्रकट कर देने की शक्ति, अर्थात् अभिव्यक्ति, इनमें पूर्ण रूप से थी । उदाहरण—

अमित छबि छुबाजै, कोटि कंदर्प लाजै ;
मुकुट-मणि सुसोहैं, काम बामा विमोहैं ।
कुटिल भ्रुव विभंगी, कुंज-काडाभिरंगी ;
सजयति गिरिधारी, राधिका चित्तहारी ।

अलीला

विहसति अति वृषभानु कि नंदिनि ;
व्रजभूषण की विरहनिकंदिनि ।
नृत्तत नवघन स्यामल भामिनि ;
मानहुँ सघन घटनि बहु दामिनि ।

पद्धरिका

रोम-रोम प्रति प्रेमनि फूलीं ;
सबहिनि देह-दशा सब भूलीं ।
पुलकित प्रेम-मगन मन डोलैं ;
गद्गदरि गद-गद बोलनि बोलैं ।
एकनि झपट एक लपटावैं ;
एकनि भुज गहि एक फिरावैं ।
एकनि कंठ एक भुज मेलैं ;
एक मटकि हठि एकनि ठेलैं ।

११. गंगग्वाल—मिश्रबंधु-विनोद में इस नाम के कवि के विषय में केवल इतना ही लिखा है कि इनका नाम भक्तमाल तथा ध्रुवदास-कृत भक्त-नामावली में मिलता है । समय १६३५ वि० के लगभग बतलाया गया है । इनकी रचनाओं के विषय में कुछ भी नहीं लिखा गया है, यहाँ तक कि यह भी नहीं पता है कि इन्होंने गद्य लिखा था या पद्य । मुझे इनकी तीन रचनाओं की हस्त-लिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनका विवरण नीचे दिया जाता है—

१. दान-लीला—इसमें चौपाइयों की संख्या १८१ दी गई है, पर दो-दो चरणों ही पर अंक लगाए गए हैं । इसमें रचना-काल नहीं दिया है । लिपि-काल आषाढ़-बदी ४ सं० १८२६ है । इसमें वही साधारण दधि-दान का वर्णन है । उदाहरण—

सुनत बात राधा मुसुकानी ;
ललिता के उर की सब जानी ।
ललिता बीरी आगे कीनी ;
तब राधा अपने कर लीनी ।
दसन खंडि आधी तब खाई ;
आधी लै ललिताहि गहाई ।
गंग ग्वाल खे ता समझायो ;
नंद-कुँवर सों निकट बुलायो ।
जा करि सखा सँदेसो कीनौ ;
सब ग्वालिनि मिलि घेरो कीनौ ।

२. राधाजी की जन्म-लीला—इसमें भी

दान-लीला के समान दो-दो चरणों की ३२० चौपाइयाँ हैं। रचना-काल इसमें भी नहीं दिया है, पर लिपि-काल वही है। इसमें राधाजी का जन्म, बाल-लीला, शारीरिक वर्णन और कृष्णजी के साथ विवाह तथा प्रेम का वर्णन है। उदाहरण—

आठौ सखी सुचित्र सयानी;
वे राधा मन माँहि समानी।
बाँटि टहल आठो को दई;
सो रुचि मानि सबन ही लई।
प्रथमहिं ललिता सुंदर मानी;
(गो) रोचन रूप अधिक मन जानी।
मोर-पच्छ वस्त्र की भाँती;
सुचित सखो राधाहि सुहाती।
निकट रहैं पानन कों लीने;
श्रीराधा के करतरक दीने।
श्रीराधा कों तंबूल खवावै;
ललिता टहल महल की पावै।
दुतिए बहुरि बिसाखा सखी;
बिछुरत बहुरि प्रभा करि लखी।

३. मोती-लीला—आरंभ में केवल दो दोहे हैं, और बाक़ी कुल ३३६ चौपाई हैं। रचना-काल इसमें नहीं दिया है। लिपि-काल वही है। इसकी कथानक यों है कि कहीं से कुछ मोती वृषभानुजी के यहाँ आए, जो सब श्रीराधाजी ने ले लिए। इनका समाचार पा श्रीकृष्णजी ने इनमें से कुछ मँगवाए, पर इधर से कोरा जवाब मिला कि क्या वे पेड़ में फलते हैं, जो यों दे दिए जायँ। इस पर श्रीकृष्णजी ने मोती बोकर मुक्ता-द्रुम पैदा किया। व्रज में मोती-ही-मोती दिखलाई देने लगे। इस पर राधाजी ने मोती की क्यारी ही लगा दी। अंत में श्रीकृष्ण-राधा का मिलन हुआ, और उन पर मोती निछावर कर दिए गए। उदाहरण—

मुक्ता खेलि सुललिता दीने;
खोले स्याम जु सर भरि कीने।
दोऊ मुक्ता स्याम निहारे;
ते राधा की चितवनि पर वारे।
ललिता सटकि बाहर आई;
कुंज-केलि रस कह्यो न जाई।
दोउ मुक्ता-फलहू वन फले;
ते निगमन कैं उर मात्र मले।
रसिक जनन हिरदै महिं बोए;
प्रेम-वारि सींचत ही बोए।
मुक्ता दृष्टि न आवें कोई;
मुक्ता राधा मोहन दोई।

(आगामी संख्या में समाप्य)

गेहूँ

[श्रीराजेश्वरप्रसाद-नारायणसिंह बी० ए०]



संसार की वर्तमान आर्थिक दुरवस्था के—ख़ासकर नाज की सस्ती के, जिससे किसानों की दशा दिन-ब-दिन ख़राब होती जा रही है—कई, बहुत-से, कारण बतलाए जाते हैं। इनमें से एक ज़बर्दस्त और मुख्य कारण गेहूँ का आवश्यकता से अधिक पैदा होना है। गेहूँ संसार के मुख्यतम खाद्य पदार्थों में से है, और संसार के विभिन्न देशों के बीच इसका आयात-निर्यात बहुत दिनों से जारी है, अर्थात् संसार के व्यापार का यह एक मुख्य अंग रहा है, पर इधर कुछ वर्षों से—गत योरपीय महायुद्ध के बाद से—गेहूँ की बुवाई कुछ इतनी अधिक होने लगी है कि इसकी क़ीमत तो नीचे गिर ही गई है। इसका बिकना तक मुश्किल हो रहा है। नीचे के अंकों से मालूम होगा कि सन् १९२१ से १९३० तक के प्रत्येक वर्ष के अगस्त-महीने में संसार में गेहूँ का संपूर्ण स्टाक (Total) कितना था।

१९२१ का	अगस्त-मास	... ...	१०. २	(+ ०००, ०००)	मेट्रिक टन
१९२२	"	... ...	१०. ८	"	"
१९२३	"	... ...	११. १	"	"
१९२४	"	... ...	१२. ४	"	"
१९२५	"	... ...	९. ३	"	"
१९२६	"	... ...	१०. १	"	"
१९२७	"	... ...	११. ३	"	"
१९२८	"	... ...	१३. ४	"	"
१९२९	"	... ...	२१. ३	"	"
१९३०	"	... ...	१९. ०	"	"

उपरि-लिखित अंकों से गेहूँ-संबंधी अति उत्पादन-प्रवृत्ति का पता चलता है। इस संबंध में यह भी जान लेना आवश्यक है कि गेहूँ की उपज उन्हीं देशों में ज़्यादा हुई, जिनमें इसकी खपत और देशों की अपेक्षा कम है। इनमें मुख्य दक्षिण-अमेरिका है।

१९०९-१३ तथा १९२५-२९ के बीच रूस तथा बीज के काम में आए हुए गेहूँ को छोड़कर भी गेहूँ की उपज १० प्रतिशत अधिक हुई। निम्न-लिखित अंकों से यह ज्ञात होगा कि लड़ाई के पहले तथा उसके बाद के वर्षों में, संसार के मुख्य देशों में, जहाँ गेहूँ की खेती अधिक परिमाण में होती है, कुल कितनी एकड़ भूमि में गेहूँ की बुवाई हुई, तथा गेहूँ की उत्पत्ति का प्रति एकड़ क्या हिसाब रहा।

लड़ाई के दिनों में गेहूँ की बुवाई बहुत कम हो गई। पर युद्ध के समाप्त होते ही, कुछ ही वर्षों में, इसकी बुवाई पहले की अपेक्षा कहीं ज़्यादा होने लगी। सन् १९०९-१९१३ में अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा अर्जेंटाइन में कुल ३२० लाख हेक्टर (१ हेक्टर = २½ एकड़) भूमि में गेहूँ की बुवाई हुई थी, पर १९२६-२९ में यह बढ़कर ४६० लाख हेक्टर हो गई।

गेहूँ की इस उपज के बढ़ाने में सबसे अधिक

	कुल कितना ज़मीन में बुवाई हुई। हेक्टर (+ ०००, ०००)				प्रति हेक्टर कितनी पैदावार हुई। हिसाब क्विटल में दिया गया है ❀।	
	१९०९-१३	१९२४	१९२६-२९	१९२९	१९०९-१३	१९२६-२९
योरप (रूस छोड़कर)	२९.३	२७.१	२८.५	२८.१	१२.६	१२.७
बोल्शेविक रूस	२९.९	१८.६	३०.४	३०.६	६.९	७.२
अमेरिका (U. S. A.)	१९.०	२१.३	२३.७	२४.७	९.६	९.९
कनाडा	४.०	८.९	९.६	१०.२	१३.३	१२.४
आस्ट्रेलिया	३.१	४.४	५.४	५.७	८.१	७.१
अर्जेंटाइन	६.०	६.५	७.४	६.१	९.६	८.८

सहायता मशीनों से—ख़ासकर ट्रैक्टर से—मिली है। ट्रैक्टर से कई फ़ायदे हैं। बड़े-बड़े खेतों को बड़ी शीघ्रता के साथ यह, थोड़े ही दिनों में, जोत सकता है, चौबीस घंटे काम कर सकता है, साथ ही व्यय भी, प्राचीन हल तथा मजूरों की अपेक्षा, कम पड़ता है। पिछले कुछ वर्षों में मजूरों की मजूरी में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है, अतएव प्राचीन रीति से खेती करने में अब लाभ कम है और झंझट बहुत। किरासन तेल का मूल्य आपस की बढ़ाबढ़ी (Competition) के कारण निरंतर घटता जा रहा है, अतः ट्रैक्टर के चलाने का व्यय (Running cost) भी पहले की अपेक्षा कम हो गया है। सारांश यह कि प्राचीन रीति—बैल अथवा घोड़ों—से खेती करने के बदले ट्रैक्टर से खेती करना कहीं अधिक लाभदायक साबित हो रहा है, और इसकी लोक-प्रियता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। साथ ही उपर्युक्त सुविधाओं के कारण खेती में भी दिन-दिन वृद्धि हो रही है, तथा नाज सस्ता होता जा रहा है।

सन् १९२८ में अमेरिका ने कुल कितने ट्रैक्टर किस देश को बेंचे तथा उस देश में ही कितने ट्रैक्टरों की खपत हुई, इसका ब्योरा इस प्रकार है—

अर्जेंटाइन	४, ८१९
आस्ट्रेलिया	४, ४०९
कनाडा	२०, ९८३
फ्रांस	१, २८९
जर्मनी	३, ०४९
हंगरी	१, ०१८
इटली	२, ००८
योरपीय रूस	४, ९०६
अमेरिका (स्वयं)	९९, ४९१
मीज़ान—	१४१,६८९

ट्रैक्टर के साथ-साथ और मशीनों का भी—जो एक साथ ही कई काम, काटना, दावना इत्यादि कर सकते हैं—इस्तेमाल प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इनके कारण भी पैदावार के ख़र्चे में कमी हो गई है। नाज को सस्ता बनाने में इन्होंने भी हाथ बँटाया है।

मशीनरी के बढ़े हुए इस्तेमाल के साथ-साथ नए प्रकार के बीजों के आविष्कार से भी गेहूँ की खेती में वृद्धि हुई है। जिन स्थानों में कुछ दिन पहले गेहूँ उपजाना मुश्किल था, वहाँ भी अब गेहूँ की बुवाई होने लगी है। उदाहरण के लिये कनाडा को लीजिए। उसके उत्तरीय भाग में ग्रीष्म-काल कुछ इतने थोड़े दिन तक ठहरता था कि वहाँ गेहूँ की बुवाई हो ही नहीं

❀ एक क्विटल ११२ पौंड के बराबर होता है।

सकती थी, क्योंकि उसके पकाव के लिये काफ़ी वक्त नहीं मिलता था। पर अब एक ऐसे गेहूँ का आविष्कार हुआ है, जो १३० दिनों के बजाय १०० दिनों में ही पूरी तरह पककर तैयार हो जाता है। वहाँ इन दिनों इसी गेहूँ की बुवाई होती है, और ख़ूब होती है।

वैज्ञानिक खादों के व्यवहार-विस्तार के कारण भी गेहूँ की उपज में ख़ूब वृद्धि हुई है। कुछ वर्ष पहले इन खादों की जानकारी बहुत कम लोगों को थी, पर अब तो इस देश के भी ग्रामीण इनका उपयोग करने लगे हैं, और देशों की तो बात ही अलग है।

जहाज़ के भाड़े में वृद्धि न होने तथा गेहूँ पर की चुंगी ज्यों-की-त्यों रहने के कारण गेहूँ की रफ़्तनी ने भी, पिछले कुछ वर्षों में ख़ूब तरक़्क़ी की है। नीचे के अंकों को देखिए—

मीट्रिक टन में (+000,000)

	१९०९-१३	१९२६	१९२८
अर्जेंटाइन	२.४	२.०	५.३
आस्ट्रेलिया	१.१	१.४	१.६
कनाडा	२.०	६.८	६.६
भारतवर्ष	१.३	०.२	—०.००४
रूस	४.१	१.०	—०.२
अमेरिका	१.४	३.४	२.१

गत योरपीय महायुद्ध के बाद से रूस से गेहूँ का बाहर जाना बिलकुल ही रुक गया। योरप ने, जो पहले रूस से ही गेहूँ ख़रीदा करता था, दूसरे देशों से गेहूँ ख़रीदना शुरू कर दिया। कारण, रूस उन दिनों घर सँभालने में लगा था, साथ ही कृषि के—ख़ासकर गेहूँ के—संबंध में भी बेख़बर न था, बल्कि उपज बढ़ाने के लिये जिन सामग्रियों की आवश्यकता होती है, उन्हें जुटाने में संलग्न था। ट्रैक्टर को ही लीजिए। सन् १९२४ में वहाँ कुल ९,६०० ट्रैक्टर थे, पर सन् १९२८ में इनकी संख्या बढ़कर ३१,६०० हो गई। इससे यह साफ़ सिद्ध है कि वह अपने गेहूँ से सारे संसार के बाज़ार को भर देने के बंदोबस्त में लगा हुआ था, जैसा कि उसने आगे चलकर, बहुत अंशों में, किया ही।

गेहूँ की उपज में आवश्यकता से अधिक वृद्धि होने का यह परिणाम हुआ कि सन् १९२६ के पिछले हिस्से—यानी सितंबर के बाद—से गेहूँ का दर गिरना शुरू हुआ, और दो वर्षों—१९३१—तक गिरता ही चला गया, और आज भी इसके ऊपर उठने की कोई उम्मेद नज़र नहीं आती। गेहूँ संसार का मुख्यतम खाद्य पदार्थ है, नाजों में राजा है, अतएव इसकी महँगी और सस्ती का प्रभाव दूसरे नाजों पर भी पड़ता है, और इसके अनुसार ही उनके दर भी ऊपर-नीचे आते-जाते रहते हैं।

गेहूँ का बाज़ार आज जिस बुरी दशा को प्राप्त है, उस दशा को न पहुँच पाता, अगर (१) गेहूँ की उपज के साथ-साथ गेहूँ की माँग में भी उतनी ही वृद्धि होती। या (२) १९२८ में, जब कि संसार-भर में गेहूँ की उपज उम्मेद से कहीं ज़्यादा हुई थी, दर इतना नीचे गिर जाता कि उसके बाद के वर्षों में गेहूँ की बुवाई अधिक न होती, पर संसार के—और ख़ासकर भारतवर्ष के—किसानों की बदक़िस्मती से इन दोनो में से एक भी न हुआ। न तो गेहूँ की माँग में ही वृद्धि हुई, और न १९२८ में इसका दर ही ख़ूब नीचे गिर सका। कारण यह हुआ—

१९२८ में गेहूँ के व्यापारियों ने यह सोचकर कि अगले साल गेहूँ की क़ीमत अवश्य ही बढ़ेगी, उस साल गेहूँ का बेचना, अधिकांश हिस्सों में, स्थगित कर रक्खा। सर्व-प्रथम यह खपती कनाडा के व्यापारियों के दिमाग़ में उत्पन्न हुई, और उन्होंने 'कनाडियन ह्वीट पूल' आदि कई संस्थाओं की स्थापना करके गेहूँ के दर को नीचे गिरने से रोका। उस वर्ष की पैदावार को उन्होंने बेचने के बदले गोलों में जमा कर दिया। १९२६ से ही गेहूँ का दर गिरता आ रहा था, उन्होंने सोचा, आख़िर यह कब तक गिरता जायगा, अगले साल अवश्य ही उठेगा, और तब हम गेहूँ

बेचकर मालामाल हो जायँगे। कनाडा के अलावा और देशों ने भी कुछ ऐसा ही सोचकर गेहूँ के दर को नीचे गिरने न दिया। परिणाम यह हुआ कि गेहूँ की बुवाई में तनिक भी कमी न हुई। महाकवि भारवि ने कहा है—

सहसा विदधीत न क्रिया-
मविवेकः परमापदां पदं ;
वृणुते हि विमृश्यकारिणं
गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः।

"काम में जल्दबाज़ी न करनी चाहिए। अविवेक से सिर पर बड़ी-बड़ी आपदाएँ आ पड़ती हैं। भली भाँति सोच-विचारकर काम करनेवालों के गुणों पर मोहित होकर संपत्तियाँ स्वयं ही उनके पास आ पहुँचती हैं"—पर गेहूँ के उन व्यापारियों ने इस नीति के बिलकुल ही उलटा काम किया। नीचे के अंकों से मालूम होगा कि १९२६ से १९३० तक रूस और चीन को छोड़कर संसार के अन्य देशों में गेहूँ की कुल कितनी बुवाई हुई—

हेक्टर में (०००, ००० के)

१९२६	६२.१
१९२७	६४.६
१९२८	६७.८
१९२९	६६.४
१९३०	६८.८

सन् १९२९ में जो कुछ थोड़ी-सी कमी देख पड़ती है, उसका कारण उस साल फ़सल का अच्छा न होना है, न कि बुवाई की कमी।

उपर्युक्त बातों से यह साफ़-साफ़ परिलक्षित है कि ऊपर जिन कारणों का उल्लेख किया गया है, उनकी वजह से नाज के बाज़ार की जो दुरवस्था आज देख पड़ती है, वह अनिवार्य थी। १९२९ में यदि गेहूँ की कमी होती, तो शायद इस संकट का प्रतिरोध हो जाता, पर ऐसा न होकर ठीक इसके विपरीत हुआ। १९२८ का संचित गेहूँ तो बाज़ार में आ ही पड़ा, १९२९ और १९३० में इसकी ख़ूब बुवाई और उपज भी हुई। ख़ासकर रूस ने कुछ इतना गेहूँ लाकर बाज़ार में पटका कि उसकी कमी की रही-सही उम्मेद भी जाती रही। रूस की कृषि-संबंधी उन्नति की ओर ध्यान देते हुए यह आशा नहीं होती कि वह अपनी हरकत से अब भी बाज़ आवेगा, गेहूँ की बुवाई में कमी करेगा। बस, एक ही उम्मेद बाक़ी है। यदि गेहूँ की माँग (खपत) में पर्याप्त वृद्धि हो जाय, तो इसका दर ऊपर की ओर जा सकता है, नाज के व्यापार की दशा सुधर सकती है, पर इसके लिये यह आवश्यक है कि संसार "खायँगे गेहूँ, न तो रहेंगे गेहूँ।" के सिद्धांत पर चले *।

* League of Nations की रिपोर्टों के आधार पर।

प्रारंभिक भाषण*

[विद्यावाचस्पति श्रीइंद्रजी]



क बहुत पुरानी उक्ति है—

कालो वा कारणं राज्ञः
राजा वा कालकारणम् ;
इति ते संशयो मा भूत्
राजा वै कालकारणम् ।

कवि कहता है, समय राजा को बनाता है या राजा समय को बनाता है ? इस प्रश्न की कोई गुंजायश ही नहीं, क्योंकि यह तो अत्यंत स्पष्ट है कि राजा ही समय को पैदा करता है । यह सदियों पुरानी उक्ति है । उस युग में राजा समय का निर्माता समझा जाता था, परंतु वर्तमान काल में कम-से-कम स्वतंत्र देशों के संबंध में पुरानी उक्ति को निम्न-लिखित रूप में सत्य माना जा सकता है—

पत्रं वा कारणं राज्ञः राजा वा पत्रकारणम् ;
इति ते संशयो मा भूत् पत्रं वै राजकारणम् ।

स्वाधीन देशों में समाचार-पत्र ही राजों और राज-सभाओं के निर्माता बनते जा रहे हैं । यह स्वाधीन देशों की बात हुई । जो देश स्वाधीन नहीं हैं, उनमें स्वाधीनता की दीपक-शिखा को बुझने से बचानेवाले समाचार-पत्र ही हैं । जिन समाचार-पत्रों का इतना ऊँचा स्थान है, जो राज-निर्माता और स्वाधीनता के दूत की पदवी के योग्य हैं, उनके संपादकों की सभा का अध्यक्ष किसी ऐसे महानुभाव को बनाना चाहिए था, जो वयोवृद्ध और अनुभव-वृद्ध हो । मैं तो अपने को अभी नवयुवकों में गिनता हूँ । हिंदी-संसार में ऐसे आचार्यों की कमी नहीं है, जिनका अनुभव मुझसे दसगुना अधिक है, जो हिंदी-साहित्य के गुरु समझे जाते हैं, और जिनके हाथों दर्जनों सामयिक पत्र संपादित हो चुके हैं । इन सेनापतियों की उप-स्थिति में एक सिपाही का अध्यक्ष-पद के लिये चुना जाना उचित नहीं है, यह विचारकर ही मैंने स्वागत-समिति के महानुभावों की प्रथम आज्ञा को मानने से क्षमा-याचना-पूर्वक इनकार कर दिया था, परंतु जब मंत्री महोदय के रूप में जीता-जागता आदेश आ पहुँचा, और अपील दायर होने की भी कोई संभावना न दिखलाई दी, तो लाचार होकर सिर झुका देना पड़ा । अस्तु । जब फँस गए, तो पर फटकारने से क्या लाभ ? अब तो मेरा यही निवेदन है कि स्वागत-कारिणी के सदस्य और अन्य उपस्थित महानुभाव मेरा सादर अभिनंदन स्वीकार करें, और इस उत्तर-दायित्व-पूर्ण स्थान की आन को निभाने में मेरी सहायता करें ।

प्रतिष्ठित पेशों के दो प्रकार

कुछ समय पूर्व पश्चिम में तीन पेशे प्रतिष्ठित समझे जाते थे । उन तीनो को अन्य रोज़गारों से ऊँचा समझा जाता था । वे पेशे वकील, डॉक्टर और पादरी के थे । गत शताब्दी के अंतिम भाग और इस शताब्दी के व्यतीत काल में पत्र-संपादन-कला ने इतनी उन्नति की है कि अब पत्रकार का पेशा भी उसी कोटि में रक्खा जाता है । अब तीन की जगह चार प्रतिष्ठित पेशे हो गए हैं ।

इन चारो प्रतिष्ठित पेशों को दो भागों में बाँटा जा सकता है । यद्यपि वकील का कर्तव्य न्यायाधीश को सत्य तक पहुँचने में निरपेक्ष सहायता देना है, तो भी वकील एक ही पक्ष की ओर से पुरस्कार लेकर खड़ा होता है, वह उसी पक्ष का समर्थन करता है । दोनो पक्ष के वकील मामले को अपनी-अपनी ओर खींचते हैं । सत्य किधर है, इसको परीक्षा

---

* अखिल भारतवर्षीय हिंदी-संपादक-सम्मेलन, इंदौर में अध्यक्ष के पद से पठित ।

न्यायाधीश पर ही छोड़ देनी पड़ती है। एक वकील को सत्य तक पहुँचने में न्यायाधीश का सहायक कहा जा सकता है, परंतु उसे पक्षपात-हीन दृष्टि से अभियोग का निर्णायक नहीं कह सकते। पादरी का कर्तव्य दूसरी ही तरह का है। उसे सब कार्य केवल सार्वजनिक हित के लिये करने चाहिए। धर्माचार्य का धर्म परोपकार है, लोक-हित है। धर्माचार्य को भी पेट भरना पड़ता है, इस कारण उसे पुरस्कार दिया जाता है, यही उसकी आजीविका है, और यही उसका धर्म है। वह वकील की तरह सत्य को पहले उलझाकर फिर जज द्वारा सुलझाने का सहायक नहीं बन सकता, उसे तो स्वयं ही सत्य की तलाश और सत्य का प्रकाश करना चाहिए। वह वकील की भाँति दूसरे प्रश्न की सत्यता को जानता हुआ भी चुप नहीं रह सकता। उसे तो पूरा सत्य ही कहना चाहिए।

पत्रकार या संपादक का पेशा पादरी या धर्माचार्य की कोटि में है, वकील की कोटि में नहीं। पत्रकार को सत्य का अन्वेषक और प्रकाशक होना चाहिए, सत्य को उलझानेवाला नहीं। तभी वह उस उपाधि के योग्य हो सकता है, जो मैंने उसे अपने भाषण के प्रारंभ में दी है। सत्य के बल पर ही वह राजा का कारण बन सकता है। जो पत्रकार अपने को केवल एक पक्ष का वकील बनाकर दूसरे पक्ष को जान-बूझकर भुलाता या तिरस्कृत करता है, वह पत्र-संपादन के कार्य पर लांछन लगाता है। इस प्रकार पत्रकार जज भी है, और उपदेशक भी। उसे दोनो के कार्य संपादित करने पड़ते हैं।

पश्चिम में पत्रकारों का एक दूसरा संप्रदाय भी है। वह पत्र-संपादन और वकालत को एक-सा समझता है, जिसने फ़ी सदी उसका राग गा दिया। धनियों द्वारा संचालित समाचार-पत्रों में संपादन-कार्य करनेवाले सज्जनों में अधिकांश वकील पत्रकारों का होता है। दुर्भाग्य-वश हमारे देश में ऐसे संपादक और उप-संपादक पैदा हो गए हैं, जिनकी शक्तियाँ किसी भी पक्ष का समर्थन करने के लिये तैयार रहती हैं। वे लोग संपादन को अपना पेशा बतलाते हैं, परंतु उन्हें यह न भूलना चाहिए कि पेशे का अभिप्राय आत्मा की मृत्यु नहीं है।

समाचार-पत्र का निकालना भी एक व्यापार बनता जा रहा है। धनी पत्र-संचालकों और संचालक कंपनियों की प्रतिस्पर्धा ने पत्र-संचालन को वैसा ही व्यापारिक बना दिया है, जैसा कि एक कपड़े के कारख़ाने को चलाना है। इसमें समाचार-पत्रों का शरीर बढ़ गया है, परंतु आत्मा के मरने की संभावना है। अब संभवतः इस प्रवृत्ति को बिलकुल तो बदला नहीं जा सकता, क्योंकि अब धनियों के हाथों से समाचार-पत्रों को छीनना असंभव है, परंतु इतना तो होना ही चाहिए कि पत्र-संचालन में व्यापार अत्यंत गौण रहे, वह केवल साधन-रूप में रहे। असली उद्देश्य लोक-हित और लोक-सेवा हो। समाचार-पत्र प्राचीन व्यास मुनियों के स्थानापन्न हैं। वह सर्वसाधारण के गुरु हैं। उन्हें इस स्थान से गिराकर केवल व्यापार बना देना मोतियों की माला को जूते के तले में बाँधने के समान है। यदि पत्र-संपादक अपने को वकील समझकर केवल एक पक्ष के समर्थन में अपनी कृत-कृत्यता समझे, तो भारी अनर्थ होने की संभावना रहती है। एक वकील अपनी एकतरफ़ा दलीलें जज के सामने पेश करता है। जज का विवेक वकील से बढ़ा हुआ रहता है, वह वकील की डाली हुई उलझनों को सुलझा देता है, परंतु पत्र-संपादक अपने मुक़द्दमे की बहस सर्व-साधारण जनता के सामने करता है, जो न क़ानून जानती है, और न अधिक छान-बीन कर सकती है। जनता का हित वही संपादक कर सकता है, जो अपने को वकील न समझकर न्यायाधीश समझे।

संपादक की कठिनाइयाँ

व्यापारिक पत्र-संपादन तो शाही राह पर चलने के समान है। स्वामी को प्रसन्न रक्खो, और पाठकों को दिल-लगती बात कहो, पत्र सफलता-पूर्वक

चलना आयगा। परंतु जो संपादक सत्य का अन्वेषक बनकर मैदान में आता है, उसका मार्ग कंटकाकीर्ण है। उसे तो सत्य कहना है। सत्य कड़ुआ भी हो सकता है। कड़ुए को सहने की शक्ति सबमें नहीं है, सत्य-प्रेमी संपादक को राजा और प्रजा दोनों से ही डर है, उसका मार्ग तो काँटों और झाड़ियों से भरा हुआ है। उसे अपनी सम्मतियाँ प्रकाशित करने के कारण अनेकों कष्ट सहने पड़ते हैं। कभी-कभी सत्य कहने की इच्छा रखनेवाले संपादक को पत्र-संचालकों तक को असंतुष्ट करना पड़ता है। क़ानून के संकट अलग हैं। भारतवर्ष-जैसे देश में तो पत्र-संपादन करना साँप से खेल करने के समान है। ऑर्डिनेंस और क़ानून की तलवार सिर पर टँगी रहती है, हाथ में क़लम है, मेज़ पर काग़ज़ है, जिस पर शब्द के पीछे शब्द बनता जाता है, परंतु लेखक की आँखें काग़ज़ पर नहीं हैं, वे तो सिर पर टँगी हुई तलवार पर लग रही हैं। यह भारतवर्ष के पत्रकारों की दशा है। उन बेचारों के पास इतना धन या बल नहीं होता कि सब काँटों तथा कठिनाइयों का सामना कर सकें। कुछ एक भाग्यशाली या चलते-पुर्ज़े संपादकों को छोड़कर बहुत थोड़े ऐसे हैं, जो दृढ़ता के साथ निर्धारित मार्ग पर चलते रह सकें। उन्हें या तो सत्य का ख़ून करना पड़ता है, या रोज़ी का। सत्य और रोज़ी दोनों का चिरकाल तक साथ रह जाना असंभव-सा प्रतीत होने लगता है।

संघ-शक्ति की आवश्यकता

पत्रकार के पेशे को पवित्र समझनेवाले पत्रकारों का जीवन गिरावट और मृत्यु से केवल एक उपाय से बच सकता है, और वह है संघ-शक्ति। दो मार्ग तो सरल ही हैं। या वह गिरकर आजीविका की रक्षा करें, या संपादन को छोड़कर आत्मा की रक्षा करें। तीसरा मार्ग, जिस पर चलकर कर्तव्य-भ्रष्ट हुए विना आत्मा की रक्षा की जा सके, यह है कि पत्रकार अपने को दृढ़ संघटन में बाँधें। जो शक्ति अकेले को आसानी से गिरा सकती है, वह समूह को प्रयत्न करके भी नहीं गिरा सकती। केवल संकटों से बचने के लिये ही पत्रकारों को संघ-शक्ति की आवश्यकता हो, ऐसा नहीं है। अपनी कार्य-क्षमता और शक्ति को बढ़ाने के लिये भी इकट्ठा होना उनके लिये उपयोगी और अनिवार्य है। समाचार-पत्रों से संबंध रखनेवाली बीसियों समस्याएँ ऐसी हैं, जिन्हें केवल वे ही लोग हल कर सकते हैं, जिनको संपादन-कला का पुराना अनुभव है। पश्चिम में पत्र-कला बहुत वृद्धि कर चुकी है। वहाँ समाचार-पत्रों को राजा और व्यवस्थापिका सभा का प्रतिद्वंद्वी समझा जाता है। इसका जहाँ यह कारण है कि वहाँ के पत्रों का व्यक्तिगत प्रभाव बहुत बढ़ा हुआ है, वहाँ साथ ही यह भी कारण है कि सभी देशों में समाचार-पत्रों ने संघ-शक्ति द्वारा अपनी उपयोगिता और कार्य-क्षमता को बहुत बढ़ा लिया है। यदि वकील और डॉक्टर बनने के लिये शिक्षण की आवश्यकता है, तो किसी प्रकार की विशेष शिक्षा के विना ही संपादक बनना कैसे संभव है? परंतु संपादन-कला की शिक्षा का प्रबंध कौन कराए? जिसके दर्द होगा, वही तो दवा कराएगा। जिन्हें शिक्षित सहायकों की आवश्यकता होगी, वे ही तो संपादन-कला का शिक्षणालय बना या बनवा सकेंगे संपादक-संघ ही संपादन-कला के शिक्षणालय की स्थापना में अगुआ हो सकता है, अन्य कोई संस्था नहीं।

हिंदी का सामयिक साहित्य

हिंदी के सामयिक साहित्य की वर्तमान परिस्थिति पुकार-पुकारकर कह रही है कि संघ-शक्ति की यदि किसी को अन्य सबसे अधिक आवश्यकता है, तो वह हिंदी के सामयिक पत्रों को है। भारतवर्ष में वर्तमान रूप में समाचार-पत्र का जन्म १७८० ई० में हुआ। उस साल बंगाल से एक अँगरेज़ी गज़ट प्रकाशित होने लगा। लोक-भाषा में पहला प्रभावशाली पत्र 'बंबई-समाचार' के नाम से १८२२ ई० में प्रकाशित होने लगा। हिंदी के भाग्य और भी पीछे खुले। कहा जाता है कि हिंदी का सबसे

प्रथम सामयिक पत्र सन् १८४५ ई० में 'बनारस-समाचार' के नाम से बनारस से निकला। उस घटना को ८८ वर्ष व्यतीत हो गए। इन ८८ वर्षों में संसार के साथ-साथ हिंदी के सामयिक साहित्य ने भी बहुत-सी उन्नति की है। इस सारे समय को पत्रों की प्रगति की दृष्टि से हम तीन युगों में बाँट सकते हैं। पहले युग को हम साहित्य-युग कह सकते हैं। उस समय के मासिक तथा साप्ताहिक पत्रों का मुख्य विषय साहित्य होता था। यदि विश्व के समाचार दिए जाते थे, तो वह साहित्य के सहायक बनकर ही प्रवेश पा सकते थे। समाचारों का स्वाधीन मूल्य बहुत ही कम था। न पढ़नेवालों के दिलों में समाचारों के लिये असह्य हूक थी, और न लिखने-वालों के मस्तिष्क पर सामयिक घटनाओं का साम्राज्य था। सामयिक पत्र साहित्य के लिये पढ़े जाते थे। साहित्य से प्रेम रखनेवाले लोग परिवर्तनशील संसार की ओर से बहुत कुछ निश्चित थे। कवि-वचन-सुधा, मित्र-विलास, सार-सुधा-निधि, ब्राह्मण-समाचार आदि पत्रों को हम इसी कोटि में रख सकते हैं। धीरे-धीरे समय अपना प्रभाव दिखाने लगा। देश के वातावरण में हलचल-सी मचने लगी। उस हलचल का असर कवियों के कुटीरों और साहित्य-सेवा के मंदिरों में भी होने लगा। पढ़नेवाले पूछने लगे कि इस सप्ताह का क्या समाचार है। इस माँग के उत्तर में पत्र-संचालकों के लिये आवश्यक हो गया कि वे सामयिक पत्रों को समाचार-पत्र का रूप दें। तब दूसरा युग आया। उस युग को हम 'मिश्रित युग' के नाम से पुकार सकते हैं। उस युग के समाचार-पत्रों में साहित्य और समाचार भी बहुत कुछ मिश्रित होने लगा। गाँव के बनिए की दुकान आपने कभी देखी होगी। उसमें सब कुछ बिकता है। आटा, दाल, नमक, मिर्च, कपड़ा, जूता, ताला, स्लेट, पेंसिल आदि। कोई ऐसी आवश्यक वस्तु नहीं, जो उस विश्व-भंडार में न मिल सके। उस युग के पत्र विश्व-भंडार ही होते थे। बनिए की दुकान की तरह उनमें सभी कुछ मिल जाता था। हिंदी-बंगवासी, भारतमित्र, वेंकटेश्वर-समाचार आदि पुराने पत्र इसी कोटि के थे। शिक्षा-विस्तार और राजनीतिक जागृति के कारण देश की दशा में निरंतर परिवर्तन होने लगा। कोरे समाचारों की माँग बढ़ने लगी। साधारण घटनाओं को पेचीदा साहित्यिक रूप में पढ़ना लोगों को अखरने लगा। उनको जो ललित भाषा में संसार को घटनाओं को पढ़ने से ऊबने लगा। पाठकगण समाचारों के स्थान पर लंबे-लंबे साहित्यिक लेखों के आक्रमण को नापसंद करने लगे। तब तीसरे युग का उदय हुआ। वह वर्तमान युग है। इस युग की यह विशेषता है कि सामयिक पत्र विषय के विभाग से बँट गए हैं। समाचार देना मुख्यतः दैनिक पत्रों का काम हो गया है। प्रथम युग के प्रधान विषय साहित्य को मासिक पत्रिकाओं ने अपना लिया है। साप्ताहिक पत्रों को हम मध्यम युग का प्रतिनिधि कह सकते हैं। उनमें सभी चीज़ों का मिश्रण रहता है। इस प्रकार सामयिक साहित्य में श्रम-विभाग के सिद्धांत के आ जाने से नवीन युग की उपज हुई है। श्रम-विभाग जहाँ उन्नति का फल है, वहाँ भावी उन्नति का साधन भी बन सकता है। हिंदी के सामयिक पत्रों का वर्तमान श्रम-विभाग पाठकों की मनोवृत्तियों के विकास का परिणाम है, और साथ ही वह भविष्य में होनेवाली उन्नति का कारण भी हो सकता है। मैं 'हो सकता है' इसलिये कहता हूँ कि यह आवश्यक नहीं कि मनुष्य परिस्थिति से सदा लाभ उठा सके। वह अवसर को खो भी सकता है। वर्तमान परिस्थिति से हिंदी का पत्र-जगत् कैसे पूरा लाभ उठा सकता है? यही मुख्य विचारणीय विषय है। आइए, हम उस परिस्थिति का गंभीरता से विवेचन करें, और फिर देखें कि हम उससे कैसे लाभ उठा सकते हैं।

वर्तमान परिस्थिति

सभ्य-संसार ने समाचार-पत्रों का नाम मनुष्य-समाज के भविष्य का निर्माण करनेवाली शक्तियों

की सूची में लिख दिया है। ऐसी कोई शक्ति नहीं, जो दूसरी शक्ति के संपर्क में आए, और उस पर कोई प्रतिक्रिया पैदा न करे। जो प्रतिक्रिया को पैदा न करे, वह शक्ति नहीं। मनुष्य-समाज के भविष्य का निर्माण करनेवाली कई शक्तियाँ हैं। उनमें से राज-नीति, व्यापार, धर्म आदि के नाम तो सभी जानते हैं, और ये शक्तियाँ पुरानी हैं, परंतु कई शक्तियाँ नई भी हैं, जिनका प्रभाव प्रतिदिन बढ़ता जाता है। वे सुनने में बहुत साधारण हैं, परंतु प्रभाव में बहुत गंभीर हैं। रेल, तार, टेलीफ़ोन, सिनेमा, हवाई जहाज़, बेतार का तार इत्यादि उन शक्तियों के नाम हैं। ये शक्तियाँ राजनीति, धर्म और व्यापार पर बहुत गहरा प्रभाव डालती हैं, और उनसे प्रभावित भी होती हैं। इन दो प्रकार की शक्तियों के मध्य में एक ऐसी शक्ति है, जो दोनो पर प्रभाव डालती और दोनो से प्रभावित होती है। वह शक्ति समाचार-पत्रों की है। वर्तमान युग में समाचार-पत्रों का मनुष्य-जाति पर कैसा विस्तृत प्रभाव पड़ता है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। पत्रकारों की परिषद् में उसका कथन तो अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बननेवाली बात होगी। जिस सिक्के को दुनिया मान रही है, उसे कहना उस प्रभाव के महत्त्व को कम करना है। मुझे तो यहाँ यह दिखाना है कि वर्तमान समय की अन्य शक्तियाँ समाचार-पत्रों पर कैसा प्रतिक्रिया पैदा कर रही हैं।

इस संबंध में निम्न-लिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं—

(१) मनुष्य-जाति में परिवर्तन की हलचल ने जिज्ञासा और उत्सुकता को बहुत बढ़ा दिया है। परिवर्तन-काल में प्रत्येक मनुष्य शीघ्र-से-शीघ्र जानना चाहता है कि क्या हुआ? परिवर्तन कैसा ही हो, राज्य-परिवर्तन या धर्म-परिवर्तन, वह उत्सुकता को बढ़ाता है। उसे जानने की उत्सुकता की शांति का उपाय समाचार-पत्र है। गत शताब्दी में समाचार-पत्रों की इतनी अधिक वृद्धि का एक प्रधान कारण यह है कि गुज़री हुई शताब्दी परिवर्तनों से भरपूर थी। वह क्रांतियों की शताब्दी कही जा सकती है। परंतु क्या परिवर्तन-युग समाप्त हो गया? नहीं, वह जारी है। मनुष्य-जाति के भिन्न-भिन्न भागों में ज़ोरदार क्रांतियाँ पैदा हो रही हैं। उत्सुकता और उसके साथ ही समाचारों की जिज्ञासा बढ़ रही है। समाचार-पत्र मनुष्यों के लिये प्रतिदिन अधिकाधिक उपयोगी होते जा रहे हैं।

(२) शिक्षा के विस्तार के साथ समाचार-पत्रों की माँग का बढ़ना आवश्यक है। योरप और अमेरिका के पत्रों की अत्यधिक ग्राहक-संख्या को देखकर हम लोग प्रायः आश्चर्यित होते और अपने भाग्यों को कोसते हैं। पाठक-संख्या में इतने बड़े भेद का कारण शिक्षितों की संख्या में भेद ही है। योरप और अमेरिका में हरएक व्यक्ति शिक्षित होना चाहिए—भारत में १०० पीछे ७ भी मुश्किल से। इतने भेद के रहते हमारी और उनकी ग्राहक-संख्या एक-सी कैसे हो सकती है? ज्यों-ज्यों शिक्षा का विस्तार होता है, त्यों-त्यों समाचार-पत्रों की माँग बढ़ती है।

(३) समाचार पहुँचने की आसानी के कारण समाचार-पत्रों की उपयोगिता और उत्सुकता को शांत करने की शक्ति बढ़ती जाती है। तार के बल और बेतार के तार ने समाचारों की दृष्टि से दुनिया को एक कर दिया है। जो पत्र इन साधनों से अधिक लाभ उठा सकेंगे, वही लोक-प्रिय हो सकेंगे, और अपने प्रतिस्पर्धियों को परास्त कर सकेंगे।

(४) रेल, मोटर, जहाज़ और हवाई जहाज़ आदि वाहनों ने पाठकों तक समाचार-पत्रों का पहुँचाना बहुत आसान कर दिया है। विज्ञान की सहायता से वाहनों में प्रतिदिन उन्नति होती जा रही है। स्थान की लंबाई-चौड़ाई को विज्ञान के नए-नए आविष्कारों ने बहुत ही संकुचित कर दिया है। समाचार-पत्रों के विस्तार को वाहन-कला की उन्नति ने बहुत बड़ी सहायता दी है।

इन उपर्युक्त विचारों से प्रतीत होता है कि वर्तमान समय की परिस्थिति समाचार-पत्रों के प्रभाव को बढ़ानेवाली है। यदि सब शक्तियों का पूरा सदुपयोग किया जाय, तो पत्रों की प्रतिदिन वृद्धि हो सकती है।

अन्य सभ्य देशों की दशा के साथ भारत की दशा की तुलना करें, तो प्रतीत होगा कि जहाँ भारत में वे सब चीज़ें न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान हैं, जो समाचार-पत्रों के प्रभाव को बढ़ानेवाली हैं, वहाँ इतना भेद भी है कि शिक्षा और मूल-धन की कमी के कारण समाचार-पत्रों की माँग और उपज दोनो पर ही बुरा प्रभाव पड़ा है। भारतवर्ष की शिक्षा के आँकड़े तो अब जगत्-प्रसिद्ध हैं, क्योंकि उन्हें एक ओर तो भारतवर्ष की स्वराज्य के लिये अयोग्यता सिद्ध करने के लिये और दूसरी ओर ब्रिटिश जाति के शानदार दावों के ढोल की पोल खोलने के लिये हज़ारों बार दुहराया जा चुका है। समाचार-पत्रों की माँग कम होने से उनमें इतना अधिक मूल-धन भी नहीं लगाया जाता कि विज्ञान की पूरी सहायता ली जा सके। अधिक मूल-धन के अभाव से समाचार प्राप्त करने, छपे हुए पत्र के शीघ्र-से-शीघ्र ग्राहकों तक पहुँचाने और पत्र को उत्तम-से-उत्तम मशीनों द्वारा छापकर तैयार करने के साधनों को भारत के समाचार-पत्र अभी तक काम में नहीं ला रहे। यद्यपि गत शताब्दी में भारत के समाचार-पत्रों ने भी पर्याप्त उन्नति की है, तथापि वह अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है।

प्रेस-संबंधी क़ानून

उपर्युक्त कठिनाइयों के अतिरिक्त भारतीय समाचार-पत्रों के लिये जो सबसे बड़ी दिक़्क़त है, वह प्रेस-क़ानून की है। भारत की विदेशी सरकार लोक-प्रिय समाचार-पत्रों को अपना शत्रु समझती है, और स्वच्छंदता से नहीं चलने देना चाहती। स्वाधीन पत्र उन्नति के सहायक होते हैं, बाधक नहीं। इस कारण किसी भी उन्नतिशील शासकवर्ग को स्वाधीन पत्रों से डरने की आवश्यकता नहीं। परंतु दुर्भाग्य-वश भारत की राजनीतिक परिस्थिति अस्वाभाविक है, इस कारण राज्य को समाचार-पत्र शत्रु के रूप में दिखाई देते हैं। गत बीस वर्षों में ब्रिटिश सरकार ने किसी-न-किसी रूप में प्रेस-संबंधी क़ानून को जीवित रक्खा है। कभी क़ानून के रूप में, तो कभी ऑर्डिनेंस के रूप में। रूप भिन्न होते रहे हैं, परंतु प्रेस के गले में फाँसी अवश्य रही है। वह फाँसी समाचार-पत्रों की स्वाभाविक उन्नति की शत्रु है। उसने इस पौधे को पनपने नहीं दिया। जिसके सिर पर रात-दिन नंगी तलवार लटक रही हो, उसके शरीर पर उत्तम-से-उत्तम भोजन का क्या असर हो सकता है? खा-पीकर भी वह हरा-भरा नहीं हो सकता। भारत का प्रेस-क़ानून ब्रिटिश जाति के माथे पर काला धब्बा है। जिस सरकार को निरंतर अपनी प्रजा के मुँह पर ताला लगाना पड़े, उसकी आधार-भूत निर्बलता का दूसरा सबूत तलाश करने की आवश्यकता नहीं।

हिंदी के सामयिक पत्रों के विशेष कष्ट

यह तो हुई भारत के समाचार-पत्रों की सामान्य दशा। हिंदी के समाचार-पत्रों की विशेष कठिनाइयों के बारे में मैं आप लोगों से क्या कहूँ? उन्हें आप लोग स्वयं जानते हैं। हिंदी-पत्रकारों के विशेष संकटों की सूची बहुत बड़ी है। उनमें से कुछ एक निम्न-लिखित हैं—

(१) भारत में शिक्षा कम है, इस कारण समाचार-पत्रों के पढ़नेवाले भी कम हैं। जो हैं, वे भी अँगरेज़ी जानने और न जानने के कारण दो भागों में विभक्त हैं। अँगरेज़ी जाननेवाले लोग अँगरेज़ी पत्रों को ही पसंद करते हैं। वे देशी भाषा के पत्र को पढ़ना अपनी हतक समझते हैं। तो रह गए अँगरेज़ी से अनभिज्ञ शिक्षित। उनमें से प्रत्येक प्रांत में अपनी-अपनी प्रांतिक भाषाएँ हैं, जिनमें समाचार-पत्र निकलते हैं। ऐसा क्षेत्र, जिसमें केवल हिंदी-भाषा के पत्र चल सकते हैं, बहुत थोड़ा है। उस क्षेत्र में भी हिंदी का

एक प्रतिद्वंद्वी है, जो उसका हिस्सा बाँट लेता है। वह प्रतिद्वंद्वी है उर्दू । उर्दू ने हिंदी के क्षेत्र को आधा कर दिया है। क्षेत्र कम है, इस कारण पढ़नेवालों की संख्या भी कम है। हिंदी के पत्रों की परिमित ग्राहक-संख्या का एक मुख्य कारण यही है।

(२) ग्राहक-संख्या अधिक न होने से लाभ की गुंजायश नहीं है, और इसी कारण उधर धन का झुकाव नहीं है। धन के अभाव से समाचार-पत्रों के पास न बढ़िया छापने की मशीनें ही हैं, और न समाचार इकट्ठा करने या छपे हुए पत्र को शीघ्र बाँटने के साधन। उन्नति का मार्ग सर्वथा बंद है।

(३) हिंदी-पत्रों का बड़ा भारी अभाग्य यह है कि प्रारंभ से ही उनमें बहुत अधिक सस्तापन रख दिया जाता है। वह सस्तापन हम लोगों के लिये घातक सिद्ध हो रहा है। दृष्टांत के लिये दैनिक पत्रों को ले लीजिए। हिंदी-दैनिक की एक प्रति का मूल्य दो पैसे से अधिक नहीं रक्खा जाता। अँगरेज़ी तथा अन्य प्रांतिक भाषाओं के दैनिकों की एक प्रति का मूल्य एक आना रक्खा जाता है, जिससे उनमें उन्नति की काफ़ी गुंजायश रहती है। उर्दू की छपाई हिंदी से कहीं सस्ती है, परंतु उर्दू के दैनिक पत्र एक आना में बिकते हैं। वह चित्र भी दे सकते हैं, और समाचारों का विशेष प्रबंध भी कर सकते हैं। परंतु हिंदी के सभी दैनिक पत्र आधे दाम पर बिकते हैं। भला दो पैसे में कहीं इतना बड़ा समाचार-पत्र दिया जा सकता है! यही कारण है कि सब घाटे को रो रहे हैं। कोई भी पाँव जमाकर खड़ा नहीं हो सकता। वह घड़ी बहुत अशुभ थी, जब हिंदी के दैनिक पत्रों के दाम का स्टैंडर्ड दो पैसा नियत कर दिया गया था। उससे हिंदी-दैनिक पत्रों की स्थिरता तक खतरे में पड़ गई है। वृद्धि की गुंजायश कहाँ से हो?

हिंदी के पत्रकारों का संघटन

इन सब संकटों के अतिरिक्त एक बड़ा संकट हिंदी के सामयिक पत्रों पर यह है कि उनका कोई प्रभावशाली संघटन नहीं है। आज हम हिंदी-संपादक-सम्मेलन के अधिवेशन में एकत्र हुए हैं, इस कारण शायद मेरा उपर्युक्त कथन असंगत प्रतीत हो, परंतु इस सम्मेलन के संयोजक मुझे क्षमा करें। मैं इतना कहे बिना नहीं रह सकता कि अभी तक इस सम्मेलन की गिनती संघटनों में नहीं हो सकती। यों तो हिंदी-संपादक-समिति की स्थापना सन् १८८९ ई० में स्व० बा० रामकृष्ण वर्मा के सभापतित्व में हुई थी, परंतु वह तो नींव-ही-नींव रही, उस पर दीवार न चुनी गई। एक वर्ष बाद समिति की धारा समय की बालू में विलीन हो गई। सं० १९०७ में फिर कुछ उत्साही संपादकों के उत्साह ने स्थूल रूप धारण किया। इस बार वीर-शिरोमणि बा० पुरुषोत्तमदास टंडन के नेतृत्व में प्रयाग में दूसरी संपादक-समिति की स्थापना की गई। टंडनजी-जैसे कर्मवीर कारीगर की बनाई हुई चीज़ को काल बहुत शीघ्र अपने गाल में विलीन न कर सका। यह संपादक-समिति १९१३ ई० तक जीवित रही। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के साथ-साथ संपादक-समिति भी एक परिशिष्ट की भाँति एक प्रांत से दूसरे प्रांत का चक्कर लगाती हुई घूमने लगी। सन् १९१३ के बाद समिति ने फिर जो गोता लगाया, तो १३ वर्ष तक पानी के ऊपर सिर न उठाया। सन् १९२६ में वृंदावन के हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर 'आज' के यशस्वी संपादक श्रीयुत बाबूराव पराड़कर की अध्यक्षता में हिंदी-संपादक-सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन हुआ।

सन् १९२६ के पश्चात् किसी-न-किसी रूप में संपादक-सम्मेलन की चर्चा जारी रही है, और कुछ नहीं। तो कभी-कभी साहित्य-सम्मेलन के साथ, नाटक के साथ प्रहसन के रूप में, उसके अधिवेशन होते ही रहे हैं। चर्चा का जारी रहना इस बात का प्रमाण है कि हिंदी के संपादकगण एक संगठन की आवश्यकता को अनुभव करते हैं। परंतु केवल अनुभव करने से कुछ नहीं होता। "न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे

मृगाः।" सोए हुए शेर के मुँह में शिकार स्वयं नहीं आ जाता। शेर को विधि-पूर्वक प्रयत्न करना पड़ता है। संपादकों के संगठन को प्रबल बनाने के लिये जिस एकाग्रता और तत्परता की आवश्यकता है, अभी तक उनका उपयोग नहीं किया गया। इंदौर की स्वागत-समिति ने एक कार्य तो बहुत ही उत्तम किया है कि संपादक-सम्मेलन के जहाज़ को साहित्य-सम्मेलन के बेड़े से अलग कर दिया है। बड़े सम्मेलनों के साथ लगे हुए छोटे सम्मेलनों की वही दशा होती है, जो विशाल वृक्ष की छाया में उत्पन्न होनेवाले छोटे पौधे की। उन छोटे पौधों का पनपना असंभव हो जाता है। संपादक-सम्मेलन के अब तक स्थिर और प्रभावशाली न होने का यही कारण है। सामयिक पत्र वर्तमान साहित्य की प्रगति के चिह्न हैं; साहित्य के व्यतीत काल को भविष्य से बाँधनेवाले सूत्र हैं; साहित्य के शासन में न्यायाधीश की हैसियत रखते हैं। उनकी आलोचनाओं से बहुत-से लेखकों का भाग्य-निर्णय होता है। इस कारण पत्रकारों का संगठन इतना गौण नहीं है कि उसे किसी का परिशिष्ट बना दिया जाय। खुली भूमि पर लगकर ही संपादक-सम्मेलन का कल्पतरु हरा-भरा हो सकता है, किसी महावृक्ष के नीचे रह कर नहीं।

संपादक-सम्मेलन के उद्देश्य

यहाँ एकत्र होकर हम लोगों को बहुत-सी समस्याओं को हल करना है, बहुत-से प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने हैं। उन समस्याओं और प्रश्नों की ओर मैं अभी आप लोगों का ध्यान आकृष्ट कर चुका हूँ। उनमें से कुछ समस्याएँ ऐसी हैं, जिनको बहुत शीघ्र हल करना चाहिए। उचित से बहुत अधिक विलंब हो चुका है। कुछ समस्याएँ समय चाहती हैं। उन पर देर तक चिंतन की आवश्यकता है। उन सबकी ओर अलग-अलग निर्देश करने से पूर्व मैं उपयोगी समझता हूँ कि मैं संपादक-सम्मेलन के उद्देश्यों को एक बार आप लोगों के समक्ष दुहरा दूँ। उससे हमें अपने कार्य की पूर्ति में सहायता मिलेगी।

सम्मेलन के उद्देश्य निम्न-लिखित हैं—

(१) हिंदी-समाचार-पत्रों के संपादकों, लेखकों और संचालकों में परस्पर सहयोग स्थापित करना।

(२) देश के लाभकारी आंदोलनों में हिंदी-पत्रों की सम्मिलित शक्ति का प्रयोग करना।

(३) विपद्-ग्रस्त संपादकों की सहायता करना।

(४) हिंदी-पत्र-संपादन-कला की उन्नति के लिये प्रयत्न करना।

(५) हिंदी-पत्रों के लिये एक न्यूज़ एजेंसी स्थापित करना और भिन्न-भिन्न विषयों पर हिंदी-पत्रों की सम्मतियों को अन्य भाषाओं के पत्रों को भेजना।

ये उद्देश्य बड़े व्यापी हैं। इनके गर्भ में सभी प्रकार के सहयोग और विकास के बीज विद्यमान हैं। उन्हें सम्मुख रखकर मैं कुछ एक क्रियात्मक निर्देश आपके सम्मुख रखना चाहता हूँ।

कुछ निर्देश

(१) हमारे सम्मुख सबसे आवश्यक कार्य यह है कि संपादक-समिति के संगठन को दृढ़ और प्रभावशाली बनाया जाय। दृढ़ संगठन के बिना संपादकगण न राजकीय चोटों से आत्मरक्षा कर सकते हैं, और न धन-शक्ति से फूले हुए पत्र-स्वामियों के आतंक से। परस्पर सहयोग के बिना उन्नति असंभव है। संपादक-समिति को किसी अन्य संस्था का परिशिष्ट न बनाकर सर्वथा स्वाधीन संस्था के रूप में सुरक्षित और संपुष्ट करना चाहिए। साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना पड़ेगा कि कहीं हम संपादक-सम्मेलन को प्रचलित कान्फ्रेंसों की तरह एक प्रदर्शन की वस्तु न बना दें। यह तो पत्रकारों की सभा है। पत्रकार का पेशा अन्य पेशों से अलग ही है। वह एक व्यवसाय है, यद्यपि उसे हम परोपकारी व्यवसायों में गिन सकते हैं। पत्रकारों की सभा का उद्देश्य अपने व्यवसाय से संबंध रखनेवाली बातों पर गंभीर विचार करना है; बहुत-से व्यय से मंडप बनाकर व्याख्यानों द्वारा जनता का मनोविनोद करना नहीं। संपादक-समिति का कार्यालय किसी बड़े केंद्र में स्थायी रूप से

रहना चाहिए। कार्यालय का घूमते रहना अच्छा नहीं है। अभी तक तो समिति का कोई कार्यालय है ही नहीं। मुझे बहुत यत्न करने पर भी कहीं से अब तक पूर्व सम्मेलनों के प्रस्ताव अथवा सभापतियों के भाषण न मिल सके। स्थायी कार्यालय होने से यह त्रुटि न रहेगी। कार्यालय होने पर स्थायी कार्य भी हो सकेगा। समिति के काम को दृढ़ नींव पर रख देना हमारा पहला कर्तव्य है।

(२) स्थिर रूप हो जाने पर समिति का पहला कार्य यह होना चाहिए कि वह हिंदी के सब सामयिक पत्रों के संपादकों, लेखकों और संचालकों को अपनी सभासद्-सूची में सम्मिलित करे। सभासद् होने के लिये थोड़े-से-थोड़ा चंदा रक्खा जाय, ताकि ग़रीब-से-ग़रीब पत्रकार भी समिति का सदस्य बन सके। यदि उद्योग किया जाय, तो शीघ्र ही समिति के साधारण सदस्यों की संख्या सैकड़ों तक पहुँच सकती है।

(३) संपादक-समिति का संगठन हो जाने पर और अधिकांश पत्रकारों के उसमें सम्मिलित हो जाने पर समिति उन कार्यों की पूर्ति का उद्योग कर सकेगी, जिनके बिना हिंदी-पत्रकार वर्तमान दुर्दशा से ऊपर नहीं उठ सकते। परस्पर सहयोग और प्रेम केवल कहने या प्रस्ताव स्वीकार करने से नहीं हो सकते। इनके लिये कुछ क्रियात्मक वस्तु भी होनी चाहिए। आपत्ति-ग्रस्त पत्रकारों में से कौन किस प्रकार की सहायता का अधिकारी है, इस संबंध में सिद्धांत निश्चित कर लिए जायँ, और फिर सहायता दी जाय। यह सहयोग और प्रेम का सबसे प्रथम फल और चिह्न होगा।

(४) पत्रकारों की सहायता के लिये एक अत्यंत आवश्यक कार्य यह है कि संपादन-कला के संबंध में कुछ उपयोगी साहित्य प्रकाशित किया जाय। हिंदी में अभी तक संपादन-कला के साहित्य का अभाव-सा है। बेचारे संपादक बनने की इच्छा रखनेवाले नौजवानों को घोर अँधेरे में हाथ से टटोलकर मार्ग बनाना पड़ता है। श्रीयुत विष्णुदत्त शुक्ल द्वारा लिखित 'पत्रकार-कला' और ऐसी ही दो-एक अन्य पुस्तकों के अतिरिक्त संपादन-कला पर हिंदी में कोई अच्छा साहित्य नहीं है। कोई एक व्यक्ति ऐसे दुरूह विषय पर प्रामाणिक ग्रंथ को प्रकाशित करे, तो उसे घाटे का डर रहेगा। यह कार्य संपादक-समिति को ही करना चाहिए। इस कार्य के लिये योग्य संपादकों की एक कमेटी बनाई जा सकती है, जो ग्रंथों को लिखाने और प्रकाशित कराने का उद्योग करे।

(५) समिति को हिंदी-समाचार-पत्रों की एक ऐसी डायरेक्टरी प्रकाशित करनी चाहिए, जिसमें पत्रों के परिचय देने के साथ-साथ उनका इतिहास और उनकी वर्तमान परिस्थिति पर भी प्रकाश डाला जाय। यह कार्य भी उपर्युक्त प्रकाशन-समिति के सुपुर्द किया जा सकता है।

(६) जनता की दृष्टि में हिंदी-पत्रों के गौरव को बढ़ाने के लिये आवश्यक है कि हम लोग अपने उत्तरदायित्व को समझें, और कोई ऐसा कार्य न होने दें, जिससे संपादन-कला के नाम पर बट्टा लगे। पश्चिम में और भारत में भी पत्रों का एक संप्रदाय है, जिसका नाम 'गठकतरा-संप्रदाय' रक्खा जाय, तो अनुचित न होगा। उस संप्रदाय के लोग रुपए के लोभ से अनुचित चीज़ों को प्रकाशित करते और उचित चीज़ों को प्रकाशित होने से रोकते हैं। वे हरएक समाचार का दाम चाहते हैं। वे किसी राजा या धनी को इसलिये कोसते हैं कि पैसे मिलें, वे किसी धनी आदमी के विरुद्ध इसलिये नहीं लिखते कि उनके मुँह में मीठा डाला जा चुका है। ऐसा करनेवाले संपादक संपादक नहीं, गठकतरे हैं। समिति का कार्य होगा कि वह गठकतरा-संप्रदाय' के पत्रकारों को समझाकर और यदि आवश्यकता हो, तो धमकाकर सीधे रास्ते पर लाए।

(७) समिति के सामने एक अत्यंत आवश्यक प्रश्न हिंदी-पत्रों के मूल्य के संबंध में है। इनका मूल्य

अन्य भाषाओं के पत्रों की तुलना में बहुत कम है। मूल्य के संबंध में तभी विचार हो सकता है, जब सब मिलकर एकमत होने को तैयार हों। उन्नति असंभव है, जब तक मूल्य का स्टैंडर्ड न बढ़ाया जाय

(८) संपादन-कला-संबंधी परीक्षाओं की योजना में अब विलंब न होना चाहिए। यह ठीक है कि अभी तक हिंदी में संपादन-संबंधी साहित्य नहीं है, परंतु अँगरेज़ी की पुस्तकों का उपयोग करने में कोई पाप भी नहीं है। जब तक हिंदी में संपादन-साहित्य नहीं बनता, तब तक अँगरेज़ी की सहायता से पत्रकार-कला-संबंधी परीक्षाओं का प्रबंध करना चाहिए। इस सम्मेलन के समाप्त होने से पूर्व परीक्षाओं की योजना के लिये एक परीक्षा-समिति का निर्वाचन कर देना चाहिए।

समिति के सम्मुख कार्य तो बहुत-से हैं, और समाचार-पत्रों की वृद्धि के साथ-साथ कार्यों की सूची भी बढ़ती जायगी, परंतु मैंने उन थोड़ी-सी वस्तुओं का निर्देश किया है, जो अत्यंत आवश्यक हैं। मुझे गत सम्मेलनों के अध्यक्षों के भाषण और प्रस्ताव तक नहीं मिल सके। इस कारण मुझे कोरे काग़ज़ पर ही लिखना पड़ता है, जिससे संभवतः बहुत-सी आवश्यक बातें रह गई होंगी। उन पर आप लोग विचार करेंगे ही। मुझे तो कुछ थोड़ी-सी आवश्यक बातों की ओर आपका ध्यान खींचना था। आशा है, मेरे टूटे-फूटे शब्दों ने आपका ध्यान उधर खींच दिया होगा।

निवेदन

अंत में मैं अपने सहयोगियों से क्षमा-याचना-पूर्वक एक नम्र निवेदन करना चाहता हूँ। पत्रकार-कला के संबंध में हमने पश्चिम को अपना गुरु बनाया है। अन्य भी बहुत-सी कलाएँ हम पश्चिम से ही सीख रहे हैं। किसी से सीखना बुरा भी नहीं है। सीख-सीखकर ही बालक विद्वान् बनता है, परंतु आँखें बंद करके सीखने का नाम सीखना नहीं, भेड़-चाल है। योरप से शिक्षा लेते हुए हमें जो बात सदा मन में रखनी चाहिए, वह यह है कि अमृत के साथ कहीं हम ज़हर के घूँट तो नहीं पी रहे? गुणों में डूबकर कहीं दुर्गुण भी तो हमारे मेहमान नहीं बन रहे? पश्चिम में संपादन-कला की खूब उन्नति हुई है, परंतु साथ ही समाचार-पत्रों की आत्मा-शक्ति पर धनिकों की वैश्य-शक्ति ने क़ब्ज़ा कर लिया है। वहाँ के प्रभावशाली पत्र स्वाधीन सम्मतियों के प्रतिनिधि नहीं रहे। वे भिन्न-भिन्न सम्मति रखनेवाली धनिक-मंडलियों के शस्त्र बन गए हैं। अमुक पत्र किसी मंडली का और किसी नीति का पक्षीय समझा जाता है। पाठकों को पत्र पढ़ते हुए यह ध्यान रहता है कि वे संसार का एक विशेष रंग की ऐनक से देख रहे हैं। धन की दासता ने संपादन-कला को बहुत गिरा दिया है। वह स्वामिनी नहीं रही, दासी बन गई है। हमारा प्रयत्न होना चाहिए कि हम पश्चिम से संपादन-कला का पाठ तो सीखें, परंतु उसे वित्त की दासता से बचाए रक्खें। दासता से कलंकित संपादकत्व मनुष्य-जाति के लिये महाभयंकर बला है। जिस धर्म का प्रचारक स्वार्थ के वशीभूत हो जाय, तो वह ठगी में ठगों को भी मात कर देता है। वैसे ही पत्र-संपादक यदि अपनी आत्मा को खोकर दूसरे की दासता में फँस जाय, और उसका शस्त्र बनकर वार करे, तो वह संसार के लिये महा अमंगलकारी हो सकता है। समाचार-पत्र का उद्देश्य मनुष्य-जाति की आँखें खोलना है। बिना विशेष लक्ष्य के, केवल धन की कमाई के लिये समाचार-पत्र को चलाना व्यर्थ से बदतर चीज़ है। मेरा हिंदी के पत्रकारों से यह निवेदन है कि वे अपनी कला की उन्नति के लिये भरसक यत्न करें, पत्रों की दशा को उन्नत करें, अपने संगठन को दृढ़ बनाएँ, और समय से क़दम-भर भी पीछे न रहें, परंतु साथ ही बड़ी सावधानी से अपनी आत्मा की रक्षा करें। पत्र-संपादन को आजीविका समझकर सच्चाई को उस पर क़ुर्बान न करते हुए सच्चे ब्राह्मणों के आदर्श का अनुकरण करें। सचाई की रक्षा में मृत्यु भी जीवन है, और सचाई के बिना जीवन भी मृत्यु है।

व्यापारिक खादों का प्रयोग

[श्रीयुत ब्रजेंद्रप्रसाद पालीवाल]



आजकल भारतवर्ष में व्यापारिक खादों का प्रयोग बढ़ता जाता है, परंतु इनके विषय में हमारे किसानों का ज्ञान यहाँ तक परिमित है कि 'विलायती खादों' से फ़सल बढ़ जाती है। दुकानदार उन्हें 'आलू का खाद' और 'गेहूँ का खाद' आदि नाम लेकर भली भाँति लूटते हैं। किसानों को यह भी पता नहीं होता कि जिस वस्तु का मूल्य वे दे रहे हैं, वह मिट्टी के अतिरिक्त कुछ और भी है अथवा नहीं? उनका वही खाद ख़रीदना उचित है, अथवा उससे सस्ती और अच्छी वस्तुएँ भी उन्हें मिल सकती हैं? खाद को किस समय और कितनी मात्रा में प्रयोग करना चाहिए? आज इस लेख में हम खाद-संबंधी कुछ प्रश्नों के विषय में विचार करेंगे।

किसी भी खाद को मोल लेने से पहले यह जान लेना अनिवार्य है कि हमारी फ़सल की क्या आवश्यकताएँ हैं, और उन आवश्यकताओं की पूर्ति हमारी भूमि पूर्ण रूप से कर सकती है या नहीं। मुख्यतः हमारे खेतों में तीन ही वस्तुओं की कमी पड़ती है, और खादों द्वारा हम उनकी न्यूनता की पूर्ति करते हैं। उन वस्तुओं के नाम हैं नाइट्रोजन, पोटाश और फ़ॉसफ़ोरस। गोबर अथवा कूड़े-करकट की खादों से उपर्युक्त तीनो वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं, परंतु व्यापारिक (Commercial) अथवा कृत्रिम (Artificial Fertilisers) खादों से केवल एक और अधिक-से-अधिक दो वस्तुएँ प्राप्त हो सकती हैं। नानो खनिज पदार्थों के लिये भिन्न-भिन्न व्यापारिक खादों का मिश्रण करना पड़ता है। व्यापारिक खादें यदि मात्रा से अधिक प्रयोग की जायँ तो भूमि और फ़सल दोनो को भयंकर हानि पहुँचाती हैं। व्यावहारिक कार्यों के लिये व्यापारिक खादों की मात्रा के जानने में निम्न-लिखित तालिका से उचित सलाह मिलेगी। तालिका में एक एकड़ भूमि के लिये भिन्न-भिन्न फ़सलों की आवश्यकताएँ दी जाती हैं, जिनके प्रयोग से भरपूर पैदावार मिल सकेगी—

फ़सल का नाम	पौंडों में		
	नाइट्रोजन	फ़ॉसफ़ोरस	पोटाश
गन्ना अर्थात् ईख	७५	२०	—
धान, गेहूँ	३६	३६	—
तरकारियाँ	३०	—	६०
तंबाकू	२५	८०	७५
आलू	३८	१८	—
कपास	४०	—	—
ज्वार, मक्का के चारे	२५	—	—

अपनी फ़सल की आवश्यकताओं के पश्चात् उन व्यापारिक खादों का ज्ञान होना आवश्यक है, जिनसे हमारी फ़सल की आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हो सकें। नीचे हम कुछ खादों का नाम देते हैं, जिनसे वे तीन वस्तुएँ (नाइट्रोजन, फ़ॉसफ़ोरस और पोटाश) भिन्न-भिन्न अंशों में मिल सकती हैं—

नाम खाद	प्रतिशत		
	नाइट्रोजन	फ़ॉसफ़ोरस	पोटाश
१. अमोनियम सल्फ़ेट	२०.५	—	—
२. सोडियम नाइट्रेट	१५.७	—	—

नाम खाद	प्रतिशत		
	नाइट्रोजन	फ़ॉसफ़ोरस	पोटाश
३. केल्शियम नाइट्रेट	१८ से २०	—	—
४. केल्शियम सिनेमाइड	२१	—	—
५. पोटाशियम नाइट्रेट	१३	—	४४
६. हड्डी का चूरा	४	२२	—
७. सुपर फ़ॉसफ़ेट	—	१६ से २०	—
८. बेसिग स्लैग	—	१० से १८	—
९. अमोनियम फ़ॉसफ़ेट	१६	२०	—
१०. म्यूरेट ऑफ़् पोटाश	—	—	४८ से ५०
११. सल्फ़ेट ऑफ़् पोटाश	—	—	४६
१२. पोटाशियम नाइट्रेट	१३	—	४४

इन खादों के अतिरिक्त कुछ दुकानदार अपना एक पेटेंट मिश्रण रखते हैं, जिसमें उपर्युक्त आवश्यक खनिज वस्तुएँ किसी विशेष अंशों में रहती हैं, जैसा ऊपर तालिका में दिया गया है। खाद का पूरा भाग उपयोगी नहीं होता, अतएव खाद मोल लेते समय हमें उपयोगी अंश का ही ध्यान रखना चाहिए। किसी खाद में उपयोगी अंश दूसरे से अधिक होता है, परंतु साथ-साथ उसका मूल्य भी अधिक होता है, अतएव हमें खाद के भावों का उपयोगी अंश की उपस्थिति से ही हिसाब लगाना उचित है। यह आवश्यक नहीं कि जिस खाद में उपयोगी अंश की मात्रा अधिक हो, वही ख़रीदनी चाहिए, किंतु जिससे हमें इच्छित वस्तुएँ सस्ती पड़ती हों, वही मोल लेना उचित है। सस्ती खाद का पता लगाने की विधि अतीव सरल है। निम्न-लिखित दृष्टांत से हमें उपर्युक्त कथन के समझने में अच्छी सहायता मिलेगी।

मान लीजिए, आपको एक एकड़ आलुओं के लिये व्यापारिक खाद मोल लेना है। पिछली तालिका से हमने मालूम किया कि एक एकड़ आलुओं के लिये ३८ पौंड नाइट्रोजन और १८ पौंड फ़ॉसफ़ोरस की आवश्यकता होगी। दुकानदार ने आपको बताया कि अमोनियम सल्फ़ेट का मूल्य ४॥) प्रति मन है, जिसमें नाइट्रोजन २० प्रतिशत है, और चिलियन नाइट्रेट का मूल्य ४।) है, जिसमें १५.५ प्रतिशत नाइट्रोजन का भाग है। हमें इन दोनो में से एक खाद लेना है, जिसमें ३८ पौंड नाइट्रोजन मिल सके। परंतु इस दशा में यह सहज नहीं कि दोनो में से कौन सस्ती है। इसके लिये हिसाब लगाने से पता चलेगा कि ३८ पौंड नाइट्रोजन के लिये २।ऽ३ अमोनियम सल्फ़ेट लेना होगा, जिसका मूल्य ११) हुआ, और उतने ही पौंड नाइट्रोजन के लिये ३ऽ चिलियन नाइट्रेट का मूल्य १२॥) होगा। इससे हमें ज्ञात हुआ कि अमोनियम सल्फ़ेट का मूल्य प्रति मन अधिक होते हुए भी चिलियन नाइट्रेट से सस्ता रहा। अतएव चिलियन नाइट्रेट का प्रति मन सस्ता होने के कारण ही हमें उसे न ख़रीद लेना चाहिए। ऐसी दशा में किसान धोखा खा जाते हैं। इसी प्रकार १८ पौंड फ़ॉसफ़ोरस के लिये सबसे सस्ती खाद मोल ली जा सकती है। उन दोनो को मिला देने पर हमें आलू के एक एकड़ खेत के लिये पर्याप्त खाद मिल जायगी।

व्यापारिक खादों का मिश्रण भी सावधानी से करना चाहिए, ताकि खेत में खाद का प्रभाव एक-सा

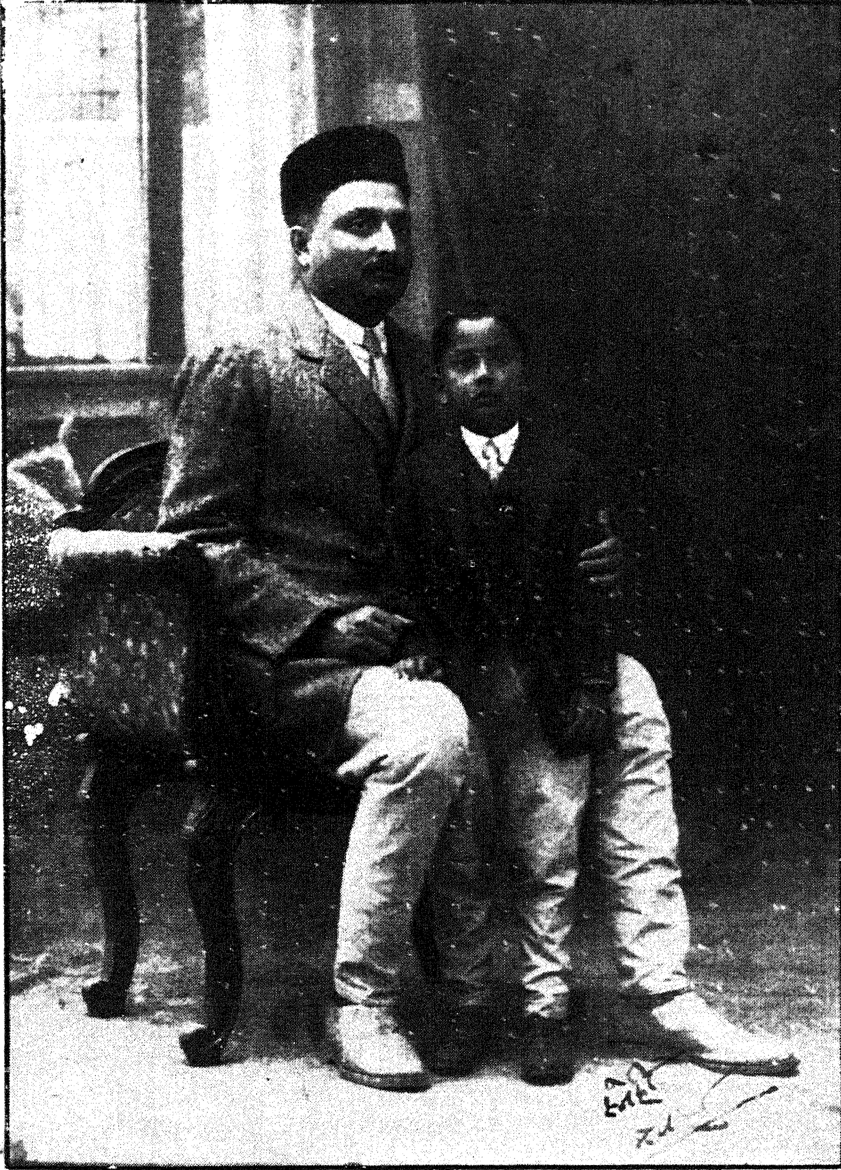
रहे। इन खादों में कुछ ऐसी भी हैं, जिनको एक साथ न मिलाना चाहिए, अन्यथा नाइट्रोजन गैस के रूप में बनकर नष्ट हो जायँगी। सुपर फ़ॉस्फ़ेट के साथ किसी नाइट्रोजनवाली खाद को तो कभी न मिलाना चाहिए। इनका प्रयोग करते समय शीघ्रता से मिलाया जा सकता है, परंतु मिलाकर कुछ देर भी रख देने से भारी हानि होती है।

खादों को मोल लेते समय यह विचार भी कर लेना आवश्यक है कि इनके प्रभाव का लाभ किस समय लेना है। कुछ खादें अपना प्रभाव शीघ्र दिखाती हैं और कुछ देर में। खड़ी हुई फ़सल (Top dressing) में वही खाद देना लाभदायक है, जो जल्दी ही पौदों को भोजन के रूप में मिल जाय। यदि फ़सल के बोने के पूर्व ही खाद देने की आवश्यकता हो, तो देर से प्रभाव दिखलानेवाली खादों का प्रयोग ही लाभकारी होगा। सोडियम नाइट्रेट बहुत शीघ्र और अमोनियम सल्फ़ेट कुछ दिनों पश्चात् अपना प्रभाव दिखाते हैं।

खाद का प्रयोग करने की विधि के विषय में भी कुछ जान लेना ठीक है। थोड़ी-सी असावधानी से पूरी फ़सल चौपट हो जाती है। खाद देने के दो नियम हैं—

१. पानी में घोलकर। २. मिट्टी में मिलाकर।

इन दोनो नियमों से केवल यही मतलब है कि खाद की शक्ति को कम कर दिया जाय, क्योंकि किसी पेड़ अथवा पत्ती पर यदि असली खाद पड़ जाती है, तो वह जलकर नष्ट हो जाती है। मिट्टी सूखी ही होनी चाहिए, जो खेत में एक-सा छिड़की जा सके। खड़ी हुई फ़सलों पर इसका प्रयोग बड़ी सावधानी से करना चाहिए। जड़ों के चारो ओर खाद को फैलाकर खुरपी से गाड़ देना उचित है। बड़े क्षेत्रों में खाद को पानी में घोलकर देना असंभव है, परंतु थोड़े क्षेत्रफल पर ऐसे भी प्रयोग कर सकते हैं। कुछ लोग सिंचाई के समय पानी के बरहे पर बैठकर थोड़ा-थोड़ा खाद पानी में छोड़ते जाते हैं, ताकि पानी के साथ घुलकर खाद पूरे खेत में पहुँच सके, परंतु ऐसी खाद का प्रभाव एक-सा नहीं दिखलाई देता। व्यापारिक खादों के प्रयोग के पश्चात् खेत को गोड़कर पानी अवश्य दे देना चाहिए, अन्यथा ये खादें फ़सल को शीघ्र ही जला देंगी। प्रतिवर्ष एक खेत में एक ही खाद बार-बार डालना हानिकारक है, इससे भूमि ऊसर बन जाती है। इन खादों की अधिक मात्राएँ कभी न देनी चाहिए। एक समय ही सब खाद न देकर थोड़ी-थोड़ी दो अथवा तीन बार में देना अधिक लाभदायक प्रतीत हुआ है।



कर्नेल मेघराज शमशेर जंगबहादुर राणा

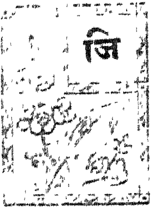
Ganga Fine Aar Press, Lucknow.



श्रीमान् राजा बरखंडी महेशप्रतापनारायणसिंहजू देव
बड़े राजकुमार चि० उदयराजसिंहजी, छोटे राजकुमार चि० जयराजसिंह

आयु-वृद्धि

[श्रीगंगाप्रसाद उपाध्याय एम्० ए०]



जिस प्रकार आय-वृद्धि के दो रूप हैं, एक तो धन अधिक कमाना और दूसरा धन से अधिक-से-अधिक उपयोग लेना, इसी प्रकार आयु-वृद्धि के भी दो रूप हैं, एक तो यह कि हम अधिक काल तक जीवित रहें, और दूसरे हमारे जीवन का अधिक-से-अधिक उपयोग हो सके। आयु-वृद्धि के वे दोनो ही रूप महत्त्व-पूर्ण हैं।

हमारे देश में जब किसी को आशीर्वाद देते हैं, तो कहते हैं, "चिरंजीव रहो।" इसका अर्थ है कि तुम्हारी आयु अधिक हो। परंतु केवल अधिक जीने से ही मनुष्य चिरंजीव नहीं हो जाता। कल्पना कीजिए कि एक पुरुष १०५ वर्ष का होकर मरता है, और इस १०५ वर्ष में उसके पचास वर्ष इस प्रकार कटते हैं कि मुँह में दाँत नहीं, आँखों में ज्योति नहीं, कान सुन नहीं सकते और टाँगें हिल नहीं सकतीं, तो क्या ऐसे पुरुष को चिरंजीव कहेंगे? उसी पुरुष से पूछो। वह कभी इस दीर्घायु के लिये ईश्वर को धन्यवाद नहीं देता, और प्रतिदिन यही मनाता है कि यदि शीघ्र मर जाऊँ, तो अच्छा हो। कौन ऐसा पुरुष है, जो खोटे रुपयों को इकट्ठा करके धनवान् होना चाहेगा? क्योंकि उन रुपयों का कोई बाज़ारी मूल्य है ही नहीं। इसी प्रकार बुड्ढे आदमी के वे पचास वर्ष किस काम के, जिसमें वह केवल दुर्बलता और खाँसी का शिकार है, और पानी पीने के लिये भी दूसरों के आश्रय है। वेदों में सौ वर्ष के जीवन के लिये प्रार्थनाएँ हैं, परंतु ऐसे जीवन के लिये नहीं, जो निकम्मा हो। वहाँ तो कहा गया है—

"पश्येम शरदः शतम् ; जीवेम शरदः शतम्।"

अर्थात् ऐसे सौ वर्ष जीवें, जिनमें ज्ञान की निरंतर वृद्धि हो।

परंतु हम अपने देशवासियों की प्रवृत्ति आयु-वृद्धि के केवल पहले रूप की ओर पाते हैं, दूसरे रूप की ओर नहीं। प्रत्येक पुरुष चाहता है कि मैं अधिक जिऊँ, मेरे बाल-बच्चे और इष्ट-मित्र अधिक जिएँ। परंतु किसलिये? यह प्रश्न मत करो। हम जीना चाहते हैं केवल जीने के लिये। परंतु जो केवल जीने के लिये जीता है, वह दीर्घजीवी होते हुए भी अल्पजीवी है। उसके आयु के वर्ष खोटे रुपयों के समान हैं, जिनके बदले कोई किसी चीज़ को देना नहीं चाहता।

आजकल विज्ञान का युग है। विज्ञान ने इस जीवन-वृद्धि के दोनो रूपों में बड़ी सहायता दी है। एक ओर तो वे ओषधियाँ और साधन एकत्रित किए जा रहे हैं, जो हमारे रोगों को नाश करके हमारी मृत्यु को अधिक-से-अधिक देर तक रोक सकें, दूसरे ऐसे साधनों की भी उपलब्धि हो रही है, जिनसे एक घंटे में किए जानेवाला कार्य एक मिनट में ही हो सके। रेल, तार, कलें आदि इन्हीं जीवन के बढ़ानेवाले साधनों में से हैं। इस समय यदि ठीक-ठीक उपयोग किया जाय, तो हम तीस वर्ष के जीवन में ६० वर्ष का कार्य कर सकते हैं।

पाश्चात्य देशों में एक और बात पर ध्यान दिया जाता है। जो नर-नारी जन्म से ही ऐसी अवस्था में उत्पन्न हुए हैं कि उनको कोई शिक्षा नहीं दी जा सकती, जैसे अंधे, गूँगे आदि, उनको भी शिक्षित बनाकर उनकी आयु को बढ़ाने का यत्न किया जाता है। जिस गूँगे को बोलना आ जाय या जो बहरा सुनने लगे, उसका जीवन यदि ४० वर्ष के बजाय ३० वर्ष का कर दिया जाय, तो भी वह अपने को अधिक दीर्घजीवी समझेगा।

इस संबंध में हम अमेरिका की एक स्त्री का हाल सुनाते हैं, जिसकी अवस्था इस समय ५२ वर्ष की है। इसका नाम हैलिन कैलर है। यह २७ जून, सन् १८८० में उत्पन्न हुई थी, और १६ महीने की अवस्था में ही ज्वर आ जाने के कारण वह अंधी, बहरी और गूँगी हो गई। आप सोच सकते हैं कि ऐसे प्राणी के जीने से क्या लाभ? जो गूँगे-बहरे, अंधे नहीं होते, वे इशारों से काम ले सकते हैं। परंतु बेचारी हैलिन को यह भी सुख उपलब्ध न था। यदि ऐसी लड़की भारतवर्ष में होती, तो कभी की मर गई होती, या मा-बाप सदा उसकी मृत्यु के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते रहते। परंतु हैलिन के मा-बाप ने अपने भाग्य पर बैठा रहना पसंद नहीं किया। पर्किंस-इंस्टीट्यूट, बोस्टन के अधिकारियों ने हैलिन के माता-पिता की प्रार्थना पर मिस ऐन, सुलवन नाम की एक अध्यापिका को उसे पढ़ाने के लिये भेज दिया। हमारे देशवासियों को आश्चर्य होगा कि एक लड़की को पढ़ाने के लिये इतनी कोशिश और वह भी अंधी, बहरी और गूँगी को! परंतु १८८८ ई० में हैलिन अच्छे प्रकार पढ़ने लगी, और २४ वर्ष की आयु में उसने बी० ए० पास कर लिया। सन् १६०७ ई० में 'मॉडर्न रिव्यू' में उसकी जीवनी निकली थी, जब उसने अपनी जीवनी लिखी थी। अभी हाल में उसने अपने अंतिम वर्षों का हाल लिखा है। इसको देखने से मेरे मन में अनेक प्रकार के भाव उठ रहे हैं। हमारे देश में आँख, कान और जिह्वा से स्वस्थ लोग भी पढ़ नहीं सकते, और अमेरिका में एक गूँगी, बहरी, अंधी लड़की साहित्य-वृद्धि कर सकती है। यहाँ हम नित्य प्रातः-सायं दीर्घ जीवन के लिये प्रार्थना करते ही रह जाते हैं। यदि ईश्वर हमारी-जैसी भाषा और भाव रखता हो, तो वह कहेगा—"मूर्खों, तुम दीर्घ जीवन को लेकर क्या करोगे? तुम्हारे पास काम ही क्या है? यदि मरना ही है, तो जैसे जल्दी मरे, वैसे देर में।"

जीवन के संबंध में दो बातें ही वांछनीय हो सकती हैं—उपयोगी जीवन और शांतिमय मृत्यु।

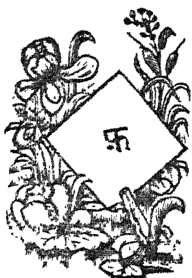
"ऋतुराज भी स्वदेशी हो"

[श्रीद्वारकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेंद्र']

भाषा हो स्वदेशी, उच्च आशा भी स्वदेशी लिए
शिक्षितों का सजग समाज भी स्वदेशी हो;
चमके स्वदेशी कला, देश का भला हो, जब—
वणिज स्वदेशी, काम-काज भी स्वदेशी हो।
तन, मन, धन से स्वदेशी की लगन लगे,
वसन स्वदेशी हो, अनाज भी स्वदेशी हो;
'कल' मिलने के लिये 'आज' भी स्वदेशी बने,
साज हो स्वदेशी, ऋतुराज भी स्वदेशी हो।

युक्तप्रांत में अँगरेज़ी जाननेवालों की बेकारी

[प्रोफ़ेसर दयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]



रवरी, सन् १९३१ में मनुष्य-गणना के समय अँगरेज़ी जाननेवाले २० से ४० वर्ष तक की उमर के शिक्षित बेकार पुरुषों की संख्या का अनुमान लगाने का भी प्रयत्न किया गया था। इस संबंध के कोरे फ़ार्म अँगरेज़ी जाननेवाले शिक्षित व्यक्तियों के पास भेजे गए थे। यह संभव है, बहुत-से शिक्षित बेकार पुरुषों के पास ये फ़ार्म न पहुँचे हों, और कई पुरुषों ने उसे भरके मनुष्य-गणना-विभाग के अफ़सर के पास न भेजा हो। जिन शिक्षित बेकारों ने अपने फ़ार्म भरकर इस प्रांत के मनुष्य-गणना-विभाग के अफ़सर के पास भेजे हैं, उनसे इस प्रांत के शिक्षित पुरुषों की बेकारी के संबंध में जो कुछ बातें मालूम होती हैं, उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है। दूर

असल शिक्षित बेकारों की संख्या इन अंकों से बहुत अधिक है—

डिगरी	बेकारों की संख्या		
	एक साल से कम	एक साल से अधिक	मीज़ान
ब्रिटिश डिगरी	१	१	२
एल्-एल्० बी०	३	२	५
कृषि (बी०एस्-सी०)	२	१	३
बी० कॉम०	३	६	९
एम्० ए०	३	७	१०
बी० ए०	२४	२६	५०
बी० एस्-सी०	६	६	१२
इंटरमीडिएट	२०	६०	८०
एस्० एल्० सी० या मैट्रिकुलेशन	२७७	८१७	१०९४
उपर्युक्त परीक्षा-अनुत्तीर्ण	१४५	५५८	७०३
मीज़ान	४९१	१४८४	१९७५

इस कोष्ठक में यह बतलाया गया है कि भिन्न-भिन्न डिगरी-प्राप्त २० से ४० वर्ष तक की उमर के बेकारों की संख्या, युक्तप्रांत में, सन् १९३१ में, क्या थी।

ब्रिटिश डिगरी-प्राप्त पुरुषों का बेकार रहना आश्चर्य-जनक है। इससे मालूम होता है कि अब ब्रिटिश डिगरियों को उतना महत्त्व नहीं दिया जा रहा है, जितना पहले दिया जाता था। एल्-एल्० बी० बेकारों की संख्या केवल ५ बतलाई गई है। दर असल बहुत-से नए वकील ऐसे हैं, जो बेकार तो नहीं कहे जा सकते, परंतु जिनकी आमदनी अपने पेशे से बहुत ही कम होती है। कृषि की डिगरी-प्राप्त पुरुषों को तो बेकार रहने का कोई कारण नहीं है। उनको उत्तम और नए तरीक़ों से खेती करना चाहिए। इससे वे अपना तथा देश का लाभ करेंगे। बी० कॉम० डिगरी-प्राप्त नवयुवकों को भी व्यापार-व्यवसाय की तरफ़ ध्यान देना चाहिए। बेकार रहकर, नौकरी के चक्कर में इधर-उधर घूमना उनके लिये ठीक नहीं है। शिक्षित बेकारों में सबसे अधिक संख्या एस्० एल्० सी० परीक्षा-उत्तीर्ण और अनुत्तीर्ण पुरुषों की है। उनकी दशा सचमुच बहुत शोचनीय है। १९७५ बेकारों में से १०६६ बेकारों के पिता ज़मींदार या किसान हैं। यदि ये सज्जन खेती की तरफ़ ही अपना ध्यान दें, तो बेकारी बहुत कुछ कम हो जाय। इस प्रांत की सरकार ने शिक्षित पुरुषों की बेकारी की समस्या पर विचार करने के लिये एक कमेटी नियुक्त की है। यह कमेटी शिक्षित बेकार पुरुषों को खेती-संबंधी सुविधाएँ दिए जाने के संबंध में भी विचार कर रही है। यदि इस प्रांत की सरकार ने बेकार शिक्षित पुरुषों को खेती-संबंधी आवश्यक सुविधाएँ देने का प्रयत्न किया, तो उससे बेकार पुरुषों और देश को बहुत लाभ होगा।

जाति के अनुसार उपर्युक्त १९७५ अँगरेज़ी जानने-वाले बेकार पुरुषों की संख्या नीचे लिखे अनुसार थी—

ज़ात	२० से ४० वर्ष उमर के बेकारों की संख्या—		
	एक वर्ष से कम	एक वर्ष से अधिक	मीज़ान
ब्राह्मण	११९	२८९	४०८
अछूत	१	५	६
अन्य हिंदू	२५३	७८६	१०४१
मुसलमान	१०५	३६३	४६८
ऐंग्लो-इंडियन	४	१३	१७
अन्य	९	१८	२७
मीज़ान	४९१	१४८४	१९७५

इस प्रांत में हिंदुओं की संख्या ही सबसे अधिक है, इसलिये हिंदू बेकारों की संख्या भी बहुत है। अछूत बेकारों की संख्या कम होने का कारण उनमें शिक्षा का अभाव है। ब्राह्मण बेकारों की दशा सचमुच शोचनीय है। उनमें से अधिकांश के पास तो खेती का भी सहारा नहीं है। उनकी दशा सुधारने का उचित प्रयत्न शीघ्र किया जाना चाहिए।

गीत *

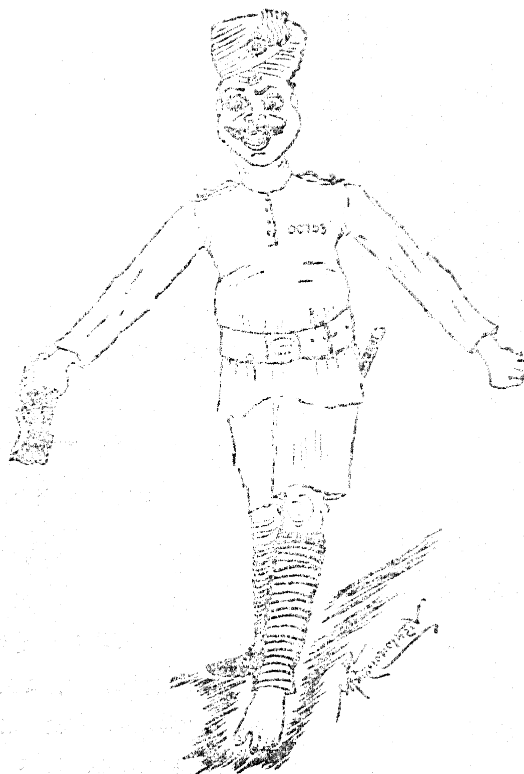
[पं० गिरीशचंद्र पंत 'अनंग']

सित कुमुद-चरण मृदु रखकर
किरणों-सी हँसती आना ;
प्रिय अंचल-व्यजन डुलाकर
हाँ, धीरे मुझे जगाना ।
फिर बाल-सारिका तुम बन
कर स्नेह-राग का वर्षण
ए प्राण ! गगन जीवन की
तुम अमर उषा बन जाना ।
यदि खुलें न दृग ये तंद्रिल
तो चंद्र-कला-सी शुचि खिल
कोमल मृणाल-सी हँस-हिल
कल-मारुत-वेणु बजाना ।

जब साम-गान खग गावें
तरु-तृण मंजीर बजावें
अयि स्नेह-परी, मन-मुख से
गा देना प्रेम-तराना ।
तब हिम-अधरों से झुककर
भर देना चुंबन मृदुतर
चितवन की अंजलि भर-भर
पीयूष प्रणय बरसाना ।
फिर उसी स्वर्णमय पल में
जीवन के चंचल जल में
अयि प्राण, अमर चिर-सुख की
बन स्वर्ण-लहर मिल जाना ।

* अप्रकाशित 'शतदल' से ।

पुलिसमैन



प्रलयंकर रूप धरैं छिन में, भय तें जिनके डरपे सब ही हैं ;
अरि को नहिं ठाँव मही में कहीं, अपने जन पै रछपाल सही हैं ।
अपशब्द हलाहल कंठ किए, तजि शूल लिए कर में पनही हैं ;
पदकंज पुलीस के सीस धरौं, हम तीस करोर के ईस यही हैं ।

'कवि चचा'



१. गीत

रँग गई, पग-पग धन्य धरा—
हुई जग जगमग, मनोहरा।
वर्ण-गंध धर, मधु-मरंद भर
तरु-उर की अरुणिमा तरुणतर
खिली रूप-कलियों में पर-भर
स्तर-स्तर सुपरिसरा।
गूँज उठा पिक-पावन-पंचम,
खग-कुल-कलरव मृदुल मनोरम,
सुख के भय काँपती प्रणय-सम
वन-श्री चारुतरा।

'निराला'

× × ×

२. गीत

तम के उर विकसित स्मिति-रेखा,
अंकित नव इंदु - किरण - लेखा।
करती अशेष सुख-स्वप्न-वयन,
खोलती उषा-सी निशा - नयन,
घन - जीवन के वन में निर्जन
चित्रित-सी पावन मधु-लेखा।
अस्फुट, अशब्द, अश्रुत, अस्वर,
अधरों की रस - रागिनी मुखर,
प्राणों में अमर रही भर-भर—
पंकज पर तरल तुहिन-वेषा।

(कुँवर) चंद्रप्रकाशसिंह

× × ×

३. पंजाब के कुछ ग्राम्य गीत

ग्राम्य गीतों में प्रायः घटना और कल्पना का बहुत अच्छा सम्मिश्रण देखा जाता है। भोली-भाली वाणी-वीणा ही 'सत्यं शिवं सुंदरं' का सजीव चित्र खींच सकती है। अपने हृदय को बाह्य जगत् के साथ मिलाकर ही मनुष्य अपने मानसिक आनंद का प्रकाश कर रहा है। आनंद की गोद में मंगल और शिव स्वयं ही आ जाते हैं।

महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर अपने एक लेख में लिखते हैं—"मानव-समाज का वह बाल्य-काल कहाँ गया, जब घटना और कल्पना सगी बहनों के समान एक ही परिवार में एक साथ खेलकर बड़ी हुई थीं। उनके अंदर इतना बड़ा गृह-विच्छेद हो जायगा, किसी को स्वप्न में भी विचार न था।"

कविता के बाल्य-काल की सुगंध अब भी ग्राम्य जीवन में भरी पड़ी है। बहुत कम लोग हैं, जो इस तरफ़ ध्यान देते हैं। पाठकों को पंजाब के कुछ ग्राम्य

गीत भेंट करते हुए मुझे हार्दिक आनंद हो रहा है—

(१) मेरा यार सरू दा बूटा ;
वेहड़े विच ला रखिया।

मेरा प्रियतम सरो का वृक्ष है ; मैं उसे अपने आँगन में लगाए हुए हूँ।

(२) लाई नीं देख ला 'ला के' ;
बड़े दुःख यारी दे।

नहीं किया, तो करके देख ले, प्रेम-पथ ख़ूब विकट है।

(३) गोरे रंग ने सदा नी रहना ;
भर-भर बंड मुट्ठियाँ।

यह सौंदर्य हमेशा न रहेगा। मुट्ठियाँ भर-भरकर इसे बाँट दे।

(४) सारा न्हेरा भज्ज तुरिया ;
दीवे वरगा यार जदों आया।

जब लैंप-जैसा प्रियतम आया, सारा-का-सारा अंधकार दूर भाग गया।

(५) मेरा यार मिसरी दा कूजा ;
मिट्ठी-मिट्ठी गल्ल करदा।

मेरा प्रियतम मिस्री का ढेला है ; मीठी-मीठी बातें किया करता है।

(६) रन्नाँ वालियाँ दे पकन परायोठे ;
छड़ियाँ दे अग्ग न बले।

विवाहित पुरुषों के घर परायोंठे पक रहे हैं ; बेचारे अविवाहितों के घरों में आग तक नहीं जलती।

(७) अक्ख मेरे यार दी दुखे ;
लाली मेरियाँ अक्खाँ विच्च रड़के।

आँख तो मेरे प्रियतम की दुखती है ; उसकी आँखों की सुरख़ी मेरी आँखों में चुभ रही है।

(८) बोता बन्ह दे पिप्पल दी छामीं ;
आपां दोमें ताश खेलिए।

अपना ऊँट पीपल की छाया में बाँध दे। आ, हम दोनो ताश खेलें।

(९) रेलू ने आयोना रात नूँ ;
मैं खड़ी बताशे वँडां।

मेरा हृदयेश (रेलू) आज रात को आवेगा ; मैं खड़ी बताशे बाँट रही हूँ।

(१०) यारी विच्च न वकील बनाइए ;
पंज मंगे सत्त दे दिए।

प्रेम में वकील बनाना ठीक नहीं ; पाँच (रुपए) के बजाय सात भी क्यों न ख़र्च करने पड़ें।

(११) मेरा कालजा कंच दी शीशी ;
भन्न ता बगाने पुत्त ने।

मेरा काँच की शीशी-जैसा हृदय किसी के पुत्र ने चकना-चूर कर दिया।

(१२) यारी तोड़ के मुंडां ते बैह गया ;
हुन की तूं रब्ब बन गया।

प्रेम से मुँह मोड़कर तू लकड़ियों पर जा बैठा है ; अब क्या तू परमात्मा बन गया है।

(१३) अक्खाँ दे विच प्रीतम वसदा ;
लोग कहंदे ने आइयाँ अक्खियाँ।

आँखों में मेरा प्रियतम निवास करता है ; लोग कहते हैं, मेरी आँखें दुखती हैं।

(१४) सुरमा केहड़ियाँ अक्खाँ विच्च पामाँ
अक्खाँ च यार वसदा।

मैं सुरमा कौन-सी आँखों में डालूँ ? आँखों में मेरा प्रियतम बसता है।

(१५) तेरी सज्जरी पैड़ दा रेता ;
चक्क-चक्क लामां हिक नूं।

वहाँ से तू अभी-अभी गुज़रा है ; उस स्थान से

धूलि उठा-उठाकर अपनी छाती से लगा रहा हूँ।

(१६) जुत्ती चमड़े दी मरोड़ा न झल्ल दी,
ज़ोर जवानी दा।

गरम चमड़े की जूती ज़रा-सी लचक भी बरदाश्त नहीं कर सकती; जवानी का ज़ोर! ग़ज़ब!!

(१७) मंगतरेया! रस दिया भरिया!!
मेरा यार मेरे नाल लड़िया;
सुलह करा दे मित्रा!

मंगतरे! ऐ रसभरे मंगतरे! मेरा प्रियतम मुझसे नाराज़ है; हमारी सुलह करा दे।

(१८) मेरा लै चल्ल चरखा ओथे;
जिथ्थे तेरे हल्ल वगदे।

मेरा चरखा वहीं ले चल, जहाँ तेरे हल चलते हैं। (अपने खेत में ही)

(१९) लियादे मित्रा दियां खबरां;
उड्ड जा जानवरा!

मेरे मित्रों की ख़बर ला दे। ऐ पक्षी! जा, उड़ जा।

देवेंद्र सत्यार्थी

× × ×

४. 'परिमल' की एक कविता

'परिमल' के कवि निरालाजी की दृष्टि की दौड़ प्रकृति के सुंदर-सुंदर नयनाभिराम दृश्यों तक ही सीमित नहीं—उनके बिमल हृदय-मुकुर पर एकमात्र संसृति का सौंदर्य ही प्रतिबिंबित नहीं होता, वरंच उनकी करुणामयी दृष्टि, संसार के सुख-वैभव से निर्वासित, एक दीन-हीन भिक्षुक पर भी—जिसे देखने में भी लोग अपनी आँखों का अपमान समझते हैं—पड़े बिना नहीं रहती—

"वह आता—
दो टूक कलेजे के करता, पछताता, पथ पर आता।
पेट-पीठ दोनो मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी-भर दाने को—भूख मिटाने को
मुँह फटी-पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता, पछताता, पथ पर आता।
साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए,
बाएँ से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहना दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाए।"

कैसा सजीव मार्मिक चित्र है! लोग कहते हैं, ईश्वर न्यायी तथा दीनों का नाथ एवं त्राता है। वह भूखों को अन्न और नंगों को वस्त्र देता है। पर यहाँ तो दो टुकड़ों के लिये सुबह से शाम तक ईश्वर के नाम की दुहाई देते-देते बेचारे भिक्षुक के होंठ सूख जाते हैं, किंतु कोई भी हृदय नहीं पसीजता! यह देख कवि का हृदय विद्रोही हो उठता है। वह प्रश्न करता है—

"भूख से सूख ओंठ जब जाते
दाता भाग्य-विधाता से क्या पाते?—
घूँट आँसुओं को पीकर रह जाते!"

ओह! आँसुओं की भी घूँट क्षुधा की परितृप्ति कर सकती है? आज म्लानमना भारतमाता की गोद में उसके न जाने कितने ग़रीब बच्चे इसी प्रकार रोते-बिलखते हुए अपने प्राण दे रहे होंगे! ओह! रोटी का एक टुकड़ा तक उनके प्राणों से अधिक मूल्यवान् समझा जा रहा है!! यह बात अब नित्य को हो चली है। ऐसे, हम लोग, न-जाने रोज़ कितने भिक्षुकों को देखते होंगे, पर कितने कवि का हृदय रखनेवालों की करुण लेखनी ने इन पर स्याही के दो आँसू बहाए हैं?

चातक की चीत्कार भले ही हमारे हृदय को चीर दे, कोयल की कुहू-कुहू से चाहे हमारी हृत्तंत्री के मर्म-तार भले ही विकल-रागिनी की करुणतम तान छेड़ दें, सरिता की कल-कल, छल-छल से चाहे हमारे मानस में करुणा का स्रोत भले ही प्रवाहित हो चले, पर एक दीन-हीन भिक्षुक की आर्त पुकार सुनने को

हमारे कान बहरे हो जाते हैं, हमारी हृत्तंत्री के तार उसके तारों से मिल करुणा का स्वर नहीं निकाल सकते, और उसके नयनों की नदियाँ हमारे मरु-मानस में मरु-भूमि की नदी के समान लोप हो जाती हैं।

क्या यही सहृदयता है ?

किंतु 'भिक्षुक' का कवि सच्चा कवि का हृदय रखता है। उसके अंतस्तल में करुणा एवं प्रेम का एक अगाध पारावार लहरा रहा है। कहता भी है—

"ठहरो, अहा ! मेरे हृदय में है अमृत,
मैं सींच दूँगा,
अभिमन्यु-जैसे हो सकोगे तुम,
तुम्हारे दुःख मैं अपने हृदय में खींच लूँगा।"

निरालाजी की 'भिक्षुक'-शीर्षक यह कविता साहित्य की हाट में उतने अधिक दामों पर भले ही न चढ़ सके, जितनी उनकी 'जुही की कली'; पर तब भी यह मानना ही पड़ेगा कि यह कोरी कल्पना की तितली के कोमल-कोमल पंखों पर उड़नेवाली कविता नहीं। यह स्वप्न-लोक की अस्तित्व-हीन अनुभूति-मात्र नहीं, यह तो वास्तविक जगत् की चीज़ है। मानव-जीवन की विषमताओं के संघर्ष से जो हाहाकार-पूर्ण भीषण कोलाहल पैदा होता है, उसी की यह प्रतिध्वनि है, जो कवि-हृदय के शीतल हिमगिरि पर जाकर प्रति-ध्वनित हुई है !

सुकुमार

× × ×

५. रहस्य !

सकल सृष्टि का चमत्कार है
छिपा एक ही अंकुर में ;
भाव-जगत का भेद भरा है
भावुक कवि के उर-पुर में !
जरा-जीर्णता छिपी हुई है
सरल-हास्यमय शैशव में ;
मीठी पीड़ा मिली हुई है
मिथ्या जग के वैभव में।
आशा के झोंकों ने जिसको
मिला दिया था रज-कण में ;
उसी बीज का बृहद् रूप है
प्रकट हुआ तरु में, तृण में !
सारा सागर छिपा हुआ है
जल के छोटे-से कण में ;
मिलन-काल में विरह छिपा है
दीर्घ-काल-सा लघु क्षण में !
चित्रकार की चित्रपटी पर
प्रकृति-नटी का मृदु परिहास—
छिपा हुआ है, तुहिन-कणों में
रजनी के उर का उच्छ्वास।
कहीं साधना छिपी हुई है
प्रेमी के उद्गारों में ;
जीवन के संगीत भरा है
वीणा के जड़ तारों में।*

श्रीरत्नांबरदत्त चंदोला

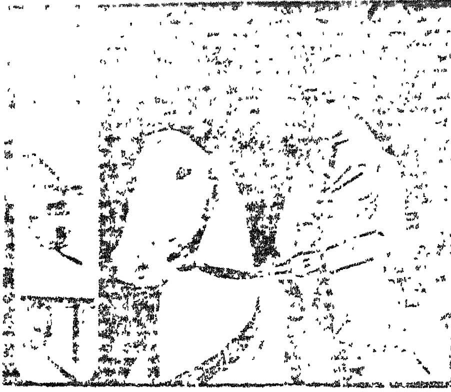
× × ×

६. 'जमोरिन' के महाप्रभु से

नाथ ! कैसे मंदिर में आऊँ ?
तेरे इस 'बंदी-जीवन' का कैसे दर्शन पाऊँ ?
पलक-पाँवड़े बिछे, किंतु अब कैसे सुमन चढ़ाऊँ ?
द्वार बंद है 'गुरुवयूर' का कैसे दीप दिखाऊँ ?
यही चाह है हम हरिजन को नाथ, तुम्हें अपनाऊँ ;
बंधन-मुक्त करूँ तुमको सत्वर स्वाधीन बनाऊँ।

शारदाप्रसाद भंडारी

* अप्रकाशित 'मधुकोष' काव्य से।



१. क़र्ज़दार फ़्रांस



जो क़र्ज़दार होता है, वही दूसरों से अपना क़र्ज़ा वसूल करने में बड़ी ज़्यादती कर अपने ऊपर की गई ज़्यादती का बदला ले लेता है। इसके अलावा जब वह अपने असामी के पास जाता है, तब जितनी ही आँख तरेरता है, उतना ही अपने क़र्ज़-देहिंदा के सामने नरम और भीरु बना रहता है।

यही दशा फ़्रांस की है। वह अमेरिका का बहुत ही क़र्ज़दार है। पर, जर्मनी क़र्ज़दार न होते हुए भी—जर्मनी ने फ़्रांस से कोई क़र्ज़ ही न लिया था—वार्सेल्स की संधि के अनुसार उसे हर्जाना देने के लिये ज़िम्मेदार है। इसीलिये जब अमेरिका फ़्रांस को अपना क़र्ज़ा चुकाने के लिये दबाता है, तब फ़्रांस जर्मनी को त्रास देता है। पर जर्मनी का क़र्ज़ क़र्ज़ नहीं, दंड है; फ़्रांस का क़र्ज़ नक़द लिया हुआ है।

अस्तु। एक ओर फ़्रांस जर्मनी को दबा रहा है, और दूसरी ओर अमेरिका की ख़ुशामद कर रहा है। अभी कल तक वह राष्ट्रपति हूवर की प्रशंसा कर रहा था, अब उन्हीं के विरोधी राष्ट्रपति रुज़वेल्ट का मार्च से कार्य-भार ग्रहण करने का समाचार पाकर वह रुज़वेल्ट की प्रशंसा तथा हूवर की निंदा कर रहा है। वाशिंगटन में अर्थ-सम्मेलन होनेवाला है। अमेरिका ने क़र्ज़ की समस्या पर विचार करने के लिये फ़्रांस, इटली, ग्रेट ब्रिटेन को निमंत्रित किया है। फ़्रांस इस सम्मेलन में शामिल होने के पूर्व ही अमेरिका की ख़ुशामद करने लगा है। नीचे पेरिस के 'टेंप्स'-नामक नीम-सरकारी पत्र की यह टीका कितनी रोचक है—

"१९३१ के 'मोराटोरियम' (छूट) के बाद राष्ट्रपति हूवर की ज़िम्मेदारियाँ बहुत अधिक हैं......। उन्हें पहले हर्जाने की समस्या निबटाकर तब क़र्ज़ की समस्या को निबटाना चाहिए था। राष्ट्रपति रुज़वेल्ट, जिनका दल इस समय प्रतिनिधि-सभा और मंत्रणा-परिषद् दोनों में ही प्रधान बहुमत रखता है, यह अवश्य ही चाहेंगे कि उनका भावी शासन उनके पूर्व-वर्ती की भूलों के कारण संकट में न पड़े, और उनकी समूची नीति में हूवर और वर्तमान प्रतिनिधि-सभा की १५ दिसंबर तक की क़िस्त की अदायगी के लिये और मुहलत देने की अस्वीकृति की नीति के कारण अड़ंगा न लग जाय।

"चाहे कोई चाहे या न चाहे, अब तो अमेरिकन जनता के सामने क़र्ज़ की पुनरावृत्ति की समस्या उपस्थित है। क्योंकि इँगलैंड तथा अन्य राष्ट्रों ने यह साफ़ कह दिया है कि अभी तक जो समझौता बना रहा है, उसके आधार पर यह अंतिम बार क़िस्त पटाई जा रही है।

"जिस प्रकार वे शक्तियाँ कुछ समय तक अदायगी को टाल रखना चाहती थीं, उसी तरह वे इस विषय में दृढ़-मत हैं कि या तो पूरा क़र्ज़ा माफ़ कर दिया जाय, या उसे फिर नए सिरे से दुहराया जाय !"

× × ×

२. स्पेन में बलवे

स्पेन में इधर लगातार बलवे हो रहे हैं। कोई हड़ताल से प्रारंभ होता है, तो कोई लूट-पाट का रूप धारण कर लेता है, कोई सड़क पर दो की मार-पीट से बढ़ जाता है। पर सभी दंगे कुछ समय के लिये स्पेन की नवस्थापित प्रजातंत्रीय सरकार को काफ़ी परेशान करते हैं। नीचे हम पेरिस के सम्मानित पत्र 'टैम्प्स' की सम्मति में इन दंगों का कारण बतलाते हैं—

"कैटालोनिया में अराजकता के दंगों से कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि बहुत समय से ही यह बात साफ़ ज़ाहिर है कि स्पेन के क्रांतिकारी नवीन प्रजातंत्र के संघटन में हर प्रकार की बाधा खड़ी करने के लिये तैयार हैं। बार्सीलोना में (राजतंत्र के समर्थकों का) जो असफल दंगा हुआ, उसमें भी सभी प्रकार से बोल्शेविक-क्रांति की चालें चली गई थीं। पर क्रांतिकारी लोगों की धमकी से डरनेवाले, स्पष्ट मस्तिष्कवाले प्रधान मंत्री मैनुयेल अज़ाना नहीं हैं।"

स्पेन का स्वतंत्र मतवाला 'लिबरताद' पत्र लिखता है कि राजतंत्र के समर्थक स्वयं असफल होने के बाद अब दूसरे विद्रोहियों को उभाड़ रहे हैं। और, अंत में पत्र जो आशा प्रकट करता है, हम भी वही आशा प्रकट करते हैं—"विरोधी चाहे जो करें, पर प्रजातंत्र दृढ़ता के साथ स्थापित हो गया है।" प्रजातंत्री स्पेन चिरजीवी हो !

× × ×

३. राष्ट्रपति-पद का दंड

हृदय-रोग के विशेषज्ञ डॉ० हार्जो ब्रूक्स ने बड़े परिश्रम से, आँकड़े आदि द्वारा, यह सिद्ध किया है कि अमेरिका के राष्ट्रपति को इतना अधिक काम करना पड़ता है कि अपना पद ग्रहण करने के बाद वह ज़्यादा दिन तक नहीं जी पाता। राष्ट्रपति कूलिज अपना कार्य छोड़ने के चार वर्ष के भीतर ही ६० वर्ष की उम्र में मर गए हैं, और इस प्रकार अमेरिका में राष्ट्रपति हूवर को छोड़कर और कोई भी भूतपूर्व राष्ट्रपति जीवित नहीं है—भूतपूर्व छ राष्ट्रपतियों की विधवा स्त्रियाँ जीवित हैं। इसलिये यह प्रश्न जनता के ध्यान को अपनी ओर विशेष रूप से आकर्षित कर रहा है।

मेट्रोपोलिटन जान-बीमा-कंपनी के आँकड़े-विभाग के प्रधान डॉ० लूई आइ० डबलिन ने बहुत ही अधिक विचार के बाद यह राय प्रकट की है—

"वर्तमान समय का कोई भी राष्ट्रपति अपनी अनुमानित आयु का पूरा भाग नहीं भोग पाता। मैं यह समझता हूँ कि इसका कारण राष्ट्रपतियों के जीवन का परिश्रम है।

"पहले के राष्ट्रपतियों को इतना काम नहीं करना पड़ता था, जितना आजकल के राष्ट्रपतियों को। इसी वास्ते वे बहुत समय तक जीते थे। पर 'गृह-युद्ध' के बाद से जितने राष्ट्रपति हुए, वे इस विषय में बड़े अभागे थे।

"मेरे सामने जो नक़्शे हैं, उनसे यह पता चलता है कि 'गृह-युद्ध' के पहले राष्ट्रपतियों की उम्र मामूली नागरिकों की औसत से भी अधिक होती थी।

"तब से स्थिति बदल गई है। अब उसे कम-से-कम जितने दिन जीना चाहिए, उससे भी ६ वर्ष कम जीता है। यह बात उस समय और भी आश्चर्य-जनक मालूम होती है, जब हमको यह मालूम होता है कि १८६१ से लगातार अब लोगों की उम्र की अवधि बढ़ती जा रही है।"

बोस्टन के 'हेरल्ड' पत्र की राय में—"जो आज राष्ट्रपति हो जाता है, वह अपने जीवन के कई वर्ष भी देश को दे देता है।"

'जर्नल' पत्र की राय में—

"आशाओं से भरा, स्फूर्ति-युक्त और उदार भाव

लेकर एक आदमी राष्ट्रपति की गद्दी पर आता है, पर कुछ ही वर्ष बाद वह बूढ़ा, थका और निश्चेष्ट होकर अपने पद से अलग हो जाता है।"

इन्हीं सब बातों पर विचारकर लोगों की यह राय है कि क़ानूनी बाधा तो दूर की बात है, आयु का भी विचारकर किसी राष्ट्रपति को दुबारा अपने पद का उम्मेदवार नहीं होने देना चाहिए। क्योंकि न्यूयार्क के 'इग्ज़ामिनर' के शब्दों में—"राष्ट्रपति का बोझ अमानुषिक रूप से भारी है, और उसके बोझे से योग्यतम व्यक्ति की योग्यता भी नष्ट हो जाती है।"

× × ×

४. अमेरिका की सामाजिक दशा

राष्ट्रपति हूवर ने संयुक्त-राज्य अमेरिका की सामाजिक दशा की जाँच के लिये एक कमेटी डॉ० वेस्ले क्लेयर मिचेल की अधीनता में बनाई थी, जिसने अभी जनवरी-मास में, २ भागों में, १,५०० पृष्ठों की अपनी रिपोर्ट (Report of the committee on social trends) प्रकाशित की है। रिपोर्ट तैयार करने में लगभग चालीस लाख रुपया ख़र्च हुआ है। रिपोर्ट बहुत ही रोचक है। न्यूयार्क के 'टाइम्स' पत्र में इसका बहुत ही रोचक सारांश प्रकाशित हुआ है। इससे अमेरिका (संयुक्त-राज्य) की मौजूदा दशा का बहुत सुंदर ज्ञान हो जाता है—

"तीन महान् सामाजिक संघटनों में से दो आर्थिक और सरकारी संघटन बड़ी त्वरित गति से उन्नति करते जा रहे हैं। पर गिर्जाघर का, ऐतिहासिक, धार्मिक और पारिवारिक संघटनों का, सार्वजनिक मूल्य तो नहीं, पर सामाजिक महत्त्व घट गया है।

"१५ वर्ष से फ़सल की औसत पैदावार या कुल मिलाकर ३० वर्ष से फ़ी एकड़ की पैदावार में कोई वृद्धि नहीं हुई है, पर शताब्दी के प्रारंभ से लेकर अब तक खेतों की पैदावार ५० प्रतिशत अधिक हो गई है।

"महासमर के बाद से हड़तालों की संख्या ८० प्रतिशत घट गई है।

"अमेरिका के व्यापार-संघों के मेंबरों की संख्या १६२० में ५०,००,००० थी, पर १६३१ में घटकर ३३,००,००० हो गई। अमेरिकन इतिहास में यह पहला अवसर है कि व्यापारिक उन्नति के समय में भी संघों के मेंबर नहीं बढ़े।

"लक्षण तो ऐसे हैं कि कुछ समय पूर्व हमारे उद्योग-धंधों में अभ्युदय के समय भी बड़ी ग़रीबी छाई हुई थी, कुछ नगरों और ग्रामों में घोर दरिद्रता थी, जो अकस्मात् ही टूट पड़ी थी, पर स्थायी रूप से थी।

"यदि शीघ्र ही कोई नवीन सामाजिक आविष्कार नहीं किया जाता या संहारीय आविष्कारों को नहीं रोका जाता, तो बड़ी गहरी गड़बड़ ज़रूर पैदा होगी।"

अमेरिकन-जीवन के पुनः निर्माण की आवश्यकता अमेरिकन-पत्र 'हेरल्ड ट्रिब्यून' ने भी बतलाया है। उसके अनुसार—

"अमेरिकन-जीवन को पुनः नए साँचे में ढालनेवाली निम्न-लिखित बातें हैं—

(१) संघ-सरकार के हाथ में शासन का केंद्रित होते जाना।

(२) एक प्रकार की स्वीकृत निरंकुश शासन-प्रणाली 'डिक्टेटरशिप' का प्रकट होते जाना, 'जिसे कुछ लोगों ने पहले उदासीनता के साथ देखा था', पर अब उसकी पूरी छाप विशेष दूर नहीं है।

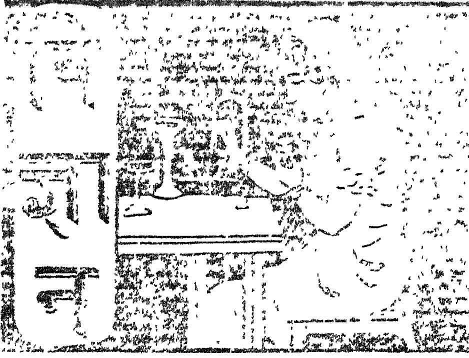
(३) यह भी संभव है कि १६४० में आबादी १२,२०,००,००० से बढ़कर १२,३०,००,००० पर स्थिर हो जाय, इस सदी के अंत तक १४,५०,००,००० से कम या अधिक न हो।

(४) कल-कारख़ाने बड़े शहरों से उठकर ऐसी जगह चले जायँ, जहाँ भूमि और मज़दूरी सस्ती और जीवन अधिक सरल हो।

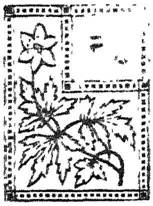
(५) सबसे ज़रूरी बात यह है कि जिन व्यक्तियों में बुरे लक्षण (आचार) हों, उन्हें बच्चा ही न पैदा करने दिया जाय।"

पाठक ज़रा इन बातों पर ग़ौर करें।

परिपूर्णानंद वर्मा



१. सबसे ऊँचा अस्पताल



यार्क नगर में हड्सन नदी के किनारे एक बाइस खंड की अट्टालिका निर्माण की गई है । यह अट्टालिका अस्पताल के काम में लाई जायगी । प्रत्येक तल्ले में रोगियों के व्यवहारोपयोगी सभी सामग्री—औषध, पथ्य और चिकित्सकादि—का सुप्रबंध है । अर्थात् इस बाइसतल्ली अट्टालिका का प्रत्येक तल्ला स्वाधीन और स्वतंत्र है । इसका निर्माण-कार्य अभी ,तक असमाप्त है । इस बृहत् भवन का निर्माण शेष हो जाने पर यह अनुमान किया जाता है कि संसार में सर्वापेक्षा बृहत् अस्पताल यही गिना जायगा ।

× × ×

२. हस्त-विहीन चित्रकार

कालिफ़ोर्निया में विलियम जोंस-नामक एक चित्रकार हैं । यह महाशय हस्त-विहीन हैं, पर अपने कृत्रिम हस्त द्वारा अच्छे अच्छे चित्र बनाकर अपूर्व सफलता प्राप्त कर रहे हैं । इनकी प्रतिभा और अध्यवसाय का उदाहरण अनुकरणीय है । कलाविद्गणों ने इनके सभी चित्रों तथा चित्रकारी की कला की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है ।

× × ×

३. चलता हुआ स्कूल

कनाडा के जिन स्थानों की आबादी बहुत थोड़ी है, वहाँ अभी तक किसी स्कूल की स्थापना नहीं हुई है । पर बालक-बालिकाओं को पढ़ाना-लिखाना बहुत ज़रूरी है, इसलिये प्रबंधकों ने उनके पढ़ने-लिखने की व्यवस्था रेलगाड़ी में की है । गाड़ी के भीतर बोर्ड, नक़्शा एवं अन्यान्य वस्तुएँ अधिक परिमाण में रक्खी रहती हैं । जिस-जिस भाग में रेल-लाइन गई है, उस-उस भाग में यह गाड़ी जाती है । प्रत्येक गाड़ी में शिक्षक रहते हैं । वे स्थानीय बालक-बालिकाओं को गाड़ी में ही पढ़ाते हैं । जब तक स्कूल-भवन निर्माण नहीं किए जाते, तबतक वहाँ के देश-वासियों को इसी प्रकार शिक्षा दी जायगी । इस गिरे भारत में यह बात स्वप्न-सी जान पड़ती है ।

× × ×

४. अस्त्र चलाने के समय संगीत

अमेरिका के किसी-किसी अस्पताल में चिकित्सकों ने चीर-फाड़ करने के समय रोगी को गीत सुनाने की व्यवस्था की है । कहते हैं, इससे रोगी को चीर-फाड़ की यंत्रणा बहुत कम अनुभव होती है । दूर के घर में ग्रामोफ़ोन आदि रखकर रोगी के मस्तक पर शब्द-वाहन यंत्र को विशेष रूप से संलग्न कर दिया जाता है । अस्त्र चलाने के समय संगीत की मधुर ध्वनि रोगी के कान में प्रवेश करता है, पर ख़ूबी यह कि चिकित्सक तथा उनके सहकारीगण उन शब्दों को नहीं सुन सकते । निदान वे निविष्ट मन से अस्त्र-व्यवहार करते हैं, और रोगी भी संगीत-

ध्वनि में इस प्रकार लीन हो जाता है कि साधारण यंत्र-संचालन की यंत्रणा उसे मालूम नहीं होती।

× × ×

५. दो पहिए की मोटर

अमेरिका में पुलिस-विभाग के लिये दो पहिए की एक अद्भुत मोटर तैयार की गई है। मोटर के साथ एक अन्य गाड़ी जुड़ी रहती है। ड्राइवर के सामने के भाग का स्थान बिलकुल सुरक्षित रहता है। साथ की गाड़ी भी ढँकी रहती है। यह ऐसे सुरक्षित रूप से तैयार की गई है कि चोर या डाकू किसी अस्त्र द्वारा चालक तथा निकटवर्ती आरोही पर सहसा आक्रमण नहीं कर सकते। निकट की गाड़ी में जो पुलिस-कर्मचारी गुप्त रूप से रहेंगे, वे अपने इच्छानुसार पिस्तौल अथवा और कोई अन्य अस्त्र बड़ी सुगमता से चला सकते हैं। सभ्यता और विज्ञान के साथ-साथ पाश्चात्य देश में चोर-डाकुओं की संख्या भी बढ़ती है, इसलिये इस श्रेणी की मोटर पुलिस-विभाग के लिये अत्यंत लाभदायक मालूम होती है।

× × ×

६. घंटों की खोज

कालिफ़ोर्निया के एक व्यक्ति ऐतिहासिक स्मृति-रूप में घंटों का संग्रह करते हैं। इन्हें इस संग्रह से बड़ा आनंद होता है। पर उनका उद्देश्य केवल आनंद लाभ करने का ही नहीं, वरन् जो महाशय ऐतिहासिक विषयों की खोज करते हैं, उन्हें लाभ पहुँचाने का भी है। उल्लिखित महोदय केवल घंटों का संग्रह करके ही चुप नहीं हो गए, प्रत्युत उन्होंने उन घंटों की जन्म-तिथि एवं उनकी अब तक की कहानी भी संग्रह की है। संगृहीत घंटों को एक बड़ी गुंबजाकृति अट्टालिका में सजाकर रक्खा गया है। दर्शकगण उन्हें देखकर तथा उनकी कहानियों को सुनकर बड़े प्रसन्न होते हैं।

पांडेय देवेंद्रनारायणसिंह



१. काव्य

प्रिय-मिलन—लेखक, श्रीनंदकिशोर झा ; प्रकाशक, पं० नंदकिशोर झा 'किशोर' काव्यतीर्थ ; ग्राम श्रीनगर, पो० बेतिया (चंपारन) ; मूल्य ।=)

आजकल कविता का प्रवाह बड़े ज़ोरों पर है। जो दो शब्द भी जोड़ना जानता है, वह तुरंत कविरत्न बन बैठता है। मेरे विचार से कविता-ऐसे गंभीर विषय पर क़लम उठाना साधारण मनुष्य का काम नहीं है। कवि बनाए नहीं जाते, स्वयं ईश्वरीय प्रेरणा से आविर्भूत होते हैं। और, साथ ही यह भी आवश्यक नहीं है कि कवि को छंद-शास्त्र का पंडित होना ही चाहिए। किसी प्राचीन कवि ने कहा भी है—"प्रकृति बिसेसो कब्बों आहो साहो।" अस्तु।

प्रस्तुत पुस्तक खंड काव्य है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध में स्थित कथाओं के आधार पर लिखी गई है। लेखक का सर्व-प्रथम प्रयास होने के कारण यत्र-तत्र कुछ त्रुटियाँ भी रह गई हैं। आशा है, दूसरे संस्करण में इन त्रुटियों का अवश्य सुधार हो जायगा।

'ग'

× × ×

२. धार्मिक

राष्ट्र-धर्म—लेखक, श्रीसत्यदेव विद्यालंकार ; प्रकाशक, राष्ट्रधर्म-ग्रंथमाला-कार्यालय, ९ मुक्खलाल जौहरी लेन, कलकत्ता ; पृष्ठ-संख्या १२६ ; मूल्य ॥) आने ; छपाई साधारण।

इस पुस्तक में धर्मों के तात्त्विक या शास्त्रीय रूप पर विवेचना नहीं की गई है, वरन् उनके बाह्य रूप और अनुष्ठान पर ही विचार किया गया है। लेखक यद्यपि यह स्वीकार करता है कि "भिन्न-भिन्न धर्मों के संबंध में हमारा ज्ञान 'नहीं' के समान है," तथापि उसके मन में "जिस दृष्टिकोण या विचार-सरणि को इस पुस्तक में स्पष्ट करने का यत्न किया गया है, उसके लिये धर्मों के तात्त्विक या शास्त्रीय ज्ञान की उतनी आवश्यकता भी नहीं थी, जितनी बाह्य-अनुष्ठान के ज्ञान की।"

विषय-प्रवेश के अतिरिक्त इस पुस्तक में ९ परिच्छेद हैं—पहले में 'धर्म क्या है', इस पर विचार किया गया है ; दूसरे में 'क्या धर्मों का संशोधन संभव है ?' इस विषय की चर्चा है ; 'उपरांत तो क्या किया जाय', 'कुछ आक्षेपों पर विचार,' 'राष्ट्रवाद या राष्ट्र-धर्म' आदि और प्रकरण हैं। लेखक ने यह प्रतिपादित करने की चेष्टा की है कि धर्म ही अनर्थ की जड़ है, और जो धार्मिक कहे जाते हैं, वे ही वास्तव में नास्तिक हैं। आपका कहना है कि "नास्तिक स्पष्ट अर्थों में उसको कहना चाहिए, जिसको अपने पर कुछ भी विश्वास नहीं है, अथवा जो आत्म-विश्वास खो चुका है।" आगे चलकर आप लिखते

है—"इस नास्तिकता का प्रधान कारण हमारा धर्म है। इस धर्म के कारण हमारा अपने पर किंचित् भी विश्वास नहीं रहा। एक साधारण-से पत्र की दस पंक्तियों में पाँच बार भगवान् का नाम लिया जाता है। बात-बात में भगवान् की दुहाई दी जाती है......।"

लेखक के कई विचार एकदम क्रांतिकारी हैं। हम यह स्वीकार करते हैं कि धर्म के नाम पर बहुत कुछ पाखंड और आडंबर की सृष्टि हुई है, परंतु हम यह मानने को तैयार नहीं कि धार्मिक होना ही नास्तिकता है। लेखक ने जो कुछ लिखा है, उसमें यत्र-तत्र अतिशयोक्तियों की भरमार है। राष्ट्रवाद में धर्म के लिये स्थान है या नहीं, यह बड़ा ही विवाद-पूर्ण विषय है। लेखक ने राष्ट्र-धर्म पर जो कुछ लिखा है, वह पर्याप्त नहीं। राष्ट्र और राष्ट्रीयता के आदरणीय भावों द्वारा प्रेरित हो लेखक ने धर्म पर जो कुठाराघात किया है, वह वांछित नहीं। धर्म का रूप कुछ भी हो, उसका होना आवश्यक है। धर्म के बिना, बेकन के शब्दों में, मनुष्य हृदय-रहित पशु है। "धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।" से भी यही ध्वनि निकलती है। 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव' के स्थान में 'राष्ट्रदेवो भव' का आदर्श सुंदर भले ही हो, परंतु जिस विधि से लेखक महोदय इस भावना का प्रचार करना चाहते हैं, वह आक्षेप-रहित नहीं।

जीवनचंद्र जोशी

× × ×

कल्याणकारी 'कल्याण' के सुयोग्य संपादक श्रीमान् हनुमानप्रसादजी पोद्दार की प्रेरणा से गीता-प्रेस, गोरखपुर ने कुछ पुस्तकें प्रेषित करके मेरा भी कल्याण किया है।

इन दिनों हिंदी-संसार स्वार्थ-साधक, राजनीतिक और कामोद्दीपक पुस्तकों का अधिक अनुरागी है। तन्निमित्त प्रकाशकों को भी 'नग्न साहित्य' तक का सहारा लेना पड़ता है। परंतु गीता-प्रेस पारमार्थिक या पारलौकिक पुस्तकें प्रकाशित करके ही परम संतुष्ट है। ईश्वरीय सत्ता का प्रत्यक्ष प्रमाण देखिए कि गीता-प्रेम के संचालकों ने सांसारिक व्यवसायों से विरक्ति करके पारलौकिक 'कल्याण' और 'कल्याणकारी' पुस्तकों के सहारे भी अपनी बहुत उन्नति की है।

काग़ज़, छपाई, स्वच्छता और सस्तेपन में तो यह प्रेस आदर्श है ही, किंतु शुद्धता के विषय में भी सर्वोत्कृष्ट है—

(१) 'शांकर भाष्य गीता' इस प्रेस ने अभी प्रकाशित की है। शंकराचार्य साक्षात् शंकर के अवतार थे। उनके भाष्य का परिचय प्रकट करना प्रकाशमान सूर्य को उँगली से बताना है। इस विषय में यही कहा जा सकता है कि अन्य टीकाओं की अपेक्षा शांकर भाष्य सर्वोत्कृष्ट है। मूल-श्लोक के नीचे वामार्ध भाग में भाष्य और दक्षिणार्ध भाग में भाषा की यथार्थ नियुक्ति ने मुद्रण-कला को मुकुलित कर दिया है। इससे तारतम्य देखने में आलोचकों को अड़चन नहीं होती, बल्कि संस्कृत सीखनेवालों को अपना अभ्यास बढ़ाने में सुविधा मिलती है। यह अवश्य ही सुवर्ण में सुगंधि है। लगभग छ सौ पृष्ठों की इतनी भारी पुस्तक का मूल्य १०) होता, तो ज़्यादा नहीं था, किंतु २॥) मात्र में मिलती है।

(२) 'श्रुतिरत्नावली' वेदों और उपनिषदों के चुने हुए मंत्रों का संग्रह है। यों तो वेद-मंत्र रत्न हैं ही, परंतु उक्त रत्नावली में आवश्यक रत्नों का विशद संकलन किया गया है। मेधावी मनुष्यों को इन रत्नों के धारण करने से सुख, सौभाग्य और मनस्तुष्टि मिलेगी। यह संग्रह संसारत्यागी, वेदज्ञ, स्वामी भोले बाबा का किया हुआ है। बाएँ पृष्ठ में मूल-मंत्र और दक्षिण में भाषानुवाद देकर अनुरागशील दर्शकों को दोनो ओर दृष्टि देने में सुविधा और वेदार्थ सीखनेवालों के लिये सुगमता कर दी है। वस्तु बड़ी आवश्यक है; मूल्य ॥) है।

(३) 'एकनाथ-चरित्र'—सहनशील साधुओं के लिये सोना और कसौटी दोनो काम देनेवाले हैं। लगभग पाँच सौ वर्ष पहले पैठण में एकनाथ साधु

हुए थे। उन दिनों पैठण 'दक्षिण काशी' कहलाती थी। उसमें चार वेद, छ शास्त्र, अठारह पुराण और अन्यान्य सभी शास्त्रों का अध्ययन होता था। वह शालिवाहन की राजधानी थी। अब उसमें कुछ भी नहीं, तो भी एकनाथ की नाम-स्मृति बनी हुई है। उनके चरित्र-पाठ से बड़ी उत्तम शिक्षा मिलती है। ईश्वर में सहज ही मन लगता है। थोड़े-से प्रयास से उद्धार होने के इसमें अनेकों उद्धरण हैं। 'कृष्ण की निंदा' पढ़ने के लिये सक्षोभ मन चलता है, परंतु पढ़ते ही हँसी आ जाती और प्रसन्नता मिल जाती है। मन को भगवान् में लीन करने के लिये इसमें ऐसे ही तरीक़ों से काम लिया गया है। मूल्य ॥) है।

(४) 'रामकृष्ण परमहंस' से तो अधिकांश पाठक पहले ही से परिचित होंगे। इनके जीवन-चरित्र से हिंदी-संसार ही नहीं, अन्य भाषा-भाषी भी बहुत प्रेम रखते हैं। उक्त पुस्तक में वह चरित्र अधिक पवित्रता से प्रकाशित हुआ है। विशेषकर उनके उपदेश बड़े ही उपादेय हैं। लौकिक व्यवहार की बातों और और वस्तुओं के विषय में गुण-दोषों को बताकर सैकड़ों उपदेश दिए हैं। गूढ़ाशय-गर्भित बातों के समझाने में ऐसे तरीक़ों से बढ़कर अन्य उपाय अति शीघ्र असर नहीं करते। मूल्य ।=) है। और सबका पता—

गीता-प्रेस, गोरखपुर है।

शुभैषी—

हनुमान शर्मा



इस स्तंभ में हम हिंदी-प्रेमियों की जानकारी और सुभीते के लिये प्रतिमास नई-नई पुस्तकों के नाम देते हैं। पिछले महीने में निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—

(१) 'अलकापुरी' (उपन्यास)—लेखक, राजा चक्रधरसिंह ; मूल्य १॥)

(२) 'गोकुलदास' (काव्य)—लेखक, मुंशी अजमेरी ; मूल्य १)

(३) 'शार्मी-प्रह्लाद' (नाटक)—लेखक, कुल-भास्कर वर्मा ; मूल्य ।≡)

(४) 'अनमोल मोती'—लेखक, बा० किशनचंद्र ; मूल्य ॥=)

(५) 'प्रेम-पत्र'—लेखक, श्रीपद्मकांत मालवीय ; मूल्य १॥)

(६) 'हिंदू-नारी' (उपन्यास)—लेखक, बंकिमचंद्र चटरजी ; मूल्य १)

(७) 'संघर्ष' (उपन्यास)—लेखक, प्राणवल्लभ द्विवेदी ; मूल्य २)

(८) 'साहित्य की उपक्रमणिका' (साहित्य)—लेखक, पं० किशोरीदास बाजपेयी ; मूल्य ॥≡)

(९) 'आत्मशुद्धि'—लेखक, महात्मा गांधी ; मूल्य ।=)

(१०) 'प्याला'—लेखक, श्रीपद्मकांत मालवीय ; मूल्य १)

(११) 'उलटी खोपड़ी' (बालोपयोगी)—लेखक, ठा० केशवकुमार ठाकुर ; मूल्य ।-)

(१२) 'प्राणायाम-रहस्य'—लेखक, श्रीरामरत्नाचार्य ; मूल्य १॥)

(१३) 'भोजन और स्वास्थ्य पर महात्मा गांधी' (स्वास्थ्य)—लेखक, महात्मा गांधी ; मूल्य ।||)

(१४) 'अंजलि' (काव्य)—लेखक, श्रीरामकुमार वर्मा एम्० ए० ; मूल्य १)

(१५) 'देखो और हँसो' (बालोपयोगी)—लेखक, श्रीबैजनाथ केडिया ; मूल्य ।)

(१६) 'कवियों की ठठोली' (हास्य)—लेखक, श्रीरमाकांत त्रिपाठी ; मूल्य १)

(१७) 'सुकवि-कौमुदी' (जीवनी)—लेखक, श्रीपं० रामनरेश त्रिपाठी ; मूल्य ॥)

(१८) 'जवानी की भूल' (उपन्यास)—लेखक, श्रीयमुनादास मेहरा ; मूल्य ।॥)

(१९) 'हमारे बच्चे' (शिशु-पालन)—लेखक, श्रीमहेंद्रनाथ पांडेय ; मूल्य १)

(२०) 'महादेव गोविंद रानाडे' (जीवनी)—लेखक, श्रीप्रबोधचंद्र वैद्य ; मूल्य ।)



१. पुस्तकालय, पुस्तक-पाठ और उसका महत्त्व



न-प्राप्ति का एकमात्र उपाय अध्ययन है। ज्ञान के विना मुक्ति नहीं होती, चाहे वह आवश्यकता-पूर्तिवाली मुक्ति हो, चाहे सांसारिक बंधनों से छुटकारा पानेवाली। हमारी कमज़ोरी का एक सबसे ज़बरदस्त कारण हमारा अज्ञान है। देश को अर्थ से समर्थ करने के लिये अर्थ की ही ज़रूरत है, जो पुस्तकों में ज्ञान के भीतर से प्राप्त होगा।

हमारा विचार है, यदि देश में शिक्षा का विस्तार हो, और ज़िले-ज़िले, क़स्बे-क़स्बे और नगर-नगर साधारण-जनों का असाधारण हित करनेवाले पुस्तकालय खोल दिए जायँ, वहाँ-वहाँ के नई ज्योति से जगमग, नए ख़ून से स्फूर्त, नवीन विचारों के आश्रय, त्यागी स्वदेश-हितैषी अधीत युवक अशिक्षितों के चिर-हित का विचार कर अपना थोड़ा-सा भी समय उनके शिक्षण के लिये दे सकें, स्वदेश-विदेश और स्वजाति-विजातियों के प्राचीन और नवीन ज्ञान-धारा में उन्हें नहलाकर स्निग्ध-मस्तिष्क बना सकें, तो वे अपने फ़ायदेवाले, चिर-मलिन मानवीय कृत्यों को नए जीवन से आप चपल, वर्तमान सभ्यता के अनुरूप कर ले सकते हैं, और साहित्य, समाज, राजनीति तथा धर्म आदि जटिल विषयों की न सुलझती हुई गुत्थियों को अपने ही हाथ खोलकर दिखा दे सकते हैं। जो अज्ञानवाला आवरण कुहरे की तरह लोगों के जीवनाकाश पर छाया हुआ है, उसे ही हटाने की ज़रूरत है, ज्ञान का प्रकाश फिर स्वतः उन पर पड़ेगा, और इसके लिये जगह-जगह पुस्तकालय खोलना अत्यंत आवश्यक, धर्म से भी बढ़कर, ईश्वर से भी मान्य, प्राणों से भी निकटतर संबद्ध विषय है।

आज तक जितने भी भिन्न-भिन्न उपायों से संसार के लोग प्रभावित किए जा चुके हैं, वे सब-के-सब उपाय किसी-न-किसी प्रकार ज्ञान से ही युक्त तथा उक्त हैं। समस्त संसार पर ज्ञान का नियंत्रण है, वह अध्यात्मवाद द्वारा हो या जड़वाद द्वारा, साहित्य के भीतर से हो या विज्ञान के भीतर से। सभ्य जातियों का प्राचीन इतिहास जहाँ तक उपलब्ध हो सका है, उसके दर्शन से यह निर्विवाद निश्चय मस्तिष्क में घर कर लेता है कि ज्ञान ही सभ्यता का मुख्य आश्रय रहा है, और सभी जातियाँ देश-देशांतरों की ज्ञान-राशि से भरी पुस्तकों के संकलन, संरक्षण और पठन-पाठन में दत्तचित्त थीं। भिन्न-भिन्न सभ्यताओं का मिश्रण समकालीन सभी समुन्नत जातियों में जो प्राप्त होता है, उसका यही कारण है कि सभी जातियाँ अपने समय की समृद्ध जातियों के

ज्ञान और कला-कौशल से सविशेष परिचय रखती थीं। इतिहास यहाँ तक साक्ष्य देता है कि विजित जाति की पुस्तकें भी जेतागण अपने देश ले जाते थे। मिस्र की हज़ारों पुस्तकें इसी प्रकार फ़ारस गई थीं। नेपोलियन देश को जीतकर वहाँ की सभ्यता के उपकरण अर्थ लेने से पहले लिया करता था।

बड़े-बड़े मनीषियों का, सृष्टि की पहली पहचान-वाले स्वप्न-समय से लेकर आज तक, हज़ारों वर्षों का सम्मिलित परिश्रम, मनुष्य-बुद्धि का परिपाक पुस्तकों में एकत्र मिलता है। जो काम एक ज़िंदगी तमाम कर देने पर भी कदाचित् मनुष्य नहीं कर सकता, वह यदि पहले के किसी विद्वान् द्वारा किया जा चुका है, चार ही दिन में पुस्तकों के भीतर से प्राप्त कर ले सकता है। नई-नई रचनाओं के लिये भी प्राचीन रचनाएँ देख लेना आवश्यक है, जो पुस्तकों में संगृहीत हैं। साहित्य, दर्शन, समाज, राजनीति, विज्ञान, गणित, चिकित्सा, चित्रकारी, वास्तु-निर्माण, संगीत, वाद्य, परिच्छद, राज्य-परिचालन, युद्ध-विद्या, संगठन आदि-आदि विषय पहले कैसे थे, अब कैसे हैं, प्राचीनतम के साथ नवीनतम का कैसे बदलते-बदलते यह भेद हुआ, फिर भी कैसा साम्य है, भाषा की एक ही प्रतिमा किस प्रकार भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न वेश बदलती हुई अब भी अपनी पहली ही पहचानवाली चितवन से देख रही है, यह सब पुस्तकों के पाठ से भले प्रकार ज्ञात हो सकता है। यह सब समझ लेने पर मनुष्यों के प्रति मनुष्यों का यह भेद, यह दासता, यह आतंक, यह विरूपता नहीं रह जाती। जीवन सुगम और सुखमय बन जाता है।

× × ×

२. फ़िल्म-व्यवसाय और सरकार

फ़िल्मों के व्यवसाय में हमारे देश ने अच्छी उन्नति की है। १५-२० वर्षों के भीतर जो सफलता फ़िल्मों के अभिभावकों को प्राप्त हुई, वह दूसरे धंधों के लिये अनुकरणीय है, परंतु अब यह डर है कि कहीं यह उदीयमान नक्षत्र भी अकाल ही अस्तप्राय न हो जाय। विगत वर्षों में सरकार ने जिस प्रकार धीरे-धीरे फ़िल्म तथा तत्संबंधी वस्तुओं पर आयात-कर की वृद्धि की है, उस पर हम सुधा के पिछले विशेषांक में विचार कर चुके हैं। फ़िल्म-व्यवसायियों का एक डेप्युटेशन भारत-सरकार के कामर्स मेंबर से पिछले नवंबर में मिला था, और उसने यह विज्ञप्ति की थी कि सरकार फ़िल्मों पर कर-वृद्धि न करे, और जहाँ तक संभव हो, फ़िल्म-निर्माताओं तथा व्यवसायियों को सहायता दे। डेप्युटेशन का यह भी कहना था कि किसी कारण या कारणों से यदि सरकार पूरी-पूरी सहायता न भी दे सके, तो कम-से-कम फ़िल्म-संबंधी रॉ मेटीरियल पर से आयात-कर तो उठा ही ले। कामर्स मेंबर ने डेप्युटेशन की बातों पर ध्यान देने का वचन दिया था। यह देख बहुतों को यह आशा हो चली थी कि संभवतः सरकार इस वर्ष से आयात-कर उठा देगी। खेद है, सरकार ने इस विषय में वह तत्परता नहीं दिखाई है, जो अभीप्सित है।

हाल में इस संबंध में एसेंबली में जो बहस हुई है, उसमें भी कुछ महत्त्व-पूर्ण बातें प्रकट नहीं हुईं। श्रीलालचंद नवलराय, श्रीकावसजी जहाँगीर आदि के प्रश्नों के उत्तर में सरकार की ओर से सर फ़्रैंक नायस ने केवल इस आश्वासन की पुनरुक्ति की कि सरकार फ़िल्म-व्यवसाय के उन्नति की यथासंभव चेष्टा करेगी। हमें आश्चर्य है कि सरकार आयात-कर के उठाने में विलंब क्यों कर रही है। विशेषज्ञों का कथन है कि आयात-कर के उठा देने से सरकार को लगभग २ लाख रुपयों की क्षति होगी। पर साथ ही वे यह भी कहते हैं कि इस क्षति की पूर्ति दूसरी भाँति बड़ी सरलता से हो सकती है। अतः यदि सरकार चाहे, तो बड़ी आसानी से आयात-कर उठा सकती है।

हम सरकार से अनुरोध करते हैं कि वह फ़िल्म-व्यवसाय को पूरी सहायता देने में विलंब न करे। विलंब होने से बहुत संभव है, फ़िल्म-व्यवसाय को

बड़ी चति पहुँचे। जितनी शीघ्रता से आयात-कर उठा दिया जायगा, उतना ही लाभ होगा। हमारा पूरा विश्वास है कि समुचित सहायता मिलने पर भारतीय फ़िल्म-व्यवसाय ख़ूब चमक उठेगा, और अभिभावकों को भली-भली फ़िल्में तैयार करने में बड़ी सुगमता होगी। देखें, सरकार फ़िल्म-व्यवसायियों की विज्ञप्ति कब तक स्वीकृत करती है।

× × ×

३. चेकों पर टिकट

हाल में बड़ी व्यवस्थापिका सभा में जो बजट पर बहस हुई है, उससे यह स्पष्ट है कि सर जार्ज शूस्टर के आर्थिक विधान से सभी असंतुष्ट हैं। अर्थ-सचिव का कहना है कि जुलाई, सन् ३३ से चेकों पर फिर टिकट लगाने आवश्यक होंगे। पहले चेकों पर किसी प्रकार के टिकट लगाने की आवश्यकता नहीं थी, बीच में टिकटों का लगाना अनिवार्य कर दिया गया था, फिर कुछ काल के उपरांत चेकों पर टिकट लगाना अनावश्यक क़रार दिया गया था, आजकल चेकों में टिकट नहीं लगाए जाते। इस –) आने की बचत के कारण बहुत-से मनुष्यों ने बैंकों में अपना हिसाब खोल रक्खा था। सरकार का भी पहले यह विश्वास था कि टिकटों की अड़चन के न रहने से मनुष्य बैंकों के साथ अधिक व्यवहार करेंगे। हम भी समझते हैं कि टिकट लगाने का झंझट न होने से बहुत-से मनुष्यों ने चेकों से लाभ उठाया है, पर अर्थ-सचिव सर जार्ज शूस्टर का विचार है कि टिकटों की पख के न रहने से उतने मनुष्यों ने लाभ नहीं उठाया, जितनों की आशा थी। अतः आपने फिर टिकट लगाने की योजना की है। अर्थ-सचिव की इस योजना के विरुद्ध देश के सभी व्यापारी-मंडलों ने आवाज़ उठाई है। उनका कहना है कि आजकल व्यापार की दशा बहुत गिरी हुई है, अतः ऐसी कोई भी काररवाई नहीं होनी चाहिए, जिसके कारण व्यापारियों को चति पहुँचे। उनका यह भी मंतव्य है कि चेकों पर टिकट लगाने से उनको तो हानि पहुँचेगी ही, साथ ही सरकार को भी कोई विशेष लाभ न होगा, सरकार का अंदाज़ है कि इस प्रकार टिकट लगाने से लगभग ७ लाख रुपयों की प्राप्ति होगी। व्यापारी-मंडलों का कहना है कि व्यवसाय के इस दुर्गति-काल में उन पर इस प्रकार प्रहार नहीं होना चाहिए। क्या सरकार अपने विचारों में परिवर्तन कर चेकों को टिकटों से मुक्त ही रक्खेगी?

× × ×

४. अफ़ग़ानिस्तान की स्थिति

इधर कई दिनों से यह सुनने में आ रहा है कि अफ़ग़ानिस्तान में फिर कुछ अशांति के लक्षण प्रकट हो रहे हैं। कुछ ही महीनों पहले वहाँ के एक प्रमुख सरदार नबीख़ाँ को इसीलिये प्राण-दंड दिया गया था कि उसने वर्तमान अफ़ग़ान-सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र रचने का उपक्रम किया था; फिर ख़बर आई थी कि विद्रोह शांत हो गया है। अब फिर कहा जाता है कि वहाँ के कुछ मनुष्य अराजकता फैलाने पर कटिबद्ध हैं। सुनते हैं, आजकल इस प्रकार के भावों को फैलाने में एक फ़क़ीर का बड़ा हाथ है। इस फ़क़ीर के बारे में ठीक-ठीक कुछ भी ज्ञात नहीं। सुना जाता है, इस फ़क़ीर को अफ़ग़ानी लवनाई फ़क़ीर कहते हैं। इसे पकड़ने के लिये अफ़ग़ान-सरकार भरसक प्रयत्न कर रही है, और ब्रिटिश गवर्नमेंट भी इस कार्य में अफ़ग़ान-सरकार की सहायता कर रही है। हाल में हमारी सरकार ने ख़ोस्त से लेकर वज़ीरिस्तान की सरहद तक सेना का एक ऐसा घेरा डाल दिया है, जिसको भेद कर पार होना बड़ा कठिन है, परंतु इतनी तैयारियाँ किए जाने पर भी अभी तक वह रहस्य-पूर्ण लवनाई फ़क़ीर अपने को छिपाए हुए है—पकड़ा नहीं जा सका।

अफ़ग़ानिस्तान में, अमीर हबीबुल्ला की मृत्यु के उपरांत, वास्तविक शांति नहीं हो पाई है। विगत १० वर्षों में वहाँ ६-७ बार अशांति की लहरें उठ चुकी हैं, और एक के उपरांत दूसरा अमीर तख़्त पर बैठा है। अमानुल्ला, इनायतुल्ला, अमीर ख़ान, बच्चा-

सक्का, मुहम्मदज़ाँ, नादिरख़ाँ—सभी अफ़ग़ानिस्तान के सिंहासन के लिये लड़े हैं, और इन सबों ने अपने-अपने ढंग से शासन-व्यवस्था की है। किसी के समय में सुधारकों ने ज़ोर पकड़ा है, तो किसी के काल में अनुदार-दलवालों ने; कभी अमानुल्ला का रोब रहा, तो कभी बच्चासक़्क़ा का दबदबा। तात्पर्य यह कि सबने अपनी-अपनी चीज़ की, और प्रजा चैन से न रह सकी।

सुनते हैं, वर्तमान अमीर नादिरख़ाँ बड़े ही नीति-कुशल, युद्ध-विद्या-विशारद एवं न्यायपरायण हैं, और सदा इस चेष्टा में रहते हैं कि अफ़ग़ानिस्तान की श्री-वृद्धि हो। आपने इधर कुछ सुधार किए हैं, जिनमें मुख्य हैं पश्तो को कोर्ट-लैंग्वेज या राज-भाषा बनाना (आज तक अफ़ग़ानिस्तान की कोर्ट-लैंग्वेज फ़ारसी थी), रेल, तार आदि की व्यवस्था, बंदूक़ और बारूद आदि के कारख़ानों की स्थापना, क़ानूनों की पुनर्व्यवस्था आदि-आदि।

सुधारों की योजना अमीर अमानुल्ला ने भी की थी, परंतु उन्होंने अपने सुधारों को इतनी शीघ्रता के साथ कार्य-रूप में परिणत कर दिया था कि अफ़ग़ानी भड़क उठे थे, और इसी कारण उन्हें अपना आसन छोड़ना पड़ा था। नादिरख़ाँ ने अमानुल्ला के निर्वासन से नसीहत ली है, और अपने सुधारों को धीरे-धीरे बहुत सोच-समझकर व्यवहार में ला रहे हैं। ऐसी स्थिति में भी उनके विरुद्ध चक्र क्यों चल रहा है, यह समझ में नहीं आता। कुछ मनुष्यों का विचार है कि इस षड्यंत्र में अमीर अमानुल्ला का हाथ है; कुछ मनुष्य इस विद्रोह में रूस की साज़िश समझते हैं; कुछ का कहना है कि अफ़ग़ानों का स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि क्षण-मात्र में मरने-मारने को तत्पर हो जाते और व्यक्तिगत झगड़ों को सांप्रदायिक या जातिगत बनाने में पशोपेश भी नहीं लगाते हैं। आधुनिक अशांति के मूल में वास्तविक तथ्य क्या है, यह जानना बड़ा ही कठिन है। जो भी हो, यह निश्चित है कि यदि लबनाई फ़क़ीर पकड़ा न गया, और यदि अफ़ग़ानों के विभिन्न लश्करों ने उसकी सहायता की, तो अफ़ग़ानिस्तान की परिस्थिति एक बार फिर विकट हो जायगी।

× × ×

५. स्वदेशी बीमा-कंपनी

देश की आर्थिक दशा के सुधार में उद्योग-धंधों का विशेष हाथ है। उद्योग-धंधों के सिंचन और जीवन के लिये पूँजी भी आवश्यक वस्तु है। बीमा-कंपनियाँ विशेष हद तक इसमें सहायक होती हैं। राष्ट्र-भाषा हिंदी में अपना प्रायः सारा कार्य करनेवाली कोई भी बीमा-कंपनी नहीं थी। हर्ष की बात है, आगरे के कुछ देश-प्रेमी सज्जनों ने इस अभाव की पूर्ति की है। स्वदेशी बीमा-कंपनी लिमिटेड, आगरा उन्हीं के सतत परिश्रम का फल है। कंपनी के जो अंक हमारे सम्मुख हैं, उनसे पता चलता है, कंपनी ने अपने जीवन के अल्प समय में ही आशातीत उन्नति की है। बेकारी, व्यापार की मंदी, राजनीतिक अशांति आदि बाधाओं के रहते हुए भी कंपनी ने बहुत अच्छी सफलता प्राप्त की है। प्रतिवर्ष देश से एक अच्छी रक़म विदेशी कंपनियाँ खींच लेती हैं। सिर्फ़ युक्तप्रांत से ही हर साल इस मद में ६० लाख रुपया बाहर चला जाता है। इस धन को रोक लेना भी कंपनी के सदुद्देश्यों में से एक है। आशा है, देशवासी उक्त कंपनी की ओर आकृष्ट होंगे। केवल हिंदी-भाषा जाननेवालों को भी विशेष सुविधा है। इस लाभदायक आयोजन के लिये कंपनी के बोर्ड ऑफ़् डाइरेक्टर्स के चेयरमैन बाबू रामेश्वरनाथजी टंडन बी० एस्-सी० तथा मैनेजिंग डाइरेक्टर बाबू श्रीचंदजी डौनेरिया आदि सज्जन धन्यवाद के पात्र हैं।

× × ×

६. चीन और जापान

चीन और जापान में फिर लड़ाई छिड़ गई है। अंतर्राष्ट्रीय संघ के मना करने पर भी जापान ने यह श्रेयस्कर समझा है कि वह चीन पर हमला कर डाले। यह निर्विवाद है कि जापान ने चीन पर चढ़ाई

कर संसार को यह व्यक्त कर दिया है कि सशक्त राष्ट्र स्वार्थ के वशीभूत हो कहाँ तक उपद्रव कर सकते हैं। जापान के इस कृत्य पर यद्यपि सभी अन्य राष्ट्रों की यह सम्मति है कि यह अन्याय-पूर्ण है, तथापि जब तक सभी राष्ट्र जापान पर समुचित दबाव नहीं डालते, यह संभव नहीं ज्ञात होता कि जापान चीन से अपना हाथ खींच लेगा। जापान पर दबाव डालने के लिये यह आवश्यक है कि सभी राष्ट्र मिलकर उससे कहें कि वह युद्ध बंद करे। यदि वह इस घोषणा पर भी चीन से अपना हाथ न खींचे, तो उसे नसीहत देने के लिये उसके ऊपर चढ़ाई कर दें। यह कभी संभव नहीं कि जापान संसार की शक्तियों से अकेला ही युद्ध करने पर तत्पर हो जायगा। अभी तक जापान के प्रति सम्मिलित राष्ट्रों ने कुछ भी ऐसी कारवाई नहीं की है, जिससे जापान डर जाय। जापान जानता है, सुदूर चीन और मंचूरिया के प्रश्न में राष्ट्रीय संघ को इतनी दिलचस्पी नहीं, जितनी योरपीय छोटे-छोटे प्रश्नों में। इसीलिये वह लीग ऑफ् नेशंस की अवहेलना करता है, इसीलिये वह लीग से अपना संबंध-विच्छेद कर सकता है।

जापान चीन में मंचूरिया पर ही अधिकार करने से संतुष्ट नहीं। ऐसा ज्ञात होता है कि वह चीन की जातीय या राष्ट्रीय शक्ति को भंग कर वहाँ के विभिन्न प्रांतों को स्वतंत्र बनाने की अभिलाषा रखता है। ये प्रांत कहने को तो स्वतंत्र होंगे। पर इनकी सारी नीति जापान के अनुकूल होगी। मंचूरिया तो स्वतंत्र किया ही जा चुका है। अब सुनते हैं, 'कारहर'-प्रदेश भी शीघ्र ही अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करनेवाला है। ('कारहर'-प्रांत जेहोल-नगर के पश्चिम में है) 'कारहर' के उपरांत किस प्रांत की बारी आवेगी, यह नहीं कहा जा सकता।

प्रांतों को उभाड़ने के अतिरिक्त जापान चीनी जनरलों में भी मतभेद कराने की चेष्टा में है। अभी पिछले दिनों सुनने में आया था कि कई हज़ार सिपाही विद्रोही हो जापानियों से जा मिले हैं।

चीन की स्थिति इस समय वास्तव में दयनीय है। इधर तो जापान-सा प्रबल शत्रु उस पर चढ़ आया है, उधर उसके नेताओं और जनरलों में ठीक-ठीक पट नहीं रही है। इसके अतिरिक्त उसके पास युद्ध की सामग्री भी पर्याप्त नहीं; हवाई जहाज़ों का तो सर्वथा अभाव है। धन भी अभी इतना एकत्रित नहीं हो सका है, जिसकी सहायता से युद्ध की सामग्री शीघ्र ख़रीदी जा सके। ऐसी स्थिति में भी चीनियों का यह कहना कि जब तक उनका एक बच्चा भी जीवित है, तब तक जापान के साथ युद्ध करेंगे, उनकी साहसिक शक्ति का परिचय देता है। चीनियों ने जेहोल-नगर की रक्षा के लिये बहुत कुछ तैयारियाँ की थीं, और उन्हें आशा थी कि उनका जनरल टैंग्युलिन वीरता के साथ विपक्षियों से लोहा लेगा, परंतु होनहार कुछ और थी। जनरल टैंग्युलिन ने भागने में ही श्रेय समझा, और नगर को शत्रुओं की दया पर छोड़ दिया। अतः जेहोल पर जापानियों ने अनायास ही क़ब्ज़ा कर लिया है। इस पराजय से भी चीनी हतप्रभ नहीं हुए हैं। उनके बड़े जनरल मार्शल चांगसूलेंग का कथन है कि उन्होंने कूपीकाउ में ३०,००० सिपाही रख छोड़े हैं, जो जापानियों को आगे बढ़ने से रोकेंगे, और उन्होंने इस बात की व्यवस्था की है कि एक भी सिपाही युद्ध-क्षेत्र छोड़कर भाग न सकेगा। देखना यह है कि मार्शल चांगसूलेंग का कथन कहाँ तक सत्य उतरता है।

चीन और जापान के इस युद्ध की सभी देश निंदा कर रहे हैं, पर जापान इस मौखिक निंदा का क़ायल नहीं। अभी तक केवल ब्रिटेन ने यह घोषणा की है कि वह अपने यहाँ से युद्ध-सामग्री इन देशों में नहीं जाने देगा। बहुत संभव है, कुछ अन्य देश भी ब्रिटेन-द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करें। इस प्रकार युद्ध-सामग्री के प्रस्तुत किए जाने में विघ्नों के उपस्थित होने से, संभव है, युद्ध शीघ्र ही समाप्त हो जाय, परंतु कई मनुष्यों का विचार है कि इस स्थिति में भी युद्ध बंद न होगा, वरन् जापान की बन आवेगी।

जापान यद्यपि विदेशों से युद्ध-सामग्री ख़रीदता है, तथापि वह केवल उन पर ही निर्भर नहीं रहता, युद्ध-सामग्री तैयार करने के उसके कई अपने निजी कारख़ाने भी हैं। चीन में ऐसी व्यवस्था नहीं है; उसे अपने सब शस्त्रास्त्र विदेशों से लेने पड़ते हैं, अतः यदि सभी देश युद्ध-सामग्री बेचना बंद कर देंगे, तो चीन को बड़ी असुविधा हो जायगी।

इस जापान-चीन-युद्ध को रूस भी बड़ा सतर्क दृष्टि से देख रहा है। बहुतों का तो यहाँ तक कहना है कि रूसी छिपे-छिपे चीनियों की सहायता कर रहे हैं, और मौक़ा आने पर जापान के विरुद्ध लड़ने की भी अभिलाषा रखते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि चीन का भविष्य इस समय बड़ा ही आशंका-जनक है। पूर्व की इस लड़ाई का यदि पश्चिम में भी कुछ असर पड़ा, तो संसार की परिस्थिति एक बार फिर डाँवाडोल हो जायगी।

× × ×

७. भारत में एक लाख सार्वजनिक और घरेलू पुस्तकालयों की आवश्यकता

संसार की उन्नति, प्रत्येक जाति के विकास की ओर ध्यान देने पर, अच्छी तरह मालूम हो जाती है। पुस्तकों का संरक्षण और पुस्तकालयों का उद्घाटन प्राचीन काल से ही प्रचलित है। आजकल तो इसका महत्त्व और भी व्यापक हो गया है। कोई भी सभ्य देश ऐसा नहीं, जहाँ जनता के हित के विचार से अधिक-से-अधिक वाचनालय और पुस्तकालय न खोले गए हों। जर्मनी इसके लिये प्रसिद्ध है। उसे पुस्तकालयों का घर कहते हैं। फ़्रांस में पेरिस का जातीय पुस्तकालय (The Bibliotheque Nationale) संसार का सर्वोत्कृष्ट पुस्तकालय है। १६०८ में वहाँ के प्रांतीय पुस्तकालयों में केवल छपी किताबों की संख्या तीन करोड़ से ऊपर थी। दूसरा नंबर विलायत के ब्रिटिश म्यूज़ियम का है। इसमें पचास लाख के लगभग छपी पुस्तकें और छप्पन हज़ार से अधिक हस्त-लिखित प्रतियाँ हैं। यहाँ की अलमारियाँ, जिनमें किताबें रक्खी हैं, नाप में ५५ मील जगह घेरती हैं। जर्मनी के ३६५ पुस्तकालयों में चार करोड़ दस लाख पुस्तकें हैं। जापान के (टोकियो) इंपीरियल कैबिनेट की पुस्तक-संख्या पाँच लाख सात हज़ार छः सौ थी, इधर कुछ वर्षों में बढ़ गई होगी। इंपीरियल लाइब्रेरी, कलकत्ता, की पुस्तक-संख्या अब तीन लाख से अधिक होगी।

प्राचीन काल से ही किताबों का प्रचलन देश-देशांतरों में मिलता है। असीरिया के निनेवा में १८५० में खुदाई करने पर दस हज़ार से अधिक दस्तावेज़ आदि मिले। प्राचीन मिश्र में पुस्तकालय थे, इसके प्रमाण मिलते हैं। राजा वसीमंडियस का पुस्तकालय प्रसिद्ध था। मिश्र में तीन हज़ार वर्ष से पहले भी, ईसा के १३०० वर्ष पहले, पुस्तकालय थे यह प्रमाण है। अलेक्ज़ेंड्रिया के राजा पोलेमी फ़िला डेल्फ़स का विशाल पुस्तकालय कई इमारतों में था। पुस्तकों की संख्या सात लाख थी। ईसा के १६७ साल पहले रोम के एमीलियस पोलस ने लड़ाइयाँ जीतकर भिन्न-भिन्न देशों से पुस्तकें ला-लाकर अपना बहुत बड़ा संग्रहालय बना लिया था। इससे पहले की ग्रीक सभ्यता भी पुस्तकालयों के लिये मशहूर है। अरस्तू और प्लेटो, जो आज भी मशहूर विद्वान् दार्शनिक हैं, पुस्तकों के प्रसिद्ध संग्रहकार समझे जाते हैं। इनके अलावा पेसिस्ट्रेटस्, पालीक्रेट्स्, यूक्लिड्, निकोक्रेट्स्, यूरिपिडस् आदि भी अपना-अपना सुवृहत् पुस्तकालय रक्खे हुए थे।

वर्तमान पुस्तकालयों का संचालन ईसा की छठी शताब्दि से सेंट बेनीडिक्ट के राज्यकाल से शुरू हुआ। फिर नवीं शताब्दि में कुस्तनतुनिया का पुस्तकालय संसार की नई रोशनी, नई ज्ञान-राशि से जगमगा उठा। यह उस समय का सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालय कहा जाता है।

वर्तमान समय में, संसार में, शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ साधन पुस्तकालय ही हैं। इनका स्वाधीन राष्ट्रों में कितना महत्त्व है, यह थोड़े में नहीं समझाया

जा सकता। कार्लाइल-जैसे बड़े-बड़े संसार-प्रसिद्ध लेखक पुस्तकालय का सहारा प्राप्त कर ज्ञान की भूमि में आगे पैर बढ़ा सके हैं। यदि पुस्तकालय का सहयोग न प्राप्त होता, तो बर्नार्ड शा साधारण श्रेणी में ही, दृष्टि से दूर एक तारे की तरह, पत्तों में छिपे एक फूल की तरह अपने ही आप खिलकर मुरझा गए होते—उनके सौंदर्य का, उनकी कला का संसार के लोगों को किंचिन्मात्र भी ज्ञान न हो पाता। हमारे यहाँ भी राष्ट्र के सुविशाल विटप पर अज्ञान के कीटों से काट दी जानेवाली कितनी ही नई कलियाँ निकलीं, और रोज़ निकलती रहती हैं, पर उनका विकास नहीं हो पाता। कारण, उन्हें सुविधाएँ प्राप्त नहीं। हमारे राष्ट्र को, राष्ट्र के प्रेमियों, कार्य-कर्ताओं और शुभचिंतकों को इसके लिये प्रयत्न करना चाहिए, और इसका एकमात्र उपाय पुस्तकालयों का उद्घाटन है।

हमारा विचार है, देश में एक लाख पुस्तकालय खोलने का प्रयत्न हो। देश के धनी-मानी, मध्यवित्त, जो आप ही अपना ख़र्च चला ले सकते हैं, देश में राष्ट्रभाषा के प्रचार के लिये यदि थोड़ा-सा भी ध्यान दें, तो देश की अपरिमित उन्नति हो सकती है।

जिस भाषा के २० करोड़ समझनेवाले लोग हों, जो राष्ट्रभाषा हो, जिसकी गोद पर पढ़े-लिखे पचास लाख सुपुत्र हों, वही भाषा, वही हिंदी अपनी दूसरी बहनों से भी पीछे है, यह कितनी लज्जा की बात है!

ये पचास लाख मनुष्य यदि हिंदी की दो पुस्तकें ही प्रतिवर्ष ख़रीदें, तो एक करोड़ पुस्तकों की खपत हो सकती है। एक रुपया क़ीमतवाली, दस हज़ार की संख्या में छपी हुई प्रतिवर्ष आसानी से एक हज़ार नई पुस्तकें निकल सकती हैं। लेखक, प्रकाशक, पाठक और राष्ट्र का जीवन तब दूसरी ही ज्योति से जगमग हो उठेगा। लोगों की सबसे बारीक और पुष्ट ज्ञानवाली ख़ुराक है। जब वह ज्ञानवाला खाद्य प्रचलित होगा, तब राष्ट्र की ज्ञान-ज्योति चमकेगी, और उसकी प्रभा देशांतरों तक फैलेगी। लोगों में एक दूसरी ही स्फूर्ति फैलेगी, विचार-धारा दूसरा ही पथ ग्रहण करेगी, और उन्नति का क्रम चिप्रतर हो जायगा, लोग सहानुभूति, प्रेम तथा ऐक्य के सूत्र से ठीक-ठीक बँधेंगे, राष्ट्र के उपयोगी नए-नए कार्यों, कला-शिल्प और वाणिज्य-व्यवसाय आदि का ठीक-ठीक संचालन होगा, जनता अपने भीतर अननुभूत शक्ति और स्वास्थ्य प्राप्त करेगी, देश के देशीय भाव तभी ठीक-ठीक जाग्रत् होंगे।

एक लाख पुस्तकालय देश के भिन्न-भिन्न प्रांतों, स्टेटों, नगरों, ज़िलों, क़स्बों और बड़े-बड़े गाँवों में आसानी से खुल सकते हैं। जो देश एक महादेश की हैसियत रखता है, उसके विशाल भूभाग में एक लाख पुस्तकालय बहुत ज़्यादा नहीं कहे जा सकते। एक लाख पुस्तकालयों में साढ़े तीन हज़ार मनुष्यों की एक-एक समष्टि होती है, जो किसी तरह कम नहीं कही जा सकती। हाँ, यह ठीक है कि भारत में इतने सार्वजनिक पुस्तकालय एक साथ नहीं खुल सकते। यह कार्य धीरे-धीरे, पठितों की संख्या और बढ़ने पर, ही संपन्न होगा, और होना भी चाहिए; पर व्यक्तिगत—घरेलू—एक लाख पुस्तकालय आसानी से अब भी बन सकते हैं। केवल शिक्षित जनों को और जो लोग धनी हैं, उपार्जन-क्षम हैं, उन्हें इधर ध्यान देना चाहिए।

हाँ, अब एक लाख घरेलू पुस्तकालय खुलवाने की हमारी स्कीम भी सुन लीजिए। हमारी राय में १२०) की अच्छी पुस्तकें प्रत्येक पढ़े-लिखे और संपन्न व्यक्ति के पास होनी चाहिए। १२०) की अच्छी पुस्तकों को हम एक 'घरेलू पुस्तकालय' कह सकते हैं। भारत-भर में, हमारा अनुमान है, ५०० हिंदी-भाषा-भाषी ज़िले और स्टेट अवश्य होंगी। इनमें से प्रत्येक ज़िले या स्टेट में १००० से लेकर १०,००० तक सज्जन ऐसे अवश्य हैं, जिनकी आमदनी ज़मींदारी, व्यवसाय या नौकरी द्वारा १०००) वार्षिक से अधिक है। हमारी हार्दिक इच्छा है कि इन सबों में (भारत-भर

में इनकी संख्या १० लाख से कम न होगी) यह भावना जाग्रत् की जाय कि जैसे शरीर के लिये भोजन-वस्त्र अत्यंत आवश्यक—अनिवार्य हैं, वैसे ही मन और आत्मा के लिये पुस्तकें भी। जैसे वे भोजन-वस्त्र के लिये सैकड़ों रुपए प्रतिवर्ष ख़र्च करते हैं, वैसे ही आत्मिक भोजन के लिये भी उन्हें वर्ष में १२) या महीने में १) अवश्य ख़र्च करना चाहिए। यदि हम प्रत्येक ज़िले और स्टेट में २०० व्यक्ति ही भी ऐसे तैयार कर सकें, जो १) महीना राष्ट्रभाषा हिंदी की पुस्तकें मोल लेने में ख़र्च करें, तो १० वर्ष में १२०)-१२०)वाले १ लाख 'घरेलू पुस्तकालय' आसानी से खुल सकते हैं। इसका परिणाम यह होगा कि आगामी १० वर्ष में बढ़िया-बढ़िया हज़ारों नई पुस्तकें हिंदी में निकलेंगी, और सैकड़ों नए लेखक तैयार हो जायँगे। इससे हिंदी की कितनी उन्नति हो जायगी, देश में कितनी ज्ञान-वृद्धि हो जायगी, इसका अनुमान सहृदय पाठक सहज ही में कर सकते हैं।

जो हो, इस कार्य के लिये लोगों को—विशेषकर हमारे हिंदी-प्रेमी मित्रों को—कटिबद्ध हो जाना चाहिए। हर ज़िले और स्टेट में इस भावना का प्रचार करने के लिये—वहाँ के हिंदी-प्रेमियों और शुभचिंतकों के पास सुंदर पुस्तकें पहुँचाने के लिये—हम प्रचारक नियुक्त कर रहे हैं। ऐसे कोई २०० प्रचारक देश-भर में नियुक्त करने का विचार है। प्रत्येक १०-२० प्रचारक के ऊपर एक संगठनकर्ता (organiser) रहेगा, जो उन प्रचारकों को समझकर नियुक्त करेगा, और उनकी सहायता तथा देख-रेख करेगा। प्रत्येक स्थान पर प्रचारक नियुक्त करने में और उनके द्वारा इसको पूर्ण कराने में हिंदी-प्रेमी-मात्र को हमारी सहायता करनी चाहिए।

× × ×

* राजे-महाराजे और रईस-तअल्लुक़ेदार, म्युनिसिपल बोर्ड और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तो १० से लेकर ५०० तक १२०)-१२०)वाले पुस्तकालय अपनी स्टेटों और इलाक़ों में खुलवा सकते हैं।

८. भाषातत्त्वरत्न पं० नलिनीमोहनजी सान्याल एम्० ए०

पंडित नलिनीमोहनजी सान्याल हिंदी के प्रतिष्ठित लेखक हैं। आपका भाषा-विज्ञान हिंदी में यथेष्ट प्रशंसा प्राप्त कर चुका है। आपके विचार मार्जित तथा उच्च कोटि के होते हैं। 'सुधा' के पाठक आपसे अच्छी तरह परिचित होंगे। आपके अमूल्य प्रबंध 'सुधा' में प्रकाशित होते रहते हैं। भाषा-विषय के हिंदी के आप एक ही विद्वान् हैं। आपके विवेचन की शृंखला मज़बूत, चमकीली तथा सुंदर होती है।

आपका जन्म बंगाल के नदिया ज़िले के शांतिपुर क़स्बे में, संवत् १९१८(ई० १८६१ में)के ३रे कार्त्तिक को हुआ। आपके पिता पंडित हरिमोहनजी सान्याल थे, जो भारतीय दर्शन और शास्त्रों के पारंगत विद्वान् थे। आप बंगाल के वारेंद्र श्रेणीवाले ब्राह्मण हैं। गौड़ के महाराज आदिसुर से निमंत्रण पा यज्ञ कराने के लिये क़न्नौज से जानेवाले वैदिक कर्मकांड के ज्ञाता पाँच विद्वान् ब्राह्मणों में आपके पूर्वज सुधानिधि भी हैं, जो आपकी ३४वीं पीढ़ी हैं।

आपने १८७७ ई० में आगरा-कॉलेज से कलकत्ता-विश्वविद्यालय की प्रवेशिका-परीक्षा पास की, १८८० ई० में पटना-कॉलेज से एफ़्० ए० और बी० ए० और एम्० ए० की परीक्षाएँ १८८४ और १८८५ ई० में क्रमशः मेट्रोपॉलिटन इंस्टिट्यूशन, कलकत्ता से। एम्० ए० की उपाधि आपने वनस्पति-शास्त्र में प्राप्त की। पुनः १९२१ ई० में अपने साठवें साल आपने हिंदी में भी एम्० ए० पास किया।

१८८६ ई० में आपने सरकारी शिक्षा-विभाग में प्रवेश किया। १८ साल तक आप गवर्नमेंट ज़िला-कॉलेजिएट ऐंड ट्रेनिंग स्कूल्स के हेडमास्टर रहे, और १४ साल तक स्कूलों के डिप्टी इंस्पेक्टर, असिस्टेंट इंस्पेक्टर, ऐडिशनल इंस्पेक्टर और डिवीज़नल इंस्पेक्टर। १९१८ ई० में आप सरकारी नौकरी से प्रतिनिवृत्त हो सात वर्ष तक कलकत्ते के तीन प्रधान-प्रधान हाई

स्कूलों का भार ग्रहण करते रहे, पश्चात् सात वर्ष तक कलकत्ता-विश्वविद्यालय के हिंदी-भाषा और साहित्य के पोस्ट ग्रेजुएट लेक्चरार रहे। १९३२ ई० से आपने विश्वविद्यालय से भी अवसर ग्रहण कर लिया है।

१९१८ ई० में सरकारी नौकरी से प्रत्यावर्तित होने पर अपना अवकाश आप साहित्य-सेवा में पार करने लगे। बँगला-साहित्य को दी हुई आपकी कृतियों की तालिका—

१. भारतवर्षे लिपिविचार विकास
२. सृष्टि-रहस्य
३. आलोचना ओ कल्पना
४. वैदिक ओ पौराणिक आलोचना
५. भक्तप्रवर महाकवि सूरदास
६. तामिल कुरल का बँगला में अनुवाद

हिंदी में आपके कार्य—

१. भाषा-विज्ञान
२. मोहनमाला (छोटी कहानियाँ)

इनके अलावा हिंदी के भिन्न-भिन्न मासिक पत्रों में समय-समय पर आपने जो बहुमूल्य प्रबंध लिखे हैं, उनकी सूची—

'सरस्वती' में—

एप्रिल १९२३ में 'सत्य-प्रतिष्ठा'; जनवरी १९२४ में 'जीवों का विवर्तन'; मार्च १९२४ में हिंदी-भाषा पर फ़ारसी और अरबी शब्दों का प्रभाव; मई १९२४ में 'बौद्धधर्म का स्वरूप और परिणाम'; सितंबर १९३० ई० में 'आवाहन'; जनवरी १९३१ में 'नवद्वीप'; जुलाई १९३१ में 'नदीया-गौरव'; ऑक्टोबर १९३२ ई० में 'कला का साधारण स्वरूप'।

'माधुरी' में—

माघ सं० १९८१ में 'जीव की नित्यता'; पौष सं० १९८२ में 'प्राकृत भाषा'; चैत्र सं० १९८३ में 'नृ-विज्ञान'; आषाढ़ सं० १९८३ में 'संस्कृत-भाषा'; माघ सं० १९८४ में 'कीर्ति-लता'; श्रावण सं० १९८५ में 'विद्यापति'; ज्येष्ठ सं० १९८१ में 'ललित कला क्या है ?'

'सुधा' में—

माघ और फाल्गुन सं० १९८४ में 'रामानुज'; आश्विन सं० १९८५ में 'रसानुशीलन'; चैत्र सं० १९८७ में 'जड़-विज्ञान का नवीन रूप'; श्रावण तथा भाद्रपद सं० १९८६ में 'वैष्णव धर्म की उत्पत्ति और विकास'; 'भक्त-शिरोमणि-महाकवि सूरदास'; मार्गशीर्ष सं० १९८६ में 'सूरसागर में वात्सल्य-रस और संयोग श्रृंगार'।

'मनोरमा' में—

मई और जून १९२६ में 'वैदिक साहित्य का काल'।

'वीणा' में—

'दशरथ जातक'; जून १९३१ में 'समालोचना-विषयक मनस्तत्त्व की कुछ आलोचना'; ऑक्टोबर १९३१ में 'छोटी गल्प का स्वरूप'; सितंबर १९३२ में 'पुराण-साहित्य की उत्पत्ति'।

'गंगा' में—

फाल्गुन सं० १९८८ में 'वेदांक पर दो बातें'; जनवरी १९३३ में 'बिहारी भाषाओं की उत्पत्ति और उनका विकास'।

'कल्याण' के 'ईश्वरांक' में एक लेख ईश्वर के अस्तित्व पर; मुज़फ़्फ़रपुर की लेख-माला में 'विद्यापति', मासिक 'विश्वमित्र' की प्रथम संख्या में 'महाकवि सूरदास'; काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के कोषोत्सव स्मारक-संग्रह में 'रवींद्रनाथ ठाकुर'; द्विवेदी अभिनंदन-ग्रंथ के लिये 'सूरदास के काव्य और सिद्धांतों पर दो बातें'—आपने हिंदी-साहित्य को अपनी ज्ञानवृद्धि-कालीन कला-पूर्ण लेखनी द्वारा अर्पित करने का कष्ट स्वीकृत किया। आप भिन्न प्रांतीय होने पर भी साहित्यिक क्षेत्र में सब प्रकार हमारे आदर्श हैं।

× × ×

६. लाहौर में लेख-कविता-प्रतियोगिता

पंजाब में हिंदी-भाषा के प्रति लोगों का स्नेह-भाव निरंतर बढ़ रहा है, यह देखकर हमें विशेष

प्रसन्नता है। अपनी राष्ट्र-भाषा के प्रति उनका यह स्नेह सर्वथा सराहनीय है। हिंदी के प्रचार और प्रसार के लिये पंजाब के हिंदी-सेवी बड़ी लगन से कार्य कर रहे हैं। इसके लिये वे बधाई के पात्र हैं।

अभी हाल ही में 'लाहौर-यंगमेंस-हिंदू-एसोसिएशन' की एक विज्ञप्ति 'सुधा' में प्रकाशनार्थ आई है। उसका आशय इस प्रकार है—

छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप और वीर बंदा बैरागी के मई-जून में होनेवाले वार्षिक स्मृत्युत्सव के अवसर पर लेखों और कविताओं की प्रतियोगिता होगी—प्रत्येक विषय के सर्वश्रेष्ठ लेख तथा कविता स्वर्ण-पदक से पुरस्कृत होंगे। कवियों और लेखकों से प्रार्थना की गई है कि निम्नांकित विषयों पर अपनी रचनाएँ ३० एप्रिल, १९३३ तक मंत्री 'यंगमेंस-हिंदू-एसोसिएशन' १२१ कच्चा-निस्वत रोड, लाहौर के पते से भेजने की कृपा करें। उत्कृष्ट रचनाएँ उत्सव के अवसर पर पढ़ी जायँगी तथा संस्था द्वारा प्रकाशित भी की जायँगी—

(१) लेख—

(क) हिंदू-वीर की दृष्टि से छत्रपति शिवाजी

(ख) हिंदू-वीर की दृष्टि से महाराणा प्रताप

(ग) हिंदू-वीर की दृष्टि से वीर बंदा बैरागी

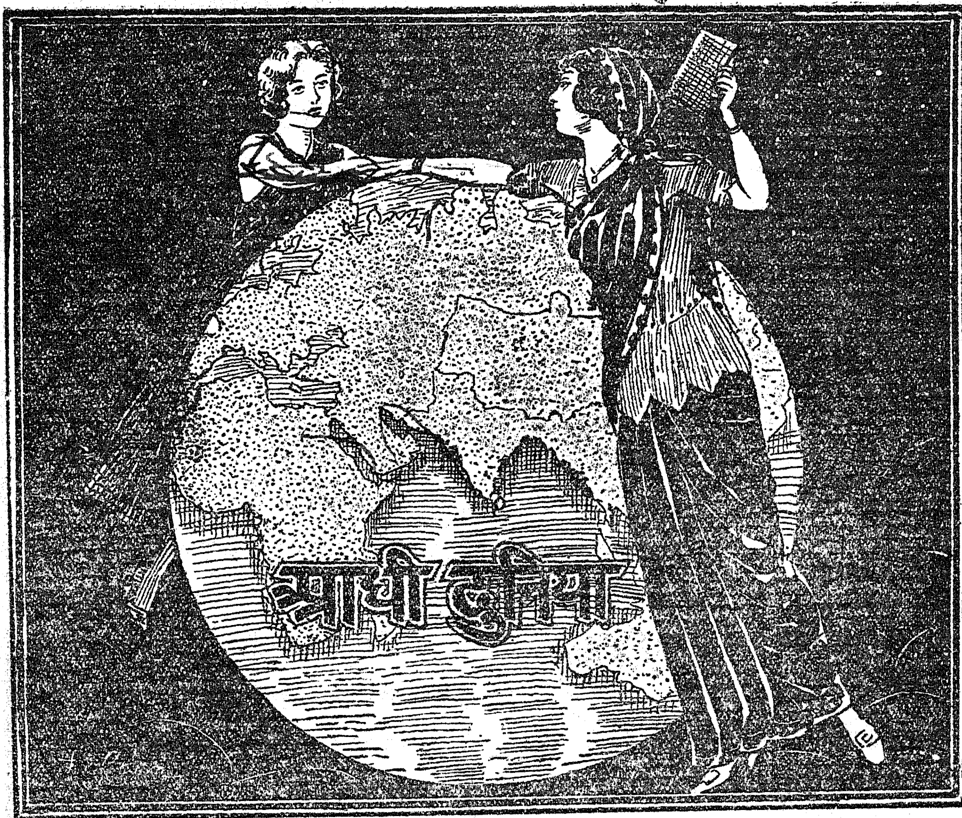
(२) कविता

(क) छत्रपति शिवाजी की वीरता

(ख) महाराणा प्रताप की वीरता

(ग) वीर बंदा बैरागी की वीरता

हिंदू-धर्म के स्वर्गीय संरक्षकों की पुण्य-स्मृति में ये उत्सव मनाए जायँगे। प्रत्येक हिंदी-साहित्य-सेवी का धर्म है कि वह अपने समाज, संस्कृति और साहित्य के स्वर्गीय रक्षकों के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति के भाव लेखों और कविताओं द्वारा व्यक्त करे। हमें विश्वास है, हिंदी के नवयुवक लेखक और कवि अपनी ललित रचनाएँ भेजकर लाहौर के हिंदू-नवयुवक-मंडल के मंत्री की उक्त योजना को सफल बनाएँगे।

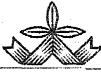

प्राची दुनिया



सुधा-चित्रावली

श्रीरामेश्वरनाथजी टंडन बी० एस-सी०

[चेयरमैन बोर्ड ऑफ़् डाइरेक्टर्स, स्वदेशी बीमा-कंपनी लिमिटेड, आगरा । स्वदेशी बीमा-कंपनी-शीर्षक नोट देखिए ।]

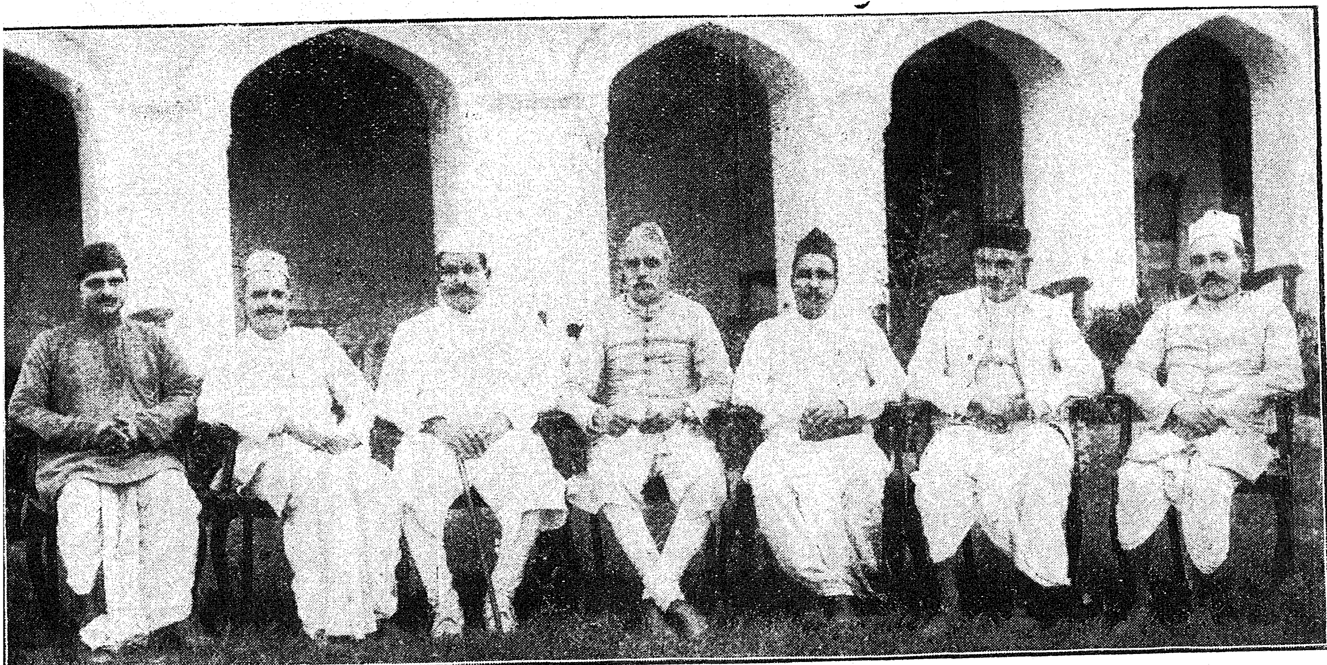


बाबू श्रीचंदजी दौनेरिया

[मैनेजिंग डाइरेक्टर स्वदेशी बीमा-कंपनी लिमिटेड, आगरा । स्वदेशी बीमा-कंपनी-शीर्षक नोट देखिए ।]







स्वदेशी बीमा-कंपनी, आगरा के डाइरेक्टरगण

(१) श्रीचंदजी दौनेरिया (मेनेजिंग डाइरेक्टर), (२) चतुर्वेदी श्रीविश्वेश्वरदयालुजी, (३) सेठ अचलसिंहजी, (४) श्रीबाबू रामेश्वरनाथजी टंडन, (५) श्रीपं० श्रीकृष्णदत्तजी पालीवाल, (६) श्रीरामकिशोरजी और (७) श्रीयुत सुशीलचंद्रजी चतुर्वेदी



श्रीरा० ब० कर्नल काकासिंह
[आप ग्वालियर में होनेवाली गत प्रदर्शिनी के प्रेसीडेंट थे ।]

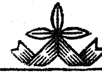












श्रीरामजीदास वैश्य
[आप हिंदी के पुराने लेखक हैं । अभी हाल ही में आपने 'सुघर गँवारिन' नाम का उपन्यास लिखा है । आप ग्वालियर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से हैं, और प्रदर्शिनी के मंत्री थे ।]








सुप्रसिद्ध हिंदी-प्रेमी और राष्ट्र-सेवक
सेठ गोविंददास और उनकी धर्मपत्नी
[यह चित्र उनकी धर्मपत्नी के स्वस्थ हो जाने पर लिया गया है। देश-सेवा के लिये आपने अपनी विशाल संपत्ति को परसाल त्याग दिया था।]






कोयल

मा—हुआ सवेरा, जागो भैया !
पुत्र—ऊँ हूँ ! ऊँ हूँ ! क्या है मैया ?
मा—सोच रहे क्या मुन्नू भैया ?
पुत्र—सुखद गोद है तेरी मैया !
मा—उठ मुन्नू, मैं लेउँ बलैया।
पुत्र—अच्छा मैया ! अच्छा मैया !!
मा—चलो मुन्नू, उपवन की ओर;
दिखावें तुमको सुंदर मोर।
उषा की वह लाली तो देख;
स्वर्ण की सुंदर थाली देख।
सुखद किरणों की छटा निहार;
कर रहीं नवजीवन-संचार।
पड़ा मत रह तू पैर पसार;
पुत्र—हो गया मैं अम्मा, तैयार।
जाकर शौच, हाथ-मुँह धोकर,
लैस साफ़ कपड़ों से होकर,
बाग़-सैर की कर तैयारी—
आया मैं, चल अम्मा प्यारी !
मा—चल मुन्नू, आगे-आगे चल;
सँग में ले ले अपना दल-बल।

❀ ❀ ❀

तनिक देर में पहुँचे उपवन;
ढेले फेंके ख़ूब दनादन।

❀ ❀ ❀

मा—क्या करते हो प्यारे बच्चे !
तोड़ो तुम मत, ये फल कच्चे !
कैसी है हरियाली, देखो;
हरी भरी हैं डाली, देखो।
उपवन-छटा निराली, देखो;
आता है वह माली, देखो।
चल मुन्नू, अब उधर चला चल;
सँग में ले ले अपना दल-बल।
पुत्र—अम्मा ! देखो, है वह कौआ;
मा—नहीं अरे मोहन, यह कौआ !!
मुन्नू, तेरी है यह भूल;
कौवे से यह है प्रतिकूल।
रंग-रूप इनके मिलते हैं;
किंतु इसे कोयल कहते हैं।
कौवे को यह ख़ूब छकाती;
उनसे निज अंडे पलवाती।
है वसंत-ऋतु इसको प्यारी;
जग की है यह बनी दुलारी।
बन-रसाल में इठलाती यह;

अपने प्रिय का यश गाती यह।
सुना प्रभाती-स्वर जाती यह;
सबको करती मदमाती यह।
प्रात-समय उठ हरषाती यह;
सबका जी है ललचाती यह।
एक कहो, दो कहती है यह;
खूब प्रतिध्वनि करती है यह।
'कू-कू' की यह रटन लगाती;
बच्चो! तुमको सीख सिखाती—
"लखे न कोई काया काली,
बस करती बोली रसवाली।"

सुंदरीदेवी



सिंधु मथैं सुर ही लही नैंकु जु सतजुग माँहि,
सहज सुलभ सोई सुधा सबै समै सब काँहि।

वर्ष ६ खंड २ | वैशाख, ३१० तुलसी-संवत् (१९९० वि०)— मई, १९३३ | संख्या ४ पूर्ण संख्या ७०

गीत

[कविवर पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला']

बह जाता रे परिमल-मन,
नूतनतर कर, भर जीवन।

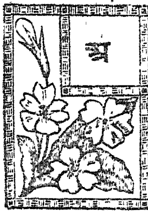
कर लिए बंद तूने अपार
उर के सौरभ के सरण द्वार,
है तभी मरण रे, अंधकार
घेरता तुझे आ क्षण-क्षण।

देख ले: सकल-जल-बंधन-बल
पार कर खिला वह श्वेतोत्पल,
उतरी प्राणों पर चरण-चपल
स्वर्ग-की परी स्वर्ण-किरण।

पूर्णाहुति

[आचार्य चतुरसेन शास्त्री]

(१)



अत्यंत दयालु परमेश्वर के नाम पर जिसके असंख्य बर्बरों के घोड़ों की टापों ने निरंतर ३० वर्ष तक भारत को रौंद डाला था, जिसने सत्रह बार प्रबल आक्रमण करके पश्चिमोत्तर भारत को तलवार और अग्नि की भेंट किया, जिसने नगरकोट के मंदिर विध्वंस कर ७०० मन अशर्फ़ी, ७०० मन सोने-चाँदी के बर्तन, ७४० मन सोना, २००० मन चाँदी और २० मन हीरे-मोती तथा जवाहरात लूटे थे, जो थानेश्वर के युद्ध में २ लाख क़ैदियों को ग़ुलाम बनाकर ग़ज़नी ले गया था, जिसने मथुरा की अप्रतिम ६ ठोस सोने की विशाल मूर्तियाँ अपहरण की थीं, और जिसके प्रताप से ग़ज़नी में हिंदू-ग़ुलाम की दर २॥ रुपया हो गई थी, जिसने सोमनाथ का अति प्राचीन वह विशाल मंदिर, जो ५६ खंभों पर आधारित था, और जिसमें ४० मन वज़नी सोने की ज़ंजीर में भारी घंटा लटका रहता था, जिसमें चुंबक के सहारे ५ गज़ ऊँची शिव-मूर्ति अधर खड़ी जन्मावधि दर्शकों को आश्चर्य-चकित करती थी, विध्वंस किया, और वहाँ से स्वर्ण और जवाहरात के अनगिनत ऊँट भरकर ले गया, जिसने गुजरात को श्मशान के समान बना दिया था, जिसकी प्रचंड सेना के नामी-गरामी सिपाही अपने घोड़े की ज़ीनों को सोने और जवाहरात से भरकर और लौंडा ग़ुलामों के झुंड को बागडोर से बाँधकर सदैव ही उद्ग्रीव होकर अपने घरों को लौटते रहे थे, जिसके साथ अरबी-भाषा और साहित्य एवं दर्शन का प्रकांड पंडित अलबरूनी आता रहा था, वह प्रबल प्रतापी सुलतान महमूद ग़ज़नवी उन समस्त लूटे हुए हीरों, मोतियों, ख़ज़ानों और सोने के ढेर को सम्मुख रखवाकर और उनको देख-देखकर फूट-फूटकर रोता हुआ इस असार संसार को छोड़ चला था, और उसके निर्बल वंशधर मध्य एशिया के अपने पड़ोसी ख़ूँख़ार देशों पर अधिकार बनाए रखने के योग्य न थे। ग़ोर के पहाड़ी सरदार ज़ोरों पर थे। उन्होंने ग़ज़नी के सरदारों को मिलाकर ग़ज़नी के विपुल ऐश्वर्य को लूट के लोभी उन्हीं ख़ूनी सिपाहियों की सैन्य संग्रह कर, जो महमूद की रकाब के साथ रहकर भारत का सर्वस्व अपहरण कर चुके थे, ग़ज़नी को तहस-नहस कर दिया था। वह आठ लाख नर-नारियों से परिपूर्ण और असंख्य रत्नों से ठसाठस पटा हुआ नगर जलाकर ख़ाक-स्याह कर डाला गया था। नर-नारी घास-फूस की भाँति काट डाले गए थे, और १ लाख ख़ूबसूरत स्त्री-पुरुष और बच्चे कराहते हुए भेड़-बकरियों की भाँति हाँके और वहाँ से ले जाए जाकर दुनिया के बाज़ारों में मिट्टी-मोल बेच दिए गए थे। बड़ी-बड़ी नामी इमारतें ज़मींदोज़ कर दी गई थीं। वहाँ की हज़ारों फूल-सी सुकुमारियों को दुखते हुए हृदय और आँसू-भरी आँखों से अपना सर्वनाश करनेवाले क्रूर हत्यारों की सेवा करनी पड़ी थी। सुंदर, वीर युवकों को ज़ंजीरों से बँधकर और चाबुक की मार खाकर कठिन परिश्रम करना पड़ा था। इस प्रकार वह प्रतापी बादशाह का वैभवशाली नगर सात दिन तक धायँ-धायँ जला था।

(२)

उस समय भारत में सम्राट् हर्षवर्धन की सत्ता का अंत हो चुका था। उत्तरीय भारत का साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया था। कुछ पुरानी और नवीन राजपूत-शक्तियों ने पश्चिम से चलकर उत्तर-पूर्वीय तथा मध्य भारत में छोटी-छोटी रियासतें क़ायम कर ली थीं, और वे पंजाब से दक्षिण तक और बंगाल

से अरब-सागर तक के प्रदेश को अधिकृत कर चुके थे। परंतु इन सबको संगठित करनेवाली कोई शक्ति न थी, आए दिन इनके परस्पर संग्राम होते थे। पुराने साम्राज्यों की राजधानियाँ खँडहर हो चुकी थीं।

ऐसी दशा में भारत का नैतिक पतन होना स्वाभाविक ही था। बौद्धों ने ब्राह्मण-धर्म और उच्च जाति के विशेषाधिकारों को कुचल डाला था। इसके बदले में ब्राह्मणों ने नवीन जाति के नवीन शासकों की सहायता से फिर पुराने ब्राह्मण-धर्म को नए रूप में खड़ा किया था। वेद के 'रुद्र' देवता पुराण के 'शिव' बन गए थे। और अब हिंदू और बौद्ध दोनो प्रतिमा-पूजन और कर्मकांड के प्रपंच में फिर से फँस गए थे। कनिष्क के प्रयत्न से उत्तरीय प्रांतों में महायान-संप्रदाय की नींव जम गई थी, जिसमें बोधिसत्त्वों की पूजा तथा बौद्ध-मंदिरों का समस्त कर्मकांड हिंदू-मंदिरों के ढंग पर ढल गया था। प्रारंभ में जो बौद्ध-मत ने संस्कृत का स्थान छीनकर प्राकृत या पाली भाषा को दे दिया था, अब वह फिर संस्कृत को मिल गया था, और ब्राह्मणों की अब बन आई थी।

वैष्णव, तांत्रिक और शैव मतों ने प्रबल रूप से संगठित होकर बौद्ध-मत को बल-पूर्वक भारत से निकाल बाहर कर दिया था। कुछ उच्च श्रेणी के लोग उपनिषद् और दर्शनशास्त्रों को मनन करते थे। पर सर्व-साधारण का धर्म-पथ अंधकारमय, अरक्षित और अस्त-व्यस्त था। जिस वर्ण-भेद को नष्ट कर बौद्ध-धर्म ने शूद्रों और स्त्रियों को मानवीय अधिकार प्रदान किए थे, वह फिर और मज़बूती से अपनी भित्ति पर क़ायम हो गया था। अब वर्णों के स्थान पर असंख्य जातियाँ बन गई थीं। ब्राह्मणों के असाध्य अधिकार बढ़ गए थे। जनता को जाति-पाँति और ऊँच-नीच की दलदल ने गले तक फाँस लिया था। असंख्य भयानक देवी-देवता, भूत-प्रेत, राक्षस, जप-तप, यज्ञ-हवन, पूजा-पाठ, दान, मंत्र-तंत्र और जटिल कर्मकांड के जालों में अभागा धर्म फँसकर फाँसी पा गया था। दुर्गा की मूर्तियों पर मनुष्य की बलि दी जाती थी। और जहाँ-तहाँ नर-मुंडों की मालाएँ पहने कापालिक भयानक वेश में घूमा करते थे। मद्य-मांस शाक्तों और कापालिकों का खुला आहार था। भैरवी-चक्रों के खुले खेल यत्र-तत्र होते थे, मंदिरों के असाध्य अधिकार थे, भारत की समस्त संपदा धीरे-धीरे मंदिरों में एकत्र हो चली थी। इस प्रकार उस समय भारत सैकड़ों उत्तरदायित्व-शून्य छोटी-छोटी रियासतों, सैकड़ों मत-मतांतरों और अनगिनत सदाचार-हीन कुरीतियों और अंध-विश्वासों का घर था। राजनीतिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई थी; प्रजा की जान-माल सलामत न थी। सभी राजा परस्पर लड़ते रहते थे। युद्ध में व्यस्त रहना, मानो उनका धर्म था। ब्राह्मण अपने अधिकारों की रक्षा में इतने व्याकुल थे कि यदि वे वैश्यों और शूद्रों को वेद-पाठ करते देखते, तो तलवार लेकर उन पर टूट पड़ते थे, और उन्हें कचहरी में घसीट ले जाते थे, जहाँ उनकी जिह्वा काट ली जाती थी। ब्राह्मण सब प्रकार के राज-कर से मुक्त थे। हिंदू-बालाएँ सती हो जाती थीं। हिंदू समुद्र-यात्रा नहीं करते थे, किसी देश को नहीं जाते थे, किसी जाति पर श्रद्धा नहीं रखते थे। वे अपने को और अपनी जाति को सर्वश्रेष्ठ समझते थे। इस समय भारत में ४ प्रधान हिंदू-शक्तियाँ थीं—एक दिल्ली और अजमेर के संयुक्त राज्य चौहानों की, दूसरी गहरवारों की क़न्नौज में, तीसरी सोलंकियों की गुजरात में और चौथी सीसोदियों की चित्तौर में। ये चारों राजवंश यद्यपि परस्पर संबंधी थे, पर एक दूसरे के कट्टर शत्रु थे। इस दुर्भाग्य के बीच भारत की करोड़ों की निरीह प्रजा सर्वथा ही अरक्षित थी, जिसे खाने के लिये क्रूर और भयंकर गीधों के झुंड पश्चिम के पहाड़ों में बैठे थे, और जब चाहे भारत को रौंदकर और रक्त की नदी बहाकर लौट जाते थे।

(२)

उसका असल नाम मुइज़ुद्दीन था। वह एक उच्च अभिलाषी दृढ़-प्रतिज्ञ युवक था। वह ग़ज़नी-विजेता अलाउद्दीन ग़ोरी का छोटा भाई था। ग़ज़नी की

ईंट-से-ईंट बजाकर, उसे जलाकर, राख बनाकर और एकदम ऊजड़ करके तथा उसकी अतुल संपदा लूटकर अलाउद्दीन ग़ोरी अधिक न जिया। उसका वह अल्प-वयस्क वीर भाई जो मुहम्मद ग़ोरी के नाम से प्रसिद्ध हुआ, ग़ज़नी के ख़ज़ाने की बदौलत ५० हज़ार उग्र तुर्कों को एकत्र कर, भारत के दुर्जय काफ़िरों को रौंदने को जहाद का झंडा उठाकर खड़ा हुआ, तब संसार के अधिकांश प्रदेशों से, जो इस्लाम की तलवार के अधीन थे, धर्म के जोश और लूट के लालच से असंख्य बर्बरों का लश्कर उसके झंडे के नीचे एकत्रित हो गया। भारत के रत्न और स्वर्ण एवं सुंदरियाँ उनके बाप-दादों की परिचित थीं, और उनके अपहरण का सुयोग छोड़ना संभव न था।

उसने भारत की ओर बाग उठाई। उसने सिंधु-नद पारकर, मुलतान पर धावाकर उस पर दख़ल किया, और फिर दक्षिण की ओर मुड़कर अच्छा मज़-बूत क़िला भी क़ाबू में कर लिया। इस बार वह यहीं से लौटा। दो वर्ष बाद वह फिर आया। इस बार वह प्रबल वेग से अनहिलवाड़ा पट्टन के धनी नगर को ध्वंस करने के लिये मरुभूमि पार कर गुजरात पर जा धमका। वहाँ के बालक राजा को हाथी पर रखकर, वहाँ के राजपूतों ने प्रबल गजवाहिनी सेना ले इस योद्धा को इस बार भगा दिया। एक वर्ष बाद वह फिर आया। इस बार उसने पेशावर को छीनकर एक वर्ष वहाँ मुक़ाम किया, और समस्त पहाड़ी कट्टर नौमुस्लिम जातियों को मिलाकर उसने सिंध के देवलगढ़ को विजय किया, और सिंध को लूट-पाटकर भस्म कर दिया, तथा हज़ारों ऊँट लूट के माल से भरकर ग़ज़नी लौट गया। ३ वर्ष बाद वह फिर आया, और लाहौर को घेर लिया। इस समय लाहौर महमूद ग़ज़नवी के वंशधर के हाथ था। उसने लाहौर को फ़तेह किया, और स्यालकोट का मज़बूत क़िला भी छीन लिया। महमूद का अंतिम वंशधर सुलतान ख़ुशरो मलिक क़ैद करके फ़िरोज़-कोह भेज दिया गया, और वहाँ वह बेदर्दी से सपरिवार मार डाला गया। इस तरह महमूद का घराना, जिसने मध्य एशिया को घोड़ों की टापों से रौंद डाला था, दुनिया से उखाड़ फेका गया।

वह फिर ग़ज़नी लौट गया। इस बार उसने जहाद के झंडे के नीचे आने को समस्त मुस्लिम जगत् के मुल्लाओं को आमंत्रित किया। असंख्य बर्बर सैन्य देखते-ही-देखते आ जुटी। इस बार वह १ लाख भयंकर सवारों को साथ ले साहस-पूर्वक लाहौर को अतिक्रमण कर भटिंडे तक बढ़ आया, जहाँ प्रतापी चौहानराज पृथ्वीराज का सामंत दाहिमा चंड-पुंडीर दुर्गाध्यक्ष था। वह तीन मास सुलतान से मोर्चा लेता रहा। अंत में ५०० योद्धाओं के साथ घेरे को तोड़कर महाराज पृथ्वीराज की सेना में आ मिला, जो थानेश्वर की ओर सुलतान से लोहा लेने आ रहे थे। वहाँ तीस हज़ार चौहानों को ले प्रथम बार पृथ्वीराज ने सुलतान का सामना किया। कठिन मार में सुलतान घायल हुआ। उसे बचाने को तुर्क सिपाहियों ने अपने शरीरों के ढेर लगा दिए। वे उस घायल और बेहोश नामी युवक सुलतान को मौत के मैदान से ४० मील की कड़ी मंज़िल तक ले भागे, पर उसे पृथ्वीराज का बंदी होना ही पड़ा, जिसे पीछे चौहानराज ने घमंड और उदारता एवं राज-नीतिक असावधानी के कारण साधारण दंड लेकर छोड़ दिया। सुलतान ने फिर तो दिल्ली-पति पर लोक-विख्यात ६ आक्रमण किए। वह छहो बार बंदी हुआ, और नत-मस्तक हो दिल्ली-पति से क्षमा-याचना कर ग़ज़नी लौट गया।

(४)

राज्य के स्तंभ-स्वरूप ६४ सामंतों को कटाकर दिल्ली-पति वीर पृथ्वीराज पंगराज-नंदिनी संयोगिता को ब्याह लाए थे। इससे पृथ्वीराज की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई थी। वह सब कुछ भूलकर संयोगिता में रम गए थे। वह १४ वर्ष की सुकुमार बालिका, जिसने उस ३५ वर्ष के प्रबल योद्धा के लिये पिता की दुर्धर्ष भर्त्सना सही, क़ैद भुगती

और अंत में साहस की चरम सीमा को उल्लंघन कर, वीर पति से स्वयंवर कर, उसके साथ घोड़े की पीठ पर आरूढ़ हो, कटार को मज़बूत मुट्ठी से पकड़े, पिता की अजेय चतुरंगिनी को चीरती हुई, वीरों की लोथें रौंदकर, रक्त की नदी को पारकर जिसने मंज़िलें तय कीं, वह अलभ्य मूल्यवती पंगबाला पृथ्वीराज के प्राणों का हार थी। उसे आए तीन मास हो गए थे। इन तीन मास में किसी ने पृथ्वीराज को नहीं देखा था। दिल्ली में उदासी छा रही थी। वीर सामंत हाडुलीराय हम्मीर राजा से रूठकर घर बैठ रहा था। महलों के दर्वाज़ों पर हाथी, घोड़े, सिपाही और प्यादों के पहरे न थे। मर्दाने लिबास में औरतें लाठी लिए हुए पहरे पर थीं। वीर योद्धा सरदार, जो राजा के संकेत पर जान देते थे, बिलकुल बेदिल हो रहे थे। उनमें कलह का राज्य था। कोई अपना-पराया पूछनेवाला न था। सब मनमानी करते थे। रियासत-भर में कुप्रबंध फैल गया था। कुटिल धर्मायन(?) निरंतर राज्य के छिद्रों को सुलतान के पास भेज रहा था। भीतरी भेदों को शाह तक पहुँचानेवाले और भी बहुत-से गुप्तचर थे, जो शाह से मोटी तनख़्वाह पाकर स्वामी से विश्वासघात कर रहे थे। राज्य-भर में छद्मवेश में शाह के दूत फैल रहे थे। सब कोई अपने-अपने स्वार्थ-साधन में तत्पर थे। चामुंडराय के पैरों में बेड़ियाँ पड़ी थीं। मंत्री कैमास मार डाला गया था। जिन वीरों के बल पर दिल्ली का छत्र टिका था, वे क़न्नौज में कट मरे थे। जो बचकर आ गए थे, वे अपनी-अपनी खिचड़ी अलग पका रहे थे। उस विजयिनी चौहान-चमू का अब कोई धोरधनी न था। इस समय दिल्ली में कोई कौटिल्य-सा प्रबल राजनीतिज्ञ होता, या पृथ्वीराज ही सावधान और तत्पर होकर समस्त राजों से संधि-कर सिंधु-नद तक बढ़ जाते, और प्रतापी समुद्र-गुप्त की भाँति भारत की सीमा को सुरक्षित कर देते, तो आज भारत को एक हज़ार वर्ष तक ख़ून के आँसू न बहाने पड़ते।

(५)

पिछले आक्रमण के बाद मुहम्मद ग़ोरी ६ मास रोग-शय्या पर फ़िरोज़-कोह में पड़ा रहा। आरोग्य लाभकर वह ग़ज़नी आया, और ज़ोर-शोर से सैन्य संग्रह करने लगा। पुराने सरदार क़ैद से छोड़ दिए गए। चारो ओर से मुसलमान फ़क़ीर दुआ देने आ पहुँचे। देखते-ही-देखते जहाद के जोश में भरे हुए तुर्क, अरब, अफ़ग़ान, मुग़ल आदि बर्बरों का भयंकर दल एकत्र हो गया। इनमें से १ लाख २० हज़ार चुने हुए सैनिक लेकर उसने उनसे क़ुरान की शपथें लीं, और ख़ूब चाक-चौबंद होकर सिंधु-नद पारकर पहाड़ों के नीचे सतलज पार करता हुआ दिल्ली की ओर बढ़ा।

दिल्ली में यह समाचार आग की भाँति फैल गया। नागरिक भयभीत हो-होकर दिल्ली छोड़-छोड़कर भागने लगे। किसी की जान-माल की सलामती नज़र न आती थी। इस बार किसी को रक्षा की आशा न थी। बाज़ार के गण्य-मान्य महाजन विकल हो गए। जो श्रीमंत कभी घर के बाहर पैर न धरते थे, वे एकत्र हो नंगे पैर, नंगे सिर श्रीमंत साह नगर-सेठ के पास पहुँचे और कहा—"राजा तो रनवासों में रमा बैठा है, अब हमारी रक्षा कौन करेगा?"

श्रीमंत साह ने कहा—"मुझे भी यही चिंता है। राजा का मुँह तो उड़ता पंछी भी नहीं देख सकता, आठो पहर द्वार पर लठैत दासियों का पहरा रहता है, राजकुमार रेनसी भी ६ मास से राजा का मुख देखने को तरस रहे हैं, प्रजा का विनाश सिर पर है, केवल गुरुराम पुरोहित राजा को पूजन कराने नित्य जाते हैं, उन्हें हमारी भी पीर है, उनके पास चलना चाहिए।"

गुरुराम पुरोहित के निकट पहुँचकर साहूकारों ने कहा—"आपने भी तो सुना ही होगा, ग़ज़नी का शाह दिल्ली पर चढ़ा चला आ रहा है, जिसके आतंक से पंजाब में भूकंप-सा आ रहा है, प्रजा अनाथ की भाँति पिस रही है; पुंडारों ने लाहौर लूट लिया। चामुंडराय के पैरों में बेड़ी पड़ी हैं, जिससे दाहिमा वीर

बेदिल हुए बैठे हैं। हम्मीर राव अपने घर में बैठे रहे। लोहाना आजानुबाहु अजमेर में हैं, बाक़ी सब नए-नए लड़के हैं। यह सब संयोगिता के चरणों का प्रताप है, इसलिये हम लोग आए हैं। आपकी आज्ञा हो, तो घर-द्वार, कार-बार छोड़ जंगल को चले जायँ, या आप जैसा कहें।"

पुरोहित ने महाजनों का रोना सुनकर कहा—"सिवा कवि चंद के अन्य से कुछ होना नहीं है, वह सभाचतुर, राजा के मुँहलगे हैं; वह औंधा-सीधा सब कुछ कर सकते हैं। सब चीज़ उन्हीं के योग्य भी है। चलो, वहीं चलें।"

गुरुराम अपने सुखपाल पर सवार हुए। श्रीमंत साह पीनस पर बैठे, और सब बनिए-महाजन अपने-अपने हाथी-घोड़े, पालकी-चौडोल आदि में बैठ कवि चंद के घर पहुँचे, और उन्हें लेकर राजद्वार की ओर चले। इनके पीछे बहुत-से लोगों की भीड़ लग चली। राजद्वार पर देखा, न वहाँ शूर-वीर सिपाहियों के पहरे हैं, न मत-वाले हाथी ही झूमते हैं, पुरुष-वेश धारी स्त्रियाँ हाथ में लाठी लिए हाज़िर हैं। इनके पहुँचते ही वे मार-मार करती हुई दौड़ पड़ीं। बनिए-महाजन जान लेकर भागे, पर गुरुराम और कवि बढ़ते ही गए। इनके सिर पर सैकड़ों ही लाठियाँ छा गईं। जब वे प्रथम पौर तक पहुँचे, तो राजमहिषी इच्छनी ने दासियों को रोक-कर कवि चंद को भीतर बुला भेजा, और आने का कारण पूछा। कवि ने एक काग़ज़ देकर कहा—"इस पुर्ज़े को राजा तक पहुँचा दीजिए।" उसमें लिखा था—

"करगर अप्पह राज कर, सुप संपह इह बत्त ;
गौरी रतौ तुअ धरनि, तू गोरी-रस-रत्त।"

दासी ने डरते-डरते पुर्ज़ा राजा को दिया। राजा ने पुर्ज़ा पढ़ा। वह क्रोध से थर-थर काँपने लगे। उन्होंने पुर्ज़ा फाड़कर फेंक दिया, और कहा—"अब भाट और ब्राह्मण राज्य की रक्षा करेंगे?"

दोनो विद्वान् निराश होकर घर लौट आए।

(६)

चौहान-राज के परमहितैषी और अप्रतिम विद्वान् एवं वीरवर राजर्षि चित्तौर-अधिपति समरसिंह ने दिल्ली के समाचार सुने, और होनहार को भाँप लिया। उन्होंने राजकुमार रत्नसिंह को चित्तौर की गद्दी सौंपी, और दिल्ली के प्रस्थान की तैयारी करने लगे। उन्होंने आबू, बूँदी, जालौर, सौरगढ़, धार, उज्जैन, रणथंभौर आदि के राजाओं के नाम बुलाने के पर-वाने भेजे, और दरबार कर कुँवर का राज्याभिषेक कर राजमहिषी पृथा-सहित वह दिल्ली को चले। पहले दिन १० कोस पर पड़ाव डाला, वहाँ तक ६० हज़ार सवार और सरदार रावलजी को पहुँचाने आए। यहाँ से उन्होंने १ हज़ार चुने हुए सवार, ५० हाथी और कुछ ख़ास-ख़ास सरदार साथ ले शेष सभी को वापस भेज दिया। ये राजपूत और हाथी साधारण न थे। ये वे योद्धा थे, जिन्होंने पीछे हटना जाना ही न था, ये हाथी बात-की-बात में क़िलों को ढा सकते थे। उन पर ज़रतारी-झूलें पड़ी थीं, और जड़ाऊ हौदे और अंबारी कसी थी, जिन पर रंग-बिरंगी ध्वजाएँ फहरा रही थीं। घोड़े क्या थे, आग के अंगारे थे। वे नवीनवयस्का वेश्या के समान थिरकते हुए पत्थर को भी खूँद के खड्डा कर सकते थे। वे सिर से पैर तक रत्न-जटित, सुंदर, सुनहरी पाखरों से सजे थे। उनकी पीठ पर दीर्घकाय यवन उमड़ते समुद्र की लहरों की भाँति दिखाई पड़ते थे।

रावलजी कूच-दर-कूच करते दिल्ली आ पहुँचे, और उन्होंने निगमबोध पर डेरा डाल दिया। उनकी अवाई सुनकर संयोगिता का प्रधान १० कोस आगे बढ़कर पेशवाई को गया, और पाँच कोस से सब सामंतों ने पेशवाई की। पृथाकुमारी पट्ट महारानी इच्छनी के रंगमहल में रहने लगी। रावलजी निगमबोध पर ठहरे। उनके डेरे पड़ते ही भरबरदाई और चाँदी की जिंस भेजी गई। इसके बाद रनवास की दासियाँ कलेऊ लेकर गईं। २५ झाब पूरी, ६० झाब मिठाई, ३२ झाब पापड़, अचार, पान, मसाला तथा भाँति-भाँति का बना हुआ मांस और फल आदि थे। वे ख़ूब

सजी-धजी और नवयौवना सुंदरियाँ थीं। दूर ही से उन्होंने डोली से उतरकर सब सामग्री अपने हाथों में ले ली, और उच्च सिंहासन पर बैठे समरसिंह के सम्मुख जा, सामग्री आगे रख, नीची नज़र करके खड़ी हो गईं। उनकी मुखिया ने हाथ बाँधकर कहा—"श्रीमानों की अवाई सुनकर संयोगिता को बड़ी प्रसन्नता हुई है। उन्होंने हम लोगों को यथोचित भेंट-भलाई निवेदन करने भेजा है।" रावलजी ने संयोगिता को बहुत-बहुत आशीर्वाद दिए, और दासियों को बैठने की आज्ञा दी।

ये सभी दासियाँ रावलजी की सुपरिचिता थीं। रावलजी ने उनसे हँसकर कहा—"अच्छा, यह शिष्टाचार तो हुआ, अब असल समाचार तो कहो, क्या हाल है?" दासियों ने उदास होकर कहा—"महाराज, क्या कहें, चौहान-पति तो संयोगिता के घेरे हो रहे हैं। रात-दिन वहीं रहते हैं, राज-काज की कौन कहे, उन्हें अपने-बेगाने की भी ख़बर नहीं है। हाहुली हम्मीर रूठे बैठे हैं, धीर पुंडीर को सौदागरों ने मार डाला, मोहाराय गंगा-तीर पर समाप्त हुए, चामुंडराय के बेड़ी डाल दी गई है। कैमास को राजा ने खुद मार डाला, रहे-सहे शूर क़न्नौज में कट मरे। जिन्हें दिल्ली की हद में क़दम रखना दुस्तर था, जो राज्य के ताबेदार थे, वे स्वतंत्र हो गए। जो अब तक दंड भरते थे, अब दंड लेने का इरादा रखते हैं।"

यह सुनकर रावलजी माथे पर हाथ धरकर बैठ गए। कुछ देर बाद उन्होंने दासियों को पान दिए, और संयोगिता के लिये कपूर देकर बिदा किया। इसका अर्थ यह चेतावनी थी कि कपूर की भाँति ही वह यौवन भी अस्थिर है, जिसमें तूने राजा को फाँस रक्खा है।

दूसरे दिन जैतराव की पहुनई हुई। उसने आटा, मैदा, बेसन, घी, चीनी, तरकारी, दही, दूध, आम, पापड़, मसाला आदि ५०० मन जिंस उनके डेरों पर पहुँचाकर स्वयं जाकर सब सत्कार साधा। उसके बाद चामुंडराय दाहिमा ने फिर बलभद्रराय कछवाहा और रामदेवराय खीची ने फिर जामराय यादव, सिंह प्रमार आदि सामंतों ने बारी-बारी से रावलजी का सत्कार किया। सबके बाद राजकुमार रेणु की तरफ़ से गोट रची गई, जिसमें सब सरदार भी सम्मिलित हुए। अंत में दरबार हुआ। कुछ देर गुरुराम पुरोहित ने अपने पोथी-पुराण की चर्चा की। फिर कवि चंद ने अपने कवित्त पढ़कर रावलजी की ख़ूब प्रशंसा की। फिर भाँति-भाँति की बातचीत के बाद दरबार बरख़ास्त हुआ, और सब लोग अपने-अपने घर रवाना हुए। पीछे से दो हाथी, एक सजा हुआ घोड़ा, एक तलवार और ज़रतारी सिरोपाव रावलजी ने चंद कवि के पास तथा एक हथिनी, एक मोतियों की माला और अँगूठी छल्ले (रसाई) के अध्यक्ष वनवीर पड़िहार के पास भेजा। फिर सूर्य-संक्रांति के अवसर पर एक लाख नक़द, ज़ेवर और कासको ग्राम का पट्टा गुरुराम पुरोहित को दिया। इसके सिवा वह प्रतिदिन १५० मुहर दिल्ली के चारणों और ब्राह्मणों को दान देते रहे। रोज़ सरदारों का जमाव जुड़ता। सदाव्रत जारी रहता। इस प्रकार दिन-पर-दिन बीत चले। पृथ्वीराज को अभी ख़बर भी न थी।

राजसभा-मंडप, जो वर्षों से सूना पड़ा था, उसके भाग्य खुल गए। जहाँ-तहाँ सब साज दुरुस्त होने लगे। सैकड़ों नक़ीब और हरकारे दरबार की सूचना देने को दौड़े-दौड़े फिरने लगे। जहाँ-तहाँ हाथी-घोड़े, फ़ौज और शूर-सामंत लोग सज-धजकर सायंकाल के समय राजद्वार पर हाज़िर हो गए। दिल्ली में आज फिर पुरानी रौनक़ थी। पृथ्वीराज मूछें चढ़ाए गद्दी पर आ बैठे। शूर-सामंत यथास्थान आ जमे। मधुशाह प्रधान ने सबसे प्रथम रावलजी के आने की सूचना दी, और कहा—"उन्हें आए २० दिन हो चुके हैं।" यह सुनते ही राजा शोक-सागर में डूब गए। बोले—"हाय! मैं बड़ा अभागा हूँ। हमारे पूज्य रावलजी २० दिन से आए हैं, और मुझे ख़बर भी नहीं,

कैसी लज्जा की बात है! ख़ैर, वह योगिराज हैं, मुझे क्षमा करेंगे। अब ऐसा उपाय करना चाहिए कि वह चित्तौर चले जायँ, क्योंकि समय बड़ा टेढ़ा आया है।"

इसके बाद राजा दरबार से उठकर दसो रानियों के पास गए और मिले। दूसरे दिन प्रातःकृत्य करके राजा ने कुसूमी पाग सिर पर बाँधी। सुगंध सेवन की, और २ लाख मूल्य के कुंडल की जोड़ी कानों में पहन, बागा-पटका आदि से लैस हो सामंतों-सहित रावलजी की भेंट को चले।

नए-पुराने सब सामंत घोड़ों पर सवार राजा को कुंडलाकार घेरे चले जाते थे। सबके पीछे सेना थी। उधर रावलजी ने राजा की अवाई सुनी, तो घोड़े पर सवार हो आगे बढ़ आए। आधो आध रास्ते में दोनो संबंधी परस्पर मिले-भेटे। दोनो ने परस्पर भुज भरकर भेंट की। इसके बाद सेना-सहित रावलजी और राजा निगमबोध पर आए, और यथा-स्थान आसन पर बैठ लौकिक शिष्टाचार तथा कुशल-प्रश्न पूछे। फिर दिल खोलकर अपनी-अपनी बीती कही-सुनी। जब पृथ्वीराज क़न्नौज की बीती सुना चुके, तब रावलजी ने कहा—"चलो, किया सो अच्छा किया, पर स्मरण रक्खो, स्त्रियों के भोग-विलास से कोई संतुष्ट नहीं हुआ। सोम-वंशी शशिबंध के महलों में १० हज़ार स्त्रियाँ और ११ हज़ार पुत्र थे, परंतु अंत समय तक भी वह उनसे संतुष्ट नहीं हुआ।"

इसके बाद नए-पुराने सामंतों से भेंट होने लगी। सब एक-एक करके रावलजी से जुहार करने लगे। कवि चंद उनका नाम, गुण और विरद बखान करने लगे। फिर इधर-उधर की हँसी-दिल्लगी की बातें होने लगीं। इसके बाद दोनो सेना-सहित महलों में आए। संयोगिता का ख़ास कमरा सजाया गया, और उसमें क़न्नौज के दहेज़ का सब सामान सजाया गया। दोनो वीर मित्र उच्चासन पर बैठे। इधर-उधर सामंतगण बैठे। पहले इत्र-पान और टीका हुआ, पीछे भोजन का बुलावा आया। भोजन कर सब सरदारों-सहित रावलजी डेरे को पधारे। दूसरे दिन पृथ्वीराज ने रावलजी की बिदाई का प्रबंध किया। क़न्नौज से आए हुए हाथी-घोड़े, रत्न, नक़द वस्तु बहुत-से थालों में लगा, बिदाई का सामान लगाया, और सब सामंतों को साथ ले पृथ्वीराज रावलजी के डेरे पर पहुँचे। साधारण रीति-रस्म हो चुकने पर कवि चंद ने कहा—"महाराज, हमारे ऊपर समय पड़ा है, इसलिये हम सादर आपको बिदा करते हैं। क्योंकि उधर भी आपके बिना राजकाज में हानि हो रही है। कृपा कर चित्तौर पधारिए, और सदा हम पर कृपादृष्टि रखिए।"

यह सुन रावलजी ने क्रोध में भरकर कहा—"वाह, क्या कहते हैं! आपने हमारी ख़ूब मर्यादा रक्खी। ठीक है, ऐसे सुअवसर पर ऐसे सुपात्र दानग्राही सुगमता से तुम्हें कहाँ मिलेंगे? अच्छा भाई, हमें दान देकर, तुम शूर-वीर बनकर युद्ध करो, और हम कायरों की भाँति अपने घर भाग जायँ। सुनो, धर्म जाय, तो धन किस काम का? अरे, हमारा-तुम्हारा संबंध प्राण और शरीर का है, क्या हम ऐसे हैं कि इस समय घर पर बैठेंगे?" यह सुनकर कवि चंद ने कहा—"मरज़ी हुई सो ठीक है, आपका बल-प्रताप किससे छिपा है। पर हमारी प्रार्थना केवल यही है कि इधर बहुत-से मुकुटबंध राजा हैं, और सामंत भी हैं। इधर की चिंता न कीजिए।" तब रावलजी ने क्रोध में भरकर कहा—"तुम लोगों ने जो करतूत कर रक्खी है, उसका फल तो भोगना ही पड़ेगा, तब मालूम होगा। आज हमें हठ करके बिदा करते हो, जिससे लोग कहें कि मौक़ा देख खिसक गए। इस दरबार में अब ऐसे ही लोग रह गए हैं?"

यह सुन पृथ्वीराज ने रावलजी के पैर पकड़ लिए, और कहा—"अब जैसी आज्ञा होगी, वही करूँगा।" रावलजी ने कहा—"तुमने कैमास को क्यों मारा? और बादशाह को पकड़-पकड़कर क्यों छोड़ दिया? सब सामंत क्यों कटा डाले? चामुंडराय के पैरों में बेड़ियाँ क्यों डलवा दीं?"

पृथ्वीराज ने कहा—"उसने ऐरावत के समान हाथी को मार डाला।" रावलजी ने कहा—"हाथी लाख प्यारा था, पर चामुंडराय से अधिक नहीं। वह तुम्हारे राज्य की ढाल है, उसके समान रणबंका वीर और कौन है ?"

यह सुन पृथ्वीराज ने गुरुराम पुरोहित को एक कुसुमानी पाग और अपनी ख़ास तलवार दे चामुंडराय के पास भेजने की इच्छा प्रकट की। पर रावलजी ने कहा—"नहीं, इस समय आप स्वयं उनके घर जाइए।" तब सब लोग चामुंडराय के घर चले। पृथ्वीराज संकोच-वश चामुंडराय के सम्मुख न जा सके। उन्होंने कवि चंद और सब सामंतों को भेजकर कहा—"जाओ, उनकी बेड़ी उतरवा दो।"

वह देव के समान वीर चुपचाप बैठे थे। उन्होंने आँख उठाकर उनकी ओर देखा। कवि चंद ने आशीर्वाद देकर कहा—"महाराज की आज्ञा है कि आप बेड़ी उतार डालिए।" चामुंडराय ने लाल अंगारे के समान आँखों से देखकर कहा—"राजा का मुझसे अब क्या प्रयोजन है ?"

"आप राज्य की ढाल हैं, राजा पर टेढ़ा अवसर आया है, क्रोध को त्याग बेड़ी उतारिए। महाराज सामंतों-सहित द्वार पर खड़े हैं।"

"इसकी क्या आवश्यकता थी। सब सामंत शूरमा तो हैं, और तुम चतुर सलाहकार हो, फिर एक चामुंड न हुआ, तो न सही।"

"रावजी, इस बार धन-मान का बँटवारा नहीं है, शरीर का मांस बाँटा जानेवाला है, मान छोड़िए, और राजा की दी हुई पाग और तलवार बाँधिए। कुसुमती पाग या तो राजसम्मान के अवसर पर या विवाह के अवसर पर बाँधी जाती है। आप महावीर पुरुष हैं, आपका नाम सुनकर सामंतों के छक्के छूट जाते हैं। कृपा कर वीर-वेश धारण कीजिए, और अपने पूज्य के पूज्य रावलजी से भुज भरकर भेंट कीजिए।"

चामुंडराय कुछ बोल न पाए थे कि पृथ्वीराज ने वहाँ पहुँच अपनी कमर से तलवार खोलकर चामुंडराय को दी। यह देख वह खड़े हो गए, और बोले—"जब स्वामी की कृपा है, तब क्या कहूँ। यह शरीर तो स्वामी ही के लिये है।"

इसके बाद उन्होंने बेड़ियाँ उतार डालीं, और राजा को प्रणाम किया। राजा ने उन्हें जागीर और सिरोपाव दे, समझा-बुझाकर संतुष्ट किया। इसके बाद उन्होंने डेढ़ हज़ार घोड़े, १६ हाथी, १० मोतियों की माला और बहुत-से रेशमी वस्त्र चामुंडराय को दिए। कवि चंद ने विरद पढ़ी, और चामुंड ने उन्हें बहुत कुछ दान दिया। इसके बाद वह वीर-वेश धारण कर, राजा के घोड़े पर सवार हो रावलजी से मिलने निगमबोध की ओर चले।

(७)

युद्ध-मंत्रणा की सभा बैठी। पृथ्वीराज ने दूत का संदेश सुनाया कि शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी लाहौर से दस कोस पर है। एक सप्ताह में वह पानीपत में आ धमकेगा। जो करना-धरना है, विचार लो।

चामुंडराय ने कहा—"विचारना क्या है, जब तक हाथ में तलवार है, हम लड़ेंगे।"

जामराय—"चामुंडराय, तुम्हारे पैर में लोहा लगा तो लगा, बुद्धि में भी लग गया। अरे, शाह की सेना आँधी-तूफ़ान है, और अपनी तरफ़ १०० में ६-७ सामंत बचे हैं।"

चामुंडराय—"अच्छा भाई, हमारी बुद्धि में लोहा लगा, अब फिर बेड़ियाँ डलवा दो। जब शत्रु सिर पर आ जाय, तब आधी रात को उठकर घर भागना।"

बलभद्रराय—"वाह, जहाँ कूरम-वंशी हैं, वहाँ भागना कैसा ? शत्रु सबल हैं, तो क्या हुआ। हम भी दिल्ली की ढाल हैं।"

रामराय बड़गूजर—"भाई, मौक़ा देखकर काम करो, मेरी राय में शत्रु पर रात को छापा मारा जाय।"

वीरभद्रराय—"अरे गँवार गूजर, अपनी राय अपने घर रख। हम तो बीच मैदान लोहा लेंगे।"

रामराय—"आपके पराक्रम में संदेह किसे है,

परंतु मौक़ा भी तो देखिए। संयोगिता के स्वागत में ६४ सामंत काम आ चुके हैं।"

चामुंडराय—"अरे, तुम सब डरपोक हो। क़न्नौज से चोर की भाँति भाग आए। ऐसे ही राजा, जो लुगाई के पीछे भाग खड़े हुए। पंग की चमक में फँस अब सबको छल की सूझी।" इस पर सबने हँसकर कहा—"चामुंडराय, तुम बड़े मुँहफट हो गए। स्वामी का भी लिहाज़ नहीं।"

अंत में रावलजी ने यह निश्चय किया कि युद्ध किया जाय। राजकुमार रैनसी को दिल्लीगढ़ पर छोड़ा जाय, और रावलजी के भतीजे वीरसिंहराय अपने ७०० राजपूतों-सहित उनकी रक्षा करें। उनके सब सामंत भी वहीं रहें। उन्हें एक-एक हाथी और एक-एक घोड़ा दिया गया। दरबार बरख़ास्त हुआ।

(८)

रात-भर सेना की तैयारियों की धूम रही। राजा संयोगिता के महलों में सो रहे थे, पर आज नींद कहाँ? ऊषा का उदय हुआ, और जंगी बाजों की ध्वनि से दिशाएँ गड़गड़ा उठीं। घोड़ों की हिनहिनाहट से आकाश गूँज उठा। राजा ने शय्या त्यागी, नित्य कर्म किए, और युद्ध-सज्जा से सजने लगे। हीरे, मोती, रत्न और स्वर्ण ब्राह्मणों को दान दिए जाने लगे। राजा ने दुहरी तलवार बाँधी, और अपना प्रसिद्ध धनुष और तरकस कसा। जब वह युद्ध-वेश में सजकर रानी संयोगिता के पास मिलने गए, तो उन्हें देखकर संयोगिता सक्ते की हालत में हो गई। दोनो के मुँह से बोल न निकला। बाहर बादल की भाँति निशान बज रहे थे। घोड़े हिनहिना रहे थे। हाथी चीत्कार कर रहे थे। सिपाही चिल्ला रहे थे। सुनकर दिल दहलता था। राजा अधिक मोह न कर, एक बूँद आँसू और एक लंबी साँस छोड़ जब चले, तो वह कटे वृक्ष की भाँति धरती पर गिर गई। दासियों ने उपचार किए, पर उसकी मूर्च्छा न खुली। राजा के पास अपनी उस परमप्यारी कोमलांगी पंग-पुत्री के लिये समय न था, जिसके लिये वह प्रवास बनकर क़न्नौजराज के दरबार में गए थे, और प्राण तथा प्रतिष्ठा की बाज़ी लगा दी थी।

राजा ने इस समय सेना की हाज़िरी ली। उसमें ८३ हज़ार सैनिक थे, जिनमें चुने हुए वीर १५ हज़ार थे। २० हज़ार योद्धा दुहरी तलवार बाँधते थे। १२ हज़ार जागीरदार सरदारों के सेवक और ५०० राजपूत सरदार थे। १० सेनापति थे। इस सेना ने तत्काल कूच कर दिया।

शाह की सेना में ६ लाख बर्बर योद्धा थे। इनमें चार लाख उसने पीछे छोड़े थे। ४ लाख के दो टुकड़े कर पृथक्-पृथक् छावनी डाली गई थी। कमालख़ाँ सरदार को एक लाख सैन्य तथा पत्र देकर राजा के पास भेजा गया। वह सतलज पार करके निर्भय पृथ्वीराज के पास चला आया। पत्र बहाना था, मुख्य काम राजा की सेना का भेद लेना था। पत्र में आधा पंजाब और शाही दरबार में कुँवर रैनसी की हाज़िरी माँगी गई थी, जिसे राजा ने अस्वीकार कर लौटा दिया, और उसने ५ दिन में ही शाह को सब भेद बता दिए। दूसरे ही सप्ताह में शत्रु की प्रबल सेनाएँ सम्मुख थीं।

(९)

श्रावण की अमावस्या और शनिवार का दिन था। रात-भर व्यूह-रचना और युद्ध-मंत्रणा होती रही। पानी गिर रहा था, और भयानक अँधेरी थी। आँधी गरज-गरजकर चल रही थी। समस्त सैन्य ४ भागों में बाँट दी गई। ३३ हज़ार सैन्य ले रावलजी बाएँ बाज़ू पर चले गए। यह देखकर राजा घोड़ा दौड़ाकर उनके पास आए, और विनीत भाव से कहा—"आप कृपा कर पीठ की सेना में जाइए, और दोनो सेना की गति-विधि देखते रहिए।" यह सुन रावलजी ने हँसकर कहा—"यह बड़ा भारी दूभर भार हमें दिया।" फिर स्नेह से राजा की ओर देखकर कहा—"यह समय स्नेह और आदर का नहीं, अब हम संबंधी नहीं, सिपाही हैं।" राजा ने तब जामराय यादव, भलभद्रराय कूरम, पावसपुंडीर और मदनसिंह, इन चार प्रबल सामंतों को उनकी सहायता के लिये भेज दिया। २१ हज़ार सेना का सिरमौर जैतराव

प्रमार दाहनी बाज़ू पर आ डटा। आरज राज राठौर, अचलेश खीची, धीरराय प्रमार, चंद्रसेन बड़गूजर, विजयराज बघेला आदि नौ सरदार उसकी सहायता को नियुक्त हुए। १३ हज़ार सेना ले वीर चामुंडराय छायल में जमा। भारतराय और तियाराय परिहार, जंगलीराव दाहिमा, ठंठराराय परिहार आदि ५ सरदार उसकी सहायता करते थे। शेष १० हज़ार सेना ले पृथ्वीराज सेना की पीठ पर सुरक्षित थे। गुरुराम पुरोहित, चाँचराय गहलौत, पंचादनराय आदि १० सरदार उनके साथ थे। इस प्रकार व्यूह रचकर, समरसिंह को साथ लेकर एक बार राजा ने घूम-फिरकर समस्त सेना का निरीक्षण किया, फिर मध्य में आए, तब पृथ्वीराज ने एक बहुमूल्य मोतियों की माला रावलजी के गले में पहनाई, और सब अपने-अपने स्थान पर आ डटे।

शाह की सेना में १ लाख सवार, ३ लाख पैदल और १० हज़ार हाथी थे। दाहनी बाज़ू पर सरदार तातारख़ाँ ९ लाख सिपाही और २ हज़ार हाथी तथा ५०० सरदारों-सहित था। बाईं बाज़ू पर सरदार ख़ुरासानख़ाँ २ लाख सिपाही, २ हज़ार हाथी और ३०० सरदारों-सहित था। ३ हज़ार हाथी और २ लाख सेना ले एक वीर सरदार अनेक सरदारों-सहित हरावल में था। शेष नायकों-सहित शाह सेना के पीछे के भाग में सुरक्षित था। २ घड़ी दिन चढ़े मुठभेड़ हुई। देखते-देखते धूल, गर्द और लोहे से मीलों का मैदान भर गया। चीत्कार, हाहाकार, मार-काट की भयानक पुकार पड़ी। कठिन मार होने लगी। ग़ाज़ी होने की धुन में बर्बर योद्धा दाँत पीस-पीसकर उमड़े आते थे, और इधर राजपूत जान पर खेल रहे थे। दोपहर के युद्ध में वीरवर चामुंडराय घायल हुआ। देवराय बग्गरी, सालुखाराय भाटी, राना माल्हनसिंह परिहार आदि ६ सौ कूरंभ और टांक चंदेलों-सहित जैतराव प्रमार भी घायल हुआ। शत्रु के २५ हज़ार सरदार और सिपाही काट डाले गए।

संध्या-समय दोनो सैन्य फिरीं। रावलजी के सभापतित्व में समर-सभा जुड़ी, और आगामी दिन के युद्ध का कार्य-क्रम बनाया जाने लगा। इसके बाद सबने विश्राम किया। प्रातःकाल रावलजी ने गरुड़-व्यूह रचा। एक पक्ष पर बलभद्रराय, दूसरे पर जामराय यादव, चोंच पर पुंडीर, पाँव और पिंड पर समरसिंह, पूँछ पर मदनसिंह और कुछ सेना बीच देकर पीछे पृथ्वीराज स्थित हुए।

यवन-दल ने चंद्र-व्यूह रचा। आधे भाग के नेता ख़ुरासानख़ाँ और आधे के रुस्तमख़ाँ हुए। हरावल में मारूफ़ख़ाँ गक्खरों की सेना-सहित था।

युद्ध के प्रारंभ होने पर पुंडीर ने कहा—"महाराज, क्या आज्ञा है? स्वामी-द्रोही हम्मीर का सिर काट लाऊँ या शाह को बाँध लाऊँ?" राजा ने कहा—"हम्मीर का सिर काट लाओ, तो क्या बात है।" यह सुन वीर पुंडीर अपनी सेना ले भयानक वेग से शत्रु-सैन्य में घुस गया। सैनिकों की लाशों के ढेर को रौंदता हुआ वह हम्मीर तक पहुँच गया, और उसका सिर काट लाकर राजा के सम्मुख रक्खा। यह देख राजा ने प्रसन्न होकर शाबाशी दी, और कहा—"अब चार-चार तलवार बाँधकर शाह को बाँध लाओ।" हम्मीर का सिर कटने पर शाह क्रुद्ध होकर सफ़ेद हाथी पर चढ़ गया, और सेना को ललकारा। शत्रु-दल ने भयानक धावा बोल दिया। यह देख रावलजी ने कहा—"वीरो, अब मरने-मारने की ठान लो, और जीत की आशा त्याग दो।" पुंडीर पर सारी शत्रु-सेना टूट पड़ी थी, पर उसका साहस देखने-योग्य था। उसने कठिन मार मारी, और अंत में वह खेत रहा। उस दिन का युद्ध समाप्त हुआ। तीसरे दिन जैतराव प्रमार श्वेत वस्त्र पहन और श्वेत हाथी पर सवार होकर समस्त सेना का नेता बना। इसके दाएँ रामराय, बाएँ चामुंडराय और हरावल पर समरसिंह रहे। यवन-सेना ने जैतराव को ही राजा समझ उस पर भारी आक्रमण कर दिया। जैतराव दोपहर तक के युद्ध में मारा गया। अब चामुंडराय ने तिरछे रुख़ धावा किया। एक बार यवन-दल विचलित हो गया। यह देख शाह अपनी सेना

को पीछे हटाकर ले गया। अब उसने ३०-३० हज़ार चुने हुए सवारों को चार दल बनाकर चौहान-सेना पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। सेनापतियों को आज्ञा थी कि घोर युद्ध का अवसर न आने दो। मौक़ा बचाकर पीछे हटते रहो। शाम तक यही खेल होता रहा। यवन-दल आगे बढ़ता और पीछे हटता रहा। संध्या होते-होते यवन-दल एकदम भाग खड़ा हुआ। यह देख चौहान-सेना भूखे सिंह की भाँति उस पर टूट पड़ी। पृथ्वीराज ने अपना धनुष सँभाला, और ताक-ताककर बाण छोड़ने लगे। यह देख अवसर पा सुलतान १८ हज़ार चुने हुए सवार ले तीर की भाँति राजा के ठीक सम्मुख टूट पड़ा, और राजा के हाथी को घेर लिया। यह देख जैतराव ने छत्र अपने सिर पर धारण कर लिया। यवन-दल ने भीषण रूप में जैतराव को राजा समझ घेर लिया। अंत में वीरवर जैतराव और चामुंडराय दोनों ही उस भयानक आक्रमण में काम आए। अब प्रसंगराय खीची ने छत्र सिर पर धारण कर लिया। यह देख शाह खीझ गया। उसने समझा था कि राजा मारा गया। इतने में राजा ने घोड़े पर चढ़कर समरसिंह के पास जाने का उपक्रम किया, पर घोड़ा अड़ गया। होनहार प्रबल थी। उधर शाह ने राजा को पहचानकर उन्हें चारो ओर से घेर लिया। धरो-पकड़ो करती हुई शाही सेना राजा पर टूट पड़ी। समरसिंह ने दूर से यह देखा, तो वह मार-काट करते वहाँ तक आए, और सब सरदार भी वहीं जुट गए। अब किसे प्राणों का मोह था। शाह भी वहीं आ जुटा। भारी समर हुआ, और रावलजी वहीं खेत रहे। पृथ्वीराज गस गए। यह देख पृथ्वीराज ने २ लाख मूल्य के कुंडल कानों से निकालकर गुरुराम पुरोहित को दिए, और कहा—"आप दिल्ली जाकर कुमार की रक्षा कीजिए।" ज्यों ही गुरुराम लौटे, एक यवन ने एक ही हाथ में उनका सिर धड़ से जुदा कर दिया। उसने राजा को कुंडल देते देख लिया था। गुरु की इस भाँति हत्या होते देख राजा क्रोध और क्षोभ से थर-थर काँपने लगे। पर अब क्या हो सकता था। उनके पास कोई सामंत जीवित न था। केवल १००-५० सिपाही थे, जो प्रत्येक क्षण कम हो रहे थे, और यवन-दल टिड्डी की भाँति वेग से उमड़ा चला आ रहा था। शाह ने ललकारकर कहा—"पृथ्वीराज, कमान रख दो।" पर पृथ्वीराज ने न सुना। उसने उजबकख़ाँ को हुक्म दिया कि राजा की कमान छीन ले। यह प्रबल धनुर्धारी था। उसकी कमान १८ भार की थी, और तरकस में १३ सौ तीर थे। वह १८ भार की लुंगी बेधता था। राजा के पास एक ही तीर बचा था, उसी से उन्होंने उसे मार गिराया। अब उनके तरकस में तीर न था। सहस्रों योद्धाओं ने शस्त्रों के आघात से कमान काट दी। अब उन्होंने तलवार निकाली, वह भी टूट गई। तब कटार निकाली। अंत में एक भीमकाय यवन-सरदार ने गले में कमान डालकर राजा को घोड़े पर से खींच लिया। राजा गिर गए, और वह कसके बाँध लिए गए। १०-५ राजपूत जो बचे थे, कट मरे। एक भी वीर जीवित न लौटा।

राजपूत-छावनी लूट ली गई, और उसमें आग लगा दी गई। शाह ने फ़िरोज़ख़ाँ को राज्य दे उसी दिन पृथ्वीराज-सहित ग़ज़नी प्रस्थान किया।

श्रावण शुक्ला २ सोमवार संवत् ११५८ के दिन यह शोक-पूर्ण चिरस्मरणीय घटना घटी, और एकादशी को यह समाचार दिल्ली पहुँचा। नगर में हाहाकार छा गया। संयोगिता ने सुनते ही शरीर त्याग दिया। पृथाकुमारी ने शांत भाव से पति की मृत्यु का समाचार सुना, और वह शांत भाव से सती हो गई। उसी के साथ सहस्रों राजपूतानियों ने अग्नि-प्रवेश किया।

ग़ज़नी में राजा को महल के दक्षिण पार्श्व में रक्खा गया। हुजाबख़ाँ उनका निरीक्षक नियत किया गया। १० हिंदू-सेवक राजा की सेवा के लिये नियुक्त किए गए। राजा ने अन्न-जल त्याग दिया। शाह ने स्वयं आकर समझाया, तो राजा ने क्रोध से आँखें गुरेरकर शाह को देखा। इस पर क्रुद्ध हो शाह ने

उनकी आँखें निकाल डालने का हुक्म दे दिया। राजा की मुश्कें कसकर धरती पर पटक दिया गया, और उसी क्षण उनकी आँखें निकाल ली गईं। इस प्रकार वह महावीर, प्रतापी, साहसी दिल्ली-पति अंधे और लाचार हो भूखे और प्यासे उस यवनपुरी में दिन काटने लगे।

(१०)

हाड़ा हम्मीर पृथ्वीराज का एक वीर सामंत था। वह किन्हीं कारणों से पृथ्वीराज से बिगड़कर काँगड़े का अधिपति बन गया था। युद्ध-यात्रा के समय राजा ने उसे मनाने के लिये कवि चंद को भेजा था, पर हम्मीर ने उसे धोखा देकर देवी के मंदिर में बंद कर दिया, और स्वयं शाह की सेना में जा मिला। दैवयोग की बात है कि इस सर्वनाशकारी युद्ध के अवसर पर राजा का प्रधान मित्र और सलाहकार कवि चंद काँगड़े के मंदिर में ही बंद रहा। जब कवि चंद का मंदिर से छुटकारा हुआ, तब उसने सुना कि दिल्ली का तो नाश हो गया। वह धावे-पर-धावे मारता दिल्ली पहुँचा। नगर में सन्नाटा था। दिल्ली की दुर्दशा देख उसकी छाती फटने लगी। उसने वीरासन से बैठ २ महीने १५ दिन में ७ हज़ार छंदों में पृथ्वीराज-रासो लिखा, और अपने ज्येष्ठ पुत्र को पढ़ाया। इसके बाद अपना इष्ट बीज-मंत्र सुनाया, और सब माया-मोह छोड़ ग़ज़नी की राह ली।

उसने साधु के वेश में यात्रा की। ग़ज़नी पहुँचकर उसने देखा, नगर के बाहर कोसों तक हाथी-घोड़े बँधे हैं। फ़ौजें पड़ी हैं। मियाँ लोग नमाज़ें पढ़ रहे हैं। शहर में चहल-पहल है। वह भीड़ को पार करता हुआ राजद्वार तक पहुँच गया। देखा, बहुत-से शस्त्रधारी योद्धा पहरे पर हैं। उसे देख एक ने पूछा—

"कौन हो?"

"हिंदू-फ़क़ीर हूँ, बहुत काम जानता हूँ, कवि भी हूँ, गाना-बजाना, नाचना, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण सभी कुछ जानता हूँ।"

एक द्वारपाल ने उसे पहचानकर कहा—

"तू कवि चंद है, ज़रूर फ़साद करेगा।"

यह सुन कवि चंद वहाँ से खिसक गया। इधर-उधर घूमने लगा। जब शाम को शाह इदफ़ खेलकर घोड़े पर चढ़कर लौटा, तब वह बीच मार्ग में खड़ा हो गया। सिपाहियों ने रोका, पर उसने हाथ उठाकर कहा—"हे राजाओं के तेज को नष्ट करने-वाले शाह, यह कवि चंद तुमको आशीर्वाद देता है।" शाह ने उसे पास बुलाया और कहा—

"तुम राजा के दोस्त और कवि थे, मगर युद्ध में कहाँ थे?"

कवि ने सब आप-बीती सुनाई, और आँखों में आँसू भरकर कहा—

"जब मेरा स्वामी ही नहीं, तब मेरा जीवन भी धिक्कार है। बस, एक नज़र अपने स्वामी को क़ैद करने-वाले को देखने की इच्छा से आया था। वह इच्छा अब पूर्ण हो गई। अब बद्रिकाश्रम जाता हूँ।"

शाह ने कहा—"बेशक तुझे अफ़सोस होगा, मगर ख़ैर, मैं कल तुझसे बात करूँगा।" इसके बाद उसकी पहुनाई का हुक्म दिया। ग़ज़नी में एक भीम-नामक खत्री रहता था। उसके सुपुर्द कवि का आतिथ्य किया गया। उसने कवि का बड़ा आदर-सत्कार किया। कवि ने उससे बिलकुल एकांत एक स्थान माँगा, और वेदी रच देवी का अनुष्ठान कर होम रचा।

दूसरे दिन अच्छे वस्त्र पहन कवि शाह के दरबार में गया। शाह के सरदारों की इच्छा न थी कि वह कवि को दरबार में आने दे। उन्होंने उसे बहुत रोका। शाह ने कवि को आने की आज्ञा दे दी। सम्मुख आने पर शाह ने कहा—

"कहो, क्या चाहते हो?"

"एक चीज़ माँगने आया हूँ।"

"पृथ्वीराज के सिवा जो चाहो, माँगो।"

"मेरे लड़कपन में राजा ने शब्दवेधी बाण से सात घड़ियाल गोल चक्र में रखकर फोड़ने की प्रतिज्ञा की थी, उसे पूर्ण करा दें।"

"पर वह इस वक्त अंधा और भूखा लाचार पड़ा है, कैसे तीर चला सकता है?"

"शाह वचन दे चुके हैं।"

शाह ने हँसकर कहा—"अच्छी बात है। राजा को उज्र न हो, तो मैं राज़ी हूँ। यह भी एक ख़ास तमाशा होगा।" इसके बाद उसने एक अफ़सर के साथ कवि को राजा के पास क़ैदख़ाने में भेज दिया।

राजा एक साधारण कमरे में साधारण बिछौने पर करुणा की मूर्ति बने बैठे थे। उन्हें देखते ही कवि की छाती फटने लगी। कवि ने कड़ा जी करके उन्हें आशीर्वाद दिया। पर वह बैठे ही रहे। कुछ न बोले। तब कवि ने कहा—"महाराज, इस विपत्ति-काल में सेवक से नाराज़ न हूजिए। मेरा अपराध नहीं। मुझे हम्मीर ने छल से देवी के मंदिर में क़ैद कर दिया था।" इसके बाद उसने कहा—

"राजन्, उस दिन की बात याद है, जब अँधेरी रात थी, हाथों हाथ न सूझता था, आपने एक ही बाण में उल्लू को मार गिराया था। और सात घड़ियाल एक ही बाण में बेधने का वचन दिया था। आज उसे पूरा कीजिए।"

राजा कवि का अभिप्राय समझ गए। कुछ ठहर-कर कहा—"यह तो ठीक है, पर मैं अत्यंत कमज़ोर हूँ, फिर शाह के अधीन हूँ, यदि शाह स्वयं आज्ञा दें, तो स्वीकार है, नहीं तो नहीं। समय ही उलटा है।" यह कहते-कहते राजा की आँखों से जल बरसने लगा।

कवि ने कहा—"स्वामी, साहसी और वीर लोगों को सदा ही समय है। कातर न हो।"

बाहर आकर कवि ने शाह से कहा—"राजा केवल आप ही की आज्ञा से बाण छोड़ने को राज़ी हैं।"

शाह ने हँसकर कहा—"अच्छा, हम भी यह तमाशा देखेंगे।" इसके बाद उसने समस्त दरबारियों को सूचना दी। प्रबंध किया गया। सात हाँडी गोल चक्र में लटका दी गईं। शाह सरदारों-सहित एक उच्च आसन पर आ बैठा। पृथ्वीराज लाए गए। कवि ने निवेदन किया—"यदि शाह ठीक निशाना देखना चाहते हैं, तो राजा को उन्हीं का धनुष-बाण दिया जाय।" यह प्रार्थना भी स्वीकार की गई। पृथ्वीराज ने धनुष पर बाण चढ़ाया। कवि ने कहा—"यह चूके, तो चूके।" इसके बाद शाह से निवेदन किया—"अब आप आज्ञा दीजिए।" शाह ने उच्च स्वर से कहा—"छोड़ो।"

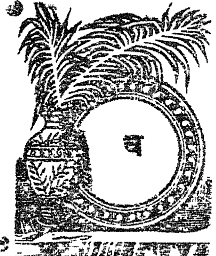
कठिनाई से 'छोड़ो'-शब्द उसके मुँह से निकला था कि बाण शाह के गले, तालू, दाँत, जीभ सबको फोड़ता हुआ पार निकल गया, और शाह पुण्य-क्षय नक्षत्र की भाँति उच्च आसन से गिरकर छटपटाकर ढेर हो गया। यह देख उपस्थित जनता में हाहाकार मच गया। जब तक लोग दौड़ें, कवि ने जूड़े से कटार निकाल अपना पेट चाक कर लिया, फिर अद्भुत धीरज से वही कटार राजा को दी। राजा ने गोविंद का नाम लिया, और कटार कलेजे में भोंक ली।

बँगला-साहित्य के आदि और ब्राह्मण-युगों का इतिहास

(सिंहावलोकन)

[श्रीयुत नलिनीमोहन सान्याल भाषातत्त्वरत्न, एम० ए०]

(१)



बल्लालसेन के पुत्र लक्ष्मण-सेन सन् ११६९ ई० से सन् ११९८ ई० तक गौड़-देश के अधिपति थे। सन् १२०० ई० में वंगदेश का कुछ अंश मुसलमानों के अधिकार में आया था, पर रफ़्ते-रफ़्ते पठान लोग समग्र गौड़-देश के मालिक हो गए। मुसलमानों के आने के पहले वंगदेश में बौद्ध-धर्म का प्रभाव अधिक था। केवल हिंदू-राजाओं की राज-सभाओं में ब्राह्मणों का सम्मान था—साधारण लोगों पर उनका प्रभाव कुछ भी न था। मुसलमान-विजय के पीछे बौद्ध-धर्म का प्रभाव दूर होने लगा, और हिंदू-धर्म के अधिकार का आरंभ हुआ।

हिंदू-धर्म के नव जागरण के पहले वंग-भाषा में कुछ काव्य लिखे गए थे, परंतु परवर्ती युग में उन्हीं काव्यों के विषय लेकर रचित जितने उत्कृष्ट काव्य हमारे हस्तगत हैं, उनमें ब्राह्मण-प्रभाव का चिह्न स्पष्ट है। प्राचीन अर्थात् बौद्ध-युग में रचित काव्य अब नहीं मिलते, परंतु परवर्ती युग में रचित उन्हीं के आधार पर लिखित ब्राह्मण-प्रभावान्वित काव्यों में ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिनसे हमें मालूम होता है कि ऐसे काव्य अवश्य थे। गोरक्ष-विजय, मयनामती का गान, डाक और खना के वचन, धर्म-मंगल, सूर्य का गान, महीपाल का गान, शिव का गान, व्रत-कथाएँ, गीति-कथाएँ इत्यादि काव्य बहुत प्राचीन हैं। मुसलमान-विजय के पहले, बौद्ध-प्रभाव के समय अर्थात् हिंदू-धर्म के नूतन जागरण के पहले इन सब काव्य और कथाओं का लिखना शुरू हुआ था।

यदि कई कवि क्रम से एक ही विषय पर काव्य लिखें, तो सबसे पीछे का कवि अधिक कुशलता दिखाकर प्रसिद्धि-लाभ कर सकता है। क्योंकि पहले के कवियों की रचनाएँ उसके हाथ में रहती हैं, और उसे उनकी भाषा और भावों से उत्कृष्टतर भाषा और भावों का उपयोग करने की सुविधा मिलती है। इस तरह से परवर्ती अर्थात् ब्राह्मण-युग के कुछ काव्य सुंदर बने हैं।

मुसलमान-विजय के पहले ब्राह्मण लोग जो पुस्तकें लिखते थे, वे संस्कृत-भाषा में लिखी जाती थीं। ब्राह्मण लोग साधारण लोगों में प्रचलित भाषा को घृणा की दृष्टि से देखते थे। संस्कृत कठिन भाषा है। साधारण लोग संस्कृत में लिखी पुस्तकें नहीं समझते थे। हाँ, राजा लक्ष्मणसेन के जयदेव-नामक एक सभा-पंडित थे, जिन्होंने गीत-गोविंद-नामक एक गीति-काव्य लिखा था, जिसकी भाषा अति सरल और मधुर थी। इस पुस्तक में राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। इसकी संस्कृत इतनी सहज है कि समय-समय पर बँगला-सी मालूम होती है। "चल सखि, कुंजम्।" इस वाक्य के 'कुंजं'-शब्द के स्थान में 'कुंजे' रखने से यह असली बँगला हो जाता है। परंतु बँगला-भाषा में यदि कोई पुस्तक लिखता था, तो राज-सभा में उसका आदर नहीं होता था—पंडित लोग उससे घृणा करते थे। बँगला भाषा गँवारों की भाषा गिनी जाती थी। उसका स्थान था देहातों में, छोटे आदमियों में और औरतों में।

औरतें और छोटे लोग जिन देवताओं की पूजा करते थे, पंडित लोग उन देवताओं को नहीं मानते थे। तथापि देहाती अशिक्षित लोग अपनी गँवारी भाषा में उन देवताओं की शक्ति का वर्णन करके गीति-काव्य के आकार में कहानियाँ ग्रथित करते और उनको मृदंग आदि वाद्यों के साथ गाते थे। यद्यपि ये कहानियाँ ग्राम्य भाषा में रचित होती थीं, तो भी इनमें प्राणों की बातें रहती थीं। इन गीतों को सुनते-सुनते लोग कभी-कभी बिना रोए नहीं रह सकते थे।

आदि युग के इन सब काव्यों में संस्कृत-शब्द बहुत कम पाए जाते हैं। इस समय के बाद जिस साहित्य की सृष्टि हुई थी, उसमें संस्कृत-शब्दों तथा संस्कृत-उपमाओं की भरमार है। आदि युग की रचनाओं में गृहस्थ तथा देहाती लोगों की उपमाएँ पाई जाती हैं, जैसे—"दिया बुत जाने पर उसमें तेल देने से क्या लाभ है?", "खेत्र से पानी बह जाने के बाद आल बाँधने से क्या फ़ायदा है?" निर्बुद्धिता का दृष्टांत दिया गया है—"दूध के पहरे में बिल्ली!" इत्यादि वाक्यों से।

द्वितीय युग के काव्यों में ब्राह्मणों के गौरव का प्रचार किया गया है। किंतु प्राचीन काव्यों में ब्राह्मण का पद गौरव-सूचक नहीं था। सबमें ब्राह्मणों की लांछना पाई जाती है। आदि युग में ब्राह्मणों का प्राधान्य नहीं था। उस युग में वैश्य प्रधान थे। आदि युग के काव्यों में समुद्र-यात्रा के विवरण बहुत स्पष्ट हैं। सहज भाषा, सरल उपमा और प्राणों की बातों का निशाना रखकर आद्य युग का साहित्य अंतर्हित हुआ है। परंतु यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि उस युग के साहित्य में चुस्ती न थी, और बहुत रूखापन था। ग्राम्य लोगों के पास इससे अधिक क्या आशा कर सकते हैं?

(२)

ऊपर कहा गया है कि आदि युग के कवियों ने कुछ ऐसे देवताओं की महिमा का कीर्तन करके गीति-काव्य लिखे थे, जिनको साधारण लोग बहुत मानते थे। कुछ देवताओं से साधारण लोगों को बहुत भय था, और उनको विश्वास था कि इन देवताओं की पूजा न करने से वे उनसे रूठ जायँगे, और उनका अनिष्ट करेंगे। जिन देवताओं की पूजा जारी करने के लिये गीति-काव्य रचे गए थे, उनके नाम हैं (१) मनसादेवी, (२) चंडीदेवी, (३) शीतला-देवी, (४) शिवजी, (५) सूर्यदेव और (६) धर्मदेव।

मनसादेवी की स्तुति के लिये एक सौ के क़रीब कवियों ने गीति-काव्य लिखे हैं। इन काव्यों का साधारण नाम है 'भासान गान'। किस समय से मनसादेवी के गान रचित होते आते थे, यह नहीं कहा जा सकता। जितने कवियों के नाम हमें मिले हैं, उनमें सबसे प्राचीन हैं हरिदत्त। वह बाकरगंज-ज़िले के रहनेवाले थे, और सन् १२०० ई० के लगभग जीवित थे। इस विषय की सबसे प्रसिद्ध रचना विजयगुप्त का 'पद्मापुराण' है। वह भी बाकरगंज के रहनेवाले थे, और उनके समय हुसेनशाह बंगाल के सम्राट् थे।

मनसा के गानों में दो चरित्र उल्लेख-योग्य हैं—चाँद सौदागर और बेहुला। मनसादेवी साँपों के देवता हैं। चाँद थे शिवजी के भक्त, और उनकी प्रतिज्ञा थी कि वह मनसादेवी की पूजा नहीं करेंगे। परंतु शिवजी का आदेश था कि पहले चाँद सौदागर के मनसा की पूजा न करने से मनसा की पूजा जगत् में प्रचारित न होगी। मनसादेवी ने चाँद को अपना पूजक बनाने की बहुत चेष्टा की, परंतु वह किसी प्रकार से राज़ी न हुए। मनसा ने क्रुद्ध होकर चाँद के छ पुत्रों को साँपों से कटवाकर मार डाला। तिस पर भी चाँद ने अपनी ज़िद न छोड़ी। एक बार चाँद सात नावों पर माल लादकर सौदागरी में जा रहे थे। देवी ने उनकी नावों को डुबा दिया। चाँद भी डूब जाते, परंतु चाँद के मर जाने से देवी की पूजा जगत् में जारी न होगी, इसलिये मनसा ने उन्हें नहीं मारा। चाँद के और एक सुंदर पुत्र पैदा हुआ। ज्योतिषियों ने कहा कि विवाह की रात्रि में ही वह सर्पाघात से मर

जायगा। उस लड़के का नाम था लखमींद्र। चाँद ने अपने घर के पास एक पहाड़ी पर लोहे का एक घर बनवाया, ताकि उसमें साँप घुस न सके। उसके चारो ओर सर्पघ्न जड़ी-बूटियाँ रोपी गईं। उस घर के हाते में मोर और नेवले पाले गए। सौदागर ने पुत्र का विवाह करवाया, और विवाह होने के साथ वर-वधू को इस लोहे के घर में लाकर रक्खा। पहरे में बहुत-से सिपाही रक्खे गए।

इतनी सतर्कता पर भी चाँद अपने प्रिय पुत्र को बचा नहीं सके। लोहे के घर में एक बहुत बारीक सूराख़ रह गया था, जो किसी की नज़र में नहीं आया था। इसी सूराख़ से घुसकर कालनागिनी ने लखमींद्र का वध किया।

वधू का नाम बेहुला (विपुला) था। पति की मृत्यु के बाद उसने लाल साड़ी नहीं खोली, हाथों के शंख के काँगन नहीं उतारे, न माथे का सिंदूर पोंछा। एक केले का बेड़ा (घरनई) बनवाकर मृत पति को साथ ले उस पर चढ़ गई, और नदी के बहाव में बेड़ा छोड़ दिया। मृत पति के प्राण-दान करने का संकल्प कर वह चल पड़ी। अशेष कष्ट भोगने के बाद मनसादेवी की दया से वह मृत पति को जिलाने को और चाँद सौदागर के द्वारा मनसादेवी की पूजा करवाने को समर्थ हुई थी।

हरिदत्त और विजयगुप्त के सिवा नारायणदेव, बंसीदास और चंद्रावती के मनसा-मंगल भी प्रसिद्ध हैं।

(३)

चंडी-मंगल में दो कथाएँ हैं—एक कालकेतु-फुल्लरा की कथा और दूसरी श्रीमंत का उपाख्यान।

कालकेतु व्याध का लड़का था, और बहुत बलवान् था। फुल्लरा के साथ उसका विवाह हुआ था। वे बड़े ग़रीब थे, और बहुत कष्ट से अपना गुज़ारा करते थे। शहर के बाहर एक झोपड़ी में वे रहते थे, और शिकार में प्राप्त मांस नगर में बेचकर किसी प्रकार जीवन निर्वाह करते थे। किसी-किसी दिन पति को खिलाकर फुल्लरा ख़ुद उपासी रह जाती थी।

इतने कष्ट में रहकर भी वे सुखी थे। फुल्लरा पति को प्राणों के समान चाहती थी, और उसी प्रकार कालकेतु भी फुल्लरा को। वे परस्पर देखकर अपना कष्ट भूल जाते थे।

उन पर चंडीदेवी की दया हुई। एक दिन कालकेतु को शिकार में कुछ नहीं मिला। वह केवल एक गोधा मार लाया, और सोचा कि उसी का मांस खाकर वे उस रोज़ क्षुधा-निवृत्ति करेंगे। चंडीदेवी ही गोधा बनी थी। फुल्लरा नमक उधार लाने गई। लौटकर उसने देखा, उसकी कुटी के द्वार पर एक अपूर्व सुंदरी कन्या खड़ी है। फुल्लरा ने उसे समझाया कि उसके समान बड़े घर की बेटी को व्याध के घर में रहना उचित नहीं। वह कन्या स्वयं चंडीदेवी थी, पर फुल्लरा यह नहीं जान सकी। देवी ने कहा कि वह वहीं रहेगी, और उनका दुःख दूर करेगी। जब उसने नहीं माना, तो फुल्लरा को अपने पति पर संदेह हुआ। वह कालकेतु को ढूँढ़कर घर बुला लाई। कालकेतु घर आकर देवी को देखकर अचंभे में आ गया, और उसे घर जाने को कहा। देवी ने अपने रूप से प्रकट होकर उसे एक अमूल्य सोने की अँगूठी और सात घड़े मोहर दिए।

अब श्रीमंत का उपाख्यान सुनिए। धनपति सौदागर उजानी नगर के बड़े धनी और विख्यात वणिक् थे। उनकी दो पत्नियाँ थीं—एक का नाम था लहना और दूसरी का खुल्लना। श्रीमंत ने इस खुल्लना के गर्भ में जन्म ग्रहण किया था। खुल्लना गोपन में मंगल-चंडी की पूजा करती थी। किंतु धनपति सौदागर देवी को 'डाइनी देवता' कहकर गाली देते थे, और एक दिन वाणिज्य के लिये निकलने के समय उन्होंने लात मारकर मंगल-चंडी का घट तोड़ दिया।

वाणिज्य में जाकर सौदागर घोर विपद् में पड़े। वह सिंहल को जा रहे थे। रास्ते में चंडी ने उन्हें एक आश्चर्य-जनक लीला दिखाई। चंडी ने समुद्र

के भीतर एक बड़ा भारी माया-पद्मवन उत्पन्न किया। धनपति ने देखा कि सबसे बड़े पद्म पर एक परम सुंदरी कन्या बैठी है। वह एक हाथी निगल रही है, और फिर उसे मुँह से निकाल रही है। धनपति ने सिंहल में पहुँचकर वहाँ के राजा के पास इसका बयान किया, पर राजा ने विश्वास नहीं किया। तब शर्त यह हुई कि यदि धनपति राजा को यह व्यापार आँखों से दिखा सकें, तो राजा उन्हें अपना आधा राज्य देंगे, और यदि न दिखा सकें, तो हमेशा के लिये वह कारागार में बंदी रहेंगे। धनपति राजा को यह लीला नहीं दिखा सके, और उनको कारागृह में जाना पड़ा। राजा ने उनके सब जहाज़ ज़ब्त कर लिए।

इधर श्रीमंत का जन्म हुआ। उसने बड़े होकर सुना कि उसके पिता निरुद्दिष्ट हैं। उसने प्रतिज्ञा की कि जिस प्रकार से हो, पिता को खोज लावेगा, नहीं तो प्राण-त्याग करेगा। यद्यपि उसकी उम्र केवल बारह वर्ष की थी, तथापि उसने किसी का कहा नहीं माना। उसने जहाज़ लेकर समुद्र-पथ से यात्रा की। सिंहल-द्वीप के निकट उपस्थित होकर उसने भी कमल-बन और हाथी निगलनेवाली सुंदरी को देखा। उसने भी सिंहलराज के पास पहुँचकर इस घटना का वर्णन किया। अब की दफ़े शर्त हुई कि यदि वह पद्मवन इत्यादि राजा को दिखा सकेगा, तो राज-कन्या के साथ उसका विवाह होगा, और उसे आधा राज्य दहेज़ में मिलेगा। यदि न दिखा सकेगा, तो दक्षिण-श्मशान में उसका सर काटा जायगा।

श्रीमंत भी पद्मवन इत्यादि नहीं दिखा सका, अतएव जल्लाद उसे काटने के लिये दक्षिण मसान में ले गए। वहाँ पहुँचकर श्रीमंत 'मा'-'मा' रव से चंडी-देवी को पुकारने लगा। देवी के भूत-प्रेतों ने आकर राजा की सेना को नष्ट कर डाला। स्वप्न में सिंहलराज ने देवी का आदेश पाकर अपनी कन्या के साथ श्रीमंत का विवाह कर दिया। धनपति बंधन से मुक्त हुए, और पिता-पुत्र मिलकर अनेक धन-रत्न के साथ सिंहलराज-कन्या सुशीला को लेकर उजानी नगर में आ पहुँचे।

संभव है, यह उपाख्यान बारहवीं सदी ईस्वी में रचा गया हो, किंतु इस विषय का सबसे पहला जो काव्य पाया गया है, वह माणिकदत्त का लिखा हुआ है। संभवतः वह तेरहवीं सदी ई० में लिखा गया हो। मुक्तारामसेन का चंडी-मंगल १४४६ ई० में रचा गया था। माधवाचार्य ने १५७६ ई० में इस विषय का ग्रंथ लिखा था। परंतु चंडी-मंगल के सर्व-श्रेष्ठ रचयिता मुकुंदराम चक्रवर्ती थे। उनका रचित ग्रंथ १५७८ से १५८६ ई० के भीतर लिखा गया था। मुकुंदराम वर्द्धमान ज़िले के दामुन्या-नामक ग्राम के रहनेवाले थे। बंगदेश के कवियों में मुकुंदराम एक श्रेष्ठ कवि गिने जाते हैं। वह बड़े भारी विद्वान् थे, इसलिये उन्हें 'कविकंकन' उपाधि मिली थी। उन्होंने अपने काव्य में दरिद्रों के दुख का वर्णन किया है, जिसे पढ़कर आँखों में आँसू आ जाते हैं। कहीं-कहीं उनका वर्णन चित्र के समान है।

कविकंकन के बाद भी अनेक कवियों ने चंडी-मंगल-काव्य लिखे हैं। उनमें आज से दो सौ वर्ष पहले का लिखा हुआ जयनारायणसेन का काव्य बहुत सुंदर हुआ था।

(४)

सूर्य के गान का आदर एक समय बंगदेश में खूब हुआ था। बंगाली कवियों ने सूर्य को कभी शिशु के समान और कभी युवक के समान कल्पना कर गीत बनाए थे। बाल-सूर्यदेव कसेरों के घरों के छप्परों पर होकर, मालियों की फुलवारियों के लाल फूलों को अधिक लाल बनाकर, ब्राह्मणों के घरों के खुले दरवाज़ों के भीतर झाँककर, तेलियों के आँगनों पर आलोक की रश्मियाँ फेककर उदित होते हैं। ब्राह्मण की लड़कियाँ उन्हें जनेऊ उपहार दे रही हैं, माली की लड़कियाँ उन्हें फूल की मालाएँ दे रही हैं, कसेरे की लड़कियाँ उन्हें पुष्प-पात्र दे रही हैं, सूर्यदेव ये सब दान हँस-हँसकर ले रहे हैं। सूर्यदेव के अभिषेक में भी प्रीति का परिचय पाया जाता है। जो देवता लाखों योजन दूर पर हैं, भक्त कवियों ने उन्हें

घर के आँगनों में ला खड़ा कर दिया है। ये कविताएँ बड़ी मधुर हैं।

इसके बाद सूर्यदेव युवक हो गए हैं। ब्राह्मण की लड़कियाँ उनके सामने साड़ियाँ सुखा रही हैं, कितनी लड़कियाँ सुखाने के लिये अपने काले केश-गुच्छ उनके सामने फैलाकर बैठी हैं, कई लड़कियाँ पैरों में कड़े पहनकर रास्ते पर जा रही हैं। इन सबों को देखकर सूर्यदेव को विवाह करने की बड़ी इच्छा हुई। एक छोटी लड़की गौरी का विवाह कर सूर्यदेव दुलहिन को लेकर घर जा रहे हैं। गौरी मा-बाप को छोड़कर जाना नहीं चाहती। उसका रोना बहुत हृदय-विदारक है। बाप रो रहा है, मा रो रही है, भाई रो रहा है—यह दृश्य बहुत करुण है। नाव पर गौरी सूर्यदेव से पूछ रही है—"मैं तुम्हारे देश में जा रही हूँ, पर किसे 'मा' कहूँगी?" सूर्यदेव ने कहा—"मेरी माता को तुम 'मा' कहना।"

सूर्यदेव के गान में देवता मनुष्य के घर में आकर लीला कर रहे हैं। उन्हें हम अपने जन के समान पाते हैं।

(५)

मनसा-मंगल में चाँद सौदागर मनसा-पूजा के शत्रु थे। पीछे वह मनसादेवी के पूजक हुए थे। चंडी-मंगल में धनपति सौदागर, जो मंगल-चंडी की पूजा के विरोधी थे, पीछे चंडी के भक्त बने थे। उसी प्रकार चंद्रकेतु पहले शीतलादेवी की पूजा के विरोधी थे, परंतु अंत में उन्हें शीतलादेवी की पूजा करनी पड़ी थी। हमें बहुत-से शीतला-मंगल मिले हैं।

(असमाप्त)

एक बार फिर

[श्रीयुत पं० पद्मकांत मालवीय]

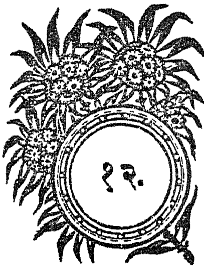
एक बार फिर पा जाऊँ तुमको, तो कितना प्यार करूँ?
तुम पर तन-मन-धन-जीवन सब कुछ अपना बलिहार करूँ।
तब तो तुम्हें न जाने दूँ मैं, भले पड़े जीवन देना;
मुझको अपने को देकर ही क्यों न पड़े तुमको लेना।
वही जानता है हँसना, जो फूट-फूटकर है रोया;
उसने ही पाया है सब कुछ, जिसने अपने को खोया।
जीवन एक अबूझ पहेली, है विचित्र इसकी माया;
उलझा जो इसमें, वह ही है इसको कुछ सुलझा पाया।
इसके उलझेपन में ही तो दुनिया का सारा सुख है;
इसको सुलझाकर जीने से बढ़कर कौन अधिक दुख है?
मैं हूँ नम्र भूमि प्रयसि! तुम करुणा जल से सींच इसे—
प्रेमलता कर दो आरोपित, हो प्रसन्न जग देख जिसे।

११ मार्च, १९३३
११ बजे रात्रि में

कवि-चर्चा

[श्रीयुत व्रजरत्नदास बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

(गतांक से आगे)



केसोदास—केशव नाम के दस कवियों का उल्लेख काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की हस्त-लिखित पुस्तकों के विवरण में दिया है, जिनमें एक केशव मिश्र प्रसिद्ध महाकवि केशवदास ही हैं। जहाँगीर-चंद्रिका इन्हीं महाकबि की कृति है।

एक केशवराम "ओरछा-नरेश महाराज नरसिंह के आश्रित, महाराजा नरसिंह के पिता महाराज छत्रसाल से इन्हें एक ग्राम प्राप्त हुआ था।" इन केशवराम की पुस्तक सं० १७५३ वि० में पूरी हुई थी, जिस समय ओरछा की गद्दी पर प्रतापसिंह के पुत्र उदितसिंह विराजमान थे। उस राजवंश में केवल एक महाराज वीरसिंहदेव हुए, जिनका नाम फ़ारसी तवारीख़ों में नरसिंहदेव भी लिखा मिलता है। यह जहाँगीर के समय हुए थे। रिपोर्ट उठाकर देखने से ज्ञात हुआ कि यह भूल इसी विवरण के लेखक ने की है, क्योंकि उसमें स्पष्ट लिखा है कि लाला नरसिंह के केसोदास आश्रित थे, और ओरछा-शब्द उसमें आया तक नहीं है। ज्ञात नहीं, संपादक महोदय ने इन लाला नरसिंह को ओरछा-नरेश किस प्रकार बना दिया। अस्तु।

मुझे केसोदास-कृत जो दो रचनाएँ मिली हैं, उनका इसमें तथा विनोद में कहीं उल्लेख नहीं मिलता। अतः केवल उन दोनो का विवरण यहाँ दिया जाता है—

(क) राधाजी का विवाह—यह पूरी रचना राग आसावरी में है, जिसमें १२२ पंक्तियाँ हैं। अंतिम पंक्ति इस प्रकार है—"जाको अंत न कोऊ पावै; केसोदास नरायन गावै।" इसमें केसोदास के साथ नरायन-शब्द सार्थक है। गुजराती, महाराष्ट्री आदि नामों की चाल पर यह शायद इनके पिता का नाम साथ में रक्खा गया है, या इन्होंने स्वयं अपने नाम के साथ अन्य केशवदास से भिन्नता दिखलाने को यह नाम जोड़ा हो। इसमें रचना या लिपि-काल दोनो नहीं हैं, पर काग़ज़ तथा लेख से यह सौ वर्ष से अधिक प्राचीन ज्ञात होती है—

व्रज बिसद बिहित बरसानो;
 बृषभान गोप तीहारो।
ताके राधा रुचिर कुमारी;
 पितु मातै प्रान पियारी।
गुन-रूप-रासि, बिधु-बदनी;
 रति-रमा-उमा-मद-कदनी।
भई बरस सात की बाला;
 लगी खेलन खेल रसाला।
ताहे सखी-वृंद रही घेरी;
 मन्न हैं सब वाकी चेरी।

(ख) जोग-लीला—नंददास-कृत भ्रमर-गीत के समान इसमें भी ६५ पद हैं। जो हस्त-लिखित प्रति मेरे पास है, वह सं० १८६५ की लिखी है। यह गोकुल में लिखी गई है, और इसमें अन्य पाँच रचनाएँ भी संगृहीत हैं। इसमें "भक्ति-मुक्ति जाको मिलै निश्चै केसोदास", केवल केसोदास नाम दिया है। इनके विषय में इस प्रति से और कुछ ज्ञात नहीं हो सकता—

एक समै मन मित्र मोहिं ये आज्ञा दीनी ;
याही तें मैंने युक्ति जोग-लीला जब कीनी।
सुक, सनकादिक, सारदा, नारद, सेस, महेस, गनेसें ;
देहु बुद्धि बर उदै ओरु अच्छर उपदेसें।
एक दिन नंदकुमार ग्वाल मिल मतो उपायो ;
नंदगाम सूँ निकरि भोर एक भेख बनायो।
तुम सब गाइन पैं रहो हम बरसाने जाइँ ;
हम कबहूँ देख्यो नहीं कैसो है वु गाम भूप बृषभान कों।

१३. कुंभनदास—अष्टछाप के सुप्रसिद्ध भक्त-कवि की कोई रचना अभी तक नहीं प्राप्त हुई है, केवल कुछ स्फुट पद अभी तक मिले हैं। इधर इनकी दान-लीला की एक प्रति मुझे मिली है, जिसके बीच का एक पृष्ठ नहीं है। यह राग बिलावल में है।

उदाहरण—

गोकुल की निज नार दह्यो नित बेंचन आवें ;
भूषन बिबिध सुरंग बनी अति परम सुहावें।
एक-तें-एक बिराजहीं सोभा बरनि न जाइ ;
बन्यो कुंज फूल्यो सखी सो रस-रँग घरें हैं बनाइ।

चली नव नागरी।

प्रात उठे नँदलाल सेन दै सखा बुलाई ;
सुनी ये दान की बात सकल आतुर उठि धाई।
पैं डोगे क्यों जाइके कालंदी के तीर ;
नवल कुँवर सुखदायका हो तहाँ बैठे बलबीर।

१४. प्रेमदास—मिश्रबंधु-विनोद में प्रेमदास के विषय में इतना ही लिखा है कि यह हितहरिवंश के अनुयायी थे, इनका रचना-काल १७६१ है, और इनके ग्रंथ (१) अरिल्लन और (२) हरिवंश-चौरासी है। दूसरा ग्रंथ प्रसिद्ध हितहरिवंशजी की रचना है, जिसमें उनके रचे चौरासी पद संगृहीत हैं। इस ग्रंथ पर प्रेमदासजी ने विशद टीका लिखी है। जो प्रति मेरे संग्रह में है, उसमें १८७ पन्ने हैं, और हरएक के दोनो ओर चौबीस-चौबीस पंक्तियाँ हैं। कुल टीका गद्य में है, केवल आरंभ में २५ दोहे हैं, जिनमें हितहरिवंशजी की स्तुति तथा टीका-निर्माण का कारण आदि बतलाया गया है। प्रत्येक पद के पहले उसका आभास तथा बाद को टीका लिखी गई है। लिपि-काल नहीं दिया है। उदाहरण—

"जोइ-जोइ प्यारो करै सोइ मोहि भावै। इति, प्यारो उचित-अनउचित करै जो, सो सब भावै। उचित-अनुचित यह क्यौं लिख्यौ, कोउ संदेह करै, ताको उत्तर करिबे में दोउ इहै उचित कें अनउचित, उचित तो प्यार बिना हू करै सोऊ भलो लागै। अनुचित तो प्यारे ही को भलो लगें। अनुचित, इहां कहा अरु उचित कहा, सो सब कहत हैं। नाइक नाइक की क्रिया करै, सो उचित और अनुचित यह जे दास्य भाव की क्रिया करै, सोउ मोहि भावै प्रेमाधिक्य तें इति।"

१५. किशोरीअली—यह हित-संप्रदाय के एक भक्त-कवि हो गए हैं, जिसमें सखी-भाव की श्री-राधाजी की उपासना प्रधान है। इन्होंने अपने गुरु श्रीवंशीअलीजी का चरित्र ३८६ रोला छंदों में लिखा है। कहीं-कहीं एक-दो कवित्त, सवैए

भी हैं। अंत में अनेक पुराणों के श्लोक उद्धृत कर गुरु-महिमा-वर्णन किया है। कविता अच्छी है, सरस तथा प्रसाद-पूर्ण है, भाषा पर भी इनका अच्छा अधिकार है। जो हस्त-लिखित प्रति मेरे पास है, वह अपूर्ण है। आरंभ के बीस रोला छंद नहीं हैं, और शायद उतने ही अंत के भी न होंगे, जिससे लिपि-काल आदि का कुछ पता नहीं है। उदाहरण—

ललित कुंज मधि यह प्रभाव अद्भुत दरसावै ;
सकल रितुन के दंपति-हित अभिलाख पुरावै।
मूरतिवंत सकल रितु नित सेवति तिहि कुंजहि ;
कुसुम-धूरि-धूसरित मधुर माते जहँ गुंजहि।
रितु बसंत पुखराज मणिमई होति सुहाई ;
कुँवरि-केलि-रस केलि रहति संतन छबि छाई।
ग्रीषम-रितु गजमुक्तामय मंजुल दरसावै ;
सजि सीतलता अंग सरस सेवा हित लावै।
बरखा-रितु मधि नील मणिमई छबि अस जोहै ;
दंपति-रुचि-अनुरूप तथा कंचनमय सोहै।

१६. चैतन्य-चरित्र-सार—इस गद्य-ग्रंथ में अड़तालीस पृष्ठ और प्रत्येक में दोनो ओर २४-२४ पंक्तियाँ हैं। ग्रंथकार अपने को "श्री-लाड़िलीलाल-सुत राधाचरण सुधार ; बिरच्यो श्रीचैतन्य को चरित परम सुख-सार।" लिखते हैं, और अपने गुरु का नाम गोपीलाल लिखा है। इसमें अत्यंत संक्षेप में श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की जीवनी दी गई है। पुस्तक के अंतिम भाग में कई भक्तों की वार्ताएँ भी सम्मिलित कर दी गई हैं। यह रचना पाँच विश्रामों में विभाजित है, और सं० १६४५ आषाढ़ शुक्ल ७ चंद्रवार की लिखी है। रचना-काल नहीं दिया हुआ है। उदाहरण के लिये कुछ अंश उद्धृत किया जाता है—

"प्रथम श्रीप्रभु श्रीनिलाचल तें यात्रा करके श्रीअलालनाथ में निवास करते भए। वहाँ श्री-अलालनाथजी के दरसन करके तिनकी प्रार्थना-युक्त बहुत-सी स्तुति करत भए। कितनो बेर तक तहाँ नृत्य प्रेमावेस तें करते भए। तब तहाँ प्रभु के दरस कों तहाँ के निवासी मनुष्य आवते भए। चहुँ ओर तें श्रीप्रभु के दरसन करके मनुष्य श्रीहरी-श्रीहरी बोलते भए, तब तिनको वैष्णव करके दूसरे दिन श्रीप्रभु समस्त वैष्णवन कूँ बिदा दैके और कृष्णदास नाम वैष्णव कौ संग लैके प्रेमावेस ते नाम-संकीर्तन करके या श्लोक कौ उच्चारण करत तहाँ ते चलते भए।"

१७. मुकुंदराम की वार्ता—इस पुस्तक की जो हस्त-लिखित प्रति मेरे पास है, वह अधूरी है। अंत का भाग नहीं है। इसमें सं० १८७६ वि० में श्रीगिरिधरजी महाराज के श्रीनाथद्वारा जाने तथा वहाँ से श्रीमुकुंद रायजी को काशी लाने की वार्ता दी गई है। इसमें आरंभ में श्रीगिरिधरजी महाराज से श्रीनाथजी के महाराज ने जो अनेक प्रश्न सेवा आदि विषय में पूछे थे, और इनके जिन उत्तरों से अत्यंत प्रसन्न हुए थे, उनका विवरण है। यह प्रति पुरानी और शायद उसी समय की लिखी हुई भी है। रचना-काल तथा लेखक दोनो का उल्लेख नहीं है। उदाहरण—

"संवत् अठ्ठारह सौ उन्यासी में श्रीश्रीमद्गोस्वामि श्रीदामोदरजी महाराज ने सात स्वरूप को मनोर्थ कीए। कार्त्तिक सुदी १ को अन्नकुट अरो गाए सो श्रीजी के पास छत्रो घर की पालखीय पधारी। ता समे श्रीगिरिधरजी महाराज के अंतःकरण में बड़ोइ विरह भयो। देखो हमारे बड़ेन को या घर में कछु नाम नहिं हे।"

१८. पुष्टि - मार्ग - सिद्धांत — श्रीकुंभनदास, चतुर्भुजदास आदि वैष्णव भक्तों के पूछने पर श्रीआचार्य महाप्रभु ने उनकी शंका निवारण करते हुए जो सिद्धांत-वाक्य कहे थे, उसी का इसमें संकलन हुआ है। यह पंद्रह पृष्ठ की छोटी-सी पुस्तिका है। दोनों ओर नौ-नौ पंक्तियाँ हैं। उदाहरण—

"श्रीमहाप्रभुजी श्रीआचार्यजी सों कुंभनदास, चतुर्भुजदास आदि दे सबै वैष्णव पूछत भए। जो महाप्रभुजी हम कछु समुझत नाहीं। तब श्रीमहाप्रभुजी कृपा करि कह्यो। जो तुम पूछो, सो मैं कहूँ। तब सब वैष्णवन की आज्ञा लेके कुंभनदास श्रीमहाप्रभुजी सों पूछन लागे। हो महाप्रभुजी, हमकों धर्म को स्वरूप-सिद्धांत कहो। जाते श्रीठाकुरजी की सेवा निर्विघ्नता सों सेविए। आचार-क्रिया कहो, देस-काल कहो, लौकिक व्यवहार कहो।"

१९. उत्सव-सेवा-विधि—इसमें ७५ पत्रे हैं, और प्रत्येक पत्रे के दोनो ओर सात-सात पंक्तियाँ हैं। इस ग्रंथ में जन्माष्टमी से आरंभ कर एक वर्ष के कुल उत्सवों की सेवा की विधि संक्षेप में लिखी गई है। अंतिम दो पृष्ठ नहीं हैं, जिससे रचना-काल तथा लेखक दोनो का पता नहीं है। पुस्तक सौ वर्ष से कम प्राचीन नहीं है। उदाहरण—

"प्रथम भाद्रपद कृष्ण ८ श्रीजन्माष्टमी प्रातःकाल सप्तमी को वेध पल-मात्र हू होइ, तो उत्सव नवमी के दिन करनो। प्रातःकाल बेग उठनो, रात्रि में प्रभुन को जगाइ मंगल-भोग समर्पि मंगला आर्ती करि प्रभुन को रात्रि को शृंगार होइ सो बड़ो करि पीरो पाट के धोती, उपरना पहिराइए। श्रीहस्तन मे कड़ा सोने के, चरणारविंद में घुँघुरू सोने के, श्रीकंठ-मेल ३१ मोतीन के इतने आभरण रहे, और नहीं। श्रीबालकृष्ण कछू धारण न करे, ऐसे ही स्नान करे। श्रीस्वामिनीजी पंचामृत स्नान न करे। रात्रि को शृंगार होइ, सो पाहिरे गादी पर विराज रहे।"

२०. छीहल कवि—इनके विषय में सभा की खोज की सन् १९०२ की रिपोर्ट नं० ३५ में 'पंचसहेली री दूहा' का विवरण दिया हुआ है। विनोद में भी सं० ६७ पर इसी एक पुस्तक को इनका रचा कहा गया है, उसमें चंदेरी का वर्णन है, जो राजस्थान ही में है। शायद यह वहीं के रहनेवाले हों, क्योंकि इनकी भाषा राजस्थानी है। इनका रचना-काल सं० १५७५ है। इनकी दूसरी रचना 'छीहल की बावनी' मेरे संग्रह में है। इस हस्त-लिखित प्रति में अन्य कई ग्रंथ हैं, जिनमें एक का लिपि-काल सं० १७६३ दिया हुआ है। यह बावनी सबके अंत में है, और ४२ पद तक पूरी है। बाद के पद नहीं हैं। भाषा वही राजस्थानी है। उदाहरण—

ओंकार अपार है रहत अबगति अपरंपर;
अलष अजोनी सिभ सृष्टि करतार बिसंभर।
घटि-घटि अंतरि बसै तास चीन्है नहीं कोई;
जल-थल, सुरग-पताल जहाँ देखौ तहाँ सोई।
जोगिंद्र सिध मुनि रति के प्रबल महासिधचपियो;
'छीहल' कहै ते पुरिष को पार न कोई लघियो।
नाद श्रवण ध्यावत तज्यो मृग प्राण तत ठपण;
इंद्री परस गयंद बास अलि मरै विचषिण।
रसना सवाद विलग्गि मीन बेधे देखं तह;
लोईयण बधि पतंग पड्यो पावक पेषंतह।

मृग, मीन, भँवर, कुंजर, पतंग रासब बिनसैए करस ;
'छाहल' कहै तेलोईयौ इद्रो राखौ आप बसि ।

२१. लालचदास—विनोद सं० ६८ पर इनका उल्लेख यों है कि यह रायबरेली के हलवाई थे, और इन्होंने (१) भागवत दशमस्कंध को भाषा (१५८७), (२) हरि-चरित्र (१५८५), ये दो ग्रंथ लिखे हैं। विवरण में यह पुस्तक लाला भगवानदीनजी के पास है, ऐसा लिखा है। पूर्वोक्त दो पुस्तकों में कौन उनके पास है, यह स्पष्ट नहीं किया गया है। मेरे पास जो प्रति मौजूद है, उसके अंत में "इति श्रीभागवते दशमस्कधे हरिचरित्रे येकोनवेध्यायः।" लिखा है। इससे यही ज्ञात होता है कि लालचदास ने केवल एक ही पुस्तक लिखी है, और भागवत के दशमस्कंध में कृष्ण-चरित्र वर्णित है, इससे हरि-चरित्र भी नाम लिखा है। यह प्रति सं० १६६४ वि० को लिखी हुई है। इसके आरंभ का कुछ अंश नहीं है। यह प्रति ११५ पत्रों में समाप्त हुई है, और दोनो ओर बारह-बारह पंक्तियाँ हैं। कहीं-कहीं अध्याय-समाप्ति पर जन लालच भी लिखा है—

सुनिकै राए कंस अस कहई ;
बिप्र काज तुम्ह लाएक अहई ।
गोकुल तुहु ग्रिह नंद के जाऊ ;
वोइ बालक मारी गै आऊ ।
हँसै बिप्र एह केतिक बाता ;
मैं निश्चै कै करब निपाता ।
कंसराए तब दीन्हेउ पाना ;
कीन्हेउ ओधर बिप्र पआना ।
पंथ चलत किछु बुधी उपाई ;
केलि करत तब गोकुल आई ।
जन लालच मन हुलसै, जिअमह बहुत हुलास ;
कपट ऊपजे आवई ताकर प्रभु करै बिनास ।
मंदील मह बीप्र जब आवा ;
नँदरानी लै पानो धावा ।
चरन पखारी कीन्ह प्रनामू ;
आसन दीन्ह करिउ बिश्रामू ।
हँसिकै कुसल जसोदै पूछा ;
बाभन कुसल कुसल तौ आही ।
सुनहु गोप ग्रिह गोकुल-नारी ;
हम सर्वदा भिषारि तोहारी ।
बहुत देवस मै तरसत रहऊ ;
राम क्रीस्न के देखा चहऊ ।
हम सत बंधी सरती न होइ ;
करहु पसाउ देखहु सोइ ।
कै पसाउ मोहि बेगि देखावहु ;
नैन तपत है प्रान जुड़ावहु ।
जन लालच ऐसे मन कहई ;
मूढ़ महा मत ऐसेउ अहई ।

२२. अद्भुत रामायण—इस पुस्तक की एक हस्त-लिखित प्रति प्राप्त हुई है, जो जयपुर में महाराज रामसिंह के समय में, सं० १९१२ में, लिखी गई थी। इसका रचना-काल एक दोहे में इस प्रकार दिया है—

एक सहस अरु आठ सै संबत दस अरु तीन ;
शुक्ल द्वितीया मास मधु भाषा कथा नवीन ।

इस ग्रंथ में श्रीसीताजी द्वारा शत-दश शीश-वाले रावण का निधन दिखलाया गया है। इसमें १४ पत्रे हैं, और दोनो ओर नौ-नौ पंक्तियाँ हैं। दोहे, सोरठे और चौपाई विशेष हैं। कहीं-कहीं तोमर आदि छंद भी हैं। कविता साधारणतः अच्छी है। उदाहरण—

आयुध-हीन देखि रघुबीरा ;
निश्चर-पति करि नाद गभीरा ।

हाकि गयंद गयौ प्रभु आगैं ;
बिबिध भाँति सरला लगा त्यागैं ।
अपर दनुज - दल बिकट कराला ;
धायौ पर्म भीम जिमि काला ।
निज - निज आयुध करत प्रहारा ;
लखत जोंन गिरि सिर जलधारा ।
भयौ समर सुकृत अति, खल-बल गा बिसराइ ;
जनक सुता दिष्टि देखि कै, कहत भए रघुराइ ।
पर्म सक्ति अतुलित बलमाया ;
तुत्र प्रभाव निगमागम गाया ।
सहजहि निजु भृयपंक बिलासा ;
त्रिभुवन साजि-पोषि पुनि नासा ।
धरि बहु सौम्य सरूप सुहावा ;
कित अवनीडवल है जदुरावा ।
अहमित यह खन बल गुनभारा ;
कीजिय कित अब तासु सहारा ।
सुनि प्रभु - बचन बिदेह - कुमारी ;
करि कौतुक माया बिस्तारी ।
तुरित त्याग निजु सौम्य सरूपा ;
प्रगटेउ बिकट उग्र अति रूपा ।
पद पताल सिर सुरपुर पारा ;
धृत कर निकर सुबिबिधि अपारा ।
अमित कोटि विद्युत दुति गाता ;
भृकुटि कुटिल लखि काल सकाता ।
क्रोध - अनल अति तेज प्रचंडा ;
चल - दल - सम डोलत ब्रह्मंडा ।
रोम - रोम प्रति अंग अपारा ;
प्रगटी शक्ति अनेक प्रकारा ।
प्रगटो अमित अपार सक्ति समूह संन्यसु को गनै ;
बाहन बिबिध आयुध धृता बहु बेष बरनत नहिं बनै ।

२३. रसिक—इन्होंने रसिक-विलास-नामक काव्य-ग्रंथ लिखा है, जिसमें श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी श्रीश्यामानंदजी तथा उनके शिष्य रसिकानंदजी का चरित्र वर्णित है। यह अपूर्ण है। इसमें अधिकतर कवित्त ही हैं, और २४५ तक पूरे मिले हैं। बाद के कवित्त का एक चरण भी पूरा नहीं है। कविता अच्छी है, और भाषा भी प्रसाद-गुण-संपन्न है। उदाहरण—

भए जू प्रगट घर अचुन कैं रसिक देव,
अति ही बिचित्र बाल्य लीला सुखदाई है ;
महाप्रभुजु की सील्य आय कें दयाल दासी,
सुनो जब बात बेग सिछुया लै सुनाई है।
कही स्यामानंद देव गुरु हैं तिहारौ अहो,
सुनि कै रसीली बात रसिक मन भाई है ;
गोद ही मैं हुते सुनि मिले दयाल दासी सौं,
जु छाती सौं लगाय लगि रहे छवि छाई है।
दिन-दिन बढ़ैं कृष्ण लीला गुण रूप मढ़ैं,
चढ़ैं दुनै रंग अंग यहै आठों जाम है ;
बाल्य औ कौमार पौगंड बीते रंग ही सौं,
दरसन बिना कृष्ण होत न अराम है।
दौरि बन-बन फिरैं अहौ कृष्ण कहि टेर,
हेरैं तरु-तरु तरैं पाऊँ कैसैं स्याम है ;
बिरह सौं जरैं अरबरैं तरफरैं कछू,
काहु सौं न अरैं ढूढि लावैं पिता धाम है।

२४. कमलानंद—इनका बनाया हुआ एक सुदामा-चरित्र मिला है, जिसका लिपि-काल सं० १७६३ है। इसलिये इनका रचना-काल इसके पहले ही का हो सकता है। इसका प्रथम पृष्ठ नहीं मिला। इसमें सात पन्ने हैं, और दोनो ओर दस-दस पंक्तियाँ हैं। उदाहरण—

जबहिं निज भूलौ जान्यौ।
छोटी पोलि पगार भवन भीतरि लै आन्यो ;
धाम धरौ धन देखियौ रतन-जटित बहौ भाँति ;
हैगै मैगै सांग सारथी नगीन ललीन की प्रीति।
बेती केती कहा कहु बेद पुराण है साषि;
जेइ-जेइ दुषित सरनै आए हरि तेई-तेई लीए राषि।
चरित सुदामा सुनै ताहि दुख निकटि न आवै ;
कीरन-चरित्र अंतर धरै दुर्लभ भगति - पद पावै।

दीनबंधु बीरदावली प्रगट करी जुग माँहि;
'कमलानंद' मुदित जस गावै वेद सुमीरत सोई वाहि।

२५. मुल्ला दाऊद—इसके विषय में विनोद में लिखा है—"यह अमीर ख़ुसरो का समकालीन था। इसका कविता-काल सं० १३८५ के लगभग था। इसने नूरक और चंदा की प्रेम-कथा हिंदी-पद्य में रची। यह ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आया।" मुल्ला अब्दुलक़ादिर बदायूनी ने स्वरचित 'मुंतखबुत्तवारीख़' जिल्द १ में इस पुस्तक के विषय में जो कुछ लिखा है, उसका सारांश यहाँ दिया जाता है—

"हिंदी के चंदबान काव्य का मौलाना दाऊद ने शेरों में अनुवाद किया, जिसमें नूरक और चंदा का प्रेम वर्णन है। यह बहुत प्रसिद्ध है। मक़दूम शेख़ तक़ीउद्दीन वाएज़ रब्बानी इसका कुछ अंश मेंबर (?) से नित्य पढ़ता था। ऐसा करने का कारण पूछे जाने पर वह कहता कि यह दैवी सत्यता से भरा हुआ है, और इस योग्य है कि प्रेमी लोग इसे पढ़ें। यह क़ुरान की आयतों के अनुसार है, और मनुष्य के हृदय को आकर्षित करता है।"

इस ग्रंथ के अनुवाद का समय बदायूनी के अनुसार सन् ७७२ हि० सन् १३७० ई० है। चौदहवीं शताब्दि में हिंदी-काव्य से विशेषतः संस्कृत-काव्य ही से तात्पर्य रहा होगा, और उसी का अनुवाद शेरों में किया गया था। यदि यह अनुवाद हिंदी में हुआ था, तो उसकी भाषा ब्रजभाषा थी या खड़ी बोली, यह प्रश्न उठता है। बदायूनी शेरों में अनुवाद होना लिखता है, जिससे उसका खड़ी बोली होना ही विशेष संभव है।

(समाप्त)

क्षणिक समागम

[श्रीयुत 'जयकरन']



आज संसार क्षणिक सुख के पीछे पागल हो रहा है। इस सुख की वृद्धि के लिये अनेक उपाय हो रहे हैं। वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा अन्वेषण किया जा रहा है। एक धुरंधर विज्ञान-वेत्ता का कथन है कि यदि संसार में प्रेम कोई वस्तु है, तो वह स्त्री-पुरुष-प्रेम है। वास्तव में विचार किया जाय, तो मालूम होता है कि प्रकृति ने स्त्री और पुरुष के बीच में कोई पर्दा नहीं किया है। परंतु मनुष्य एक बुद्धि-संपन्न जीव है। उसने सामाजिक अराजकता को रोकने के लिये कुछ सीमाएँ बाँध दी हैं। इसी से विवाह-बंधन की मर्यादा निश्चित कर दी गई। इस मर्यादा का उल्लंघन करना एक प्रकार का पाप समझा जाता है, और अपराधी को समाज दंड देता है। विना वैवाहिक ग्रंथि में बँधे हुए जो पुरुष किसी स्त्री से प्रेम करते हैं, उनका संबंध 'नाजायज़' कहलाता है। परंतु जब वे लोग अपनी जाति में प्रचलित रीति-रिवाजों के अनुसार एक दूसरे का पाणि-ग्रहण कर लेते हैं, तब कोई उँगली नहीं उठा सकता। इस प्रकार के पाणि-ग्रहण से क्या उन स्त्री-पुरुषों में किसी प्रकार का अंतर आ जाता है? उनकी प्राकृतिक बनावट वैसी ही बनी रहती है। फिर क्या बात है कि जो लोग कुछ समय पहले 'बदमाश' या भ्रष्ट समझे जाते थे, वे ही विवाहोपरांत अच्छे समझे जाते हैं। मतलब यह कि विवाहादि नियम मनुष्य ने अपने ही हित के लिये बनाए हैं। विवाह हो जाने से स्त्री और पुरुष का जीवन एक निश्चित धारा में बहने लगता है। जीवन को अच्छी तरह बिताने में सहायता मिलती है। यदि इस प्रकार के नियम न बने होते, तो सभ्यता का पूर्ण विकास ही न हो पाता, और हम लोग जंगली मनुष्यों की तरह वन्य भावों से प्रेरित होकर एक दूसरे की चीज़ पर ज़बरदस्ती अधिकार जमाने का प्रयत्न किया करते; और कौन किसकी स्त्री है, और कौन किसका पुत्र, इत्यादि बातों का पता ही न चलता। इस वर्णसंकरता को दूर रखने के लिये हमारे धर्मशास्त्रों में स्त्रियों के पातिव्रत धर्म पर अधिक ज़ोर डाला गया है। गीता में श्रीकृष्ण भगवान् ने अर्जुन से कहा है—

"स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय, जायते वर्णसंकरः।"

लेकिन अब गीता के उपदेशों की कौन परवा करता है? अब तो सर्वत्र 'लैंगिक अशांति' का दृश्य दिखलाया जाता है। कहा जाता है, कुछ दिनों में यह दुनिया बिलकुल बदल जायगी। दसों दिशाओं में मनोज का अकंटक राज्य फैल जायगा। मनुष्य अपनी प्राकृतिक अवस्था में आना चाहता है। आधुनिक सभ्यता से बहुत हानि हो रही है। इसीलिये पाश्चात्य देशों में पोशाक को अत्यंत सरल बनाने के प्रयत्न हो रहे हैं। एक महाशय ने तो हाल ही में लिखा है—"मनुष्य नंगा, पूर्ण रूप से नंगा रहना चाहता है। उसकी सदैव यह इच्छा रहती है कि वह प्रत्येक वस्तु को उसके नंगे रूप में देखे। उसे किसी प्रकार का बाह्य आवरण पसंद नहीं है। वह अपने शरीर, हृदय और मस्तिष्क के ऊपर से प्रत्येक प्रकार की पोशाक को उतारकर फेंक देना चाहता है। अपने इस प्रयत्न में अब तक वह भले ही सफल न हुआ हो, परंतु भविष्य के लिये उसने मार्ग तैयार कर लिया है।" मालूम नहीं, यह कथन मनोविज्ञान के आधार पर किया गया है, या पाश्चात्य त्रिकाल-दर्शियों की उक्तियों के आधार पर। उनकी इस भविष्यवाणी की सचाई के चिह्न ज़रूर दिखाई पड़ रहे हैं। पाश्चात्य देशों के लोग जो सभ्यता की

चमक-दमक के अगणित पदार्थों का सेवन करते-करते थक गए हैं, और जिनके पास धन-धान्य भरा है, उनका जीवन अत्यंत कृत्रिम हो गया है। वे कभी नंगे रहना चाहते हैं, और कभी वस्त्राच्छादित। 'सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयंति'। वस्त्रावरण के बाद धीरे-धीरे लोक-लज्जा का आवरण भी हट जायगा। इन बातों से मालूम होता है कि लोक-रुचि काम-वासनाओं को तृप्त करने की ओर प्रवृत्त हो रही है।

कोई कितना ही प्रयत्न करे, समय के प्रवाह से नहीं बच सकता। अँगरेज़ी में एक मसल है—'Time and Tide wait for no man' (समय और ज्वार-भाटा किसी की प्रतीक्षा नहीं करता)। किसी भी समय जिस प्रकार के वातावरण की सृष्टि होती है, उसका प्रभाव साधारण जनता पर निश्चय पड़ता है। समय के प्रवाह को दूसरी ओर बहाने की शक्ति महापुरुषों ही में होती है। यह बात ईश्वरीय प्रेरणा से उत्पन्न होती है। अस्तु, हमारे धर्माचार्यों तथा कवियों ने कलि-काल का जो चित्र खींचा है, वह योरप और अमेरिका आदि देशों में तो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा है, और भारतवर्ष भी प्रभावान्वित हो रहा है। हमारे देश के 'लक्ष्मीवाहनों' का शौर्य-वीर्य भी विलासिता के कला-कौशल में प्रदर्शित हो रहा है। परंतु पाश्चात्य सभ्यता की दुर्दशा को देखकर वे सचेत हो गए हैं, और कुछ तो राष्ट्रीय कार्यों में सहर्ष योगदान दे रहे हैं। भारतवर्ष बहुत जाग्रत् हो गया है, और यहाँ के प्राचीन सिद्धांतों की भित्ति यद्यपि इतनी मज़बूत है कि लिंग-संबंधी युगांतर-कारिणी बातों का पाश्चात्य ढंग पर समावेश होना ज़रा कठिन मालूम हो रहा है, तथापि कामासक्ति यहाँ भी बढ़ रही है। 'मातृवत्परदारेषु' के सिद्धांतों का प्रभाव शिथिल हो रहा है। बिलकुल पाश्चात्य स्वतंत्रता के भावों का उदय हो रहा है। वेद-पुराण, पूजा-पाठ, दान-पुण्य, कर्म-धर्म सब धीरे-धीरे लुप्त हो रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में आजकल एकमात्र लक्ष्य है—पेट भरना और भोग-विलास करना। जाति-च्युति का भय भी शनैः-शनैः कम हो रहा है, क्योंकि लोग व्यभिचार को एक मानवीय कमज़ोरी कहकर टाल देते हैं, और वास्तव में यह है भी ठीक। मनुष्य में 'आहार, निद्रा, भय और मैथुन' आदि गुण बिलकुल पशुओं ही के समान हैं। कितनी ही संस्थाएँ जाति-पाँति के भेद को मिटाने का यत्न कर रही हैं। नैषध-चरित-नामक महाकाव्य की रचना करनेवाले श्रीहर्ष की तरह जाति-पाँति-तोड़क महाशय भी कुछ-कुछ कह सकते हैं कि "संसार अनादि है। अब तक स्त्री-पुरुषों के अनंत जोड़े उत्पन्न हो चुके। काम दुर्वार है; उसके सामने बड़े-बड़े धैर्यवानों का भी धैर्य हवा हो जाता है। कुलों की जड़ कामिनी-मूलक है। एक भी कामिनी का संपर्क कालुष्य से हो जाने पर आगे-पीछे के सैकड़ों-हज़ारों कुल कलंकित हो जाते हैं। इस दशा में जातियों और कुलों की पवित्रता का स्वप्न देखना पागलपन के सिवा और कुछ नहीं। अरे भले आदमियो, स्मरांधता जैसे नरों को पीड़ित करती है, वैसे ही नारियों को भी। तिस पर भी तुम लोग, ईर्ष्या-वश, नारियों की रक्षा के लिये तो बड़े-बड़े ढोंग रचते हो, पर नरों की रक्षा की रत्ती-भर भी परवा नहीं करते। कुल-स्थिति को अक्षुण्ण रखने का दंभ करनेवाले तुम-जैसों को हज़ार बार धिक्कार!" सो यह मनुष्य-स्वभाव है। प्रत्येक मनुष्य के भीतर 'बदमाशी' करने का प्राकृतिक झुकाव रहता है। परंतु कुछ लोग उसको दबाए रहते हैं, और कुछ उच्छृंखल हो जाते हैं। बहुत-से लोग कुसंगति के कारण बिगड़ जाते हैं। खल और साधु, विद्वान् और मूर्ख में प्रायः यही भेद है कि विद्वान् या साधु अपने आचरण को सीमित रखता और खल या मूर्ख अत्याचार या व्यभिचार करने लगता है। विद्वान् मनुष्य भी यदि आचरण-भ्रष्ट है, तो उसकी विद्या की वही दशा होती है, जो 'शिखंडी' की नारी की हो सकती है। इसी से सदाचार की महिमा विद्या से कहीं अधिक है। सदाचारी पुरुष आजकल के दूषित वायु-मंडल का भीषण अपवाद है, इसी से उसकी पूजा

होती है । सदाचारी कवि या विद्वान् संसार में कम मिलते हैं । इसका कारण यह है कि कहने और करने में अंतर होता है, यह एक कठिन काम है । फिर संसार की प्रायः सभी साहित्यिक कृतियों में मानवीय प्रेम का वर्णन है, उसी के भावों का विश्लेषण किया गया है । उपन्यासों में स्त्री-पुरुष-प्रेम से संबंध रखनेवाले उपन्यास अत्यंत रोचक माने जाते हैं । कला और सौंदर्य का प्रदर्शन अधिकतर स्त्रियों ही के चित्रों द्वारा होता है । कवि सहज ही में रसिक होता है । यदि उसमें सरसता या सहृदयता नहीं, तो वह कवि ही नहीं । उमर-ख़ैयाम सदृश कवियों ने सुरा-सुंदरी के संबंध की रचनाओं ही से अक्षय कीर्ति प्राप्त की है । अँगरेज़ी का प्रायः यह कथन है कि जब तक सात या आठ स्त्रियों से प्रेम न किया जाय, तब तक प्रेम का वास्तविक स्वाद ही नहीं मिलता । उनका साहित्य ही यह सिखलाता है । उन्हीं के साहित्य में नहीं, बल्कि संसार के किसी भाग के साहित्य को देखिए, आपको मानवीय प्रेम के उत्कृष्ट उदाहरण काव्यों और नाटकों आदि में मिलेंगे । इसका यह मतलब नहीं कि ईश्वर-विषयक प्रेम की चर्चा ही नहीं हुई । हमारा भारत-वर्ष, इस विचार-दृष्टि से, अधिक सौभाग्यशाली है । हमारी हिंदी ही में तुलसीदास और सूरदास ने विशुद्ध ईश्वरीय प्रेम का आदर्श साकार-उपासना द्वारा उपस्थित किया है । सूरदास कहते हैं—"रूप-रेख-गुण-जाति-जुगति बिनु, निरालंब मन चकृत धावै ; सब विधि अगम विचारहि ताते सूर सगुन-लीला-पद गावै ।" सारांश यह कि कला और सौंदर्य का प्रदर्शन किसी स्पष्ट रूप में होने से जनता को लाभ पहुँचता है । इसी से सर्वसाधारण जनता में रहस्यवाद या छायावाद की गूढ़ रचनाओं का उतना प्रचार नहीं है । रहस्यवाद के किसी भी उपन्यास अथवा काव्य के पढ़ने से मालूम होता है कि पाठक किसी दिव्य लोक की ओर खिंचा चला जा रहा है, परंतु अंत में वह अंधकार या शून्य में पहुँचकर हताश होकर लौट जाता है । देखिए, एक प्रसिद्ध छायावादी कवि 'अनंग' से साकार बनने की प्रार्थना कर रहे हैं—

"अहे, विश्व-अभिनय के नायक,
अखिल सृष्टि के सूत्राधार !
उर-उर के कंपन में व्यापक,
ऐ त्रिभुवन के मनोविकार !
ऐ असीम सौंदर्य-सिंधु के—
विपुल वीचियों के शृंगार !
मेरे मानस की तरंग में—
पुनः अनंग, बनो साकार !'

श्रीभर्तृहरिजी कहते हैं—

शम्भुस्वयम्भुहरयो हरिणेक्षणानां
येनाक्रियन्त सततं गृहकर्म्मदासाः ;
वाचामगोचरचरित्रविचित्रताय
तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ।

हिंदी के गिरिधररायजी भी कैसी मीठी चुटकी लेते हैं । कहते हैं—

कह गिरिधर कविराय सुनो हो बयना ;
पढ़े अपढ़ हुइ जायँ मिलैं जब चारिहु नयना ।

देखिए, गोसाईं तुलसीदासजी महाराज ने रामायण में भुवनव्यापी कामदेव के प्रभाव का कैसा वर्णन किया है—

काम कुसुम-धनु-सायक लीन्हे ;
सकल भुवन अपने बस कीन्हे ।
सबके हृदय मदन-अभिलाखा ;
लता निहारि नवहिं तरु-शाखा ।
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही ;
मनसा विश्व-विजय कहँ कीन्ही ।
शूल, कुलिश, असि अँगवनिहारे ;
ते रतिनाथ-सुमन-शर मारे ।

हिंदी ही क्या, किसी भी भाषा के साहित्योदधि का मंथन करने से यह स्पष्टतया प्रकट होता है कि प्राचीन काल से आज तक जन-समूह न्यूनाधिक मात्रा में पार्थिव प्रेम का पुजारी रहा है । साहित्य मानव-जीवन की समालोचना है । जीवन-संबंधिनी बातों में प्रेम

का स्थान अत्यंत महत्त्व-पूर्ण है। अतएव सांसारिक प्रेम का गान सभी देशों के काव्यों में हुआ है। अँगरेज़ी-साहित्य तो इससे भरा पड़ा है। संस्कृत-साहित्य के महाकवियों में तो कहीं-कहीं अश्लीलता तक के दोष आ जाते हैं। हाँ, ब्रह्मविद्या की तो बात ही दूसरी है। ब्रह्मविद्या-संबंधी ग्रंथों से संस्कृत-भाषा का भांडार जितना भरा हुआ है, उतना शायद संसार में अन्य किसी भाषा में देखने को नहीं मिल सकता।

अस्तु, अब पुरानी बातें गईं। यह नवीन युग है। कविता, साहित्य, धर्म, प्रेम, विवाह इत्यादि विषयों की नवीन विवेचनाएँ हो रही हैं। मनुष्य अब किसी विषय में नियंत्रण नहीं चाहता। वह सब 'ढकोसले' की बातों को दूरकर अपना जीवन सरल और प्राकृतिक बनाने की चेष्टा कर रहा है। इसी से नंगे रहने की भी अभिलाषा अब संसार में हो रही है। परंतु नग्नत्व की दशा में (क्योंकि अभी तो वह दशा आई नहीं), मालूम नहीं, मनुष्य की बनाई हुई वस्तुओं पर क्या प्रभाव पड़े। साहित्य और शिल्प में भी नग्नत्व का प्रचार हो जायगा। कविता में भाषा और भावों की स्वच्छंदता तो प्रत्यक्ष देखने ही में आ रही है। किसी प्रकार भी छंदशास्त्र का बंधन अब असहनीय हो रहा है। इसी प्रकार सामाजिक बातों में, स्त्री-पुरुष के संबंध में भी, कुछ दिनों के बाद शायद ऐसी ही स्थिति हो जाय। परंतु भारत-वासियों में प्राचीन धर्म की जड़ इतनी मज़बूत है कि उसे हिलाना सरल कार्य नहीं है। उसके संस्कार ढीले ज़रूर पड़ गए हैं, किंतु वे अभी विद्यमान हैं।

निस्संदेह कामुकता की ओर अधिक प्रवृत्ति होने के कारण लोग ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करना एक असंभव बात समझ रहे हैं। विवाह का उद्देश संतानोत्पत्ति नहीं, बल्कि विषय-भोग समझा जाता है। घर में चाहे 'भूँजी भाँग' न हो, परंतु रमण करने की शक्ति अपूर्व बतावेंगे। वीरता का प्रदर्शन केवल इन्हीं बातों में किया जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि अब वीरता दिखाने के और कोई अवसर हैं भी तो नहीं। देश की रक्षा का भार तो सरकार के ऊपर है। अपने को क्या—अपने राम तो दुनिया का मज़ा चखते हैं। हाँ, धन अवश्य होना चाहिए। धन और वैभव प्राप्त होने पर एक नहीं, सहस्रों स्त्रियों से रमण करे, तो भी कोई हर्ज नहीं। इसमें दोष ही क्या है? एक ही वस्तु से जी ऊब जाता है। विभिन्नता और रुचि-वैचित्र्य में ही जीवन का आनंद है। इस प्रकार के विचार हमें पाश्चात्य संस्कृति के संसर्ग से अधिकतर प्राप्त हुए हैं। पाश्चात्य सभ्यता से हमें घृणा करने की आवश्यकता नहीं, परंतु उसके दुर्गुणों को दूर रखना ही हम लोगों का परम कर्तव्य होना चाहिए। यदि भोग-विलासादि कार्यों में मनुष्य ऋतुचर्या के नियमों का पालन करे, तो उसका जीवन कभी भार-भूत नहीं हो सकता। काम-वासना को जितना ही तृप्त करने का उद्योग हम लोग करेंगे, उतनी ही उसकी वृद्धि होगी। संयम-शीलता से गार्हस्थ्य जीवन का उपभोग करने से स्त्री-पुरुष-संबंध में सदैव नवीनता बनी रहेगी। किंतु इंद्रियों का अत्यधिक उपयोग या दुरुपयोग करने से मनुष्य कुत्ते के सदृश तेज-हीन होकर मारा-मारा फिरता है। अत्यधिक आसक्ति से सिवा हानि के लाभ नहीं हो सकता। 'प्रीति करि काहू सुख न लह्यो'। भगवान् श्रीकृष्ण से गोपिकाएँ कितना प्रेम करती थीं। वे उन पर मुग्ध थीं। परंतु श्रीकृष्ण ने जब कुछ समय के बाद व्रज को छोड़ दिया, तब वे विह्वल हो गईं, और विरह-दाह से जलने लगी थीं। तब उद्धव द्वारा अनेक संदेश भेजे गए। परंतु उन संदेशों का श्रीकृष्ण पर क्या प्रभाव पड़ा?

मान लीजिए, श्रीकृष्ण हज़ारों गोपियों के साथ रमण करते थे, तो क्या हम लोग भी उसी प्रकार रमण कर सकते हैं? हम लोग तो ज़रा-ज़रा-सी बात में 'मज़ा' लेने लगते हैं। यदि भोजन करने बैठें, तो चटनी का स्वाद भी लेते जायँगे, रायते को भी चखते जायँगे, और कहेंगे—"वाह! क्या स्वादिष्ट मसालेदार

चटनी है, अथवा क्या बढ़िया रायता है।" एक रस से भोजन कर ही नहीं सकते। योग का वह 'समत्व' भाव हवा में उड़ जाता है। इसी प्रकार यदि आप किसी पहुँचे हुए तत्ववेत्ता को भोजन कराइए, तो भेद तुरंत मालूम हो जायगा। उसके सामने छप्पन प्रकार के व्यंजन परोस दीजिए, या चाहे केवल सत्तू और नमक रख दीजिए, वह एक ही स्वाद से भोजन करेगा। इस संबंध में एक किंवदंती का उल्लेख करना अत्यंत आवश्यक जान पड़ता है। यह शायद कपोल-कल्पित ही हो, किंतु उसमें जिस सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ है, वह कभी कपोल-कल्पित नहीं हो सकता। उसकी सचाई अटल और अमिट है। एक दफ़े यमुना के उस पार दुर्वासा मुनि आए हुए थे। दुर्वासाजी का क्रोध तो प्रसिद्ध ही है, अतएव उनके स्वागत-सत्कार की योजनाएँ होने लगीं। श्रीकृष्ण ने गोपियों को आज्ञा दी कि जाओ, इन्हें यमुना के उस पार भोजन दे आओ, अतः जब वे भोजन की सामग्री लेकर चलीं, तब श्रीकृष्ण से कहने लगीं—"महाराज, यमुना पार करने की कोई विधि बताइए।" श्रीकृष्ण ने कहा—"यमुनाजी से कहना, यदि श्रीकृष्ण हममें से किसी के साथ रमण करते हों, तो रास्ता मत देना, अन्यथा दे देना।" गोपियों ने वैसा ही किया, और यमुनाजी में पानी इतना कम हो गया कि वे सुविधा के साथ पार चली गईं। दुर्वासाजी को विविध प्रकार का भोजन देकर जब गोपियाँ लौटने लगीं, तो फिर उन्होंने यमुना पार करने का प्रश्न उठाया। इस पर दुर्वासाजी ने कहा—"यमुनाजी से कहना, यदि दुर्वासाजी ने दूब के सिवा और कुछ खाया हो, तो रास्ता मत देना, नहीं तो दे देना।" गोपियों ने वैसा ही यमुनाजी से कहा, तब कहीं वे पार जा सकीं। इन बातों से गोपियाँ चकित हो गई थीं, क्योंकि उनमें प्रत्यक्ष विरोधाभास था। दुर्वासाजी को विविध प्रकार का भोजन कराया, और वह कहते थे कि सिवा दूब के कुछ खाया ही नहीं। श्रीकृष्ण प्रतिदिन गोपियों के साथ विहार करते थे, किंतु उनका कहना कि उन्होंने कभी किसी के साथ रमण नहीं किया, यह एक चमत्कारी कथन था। यह गूढ़ रहस्य भला इन बेचारी गोपियों की समझ में कहाँ से आता। वे तो केवल प्रेम जानती थीं, क्योंकि उन्हें यही मार्ग सुलभ और सुख-साध्य था। गोपियों के लिये योग-साधन अथवा ज्ञान-प्राप्ति करना असंभव नहीं, तो महा कठिन अवश्य था। उनके लिये वही साधन उपयुक्त था, जिसका आश्रय उन्होंने लिया। अतएव ये कल्याणी गोपिकाएँ ज्ञानियों और योगियों के भी वंदन और प्रणमन की पात्री हैं। श्रीकृष्ण की ओर उन गोपियों का मन बलात् आकृष्ट होता था। उनमें एक अद्भुत आकर्षण था। वह योगेश्वर थे।

दुर्वासाजी के भोजन की जो बात ऊपर कही गई है, उसमें उनकी जिस चित्त-वृत्ति का पता लगता है, वह आदर्श रूप और अनुकरणीय है। अन्य सांसारिक कार्यों में भी वैसी ही चित्त-वृत्ति होनी चाहिए। संसार में रहते हुए भी सांसारिक वस्तुओं में अधिक लिप्त रहना ठीक नहीं। काम-वासनाओं को यंत्रित रखने के लिये अत्यंत मानसिक दृढ़ता की आवश्यकता है। आप जिस वस्तु के पाने की इच्छा अधिक करेंगे, उतनी ही मानो वह वस्तु आपसे दूर हटती चली जायगी। हाँ, नियमित कर्म कीजिए, किंतु फल-प्राप्ति की वासना ही में न डूबे रहिए। क्या कारण है कि ब्रह्मचारी, तेजस्वी और हृष्ट-पुष्ट पुरुष की ओर स्त्रियों का ध्यान सहज ही में आकृष्ट हो जाता है? क्योंकि वह स्त्रियों से विराग रखता है। उसमें एक स्वाभाविक आकर्षण रहता है। क्या कारण है कि महात्माओं का मान संसार में सब से अधिक होता है? इसका कारण उनकी तपस्या और त्याग है। सांसारिक वस्तुओं को वे तृणवत् त्याज्य समझते हैं, तथापि सारा संसार उनको गोद में उठाने के लिये दौड़ता है। यह प्रत्यक्ष बात है, इसमें किसी प्रमाण की ज़रूरत नहीं। इन परिस्थितियों में क्या हम यह कह सकते हैं कि क्षणिक 'विंदु-पात' ही से संसार का कल्याण हो सकता है?

परंतु कामांधता एक विलक्षण वस्तु है। मनुष्य में जब पशु-स्वभाव का अत्यधिक प्राबल्य हो जाता है, तब उसे कुछ सूझ नहीं पड़ता। क्षुद्र मनोविकारों के आक्रमण से उसका बचना कठिन हो जाता है, तथापि आचरण का सुधार करना अपने ही हाथ में है। कितनी ही पतितावस्था में मनुष्य पहुँच गया हो, उसे यह न समझना चाहिए कि अब वह कभी उन्नत नहीं हो सकता। उन्नति और अवनति का चक्र बराबर घूमा करता है। उत्साह-पूर्वक और अत्यंत दृढ़ता के साथ हम लोगों को अपने कर्तव्य-पथ पर डटे रहना चाहिए। इस संबंध में, सर्वसाधारण लोगों की जानकारी के लिये, हम प्राचीन काल के रघुवंशी राजाओं की जीवन-चर्या का उदाहरण देकर इस निबंध को समाप्त करते हैं—

"रघुकुल में उत्पन्न हुए पुरुषों के गर्भाधान आदि सब संस्कार उचित समय में होने के कारण वे जन्म से ही शुद्ध हैं। जिस काम को वे आरंभ करते हैं, उसे पूरा किए बिना नहीं छोड़ते। समुद्र के तटों तक सारी पृथ्वी के स्वामी हैं। उनके रथों की गति का रोकनेवाला त्रैलोक्य में कोई नहीं। स्वर्ग-लोक तक वे आनंद-पूर्वक अपने रथों पर बैठे हुए जा सकते हैं। वह यथाशास्त्र अग्नि की सेवा करते हैं। याचकों के मनोरथ पूर्ण करते हैं। अपराध के अनुसार अपराधियों को दंड देते हैं। समय का मूल्य जानते हैं। सत्पात्रों को दान करने ही के लिये धन का संग्रह करते हैं। कहीं मुँह से असत्य न निकल जाय, इसी डर से वे थोड़ा बोलते हैं। कीर्ति की प्राप्ति के लिये ही वे दिग्विजय और संतान की प्राप्ति के लिये ही वे गृहस्थाश्रम को स्वीकार करते हैं। बाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य का पालन करके वे विद्याभ्यास करते हैं; युवावस्था प्राप्त होने पर विवाह करके विषयों का उपभोग करते हैं; वृद्धावस्था आने पर वन में जाकर वानप्रस्थ हो जाते और अंतकाल उपस्थित होने पर समाधिस्थ हो योग द्वारा शरीर छोड़ देते हैं।"

किसी से

[श्रीराधाकांत शर्मा]

कुछ ऐसा हो गया, जिसे कहना है मुझे न आता;
अंतस्तल को छेड़-छेड़, भूले की याद दिलाता!
मानस को देता हिलोर, लहरें ऊपर उठ आतीं;
सौ-सौ बार भावनाएँ आ-आकर मुझे रुलातीं।
मेरी अटल साधनाएँ जा रहीं तुम्हारी ओर;
क्षण-भर को ही यहाँ फेर दो अपनी करुणा-कोर।

कपोल और उनका सौंदर्य

[श्रीयुत बुद्धिसागर वर्मा बी० ए०, एल्० टी०]



स्थ मनुष्य के कपोल रक्त-वर्ण, चमकीले और भरे हुए होते हैं। पिचके और भूरे कपोल निर्बलता और बीमारी की निशानी हैं। जिस शरीर का रंग गोरा होता है, उसमें तो कपोलों की चमक-दमक बड़ी ही मनोहर लगती है। हल्की गुलाबी रंगत—जिसे सेब के फल अथवा गुलाब के फूल से उपमित कर सकते हैं—वास्तविक सौंदर्य और सलोनेपन को प्रकट करती है। यथा—

गोरे गुलाब-दल-से अति गोल-गोल;
कैसे मनोज्ञ युग ये इसके कपोल।
(मैथिलीशरण गुप्त)

प्राय:-मुख-श्री-हीन विलायती महिलाएँ सुंदरी बनने के लिये सफ़ेद और गुलाबी पाउडर❀ लगाती हैं, किंतु यह वास्तविक सौंदर्य नहीं है। इसे ख़ाली टट्टी की ओट में शिकार समझिए।

भोजन—ताज़े स्वादिष्ठ फलों का सेवन हो रंगत को खूब निखारता है। कहा जाता है, फूट ❀ खाने से यकृत (जिगर) की गरमी दूर होती है, और इसीलिये चेहरा और कपोलों की रंगत भी निखरती है। एक हकीम का कहना है कि शाक-वनस्पतियों में प्याज़ सबसे बढ़कर है। इसमें गंधक का भाग विशेष होता है, अत: इसके सेवन से थकावट जाती रहती और निद्रा गहरी आती है। गोभी का फूल भी रक्त अधिक मात्रा में उत्पन्न करता है। टमाटर (विलायती बैंगन) पीले गालों पर रंगत लाता है। काग़ज़ी नीबू वास्तव में बड़ी ही उत्तम वस्तु है। किंतु स्मरण रहे, कोई भी फल—चाहे वह बढ़िया-से-बढ़िया ही क्यों न हो—यदि तुम्हारी प्रकृति अथवा रुचि के अनुकूल न हो, तो कभी मत खाओ।

अन्य उपचार—'चेहरा और उसका सौंदर्य'-शीर्षक लेख (जो गत वर्ष 'सुधा' के किसी अंक में प्रकाशित हो चुका है।) में 'वाष्प-स्नान' का वर्णन हो चुका है। वह कपोलों के लिये अत्यंत

❀ powder. कारमाइन नं० ४० १ ड्राम, वाटर अमोनिया २ ड्राम, गुलाब-जल ४ औंस, गुलाब का इत्र ६ माशा मिलाकर शीशी में रख लो। दूसरे दिन लगावे। गोरे कपोलों पर ख़ासा गुलाबी रंग आ जायगा।

❀ फूट एक फल होता है, इसे सभी जानते होंगे। खेतों में बोया जाता है। इसी के विषय में एक उक्ति है—

खेत में उपजै, सब कोइ खाय;
घर में उपजै, घर बहि जाय।—लेखक

उपयोगी है। कपोल यदि खुरदरे हों, तो उन पर सर्द मलाई की हल्की मालिश करनी चाहिए। ओस की बूँदों की मालिश भी इनको चमका देती है। स्त्रियोचित लज्जा और हया-शरम से कपोलों में एक विचित्र मनोमोहकता आ जाती है। इसी से कहा जाता है कि लज्जा स्त्रियों का बहुमूल्य भूषण है। अस्तु, कपोलों की त्वचा को अधिक खींचना और तानना भी नहीं चाहिए, और न इसे तौलिए आदि से बल-पूर्वक रगड़ना ही चाहिए, जैसा कि प्रायः मैल आदि छुड़ाने के लिये किया जाता है। इससे झुर्रियाँ पड़ जाने का भय रहता है। अच्छे उबटनों और बढ़िया साबुनों का प्रयोग भी करना चाहिए। यदि सेमल के काँटे दूध में पीसकर कम-से-कम ८ दिन तक चेहरे पर उबटन की भाँति लगावे, और थोड़ी देर बाद धो डाले, तो चेहरे की त्वचा और कपोलों में मुलायमत और चिकनापन आ जाता है, तथा सूरत मोहिनी हो जाती है।

हो सके, तो समुद्र-तट की सैर किया करो। किसी सुमनोहर रम्य झील अथवा नदी के निकट रहकर उसके बहते हुए सुंदर जल का आनंद लूटो। यदि यह असंभव हो, तो अपने मकान के कोठे पर छप्पर आदि का बँगला डालकर शुद्ध वायु और खुले प्रकाश का मजा उठाओ। सदा प्रसन्नचित्त और चिंता-रहित रहो। निस्संदेह कपोलों की आभा खिल उठेगी। यही नहीं, होठों पर भी लालिमा की झलक दौड़ जायगी। यदि नेत्रों के नीचे कालिमा की झलक दृष्टिगोचर हो, अथवा झुर्रियाँ पड़ती हुई मालूम हों, तो नित्य रात्रि में सोने से प्रथम 'लैनोलाइन' की हल्की मालिश कर ली जाय।

भृंग-भावना ❊

[ताजीमी सरदार पु० प्रतापनारायण 'कविरत्न']

कौन तुझ-सा लिप्त अघ-व्यापार में ?
　कौन तुझ-सा नीच है संसार में ?
क्यों हुआ हे भृंग ! तू उत्पन्न है—
　प्राणियों के पुण्यतम परिवार में ?
बद्ध होकर रूप-शोभा-पाश में,
　काम-कुत्सित कामना रख पास में,
कांत कलियों के—सती-समुदाय के—
　तू सतीपन को मिलाता नाश में।
प्रेयसी अर्धांगिनी को छोड़कर,
　धर्म से, शुभ कर्म से मन मोड़कर,
हो रहा तू आज कामीराज क्यों—
　पद्मिनी से स्वयं नाता जोड़कर ?
दूसरा तुझ-सा न कोई है छली,
　देख, तूने चाल है कैसी चली,
लूटकर यौवन उसे तू छोड़ता—
　विरह में मुर्झा गई है जो कली।

ध्यान रहता है तुझे स्वानंद का,
　मूल है तू स्वार्थ के भी कंद का।
प्रेम कामी को कभी होता नहीं,
　लोभ केवल है तुझे मकरंद का।
चित्त की ही वृत्ति कलुषित ढंग की—
　प्रकट है, बन कालिमा तव अंग की।
लोल-लंपट - सुलभ है मुख-पीतिमा,
　लालिमा तेरे न लोहित रंग की।
जानता है तू न दुख का झेलना,
　किंतु खाना और पीना, खेलना।
याद रख, तुझ-से सुखी को भी कभी—
　यहाँ पड़ता खूब पापड़ बेलना।
स्नेह का संबंध सबसे तोड़ दे,
　प्रेयसी से प्रेम केवल जोड़ दे।
एक से ही मन लगाना ठीक है,
　भृंग ! ऐसी भावनाएँ छोड़ दे।

❊ लेखक के अप्रकाशित 'काव्य-कानन' से

भारतीय विधान में मज़दूरों का स्थान

[श्रीयुत राजेंद्रप्रसाद शर्मा बी० ए०]



आज जब देश स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये अग्रसर हो रहा है, अथवा उसे प्राप्त करने के लिये अटूट परिश्रम कर रहा है, उस समय भारतीय विधान में मजदूरों का कौन-सा स्थान होगा, यह प्रश्न बहुत महत्त्व-पूर्ण और विचारणीय है। थोड़ी देर के लिये यदि यह मान लिया जाय कि स्वतंत्रता पाने के लिये हम जितना अथक परिश्रम करते हैं, अथवा अपने हृदय में उसे शीघ्रातिशीघ्र पाने के लिये जितनी आशाएँ रखते हैं, सभी सुख-स्वप्न ही निकलें, तो भी इस प्रश्न का महत्त्व कम नहीं होता। यह सर्वसाधारण को मालूम है कि आज सबसे पेचीला प्रश्न यह है कि किस प्रकार भारतीय जातियों के भिन्न-भिन्न संप्रदायों को भारतीय विधान में अधिकार दिया जाय। यह प्रश्न आज प्रकांड राजनीतिज्ञों के भी दिमाग़ को चकरा रहा है।

भारत की जन-संख्या में मजदूरों का क्या स्थान है, और इसीलिये भारतीय विधान में इनका क्या स्थान होना चाहिए, इस बात का पता इन्हीं आँकड़ों से लग जायगा। आज ब्रिटिश भारत में ३५ करोड़ ६८ लाख की जन-संख्या में १३ करोड़ वे लोग हैं, जो हट्टे-कट्टे और शारीरिक परिश्रम करने के योग्य हैं। इंडिया ऑफ़िस के गणनानुसार कृषि और व्यापार से संबंध रखनेवाले मजदूरों की संख्या ४ करोड़ ८० लाख से भी अधिक है, यानी ग्रेट ब्रिटेन की जन-संख्या से ४० लाख अधिक।

भारतीय विधान में मज़दूरों से संबंध रखनेवाले प्रश्नों के साथ इन सभी बातों का रहना अनिवार्य है—इन्हें मताधिकार कैसे दिए जायँ, व्यवस्थापिका सभाओं में इनके लिये कितनी सीटें सुरक्षित रहें, इनसे संबंध रखनेवाले प्रश्नों को तय करने में सभाओं को कौन-सी स्वतंत्रता और कौन-कौन-सा प्रतिबंध रहे, अथवा यों कहिए कि मजदूर-संबंधी समस्याओं का निपटारा करने के लिये उनकी (सभाओं की) अधिकार-सीमा क्या रहे, इत्यादि। क्योंकि जब तक इन प्रश्नों पर काफ़ी ध्यान नहीं दिया जाता, और इनमें सुधार नहीं होता, तब तक सुधार केवल नाम के लिये है, और नहीं के बराबर है।

आज राजनीतिक दलबंदियों की अवस्था अनिश्चित है, और उनकी प्रतिज्ञाएँ भी उसी प्रकार अनिश्चित हैं; ऐसी अवस्था में सर्व-साधारण व्यवस्था यह है कि मज़दूरों के प्रधान अधिकारों की स्वीकृति विधान में ही घोषित कर दी जाय, और उनके स्वीकृत अधिकारों के संरक्षण के लिये शासन में उनका काफ़ी प्रभाव हो। अधिकारों की घोषणा में मजदूरों को एक निश्चित जीविका की गारंटी और लेखन, भाषण की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए।

बेकारी की हालत में, बीमार पड़ने पर, वृद्धावस्था में अथवा मृत्यु होने पर उनकी तथा उनके बाल-बच्चों की देख-रेख सरकार को करनी चाहिए।

विधान में इन अधिकारों की स्वीकृति पाकर मज़दूरों की संस्थाएँ प्रांतीय कौंसिलों में अपना प्रभाव जमाने का प्रबंध करेंगी। परंतु यह तभी कुछ अंशों में संभव हो सकेगा, जब इन्हें वयस्क-वोटाधिकार मिलेगा। लेकिन वयस्क-निर्वाचन से भी यह रोग दूर होता नहीं दिखलाई पड़ता। योरप का ही दृष्टांत लीजिए। वहाँ पूँजीपति मज़दूरों के वोट से कौंसिलों में जाते और वहाँ अपना प्रभाव जमाकर स्वार्थ साधते तथा साथ-ही-साथ मज़दूरों की उन्नति के बाधक बनते हैं। इससे साफ़ सिद्ध होता है कि केवल वयस्क-निर्वाचन से ही मज़दूर कौंसिलों में अपना प्रभाव नहीं जमा सकते। इसलिये निर्वाचन-संघों को ऐसा कर देना आवश्यक है, जिसमें मज़दूर अपने समुचित प्रतिनिधि कौंसिलों में भेज सकें।

प्रांतीय जन-संख्या के केवल ३ प्रतिशत मनुष्यों को व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों को चुनने का वोटाधिकार मिला है। गोलमेज़-सभा की सब-कमेटी की सिफ़ारिश पर लोथियन-कमेटी इसलिये नियुक्त की गई थी कि वह वोटाधिकार कम-से-कम १० और अधिक-से-अधिक २५ प्रतिशत बढ़ाने का प्रस्ताव तैयार करे। यद्यपि मज़दूरों की संख्या संपूर्ण जन-संख्या का बीसवाँ हिस्सा है, तो भी उन्हें उनकी संख्या के अनुसार देश की व्यवस्थापिका सभाओं में प्रतिनिधित्व नहीं मिला है। तिस पर तुर्रा यह कि बहुत-से लोग मज़दूर होते हुए भी मज़दूरों की श्रेणी में नहीं रक्खे गए हैं—जैसे किराने का काम करनेवाले और डाक-घरों में नौकरी करनेवाले लोग। ये सभी मज़दूर ही हैं, परंतु मज़दूरों में इनकी गणना नहीं हुई है। यदि मज़दूरों की श्रेणी में इन्हें भी शामिल कर दिया जाय—जैसा कि करना चाहिए—तो इनकी संख्या और अधिक हो जायगी।

नीचे दिए हुए आँकड़ों से पता चलता है कि आधुनिक प्रांतीय कौंसिलों में मज़दूरों के लिये कितने स्थान सुरक्षित हैं—

प्रांत	मज़दूरों का स्थान	संपूर्ण स्थान	ज़मींदार	व्यापारी द्वारा
मद्रास	×	१३२	६	६
बंबई	३	११४	३	८
बंगाल	२	१४०	५	१५
संयुक्तप्रांत	×	१२३	६	३
पंजाब	१	९४	४	२
बिहार और उड़ीसा	१	१०३	५	४
मध्यप्रांत	१	७३	३	२
आसाम	१	५३	×	६
एसेंबली	×			

इन आँकड़ों के देखने से इस बात का पता लगाना कठिन नहीं कि पूँजीपतियों का ही सर्वत्र अधिकार है। मज़दूरों के लिये सुरक्षित स्थान केवल नाम-मात्र का है। पूँजीपति अपने सदस्यों के निर्वाचन के समय तो अपना प्रभाव जमाते ही हैं, इसके सिवा उनके लिये खास प्रतिनिधित्व का भी प्रबंध है। व्यापार और उद्योग के लिये सुरक्षित स्थानों को छोड़कर ज़मींदारों के लिये भी खास स्थान सुरक्षित हैं। इनकी भी

सहानुभूति अधिकतर उन उद्योग-धंधों के संचालकों से ही रहती है, न कि उन ग़रीब मज़दूरों से। क्योंकि दोनो ही मज़दूरों का रक्त शोषण करनेवाले हैं। ज़मींदारों का आज कौंसिलों में कितना प्रभाव है, इनकी सीट ही से पता चल जाता है, लोथियन-कमेटी ने भी इतने ही स्थान मज़दूरों के लिये भविष्य में सुरक्षित रखने के लिये सिफ़ारिश की है। इस सिफ़ारिश से भी मज़दूरों का भविष्य अंधकारमय ही है। आज जितने स्थान इनके लिये कौंसिलों में हैं, उतने ही स्थान भविष्य में भी रहें—भला, इस सुधार से इन असहाय मज़दूरों को कौन-सी भलाई होती है।

वर्तमान निर्वाचन-योग्यता (Franchise qualification) ऐसी दुष्प्राप्य है कि मज़दूर उम्मेदवारों के लिये कौंसिलों में प्रवेश करना नितांत असंभव है। यदि ये मज़दूर-प्रतिनिधि किसी की सहायता की आशा भी रख सकते हैं, तो उन्हीं सदस्यों की, जो सार्वजनिक निर्वाचन-संघों से कौंसिलों में जाते हैं। यदि इन्हें वयस्क-मताधिकार भी मिल जाय, तो भी इनके दुख का ख़ातमा नहीं होता। जब तक इन मज़दूरों में जातीयता का भाव जाग्रत् नहीं होता, और ख़ासकर ऐसे समय पर, जब कि लोथियन-कमेटी ने वयस्क-मताधिकार के प्रश्न को रद्द कर दिया है, तब तक इनका प्रश्न हल होता दिखाई नहीं पड़ता। जातीयता के भाव न रहने तथा वयस्क-मताधिकार के रद्द हो जाने पर तनिक भी आशा नहीं की जा सकती कि इन मज़दूरों को अपनी आवश्यकता और संख्या के अनुसार कौंसिलों में स्थान मिलेगा।

मज़दूरों का भविष्य भी उतना ही अंधकारमय है, इसका पता लोथियन-कमेटी की सिफ़ारिश से ही मालूम पड़ता है। कमेटी ने निम्न-लिखित स्थान मज़दूरों के लिये देने की सिफ़ारिश की है—

प्रांत	पूर्ण संख्या	मज़दूर	व्यापारी और ज़मींदार
मद्रास	२१५	६	१२
बंबई	२००	८	११
बंगाल	२५०	८	२०
संयुक्तप्रांत	२२५	३	६
पंजाब	१७५	३	६
बिहार-उड़ीसा	१७५	४	६
मध्यप्रांत	१०५	२	५
आसाम	१००	४	६

उपरि-लिखित आँकड़ों से साफ़-साफ़ ज़ाहिर हो जाता है कि प्रांतीय कौंसिलों में मज़दूरों को दिए हुए स्थानों से उनके मालिकों और ज़मींदारों के सुरक्षित स्थान कुछ अंशों में तिगुने तक हैं। ऐसी कौंसिलों में, जिनका निर्माण ऊपर दिए हुए आँकड़ों से हुआ है, मज़दूर अपना प्रभाव जता सकेंगे, यह संदेहात्मक है।

प्रांतीय कौंसिलों में मज़दूरों की जो अवस्था है, उसका तो पता चल गया, अब देखना चाहिए कि लोथियन-कमेटी ने 'फ़ेडरल एसेंबली' में उन्हें कौन-सा स्थान देने के लिये सिफ़ारिश की है। मताधिकार सब-कमेटी ने 'फ़ेडरल एसेंबली' के सदस्यों की संख्या २०० से ३०० तक क़ायम की

है, जिसमें मजदूरों को केवल ८ स्थान देने के लिये लोथियन-कमेटी ने प्रस्ताव किया है।

लेकिन इसमें एक और बात भी विचारणीय है। वह यह कि मजदूरों के लिये जो नियम बनें, अथवा उनके शासन-संबंधी जो कार्य हों, वे 'फ़ेडरल एसेंबली' से ही हों। हाँ, इस बात का खयाल तो अवश्य करना होगा कि इन कार्यों से प्रांतीय कौंसिलों को कोई बाधा न पहुँचे। मजदूरों की यह न्याय-पूर्ण और उचित माँग है, और कोई भी सहृदय मनुष्य इसे अस्वीकार नहीं कर सकता। ह्विटले कमीशन की सिफ़ारिश है कि भावी विधान में एक 'आर्थिक सभा' (Economic commission) रहे, जो मजदूर-मालिकों, मजदूरों तथा इन मजदूरों के साथ दिलचस्पी लेनेवाले मनुष्यों का ध्यान इनके प्रश्नों पर खास तौर से आकृष्ट करे। इस कौंसिल का रूप यद्यपि सलाह देनेवाली सभा के-जैसा होगा, तथापि मजदूरों के प्रश्नों को हल करने का अधिकार भी इन्हें दिया जाना जरूरी है। इस सहायक सभा की उपस्थिति से व्यवस्थापिका परिषद् का अपने मजदूर-संबंधी क़ानून बनानेवाले अधिकारों में किसी प्रकार की क्षति नहीं होती!

लोगों का कहना है कि प्रांतीय तथा सेंट्रल व्यवस्थापिका में जो अभी मजदूर-संबंधी क़ानून बने हैं, उनसे कोई संतोष-जनक फल नहीं निकला है। किसी भी हालत में आर्थिक कौंसिल-जैसी एक सहायक सभा से मजदूरों को लाभ ही होगा। और, व्यवस्थापिका सभाओं की वर्तमान हालत देखकर तो इसकी आवश्यकता और अधिक प्रतीत होने लगती है। ब्रिटेन आर्थिक तथा अन्य संरक्षणों की माँग पेशकर व्यवस्थापिका सभाओं के निकट भविष्य में स्वायत्त शासन प्राप्त करने में बाधा डाल रहा है। व्यवस्थापिका सभाओं की, जिन्हें ब्रिटेन के आर्थिक संरक्षण की माँग के कारण अभी तुरंत स्वायत्त शासन मिलने नहीं जा रहा है, दशा देखकर यह आशा की जा सकती है कि मजदूरों को, जिन्हें व्यवस्थापिका सभाओं में प्रतिनिधित्व की कमी होने पर घाटा उठाना पड़ता है, इन आर्थिक कौंसिलों की योजना से फ़ायदा पहुँचाया जायगा।

ऐसी अवस्था में रहते हुए मजदूरों से यह आशा नहीं की जा सकती कि तब तक वे शांत रहेंगे, जब तक उन्हें देश के शासन-कार्य में काफ़ी अधिकार न मिल जाय। यदि यह आवश्यक है कि अन्य देशों के वर्तमान जातीय द्वेष यहाँ न आने पावें, तो इस बात का कि विना मजदूरों के शासन नहीं होगा, अनुभव भी शीघ्रातिशीघ्र होना चाहिए। मजदूर इस बात पर तन गए हैं कि एक साम्यवादी राज्य स्थापित हो, जहाँ श्रेणी-भेद न हो, जो मजदूरों के प्रधान अधिकारों को स्थापित करे, तथा जिसके अस्तित्व का आधार इस सिद्धांत पर हो कि 'व्यक्ति विशेष जन-समुदाय के लिये और जन-समुदाय व्यक्ति विशेष के लिये।'

रण-रातें

[श्रीयुत बद्रीनारायण शुक्ल बी० ए०]

(१)



"कुँवरजी, घोड़े का वेग कम करो। साथी पीछे छूटे जा रहे हैं।... हाँ, इस चाल से चलना ठीक है।"

"आज तो गर्मी कुछ अधिक जान पड़ती है, क्यों काकाजी ? तीन दिन पहले जब हम इस मैदान से गए थे, तब इस तरह पसीना न बहा था। अभी थोड़ा ही दिन चढ़ा है, थोड़ा ही रास्ता हमने तय किया है, पर घोड़े देखो, तो पसीने से लथपथ हो गए।"

"अब तो दिन-दिन गर्मी बढ़ेगी कुँवरजी। चैत लग गया है, समय के साथ ही अब वर्षा-ऋतु तक सूर्य की उष्णता भी बढ़ती जायगी। लू चलेगी, धूल के पहाड़ उड़ेंगे, घर से निकलना दूभर हो जायगा। न-जाने ईश्वर ने इस राजपूताने में इतनी रेत क्यों पैदा की है। यदि यह रेत न होती, तो कदाचित् इतनी गर्मी भी न पड़ती।"

"किंतु फिर कदाचित् अपने देश से हम इतना प्रेम भी न करते काकाजी। देखिए न, भारतवर्ष में और कहीं ऐसी रेत नहीं है, पर किस देश के मनुष्य राजपूतों-से देश-भक्त हैं ? जान पड़ता है, हमें इस रेत से ही अटूट अनुराग है, तभी तो राजपूत-योद्धा बार-बार यहीं जन्म लेकर अपने लहू से इसे सींचते हैं।"

"इसका श्रेय हमारी क्षत्राणी-माताओं को है कुँवरजी। यदि राजपूत-स्त्रियाँ भी अन्य देशों की स्त्रियों के सदृश होतीं, तो हममें कदापि यह ओज, यह वीरता, यह आत्म-बलिदान की शक्ति न होती। अब तक कभी के ये यवन हमारे देश को नष्ट कर चुके होते। पर 'मा का दूध न लजाना', 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी', ये भाव बचपन से ही हमारे हृदय में भर दिए गए हैं। इन्हीं भावों की प्रेरणा से हम मरने-मारने को प्रस्तुत रहते हैं। तलवार हाथ में लेते ही रक्त-पिपासु हो उठते हैं। न-जाने कितने वीर वीर-गति को प्राप्त हो चुके, फिर भी हम अपनी शक्ति क्षीण हुई नहीं समझते। इस मरुभूमि में यदि धान्य नहीं होता, तो वीर होते हैं। किसी भी उपजाऊ देश से इसकी महत्ता कम नहीं।"

"आख़िर ये मुसलमान हमारे देश को नष्ट करने पर इस तरह क्यों तुले हुए हैं ?"

"धन-लोलुपता, राज्य-लिप्सा, अत्याचार की प्रवृत्ति। धर्म की आड़ में धन लूटने का ऐसा अवसर वे नहीं चूक सकते। वर्षों से यही प्रथा चली आई है। औरंगज़ेब भी वही कर रहा है। उस पर नया कर जज़िया वसूल करने की अभिलाषा। बीच में कुछ काल तक शांति रही, उसी तरह जैसे समुद्र में तूफ़ान आने के पहले शांति हो जाती है, उसके बाद फिर आग उबल पड़ी। फिर हमारे देश को सोना-खाना हराम हो गया।"

"आह ! आज यदि पिताजी होते !"

"बेटा, उनकी याद न दिलाओ। वह वीरात्मा थे, सिंह थे। जब उनका स्मरण करता हूँ, तब हृदय तिलमिला उठता है। किस तरह सैकड़ों यवनों से घिर जाने पर भी उनके चेहरे पर चिंता की झलक तक न आई थी, किस तरह लपलपाती तलवार लेकर उनके बीच में कूद पड़े थे। मुझे बचाकर तुम्हारी माता के साथ निकाल दिया, पर आप न निकल सके। आह ! जब ये विचार हृदय में आते हैं, तब हृदय धिक्कार उठता है कि तू कायर है। कितना अच्छा होता, यदि मैं भी अपने मित्र, अपने स्वामी के साथ ही मारा जाता। हाय वह दिन !"

"जो बीत गया, उसे भूल जाइए काकाजी, शोक करने से क्या लाभ ?"

"कैसे भूल सकता हूँ बेटा ? ऐसी घटनाएँ आजन्म चित्त से नहीं उतरतीं । वह मुझे कितना चाहते थे ! ज़मींदारी का सारा भार मुझ पर छोड़ दिया था, इतना विश्वास करते थे । कभी 'मंत्री' कहकर न पुकारा, सदा भाई-सा बर्ताव करते थे । कभी खरा-खोटा न कहा । हाय ! क्या-क्या कहूँ ? मुझे यह दुःख जलाए डालता है कि ऐसे महात्मा की पूरी सेवा भी न कर सका । आड़े समय जान लेकर भाग खड़ा हुआ ।"

"आप भाग नहीं खड़े हुए काकाजी, पिताजी के आज्ञानुसार मेरी माता के तथा मेरे प्राण बचाते हुए हमें लेकर ज़मींदारी की ओर चले गए थे । यदि उस दिन आप अपनी जान पर न खेल जाते, तो मैं इस तरह, यह हट्टा-कट्टा शरीर लिए, आपकी बहू का चलावा कराकर इस वीर-भूमि पर न चलता होता । हमारी जीवन-रक्षा का, हमारी मान-रक्षा का सारा श्रेय आपकी इन्हीं भुजाओं को है, जो बूढ़ी होने पर भी बात-की-बात में दस-पाँच को धराशायी कर सकती हैं ।"

"यह कुँवरजी की उदारता है, जो ऐसा सोचते हैं । मैं तो इसी विचार में मरा जा रहा हूँ कि स्वामी का शव अकेला निकल गया, उसके साथ जाने का इस अधम शरीर को श्रेय न मिला ।"

"छोड़िए इसे, भूतकाल को भूत की तरह पास न फटकने दीजिए । आप वृद्ध हैं, पिताजी के मंत्री हैं, मित्र हैं, अतः पिता-तुल्य हैं । इसलिये आशीर्वाद दीजिए कि मैं भी जब मरूँ, तो पिताजी के समान ही लड़ते-लड़ते । जब तक शांति रहे, शत्रुओं का संहार करता रहूँ, अशांत होकर गिरने पर किसी को दूसरा वार न करना पड़े । गिरूँ, तो इस विशाल वक्षःस्थल से रक्त के फ़ौवारे छूटते हों, पर पीठ ज्यों-की-त्यों सूखी हो ।"

"छिः ! मरने का नाम भी मत लो, कुँवरजी । मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हें दीर्घकाल तक सकुशल रक्खे । ऐसे शुभ अवसर पर ऐसी बातें न करो । बहूजी का डोला ले चल रहे हो, घर चलकर चैन की वंशी बजाओ । मरें तुम्हारे शत्रु । अभी तो मैं बैठा हूँ बेटा, मरने का हक़ पहले मुझे है ।"

"यह विवाह तो लोकाचार है काकाजी, राजपूत की सच्ची शादी तभी होती है, जब या तो उसके गले पर या शत्रुओं के गले पर तलवार हो ।...... आप इस तरह चौंककर क्या देख रहे हैं ?"

"वह देखो, सामने धूल उड़ रही है ।"

"हूँ-हूँ ! अभी हम लू और गर्मी की बात कर रहे थे, जान पड़ता है, बात करते ही लू आ गई । बड़ी आयु है इसकी ।"

"नहीं कुँवरजी, यह लू की धूल नहीं है । मैं बूढ़ा हो गया हूँ, पर आँखें अभी जवान हैं । बाल यही अनुभव करते-करते पक आए हैं । यह लू नहीं है, यह मैं दाँव बदकर कह सकता हूँ । कुछ घोड़े सरपट भागते आ रहे हैं, उनकी टापों से जो धूल उड़ाई गई है, वही हवा में फैल रही है । देखते नहीं, भूमि के किसी अन्य भाग पर धूल का नाम नहीं । लू क्या इस तरह एक ही स्थान पर चलती है ?"

"हाँ, मैं भी आपकी बात का समर्थन करता हूँ । वह देखिए, घोड़ों और सवारों का चित्र कुछ स्पष्ट हो चला है ।"

"दो सवार आगे घोड़े फेंकते चले आ रहे हैं, उनके पीछे अन्य कई सवार इस तरह भागे आ रहे हैं, जैसे पीछा करके पकड़ना चाहते हों ।...... अरे ! आगे आनेवाले तो राजपूत मालूम होते हैं, और पीछा करनेवाले मुसलमान ! लक्षण अच्छे नहीं दिखलाई पड़ते । जान पड़ता है, बादशाही सेना आस-ही-पास कहीं है । कुँवरजी, सँभल जाइए, अपने अश्वारोही अनुचरों को भी सावधान हो जाने का इशारा कर दीजिए । आप डोले के पास जाइए । मैं आगे बढ़कर देखता हूँ, क्या बात है ।"

"काकाजी, आप डोले के पास जाइए, मुझे मुख्य भाग पर रहने दीजिए । आप वृद्ध हैं, अपने सामने

मैं आपको किसी प्रकार का कष्ट नहीं उठाने देना चाहता।......लेकिन इतना घबराने की बात ही क्या है? पीछा करनेवाले केवल आठ ही दस तो हैं। पीछे और कहीं कुछ दिखाई नहीं देता। इतने चूहों के लिये तो मैं अकेला ही काफ़ी हूँ।......वह सुनिए, आगे आनेवाले कुछ कह रहे हैं, चिल्ला रहे हैं। क्या कहा, 'बचाओ', 'बचाओ'? अवश्य पीछा किया जा रहा है। बेचारे निहत्थे हैं। काकाजी, मैं बढ़ता हूँ, आप पीछे देखना।"

"अरे कुँवरजी, ठहरो, मैं जाता हूँ।......तुम देखते क्या हो? घोड़े बढ़ाओ। कुँवरजी अकेले जा रहे हैं।......लेकिन यह क्या! यवन-सैनिक तो वापस होकर भागे जा रहे हैं! छिः कायर। इसी साहस पर किसी को लूटना चाहते थे? हमें देखकर डर गए। नीच, कुत्ते।......वह कुँवरजी दोनो सताए हुए सवारों के साथ आ गए। वाह कुँवरजी, वाह, धन्य है।"

"वाह काकाजी, आप तो लज्जित कर रहे हैं। तलवार म्यान से निकाल भी न सका कि गीदड़ भाग गए। बाँह फड़की थी, पर अवसर न आने पाया, कायरों ने पीठ दिखा दी।"

"आग के सामने तिनके नहीं ठहरते बेटा। प्रताप ऐसी ही वस्तु है।......तुम लोग कौन हो जी? कहाँ से आ रहे हो?"

"महाराज, आज आपने हमारे प्राण बचा लिए, नहीं ये दुष्ट बिना मारे न छोड़ते। कभी मैं इस ऋण से उऋण नहीं हो सकता। हुँ ऊँ ऊँ......।"

"जो कुछ पास में था, सब लूट लेते, घोड़े छीन लेते, और मारकर कहीं फेंक देते। कोई यहाँ देखने-सुननेवाला न था। किस तरह हम आपका उपकार मानें—हुँ ऊँ ऊँ ऊँ......।"

"अरे-अरे, तुम लोग रोते क्यों हो? अब डर की कोई बात नहीं। वे कायर अब तुम्हें नहीं पा सकते। स्वस्थ होओ, आँसू पोंछो। काकाजी जो बात पूछ रहे हैं, उसका उत्तर दो।"

"महाराज, मेरा नाम नथमल है, मधुपूर का रहनेवाला हूँ। जयपूर एक......।"

"और मेरा नाम महाराज, बिहारीमल है। मधुपूर का रहनेवाला हूँ, जयपूर एक निमंत्रण में......।"

"महाराज, एक निमंत्रण में जा रहा था कि राह में......।"

"हाँ महाराज, राह में—अब भी उनका स्मरणकर हृदय काँप उठता है......।"

"महाराज, राह में......।"

"एक आदमी बोलो जी, क्या हौरा मचा रहे हो। इस तरह दोनो बक-बक करते रहोगे, एक शब्द भी समझ में न आवेगा। तुम चुप रहो जी नथमल, बिहारीमल को बोलने दो। बोलो जी बिहारीमल, क्या कहना चाहते हो। कुँवरजी को अपना हाल बताओ।"

"जो आज्ञा महाराज! हाँ, तो इनका नाम नथमल, मेरा नाम बिहारीमल। हम दोनो चचेरे भाई हैं महाराज। आज हमें बचाकर आपने दो कुटुंबों की रक्षा कर ली, नहीं उजड़ जाते। स्त्रियाँ रो-रोकर मर जातीं, बच्चे भी—हुँ ऊँ ऊँ ऊँ......।"

"अरे, तुम फिर उसी मूर्खता पर आ गए। अच्छा, तुम चुप रहो। नथमल! तुम बोलो। किंतु यदि आवश्यक बात छोड़ और कुछ कहा, तो तुम्हारे लिये अच्छा न होगा। इस प्रकार धूप में खड़े बड़ा सुख नहीं हो रहा है, जो तुम्हारी मूर्खता पर खड़े-खड़े हँसेंगे। हम चाहे ठहरें भी, कुँवरजी और बहूजी को यदि तुम इस धूप में अधिक रोकोगे, तो कभी क्षमा न किए जाओगे, यह याद रखना।"

"जो आज्ञा महाराज, हम लोग वैश्य हैं।"

"यह तो हम पहले ही समझ गए थे। आगे बोलो।"

"हम लोग मधुपूर से आ रहे और जयपूर जा रहे हैं। रास्ते में न-जाने इन दुष्टों को कैसे हमारी ख़बर लग गई। हमें आ घेरा, पर किसी तरह जान बचाकर हम वहाँ से निकल भागे। उसके बाद आप

जानते ही हैं। यदि आप लोग आज यहाँ न मिल जाते, तो हमारी हड्डियों का पता भी न चलता।"

"लेकिन ये दस सवार यहाँ कहाँ से आ गए? होगी, तो पूरी फ़ौज होगी। आठ-दस यवन राजपूताने में आने का साहस नहीं कर सकते।"

"जी हाँ, बादशाही फ़ौज मधुपूर से एक मील पर दाहनी ओर जो हरियाली है, वहाँ पड़ी है। उसी के वे सैनिक थे, जो उस समय यहाँ-वहाँ घूम रहे थे, देखते ही हम पर झपट पड़े।"

"मधुपूर यहाँ से कितनी दूर है?"

"तीन मील।"

"सरकारी फ़ौज कितनी है?"

"तीन-चार सौ सवार होंगे। सेनानायक का नाम सफ़दरख़ाँ है। पीछे एक फ़ौज आ रही है, उसकी बाट जोहता यहाँ पड़ा है। गाँव में जो यवन-सैनिक आए थे, उनसे हमें ये बातें मालूम हुई हैं।"

"यदि यहाँ से सीधे मधुपूर जायँ, तो वह सेना राह में किस ओर, कितनी दूर पड़ेगी?"

"दाहनी ओर क़रीब आध मील छूट जायगी।"

"हूँ......। अच्छा, तुम लोगों की क्या इच्छा है? आगे जाना चाहते हो?"

"हाँ महाराज, अगर कोई भय न हो, तो। यदि फिर ये डाकू आ गए, तो अब की बार कौन बचावेगा। मर जायँगे।"

"नहीं, जहाँ से अभी हम लोग आ रहे हैं, वहाँ तक तो कोई भय नहीं है। तुम बेखटके जा सकते हो। तुम लोग अपने पास एक-एक तलवार क्यों नहीं रखते? तलवार रक्खा करो, समय पर वही काम देगी, रोना काम न आएगा।"

"क्या करें महाराज, तलवार चलाना ही नहीं आता, इसलिये नहीं रखते।"

"तो चलाना सीखो। जो तुम्हारे प्राण बचा सकती है, ऐसी वस्तु से भी दूर भागते हो, यह तुम्हारी मूर्खता है। जाओ।"

"महाराज की जय हो!"

"मैं महाराज नहीं हूँ, कुँवरजी का दास हूँ। कुँवरजी की जय बोलो, और जाओ।"

"महाराज कुँवरजी की जय हो!"

"कुँवरजी!"

"काकाजी।"

"अब क्या किया जाय?"

"क्यों करना क्या है? जो कर रहे हैं, वही किया जाय। सीधे चलें, मधुपूर पहुँचकर भोजन-विश्राम किया जाय। दोपहर ढलने पर फिर आगे बढ़ेंगे।"

"पर मेरा हृदय जैसे कहता है कि कुशल नहीं है। सवार लौटकर शाही सेना में गए होंगे, तो उन्होंने अपनी पराजय का मनमाना वर्णन कर सफ़दरख़ाँ को उकसाया होगा। हम लोग बराती-वेश में हैं, अतः हमारे पास काफ़ी रक़म मिलने की भी उन्हें आशा होगी, इसलिये मुझे भय है, कहीं दुष्ट लोग हम पर धावा करने न आ रहे हों।"

"तो भय क्या है काकाजी? आने दीजिए। हम लोग भी पचास आदमी से कम नहीं। एक-एक राजपूत पाँच-पाँच मुसलमानों के बराबर है। मैं तो चाहता हूँ, गीदड़ आवें। देखिए, किस तरह दाँत खट्टे करता हूँ।"

"ठीक है बेटा, तुम शेर के बेटे शेर हो, यह मैं जानता हूँ, अपने आदमी भी सब वीर हैं, पर यह मौक़ा वैसा नहीं है। यदि हम पुरुष-ही-पुरुष होते, तो कोई बात न थी। शत्रु-सेना के शिविर में घुसकर उनका नाश करते, और मूछों पर ताव देते हुए आगे बढ़ते, पर इस समय बहूजी का डोला साथ है, इस समय हमारा मुख्य ध्येय उनकी रक्षा करना है। सामान भी काफ़ी साथ में है। ऐसी अवस्था में लड़ाई-झगड़ा करना मैं उचित नहीं समझता। यदि किसी तरह यह मौक़ा टालकर हम घर तक डोला और सामान सकुशल पहुँचा सकते, तो फिर बाद में देखा जाता।"

"मैं तो सोचता हूँ काकाजी, आने दीजिए, कायरों को मारकर भी हम निकल चलेंगे।"

"तुम अभी नई उम्र के हो बेटा। खौलता हुआ

रक्त तुम्हारी नसों में दौड़ रहा है । तुम्हें लड़ने की ही सम्मति देना ठीक है । पर मैंने संसार का अनुभव कर यह सिद्धांत निकाला है कि समय देखकर काम करना अच्छा होता है । अतः मैं सोचता हूँ, सीधे न चलकर हम लोग बाईं ओर घूम चलें । दो मील का चक्कर पड़ जायगा, और क्या । न रुकेंगे मधुपूर में, आगे जाकर ठहरेंगे ।"

"जैसी आपकी आज्ञा । मैं तो सोचता हूँ कि...।"

"यदि मेरी प्रार्थना मानते हो, तो अपना सोचना इस समय स्थगित रक्खो । लड़ने का अवसर शीघ्र ही आनेवाला है । बादशाह की सेना इस तरह हमारे सिर पर घूमेगी, और हम चुप बैठे रहेंगे, यह असंभव है । उस समय हौसले निकालना, अभी मेरा अनुरोध मानो । बहूजी से जाकर कह दो कि राह में ख़तरा है, सावधान रहें ।"

"आप ही जाकर कह दीजिए । मैं आगे चलता हूँ ।"

(२)

"ख़ुदावंद, करीमबख़्श हुज़ूर की क़दमबोसी में हाज़िर होना चाहते हैं ।"

"अच्छा, आने दो......। क्यों करीम, क्या चाहते हो ? अरे, तुम तो इस क़दर हाँफ रहे हो, गोया बड़ी दूर से भागते आ रहे हो । सारा जिस्म पसीने से तर है । क्या माजरा है ?"

"हुज़ूर का इक़बाल था कि जान बच गई, नहीं काफ़िर आज बग़ैर मारे न छोड़ते ।"

"क्या ? जल्द बोलो, क्या हुआ ?"

"ग़रीबपरवर, आज सुबह अपने दस सवारों के साथ ख़ादिम मधुपूर के मग़रिब बाज़ू में गश्त लगा रहा था, उसी वक़्त उस तरफ़ से काफ़िरों की एक फ़ौज आ निकली । हमें देखते ही कंबख़्त इस तरह हम पर टूटे, जैसे भूखे भेड़िए हों । हम लोग जान बचाकर भाग न खड़े होते, तो हुज़ूर...।"

"बुज़दिल, क्या तुम्हारे हाथों में तलवारें न थीं ? क्या बाज़ुओं में ताक़त न थी, क्या जिस्म में इस्लामी ख़ून नहीं दौड़ता था, जो इस तरह मुँह छिपाकर भाग खड़े हुए ? सुननेवाले कहेंगे कि सफ़दरख़ाँ की फ़ौज में ऐसे ही नामर्द हैं । आज तुमने मेरे चेहरे पर कालिख पोत दी । मैं तुम्हें और तुम्हारे आदमियों को सख़्त सज़ा दूँगा ।"

"हुज़ूर मालिक हैं, मारें, चाहे रक्खें । मगर हम लोग इस तरह नहीं भागे, जैसा बंदापरवर के दुश्मनों को शुबहा हो गया है । दो काफ़िरों को मार और सत्रह को ज़ख़्मी कर हमारे बहादुर जवान उनके बीच से इस तरह निकल आए, जैसे भेड़ियों के बीच से शेर निकल जाय ।"

"शाबाश, अच्छा फिर ?"

"हुज़ूर, काफ़िरों ने हमारा पीछा किया, और हमें पकड़कर मार डालने की कोशिश में बहुत दूर तक दौड़ते रहे, पर ख़ुदा के फ़ज़्ल से हम सही-सलामत बचकर निकल आए, सिर्फ़ दो आदमियों के हल्की-सी चोटें लगी हैं ।"

"काफ़िरों की फ़ौज कितनी बड़ी थी ?"

"हुज़ूर, सौ सवार होंगे, सब हथियारबंद । बहुत-सा सामान गाड़ियों पर लदाए हुए थे । साथ में एक डोला था । हमें देखते ही चूँकि वे हमारे क़ौमी दुश्मन हैं इसलिये, और शायद इस ख़याल से भी कि हम डोला छीनने आए हैं, उन्होंने हमें चारो तरफ़ से घेर लिया ।"

"डोले में कोई था ?"

"हाँ हुज़ूर, बहिश्त की हूर-सी एक नाज़नी बैठी थी । गुस्ताख़ी माफ़ हो, चाहे कोई मेरा सर क़लम कर दे, मैं तो यही कहूँगा कि वह नाज़नी हुज़ूर का ज़नानख़ाना रोशन करने लायक़ थी । इन मूज़ी काफ़िरों के पास तो वह ऐसी है, जैसे अंधे के पास हीरे का टुकड़ा ।"

"अच्छा-अच्छा, फिर तुम्हें घेरकर काफ़िरों ने क्या कहा ? क्या एकदम वार करने लगे ?"

"नहीं हुज़ूर, हमारे घिर जाने पर उनमें से एक जवान, जो देखने में उनका सरदार मालूम होता था, और शायद वही उस माल-टाल का मालिक था,

सामने आया, और कड़ी आवाज़ में ग़ुर्राकर बोला—'तुम लोग कौन हो?' मैं उससे क्यों दबता? उसी तरह डाटकर मैंने भी कहा—'मंसबदार सिपहसालार जनाब सफ़दरख़ाँ बहादुर का मैं फ़ौजदार हूँ, ये सिपाही मेरे मातहत हैं।' इतना सुनते ही वह जवान मुस्किरा पड़ा, बोला (हुज़ूर, गुस्ताख़ी मुआफ़ फ़रमाई जावे।)—'अच्छा, तुम मूज़ी सफ़दरख़ाँ की फ़ौज के हो? अच्छे मिले। तुम्हें तलवार के घाट उतारकर उस सफ़दरख़ाँ को देखूँगा।' मैंने कड़ककर कहा—'ख़बरदार, सँभलकर बोलो, नहीं ज़बान खींच ली जायगी।' बस तलवार चल पड़ी।"

"मूज़ी, बदमाश, दोग़ला। उसकी इतनी मजाल कि मुझे मूज़ी कहे? मूज़ी होगा उसका बाप। तलवार से दो टुकड़े क्यों न कर दिए?"

"मैंने तो तलवार चलाई, पर हुज़ूर, वह सामने से हट गया, नहीं फिर कभी अपनी बदज़बान न खोलता।"

"वे लोग किस तरफ़ गए हैं?"

"मधुपूर की तरफ़ जा रहे थे हुज़ूर। मेरा जिस्म तो ग़ुस्से से जला जा रहा है। मुझे कुछ सवार देने की इनायत की जाय, मैं जाकर पाजियों से इस हतक़ का इंतक़ाम लूँ।"

"तुम क्या जाओगे, मैं ख़ुद चल रहा हूँ। नामाक़ूल ने मुझे मूज़ी कहा है! यही तलवार सीने में न घुसेड़ूँ, तो सफ़दरख़ाँ नाम नहीं। जाओ, फ़ौरन् दो सौ सवार तैयार करो, और तुम्हें भी मेरे साथ चलना होगा, समझे? हाँ, क्या कहा था, एक डोला साथ में था, डोले में एक नाज़नी थी?"

"हाँ बंदानेवाज़, परी-सी।"

"अच्छा जाओ, जल्दी करो।"

"हुज़ूर, मुमकिन है, डरकर काफ़िरों ने रास्ता छोड़ दिया हो, और वीराने की तरफ़ निकल गए हों। उस हालत में बहुत दूर तक जाना पड़ेगा।"

"कोई परवा नहीं। अगर दस मील भी निकल गए होंगे, तो अब वे नहीं बच सकते। उनको मारे बग़ैर सफ़दरख़ाँ को पानी का क़तरा हराम है। जाओ, तुम जल्दी करो।

"साक़ी!"

"ग़रीबपरवर!"

"एक जाम शीराज़ी।"

(३)

"कुँवरजी, सावधान!"

"क्यों काकाजी? अब तो हमने रास्ता भी छोड़ दिया, मीलों दूर से चल रहे हैं, अब डर का क्या कारण?"

"मुझे घोड़ों की टापों की आहट आ रही है। मालूम होता है, हमारा पीछा किया जा रहा है।"

"कहाँ! मुझे तो कुछ भी नहीं सुन पड़ता।"

"अभी सुन पड़ेगा।......वह सुनो, टप-टप-टप बहुत दूर से आवाज़ आ रही है।"

"हाँ, सुन पड़ा, जैसे दूर जंगल में कोई जल्दी-जल्दी लकड़ी काट रहा हो।"

"यहाँ जंगल कहाँ, शत्रु हैं, शत्रु। अवश्य वे भगोड़े सहायता लेकर आ रहे होंगे। बिहारीमल ने कहा था कि चार सौ सवार सफ़दरख़ाँ के साथ हैं, कोई आश्चर्य नहीं, जो सब सवारों के साथ वह स्वयं आ रहा हो। हमारे साथ बहुत-सा माल है, यह उन दुष्टों ने देख लिया था, डोले पर भी अवश्य दृष्टि पड़ी होगी, बस, मुसलमान-सेना को खींच लाने के लिये इतना ही यथेष्ट है। अब बचने का उपाय......।"

"काकाजी, आप इतने चिंतित क्यों होते हैं? आने दीजिए नरक के कीड़ों को। हम दिखा देंगे कि हम उनकी तरह कायर नहीं हैं।"

"ठीक है बेटा, पर तुम भूले जा रहे हो कि हम डोला लिए हुए लड़ने की स्थिति में नहीं हैं। जहाँ तक हो सके, हमें युद्ध बचाना चाहिए, जब न बचेगा, तब देखा जायगा। अंत समय हताश होने पर लोग क्या नहीं करते। पर यदि मौक़ा टल जाय, तो अच्छा है। तुम एक काम करो।"

"कहिए।"

"शत्रु इस वेग से आ रहे हैं कि डोला लेकर उनके आगे निकल जाना असंभव है।'

"यह तो देख रहा हूँ।"

"इसलिये तुम बहूजी को अपने घोड़े पर बैठाकर हवा हो जाओ, हम लोग शत्रु को पीछे रोकेंगे।'

"काकाजी, यह मुझसे न होगा। मैंने एक बात आपकी मान ली, राह छोड़ कुराह में आ गया। अब मैं कदापि यह मौक़ा नहीं छोड़ सकता। हाथ में आया लड़ाई का अवसर छोड़कर भाग जाना मेरे विचार में कायरता है, यह मैं कभी न करूँगा। आपने एक बार मेरी और माताजी की रक्षा की थी, इस बार भी आप ही अपनी बहू की रक्षा करिए। आप उन्हें लेकर आगे बढ़िए, मैं इन नीचों को मार-कर शीघ्र ही आपसे आ मिलूँगा।"

"आह! बेटा, तुम नहीं समझते। तुम्हारी माता मुझे देवर की तरह मानती थीं, उन्हें लेकर चला जाना कठिन न था। पर यह बच्ची तो मुझे ससुर करके मानती है, मुझसे बात भी न करेगी। उसे मेरे साथ हर तरह कष्ट होगा। नहीं बेटा, तुम्हीं जाओ। मेरा यह अनुरोध मान लो। कदाचित् यह अंतिम अनुरोध हो।"

"..........।"

"बस कुछ विचार न करो बेटा, शीघ्रता करो। वह देखो, धूल पास आती दिखलाई पड़ रही है।"

"काकाजी, आप मुझे कायर बना देंगे।"

"छिः बेटा, यह तुम क्या कह रहे हो! तुम वीर हो, वीर-शिरोमणि हो। तुम-सा बहादुर आस-पास कहीं ढूँढ़े न मिलेगा, पर समय देखकर काम करो बेटा। जाओ, शीघ्र बहूजी को डोले से निकालो, तब तक मैं एक शब्द साथियों से कह दूँ।........भाइयो, शत्रु हमारे पीछे आ पहुँचे। अब बचने का समय नहीं है, अतः दुर्गा का नाम लेकर अपनी-अपनी भुजाओं की शक्ति की परीक्षा करने के लिये प्रस्तुत हो जाओ, इसी दिन के लिये तुम्हारी माताओं ने तुम्हें दूध पिलाया था, इसी दिन के लिये कुँवरजी के नमक से तुम्हारा पोषण हुआ था। अब उऋण होने के लिये सन्नद्ध हो जाओ। स्वामी और स्वामी के इष्ट-मित्रों की रक्षा करने में प्राण देनेवालों के लिये स्वर्ग का द्वार खुला है। आओ, उस द्वार से घुसने के योग्य हम बनें।"

"जय दुर्गे!"

"कुँवरजी बहूजी को लेकर आगे जा रहे हैं। दस आदमी उनके साथ, उनकी रक्षा के लिये, जाओ। चलो, दस आदमी बाहर निकलो शीघ्र।.........ऐं, कोई भी नहीं आता! समझ गया, शाबाश! तुम सभी इसी ठौर शत्रु का नाश करते हुए नष्ट हो जाना चाहते हो। धन्य है तुम्हें, धन्य है तुम्हारी माताओं को, धन्य है इस वीर-भूमि को, और धन्य है ऐसे वीर को, जिसके तुम सेवक हो। पर भाइयो, स्वामी के लिये मरने की अपेक्षा स्वामी की रक्षा करने का भार किसी प्रकार कम नहीं, वरन् गुरुतर है। अतः अस-मंजस न करो, दस आदमी बाहर आ जाओ। एक, दो, तीन, चार,...छै,...दस। ठीक। कुँवरजी!.........अरे! अभी तक आप यों ही खड़े हुए हैं! शीघ्रता करिए, वे शत्रु देख पड़ने लगे।"

"लेकिन जाऊँगा कहाँ काकाजी, वह सामने से भी तो शत्रु-दल आ रहा है।"

"आह! दोनों ओर से घिर गए। निर्दयी विधाता!...जान पड़ता है बेटा, ईश्वर की यही इच्छा है, तो फिर ऐसा ही हो। निकालो तलवार, शत्रु सामने आ गए।"

"मैं तो यही चाहता था। अहा! कैसी बाँहें फड़क रही हैं, हृदय में कैसे उत्साह का समुद्र उमड़ रहा है। अलौकिक आनंद से मस्त हुआ जा रहा हूँ, ऐसा जान पड़ता है, जैसे कोई नशा पी लिया है। काकाजी, आप डोले की रक्षा के लिये जाइए, मैं मुख-भाग पर लड़ूँगा। आज आप मेरी तलवार के जौहर देखेंगे। जय दुर्गे!"

"जय, जय दुर्गे!"

"अल्ला हो अकबर !"

❀　❀　❀

"मारो काफ़िरों को, जाने न पाएँ। एक भी ज़िंदा न बचे, सबको क़त्ल कर दो। उसको जो ख़ुदा-बख़्श, उसको बढ़कर, वह नौजवान, जो फेंटा बाँधे अबलक़ पर चढ़ा पैंतरे बदल रहा है। हाँ-हाँ, लगे, जाने न पाए……। अरे, यह क्या !"

"ख़ुदाबख़्श तो ख़ुदा के घर गया, नीच, तू क्यों नहीं सामने आता ? वहाँ सिपाहियों की ओट में क्यों छिपता है। सामने आ कायर, नामर्द, इसी हिम्मत पर हाथ में तलवार पकड़ी है ?……अरे, तुम सब मुझ पर ही क्यों टूटे पड़ते हो, ठहरो तनिक, मुझे सफ़दर के पास तक पहुँच जाने दो। एक बार उससे लड़ लूँ, फिर जी चाहे, जितने आ जाना।…अरे, तुम सब न मानोगे ? तो फिर तुम्हीं लो।"

"दिल क्यों काँपता है काफ़िर ? लड़-लड़, मेरे आदमियों से लड़। उसके बाद मैं तुझे देखूँगा।"

"हह हह ! यही तो वीरता है। धन्य है ऐसे वीर को।………ठहरो, बच्चा, रास्ता साफ़ करता मैं तुम्हारी ओर ही आ रहा हूँ। बीस तो समाप्त हो चुके, पंद्रह-बीस और, और मैं तुम्हारा मुँह तोड़ने के लिये तुम्हारे सामने खड़ा होऊँगा।"

❀　❀　❀

"करीम, यह जवान तो बड़ा जवाँमर्द है !"

"इसमें क्या शक है हुज़ूर, देखिए, किस फुरती व चुस्ती से शमशीर घुमा रहा है। सिफ़त तो यह कि एक वार भी ख़ाली नहीं जाता।"

"यह जल्दी हाथ न आएगा। अब क्या करना चाहिए ?" मैं तो सोचता हूँ हुज़ूर, डोला लेकर यहाँ से खिसक चला जाय। अपने आदमी बाक़ी काम पूरा कर डालेंगे।"

"अच्छा ठीक, उसी तरफ़ चलो।"

❀　❀　❀

"क्या कहना है भाइयो, धन्य है वीरो, झुके रहो। प्राणों का मोह न करना। एक दिन तो मरना ही है। आज ही मरकर क्यों न नाम कमा लें। पीछे न हटना, ख़बरदार।"

"करीम, यह बुड्ढा तो बड़े जोश में है। ज़रा डाँटो तो, शायद डर जाय।"

"जी हुज़ूर।……चुप रह बे खूसट नामाक़ूल, नहीं अभी तलवार से दो टुकड़े कर दूँगा।"

"आ रे नीच, मैं तो तेरी राह ही देख रहा था। भागकर कहाँ जायगा ? यह लेता जा। ले……।"

"आह ! आ… आ…ह !"

"अरे करीम, तुम भी चल दिए, इस मूजी बूढ़े ने तो मुझे बरबाद कर दिया। मेरा दाहना हाथ आज टूट गया, पर तू बचकर कहाँ जायगा। ले, तू भी ले।"

"आह ! हाथ में तलवार नहीं सँभलती, नहीं तुझे इसका मज़ा चखाता।… कुँवरजी, कुँवरजी ! मैं विश्वासघाती हूँ भैया, डोले की रक्षा नहीं कर सका, क्षमा करना, जाता ……।"

"हैं ! काकाजी……! काकाजी ! काकाजी धराशायी हो गए ! हाय, आज मैं अनाथ हो गया। पिता-तुल्य काकाजी……किंतु छिः ! मैं स्त्री क्यों हुआ जा रहा हूँ। गए, तो क्या उनके साथ मैं नहीं जा सकता। छिः ! यह अवसर उनकी मृत्यु का बदला लेने का है, न कि रोने का।……ठहरो, कायरो ! मैं आया। डोला कहाँ लिए जाते हो ?"

"भाग जा नौजवान, भाग जा। हमें तुझ पर तरस आता है, इतने कमसिन छोकरे को अपने हाथों क्या मारें। भाग जा, तेरी जान बख़्श दी।"

"कायरो, भाग रहे हो तुम। तनिक ठहरो तो, जाते कहाँ हो। पहले मुझसे निपट लो, फिर आगे बढ़ना। ठहरो-ठहरो, नरक के कीड़ो।"

"तो आ, ले, दोज़ख़ के कुत्ते !"

❀　❀　❀

"आह! तुम्हारी रक्षा नहीं कर सका क्षत्राणी, प्रयत्न असफल हुआ। जाता हूँ। कंकण की लाज तुम्हारे हाथ। बि…दा…आ।"

(४)

"ओफ़् ! बहुत नुक़सान हुआ शमशेर, पूरे सौ आदमी क़त्ल हो गए !"

"ज़रूर बहुत नुक़सान हुआ हुज़ूर, सौ आदमी एकदम क़त्ल हो गए !"

"पर काफ़िरों में से एक भी ज़िंदा न बचा, यह तसल्ली की बात है। हज़ारों का सामान हाथ लगा, सो अलग। नुक़सान हुआ, तो फ़ायदा भी पूरा-पूरा हुआ, क्यों शमशेर ?"

"बजा है ग़रीबपरवर।"

"अरे, और उस डोले को तो मैं भूला ही जा रहा हूँ !"

"हाँ, हुज़ूर ज़रूर उस डोले को भूले जा रहे हैं।"

"जिसमें बहिश्त की—करीम ने कहा था—हूर है।"

"जी हाँ, ज़रूर करीम ने कहा था, उसमें बहिश्त की हूर है।"

"शमशेर !"

"हुज़ूर !"

"जाकर अमीना और मुश्तरी से बोलो कि ख़ातिर के साथ उस नाज़नी को मेरे रूबरू पेश करें।"

"जो इर्शाद।"

"साक़ी !"

"हुज़ूर !"

"एक जाम शीराज़ी।"

❀ ❀ ❀

"क्यों मुश्तरी, तो वाक़ई इस डोले के अंदर बहिश्त की हूर है ?"

"हाँ री, देखती नहीं, कैसा गोरा और मुलायम हाथ है, गोया चंपे के फूल की पंखड़ी हो। जान पड़ता है, सो रही है।"

"सो तो रही हो है, नहीं इस तरह ढीला होकर हाथ डोले के बाहर क्यों निकलता ? वह ख़ुद अब तक बाहर खड़ी होती। मालूम होता है, जन्नत से आते-आते थक गई, इसलिये सो गई है।"

"चुप बेवक़ूफ़, तुझे सबके सामने मज़ाक़ सूझता है। अभी हुज़ूर से एक भी लफ़्ज़ तेरे ख़िलाफ़ कह देगी, तो सब भूल जायगी, लेने के देने पड़ जायँगे।"

"अरे, ग़लती हो गई मुश्तरी बहन, माफ़ कर।"

"मैं कौन होती हूँ माफ़ करनेवाली ? उनसे माफ़ी माँग, जो डोले में पड़ी सो रही हैं। चल, जगा इन्हें, फ़ज़ूल वक़्त ज़ाया न कर।"

"उठिए बेगम साहबा ! अरे रानी साहब, हुज़ूर आपको याद फ़रमाते हैं।...यह तो उठतीं ही नहीं मुश्तरी ! तू ही हाथ पकड़, शायद जग पड़ें।"

"अह !"

"अरे, क्या हुआ ? तूने अपना हाथ इस तरह एकदम क्यों खींच लिया ?"

"ग़ज़ब रे ग़ज़ब, इतना ठंडा हाथ ! अमीना, डोले का पर्दा तो खोल।"

"उई, बाप रे बाप !"

"क्या है ?...ओफ़् दैया रे दैया ! यह तो मरी पड़ी हैं। कलेजे में ख़ंजर घुसा हुआ है। या ख़ुदा ! ख़ून है या ख़ुदकशी !"

सवाक् चित्र-पट में कुछ भारतीय अभिनेत्रियाँ

[श्रीराधाकांत शर्मा]



हिंदोस्तानी चित्र-पट में केवल मनोरंजन और विनोद पर ही बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है। योरप में यह उद्देश्य अवश्य रहता है, किंतु रूस, जर्मनी आदि प्रदेशों में इससे एक साहित्यिक व्यक्ति और व्याख्याता का काम भी लिया जाता है। रूस की परिस्थिति-परिवर्तन और जर्मनी के वीर-भाव की सृष्टि में चित्र-पटों ने बहुत अधिक काम किया है। यही कारण है कि उन देशों की फ़िल्मों में जीवन के प्रत्येक अंगों का विकास रहता है। उनमें क्रांति है, समाज है, धर्म है, और राष्ट्रीयता है। किंतु भारतवर्ष में इनका उद्देश्य एकमात्र मनोरंजन और विनोद ही है। अभी तक जितनी भी फ़िल्में तैयार की गई हैं, उनमें पौराणिक तथा ऐयारी और तिलस्मी कहानियाँ ही हैं। सामाजिक तथा अन्य वर्तमान परिस्थिति का कहीं भी उल्लेख नहीं है। कोई भी और कैसी भी फ़िल्म क्यों न हो, उसमें स्त्री-पात्रों का रहना परमावश्यक है। पुरुष-पात्र यदि सफल अभिनेता नहीं हैं, तो दर्शक उतना अधिक नाक-भौं नहीं सिकोड़ते, किंतु स्त्रियों में यदि एक भी उनके स्टैंडर्ड से नीचे गिरी, तो उस चित्र-पट का सफल होना असंभव-सा हो जाता है। 'माधुरी'-नामक चित्र-पट बहुत अधिक सफल रहा, यद्यपि सुलोचना के निकाल देने पर वह कुछ भी नहीं रह जाता। कहने का तात्पर्य यह कि स्त्री-पात्रों का सुंदर और अभिनय-कला में कुशल होना परमावश्यक है। उसे ऐसा अवश्य होना चाहिए कि वह प्रत्येक दर्शक के ध्यान को अपनी ओर आकृष्ट कर ले। हिंदोस्तानी मूक-चित्र-पट में यह सुविधा थी कि कंठ पर विशेष अधिक ध्यान नहीं देना पड़ता था। मिस सुलोचना और मिस माधुरी ने मूक चित्र-पट में ख़ूब प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी, और कज्जन का कहीं नाम भी नहीं था, किंतु सवाक् चित्र-पट में कज्जन बहुत पहले आ गई, और सुलोचना तथा माधुरी प्रतीक्षा में रह गईं। संभवतः उन्हें अपनी वाक्-शक्ति पर भरोसा नहीं था।

इस संबंध में एक बात और भी उल्लेखनीय है। चित्र-पटों के डाइरेक्टर एक बहुत बड़ी भूल कर दिया करते हैं। जिस मनोभाव के प्रकटीकरण के लिये जो पात्र उपयुक्त होता है, उसे वह पार्ट कभी नहीं दिया जाता। सवाक् चित्र-पट में कज्जनबाई ने ख़ूब नाम कमाया, किंतु करुण मनोभावों के व्यक्त करने में वह पूर्णतः असफल रहीं। उनके लिये वेश्या का पार्ट अधिक उपयुक्त होता है। मिस गौहर में चपलता बहुत है। उनकी भाव-भंगी भी कमाल की होती है, किंतु वह भी विलास-पूर्ण क्रियाओं की अभिव्यक्ति में ही सफल होती हैं। रुदन के स्थान पर तो एक तमाशा ही बन जाती हैं। जिल्लू करुण-रस में सबसे अधिक सफल हैं। मिस जुबेदा प्रत्येक मनोभाव—हर्ष, शोक, करुण आदि—में सफल हैं, किंतु इनके लिये भी करुण-रस हास्यास्पद हो जाता है। 'मीरा'-नामक चित्र-पट में इन्होंने बहुत अधिक सफलता पाई है, किंतु उसमें प्रेम की तल्लीनता दिखाने में ही यह सफल हो सकी हैं। प्रणय आदि के प्रकटीकरण में भी यह ख़ूब कमाल करती हैं।

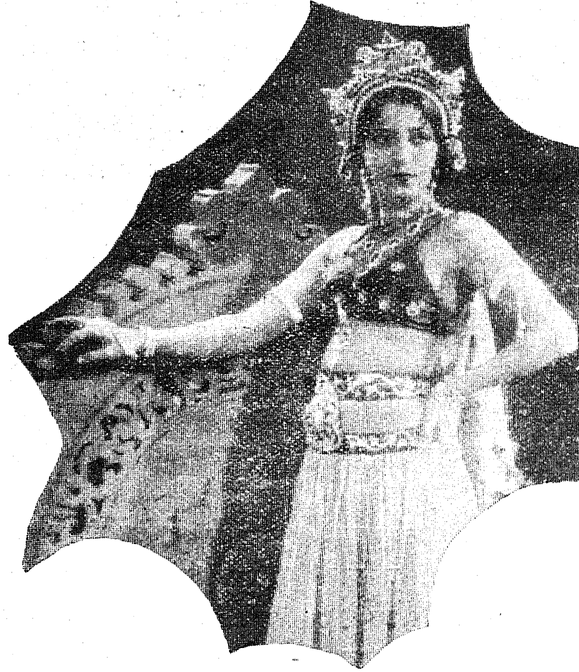
इधर कुछ दिनों से हमारे सम्मुख दो अभिनेत्रियाँ और भी आ खड़ी हुई हैं। इनसे दर्शक अपरिचित नहीं हैं। मूक-चित्र-पट में इन दोनो ही ने बहुत अधिक प्रशंसा प्राप्त की है। इनमें से एक हैं सुलोचना और दूसरी मिस माधुरी।

सुलोचना सवाक् चित्र-पट में सर्व-प्रथम 'माधुरी'-

फ़िल्म में प्रकट हुईं। इनके नाम से लोग परिचित थे ही, और मूक-चित्र-पट में इन्होंने जो प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी, वह इन्हें ऊपर उठाने के लिये पर्याप्त थी। दर्शकों ने इस चित्र-पट की प्रशंसा भी ख़ूब की। कंपनी को इससे आर्थिक लाभ भी ख़ूब हुआ, किंतु इस चित्र-पट के विषय में सामूहिक सम्मति यही रही कि सुलोचना के अतिरिक्त यह चित्र-पट नहीं के बराबर है *।

कहने का तात्पर्य यह कि सुलोचना इस फ़िल्म में ख्याति तो अवश्य पा गईं, किंतु इस फ़िल्म को सफलता नहीं मिली। भीड़ हो जाय, कंपनी को रुपए मिल जायँ, उसे सफलता नहीं कह सकते। कला की दृष्टि से हम उसी को सफल कहेंगे, जो सर्वांग-पूर्ण हो। इस प्रकार का एक चित्र-पट निकला, और वह था 'पूरण भक्त'। इसमें भारतीय दृष्टि से अच्छी सफलता मिली है।

मिस माधुरी 'परदेशी प्रियतम' में प्रकट हुई हैं। इनके लिये सवाक् चित्र-पट में आने का यह प्रथम अवसर है। इस फ़िल्म का कथानक और वातावरण ठीक इनके स्वभावानुकूल है। 'माधुरी'-फ़िल्म का कथानक, कहने की आवश्यकता नहीं, बहुत अधिक दोष-पूर्ण और अस्वाभाविक तथा प्राचीन ढर्रे का था। उसमें सुलोचना अपनी अभिनय-कला का पूर्ण प्रदर्शन भी नहीं कर सकती थीं। उसका तो वातावरण ही भिन्न था। 'परदेशी प्रियतम' का कथानक प्राचीन होते हुए अर्वाचीन है। मिस माधुरी लीला का पार्ट करती हैं। लीला एक किसान की नवयौवना, भोली-भाली और सुंदरी कन्या है। स्वाभाविक रूप से लीला 'मनु'-नामक एक व्यक्ति से प्रेम करने लगती है। इसी समय एक परदेशी आता है। उसकी अतुल संपत्ति देखकर लीला आकर्षित हो जाती और मनु का परित्याग करके परदेशी के साथ



'परदेशी प्रियतम' में मिस माधुरी

* Minus Sulochana, the film is nothing.



'परदेशी प्रियतम' का एक दृश्य

चली जाती है। लेकिन लीला के जाने के पूर्व मनु अपना कर्तव्य करता है, उसकी रक्षा के लिये परदेशी की हत्या तक करने को उद्यत होता है। लीला अपने आँसुओं से उसे पिघला देती है। किंतु परदेशी की प्रीति तो कभी स्थायी होती नहीं, परदेशी लीला के साथ विश्वासघात करता है। इसी प्रकार कथानक आगे की ओर बढ़ता जाता है, और उसमें भिन्न-भिन्न कौतूहल-वर्द्धक दृश्य और संघर्ष आते जाते हैं।

कहने का तात्पर्य यह कि कथानक में हर्ष, क्रोध, शोक, भय, आमर्ष, प्रेम और विलास आदि सभी मनोभावों का संयोग है। एक साधारण अभिनेत्री इनकी अभिव्यक्ति में कभी सफल नहीं हो सकती। मिस माधुरी को अभिनय-कला-प्रदर्शन के लिये इसमें बहुत अधिक क्षेत्र मिलता है। यदि मिस माधुरी कहीं भी फिसल पड़ी होतीं, तो निस्संदेह इनकी समस्त उपार्जित प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जाती, किंतु इन्हें इसमें अपूर्व सफलता मिली है। चंचलता, विविध भाव-भंगी और विलास-सूचक अंग-विक्षेप में मिस गौहर को पीछे फेंकती हुई, शोक, करुणा और चिंतन में आप जिल्लू से किसी प्रकार भी नीचे नहीं जाती हैं। सुलोचना ने 'माधुरी'-फ़िल्म में प्रथम-प्रथम प्रकट होकर उतनी अधिक और पूर्ण प्रशंसा नहीं प्राप्त की, जितनी मिस माधुरी इसमें पा रही हैं।

किंतु हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि सुलोचना अभिनय-कला में असफल हैं। माधुरी-फ़िल्म की अपूर्णता और असफलता पात्रों, कथानक और वातावरण के अनुपयुक्त चुनाव के कारण है। सुलोचना ई० बिलमोरिया के साथ ख़ूब चमकती हैं। डाकू की लड़की-नामक फ़िल्म में इन्होंने ख़ूब सफलता प्राप्त की है।

इस प्रकार ठीक स्थान पर रखने से हमें पूर्ण विश्वास है कि स्त्री-अभिनेत्रियों में से बहुत-सी स्त्रियाँ सफल हो जायँगी। चंडीदास तथा पूरण भक्त की उमादेवी, अयोध्या का राजा-नामक फ़िल्म की मिसेज़ खोटे भी सुलोचना, मिस माधुरी के साथ उन्नति कर सकती हैं, और कुछ दिनों में ही योरपीय महिलाओं



'परदेशी प्रियतम' का एक दृश्य

की स्वाभाविक अभिनय-कला से टक्कर ले सकती हैं। हाँ, इनकी ट्रेनिंग अवश्य सावधानी से होनी चाहिए। मिस माधुरी सुलोचना से अधिक आकर्षक हैं, यह उनकी ट्रेनिंग का ही परिणाम है।

अखिल भारतवर्षीय महिला-कवि-सम्मेलन की सभानेत्री* का भाषण



स्वागतकारिणी समिति की अध्यक्षा तथा अन्य बहनो !

महिला-कवि-सम्मेलन के आयोजन की सूझ वास्तव में अपूर्व है। इस सम्मेलन के बहाने हम दूर-दूर की बहनों को एक स्थान पर इकट्ठी होने और साहित्य की चर्चा करने का अनुपम अवसर मिला है। हिंदोस्तान तो क्या, मेरे विचार में किसी भी देश में साहित्य की सेविकाओं का इतना बड़ा सम्मेलन आज तक नहीं हुआ। यह हिंदी की महिला-कवियों के लिये गर्व की बात है। परंतु इस गर्व के साथ ही मुझे एक भय है कि आपने इस बृहत् कवि-सम्मेलन के संचालन का भार मुझ-जैसी व्यक्ति को सौंपा है, जो किसी भी प्रकार इसके योग्य नहीं है। मैं यह बात शिष्टाचार से नहीं कहती, मेरी असमर्थता ही मुझे यह कहने के लिये बाध्य कर रही है। मैं जानती हूँ कि पद-पद पर मुझे आपकी सहायता, सम्मति तथा सत्परामर्श की आवश्यकता पड़ेगी। ऐसी अवस्था में यदि मैं आपको अपनी असमर्थता के संबंध में पहले से ही सावधान किए देती हूँ, तो उचित ही कर रही हूँ। इस कवि-सम्मेलन की अध्यक्षा बनाकर आपने जो यह गौरव का पद मुझे प्रदान किया है, उसके लिये मैं आपको हृदय से धन्यवाद देती हूँ।

साहित्य में कवि का स्थान बहुत ऊँचा है। वह दार्शनिक, इतिहासकार, समाज-शास्त्री तथा धर्माचार्य के सिद्धांतों को सुंदर साँचे में ढालकर जन-साधारण के हृदय-मंदिर में स्थापित करता है। उनके प्रति हमारी भक्ति उत्पन्न कराता है, यहाँ तक कि हम उनको पूजने लगते हैं।

इतिहासकारों के राम और कृष्ण का वास्तविक जीवन चाहे जैसा रहा हो, आदर्श अथवा अत्यंत साधारण; उनके जीवन के, यहाँ तक कि उनके अस्तित्व के संबंध में भी इतिहासकार संदेह कर सकते हैं, परंतु वाल्मीकि और तुलसीदास के राम, व्यास, सूरदास तथा मीरा के कृष्ण वास्तविक हैं; जिनके अस्तित्व का स्पंदन युगों से भारतवर्ष के स्त्री-पुरुषों और बच्चों तक को स्फुरण दे रहा है।

इसी प्रकार जगत् की उत्पत्ति और विनाश की जटिल समस्या, कारण, कार्य और परिणाम की उलझन, पुनर्जन्म या नितांत विनाश का दुरूह प्रश्न, उसी प्रकार प्रकृति और माया का विकट जाल, ये सब कवि की जादू-भरी लेखनी के द्वारा इतने सरल और ग्राह्य हो जाते हैं कि हम उन्हें स्वयंसिद्ध समझने लगते हैं। कवि संसार को शिक्षा देता है, इतिहासकार का क्रूर सत्य या धर्माचार्य का उग्र दंड-विधान दिखा-

* श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान।

कर नहीं, किंतु उसका मन बहलाकर, हँसाकर और मृदुलता-पूर्वक रुलाकर। वह उँगली के इशारे से नहीं कहता कि यह करो, और यह मत करो। वह एक छोटी-सी कहानी कह देता है, और हम समझ जाते हैं कि हमको क्या करना चाहिए। यही तो कारण है कि संसार के प्रायः सभी धर्म-प्रवर्तकों ने अपने नवीन सिद्धांतों को जन-साधारण के हृदयों में प्रविष्ट कराने के लिये कवि की कल्पना का सहारा लिया है, और छोटी-छोटी कहानियों (Parables) की सृष्टि की है। गौतम बुद्ध ने यही किया, ईसा मसीह ने यही किया, मुहम्मद ने यही किया, और आधुनिक दयानंद या रामकृष्ण ने भी यही किया है। न केवल धर्माचार्यों ने ही, किंतु भारतवर्ष में तो स्मृतिकार, भिषग्वर, इतिहासकार, ज्योतिषी, योगी, दार्शनिक, सबने अपने-अपने सिद्धांतों और विद्या का प्रचार करने के लिये कविता का सहारा लिया है। यहाँ तक कि गणितज्ञ, जो बावन तोला पाव रत्ती की नपी-तुली बात करता है, वह भी Mensuration को लीलावती का शृंगार चढ़ाकर पार्थिव पदार्थों की नाप-तौल करता है। आधुनिक गणित-शास्त्री भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि लीलावती की शैली आजकल की जामेट्री और मेंसुरेशन से कहीं अधिक मनोहर है, इनमें रूखापन है और लीलावती में सरसता।

इस प्रकार कवि भिन्न-भिन्न विद्याओं का शृंगार-विशारद (Toilet expert) है, जिसके हाथ में पड़कर सबका रूप निखर उठता है। वह केवल Toilet expert ही नहीं है, वह सबमें नई स्फूर्ति और नव-जीवन का संचार भी करता है, वह सत्य को सुंदर और प्रिय बना देता है। उसका यह कहना है कि "सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्" और वह अपने इस सिद्धांत का मानवीय मस्तिष्क की प्रत्येक क्रिया में अक्षरशः पालन करता है।

साहित्य में जिस प्रकार कवि का स्थान ऊँचा है, उसी प्रकार कवियों में भी, मेरा विश्वास है, स्त्री-कवियों का स्थान पुरुष-कवियों की अपेक्षा ऊँचा रहेगा। कविता प्रायः भाव-प्रधान रहती है, और स्त्रियों के समान भावुकता पुरुषों में नहीं मिल सकती।

नारी-हृदय की तुलना हम वायु-मापक यंत्र (Barometer) से कर सकते हैं, जिसमें छोटे-से-छोटा परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगता है। स्त्री-हृदय की कोमल वृत्तियाँ अत्यधिक सजग और सजीव रहती हैं। उनकी हृदय-वीणा का प्रत्येक तार इतना खिंचा और कसा रहता है कि वह वातावरण के सूक्ष्मातिसूक्ष्म आघात से निनादित हो उठता है। शरीर-विज्ञान और मनोविज्ञान के पंडितों का कहना है कि स्त्रियों की शरीर-रचना और मन पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक परिष्कृत है।

प्रेम और बलिदान मनुष्य को पशु की श्रेणी से उठाकर देवत्व के पद पर पहुँचाते हैं। पारस वह है, जो लोहे को भी सोना बना देता है, और वह हमको मिलेगा विशेष मात्रा में स्त्रियों के अंदर। स्त्रियों के समान प्रेम और बलिदान किसने किया है? इतिहास इसका साक्षी है; इतिहास ही क्यों, प्रत्येक घर के अंदर उनके प्रेम और बलिदान की कहानी लिखी है।

उनका बलिदान आवेश-जन्य और क्षण-भर में सर्वस्व स्वाहा कर देनेवाला नहीं होता, किंतु वे दिन और रात प्रत्येक घड़ी, पल-पल जीवन-भर बलिदान करती हैं, और बलिदान करती हैं मुस्किराते हुए। संसार के बड़े-से-बड़े कर्म-योगी, योद्धा, विद्वान् और कवि ने स्त्रियों की स्फूर्तिदायिनी शक्ति को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। विश्व-विजयी नेपोलियन सदा अपनी माता का गुण-गान करता रहा। अमर कवि दांते बिट्रिस (अपनी प्रेयसी) का आभारी है। तुलसीदास की राम-भक्ति की प्रेरिका उनकी पत्नी थीं। लंका की विजय-कामना सीताजी के कारण रामचंद्रजी के मन में हुई थी, और वह राधिका का ही निष्काम प्रेम था, जिसने गीता का तत्त्व श्रीकृष्ण को सिखलाया था। समस्त मानव-जाति स्त्रियों की गोद में पली है, और उनकी उँगली के सहारे खड़ा होना और चलना सीखी है। पुरुषों ने ही यह घोषित कर रक्खा है कि स्त्रियाँ वास्तव में देवी हैं, जिन्होंने इस मृत्यु-लोक को स्वर्ग बना रक्खा है।

अब यह प्रश्न उठता है कि इतने पर भी अभी तक पुरुषों के समान अधिक संख्या में और ऊँची श्रेणी को स्त्री-कवयित्रियाँ क्यों नहीं हुईं ? कारण स्पष्ट है, स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र अभी तक दूसरा ही रहा है। उन्होंने कविता के क्षेत्र में पैर नहीं रक्खा था, किंतु क्रमशः वे अब इस क्षेत्र में भी आ रही हैं, और हम इस बात के लिये कृतज्ञ हैं कि इस क्षेत्र में पुरुष उनकी सफलता और महत्ता को स्वीकार करने लगे हैं।

साहित्य के क्षेत्र में स्त्रियों का आना अत्यंत आवश्यक है। स्त्रियों के सहयोग के बिना मानव-साहित्य संपूर्ण नहीं हो सकता। एक पुरुष किसी पुरुष की हृदयानुभूति को सफलता-पूर्वक प्रकट कर सकता है। परंतु जब वह स्त्रियों की अनुभूति को प्रकट करने जाता है, तब उसे विवश होकर कल्पना से ही काम लेना पड़ता है। उदाहरणार्थ सती की मनोभावना, वधू के उल्लास और माता के वात्सल्य का पुरुषों द्वारा किया हुआ वर्णन Second hand ही रहेगा, क्योंकि पुरुष इन उदात्त अवस्थाओं का अनुभव कर ही नहीं सकते।

प्रेम के क्षेत्र में स्त्रियों का वर्चस्व इससे भी सिद्ध है कि प्रेम के पुजारी पुरुष-कवियों और अधिकांश भक्तों ने प्रेम के आनंदातिरेक में डूब-कर अपने को इष्टदेव की प्रेयसी के रूप में पाया है। वल्लभ-संप्रदाय के कवि, भक्त-कवि रूपकला तथा बनीठनीजी इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

काव्य को शास्त्रकारों ने रसात्मक वचन माना है। किसी-किसी ने उसे शब्द-संगीत भी कहा है। काव्य का ध्वनि-संगीत से भी घनिष्ठ संबंध है, इस दृष्टि से देखा जाय, तो कविता के क्षेत्र में स्त्रियों को एक स्वाभाविक सुविधा प्राप्त है, जो पुरुषों को नहीं है। स्त्रियों के स्वभाव की कोमलता उनके शब्द और वाणी में व्याप्त है। कर्ण-कटु शब्दों को मधुर तथा सरल बनाने का कार्य अवश्य ही स्त्रियों ने किया होगा। संस्कृत-साहित्य में इसका प्रचुर प्रमाण है। शकुंतला को उनकी सखी सउंदला कहती है। कर्कश श,

क, और त के स्थान पर स, ड और द रखकर सउंदला की मधुरिमा उत्पन्न कर दी । इसी प्रकार कृष्ण से कन्हैया कहनेवाली भी कोई व्रज-बाला ही रही होगी । घर के अंदर की बोल-चाल की भाषा में भी पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की भाषा में अधिक सरलता और कोमलता रहती है । पुरुषों की भाषा में अधिकतर पांडित्य पाया जाता है, और स्त्रियों की भाषा में स्वाभाविक सरलता । यह हमारा प्रतिदिन का अनुभव है, और यही बात पुरुष तथा स्त्रियों की कविताओं की तुलना करने से प्रकट होती है । उदाहरणार्थ कविवर श्रीधर पाठक की 'सांध्य अटन'-शीर्षक रचना की कुछ पंक्तियाँ लीजिए—

सांध्य अटन

"विजन वन-प्रांत था, प्रकृति-मुख शांत था ;
अटन का समय था, रजनि का उदय था ।
प्रसव के काल की लालिमा में लिहसा—
बाल-शशि व्योम की ओर था आ रहा ।
सद्य उत्फुल्ल अरविंद - निभ नील सुवि-
शाल नभ - वक्ष पर जा रहा था चढ़ा ।
दिव्य दिङ्नारि की गोद का लाल-सा
था प्रखर भूख की यातना से ग्रसित ।
पारखा रक्त-रस-लिप्सु अन्वेषणा—
युक्त या क्रीड़नासक्त, मृगराज - शिशु ,
या अतिव क्रोध-संतप्त जर्मन्य नृप-
सा; कि या अभ्र-बैलून-उर में छिपा ।"

या प्रिय-प्रवास की प्रारंभिक पंक्तियों को ही ले लीजिए—

"दिवस का अवसान समीप था ,
गगन था कुछ लोहित हो चला ;
तरु-शिखा पर थी अब राजती—
कमलिनी - कुल - वल्लभ की प्रभा ।
विपिन बीच विहंगम-वृंद का
कल निनाद विवर्धित था हुआ ;
ध्वनिमयी विविधा विहगावली
उड़ रही नभ - मंडल - मध्य थी ।
अधिक और हुई नभ-लालिमा,
दस दिशा अनुरंजित हो गईं ;
सकल पादप - पुंज - हरीतिमा
अरुणिमा विनिमज्जित-सी हुई ।"

अब दो स्त्री-कवियों को लीजिए—

यदि तुम आ जाते एक बार,
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग ।
गाता प्राणों का तार - तार,
अनुराग-भरा उन्माद-राग ;
आँसू लेते वे पद पखार,
यदि तुम आ जाते एक बार ।
हँस उठते पल में आर्द्र नैन,
धुल जाता ओठों से विषाद ;
छा जाता जीवन में वसंत,
लुट जाता चिर-संचित विषाद ;
आँखें देतीं सर्वस्व वार,
यदि तुम आ जाते एक बार ।
(महादेवी वर्मा)

ओ देश-प्रेम के मतवाले, मत प्रेम-प्रेम कह इतराना ।
जिसमें लालसा प्रधान नहीं,
वह प्रेम नहीं, वह भक्ति नहीं ;
जो सहम उठे बाधाओं से ,
वह वीर-हृदय की शक्ति नहीं ।
विचलित हो माया-जालों से—
त्यागी की पूर्ण विरक्ति नहीं;
यदि स्वारथ का लवलेश रहा ,
माता की वह अनुरक्ति नहीं ।
दर्शन पा आगे बढ़ हँसकर श्रीचरणों पर बलि हो जाना ;
ओ देश-प्रेम के मतवाले, मत प्रेम-प्रेम कह इतराना ।
(तोरनदेवी 'लली')

इसलिये मैं तो कहूँगी कि कम-से-कम भाषा के विषय में स्त्री-कवियों को पुरुषों का अनुकरण नहीं करना चाहिए। कविता का जीवन जितना भाव में, उतना ही भाषा में भी रहता है। यदि भाषा जटिल हो जाय, तो कविता का आधा आनंद जाता रहता है। इसीलिये साहित्य-मर्मज्ञों ने कविता में प्रसाद-गुण का होना अत्यंत आवश्यक बतलाया है। थोड़े-से शब्दों में किसी भाव या वस्तु का चित्र खींच देना ही प्रसाद-गुण है। इस संबंध में उर्दू के कवि प्रशंसा के पात्र हैं। सीधी-सादी भाषा में वह बड़ी गहरी बात कह जाते हैं। उदाहरण के लिये—

शाम ही से बुझा-सा रहता है;
दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिस का।
(मीर)

जान दी, दी हुई उसी की थी;
हक़ तो यह है कि हक़ अदा न हुआ।
(ग़ालिब)

कविता हृदय की भाषा है, उसके लिये पांडित्य की आवश्यकता नहीं है। यह सब कहने से मेरा तात्पर्य यह नहीं कि भाषा के सौष्ठव की ओर ध्यान ही न दिया जाय, पर मेरा मतलब यह है कि भाषा को अस्वाभाविक न बना दिया जाय, अन्यथा जन-साधारण की भाषा और साहित्य की भाषा में इतना अधिक अंतर हो जायगा कि जन-साधारण हमारे साहित्य को समझ ही न सकेगा, जैसा संस्कृत और व्रज-भाषा के साहित्य के संबंध में हुआ।

भाषा को मनोहारिणी बनाने और अपनी तुक मिलाने के लिये शब्दों की हत्या करना भी उचित नहीं है, जैसा व्रज-भाषा के कवियों ने किया है। वीर-रस का वर्णन करते समय उन्होंने शब्दों को ठोंक-पीटकर बड़ा विकट बना दिया। जैसे—

सोहैं अस्त्र ओढ़ें जे न ओढ़ें सीस संगर की,
लंगर लँगूर उच्च ओज के अतंका में;
कहैं पद्माकर त्यों हुंकरत फुंकरत,
फैलत फलात फाल बाँधत फलंका में;
आगे रघुबीर कै समीर के तनै के संग,
तारी दै तड़ाकतड़ा तड़के तमंका में;
संका दै दसानन को हंका दै सुबंका बीर,
डंका दै विजय को कपि कूद परयो लंका में।
(पद्माकर)

रोष करि बाण बहु भाँति लव छंडियो;
एक ध्वज, सूत युग, तीनि रथ खंडियो।
शस्त्र दशरत्थ-सुत अस्त्र कर जो धरै;
ताहि सिय-पुत्र तिल-तूल-सम खंडरै॥
(केशव)

दिल्लिय दलन दबाय करि सिव सरजा निरसंक;
लूटि लियो सूरति सहर बंक करि अति डंक।
बंक करि अति डंक करि अस संकक्कुलि खल;
सोच चकित भरोच्चलिय विमोच्चख जल।
तट्टइमन कट्टिक सोइ रट्टिल्लिय;
सद्दिसि दिसि भद्दवि भइ रद्दिल्लिय।
(भूषण)

और साधारण प्रसंगों पर शब्दों को तोड़-मरोड़कर कुछ-का-कुछ कर दिया, जैसे राजा को राव, राऊ, राई, राया, राय इत्यादि। खड़ी बोली की कविता में भी किसी-किसी ने भाषा की हत्या की है। मैं उनके उदाहरण देकर लेखकों के चित्त को नहीं दुखाना चाहती। मैं इस संबंध में अपनी लेखिका बहनों को सावधान करके इस प्रसंग को समाप्त करती हूँ।

मैं यह जानती हूँ कि स्त्रियों के प्राचीन साहित्य में ऊँची उठान नहीं थी, परंतु आधुनि

काल में श्रीमहादेवी वर्मा, श्रीतोरनदेवी 'लली' और श्रीरामेश्वरीदेवी 'चकोरी' के उदय ने एक नया युग चमका दिया है, जो बहुत ही उज्ज्वल और आशा-पूर्ण है। मैंने यह नाम केवल उदाहरण के लिये दिए हैं, इनके अतिरिक्त जो दूसरी साहित्य-सेविकाएँ हैं, वे भी कम उल्लेखनीय नहीं हैं।

मेरा विश्वास है कि यह कवि-सम्मेलन लेखिकाओं को नया प्रोत्साहन देगा; और हिंदी के इस निर्माण-युग में स्त्रियों की सोई हुई प्रतिभा को जाग्रत् करने में सहायक होगा। अंत में मैं इस कवि-सम्मेलन की सफलता के लिये ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ।

गीत

[श्रीयुत कुँवर चंद्रप्रकाशसिंह]

करुण कितना प्रणय !
सकल सुख-शृंगार का कुछ आँसुओं में लय !
कामनाओं की चिता बन
जली मैं, अनुदिन निपीड़न
किन कठिन हाथों हुआ सखि !
हृदय का यह क्रय !
सतत छलनामयि शुभाशा,
वेदना ही शेष भाषा,
दृग्ध-अंतर रह गया कुछ
सुकृति-स्मृति-संचय ।
ताप से सब कुछ गया गल,
शून्य ही अवशेष केवल,
रोकता रे ! क्यों खड़ा पथ ।
निठुर नील निलय ।

विटामिन

[श्रीरमेशप्रसाद बी० एस्-सी०]



सन् १९१४ ई० के पूर्व तक भोजन-संबंधी हमारी जो धारणा थी, वह अब न रही। इस समय हमारे भोजन पदार्थों में विटामिन (जीवन-रसायन) का होना आवश्यक माना जाता है। किंतु पहले के वैज्ञानिकों का विचार था कि मनुष्यों के जीवन-धारण करने के लिये भोजन-द्रव्यों में माँड (Carbo hydrates), नेत्रजन (Proteins), चर्बी (Fats) और नमक (salts) का रहना अनिवार्य है। पीछे से पता चला कि केवल इन्हीं पदार्थों से भोजन-संबंधी हमारी सारी आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं। भोजन में एक प्रकार के द्रव्य-विशेष के अभाव से हमारे स्वास्थ्य और शारीरिक उन्नति में व्याघात पहुँचता है। इस द्रव्य-विशेष को जीवन-रसायन या विटामिन कहते हैं। इसके न मिलने से हम विशेष प्रकार की बीमारियों से पीड़ित हो जाते हैं।

यदि कोई मुझसे पूछे कि वह कौन-सा एक ही पदार्थ है, जिस पर मनुष्य का स्वास्थ्य निर्भर करता है, तो मैं कहूँगा, विटामिन। यह पदार्थ हमारे दैनिक भोजन की वस्तुओं में पाया जाता है। विटामिन शब्द को हम गत दस वर्षों से सुनते आते हैं, किंतु इसके विषय में सर्व-साधारण का ज्ञान अभी परिमित है। मैं इस लेख में इस आवश्यक विषय पर यथासाध्य प्रकाश डालने की चेष्टा करूँगा।

विटामिन पाँच हैं—A, B, C, D और E। इनमें अंतिम के विषय में हम अभी तक बहुत कम जान सके हैं। किंतु यह भी अन्य चारो विटामिनों-जैसा ही भोजन का एक आवश्यक अंग है। हमारे दैनिक भोजन में यदि इनमें से किसी एक की कमी हो जाय, और यह कमी यदि अन्य किसी उपाय द्वारा दूर न की जाय, तो अंत में बड़ा भयानक फल हो सकता है। हमारा किसी असाध्य रोग के चंगुल में फँस जाना और अंत में मृत्यु-मुख में पड़ जाना कोई असंभव बात नहीं है। इसलिये यह उचित है कि विटामिनों के विषय में हम कुछ जानकारी प्राप्त कर लें, तथा उन वस्तुओं को भी जान लें, जिनमें ये पाए जाते हैं, ताकि हमारा शरीर ठीक-ठीक पोषित होता रहे।

विटामिनों की विशद व्याख्या करते समय मैं B को A के पहले रक्खूँगा। क्योंकि B का आविष्कार पहले हुआ था। इस विटामिन के अभाव से बहुत-से लोग बीमार पड़े और अनेकों मृत्यु हुई हैं। प्रायः ४० वर्ष होते हैं कि विटामिन B के अभाव से होनेवाले रोग—वेरीवेरी—का पता सर्व-साधारण को लगा। जापान और पूर्वी चीन के लोग पहलेपहल इस रोग से आक्रांत हुए। एक समय जापानी सेना और नौ-सेना के प्रायः आधे से अधिक मनुष्य वेरीवेरी के शिकार हुए थे। हज़ारों मनुष्यों की मृत्यु हुई। संसार के प्रायः प्रत्येक हिस्से से वैज्ञानिक इस रोग का कारण ढूँढ़ निकालने के लिये जापान और चीन की ओर दौड़ पड़े। कबूतरों को सफ़ेद (Polished) चावल खिलाकर यह पता लगाया गया कि वे भी वेरीवेरी रोग से पीड़ित हो जाते हैं। इसके साथ ही यह भी पता लगा कि लाल चावल का धोवन और कण (ऊपर का लाल हिस्सा), जो दूर कर दिया गया था, खिलाने से कबूतर भले-चंगे हो गए। इसी प्रकार मनुष्य भी सफ़ेद चावल के बदले लाल चावल खिलाकर नीरोग किए गए। तब संसार को ज्ञात हुआ कि वेरीवेरी का प्रधान कारण सफ़ेद चावल का खाना है।

इस सिद्धांत का ज़ोरों से विरोध भी हुआ। विरोधियों का कहना था कि पूर्व देश-वासी हज़ारों वर्ष से चावल खाते आ रहे हैं, यह क्योंकर संभव है कि चावल ही एक सद्योजात रोग का कारण हो। इसका उत्तर यह दिया गया कि इस भाग के निवासियों ने इधर चावल-संबंधी भोजन में बहुत कुछ परिवर्तन कर डाला है। वे पहले जहाँ बिना छाँटा हुआ या कम छाँटा हुआ लाल चावल खाते थे, वहाँ वे बीमारी फैलने के कुछ दिन पहले से सफ़ेद चावल खाने लगे थे। इसके अतिरिक्त पुनः लाल चावल के व्यवहार से उन देशों की अवस्था, जहाँ यह रोग फैल रहा था, सर्वथा बदल गई थी। इससे प्रमाणित होता है कि चावल के दोष ही से यह बीमारी उत्पन्न होती है। अस्तु। आजकल उपर्युक्त देशों में बेरीबेरी के बहुत कम रोगी देख पड़ते हैं। बहुत-से पूर्वी देशों में अब सफ़ेद चावल का बेचना क़ानूनन् जुर्म माना जाने लगा है।

बेरीबेरी प्रधानतः स्नायुओं की (nervous) बीमारी है। शुरू में स्नायुओं में असह्य पीड़ा होती है। इसके बाद समय पाकर कुछ मांस-पेशियों को लक़वा हो जाता है। लक़वा धीरे-धीरे बढ़ता जाता है, और अंत में मृत्यु हो जाती है।

बेरीबेरी रोग के आविष्कार के बाद वैज्ञानिक सोचने लगे कि भोजन में क्या ऐसे और भी पदार्थ हैं, जिनके अभाव से अन्य बीमारियाँ भी पैदा होती हैं। कुछ दिनों बाद एक और बीमारी—पेलाग्रा—का पता लगा, जो विटामिन B के ही अभाव से पैदा होती है। इसमें स्नायु और मस्तिष्क दोनो आक्रांत होते हैं। त्वचा लाल हो जाती है, पाचन-क्रिया में बाधा पड़ने लगती है, और कई प्रकार की मानसिक बीमारियाँ पैदा होने लगती हैं। अंत में मनुष्य पागल हो जाता है। यह बीमारी स्पेन, इटाली और संयुक्त-राज्य अमेरिका के दक्षिण भाग में बहुत फैली हुई है। खोज से पता लगा कि पेलाग्रा भोजन में विटामिन B की कमी के कारण ही होता है, और आरंभ में उपयुक्त भोजन देकर ही आराम किया जा सकता है।

विटामिन B कई पदार्थों के संयोग से बना है। जिसमें किसी प्रकार की गड़बड़ी उपस्थित न हो, इस कारण इसे विटामिन B के नाम से ही पुकारते हैं। इसके तीन कार्य हैं—(१) पेलाग्रा को रोकना, (२) वृद्धि-करण (growth-promoting) और (३) स्नायु-पुष्टि-करण (nerve-nourshing)। भोजन से विटामिन B को निकाल देने से हमारे शरीर में इसका अभाव जिस शीघ्रता से खटकने लगता है, उससे पता लगता है कि शरीर इस विटामिन का बहुत थोड़ा अंश संचय करने में सक्षम है।

सन् १९१५ ई० में मैककालम और डेविस ने विटामिन A का आविष्कार किया। प्रयोग-शाला में रक्खे हुए पशुओं के भोजन से मक्खन और अन्य चर्बी-जातीय पदार्थों को निकालकर देखा गया कि उन्हें आँखों की बीमारी हो गई, और अंत में वे अंधे हो गए। उन लोगों ने यह भी पता लगाया कि आँख से पीड़ित पशु को, प्रारंभिक अवस्था में, यदि उपयुक्त भोजन दिया जाय, तो वह रोग-रहित हो सकता है। भोजन-संबंधी इन खोजों से एक और बात का पता चला। जिन रक्षक पदार्थों (Protective elements) का अध्ययन जारी था, वे कुछ ताज़े फलों, तरकारियों और तरकारियों की हरी पत्तियों में भी पाए जाते हैं। वैज्ञानिकों ने यह भी जान पाया कि इस पदार्थ के अभाव से केवल आँखें ही विकृत नहीं होतीं, प्रत्युत शरीर के अन्य हिस्से भी पीड़ित हो जाते हैं, और यह बीमारी छूत की बीमारी का रूप धारण कर लेती है।

नेत्र-रक्षक विटामिन विटामिन A कहलाता है। अब यह सभी छूतों का प्रधान रक्षक माना जाने लगा है। साधारण सर्दी (ज़ुकाम), जिसमें नाक, गला और साँस-नली आक्रांत होती हैं, से बचाने के लिये यह अद्वितीय है।

भविष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये शरीर विटामिन A काफ़ी अंश में संचय कर रखने की शक्ति रखता है। जीवन के आरंभिक काल—बचपन—में इसे यथेष्ट जुटा रखने से मनुष्य पीछे की सब प्रकार की छूतों से बचा रह सकता है। यही कारण है कि डॉक्टर लड़कों को यथेष्ट विटामिन A खिलाने की सलाह दिया करते हैं। गाय के ताज़े दूध, मक्खन आदि में यह पाया जाता है।

विटामिन C चर्म-रोग (Scurvy) को रोकता है। मानव-इतिहास में स्कर्वी एक प्राचीन चर्म-रोग माना जाता है। पहलेपहल यह रोग उन नाविकों को हुआ, जो दूर तक समुद्र-यात्रा के लिये निकले, और जिन्हें अधिक दिनों तक विना ताज़े फल या तरकारियों के रह जाना पड़ा। सौ वर्ष से अधिक हुए, अँगरेज़ों ने अपने नाविकों को अन्य भोजन-पदार्थों के साथ नीबू भी देना आरंभ किया। नीबू में स्कर्वी-रोग रोकने का अद्वितीय गुण है। संतरा और कच्चे आलू में भी यह शक्ति पाई गई है। वैद्यक-शास्त्र-विशारदों ने सिद्ध किया है कि सभी खट्टे फलों, कुछ कच्ची तरकारियों तथा कुछ हरी भाजियों (सागों) में भी स्कर्वी नष्ट करने की शक्ति है।

यद्यपि स्कर्वी प्रधानतः समुद्र-यात्रियों का रोग है, परंतु भूमि पर के मनुष्यों में भी इसके रोगी पाए जाते हैं। ऐसे वे ही लोग होते हैं, जो यथेष्ट ताज़े फल या हरी तरकारी नहीं खाते। हमारा शरीर विटामिन C संचय कर रखने की बहुत थोड़ी ही शक्ति रखता है, क्योंकि गरमी और oxidation से यह तुरत नष्ट हो जाता है, इसलिये फल, तरकारी, भाजी आदि को यथासंभव उनकी प्रकृतावस्था में ही व्यवहार करना चाहिए। यदि उन्हें उबालना ही पड़े, तो छिलके के साथ और उसी हद तक, जिसके विना काम न चले, उबालना चाहिए।

पशुओं के लिये विटामिन D भी अत्यावश्यक पदार्थ है। इससे स्वस्थ हड्डियाँ बनती हैं। भोजन से तथा सूर्य-प्रकाश में नंगे बदन रहने से हमें यह विटामिन प्राप्त होता है। पिछले दिनों जब मनुष्य कपड़े के दास नहीं थे, और अधिक समय नग्न या अर्ध-नग्नावस्था में प्रकृति की क्रोड़ में बिताया करते थे, उस समय यह विटामिन उन्हें सूर्य-किरण से ही यथेष्ट परिमाण में मिल जाया करता था। इधर कई पीढ़ियों से, जब से मनुष्य अपने सारे बदन को कपड़ों से ढक रखने लगे हैं, हमें सूर्य से इस बहु-मूल्य पदार्थ का मिलना असंभव-सा हो गया है, और इन्हीं दिनों में मनुष्यों की शारीरिक अवनति भी होने लगी है। आजकल के बालकों में प्रायः ८० प्रति सैकड़े ऐसे मिलेंगे, जो हड्डियों की कमज़ोरी के कारण 'रिकेट्स' रोग से पीड़ित हैं। ट्यूबरक्लुसिस भी आजकल एक साधारण बीमारी होती जा रही है। विटामिन D की कमी ही इसका कारण है। वे सभी दाँत और मुँह के रोग, जिन्हें 'पायोरिया' के नाम से पुकारते हैं, कुछ अंशों में विटामिन D के अभाव ही से होते हैं। केवल विटामिन D ही को हम लोग रासायनिक द्रव्य के रूप में जानते हैं। इसका रासायनिक नाम अर्गोस्टेरोल है। यह निष्क्रिय (inert) है। परंतु यदि इसे कुछ देर तक सूर्य-प्रकाश में या तीव्र-बैंगनी किरण (ultra Violet rays) में रख छोड़ें, तो इसमें कुछ परिवर्तन हो जाता है, और विटामन D की सृष्टि होती है।

उन भोजन-पदार्थों की संख्या बहुत ही कम है, जिनमें विटामिन D मिलता है। इसके अतिरिक्त उन पदार्थों में सब समय इसका परिमाण एक-सा रहता भी नहीं है। यह अंडे की ज़र्दी, दूध और मक्खन में पाया जाता है। जिन दिनों पशु धूप में चरते फिरते हैं, उन दिनों अंडे और दूध में अधिक विटामिन D पाया जाता है। जिन दिनों धूप की कमी होती है, उन दिनों के पशु-जात पदार्थों में इसका अभाव-सा होता है।

गत कई वर्षों से इस बात की परीक्षा चल रही है

कि नाजों को तीव्र बैंगनी किरण (ultra violet rays) में रख छोड़ने से उनमें विटामिन D की वृद्धि होती है या नहीं। पता लगा है कि ऐसा करने से नाज में जो दूसरे विटामिन होते हैं, वे आंशिक या संपूर्ण रूप से नष्ट हो जाते हैं। इससे इस प्रक्रिया से लाभ के बदले हानि ही अधिक है। कॉड तथा अन्य कई मछलियों के तेलों में यह विटामिन मिलता है। किंतु उन्हें भोजन न कहकर दवा कहना अधिक न्याय-संगत होगा।

यह लिखना अनावश्यक है कि ट्युबरक्लुसिस और रिकेट्स को रोकने की अव्यर्थ शक्ति विटामिन D में है।

विटामिन D यथेष्ट समय तक शरीर में संचित रहता है। गरमी के दिनों में हमारा शरीर सूर्य-प्रकाश से जो विटामिन ले रखता है, वही बरसात के सूर्य-रहित दिनों में भी काम देता है।

विटामिन E का ज्ञान हमें तब हुआ, जब प्रयोग-शाला में रक्खे हुए पशु, सभी ज्ञात विटामिन यथेष्ट खिलाए जाने पर भी, संतानोत्पत्ति की शक्ति से हीन हो गए। परीक्षा द्वारा जाना गया कि कुछ ऐसे विशेष प्रकार के भोजन-पदार्थ हैं, जिनका अभाव यह अवस्था पैदा कर देता है। इसे भोजन में शामिल कर देने से यह त्रुटि जाती रही। गेहूँ में विटामिन E सबसे अधिक पाया जाता है। इसके बाद नंबर आता है दूध-युक्त एक प्रकार के फल (Lettuce) का। इसकी हरी पत्तियों में विटामिन की मात्रा अधिक होती है। किंतु जो पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं, उनमें सबसे कम विटामिन होता है। लेटुस के फल से पत्तियों में अधिक विटामिन पाया गया है। और भी कई हरी पत्तियों और नाजों में यह पदार्थ मिलता है। यह विटामिन कुछ हद तक शरीर में संचित रहता है।

किसी पशु को उपवास कराकर मार सकते हैं, किंतु उसे जीवित रखने के लिये जिन पदार्थों की आवश्यकता है, उनमें से किसी एक को रोककर भी हम उसे दूसरे लोक का रास्ता दिखला सकते हैं। इसके अतिरिक्त समुचित काम करने के लिये शारीरिक जीवित कोषों (Organism) को कई प्रकार के रासायनिक द्रव्यों की आवश्यकता होती है। इनमें सर्व-प्रधान विटामिन है।

विटामिन की कमी से मनुष्यों की रोग रोकने की शक्ति घट जाती है। वर्षों से मनुष्य ऐसे भोजन करते आए हैं, जिनसे वे रोगों से अपने को बचा लेते हैं। यदि ऐसा नहीं होता, तो मनुष्य-जाति अब तक लुप्तप्राय हो गई होती। हमारे पूर्वजों का शरीर कैसा स्वस्थ, शक्तिशाली, दृढ़, नीरोग और सुंदर हुआ करता था। उनका मस्तिष्क कितना उन्नत और तीव्र था। आज-कल भी जो मनुष्य या पशु प्राकृतिक अवस्था में रहते हैं, उनका स्वास्थ्य परले दर्जे का होता है। यदि हम भी स्वाभाविक जीवन व्यतीत करते होते, तो हमारा शारीरिक बल 'गोरिलो'-जैसा होता। लोग कह सकते हैं कि सभ्य-समय में शारीरिक बल की आवश्यकता न रही, किंतु जब हम सोचते हैं कि रोगों के हम कितनी आसानी से शिकार बन रहे हैं, जब हम देखते हैं कि दिन-प्रति-दिन रोगों और रोगियों की संख्या में वृद्धि हो रही है, जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि सबल शरीर में ही उन्नत मस्तिष्क निवास करता है, तब हमें शारीरिक शक्ति का महत्त्व ज्ञात होने लगता है। जीवन का यदि सच्चा आनंद उठाना है, तो शारीरिक शक्ति को बढ़ाना चाहिए, और इसका एक प्रधान उपाय उचित भोजन है।

रूप और ध्वनि

[श्रीहर्षवर्धन नैथाणी बी-एस्० सी० 'शलैंद्र']



र तक मृग का पीछा करने के कारण राजकुमार साथियों से बिछुड़ गया था, परिश्रम से देह टूट रही थी, और वह घोड़ा हाँफ रहा था। जंगल तो था ही, स्वच्छ जल का एक सोता मिला। वहीं कुछ देर विश्राम करना विचारा। घोड़े को पानी पिलाकर एक वृक्ष की झुकी हुई शाखा से बाँध दिया, और स्वयं भी कुछ जल-पान करने के बाद राजकुमार एक दूसरे पेड़ का सहारा लेकर विश्राम करने लगा। विपिन की मंद और शीतल वायु राजकुमार की पसीने से भीगी हुई देह का स्पर्श करने लगी। उस स्वर्गीय आनंद का साथ चैतन्यता कब तक दे सकती थी? पलकें भारी-सी होने लगीं, और राजकुमार अपने को भूलने लगा। शीघ्र ही निद्रादेवी ने अपना पूर्ण अंचल फैला दिया, और वह उसमें बेहोश होकर सो गया।

अचानक राजकुमार की नींद खुली। वह अभी यह भी निश्चय न कर पाया था कि सोते-सोते कितना समय बीत गया। अभी आँखों को मलना ही शुरू किया था कि कहीं से वीणा की एक धीमी और मधुर ध्वनि सुनाई दी। धीरे-धीरे वह स्वर निकट आने लगा। अब राजकुमार ने देखा, एक रूपवती बालिका हाथों में वीणा लिए हुए, उसे बजाती हुई एक ओर से आई, दूसरी ओर को चली गई। सूर्य और चंद्र की भाँति जिस प्रकार सुस्वर एक दिशा में धीरे-धीरे उदय हुआ था, ठीक उसी तरह दूसरी दिशा में धीमा पड़ने लगा, और फिर लुप्त हो गया। परंतु हाँ, उसके आने पर राजकुमार जग तो गया था, चले जाने पर भी जगता ही रह गया। यदि एक ओर उस ध्वनि को क्षितिज ने अपनाया, तो दूसरी ओर उसे राजकुमार के हृदय में भी स्थान मिल गया।

घोड़ा भी शायद इस खेल के मर्म को समझ गया। मैं सेवा में तैयार हूँ, यह बतलाने के लिये कुछ हिनहिना उठा। अपने उस केवल सहायक का शब्द सुनकर राजकुमार की जाग्रत् निद्रा भी भंग हो गई। विस्मय में तो था ही। इस घोर जंगल में यह रूप और ध्वनि कैसे? स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ। विचार का मस्तिष्क खोला, परंतु आ गई व्यग्रता। ठीक से कुछ सोच भी न पाया था कि जिस दिशा में वह स्वर अंतर्धान हुआ, उसी ओर पैदल ही चल दिया। घोड़ा फिर हिनहिना उठा। राजकुमार लौट पड़ा। आकर पशु को दो-तीन थपकियाँ दीं, और अब उस पर सवार होकर रवाना हुआ।

भगवान् भास्कर पश्चिम दिशा में निमग्न हो रहे थे। प्रकाश धीमा पड़ने लगा, और इसके कुछ ही देर बाद रात छा गई। घनघोर जंगल में पथ का कहीं नाम और निशान भी दिखाई न देता था। भटकना व्यर्थ था, परंतु विचार करने की शक्ति थी ही किसमें, या यों कहिए, विचार करना ही कौन चाहता था? दिशा और काल का ज्ञान कुछ न रहा। बहुत देर इधर-उधर भटकने के बाद राजकुमार ने देखा, भूमि पर पड़ी हुई कोई चीज़ चमक रही है। घोड़ा उसे देखकर रुक गया, और शायद पहचान भी गया। राजकुमार भूमि पर आया, तो तारों के मंद प्रकाश में क्या देखता है कि वह उसकी तलवार थी, और चमकनेवाले उसकी मूठ पर जड़े हुए हीरे थे, जिसे वह वहीं भूल गया था। अब ज्ञात हुआ कि घूम-घामकर वह अपने पूर्व-परिचित स्थान पर

आ गया है। हताश होकर बैठ गया। घोड़े को बाँधने का भी ध्यान न रहा। परंतु स्वामि-भक्त पशु अपने आप अपने स्थान पर आकर चुपचाप खड़ा हो गया।

सुख और दुःख मन की अवस्था पर निर्भर होते हैं। जिस स्थान पर बैठते ही राजकुमार को नींद आ गई थी, वहाँ अब घंटों में भी नींद का नाम न था। परिश्रम अब और अधिक हो चुका था। समय भी काफ़ी बीत गया था। और सब बातें वही थीं, परंतु राजकुमार जगा ही हुआ था। परिश्रम की भी एक सीमा होती है। मस्तिष्क अब वहाँ तक पहुँच चुका था। मन के कोड़े अब उसे आगे बढ़ाने में असमर्थ थे। लाचार अनिश्चित निद्रा को बुलाना ही पड़ा। परंतु वह भी उसे अपने में अनुरक्त न पाकर बार-बार चली जाती थी। परंतु आख़िरकार कुछ समय के लिये ठहर ही गई।

राजकुमार ने अर्ध-निद्रित अवस्था में कुछ मनुष्यों को अपने निकट गुनगुनाते हुए सुना। वह जग पड़ा। आँखें खोलीं, तो क्या देखता है कि एक वृद्ध तपस्वी अपने शिष्यों से उसकी ओर संकेत करके कह रहे हैं—"यही वह पागल राजकुमार है, जिसे कर्तव्य का मूल्य नहीं मालूम। यह कल से झूठी अनुरक्तता में पड़ा हुआ अपने सब धर्मों को भूलकर इधर-उधर मारा-मारा फिर रहा है।" राजकुमार को अब पूरा होश आया। तुरंत खड़े होकर उसने महात्मा को प्रणाम किया। महात्मा ने भी आशीर्वाद देकर उससे कहा—"राजकुमार! तुम्हें क्या हो गया है? तुम्हारे साथी तुम्हें ढूँढ रहे होंगे। सोचो तो अपने राज्य के उन दीनों की दशा, जो नित्य तुम्हारे फाटक पर तुमसे न्याय की भिक्षा माँगने आते थे। उन सताए हुए जनों का हृदय इस समय क्या कह रहा होगा? राजमुकुट धारण करने से पहले जनता के सम्मुख तुमने जो शपथ ली थी, उसे कैसे भूल गए हो? जाओ! इस ओर तुम्हारी राजधानी का रास्ता है। वहीं जाओ। अब विलंब करना ठीक नहीं।"

न-मालूम क्या कारण था कि राजकुमार महात्मा की आज्ञा का उल्लंघन न कर सका। चुपचाप उन्हें प्रणामकर घोड़े पर सवार हुआ, और उनकी बताई हुई दिशा में चल दिया। कुछ ही देर में राजकुमार महात्मा की नज़रों से ओझल हो गया। मन में हज़ारों तरंगें उठ रही थीं। परंतु महात्मा का भय उन्हें अपनी सीमा को पार न करने देता था। वे उसी चट्टान से टकराकर विलीन-सी हो जाती थीं। यह उनके उपदेश का फल न था। परंतु उनकी किसी अज्ञात शक्ति का प्रभाव था, जिसके प्रतिकूल जाने में राजकुमार की हिम्मत न होती थी। उपदेश को तो विचार-शक्ति ग्रहण करती है, और उसे वह कुछ खो-सा चुका था।

कुछ दूर चले जाने पर राजकुमार ने अपनी राजधानी का रास्ता छोड़ एक दूसरा ही रास्ता पकड़ लिया। यदि उसे घर की ओर जाना अच्छा न लगता था, तो यह अज्ञात पथ क्यों भाया? इसका उत्तर देना कठिन है। उधर जाने से कौन-सा अभीष्ट सिद्ध होगा, यह उसका पागलपन ही जाने।

प्रायः ऐसा हुआ करता है कि मनुष्य किसी काम को विना ध्येय के कर बैठता है। परंतु अंत में उसमें कोई रहस्य निकल आता है।

चलते-चलते राजकुमार एक नगर में जा पहुँचा। यहाँ का राजा उसके पिता का मित्र था, और उसका पुत्र उसका भी अनन्य मित्र था। असहाय को सहायक मिला। दोनो मित्रों में मुलाक़ात हुई। एक ने कहा—"भाई, और बातें तो फिर होती रहेंगी। पहले यह बताओ, तुम आज यहाँ कैसे पहुँच गए, और फिर इस प्रकार थके-माँदे? कहो, सब कुशल तो है?" दूसरे ने उत्तर दिया—"पहले और बातें पूछ लो, फिर इसका उत्तर मिलेगा।" उसने फिर पूछा—"तुम्हारा मुख इतना मलिन क्यों हो रहा है भाई, बताओ, सब कुशल तो है?" उत्तर मिला—"कुशल भी सब है, और मुख भी मलिन नहीं, केवल रास्ते की थकावट का असर है।"

मित्र ने कहा—"अच्छा, तो आप आराम कर लें, फिर बातें बाद को होती रहेंगी।"

राजकुमार फिर चिंता में निमग्न हो गया। कई दिन तक वहीं रहने पर भी उसने अपने दिल का हाल किसी से न बताया। सबको यही कहकर टाल दिया कि साथियों से आखेट में बिछुड़ और फिर पथ भूल जाने के कारण आ गया।

एक दिन वहाँ से भी बिना किसी से कुछ कहे चल दिया। अब की बेर उसने यह ठान ली थी कि बिना उस रूप का अवलोकन किए, और उस ध्वनि को सुने न लौटूँगा।

रास्ता पूरा करने पर वह उसी जंगल में पहुँच गया। घोड़े को उसने एक जगह बाँध दिया, और स्वयं पैदल ही इधर-उधर घूमने लगा। अचानक पैर में ठोकर लगी, और भूमि पर गिर पड़ा। मस्तक पर सख़्त चोट आ गई, और बेहोश हो गया।

राजकुमार को होश आया, तो उसने उन्हीं महात्मा को अपने निकट खड़े पाया, जिनको उसने जंगल में पहले देखा था। महात्मा ने उसके घाव पर कोई दवाई लगा दी थी, और शायद इसी से उसको होश आया हो। उसने आँखें खोली ही थीं कि महात्मा बोल उठे—"राजकुमार, कहो, क्या चाहते हो?" राजकुमार से न रहा गया, उसने कहा—"भगवन्, वह रूप और वह ध्वनि।" महात्मा निस्तब्ध हो गए। उन्होंने सोचा था, शायद इसे अब अक़्ल आ गई हो, परंतु कुछ देर चुप रहकर फिर बोले—"राजकुमार, तुम अपने कर्तव्य को क्यों भूल रहे हो?" राजकुमार बीच ही में बोल उठा—"भगवन्, प्रेम........।"

यह सुनते ही महात्मा ने कहा—"प्रेम! प्रेम तुम नहीं जानते हो किसे कहते हैं? जो प्रेम मनुष्य को कर्तव्य-पथ से रोके, वह प्रेम नहीं, स्वार्थपरायणता है। यदि प्रेम सीखना चाहते हो, तो जाओ, अपने वृद्ध माता-पिता के पास, अपने दीन किसानों के पास, जो तुम्हें प्यार करते हैं। तुम्हारे लिये अपना सर्वस्व तजने को तैयार हैं। उनके प्रेम का प्रत्युत्तर न देकर चले हो तुम प्रेम को ढूँढ़ने? प्रेम! प्रेम तो बलिदान चाहता है, और वह भी निस्स्वार्थ बलिदान। प्रेम कर्तव्य-पथ का रोड़ा नहीं है।

"राजकुमार! तुम्हें मालूम है कि तुम्हारे राज्य पर शत्रु ने चढ़ाई कर दी है? जिस प्रजा के धन से तुम्हें इतना वैभव प्राप्त हुआ, उस पर अत्याचार हो रहा होगा; शायद तुम्हारे माता-पिता बंदी कर लिए गए हों। और, यह सब इसी कारण हुआ कि तुम अपने राज्य में न थे। बतलाओ, इस जीवन के पश्चात् तुम परम पिता जगदीश्वर को क्या मुँह दिखाओगे?"

राजकुमार की अब आँखें खुलीं। वह एकदम उठ बैठा। चलते-चलते ही महात्मा को प्रणाम किया, और घोड़े पर सवार होकर अपने राज्य की ओर रवाना हो गया। महात्मा ने भी उसको आशीर्वाद दिया, और फिर कुछ चिंतित तथा प्रसन्न मुख लेकर दूसरी ओर चल दिए।

बात-की-बात में राजकुमार जंगल को पार कर गया, और कुछ ही काल में अपने राज्य की सीमा के अंदर आ गया। यहाँ पर उसने कुछ देर के लिये घोड़ा रोका, तो क्या देखता है कि उसके कई गाँव शत्रुओं द्वारा जलाए जाकर श्मशान-से प्रतीत हो रहे हैं। कुछ पता चलाने के लिये वह एक गाँव में गया भी। वह सुनसान पड़ा हुआ था। बचे हुए दो-चार किसान उसे देखते ही भागने लगे। वह उनको पुकारना ही चाहता था कि एक वृद्ध किसान उसे पहचानकर ज़ोर-ज़ोर से सबको बुलाने लगा। किसान ने कहा—"अरे, यह तो हमारे राजकुमार हैं। क्यों भाग रहे हो? आओ, लौट आओ।"

अब तो सभी कृषक अपने-अपने छिपने के स्थानों से निकल पड़े, और उसे घेरकर खड़े हो गए। राजकुमार ने उनकी करुणा-जनक अवस्था देखी, और पूछा—"शत्रु ने तुम पर अत्याचार क्यों किया? तुमसे उसकी क्या शत्रुता थी?" उन्होंने उत्तर दिया—"महाराज, हम लोग आपके अतिरिक्त किसी का आधिपत्य स्वीकार करने को राज़ी न हुए,

बस, इसीलिये हमारी यह दशा कर दी गई।" ओफ़्! राजकुमार को प्रजा के प्रेम का अब पता चला। उसे याद हो आया कि जब वह जंगल को जा रहा था, इसी गाँव में किसानों का एक झुंड शाम को प्रसन्न होकर मत्त ध्वनि में उसकी जय के गीत गा रहा था। अब उससे न रहा गया, उसकी आँखों में आँसू भर आए, और वह एक दोषी की तरह रोने लगा। आसमान की तरफ़ नज़र उठाकर रोते हुए उसके मुँह से निकल पड़ा—"हा! ईश! क्या मैं अपने किसानों का वह प्रसन्न रूप और मत्त ध्वनि फिर भी कभी सुन पाऊँगा?"

इसी समय किसानों में से एक हाथ जोड़कर बोला—"नाथ! आप इतने विकल क्यों हो रहे हैं? आपके रहते हुए कोई हमसे हमारी प्रसन्नता नहीं छीन सकता। हम सब आपकी आज्ञा मानने को तैयार हैं। कहिए, क्या आज्ञा है?"

राजकुमार ने कहा—"मेरे प्यारे किसानो! तुम्हारा मुझ अभागे पर इतना प्रेम था, यह मुझे मालूम न था। मैं शीघ्र ही सेना एकत्रित करूँगा, और शत्रु को पराजित कर तुम्हें निर्भय बना दूँगा। आशा है, तुम्हारा यह सरल हृदय मेरे अपराध को तब तक के लिये क्षमा करेगा।" इतना कहकर राजकुमार आगे बढ़ गया।

किसानों ने उसे जाता हुआ देखकर एक स्वर में कहा—

"हमारे राजकुमार की जय हो! हमारे राजकुमार चिरंजीवी हों! हमारे महाराज की जय हो!"

❀ ❀ ❀

राजकुमार ने सेना एकत्रित की। घनघोर युद्ध हुआ। राजकुमार ने अपनी वीरता से शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिए। परंतु कहाँ उसके थोड़े-से अशिक्षित किसान, और कहाँ शत्रु की अपरिमित तथा सुसज्जित सेना। वह वीर कब तक लड़ता? अपने से दसगुने शत्रुओं का नाश करने पर भी विजय न हुई।

राजकुमार अंत तक लड़ता रहा। परंतु अचानक एक सख़्त चोट से घायल होकर गिर पड़ा। वह बेहोश हो गया। उसके मुँह से यही अंतिम शब्द निकले "हा जगदीश, मैं अपने किसानों को सुखी देख लेता, तो......।"

अपने नायक को गिरते हुए देख किसानों की भी हिम्मत टूट गई।

शत्रु को पूर्ण विजय प्राप्त हुई।

❀ ❀ ❀

राजकुमार को कुछ होश आया, तो कानों में उन्हीं महात्मा के शब्द सुनाई पड़े। महात्मा ने कहा—"माधुरी, ज़रा वीणा को एक लय तो सुनाओ।"

राजकुमार ने अधखुले नेत्रों से देखा, वह उन्हीं पूर्व-परिचित महात्मा की कुटी में पड़ा हुआ है। निकट ही वह पूर्व-परिचित रमणी भी सितार बजा रही थी। कुछ देर तक सितार बजता रहा। फिर बंद हो गया, और युवती कहीं चली गई।

अचानक राजकुमार एक दीर्घ आह खींचकर बोला—"हा! ईश्वर! जगदीश! प्रभो!"

महात्मा ने चौंककर पूछा—"राजकुमार, कहो, तबियत कैसी है? क्या चाहते हो?"

राजकुमार ने कहा—"भगवन्! वह ध्वनि और वह रूप।"

महात्मा ने कहा—"राजकुमार, क्या तुमने वीणा नहीं सुनी?"

राजकुमार—"नहीं भगवन्, नहीं! मैं अपने किसानों का हँसता हुआ रूप और आनंद की ध्वनि सुनना चाहता हूँ।"

महात्मा—"राजकुमार! तुम दोनो के अधिकारी हो, तुम्हें दोनो मिलेंगे।" इतना कहकर महात्मा फिर कहने लगे—"राजकुमार, तुम्हें आश्चर्य हो रहा होगा कि तुम यहाँ कैसे पहुँचे। तुम्हारा हृदय अपने माता-पिता और राज्य के किसानों के लिये चिंतित होगा। सुनो, तुम्हारे पिता का राज्य उन्हें वापस मिल गया है, और उन्हें यह भी मालूम हो चुका है कि

तुम यहाँ मेरे यहाँ हो। शायद वह शीघ्र ही आज या कल तुमसे मिलने भी आवेंगे। तुम्हारे किसान फिर सुखी हो गए हैं।

"मैं कौन हूँ, और तुम यहाँ कैसे पहुँचे, यह भी सुनो। मैं तुम्हारे शत्रु का पिता हूँ। वानप्रस्थ लेकर यहाँ रहता हूँ। माधुरी तुम्हारे शत्रु की कन्या है। वह मेरे ही पास रहकर जड़ी-बूटियों का ज्ञान और गायन-विद्या सीखती है। रण में घायलों का इलाज और सेवा का भार उसने अपने हाथ में ले लिया था। क्षात्र-धर्म के अनुसार उसने तुम्हारे घायल सैनिकों की भी उसी स्नेह से सेवा की, जैसे कि अपने। तुम्हारी अवस्था कुछ शंका-जनक समझकर वह तुम्हें मेरे पास उठवा लाई। यहाँ तुम अब अच्छे हो गए हो।

"मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारी क्षत्रियोचित वीरता का हाल माधुरी से सुन चुका हूँ। इसी ख़ुशी में मैंने तुम दोनो का विवाह-संबंध कर देना निश्चय कर लिया है। तुम्हारे पिता को भी इस संबंध में लिख भेजा है। आशा है, वह भी इसे मंज़ूर करेंगे। वह भी अब वृद्ध हो गए हैं। काम-काज से छुट्टी लेकर वानप्रस्थ लेना चाहते हैं। अच्छा है, मेरे ही निकट उनकी भी कुटिया बन जायगी।"

राजकुमार चुपचाप यह सुनकर दिल-ही-दिल ख़ुश हो रहा था कि अचानक उसके भावों ने पलटा खाया। वह बोला—"परंतु मैं अपने शत्रु की कन्या और उसके दिए हुए राज्य.........."

महात्मा ने बीच ही में उसकी बात काटकर कहा—"राजकुमार! तुम फिर ग़लती कर रहे हो। अब तुम्हें प्रेम और प्रजा के लिये स्वाभिमान को देना होगा, और फिर इसमें स्वाभिमान की बात ही कौन-सी है? अब अपने राज्य को दहेज़ में ही मिला हुआ समझ लेना। ह! ह! ह!"

राजकुमार ने धीमे स्वर से कहा—"जैसी आपकी आज्ञा।"

मुग़ल-साम्राज्य की उन्नति एवं नाश के कारणों पर एक दृष्टि

[श्रीभागवत शुक्ल साहित्यरत्न, साहित्यनिधि]



रतीय इतिहास का मध्यकाल एक बड़े परिवर्तन एवं अपूर्व रूप से सम्मुख आता है। राजपूत-काल में हिंदू-जाति की फूट की दशा की दयनीयता दर्शनीय है। स्थानीय राजे अपने-अपने राग में मस्त थे, स्थानीयता की गड़बड़ी के कारण केंद्रीय शासन की भित्ति कभी की गिर गई थी। जो कोई बलवान् हुआ, वही अपने को भारत का सर्वेसर्वा मानने लग गया। कोई किसी को मानकर उसकी आज्ञा में रहने पर उद्यत न था, अतः शक्ति एकत्रित न होकर विभिन्न स्थानों में फैल जाने से पूर्णता की ओर बढ़ने के साथ ही व्यर्थ की-सी भी हो गई थी। वह समय ऐसा था कि मनुष्य को मनुष्य के नाते कुछ करने की स्वतंत्रता प्राप्त न थी, प्रत्युत पहले पूर्ण-रूपेण स्थानीय शासक का दास हो ले, फिर कुछ कर सकता था। सारे देश में ऐसे लोगों का ही राज्य होने से निर्बलों की रक्षा करनेवाला कोई रह ही नहीं गया था। अपनी रक्षा करनी कठिन थी। जिनके पास कला थी, विद्या थी, बुद्धि थी, वे सर्वदा शंकित ही रहा करते थे। कारण, न-मालूम कब हम दूसरे के अधीन हो जायँ, इस बात की चिंता उन्हें अहर्निश सताया करती थी। देश का शासन ठीक रीति से न होने से आबादी, धन-धान्य आदि की ओर लोगों की विशेष रुचि न रह गई थी। यही कारण है कि उस समय भारत में शंकर का मायावाद अर्थात् संसार मिथ्या की धारणा बड़ी शीघ्रता से प्रसरित हो गई। नियति की गति अज्ञेय है, सर्वदा एक ही दशा नहीं रहती। भारत-भूमि का रत्नगर्भा होना देश-देशांतरों में ख्याति प्राप्त कर चुका था। बाहर के लोग उस पर दाँत लगाए बैठे थे, उपेक्षा थी मौक़े की, सो इन छोटे-छोटे राजाओं के अहंभाव ने उनके इस सुअवसर को सुसज्जित कर दिया। उन्हें जो पता लगा कि भारत में कोई शक्ति बाह्य आक्रामकों के अवरोध के लिये शेष नहीं रह गई है, धड़ाधड़ उनके आक्रमण होने लगे। भारत की फूट ने फिर भी उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखा। बनारस, क़न्नौज लूटे गए, लाखों मनुष्य दास बनाकर ले जाए गए; किंतु फिर भी इस पर किसी ने ध्यान न दिया। देता भी क्यों? सिर पर दुर्दिनों का चक्कर लग रहा था। यदि वे सोच जाते, तो आज भारत का इतिहास कैसे बदलता? समय को तो इसकी बहुत बड़ी चिंता थी। उसने उन्हें जगने न दिया। धीरे-धीरे बाह्य आक्रामकों को यहाँ बसने की इच्छा हुई। बसना भी आरंभ किया, युद्ध भी किया, किंतु तब तक भारत में एक ऐसी बलवती शक्ति थी, जो उनका सामना कर सकती थी। भारत के प्रधान प्रांत एवं प्रधान स्थान पंजाब, युक्तप्रांत एवं दिल्ली हैं। उधर आक्रामकों की दृष्टि जाते ही उन्होंने एक बलवान् राजा को देखा, किंतु गृह-कलह एवं विषय-वृद्धि ने उसे भी जर्जरित कर रक्खा है। बस, उसके शत्रु राजा से मिलकर कार्य-साधना का विचारकर जयचंद से, जो पृथ्वीराज के पतन का इच्छुक था, जा मिले। फल वही हुआ। भारत के भाग्याकाश का सूर्य डूब गया, एवं तभी से भारतीयों का परम प्रधान स्थल दिल्ली इनके हाथों से अलग हुआ, जो आज तक उसके हाथों नहीं लौटा।

आक्रामकों ने जब सर्व-प्रथम भारत पर अधिकार करने की चेष्टा की थी, तब तक भारतीयों में कुछ-कुछ

वीरता का रक्त दौड़ गया था। वे नवोत्थित राज्य को समूल नाश करने की चेष्टा से विमुख नहीं हुए। वे अवसर के ताक में लगे रहे, और अंत में इनका अंतिम नाम-मात्र का बादशाह इब्राहीम लोदी, जो एकदम दुर्बल नृपति था, सिंहासनारूढ़ हुआ। दिल्ली के राज्य-सिंहासन को स्ववश करने की एक और चेष्टा चित्तौर के राना संग्रामसिंह की ओर से की गई। वह उसे समूल नष्ट करने की चेष्टा में निरत हुए। उन्हीं दिनों अफ़ग़ानिस्तान की ओर बाबर का ज़ोर बढ़ रहा था। बस, उन्होंने उसे आमंत्रित कर इस मुसल-मान-राज्य का भारत के सिर से कलंक मिटाने का विचार किया, किंतु यह भावना स्वयं राज्य-प्राप्ति की जितनी सहचरी थी, उतनी देशीयता की नहीं। यही कारण हुआ कि राजपूताने के कुछ राजाओं के अतिरिक्त, जो उनके संबंधी थे, अधिकांश तमाशा देखते रहे।

इब्राहीम मारा गया। एक अवसर दिल्ली के सिंहासन पर राजपूतों के विराजने का आनेवाला ही था कि भारत के भाग्य ने पलटा खाया। बाबर लूट-पाटकर चला न जाकर यहाँ पर स्वयं राज्य स्थापित करने में लग गया। फल-स्वरूप बाद को संग्रामसिंह एवं बाबर में ही युद्ध हुआ। मुसलमान पराजित हुए, राजपूत प्रसन्नता के मारे फूल उठे। आनंद से जा-जाकर अपने डेरों में सोए। इधर नवागत मुसलमानों के दिल में बाबर की इस बात ने कि "यदि हम भागते हैं, तो भागकर जा नहीं सकते, मारे अवश्य जायँगे; अतः भागकर मरने की अपेक्षा लड़कर मरना कहीं अच्छा है।" नया उत्साह उत्पन्न कर दिया। मुग़लों ने राजपूतों के डेरों पर रात में धावा किया। राजपूत पराजित हुए। विजय-श्री ने तुरंत ही जयमाल लौटाकर दूसरे के गले में डाल दी। बस, यही दिन था मुग़ल-साम्राज्य के प्रारंभ का।

इस युद्ध ने यह निर्णय कर दिया कि भारत का भाग्य अभी तक कुछ ठीक नहीं हुआ है, और कुछ दिनों तक वह पराधीनता में और रहेगा। बाबर ने पैर जमा लिया; किंतु विजय के पश्चात् अधिक समय तक वह जीवित न रह सका। इसके बाद उसका पुत्र हुमायूँ सिंहासनासीन हुआ। हुमायूँ दयालु था, न्यायशील था, साथ ही बहादुर भी था; किंतु पश्चात्ताप कि भाग्यदेवी ने अंत तक उसका साथ न दिया, और उसे उत्साहित न किया। गद्दी पर बैठते समय उसका राज्य कुछ विस्तृत नहीं था। उधर सहसराम का सूबेदार शेरशाह बलवान् हो गया। हुमायूँ उससे लड़ने गया, किंतु हार खानी पड़ी। भागकर जान बचाने के लिये गंगाजी में कूद पड़ा। वहाँ डूबने ही को था कि एक भिश्ती ने, जो मशक लिए उस पार जा रहा था, उसे मशक पर चढ़ाकर बचा लिया। बचाने के उपलक्ष्य में हुमायूँ ने एक दिन के लिये उसे अपने सिंहासन पर बैठा दिया। उधर शेरशाह पीछा कर ही रहा था। उसने हुमायूँ को दिल्ली में भी आराम न लेने दिया, वहाँ भी धावा करके उसे निकाल बाहर किया। बेचारा वहाँ से भागा, और अपने भाई के पास काबुल की ओर चल पड़ा। रास्ते में ही, अमर-कोट में, अकबर का जन्म हुआ। वहाँ से चलकर वह क़ंदहार पहुँचा; किंतु भाग्य के फेर से उसके भाई ने भी उसकी कुछ मदद न की। हुमायूँ तुर्किस्तान की ओर गया, और वहाँ से सेना एकत्रित कर भाई को स्ववश करता हुआ शेरशाह पर चढ़ दौड़ा। दिल्ली पर पुनः अधिकृत हो गया, किंतु इसके बाद वह भी अधिक दिनों तक जीता न रहा। अकबर को १३ वर्ष की ही अवस्था में छोड़कर परलोक सिधारा। यही बालक आगे चलकर मुग़ल-साम्राज्य की नींव डालनेवाला हुआ। यही अपना साम्राज्य बढ़ाकर एवं हिंदुओं के दिल में अपने प्रति सहानुभूति उत्पन्न कराकर वह कार्य कर गया, जो कदाचित् सहस्र अकबर तलवार के बल से न कर सकते थे। मुग़ल-वंश के इस बाद-शाह तक मुसलमान पूर्ण परदेशी माने जाते थे। धार्मिक कट्टरता एवं लूट-पाट के कारण ये और भी बदनाम थे। हिंदू इन्हें केवल डाकू, म्लेच्छ आदि ही समझते थे। उन्हें इस बात का कभी विश्वास न था, न होता था कि ये भी सहृदय एवं भलेमानुस होते हैं।

अकबर में बल था प्रेम का, सहृदयता का, साथ ही तलवार का। वह वश में करने के चारो उपायों—शम, दम, दंड और भेद—का पूर्ण अनुयायी था। जहाँ कहीं आप देखें, वह विभिन्न रूपों में सामने आवेगा। कहीं चंदन लगाता था, कहीं जनेऊ पहनता था, और कहीं हिंदुओं तथा मुसलमानों को एक करने के लिये 'इलाही-धर्म' चलाता था। इस प्रकार इतना ही करके वह शांत होनेवाला मनुष्य नहीं था; प्रत्युत उसने हिंदू और मुसलमानों को रोटी एवं बेटी तक के सूत्र में परस्पर आबद्ध करना प्रारंभ किया, और आदर्श-स्वरूप स्वयं कई क्षत्रिय राजाओं की कन्याओं से शादी की। हिंदुओं को विश्वास हो गया कि इससे अब हमारे धर्म को कोई भय नहीं है, एवं इसके द्वारा हम नित्य-नित्य लूटे न जायँगे। अपने संबंधी होने एवं रोटी का संबंध बढ़ जाने के कारण और भी सहानुभूति बढ़ गई।

प्रेम का शासन तलवार के शासन से सर्वदा ही स्थायी होता है। कोई भी सम्राट्—जब तक जनता के हृदय में सद्भावना उत्पन्न न कर सके, और जनता को यह विश्वास न दिला सके कि हम तुम्हारी रक्षा के लिये हैं, न कि लूटने के लिये, हमारा-तुम्हारा निकट का संबंध है—केवल तलवार के बल से कभी शासन नहीं कर सकता। जब प्रजा को यह निश्चय हो जाय कि राजा एवं प्रजा, दोनो ही के हित में दोनो का हित है, तभी वह किसी को हृदय से राजा मानने को उद्यत हो सकती है। दूसरी बात यह कि मनुष्य केवल प्रेम एवं सहानुभूति का भूखा होता है, उसे जहाँ कहीं इन दोनों में से एक भी मिले, वहीं वह आकर्षित होगा। चाहे कुछ भी क्यों न हो जाय, जिसके दिल में अपने प्रति सहानुभूति नहीं है, उससे दिल खोलकर न मिलेगा। जब तक इस प्रधान तत्त्व को पहचानकर आगे बढ़ने की चेष्टा न की जाय, तब तक का सारा किया-कराया मिट्टी के समान है, और कभी कुछ न हो सकेगा।

सत्ता का आधार सद्भावना ही है, अकबर इस बात को भले प्रकार जानता था। उसने इस मार्ग का पूर्णरीत्या अनुसरण किया, और उसी का फल हुआ कि उसके मरने के बाद लगभग सौ वर्ष तक मुग़ल-साम्राज्य भारत में अनवरत गति से चलता रहा, उसका पाया जमा रह गया। अन्यथा उसकी भी वही दशा होती, जो उसके पूर्ववर्ती ग़ुलाम-वंश की हुई थी।

अकबर ने पहले बल द्वारा अपने अंकुश-स्वरूप बैरमख़ाँ को निकाल बाहर किया, फिर उसने देखा कि अब भारत से लौटकर जाना तो हो नहीं सकता, ऐसी दशा में हम यहाँवालों के लिये अपने क्यों न बन जायँ? इस बात को सोचकर उसने पहले दो-एक राजपूत राजाओं को परास्त किया। किंतु वह उस जीत को दूसरे बादशाहों की भाँति उपयोग में लाना नहीं चाहता था। वह जानता था, ये ही आगे चलकर हमारे साम्राज्य के स्तंभ होंगे। उन्हें नष्ट न किया; उन्हें विजित-मात्र करके, उनका राज्य उन्हीं के ज़िम्मे छोड़ उन्हें अपने यहाँ के कुछ उच्च पदों पर नियुक्त कर दिया, जिससे उनके तथा अन्य राजाओं के दिल में यह बात जम गई कि यह बादशाह न्यायी है, साथ ही उनके मन में उसके प्रति कृतज्ञता एवं प्रीति के भाव भी भर गए। उनकी देखा-देखी अन्य राज्यों ने भी उससे संधि कर ली। अकबर पद देकर एवं सुलह करके ही संतुष्ट होनेवाला न था, उसके दिल में यह आशंका सर्वदा बनी रहती थी कि ये कुचले गए शेर भड़के बिना नहीं मानेंगे। इन पदों के कारण ये हमारे लिये युद्ध अवश्य करते हैं, किंतु केवल इतने से ही इनका पूर्ण विश्वास करना ठीक नहीं, प्रत्युत इनसे संबंध भी कर लेना चाहिए। इसीलिये उसने क्षत्रिय-राजकुमारियों से शादी की थी। कभी-कभी हिंदू-भेष में रहता, और सूर्य की पूजा भी करता, जिससे यहाँवालों के दिल में उसके प्रति आत्मीयता का भाव उदय हो गया। उसने हिंदू, मुसलिम, सबको अपने धार्मिक कार्यों के संबंध में स्वतंत्रता दे दी थी। पक्षपात मिटाकर राज्य-कार्यों में हिंदुओं और मुसलमानों की योग्यता देखकर

काम किए जाने लगे। सर्व-साधारण इस बात को देखकर प्रसन्न हुए। यहाँ तक कि अकबर के संबंध में पंडितों ने बतलाया कि यह पूर्व-जन्म का ब्राह्मण था, और प्रयाग में बड़ा अनुष्ठान किया था। दैवयोग से उस हवन-कुंड के नीचे एक हड्डी पड़ी रह गई थी, जिससे यज्ञ का पूर्ण फल नहीं हुआ, और उसी कारण अगले जन्म में अब यह मुसलमान हुआ है। यह क्या था? केवल सद्भावना उत्पन्न करने का फल। अब लूट-मार का, धार्मिक अत्याचारों का भय सर्व-साधारण के हृदय से जाता रहा। राजनीति की चिंता न रही। अकबर की इस कूट-नीति ने भारतीयों को कुछ शांति दिखलाकर गाढ़ी नींद में ला पटका।

अकबर राजनीति-कुशल होने के साथ-साथ केवल मुसलमान-धर्म को ही सर्वप्रधान स्थान नहीं देता था, प्रत्युत वास्तव में धर्म में भी वास्तविकता को खोजता था। इसके लिये वह ब्राह्मण, मुसलमान, जैन आदि प्रत्येक धर्मों के महात्माओं को बुलाता, उनके शास्त्रार्थ सुनता एवं उनसे उपदेश भी ग्रहण करता था, इससे वह कट्टरता से बहुत दूर था। इसी के फल से 'इलाही-धर्म' के रूप में जन्म लिया था, जिसके अकबर के समय में कुछ देखा-देखी तथा कुछ प्रसन्न करने के लिये अनुयायी भी हो गए थे, किंतु उसके मरते ही उसका कहीं ठिकाना न रहा।

यदि वास्तव में देखा जाय, तो मुग़ल-राज्य के स्थायित्व के ये ही मूल-कारण थे। भारत धर्म-प्राण देश है, जहाँ धर्म पर ठेस लगी कि फिर जनता उद्विग्न हो उठी, इसने उस छाले को मक्खन लगाकर ठंडा कर दिया। जली हुई जाति उस जलन को कुछ दिनों के लिये भूल गई—उसे गहरी नींद आ गई। उसी के फल-रूप तुलसीदासजी की इस बात से जनता के भावों का कुछ प्रमाण-स्वरूप ज्ञान होता है—

"कोउ नृप होइ, हमहि का हानी;
चेरि छोड़ि नहिं होउब रानी।"

इस नींद ने उस समय तक पीछा न छोड़ा, जब तक फिर उसी फोड़े पर ठोकर लगाकर उठानेवाला औरंगज़ेब न हुआ। अकबर के बाद के दो बादशाह—जहाँगीर और शाहजहाँ—अकबर की नीति के ही समर्थक थे। इन्होंने कभी पक्षपात या द्वेष नहीं किया। इन्होंने भी अकबर का प्रारंभ किया हुआ राजपूतों से संबंध बनाए रक्खा। यही कारण था कि इन दोनो के अकर्मण्य होने पर भी भारत का राष्ट्र-सूत्र इनके ही हाथों रह गया, अन्यथा खिसकते कुछ देर न थी।

जहाँगीर का शासन-काल शांति का काल था, राज्य बढ़ाने की चिंता नहीं रह गई थी। प्रायः सभी बड़े-बड़े राजे संबंध-सूत्र में ग्रथित थे, अतः शांति रही, गड़बड़ी का नाम न रहा, यदि कहीं हुई भी, तो उन्हीं के द्वारा दबा दी गई। इसके सिवा कुछ दूसरी भी बातें थीं, जिनके कारण मुग़ल-साम्राज्य भारत में स्थापित हो सका। हाँ, मूल-साधन यही थे।

नवागत मुग़लों में अब तक नवीन शक्ति थी। साथ ही उनके पास युद्ध के नए शस्त्रास्त्र जैसे तोप आदि भी थे, जिनसे यहाँवाले बेचारे एकदम अपरिचित थे। भारतीयों का युद्ध प्राचीन रीति से होता था। इनके प्रधान शस्त्रास्त्र तीर, तलवार और बर्छे थे। उधर कराल काल-जैसी धुधुकारनेवाली तोपें थीं, जिसे यहाँवाले देखते ही घबरा उठते थे, और परास्त होते थे। इन तोपों की लड़ाई में भारतीय हाथी और ऊधम मचा डालते थे। उनसे लड़ने के स्थान पर उल्टे अपनी ही सेना का नाश होता था। इन शस्त्रास्त्रों ने भी प्रारंभ से लेकर मुग़लों की जीत में बहुत अधिक श्रेय प्राप्त किया। बाबर यहाँ अधिक दिनों राज्य नहीं कर सका था, इससे शासन-संबंधी कोई नवीन प्रणाली वह प्रचलित न कर सका था। बाद को हुमायूँ के अधिक विलासी एवं अनिश्चित मनसूबों के कारण फिर भी अंतर्देशीय शांति स्थापित न हो सकी। हुमायूँ में एक सबसे बड़ा दोष यह था कि वह जिस स्थान पर चढ़ाई करता, उसे केवल पराजित करके, उसका बिना पूर्ण प्रबंध किए ही, दूसरे स्थान पर धावा बोल देता था। उसकी इस विधि ने उसकी

बड़ी हानि की । अंत तक इसी कारण वह अपना शासन-प्रबंध ठीक न कर सका। इधर अकबर दृढ़-प्रतिज्ञ था । उसकी सैन्य शक्ति प्रबल थी । नवागत सेना, जो बाहर से आई थी, उसके बल पर उसे किसी दुर्ग को जीतने में विशेष कठिनता नहीं हुई । नवागत मुग़लों के दिल में जोश भरा था । नूतन विधि का अनुसरण भी युद्ध में वे कर रहे थे, अतः धड़ाधड़ उनकी जीत होती गई । उधर अकबर शासन-प्रबंध में इतना निपुण था कि जिस स्थान को उसने विजित किया, बिना उसका भले प्रकार प्रबंध किए आगे न बढ़ा । जिस स्थान को जीता, उसका प्रबंध अत्युत्तम कर जनता को संतुष्ट कर दिया । साथ ही अब इनमें लूटने-पाटने की भावना बिलकुल नहीं रह गई थी, बल्कि यहाँ बस-कर राज्य करने की भावना प्रबल हो गई थी, इसलिये प्रजा को इनसे अधिक कष्ट न होता था । साथ ही भारत के दुर्भाग्य से एक-एक राजाओं के विजित होते रहने पर भी भारतीयों की आँखें नहीं खुलीं । इनमें द्वेष और फूट का बाज़ार ज्यों-का-त्यों गर्म था । इनके सिरों से प्रजा को व्यर्थ तंग करने की भावना का अंत नहीं हुआ था । नित्य नए-नए युद्धों के कारण प्रजा व्याकुल थी, और वह चाहती थी शांति-पूर्ण शासन-सूत्र का संचालन । इधर जिन स्थानों को अकबर ने जीतकर सुप्रबंधित कर दिया, उनकी यह शांति की इच्छा पूर्ण हो गई, और वह इस शांति-पूर्ण राज्य में रहकर आनंदोपभोग की अभिलाषा से अपने प्राचीन राजाओं का साथ न दे सकी । इस नवीन शासन में आ जाने से उसे नित्य के लूटे जाने का भय न रहा । साथ ही अकबर ने भूमि को नापकर एवं उसका लगान निश्चित करके यह सब पर विदित कर दिया कि हम तुम्हें लूटने नहीं आए हैं; प्रत्युत तुम्हारी सुविधाएँ हमारी दृष्टि में हैं । अकबर का दृष्टि-कोण सर्वदा सर्व-प्रिय बनने की ओर अधिक रहा करता था; अतः उसकी प्रजा उसे प्यार करती थी । प्रजा की यह सर्वदा इच्छा भी रहा करती है कि हमारा नृपति ठाट-बाट में सबसे बड़ा हो, इधर अकबर ने साम्राज्य के विस्तृत करने के साथ अपना रोब-दाब भी काफ़ी बढ़ा रक्खा था, जनता उसे भी देखकर मुग्ध थी । इन बादशाहों की नीति रोब-दाब के साथ-साथ सैनिक भावनाओं से पूर्ण रहने के कारण भड़कीली होने के साथ भयावनी भी थी; अतः किसी को सिर ऊँचा करने का अवसर ही नहीं मिलता था ।

मुग़लों का आरंभिक काल भारत में नित्य-नित्य नए-नए तमाशों का लीला-क्षेत्र हो रहा था । राजे लूट-पाट करने में ही अपना महत्त्व समझते थे, धनी लोगों की नाशक वृत्तियाँ बल पर थीं, किंतु इन सबों के अधिकांश दोषों को इन्होंने शांत कर दिया । यही थे मुग़लों के भारत में जड़ जम जाने एवं उन्नति करने के प्रधान कारण । इन्हीं शक्तियों के बल से मुग़ल-साम्राज्य बलवान् होने के साथ-साथ भारत के अधिकांश स्थानों में फैल गया । सारा-का-सारा उत्तरी भारत उनके शांतिमय राज्य का उपभोग करने लगा । पुनः बहुत दिनों के बाद भारत के लिये यही शांति का समय आया । इसी समय मध्यकाल की कला, धार्मिकता, विद्या, भाषा आदि सभी अपने-अपने उच्च आसनों पर आ विराजे ।

मुग़ल-काल में एक स्थान से दूसरे स्थान को आने-जाने के लिये वर्तमान काल-जैसी सुविधाओं का नाम भी न था । अकबर ने राज्य बहुत विस्तृत कर लिया था, और यही एक उसके नाश के कारणों में हुआ । दूसरी बात जो सबसे गड़बड़ी की हुई, वह थी अकबर के संपूर्ण उत्तरी भारत को जीतने के पश्चात् दक्षिण जीतने की इच्छा । इस कार्य को स्वयं अकबर ने हाथ में लिया था, और वह औरंगज़ेब के समय तक चलता रहा; किंतु पूर्ण सफलता अंत तक प्राप्त न हो सकी । इस भाँति मुग़ल-राज्य की नींव जमने की कुछ सुविधाएँ प्राप्त हो गई थीं, किंतु वे अधिक काल तक स्थिर न रह सकीं । अकबर के बाद जहाँगीर और शाहजहाँ ने कुछ विशेष नूतनता लाने का प्रयत्न न किया, वह अकबर द्वारा निर्दिष्ट पथ के ही पथिक रहे । फल भी उनके पक्ष में अच्छा ही रहा ।

औरंगज़ेब ने अकबर की नीति का परित्याग किया, साथ ही और भी कई एक कारण आ उपस्थित हुए, जिनसे मुग़ल-साम्राज्य की नींव हिल गई, और औरंगज़ेब के मरने के बाद तो नाम-मात्र को ही मुग़ल-बादशाह भारत के सम्राट् रह गए थे। अब उन्हीं कारणों का कुछ संक्षेप में विवेचन कर लेख को समाप्त करने का विचार है।

औरंगज़ेब के काल तक मुग़लों को अपनी जन्म-भूमि से आए लगभग १५० वर्ष हो गए थे। अब उनमें वह शक्ति या जोश जो पहले थे, नहीं रह गए थे। भारतवर्ष में बसने के कारण वे कुछ दुर्बल हो गए थे। उनमें अब राज्य जीतने की लालसा कम होकर सुखोपभोग की लालसा बलवती हो गई थी। शान और ठाट-बाट इतने बढ़ चुके थे कि बादशाहों को युद्ध में जाते हुए भी सुखोपभोग की सामग्रियों बिना काम न चलता था। बादशाही सेना अब युद्ध करने के लिये चलती थी, दिन-भर में दो-तीन कोस तक मुश्किल से जा पाती थी। सरदार पालकियों में बैठकर युद्ध करने जाते थे। सेना क्या होती थी, पूरी बारात होती थी। भोग-विलास ने युद्ध की प्रियता को भयंकर बना डाला था, अब युद्ध के ख़ेमों में मुजरे होते थे। सेना का व्यय ख़ूब बढ़ गया था; किंतु वह लड़ने योग्य न रह गई थी।

दूसरी बात जो मुग़ल-साम्राज्य के नाश का कारण हुई, वह थी मुग़ल-बादशाहों में अधिकांश का उच्छृंखलता-पूर्वक गद्दी का लोभ। ये बराबर गद्दी पर बैठने के लिये लड़ा करते एवं विद्रोह किया करते थे। औरंगज़ेब कट्टर मुसलमान था, दारा हिंदुत्व का पक्षपाती था। भारत के अधिकांश हिंदू-राजे दारा को बादशाह बनाने के पक्ष में थे, उधर औरंगज़ेब मुसलमानों की सहायता से गद्दी पर बैठा था, अतः अधिकांश राजपूत उससे रुष्ट थे। साथ ही इसने जज़िया-नामक कर, जो अकबर ने बंद कर दिया था, फिर से लगा दिया, हिंदुत्व पर आघात होने लगे। हिंदू क्षुब्ध हो उठे। इधर औरंगज़ेब मुसलमानों के बल पर गद्दी पाने के कारण उन्हें ही उच्च-उच्च पदों पर स्थापित करने लगा। हिंदू इससे और जले, उनमें नया जोश भर गया। राष्ट्रीयता का जोश जो अकबर की थपकियों से कुछ-कुछ ठंडा पड़ गया था, पुनः जग पड़ा, पंजाब में सिख और महाराष्ट्र में मरहठे उठ खड़े हुए। इधर औरंगज़ेब अविश्वास के रोग के कारण सबको चिढ़ा बैठा था, स्वयं उसका पुत्र अकबर तक उसके पक्ष में न था। साम्राज्य सँभालना उसके लिये कठिन हो गया। इधर अहमदनगर, बीजापुर को जीत लेने से तथा मरहठों के उठ जाने के कारण उसे दिल्ली छोड़कर लगातार युद्ध में रहना पड़ा। राज्य-प्रबंध ढीला पड़ा, बस, विस्तृत मुग़ल-साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े हो गए। औरंगज़ेब बहादुर सेनापति था, धर्म का पूरा पाबंद था; किंतु उसमें सबसे बड़ा दोष पूर्ण राज-नीतिज्ञ का न होना था। इस दोष में अविश्वास ने और हानि पहुँचाई। वह भी फोड़कर काम कराने की नीति का पक्षपाती था, किंतु उसकी वह नीति उसके मार्ग में बहुत काँटे उत्पन्न कर गई। मरहठों से लड़ते-लड़ते वह उधर ही मरा, मरहठे परास्त न हो सके। सिखों में नया जोश आ गया था, वे पंजाब में फैलने लगे। औरंगज़ेब के उत्तराधिकारियों में एक भी ऐसा चतुर नहीं था, जो इतने बड़े राज्य का प्रबंध कर सके। उधर सबके गद्दी पर अधिकार करने की इच्छा से वे मंत्रियों के ग़ुलाम-से बन गए थे। जिसने जहाँ पाया, वहीं दबा बैठा। स्थान-स्थान के सूबेदार स्वतंत्र हो गए। मरहठों, राजपूत राजाओं एवं सिखों ने अपने-अपने नए-नए राज्यों का निर्माण किया, और इस भाँति बाबर द्वारा विजित एवं अकबर द्वारा विस्तृत राज्य के टुकड़े-टुकड़े हो गए।

औरंगज़ेब के बाद सन् १८५७ ई० तक मुग़ल-सम्राट् दिल्ली की गद्दी पर सुशोभित रहे, किंतु नाम-मात्र को। अंत में १८५७ के ग़दर के बाद अंतिम अंधा बादशाह बहादुरशाह तक मुग़ल-वंश के राज्य का नामोनिशान मिट गया।

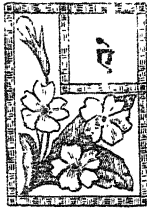
एकनिष्ठा

[श्री'स्वर्ण-सहोदर']

दिन-पर-दिन होती है मेरी शक्ति क्षीण उड़ जाने की;
भूला जाता हूँ अपनापन सुधि फिर वह बन पाने की।
कायरता, परवशता का प्रिय लगता क्रम-क्रम आलिंगन;
आह! क्षुद्र पिंजर में मेरा भूला जाता भव्य भवन!
छली किए देता है मेरे हाय! हृदय का परिवर्तन;
इन प्रलोभनों में यह कैसा हुआ जा रहा मम जीवन?
निर्दय! तू भी युक्ति किए जा परवश मुझे बनाने की;
पर न मिटा मेरी अभिलाषा जन्म-भूमि के पाने की।
मेरी चाह न उन्मूलित कर वापस वन में जाने की—
उस स्वाधीन वायु-मंडल में जीवन पुनः बिताने की।
बिछुड़े स्वजन, सखाओं को फिर आलिंगित कर, लखकर पास—
सुख, स्वतंत्रता और शांति की लेऊँगा मैं जी-भर साँस।
इन सुवर्ण-पात्रों में तेरा दिया हुआ मधुमय आहार—
वन के रूखे फल-फूलों पर कर दूँगा पल में बलिहार।
तेरा यह बनावटी वैभव, यह सीमित सुवर्ण-पिंजर—
मैं न्यौछावर कर डालूँगा नैसर्गिक वन-सुषमा पर।
स्वर्गोपम वन में विचरण कर, मतवाली धुन में स्वच्छंद—
बलिहारूँगा इस नरकोपम पिंजर के शत-शत आनंद।
इसी कल्पना—आशा—में तू रहने दे नित मुझे विभोर;
चाहूँगा मैं स्वीय मुक्ति-हित कभी न तेरी करुणा-कोर।

हमारे कृषकों की दशा

[श्रीअयोध्याप्रसाद]



ऐसे तो मनुष्यों की आवश्यकताओं की कोई गणना नहीं है, परंतु इनमें से कुछ ऐसी हैं, जिनका पूर्ण होना उनकी प्राण-रक्षा के हेतु बहुत ही आवश्यक है। इनके पूर्ण न होने से वे अपने जीवन से असंतुष्ट हो समाज में क्रांति मचा देते हैं। भारतवर्ष की वर्तमान क्रांति इसी का ज्वलंत परिणाम है। अतएव यह परम आवश्यक है कि इन आवश्यकताओं के पूरी होने का शीघ्र समुचित प्रबंध किया जाय। इनका पूर्ण करना प्रत्येक योग्य मनुष्य तथा राजकर्मचारियों का आवश्यक कर्तव्य है।

ये आवश्यकताएँ बहुत हैं भी नहीं, अतएव इनकी पूर्ति कुछ कठिन नहीं है। ये केवल तीन हैं—(१) भोजन, (२) वस्त्र और (३) घर। भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है, अन्न यहाँ बहुत होता है, फिर भी यदि भोजन न मिले, तो आश्चर्य है! यहाँ जूट, ऊन, रुई और रेशम भी उत्पन्न होता है, तो भी यदि वस्त्र न मिलें, तो क्या कहा जाय? यहाँ पृथ्वी, जल और लकड़ी भी प्रचुरता से हैं, इस पर भी यदि घर न हो, तो शोक है! यहाँ प्रत्यक्ष में तो सब सामग्री उपस्थित है, परंतु वास्तव में इसका होना या न होना जनता के लिये एक समान है। खेद तो यह है कि जो लोग इनका संपादन करते हैं, वे ही अधिक दुर्दशा में हैं। ये हैं हमारे कृषक। इनकी दशा नागरिकों से कहीं गई-बीती है। वह हृदय, जो इनकी दरिद्रता देखकर करुणा से आर्द्र नहीं होता, पाषाण का है। वे नेत्र, जो इन्हें नग्न देख अश्रु-विमोचन नहीं करते, नेत्र नहीं हैं।

हम तो नगर में रहते हैं, जहाँ इनकी गाढ़ी कमाई की नाना प्रकार की वस्तुएँ अधिकता से उपस्थित हैं। हममें से कोई नौकरी करता है, कोई डॉक्टरी, कोई वकालत और कोई दूकानदारी। इससे हमारे पास तो पैसा आया ही जाया करता है, हमारे पास पैसे की कमी हो नहीं सकती। इससे हम जो वस्तु चाहें, मोल ले सकते हैं, और अपनी आवश्यकताओं को दूर करने में समर्थ हैं। परंतु इन बेचारे कृषकों की, जिनके पास पैसा नहीं है, हमें परवा नहीं! 'यह तो संसार है, यहाँ कोई राजा है, कोई रंक, कोई खाता है, कोई भूखों मरता है; हम इसकी चिंता कहाँ तक करें, और क्यों करें?' इन्हीं विचारों ने हमको इनकी ओर से उदासीन कर रक्खा है, और हमें इनकी दशा का ज्ञान नहीं है।

परंतु यह उदासीनता हमारे योग्य नहीं है, और यह अनभिज्ञता अनुचित है। कारण यह कि मनुष्य अपने ही लिये नहीं बनाया गया। खाना, पीना और विहार करना जीवन का निकृष्ट सिद्धांत है, और इसका आदि बीज भौतिक सभ्यता में है। हमारी सभ्यता आध्यात्मिक है, और हमारा आदर्श है "खिलाना तब खाना, पिलाना तब पीना और प्रसन्न करना तब प्रसन्न होना।" अतएव हमारा कर्तव्य है कि हम इन कृषकों की दशा अपने नेत्रों से देखें, और उससे भले प्रकार परिचित हों।

परंतु इस कार्य के निमित्त हमें देहातों में जाना पड़ेगा, और गाँवों की धूलि फाँकनी पड़ेगी, जहाँ का मार्ग भी ठीक न होगा, कहीं नाम को पक्का होगा, नहीं तो विशेषकर कच्चा होगा; कहीं धूल उड़ती होगी, कहीं जल भरा होगा, वहाँ वाहन का भी ठिकाना न होगा। संभव है, मिले या न मिले। यदि मिले भी, तो रुचि के अनुकूल हो या न हो। इस

यात्रा में ये आपत्तियाँ अवश्य उपस्थित होंगी। किंतु वही पुरुष पुरुष है, जो इन क्षणिक दुःखों से उद्विग्न न होकर अपने कर्तव्य का पालन करता है। कहा है—"मनुष्यः कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम्।" काम करनेवाला पुरुष क्षणिक दुःख और सुख का विचार नहीं करता। अतएव हमें अपने कर्तव्य से विचलित न होना चाहिए। हमें गाँवों में जाना और अपने नेत्रों से कृषकों की दशा का निरीक्षण करना चाहिए। परंतु जो लोग कार्य-वश ऐसा नहीं कर सकते, उनके लिये निम्न-लिखित पंक्तियों में कृषकों की दशा का कुछ दिग्दर्शन कराया जाता है—

हम अपने कृषकों के रहन-सहन का विचार करते हुए देहातों के गाँव और पुरवा, ये दो रूप मान लेते हैं। यहाँ गाँव से हमारा तात्पर्य ऐसी बस्तियों से है, जो नगरों के समीप हैं, या उनके और नगरों के बीच में आने-जाने का ऐसा क्रम है, जिससे वे भी नागरिक सभ्यता से प्रभावित हो गई हैं। पुरवों से अभिप्राय उन बस्तियों से है, जो नगरों से बहुत दूर हैं, और उनके प्रभाव से सर्वथा बाहर हैं।

गाँवों में बाहर नौकरी करनेवाले, ज़मींदार, बनिए, महाजन, कृषक, शिल्पकार, टहलुए और मज़दूर रहते हैं। व्यवसाय-दृष्टि से तो इनमें विभिन्नता है, परंतु वास्तव में इनमें से प्रत्येक अपनी आवश्यकता की पूर्ति के निमित्त दूसरे का अधीन है, जिसके कारण इनमें मेल-जोल है। परंतु यह मेल-जोल नगरों से आनेवाली भौतिक सभ्यता के प्रभाव से अब प्रतिदिन घटता जाता है, और इन लोगों की आवश्यकताएँ बढ़ती जा रही हैं, जिससे इनमें असंतोष और मोह की वृद्धि हो रही है। इनके आध्यात्मिक भावों का ह्रास हो रहा है, और ये मिथ्यावादी और अविश्वसनीय हो गए हैं। सत्य कहा है—"बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्" अर्थात् भूखा कौन-सा पाप नहीं करता?

अपने से अन्य सहवासियों की देखादेखी ये कृषक भी, जो पहले ज्वार-बाजरा खाते थे, अब गेहूँ-चावल खाने के इच्छुक हैं, और जो पहले गज़ी-गाढ़ा पहनते थे, अब लंकलाट और मारकीन पहनना चाहते हैं। रहने के लिये पहले इनके फूस के घर थे, अब इन्हें भी लकड़ी से पटे हुए मकानों में रहने की इच्छा है। इतना ही नहीं, किंतु बड़े जनों के संसर्ग से इनमें बहुत-से दुर्व्यसनों का भी प्रवेश हो गया है, जिससे इनका व्यय आय की अपेक्षा कहीं बढ़ गया है, और ये ऋणी हो गए हैं।

इन कृषकों में केवल थोड़े-से ही ऐसे हैं, जो देहाती पाठशालाओं तथा पढ़े-लिखे लोगों की संगति से कुछ लिख-पढ़ लेते हैं, परंतु इनकी संख्या नहीं के समान है। अधिक तो निरक्षर और निरे मूर्ख हैं। यही कारण है कि ये प्राण देकर परिश्रम करने पर भी दरिद्रता के गर्त में फँसे हुए हैं।

असहयोग के सिद्धांत ने इन कृषकों पर भी अपना प्रभाव डाल दिया है। ये अब अपने स्वत्वों को कुछ-न-कुछ जानने लग गए हैं, जिससे अब बेगार, डाट-डपट और डाँड़-बाँध से इनकी रक्षा हुई है। परंतु जहाँ यह लाभ हुआ है, वहाँ इनकी मूर्खता ने इनके अंदर अनुचित अहंकार भी उत्पन्न कर दिया है। अब इनकी दृष्टि में राजपुरुष राजपुरुष नहीं रहे, और न ज़मींदार ज़मींदार। इनसे नम्रता और कृतज्ञता के भाव दूर हो गए हैं। इनके स्थान में मिथ्या अभिमान प्रविष्ट हो गया है, जो आए दिन इनको ज़मींदारों से लड़ा-लड़ाकर इनकी आपत्तियों की वृद्धि कर रहा है।

यह तो गाँवों में रहनेवाले किसानों की दशा की कहानी हुई। अब पुरवों के रहनेवाले किसानों की जो दशा है, उसका निरूपण किया जाता है—

पुरवों में बहुधा किसान-ही-किसान होते हैं। ये नगरों की भौतिक सभ्यता से अनभिज्ञ हैं। इनमें किसी प्रकार की शिक्षा नहीं है। इनका भोजन वही मोटा अन्न, कपड़ा वही गज़ी-गाढ़ा और

निवास-स्थान वही कच्चे फूस के झोपड़े हैं। इनका जीवन इन्हीं आवश्यकताओं के पूर्ण होने पर निर्भर है, परंतु खेद है कि इन्हें इतना भी प्राप्त नहीं होता। ये बेचारे प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक सतत परिश्रम करते हैं, तथापि इनको पेट-भर खाना मिलना कठिन हो जाता है। कभी ये भूखे और कभी आधे पेट खाकर रात्रि में सो रहते हैं। इनके शरीर पर पूरे वस्त्र नहीं हैं, चिथड़े लपेटे रहते और बहुधा नंगे रहते हैं। इनके घर घर नहीं, वरन् उठल्लुओं के डेरे हैं। ये निर्धन और कंगाल हैं, परंतु दान देने में मुक्त-हस्त हैं। ये संतुष्ट हैं, और इनमें अधिक तृष्णा नहीं है। इनमें सहानुभूति, आर्जवता और कृतज्ञता है। यद्यपि इनकी आय इनके व्यय से अधिक नहीं है, तथापि ये अतिथि-सत्कार से कभी मुख नहीं मोड़ते। धिक्कार है उन लोगों को, जो इनकी साधुता से अनुचित लाभ उठाकर इनसे डाँड़ और बेगार लेते हैं।

इन कृषकों के पास, चाहे वे गाँव के हों, चाहे पुरवों के, धन नहीं है। हाँ, यह और बात है कि जो कुछ अच्छी दशा में हैं, उनके पास थोड़ा अन्न, कुछ वस्त्र और बर्तन तथा कृषि का कुछ टूटा-फूटा पुराना सामान और एक-दो ढोर हैं। यही उनके जीवन की संपत्ति, यही उनके आजन्म की कमाई और इस जीवन का सहारा है।

अंतिम दो वर्षों से हमारे कृषकों की दशा अकाल के कारण और भी बुरी हो गई है। सरकार ने कहीं-कहीं की मालगुज़ारी क्षमा कर दी है, और कहीं-कहीं आज्ञा दी है कि सुकाल में मालगुज़ारी ली जाय। परंतु इनकी अन्य आवश्यकताओं का कोई प्रबंध नहीं हुआ, जिससे जहाँ इन्हें कुछ पोत देना पड़ा है, हाँ, इन पर बड़ी आपत्ति पड़ गई है, इनका सर्वस्व बिक गया है, तो भी विना ऋण लिए काम नहीं चला। कृषि के यंत्र बिक जाने से भविष्य के लिये उत्पादन-शक्ति का भी ह्रास हो गया है, और ये निराशा के गर्त में डूब गए हैं।

इन पर इतनी ही आपत्ति नहीं आई है—महुए ने भी जवाब दिया, केवल आमों का सहारा रह गया। कोई इनको चूसकर रह गया, और कोई इनकी गुठली उबालकर खा गया। झोपड़ी है, वह बरसात से टपक रही है। कहीं-कहीं बढ़िया भी आ गई है, और अतिवृष्टि ने बीज तक बहा दिए हैं, बोए खेत गिरा दिए हैं, और भविष्य पर भी पानी फेर दिया है। अब न इनके पास अन्न है, न वस्त्र है और न घर है, जिसके कारण इनमें से सैकड़ों रोगों से ग्रसित हो नाना प्रकार की यातनाएँ सहते हुए असमय ही अकाल के ग्रास हो रहे हैं।

सारांश यह कि हमारे कृषक-वर्ग की दुर्दशा अवर्णनीय है—ये ऋणी, दरिद्र, मूर्ख और निर्धन हैं। उनकी आवश्यकताएँ इनी-गिनी हैं, तो भी उनकी पूर्ति नहीं होती। न उनको खाने को अन्न मिलता है, न पहनने को वस्त्र मिलते हैं, और न रहने को घर ही प्राप्त है। उनके विचार आध्यात्मिक हैं, जिससे वे थोड़े ही से संतुष्ट हो जाते हैं, किंतु इतना भी न मिलने से और भौतिक सभ्यता के संसर्ग से उनमें भी क्रांति की लहर आ गई है, जिससे वे भी अब अपने स्वत्वों के निमित्त प्राण देने को तैयार हो पूँजीपतियों, ज़मींदारों तथा राजपुरुषों से किंचित् भयभीत नहीं होते, और उनका सामना करते हैं।

दूध का स्वास्थ्य से संबंध

[डॉ० रविप्रतापसिंह श्रीनेत साहित्य-भूषण]



आजकल सभ्य तथा असभ्य सभी देशों में दूध का उपयोग आहार-रूप में किसी-न-किसी प्रकार होता ही है। हमारे वैद्यक-ग्रंथों में तो नाना प्रकार के दूधों का बृहत् वर्णन पाया जाता है, परंतु आधुनिक सभ्यता के अनुसार वैद्यक ने भी अपना क्षेत्र विशेष रूप से बना रक्खा है। इस समय स्त्री, गाय, भैंस, बकरी, भेड़, ऊँटनी, हथिनी, घोड़ी तथा गधी का दूध प्रधानतः प्रयोग में लाया जाता है। वैसे तो सिंहिनी, शेरनी, हिरनी, बिल्ली व कुतिया का दूध भी प्राचीन काल में सफलता-पूर्वक उपयोग में लाया जाता था। अब या तो इनका दूध मिलना ही दुस्तर है, अथवा इनका प्रयोग ही घृणास्पद है। कुछ भी हो, हमारे प्राचीन ग्रंथों के अकाट्य प्रमाणों तथा वैज्ञानिक विश्लेषणों से ज्ञात होता है कि किसी पशु-विशेष का दूध किसी ख़ास रोग के लिये अचूक दवा साबित हो चुका है। इस वैज्ञानिक शताब्दी में अवतरित प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली (Naturopathy) भी इन सिद्धांतों का पुष्टीकरण करती है, और इन्हीं का अवलंबन ले औषधि-जगत् के विष-तुल्य होनेवाले परिणामों का उन्मूलन कर रही है।

हमारे भारतवर्ष में स्वास्थ्य, सौंदर्य, श्रद्धा, भक्ति तथा धर्म के लिहाज़ से गाय का ही दूध सर्वोत्तम माना गया है, और है भी बात ऐसी ही। इसलिये इन पंक्तियों में गो-दुग्ध का ही वैज्ञानिक रूप से विचार किया जायगा, ताकि गो-भक्तों और गो-श्रद्धालुओं को मालूम हो जायगा कि निस्संदेह गाय श्रद्धा और भक्ति का भाजन है, न कि घृणा और क्रूरता की पात्री।

दूध पानी का वह घोल है, जिसमें प्रोटीड, शक्कर, खनिज नमक तथा वसा के अगणित सूक्ष्मातिसूक्ष्म अणु विद्यमान हों, और जिसका विशिष्ट गुरुत्व १.०२६ से १.०३२ तक हो। दूध का रासायनिक विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि उसमें पानी का अनुपात ८७% तक होता है, और शेष में अन्य पदार्थ पाए जाते हैं। दूध में जो वसा पाई जाती है, वह निस्संदेह प्रकृति की विशालता का एक प्रमाण है। सूक्ष्म-दर्शक यंत्र की सहायता से मालूम पड़ता है कि एक बूँद दूध में वसा के २५, ००००० सूक्ष्म अणु पाए जाते हैं, यदि दूध गरम न किया जाय। भला, अनुमान कीजिए कि एक पाव या आधा सेर दूध में ऐसे कितने वसा के अणु होते हैं, जो हमारे शरीर में नित्यप्रति प्रवेश करते हैं। यही कारण है कि शिशु दूध-सरीखी नियामत पर रह सकता है। ये वसा-अणु इतने सूक्ष्म होने के कारण शीघ्र ही शरीर की रक्त-प्रदायिनी प्रणालियों में प्रवेश कर जाते हैं। इसके स्थान में यदि दूध गरम करके दिया जाय, तो ये अणु पिघलकर दूध की सतह पर आ जाते हैं, और फिर दूध की वह दैवी शक्ति नष्ट हो जाती है।

दूध में जो प्रोटीड पाया जाता है, उसे 'केसीन' कहते हैं। यह एक आवश्यक पदार्थ है, जो शरीर के अणुओं को शक्ति तथा स्फूर्ति प्रदान करता है। यह आसानी से इस रूप में सिद जाता है। दूध में जो शक्कर पाई जाती है, उसे 'लेक्टोस' कहते हैं। यह बड़ी आसानी से शरीर में प्रवेश करती और पाचन-क्रिया में सहायता पहुँचाती है। इसके अलावा दूध में जो खनिज पाए जाते हैं, उनमें सोडियम, लोहा, केलशियम, पोटेशियम, मेगनेशियम, सल्फ़र, फ़ास्फ़ोरस, क्लोरीन और आयोडीन ही प्रमुख हैं। इतने खनिज किसी अन्य आहारिक पदार्थ में नहीं पाए जाते। इनसे मज्जा, पेशियाँ तथा शक्ति में सहायता मिलती है। यह संभव है कि कोई कहे कि

ऐसे अच्छे पदार्थ में ८७% पानी की क्या आवश्यकता थी ? परंतु यह ध्यान रहे कि प्रकृति ने पानी तथा अन्य पदार्थों का अनुपात उतना ही रक्खा है, जितना इस शरीर के पोषण के लिये ज़रूरी है ।

दूध स्वयं एक आहार है । दूध पर रहनेवालों को किसी अन्य पदार्थ की आवश्यकता नहीं । यहाँ तक कि उन्हें पानी तक की ज़रूरत नहीं पड़ती । इस पर भी शरीर के स्वास्थ्य और सौंदर्य में दिनोंदिन वृद्धि ही होती जाती है, अवनति नहीं । यही कारण है कि नवजात शिशु केवल इसी एक के आधार पर रहकर फलता-फूलता और बढ़ता है । इससे यह साबित होता है कि दूध में ऐसी विशेषताएँ हैं, जो हमारे स्वास्थ्य, शक्ति तथा सौंदर्य को अक्षत रख सकती हैं । 'केसीन' द्वारा दूध शरीर के अणुओं की वृद्धि कर शक्ति और स्फूर्ति का संपादन करता है । वसा-अणु और दुग्ध-शर्करा ताप तथा शक्ति का संचार करते हैं । खनिज पदार्थ शरीर, मस्तिष्क और रक्त-प्रवाहिनी नलिकाओं तथा मज्जा के गठन में सहयोग पहुँचाते और उनका कार्य संपादित करते हैं । इसके सिवा, दूध में अ, ब और स विटामिन्स पाए जाते हैं । आधुनिक विज्ञान-वेत्ताओं ने अपने प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित कर दिया है कि आहार द्वारा शक्ति तथा स्फूर्ति उत्पन्न करनेवाले शक्ति-समूह को विटामिन्स कहते हैं । 'अ' विटामिन वसा में घुलनशील है । इससे शरीर में बाढ़ तथा सौंदर्य की वृद्धि होती है । 'ब' विटामिन पानी में घुलनशील है । इससे रक्त-प्रणालियों में शक्ति तथा प्रवाह की वृद्धि होती है । 'स' विटामिन पानी में घुलनशील है । इसके द्वारा हड्डियाँ सुगठित तथा कठिन होती हैं, जिसके फल-स्वरूप शरीर में बल और शक्ति का संचार होता है ।

'अ' विटामिन प्रमुखतः प्राणी-वसा में, 'ब' विटामिन वनस्पति के बीजों में तथा 'स' विटामिन सरस फल, तरकारी-शाक में पाए जाते हैं । परंतु ख़याल कीजिए कि दूध ही में ये तीनो शक्ति-उत्पादक-पुंज पाए जाते हैं । इनके यथोचित परिमाण में न रहने से अनेकों भयानक व्याधियाँ उठ खड़ी होती हैं । दूध में कीटाणु-नाशक तंतु पाए जाते हैं, जिनके धर्म-गुण साधारणतः मानव-शरीर के रक्त में पाए जानेवाले कीटाणु-नाशक तंतुओं के समान ही होते हैं । इन तंतुओं के प्रवेश-मात्र से कई रोग शरीर पर आक्रमण नहीं कर सकते ; क्योंकि रोगों के जीवाणुओं को पहले इन रक्षक तंतुओं से टक्कर लेनी पड़ती है । मोर्चा हाथ लग जाने पर ही शरीर में रोग के जीवाणु प्रवेश कर सकते हैं, अन्यथा नहीं । प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि एक कप दूध पीने के पहले मनुष्य के शरीर में जो कीटाणु-नाशक शक्ति रहती है, वह बाद में दुगुनी तथा तिगुनी तक हो जाया करती है ।

इसके अलावा दूध में डायस्टोस् और गेलेक्टोस-नामक ख़मीर पाए जाते हैं, जो पाचन-क्रिया में सहायता पहुँचाते हैं ।

दूध के इन गुणों को देखकर ही विश्व-विख्यात प्राकृतिक चिकित्सक डॉ० सर विलियम ओस्लर, डॉ० मेकफ़ेडन, डॉ० टिरेल, डॉ० कैलाग और प्रोफ़ेसर वान ड्रिगैल्सकी ने उसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है । इनका संयुक्त मत है कि दूध अत्यंत उपयोगी आहार है, जिसका प्रयोग मन, शरीर, आत्मा और विचार, चारो के विकास के लिये यथेष्ट है । यही मत हमारे प्राचीन वैद्यक-ग्रंथों का भी है । सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक भी इस सिद्धांत पर अवतरित हो रहे हैं । इससे बिल्कुल स्पष्ट है कि दूध-पान करने से लाभ के बदले हानि की लेश-मात्र भी संभावना नहीं । हाँ, यह ज़रूर है कि कसरत हर चीज़ की मुज़िर होती है । इसी तरह दूध का कसरत से इस्तेमाल करना भी ख़राब है । उससे उतने ही दोष उत्पन्न हो सकते हैं, जितने उसके गुण होते हैं । इसलिये दूध का अति उपयोग करना भी ख़तरे का मार्क है । दूध के अति प्रयोग से रक्त-स्वल्पता, सूखी-मैली, कोष्ठ-बद्धता, उदरामय तथा गुर्दे की अनेक बीमारियाँ हो जाती हैं ।

एक बड़े मार्के की बात यह है कि टायफ़ायड ज्वर (मियादी बुख़ार), विशूचिका, माता तथा अन्य कई संक्रामक रोगों के जीवाणु दूध में बड़ी सरलता के साथ थोड़े समय में उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे अनेक स्वस्थ मनुष्य बीमारी के शिकार बन जाते हैं। इसलिये दूध को, यदि तनिक भी इन रोगों की आशंका हो तो, गरम या पास्ट्यूराइस कर लेना चाहिए, ताकि इन रोगों के जीवाणु नष्ट हो जायँ। इससे बीमारी का कोई डर न रहेगा। ऐसी अवस्था में, दूध के विटामिंस अवश्य नष्ट हो जायँगे, और उनसे उतना लाभ न होगा, जितना होना चाहिए। तब फिर गरम किए हुए दूध में नीबू, टमाटर (अधपका) और लैब्यूस का रस डालकर नष्टप्राय विटामिंस फिर से प्रवेश कर सकते हैं, परंतु वह मज़ा, वह गुण न आवेगा।

हाँ, लेखक ने कई लोगों के मुँह से यह बात सुनी है कि दूध गरम करके पीना चाहिए अथवा कच्चा ही। निस्संदेह यह एक महत्त्व का विषय है। इस विषय पर कई मत हैं। परंतु यह बात अवश्य है कि जो स्वाभाविक शक्ति कच्चे (धारोष्ण) दूध में रहती है, वह गरम दूध में योगहर्ट तथा नीबू, टमाटर और लैब्यूस मिलाने पर भी नहीं लौटती। यह बात अवश्य है कि मामूली गरम किए हुए दूध से योगहर्ट आदिवाला दूध कहीं अच्छा तथा स्वास्थ्यकर होता है। इस दूध के स्वाद में भी ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ हो जाता है। धारोष्ण दूध में, जो तत्काल ही लेक्टिक-एसिड के जीवाणु उत्पन्न हो जाते हैं, निस्संदेह वे दूध के स्वाद, गुण और उपयोगिता को मामूली दूध से कईगुना अच्छा बना देते हैं। जब आस-पास में छूत की बीमारियाँ हों, तो उस समय कच्चा दूध कदापि न पीना चाहिए। इसका कारण हम पहले बतला चुके हैं। गरम किए हुए दूध में बाज़ार से लाकर योगहर्ट-मिल्क मिला लेना चाहिए, फिर उसमें नीबू आदि डालकर उसे विटामिन-युक्त बना लेना और तब कहीं पीना चाहिए।

गरम दूध को रोटी, चावल और खिचड़ी के साथ खाना न खाने के बराबर है। इस प्रकार का आहार ऐसा वसा-युक्त होता है, जिससे चर्बी तथा गरिष्ठता की वृद्धि होती है, और अजीर्णता, कोष्ठ-बद्धता आदि कई प्रकार के पाक-प्रणाली-संबंधी रोग उठ खड़े होते हैं। लेखक के अनुभव-अनुसार ८०% ऐसे लोग हैं, जो दूध का प्रयोग उपर्युक्त प्रकार से करते हैं। भारत में चाय के साथ दूध का उपयोग भी दिन-प्रति-दिन बढ़ रहा है। चाय के साथ मिलकर दूध एक प्रकार का नशा-सा हो जाता है, जिससे चाय के प्रेमियों की चेतना-शक्ति तथा सूक्ष्मेंद्रिय पर थोड़े समय के लिये आघात पहुँचता है, जिसके फल-स्वरूप वे शिथिलता का अनुभव करते हैं, और उन्हें एक प्रकार का ऊपरी आनंद-सा होता है।

दूध को छोड़कर मलाई, मक्खन, पनीर आदि दूध से बनाई गई विभिन्न वस्तुओं का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। छाछ और दही, ये दो चीज़ें बड़ी ही लाभदायक प्रमाणित हो चुकी हैं। कोष्ठ-बद्धता, अजीर्णता आदि पेट-संबंधी अनेक रोगों में इनके प्रयोग से आशातीत लाभ हुआ है। आँव व क़ै-दस्त में भी इनको पिलाने से बड़ा लाभ होता है। सर्दी-गर्मी (Sunstroke) के रोग में काली मिर्च और छाछ देने से बहुत फ़ायदा हुआ है।

अमेरिका, जर्मनी तथा इँगलैंड में कई प्रयोगशालाएँ हैं, जिनमें कई लोग केवल दूध पर ही बीस-बीस वर्ष तक रहे हैं। उनके लिखे हुए अनुभव तथा निरीक्षण करनेवाले डॉक्टरों की रिपोर्टों से पता लगता है कि दूध का आहारिक महत्त्व निस्संदेह आश्चर्य-जनक ही नहीं, वरन् महान् आरोग्य-वर्द्धक है। इससे कई असाध्य रोगी भी सुधर गए हैं।

सर्वोत्तम दूध गाय का होता है। कृष्णा (काली) गाय का दूध अन्य रंग की गायों से अधिक आरोग्य-वर्द्धक तथा स्वादिष्ठ होता है। इस दूध से वायु-संबंधी अनेक रोग अच्छे हो जाते हैं। इसमें कीटाणु-नाशक शक्ति भी परले दर्जे की होती है। पीले और लाल रंग की गाय का दूध शीत और कफ-प्रकृति के लोगों के

लिये अच्छा प्रमाणित हुआ है । गाय जनने के लगभग तीन हफ़्ते बाद ही उसके दूध का प्रयोग करना चाहिए; अन्यथा उस दूध में कई प्रकार के विष पाए जाते हैं, जिनसे आरोग्य शरीर में भी रोग हो जाने का डर रहता है । स्वस्थ तथा आरोग्य गाय का दूध ही उपयोग में लाना चाहिए। बीमार गाय का दूध कदापि न पीना चाहिए। जब गाय का बच्चा मर जाय, तो कुछ दिन तक उसके दूध का प्रयोग करना बंद कर देना चाहिए, ताकि बच्चे के बिछोह से जो आंतरिक दुःख गाय को होता है, उसके फल-स्वरूप जो विकार गाय के शरीर में उत्पन्न होते हैं, उनका प्रभाव हमारे स्वस्थ शरीर पर न पड़ने पावे । ये नियम गाय ही नहीं, वरन् अन्य दूध देनेवाले पशुओं के लिये भी आवश्यक हैं।

भैंस का दूध गाय की अपेक्षा अधिक गरिष्ठ तथा भारी होता है, इसलिये उसका पचाना कठिन हो जाता है। भैंस की बहुतायत होने से दूध भी अधिक मिलता है। दिमाग़ी काम करनेवालों को गाय का और शारीरिक परिश्रम करनेवालों को भैंस का दूध पीना चाहिए, जिससे किसी को नुक़सान न होने पावे।

बकरी का दूध गाय के दूध से गाढ़ा होता है और उससे बिसायँदी गंध आती है। वसा और शर्करा कम होने के कारण यह दूध जल्दी पच जाता है । पीला पेशाब, लाल पेशाब तथा मूत्रावरोध के समय बकरी का दूध उपयोगी सिद्ध हुआ है। आतशक, गर्मी, उदरामय, अर्श, पितज्वर, खाँसी, कफ, क्षयरोग आदि में बकरी का दूध बहुत प्रयोग किया जाता है। इससे लाभ भी होता है।

भेड़ का दूध नमकीन तथा बिसाँयदा होता है। इसके दूध में वसा अधिक मिलती है। बहुमूत्र तथा पाक-प्रणाली-संबंधी रोगों में इससे लाभ होता है। वीर्य को गाढ़ा, शुक्रमय तथा स्तंभित करता है।

ऊँटनी का दूध नमकीन होता है। वसा कम पाई जाती है । इसके दूध से कई रोग अच्छे होते हैं। क्षयरोग, निमोनिया, त्वचा के रोग, कफ तथा मूत्र-प्रणाली के कई रोग इससे अच्छे हो जाते हैं।

हथिनी का दूध अत्यंत गरिष्ठ होता है, इसलिये जल्दी नहीं पचाया जा सकता। यह बड़ा ही बल-वर्द्धक होता है। इसके लगातार उपयोग करने से वासना बढ़ती है। वीर्य का स्खलन बड़ी देर बाद होता है। भारत के नवाब तथा राजे-महाराजे कई हथिनियाँ इसीलिये रखते हैं। आँख आने पर हथिनी का दूध आँजने से आँख अच्छी हो जाती है। यह स्वयं लेखक का अनुभव है।

गधी का दूध बड़ा काम देता है। गर्मी, सुज़ाक, लाल पेशाब आदि में इसका प्रयोग होता है। क्षयरोगी को यह दूध पिलाने से आशातीत लाभ हुआ है। प्लुरिज़ी में भी इससे फ़ायदा होता है। फेफड़े की तमाम बीमारियों के लिये गधी का दूध अत्यंत ही उपयोगी प्रमाणित हो चुका है।

घोड़ी का दूध भेड़ के दूध के समान ही होता है। गरमी के दिनों में पागल हुए मनुष्य को यदि यह दूध दिया जाय, तो निस्संदेह लाभ होगा । हिस्टीरिया तथा मिरगी में भी लाभ होता है।

स्त्री का दूध बड़ा ही बलिष्ठ और गुणकारी होता है। सभी अच्छी बातें इसमें पाई जाती हैं। प्रयोग द्वारा मालूम हुआ है कि वृद्धावस्था में होनेवाले रोगों से जब मनुष्य बिलकुल शिकस्त हो जाता है, उस समय यदि युवा स्त्री का दूध उसे दिया जाय, तो निस्संदेह वह शीघ्र ही हृष्ट-पुष्ट हो जायगा। शक्ति और बल का पूर्ण संचार हो जाता है। अच्छा हो, यदि बूढ़े बालक बनकर आरोग्यता पा सकें, परंतु भला यह अनर्थ वे तन-प्राण रहते कैसे कर सकते हैं?

निस्संदेह गाय के दूध से अनेक रोग अच्छे हो जाते हैं। इसके लिये केवल दूध ही पर रहना चाहिए। अन्य खाद्य पदार्थों का उपयोग न करना चाहिए। भारत के प्राचीन वैद्य-शिरोमणि चरक का कथन है कि रोगी को कोई दूसरा पदार्थ न दो, केवल दूध ही उसे चंगा कर देगा। अरब-निवासी भी इसी

सिद्धांत के अनुगामी थे। आजकल के सुप्रसिद्ध डॉक्टर भी इस मत पर अवतरित हो रहे हैं। कुछ रोगों को छोड़कर बाक़ी सब रोग केवल गाय के दूध के उपयोग से अच्छे हो सकते हैं। वे रोग जिनमें दूध का निषेध किया गया है, ये हैं—गुर्दे की बीमारियाँ, मृगी, अपस्मार और हर्निया। क्योंकि जब अधिक परिमाण में दूध लिया जाता है, उस समय गुर्दों को काम भी अधिक करना पड़ता है। चूँकि ये अवयव पहले ही से रोगी तथा शिथिल हो जाते हैं, इसलिये अधिक काम पड़ जाने पर ये और भी ख़राब व शिथिल हो जायँगे, जिससे लाभ के बदले हानि ही अधिक होगी। मूत्र-ग्रंथियों के रोगियों को भी दूध का प्रयोग बहुत कम अथवा बिलकुल करना ही न चाहिए। इसके अलावा शेष सब रोगों के लिये दुग्ध-चिकित्सा बड़ी ही उपयोगी साबित हुई है।

दुग्ध-चिकित्सा किस प्रकार आरंभ करनी चाहिए, और उससे क्या-क्या लाभ होते हैं? अब इसका विचार किया जायगा। कई लोग शिकायत करते हैं कि उन्हें दूध पचता ही नहीं, फिर वे किस प्रकार इस भयावह प्रणाली की शरण लें? यह ठीक भी है। ऐसा देखा जाता है कि लोग भोजन ख़ूब ठूँसकर करते हैं, और ऊपर से पाव-आध सेर दूध चढ़ाकर पचाने का व्यर्थ प्रयास भी करते हैं। भला, यह कैसे हो सकता है? अरे भाई, पेट आख़िर पेट ही है, मशक नहीं कि जितना भरो, भरती ही जाय। इसका फल यह होता है कि ज़रूरत से ज़्यादा मिक़दार में दूध जाने पर दूध पेट में नहीं रह सकता, और पेट अधिक पदार्थ को ज़बरदस्ती निकाल बाहर कर देता है। इससे हमारे सज्जन डर जाते हैं, और दूध-ऐसे पदार्थ को दूर ही से प्रणाम कर लेते हैं। अगर देखा जाय, तो मालूम होगा कि एक स्वस्थ मनुष्य चौबीस घंटे में डेढ़ गैलन दूध पचा सकता है। यह कोई आश्चर्य-जनक बात नहीं, नित्य का व्यापार है।

जो लोग दूध से ३६ का नाता जोड़ते हैं, वे बड़ी ग़लती करते हैं। वह यह कि उनकी समझ के अनुसार दूध भोजन नहीं, वरन् पानी के समान कोई पेय पदार्थ है। इसीलिये फ़ुटबाल भरा रहने पर भी, पेट ग़रीब पर निर्दय हो, भरते ही रहते हैं, जिसके फल-स्वरूप उदरामय हो जाना कोई कठिन तथा आश्चर्य-जनक बात नहीं। इसके अलावा दूध को घूँट-प्रति-घूँट न पीकर एकदम पानी के समान पी जाते हैं, जिससे अक्सर अजीर्णता हो जाया करती है।

दुग्ध-चिकित्सा का उद्देश्य केवल यही है कि लगातार कई वर्षों तक दिन में कई बार भोजन करने से पाक-प्रणाली की नलिकाओं तथा अँतड़ियों में एक प्रकार का मैल तथा कीट-सा जम जाता है, जिसके कारण समय-समय पर कई व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यह कीट तथा मैल कभी-कभी इतना पुराना हो जाता है कि वह सड़ने लगता है, जिससे कई प्रकार की विषाक्त गैसें उत्पन्न होती हैं, जो शरीर की विभिन्न नलियों में प्रवेश कर रक्त दूषित कर देती हैं। इस मैल तथा कीट को निकाल बाहर करना ही दुग्ध-चिकित्सा का प्रमुख कार्य है।

दुग्ध-चिकित्सा आरंभ करते समय बड़ी सावधानी से कार्य करना चाहिए। कभी-कभी पेट दूध पचा ही नहीं सकता, और या तो एकदम क़ै अथवा दस्त हो जाता है। इसका कारण यह है कि वर्षों से ठोस पदार्थों का भोजन-रूप में प्रयोग करते रहने से पेट की अँतड़ियाँ उस प्रकार के भोजन की आदी हो जाती और द्रव मिलते ही बग़ावत कर बैठती हैं। इसलिये धीरे-धीरे साधारण भोजन कम करते जाना चाहिए, और उसके स्थान में दूध तथा फल का प्रयोग करना चाहिए। ऐसा करने से थोड़े दिन बाद ही मनुष्य सरलता से दूध-आहार पर आ सकता है। फिर उसे पंद्रह दिन, एक महीना, तीन महीना, जितने दिन बने, केवल दूध ही पर रहना चाहिए। यदि पानी की विशेष आवश्यकता जान पड़े, तो पानी का उपयोग करना कोई बुरी या हानिकारक बात नहीं। इस काल में

पेट तथा पाक-प्रणाली को बहुत काम न करना पड़ेगा। नलिकाओं और अँतड़ियों में जमा हुआ मैल निकल जायगा, जिससे अनेक व्याधियों की आशंका नष्ट हो जायगी।

किसी निश्चित काल के बाद फिर अपना आहार दूध से धीरे-धीरे फल पर और फल से फिर हलके-से-हलके भोजन पर लाना चाहिए। लगभग एक सप्ताह तक हलके भोजन का प्रयोग कर लेने पर फिर साधारण भोजन पर आना चाहिए, अन्यथा कभी-कभी लाभ के बदले हानि ही नज़र आती है। दुग्ध-चिकित्सा कोई कठिन बात नहीं, अत्यंत सरल एवं साधारण बात है। केवल जीभ और असावधानी पर ख़याल रखना चाहिए।

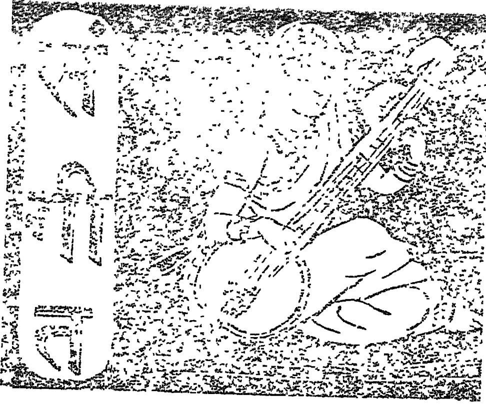
दुग्ध-चिकित्सा आरंभ करते वक्त यह दृढ़ विश्वास रखना चाहिए कि इससे हमें लाभ ही होगा, हानि नहीं। चिकित्सा वैसे तो साल के किसी भी महीने में कर सकते हैं, परंतु इसके लिये वसंत-ऋतु अति उत्तम समय है। वसंत में न अधिक जाड़ा, न अधिक गर्मी, प्रकृति की युवावस्था रहती है। हर प्राकृतिक चीज़ में मस्ती, अल्हड़पन तथा शीराज़ी टपकती है। इस समय गायों को जो हरी-हरी दूब, घास व पत्तियाँ मिलती हैं, वे सब उसी रंग में रँगी रहती हैं। चिकित्सा के लिये गाय व बकरी का दूध ही अच्छा होता है। ताज़ा तथा स्वच्छ दूध ही लेना चाहिए। दूध घूँट-प्रति-घूँट करके पीना चाहिए। दूध की मात्रा धीरे-धीरे ही बढ़ानी चाहिए। चिकित्सा-काल में किसी-न-किसी रूप में कुछ मशक़्क़त अवश्य करनी चाहिए। विचार ऊँचे तथा मन निर्मल रखना चाहिए। षड्रिपु में से किसी का प्रवेश न होना चाहिए।

चिकित्सा-काल में अधिकतर कई ऐसे उपसर्ग दिखलाई पड़ते हैं, जिनसे कई लोग डर जाते हैं, और उल्टे बिना कारण रोगी बन बैठते हैं। ये उपसर्ग इसलिये प्रकट होते हैं कि जब शरीर के विभिन्न मार्गों से विषैली गैसें तथा विषैले पदार्थ निकलते हैं, उस समय शरीर में एक प्रकार का प्रकंपन, ताप तथा ऐसा अनुभव होता है, मानो शरीर रोगी हो। इससे प्रायः बहुतेरे डर जाते और चिकित्सा छोड़ बैठते हैं। ऐसा कदापि न करना चाहिए। चक्कर आना, मितली, ज्वर रहना, सिर दुखना, हाथ-पैर में दर्द, खाँसी, कफ, उदरामय आदि रोगों के उपसर्ग दिखलाई पड़ते हैं। कभी कमज़ोरी, दिल की धड़कन तथा हतोत्साह भी मालूम पड़ता है।

चिकित्सा-काल में नीबू, अनार तथा नारंगी का उपयोग करना चाहिए। इससे दुर्बलता, हृत्-स्पंदन, मितली तथा उदरामय में लाभ होता है। यह न समझना चाहिए कि ये उपसर्ग चिकित्सा के कारण हुए हैं, परंतु इसका कारण यही है कि शरीर में जो विषैले पदार्थ हैं, उनके फल-स्वरूप ही ये उपसर्ग प्रकट होते हैं।

कई लोग दुग्ध-चिकित्सा के नाम से ही घबराते हैं, परंतु ऐसा न करना चाहिए। दूध पर रहनेवालों से पूछा जाय, तो वे वही उत्तर देते हैं, जो हम किसी मांसाहारी को देते हैं। दूध एक ऐसा पदार्थ है, जिस पर रहकर हम अपने अनेक रोगों को परास्त कर सकते हैं। वैसे तो उपवास-चिकित्सा दुग्ध-चिकित्सा से भी कहीं अच्छी है, परंतु उसमें तनिक जीवट का काम है। दुग्ध-चिकित्सा में ठोस भोजन के स्थान में द्रव भोजन दिया जाता है। पेट इसमें भरा रहता है और उसमें भी। केवल अंतर है उनके रूप और गुण में।

इसलिये रोगियों को चाहिए कि वे इस चिकित्सा का आश्रय लेकर अपने पुराने रोगों का उन्मूलन करें। इसमें अधिक धन की आवश्यकता नहीं, और न किसी प्रकार का ख़तरा ही है। बस, जो चाहिए, वह है मरज़ी और चिकित्सा में लगन। इस चिकित्सा के आज़मानेवालों से लेखक का अनुरोध है कि वे अपनी कठिनाइयाँ उससे पूछें। भरसक जितनी सहायता हो सकेगी, वह करने को सदैव तत्पर है।



शब्दकार—अज्ञात] [स्वरकार—कुमारी गोपालदेवी हिंदी-प्रभाकर

राग—खमाच-बहार—तीन ताल

गीत

तुम आओ वसंत सुहाए,
किरण रँग-रंगीली पंख उठाए।
ले आओ नित नूतन गायन,
फूल-पात मन-भाए ॥ १ ॥
मंजुल मंजरी-पुंज मनोहर,
कुंज-बहार बढ़ाए ॥ २ ॥

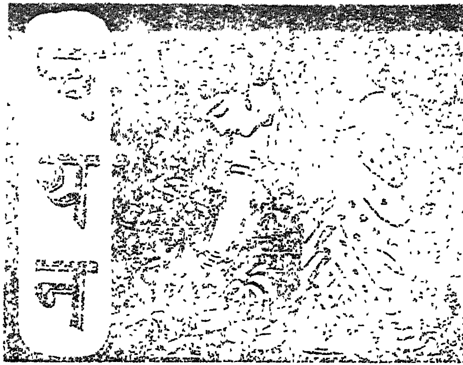
स्थायी

०				३				×				२			
नि	सां	रें	—	सां	नि̱	प	प	प	—	ग	म	प	नि	सां	सां
आ	—	आ	—	व	सं	त	सु	हा	—	ए	कि	र	ण	तु	म
ग	ग	म	—	रे	—	सा	—	गम	पनि̱	धप	गम	प	नि	सां	—
रँ	ग	रं	—	गी	—	ली	—	पं–	––	ख–	उ–	ठा	—	ए	—

अंतरा

०				३				×				२			
म	—	म	—	नि̱	ध	नि	नि	सां	नि	नि	सां	रें	नि	सां	सां
ले	—	आ	—	ओ	—	नि	त	नू	—	त	न	गा	—	य	न
नि̱	—	प	प	म	प	ग	म	मप	धनि̱	धप	मप	नि	—	सां	—
फू	—	ल	पा	—	त	म	न	भा–	––	––	––	—	—	ए	—

दूसरा अंतरा भी इसी तरह।



१. 'ऊषा' नाटिका



दी-साहित्य में रंग-मंच की जो दुर्दशा है, वह किसी से छिपी नहीं । यह अभाव लोग सदा-सर्वदा अनुभव करते रहे हैं, करते हैं । हिंदी-साहित्य-सम्मेलन ने रंग-मंच की दशा सुधारने के लिये कई प्रस्ताव किए, परंतु सक्रिय आंदोलन और उद्योग न होने से सब-के-सब अरण्य-रोदन ही सिद्ध हुए । फलतः आज भी, जब हिंदी पर्याप्त उन्नत हो चुकी है, हमारे रंग-मंच पर पारसी कंपनियों का एकच्छत्र अधिकार है। पारसी कंपनियों द्वारा खेले जानेवाले नाटक कैसे हैं, यह किसी समझदार को समझाने की आवश्यकता नहीं । पारसी कंपनियाँ अधिकांश नाटक फ़रमाइश द्वारा तैयार करवाती हैं । इसके अतिरिक्त जो कुछ लेखकों के लिखे हुए पौराणिक नाटक हैं भी, वे साहित्य की दृष्टि से नितांत निम्न श्रेणी के हैं । पौराणिक काल का भ्रष्ट चित्र सामने रखना तथा असंस्कृत जनता की रुचि की पूर्ति करना, यही इन नाटकों का लक्ष्य हो रहा है । ऐसी दशा में हम किसी सामाजिक और साहित्यिक क्रांति की, जो नाटक का उद्देश्य और निर्देश दोनो हैं, अपने अंदर आशा ही कैसे कर सकते हैं ? जहाँ भी कहीं समाज में सत्य की दिशा में क्रांति हुई है, साहित्य के भीतर से हुई है । हमारे वहाँ इस तरह का अभी तक कोई प्रयत्न नहीं हुआ, इसीलिये हमारा समाज भी सुधारकों के निरंतर अथक अध्यवसाय को व्यर्थ कर पतन के गंभीर गर्त में निश्चेष्ट पड़ा है। हाँ, हमारे यहाँ काव्य और आख्यान आदि में अवश्य ही कुछ मुक्ति और जागृति के लक्षण दृष्टि-गोचर हुए हैं । परंतु नाट्य-साहित्य तो एकदम दक़ियानूसी आदर्शवाद का ख़ज़ाना है । प्रत्येक हिंदी-भाषा-भाषी के लिये यह कितने परिताप की बात है । यदि कविवर प्रसादजी के लिखे हुए नाटक निकाल दिए जायँ, तो हमारे पास कुछ आँसू पोंछने को भी नहीं रह जाता। इधर कविवर सुमित्रानंदनजी पंत ने नाटकों का प्रणयन प्रारंभ कर दिया है । उनकी 'ज्योत्स्ना' नाटिका शीघ्र ही प्रकाशित होने को है । यह कल्पना के विराट् पट पर अंकित एक भव्यतम रेखा-चित्र है । वह इसी तरह के अन्यान्य नाटक भी लिख रहे हैं। ये सभी साहित्य के चमकते हुए हीरे होंगे, ऐसा विश्वास है, और हिंदीवाले इन्हें कंठ-हार की तरह वक्ष पर धारण करेंगे, ऐसी आशा है। परंतु नाटकों की चरम सिद्धि यही है कि वे अभिनीत हों। फिर साहित्यिक नाटकों की सफलता के लिये उनका साहित्यिकों द्वारा अभिनीत होना ही श्रेयस्कर है । इसी भावना से प्रेरित होकर कविवर श्री-निरालाजी ने 'ऊषा' नाटिका लिखने का उपक्रम

किया है, जो निकट-भविष्य में, लखनऊ में, अभिनीत होगी। निरालाजी श्रेष्ठ साहित्यिक हैं ही; फिर आप हिंदी में रंग-मंच के अन्यतम विशेषज्ञ भी हैं। बीसियों बार आप कलकत्ते में हिंदी और बँगला के रंग-मंच पर उतरे हैं, प्रशंसनीय सफलता पाई है। एक बार स्वरचित नाटक लेकर उतरे थे, जिसका साहित्यिक और सर्व-साधारण, दोनो ही ने हार्दिक अभिनंदन किया था। इस नाटिका में हम निरालाजी के मुक्त छंद की साधना फलवती होते देखेंगे। वे स्वयं अपने अनुकूल ही किसी भूमिका में सामने आवेंगे। कविवर पंतजी ऊषा की भूमिका में उतरेंगे, और नाटक में अपनी भूमिका का निर्माण स्वेच्छानुसार करेंगे। कविवर प्रसादजी प्रारंभिक गायन का प्रणयन करेंगे। इस तरह हमारे साहित्य की 'बृहत्त्रयी' के सहयोग से निर्मित यह अमर ग्रंथ-रत्न होगा, और इसका अभिनय हिंदी के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना! अभिनय की सूचना, तारीख़ और समय आदि के साथ, पुनश्च निर्णय होने पर दी जायगी। इसके संबंध की अन्यान्य बातें क्रमशः पत्रों में प्रकाशित होती रहेंगी। हमको हिंदी के साहित्यिकों और जनता से उचित सहयोग, सहानुभूति की आशा है। हिंदी के ख्याति-लब्ध साहित्यिक और विश्वविद्यालय के विद्यार्थी इस आयोजन में हमारे साथ हैं। अभिनय में भाग लेनेवाले कुछ प्रमुख व्यक्तियों के नाम ये हैं—

१. श्रीपं० दुलारेलालजी भार्गव ('सुधा'-संपादक)
२. श्रीपं० मातादीनजी शुक्ल ('माधुरी'-संपादक)
३. श्रीसत्याचरण वर्मा 'सत्य' एम्० ए०, शास्त्री
४. श्रीपं० उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' एम्० ए० (ऑनर्स)
५. श्रीपं० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'अरुण' बी० ए०
६. श्रीपुरुषोत्तमलाल भार्गव एम्० ए०, शास्त्री
७. श्रीपं० श्यामापति पांडेय एम्० ए०
८. श्रीहर्षवर्द्धन नाथानी एम्० ए०
९. श्रीपं० कामेश्वर शर्मा 'कमल' साहित्य-भूषण (बिहार)
१०. कुँवर गोपालसिंह बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०
११. श्रीबलभद्रप्रसाद दीक्षित
१२. श्रीरामेश्वर शुक्ल 'अंचल'
१३. श्रीगिरीशचंद्र पंत 'अनंग'
१४. श्रीरामरतन भटनागर 'हसरत'
१५. श्रीरामसहाय पांडेय 'चंद्र'
१६. पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित साहित्य-रत्न

यहाँ हम यह भी बतला देना चाहते हैं कि यह नाटिका जनता और विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर, सुविधा मिलने पर, बनारस, इलाहाबाद, कानपुर आदि नगरों में भी खेली जा सकेगी।

निवेदक—
कुँवर चंद्रप्रकाशसिंह
मंत्री 'ऊषा'-समिति
भार्गव-मैजेस्टिक होटल
हीवेट रोड, लखनऊ

× × ×

२. जन-विश्वास या वहम

सब जगहों के मनुष्यों में कुछ ऐसे विश्वास पाए जाते हैं, जिनका बुद्धि-पूर्वक कोई समाधान नहीं मिलता। लोग उन्हें मानते हैं, क्योंकि वे सदा से मानते चले आए हैं। इस प्रकार की बातों को अंध-विश्वास भी कहते हैं। इनका अध्ययन बड़ा मनोरंजक और कौतूहल-जनक होता है। जो जातियाँ सभ्यता के साँचे में नहीं ढली हैं, उनके बेडौल रीति-रिवाजों और इतिहास आदि का अध्ययन करनेवाले शास्त्र का अँगरेज़ी नाम एँथ्रोपोलोजी (Anthropos=जन और Logos=विद्या) है। इसी के अंतर्गत जन-विश्वास का अध्ययन भी है।

लोगों की ये धारणाएँ, वहम या अक़ीदे हरएक जगह भिन्न-भिन्न होते हैं। तात्पर्य यह कि उनका सर्वत्र होना कोई नियम नहीं है। कभी-कभी ऐसा भी देखने

में आता है कि एक ख़ास विश्वास तो बहुत दूर तक प्रचलित पाया जाता है, और उसी स्थान का दूसरा विश्वास थोड़े-से प्रदेश में सीमित रह जाता है। नीचे जिन विश्वासों का वर्णन किया गया है, वे संयुक्तप्रांत के पश्चिमी भाग में पाए जाते हैं। पुरुषों की अपेक्षा इनकी मानता स्त्रियों में बहुत ज़्यादा पाई जाती है। इनके सही-सही बर्तने का भार भी बहुत कुछ उन्हीं पर है—

१. नमक बिखर जाना—यह बहुत असैना समझा जाता है। क्या जानें पुराने वक़्त में नमक के इस्तेमाल में बहुत एहतियात किया जाता रहा हो, उसी का यह नमूना है। जब कोई बच्चा जान-बूझकर नमक गिराता है, तो स्त्रियाँ कहती हैं कि रामजी के यहाँ तुम्हें यह नमक आँखों से बीनना पड़ेगा। बच्चे समझते हैं, जब नमक आँखों में इतना लगता है, तो आँखों से उसे चुनने में तो अपार तकलीफ़ होगी, और उनके पेट में एक डर-सा पैठ जाता है।

२. पलंग पर झाड़ू रखना—इससे यह नतीजा निकाला जाता है कि जिस खाट पर झाड़ू रक्खी गई है, उस पर साँप चढ़कर सोनेवाले को नुक़सान पहुँचाएगा। कहते हैं, कृष्णजी ने कालिय नाग को नाथते समय उससे यह प्रतिज्ञा कराई थी कि मैं खाट पर कभी नहीं चढ़ूँगा, और अग्रवाल बनियों को कभी नहीं काटूँगा। अग्रवालों के घरों में स्त्रियाँ साँपों को मामा कहा करती हैं, क्योंकि राजा अग्रसेन के लड़कों का विवाह नाग-कन्याओं से हुआ था। ऐसा माना जाता है कि खाट पर न चढ़ने की प्रतिज्ञा का पालन नागों के वंशज आज तक करते हैं। जिस खाट पर झाड़ू रख दी जाती या जिस सोने की ऊँची जगह पर झाड़ू लगाई जाती है, वहाँ के लिये सर्प प्रतिज्ञा-मुक्त हो जाता है।

३. झाड़ू सीधी खड़ी करना—किसी कोने में या दीवार के सहारे बुहारी को सीधी छड़ी या डंडे की तरह खड़ी करना बुरा समझा जाता है। जिन विश्वासों का कोई विशेष कारण नहीं मिलता, उनमें इतना ही कह देते हैं कि ऐसा करने से गाली लगती है, या यह काम असहना है। सफ़ाई के बाद झाड़ू ज़मीन पर डाल देते हैं।

४. झाड़ू मारना—जिस आदमी को झाड़ू मारी जाती है, उसके हक़ में बहुत बुरा समझा जाता है। अक्सर कुत्तों को खाँसी उठती है, जिसमें धसक हो जाती है। इसका कारण स्त्रियाँ यह बताती हैं कि किसी ने इसके झाड़ू मार दी है।

५. जूते के ऊपर जूता चढ़ना—जब हम जूते उतार देते हैं, तो कभी-कभी एक के ऊपर दूसरा चढ़ जाता है। बूट जूतों में यह कम होता है, पर गाँव के चमरौधों में यह अक्सर हो जाता है। इससे यह समझा जाता है कि जूतेवाले को कहीं दूर की यात्रा करनी होगी, अर्थात् उसके पैर में चक्र है, और उसे पैदल ही दूर की मंज़िल तय करनी पड़ेगी।

६. शाम को या रात में झाड़ू देना—गृहस्थ की दिनचर्या में झाड़ू देना सवेरे का काम है। जहाँ शाम तक झाड़ू न लगे, वहाँ बड़ा आलस्य रहता होगा। इसीलिये कहते हैं कि शाम के वक़्त जिस घर में झाड़ू लगती है, वहाँ से लक्ष्मीजी रूठकर दूर चली जाती हैं। इसी तरह यह भी माना जाता है कि जिस घर में शाम को दिया जलता हुआ नहीं मिलता, या जहाँ की ड्योढ़ी दिया बले बंद रहती है, वहाँ से भी लक्ष्मीजी लौट जाती हैं। चाहे और वक़्त किवाड़ बंद भी रहें, लेकिन दिया जलाने के वक़्त थोड़ी देर को दरवाज़ा खोल दिया जाता है।

७. खड़े-खड़े दूध पीना—यह अच्छा है कि दूध या पानी बैठकर पिया जाय। खड़े होकर दूध पीने से, कहते हैं, गाय कूद जायगी, अर्थात् दूध न देगी या लात मार देगी।

८. दाँतों से नाख़ून कुतरना—यह गंदी आदत कुछ मनुष्यों में पाई जाती है। कोई-कोई नाख़ून के साथ-साथ खाल तक नोच लेते हैं। ऐसा करने से, कहते हैं, मनुष्य की लक्ष्मी या शोभा घट जाती है। नाख़ून कुतरनेवाला चाहे राजा ही क्यों न हो, वह भी कुछ दिनों में कंगाल हो जाता है।

९. दिन में कहानी कहना—बच्चों को कहानी सुनने का बड़ा शौक़ होता है। इसके लिये वे कभी दिन में भी बड़े-बूढ़ों को घेरने लगते हैं। तब वे कह देते हैं कि दिन में कहानी कहने से मामा रास्ता भूल जाता है।

१०. इतवार को चने चबाना—शनिश्चर को चने चबाना शुभ और इतवार को अशुभ मानते हैं। कहते हैं, जो इतवार को चने चबाता है, उसे लोहे के चने चबाने पड़ते हैं।

११. नए घड़े के भीतर हाथ डालकर साफ़ करने से लोग समझते हैं कि उसका पानी पीते वक़्त बदबू आने लगेगी। इसलिये स्त्रियाँ इसका बहुत विचार करती हैं।

१२. रात में खाट की पाँयत या अदवायन कसने से यह समझा जाता है कि कसनेवाले के लड़कियाँ बहुत होंगी। हिंदू-समाज में कन्या का जन्म बहुत कम लोग चाहते हैं, इससे लोग रात को खाट कसते हुए घबराया करते हैं।

१३. बच्चों को खाट पर उलटा सुलाना—बच्चों का सिर खाट के पाँयत की ओर करके लिटाने से यह समझा जाता है कि उनके ऊपर के दाँत पहले निकलेंगे। स्वभावतः नीचे के दाँत पहले निकलने चाहिए। ऊपर के दाँतों का पहले निकल आना मामा के लिये दोष होता है।

१४. जली हुई बत्ती को दूसरे दिन फिर जलाना बहुत अशुभ माना जाता है। पहले ज़माने में सब कहीं और देहात में आजकल भी मिट्टी के दीपक जलाए जाते थे। हर रोज़ नई बत्ती बटकर दिए में डाली जाती थी। एक ही बत्ती को कई दिन तक जलाने से यह समझा जाता है कि लक्ष्मीजी अप्रसन्न होंगी। लीज़ के लैंप या गैसों की बत्तियाँ इस नियम से आज़ाद हैं। देहाती घरों में दिया लेसना एक शुभ घटना है। घर की बड़ी-बूढ़ी या बहू लेसे हुए दिए को हाथ जोड़कर शुभ मनौती करती हैं। रात को सोते वक़्त घर में सबसे बड़ी पुरखिन का यह काम है कि वह दिया बढ़ावे, या उसकी आज्ञा से और कोई बहू इस काम को करे। फूँक से दिया बढ़ाना अशुभ समझा जाता है। कुछ महामति तो लीज़ की लालटैन भी फूँक से बुझाया करते हैं।

१५. पूरी करसी पर आग ले जानेवाले को गाली लगती है। गाँवों में अक्सर स्त्रियाँ पड़ोसिन के घर आग माँगने जाती हैं, या तो लानेवाली ही अपनी करसी फोड़कर ले जाती है, या आग देनेवाली उसे ऐसा करने को बाध्य करती है। चिता की आग साबित करसी पर ले जाई जाती है।

१६. नया कपड़ा पहनकर पानी पीना—मा जब अपने बच्चे को नया कपड़ा पहनाती है, तो उसे पानी पीने के बाद घर से बाहर निकलने देती है। ऐसा करने से वह समझती है कि कोरा कपड़ा बच्चे के लिये फरवे होगा, अर्थात् पहननेवाले और कपड़े, दोनो की आयु बढ़ेगी। यह नियम कोरे कपड़ों के लिये ही है, पर कुछ भीरु स्त्रियाँ धुले हुए कपड़े पहनाने के बाद भी ऐसा ही करती हैं।

१७. बोलते कौए को उड़ाना—सबेरे के समय अक्सर कौए आँगन के छज्जों पर बैठकर काँव-काँव करने लगते हैं। जब बहुत देर तक कौआ बोलता ही रहे, तो स्त्रियाँ समझती हैं कि कौआ किसी पाहुने के आने का सँदेसा लाया है। उस समय कहा जाता है—'ढेढ़, ढेढ़, ओ काने कौए, कोई आता हो, तो उड़ जइयो।' अगर इतना कहते ही कौआ उड़ जाय, तो जानो ज़रूर कोई अतिथि आ रहा है।

१८. हिचकी आने का कारण आयुर्वेद में चाहे जो कुछ हो, पर जन-विश्वास ऐसा है कि किसी दूरस्थित पुरुष के याद करने से हिचकी आ रही है। हिचकीवाला अपने सगे-संबंधी और प्यारों के नाम लेने लगता है। जिसका नाम लेने से हिचकी बंद हो जाती है, वही मानो नाम लेनेवाले का स्मरण कर रहा था।

१९. कातते-कातते तागा तोड़कर उठना अशुभ है। मतलब यह कि झल्लाकर चर्खा नहीं उठाना

चाहिए। जब तार टूट जाय, तो फिर नया तार निकालकर, अगर ज़रूरत हो तो, कातना बंद करना चाहिए।

२०. खाट पर बैठकर टाँग हिलाना, कंधे मटकाना, बग़ल बजाना आदि अंगों की निष्प्रयोजन चेष्टाएँ अशुभ मानी गई हैं। बच्चों की प्रायः इसके लिये भर्त्सना की जाती है।

२१. सूक डूबे में (शुक्रास्त के समय) चूड़ी पहनना, मकान बदलना, कहीं मुहूर्त विचारकर आना-जाना, कोई नया शुभ काम करना, सब वर्जित हैं, और स्त्रियाँ इन सबका बहुत अधिक विचार करती हैं।

२२. चूड़ी तोड़ना—यह वाक्य बड़ा अशुभ है। सधवाओं के लिये हमेशा 'चूड़ी मौलना' कहा जाता है। चूड़ी टूट जाना और विधवा होना—ये समानार्थक हैं।

२३. दूध गिलास या कटोरे में पीना चाहिए। कुछ बच्चे चमची से या कड़ाही में ही दूध पीने लगते हैं। उनको यह कहकर डराया जाता है कि तुम्हारे ब्याह में मेह बरसेगा। जब किसी की शादी में मेह बरसता है, तो यह अनुमान किया जाता है कि वर ने बचपन में चमची से दूध पिया होगा, अथवा कड़ाही या हाँडी चाटी होगी।

२४. दक्षिण की ओर पैर करके सोना बड़ा बुरा समझा जाता है। यह विश्वास प्रायः सारे भारतवर्ष में है कि दक्षिण दिशा में पैर करके नहीं सोना चाहिए। वैज्ञानिक इसका कारण यह बताते हैं कि दक्षिण से उत्तर की ओर बहनेवाला विद्युत्प्रवाह सिर के बल मस्तिष्क में पहुँचकर हानि पहुँचाता है। कुछ भी हो, अपने यहाँ केवल मुर्दे के पैर ही दक्षिण को किए जाते हैं।

वासुदेवशरण

× × ×

३. पलकैं लगी नहीं

(१)

चाहौ कै न चाहौ हमैं, हम तो तिहारी अहैं,
मोरपँखियाँ में भीगी अँखियाँ टँगी रहैं;
मानौ कै न मानौ हमैं, हम हरदम नाथ,
माथ तक तव नेह-रँग में रँगी रहैं।
जानत हौं तेरो सब छल-परपंच, पर
कान्ह, सुन तान अनजान-सी ठगी रहैं;
चित्त चैन है न, नैन सैन बिसरत नाहिं,
ललकैं लगी रहैं, न पलकैं लगी रहैं।

(२)

उर में बस्यो है वही साँवलो, सलोनो रूप,
दूजी जोत नैनन में भूलिहूँ जगी नहीं;
ऊधौ, जमुना में न्हात, चीर-सुधि आइ जात,
छाइ जात बात जनु छिनु बिलगी नहीं।
कहियो सँदेस कुब्जा के कान्हजी सों जाय,
ब्रज में तिहारी कोई बिछुरी सगी नहीं?
सागर गँभीर बरखायो इन आँखिन ने,
बहिबे को करत है, पलकैं लगी नहीं।

श्रीसत्यव्रत शर्मा 'सुजन'

× × ×

४. गढ़वाल-रत्न पं० रत्नांबरदत्त चंदोला

वर्तमान गढ़वाल कितना भी दरिद्र देश क्यों न हो, पर वह आध्यात्मिक परमाणुओं का पुंज है। अति प्राचीन समय में भी वह भारतीय जनों का, नहीं-नहीं, संसार-भर का आध्यात्मिक स्रोत रहा है। वर्तमान समय में भी इसी कारण से उसका महत्त्व है। आध्यात्मिक वातावरण से प्रपूरित, धार्मिक भावों से समन्वित गढ़वाल-प्रदेश की पवित्रता को सब कोई अनुभव करता है। वर्तमान समय में यह प्रदेश भले ही अर्थ-दरिद्र हो, किंतु इसको धी-दरिद्र नहीं कह सकते। किसी विद्वान् का कथन है—

"जीवत्यर्थदरिद्रोऽपि धीदरिद्रो न जीवति।"

अर्थ-दरिद्र पुरुष किसी प्रकार जीवित रह सकता है, किंतु धी-दरिद्र पुरुष जीवित नहीं रह सकता। जो बात एक व्यक्ति की, वही सब जाति की, और वही

राष्ट्र की। गढ़वाल में शिक्षा का ख़ूब प्रचार है, गढ़वाली लड़के वीर, साहसी, तेजस्वी और बुद्धिमान् होते हैं। हमारे चरित्रनायक भी इसी गढ़वाल के हैं। देखने में बड़े सौम्य प्रतीत होते हैं, पर जब कविता करने बैठते हैं, तब इनकी आकृति देखने योग्य होती है। उस समय ऐसा प्रतीत होता है, मानो साक्षात् स्फूर्ति की मूर्ति बैठी है। आप स्वभाव से ही कवि हैं, क्रांत-दर्शी हैं। आपकी सूझ अनोखी है, और आपकी कविता किसी भी विषय को लेकर इस महान् आकाश में स्वच्छंदता-पूर्वक विचरने की शक्ति रखती है। आप सेना-विभाग में किसी उच्च पद पर अधिष्ठित हैं। कहाँ सेना-विभाग की अस्वाभाविक कठोरता और कहाँ कविता-कामिनी की नैसर्गिक सौम्यता! इस प्रकार दोनो विरुद्ध गुण श्रीरत्नांबरदत्तजी में देखने में आते हैं। कहाँ महाभारत का रण-क्षेत्र और कहाँ भगवान् कृष्ण का गीतोपदेश। आपने आज तक तीन सहस्र से ऊपर कविताएँ लिखी हैं—आपका अन्वर्थ 'मधुकोष', जो मुद्रणालय में प्रकाशनार्थ भेजा गया है, एक अपूर्व प्रतिभा का खेल है, 'रत्न' का जाज्वल्यमान प्रकाश है। वह तो एक हिंदी का 'विदग्ध-मुख-मंडन' है।

श्रीरत्नांबरदत्तजी जहाँ उत्तम श्रेणी के गद्य व पद्य-लेखक हैं, वहाँ ललित व्याख्याता भी हैं। हिंदी और अँगरेज़ी में मनोहर भाषण देते हैं। अँगरेज़ी के विद्वान् होते हुए भी, स्वाभाविक शालीनता (अधृष्टता) के कारण अथवा वर्तमान युग के दूत विज्ञापन-युग के चमत्कारों को न समझ सकने के कारण, वह अभी उतनी ख्याति नहीं लाभ कर सके हैं, जितनी ख्याति के वह पात्र हैं। इस उत्तराखंड-प्रदेश में ऐसा कौन है, जो रत्नांबरदत्तजी के नाम को नहीं जानता। हिंदी-जगत् में भी आपको सुशिक्षित वर्ग प्रायः जानता ही है, किंतु एक तो स्ववृत्ति अर्थात् नौकरी में फँसने के कारण वह जनता की स्वतंत्रता-पूर्वक सेवा नहीं कर सकते, दूसरी बात यह कि सेना-विभाग के कृत्रिम नियंत्रणों के कारण उनकी प्रतिभा की गति कुंठित-सी हो गई है, तो भी गढ़वाल के उन्नततम प्रदेश में जन्म लेने के कारण जब कभी इनको अवकाश मिला है, तभी इनकी प्रतिभा ने हिमालय की कांचन-गंगा पर चढ़ाई की है। जब 'मधुकोष' प्रकाशित होगा, सहृदय जन इस बात का स्वयं अनुभव करेंगे। श्रीपं० माखनलाल चतुर्वेदी-जैसे रसिक महानुभाव भी रत्नांबरजी की प्रतिभा पर मुग्ध हैं।

श्रीरत्नांबरदत्तजी चंदोला कुछ काल पश्चात् पूर्ण स्वतंत्र होकर प्रतिभा को स्वच्छंद विचरने का पूर्ण अवसर देंगे, और उससे हिंदी-जगत् को कुछ अनुपम चमत्कार देखने को मिलेगा, ऐसी सदाशा है।

प्रायः कविजन आलसी देखे गए हैं, किंतु श्रीरत्नांबरदत्तजी में आलस्य का लेश भी नहीं है। आपकी संगठन-शैली अनुकरणीय है। विचारों में आप उदार भाव के उत्साही नवयुवक हैं। नवशिक्षित लोग प्रायः धर्म में अनास्था रखते हैं, किंतु श्रीरत्नांबरदत्त चंदोला में गढ़वाल की मिट्टी के सब गुण विद्यमान हैं। पिछले वर्ष ब्रह्मदेश में आपके पैर में कोई व्रण हो गया था, वह इतना बढ़ गया कि पद-विच्छेद का कारण बन गया। नौ बार ऑपरेशन किया गया। आश्चर्य यही है कि वह बच कैसे गए। श्रीरत्नांबरदत्तजी को हम इनकी बाल्यावस्था से ही जानते हैं। हमको क्या ख़बर थी कि यह बालक किसी समय क्रांत-दर्शी कवियों की पंक्ति में बैठने योग्य होगा। हम श्रीरत्नांबरदत्त चंदोला को हृदय से आशीर्वाद देते हैं, और आशा करते हैं, उनका भविष्य-जीवन भी उज्ज्वल कीर्ति को प्राप्त करेगा।

नरदेव शास्त्री (वेदतीर्थ)

× × ×

५. रीडरों का बदलना बंद करो

इस समय, देखता हूँ, रीडरें बहुत बदल रही हैं। हर साल नई-नई रीडरें रक्खी जाती हैं। मैं इसका कारण जानना चाहता हूँ। ये रीडरें कोई अच्छी भी नहीं होतीं। अधिकतर संपादकगण दूसरों

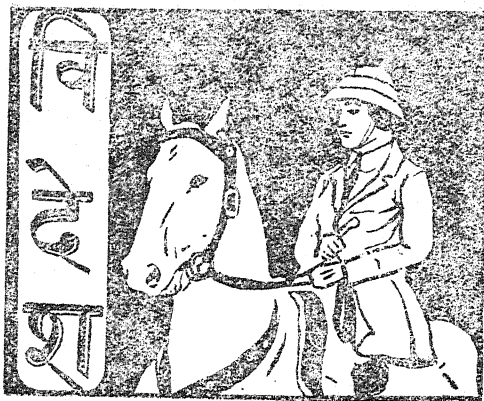
से लिखवाकर रीडरें प्रकाशित करवा लेते हैं, और शिक्षा-विभाग भी विना देखे-सुने इन्हें मंज़ूर कर लेता है! क्या विभाग बता सकता है कि इसका कारण क्या है? क्या रुपयों के ऊपर लड़कों की शिक्षा निछावर कर दी जा रही है? मैं तो इन नई-नई रीडरों के बदलने का मतलब नहीं समझ सकता। ये कोई ऐसी अच्छी भी नहीं होतीं। इनके लेखक कोई बड़े विद्वान् और उस विषय के विशेषज्ञ भी नहीं होते। और, ज़्यादा इसमें नुक़सान होता है लड़कों का। बेचारों को पहले पुरानी पुस्तकें मिल जाया करती थीं। पर अब एक या दो वर्ष के बाद पुरानी रीडरें एकदम बेकार हो जाती हैं। उनका स्थान नई रीडरें ले लेती हैं। ग़रीब लड़के पहले आधे दाम में या इससे भी कम में पुरानी रीडरें ख़रीद लेते थे, और उसी से उनका काम चलता था, पर इस समय हर साल नई-नई पुस्तकें ख़रीदनी पड़ती हैं। देश की हालत किसी से छिपी नहीं। कितना आर्थिक संकट इस समय भारत पर पड़ा है, यह बच्चा-बच्चा जानता है! शिक्षा-विभाग लड़कों को शिक्षा देना चाहता है या रुपया कमाना? क्या उसका ध्येय इस विभाग से केवल रुपया कमाना है? मेरी सलाह है कि रीडरों का बदलना बिल्कुल बंद कर दिया जाय। अगर अच्छी रीडरों की इसे ज़रूरत है, तो मैं कहूँगा, इस काम के लिये विद्वान् और विशेषज्ञों की एक कमेटी नियुक्त की जाय, जो अच्छी रीडरें चुनें। यही रीडरें सारे भारतवर्ष में पढ़ाई जानी चाहिए। रीडरों के बदलने से लड़कों को कोई फ़ायदा नहीं। शिक्षा-विभागवाले इस पर ध्यान दें।

× × ×

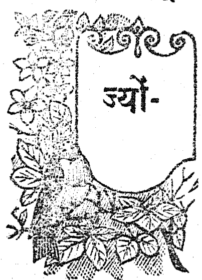
परीक्षा-फल इतना ख़राब क्यों?

इस समय परीक्षा-फल बहुत ख़राब हो रहा है। मैट्रिक या बी० ए०, एम्० ए० के फल से मालूम होता है कि लड़के बहुत कम पास होते हैं। १५ प्रतिशत के लगभग इनकी संख्या पहुँच चुकी है। इसका कारण क्या है? क्या इस समय लड़के पढ़ते ही नहीं, या हवा ही कुछ इस क़िस्म की चल पड़ी है? विदेशों में ज़रा-सा परीक्षा-फल ख़राब होता है, तो सारे देश में हल्ला उठ जाता है। अख़बारों के कालम चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगते हैं—"इतना कम क्यों?" और सरकार को इस पर ध्यान देना पड़ता है। पर भारत में! यहाँ तो किसी को भी इसकी चिंता नहीं। मैं, और मैं ही क्या, सारा देश जानना चाहता है कि इसका कारण क्या है? पहले तो इस समय शिक्षा इतनी मूल्यवान् हो रही है कि पढ़ना ही मुश्किल हो गया है। ग़रीब बेचारा घर-द्वार बेचकर पढ़ता है, पर फ़ेल हो जाता है। अब वह आगे पढ़ने की हिम्मत कैसे कर सकता है? फ़ीस इतनी ली जाती है कि उतने में एक आदमी का निर्वाह महीने-भर हो सके। उस पर पुस्तकें हमेशा बदलती रहती हैं, और दाम इतने अधिक कि खेत-खलिहान तक उनके ख़रीदने में बिक जाते हैं। परीक्षा की फ़ीस अलग जान मारे डालती है। ऐसी हालत में भी जो पढ़ने की ढिठाई कर बैठते हैं, उन्हें एक या दो नंबरों के लिये फ़ेल कर दिया जाता है। शिक्षा का ढंग तो चाहे जैसा हो, उसकी तारीफ़ करना व्यर्थ है, पर फल तो इतना ख़राब नहीं होना चाहिए। देश और सरकार को इस पर ध्यान देना चाहिए। देश आर्थिक संकट, आर्थिक संकट चिल्ला रहा है, पर क्या यह आर्थिक क्षति नहीं पहुँचाता है? शिक्षा-विभाग इस पर ध्यान दे। क्या सहृदय पाठक इस पर ध्यान देंगे, और शिक्षा-विभाग इन त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न करेगा?

द्वारकाप्रसाद



१. यूगोस्लाविया में दमन



ज्यों आधुनिक सभ्यता की प्रगति बढ़ रही है, और स्वाधीनता तथा समानता का डंका ज़ोरों से पीटा जाने लगा है, त्यों-त्यों राजनीतिक नेताओं के पारस्परिक वैर और विरोध के कारण व्यक्तिगत स्वाधीनता भी ख़तरे में होती जा रही है। प्राचीन रोमन-सभ्यता में, रोमन-साम्राज्य में उसी दल का शासन होता था, जो अपने विरोधी दलवालों को एकदम नष्ट कर डालता था। ठीक वही दशा इस समय, हज़ारों वर्ष बाद भी, योरप में पैदा हो गई है, और प्रजातंत्र का अर्थ हो रहा है—विरोधी दल का सर्वनाश। स्पेन में इस समय प्रजातंत्र-शासन है, पर जो भी कोई उस शासन का विरोधी है, वह जीने नहीं पाता। रूस और इटली में तो यह बात दस वर्ष से हो रही है। जर्मनी में नाज़ी दल ने अधिकार पाते ही साम्यवादियों को समूल नष्ट कर डालने का निश्चय किया है, और सैकड़ों आदमी जान खो चुके या खो देंगे।

पर यह तो बड़े देशों की बातें हुईं। अब छोटे देशों का समाचार सुनिए। रूमानिया में विरोधी दल शासक दल के अत्याचार की कहानी पुरानी भी नहीं पड़ी थी कि यूगोस्लाविया की घटना ने सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। इस समय यूगोस्लाविया में राजतंत्र का समर्थक दल शासन कर रहा है। इस दल को उग्र, अनुदार या ultra conservative भी कह सकते हैं। पर अपने विरोधियों को एकदम हटा देने के लिये इसने क्या कार्य शुरू किया है, यह जानने के लिये निम्न-लिखित रोचक समाचार पढ़िए। बलग्रेड का समाचार है—

"स्लोवीन कैथोलिक दल के भूतपूर्व प्रधान मंत्री कोरोशेज़ गत सप्ताह (फ़रवरी के प्रथम सप्ताह) में लैबाश में गिरफ़्तार कर सर्विया के दक्षिण भाग के 'ब्रनजका-बनिया'-नामक स्थान में भेजे गए हैं, जहाँ इनको जेल में सज़ा काटनी होगी। क्रोटिया और स्लोवेनिया में इससे बड़ी हलचल पैदा हो गई है। इस गिरफ़्तारी का कारण यह बतलाया जाता है कि हाल ही में दल का कार्य-क्रम प्रकाशित किया गया था, जिसमें स्लोवेनिया के लिये पूर्ण प्रांतीय स्वाधीनता की माँग की गई थी, और इस प्रकार राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिये 'क्रोटियन-आंदोलन' का साथ दिया गया था।

"कोरोशेज़ पादरी होने पर भी साधारण नागरिकों के वेश में थे, और दो सादी पोशाकवाले अफ़सर उन्हें जेल ले जा रहे थे। इसी भूतपूर्व प्रधान मंत्री के भूतपूर्व मंत्रि-मंडल के दो और मंत्री तथा प्रमुख

व्यक्ति कुओलवेश और डॉ० नालसलासेन भी गिरफ़्तार किए गए हैं, और क़ैद की लंबी सज़ाएँ भुगतने के लिये भेज दिए गए हैं।"

जिन दिनों ये गिरफ़्तारियाँ हो रही थीं, उनके प्रति अपनी उदासीनता दिखलाने और उनका महत्त्व कम करने के लिये यूगोस्लाविया के महाराज अलेक्ज़ेंडर (सिकंदर) और महारानी मेरी सिनैया में, रुमानिया के महाराज कैरोल के देहात के महल में, मेहमान होकर टिके हुए थे। ये दोनो राजपरिवार केवल आनंद के लिये ही वहाँ एकत्रित नहीं हुए थे। शंका यह है कि वे किसी प्रकार की संधि की बातचीत कर रहे हैं, और बाल्कन के दो राजघराने में मित्रता हुई चाहती है। एक ओर दमन और दूसरी ओर यह मित्रता किसी गंभीर और गूढ़ योजना की, कार्य-क्रम की चेतावनी देती है। इस विषय में स्विट्ज़रलैंड के 'सेंट्रल योरपियन टाइम्स' का संवाद पढ़िए। बुकारेस्ट का समाचार है—

"...यद्यपि सरकारी विज्ञप्तियाँ इस विषय में बड़ी सतर्क हैं, और कुछ भी नहीं कहती हैं, पर वे यही कह देती हैं कि यह शाही यात्रा केवल निजी कारणों से है। पर योरप की राजधानियाँ बड़ी रोचकता के साथ इस यात्रा को देख रही हैं। लोगों की यह शंका कि यह यात्रा केवल निजी कारणों से अधिक महत्त्व रखती है, इस बात से और भी दृढ़ हो गई है कि यूगोस्लाविया के विदेश मंत्री मि० जेफ़टिक भी शाही जोड़ी के साथ थे, और वह सिनैया में रुमानिया के विदेश मंत्री मि० तितुलेस्कू से सीधे मिलने चले गए। विदेशी राजनीति के 'गृद्धों' का कहना है कि इस समय समूची रुमानियन सरकार सिनैया में आ गई है।

"शाही परिवार कई दिनों से ठहरा है, और आपस में कई ज़रूरी बैठकें भी हो चुकी हैं। यह भी अब खुला रहस्य है कि विदेशी मंत्रियों का सम्मेलन बलग्रेड में बालकन राष्ट्रीय संघ-सभा की बैठक के परिणाम-स्वरूप हो रहा है। उस बैठक में मुख्य विषय था संघ के सदस्यों में पारस्परिक संबंध दृढ़ करना। अभी तक इन दो देशों को आपस में कई ज़रूरी बातें तय करनी हैं...। इस राष्ट्रीय संघ-सभा का योरपियन महत्त्व का कार्य यह होगा कि इससे इटली और यूगोस्लाविया में कोई स्थायी समझौता हो जायगा, जिससे योरप पर एक दृढ़ तथा योरपियन शक्ति पर स्थिर प्रभाव पड़ेगा।"

पर रुमानिया और यूगोस्लाविया की एकता इटली भी नहीं चाहता!

× × ×

२. कृषि-संकट और ज़ेकोस्लोवाकिया

प्रत्येक देश के कृषक इस समय संकट में हैं। यह बात निःसंदेह है। इस संकट का कारण फ़स्ल की बरबादी नहीं, अच्छाई है। पैदावार काफ़ी है, पर उसके निकास का कोई मार्ग ही नहीं है। चुंगी तथा व्यापारिक होड़ के कारण कई राज्य मिलकर आपस में सहयोग द्वारा इस समस्या को हल भी नहीं कर रहे हैं, इसीलिये संकट भी नहीं टल रहा है।

अभी हाल ही में, प्राग में, ज़ेकोस्लोवाकिया की पार्लियामेंट के सामने कृषि-विभाग के मंत्री डॉ० होडज़ा ने इस विषय की बड़ी महत्त्व-पूर्ण बातें बतलाई थीं, और अपने देश की कृषि-समस्या को निबटाने के लिये जो रास्ते बतलाए थे, वे विचारणीय और अन्य देशों के भी ध्यान देने योग्य हैं। डॉ० होडज़ा ने कहा था—

"कृषि के लिये सबसे आवश्यक बात यह है कि उसकी उत्पत्ति का निर्यात सुसंघटित ढंग पर हो। हरएक देश के कृषि-संकट को दूर करने के लिये, योरपियन आधार पर, कोई गंभीर और ठोस योजना बनानी चाहिए। दो-एक राज्यों के बीच पारस्परिक संधि से काम नहीं चलेगा। मेरी राय में मध्य और केंद्रीय योरप को मिलकर एक ही सूत्र में बँधा हुआ राजनीतिक तथा आर्थिक ढाँचा बना लेना चाहिए, और तभी वे ग्रेटब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका और रूस से बराबरी के दर्जे पर मिल सकेंगे, और बातचीत कर सकेंगे। इस नए संघ में बालकन प्रायद्वीप के सभी राज्य,

जर्मनी, फ्रांस और इटली को भी शरीक होना पड़ेगा। तब एक दृढ़ आर्थिक संस्था स्थापित हो जायगी।

"कृषि के विषय में विरोधी हितों के संघर्ष के कारण निर्यात का व्यापार और भी चौपट हो गया है। यदि सभी मिलकर सबके हित का विचार करने लगें, तो कृषि की साख फिर से स्थापित हो जायगी (और व्यापारिक अभ्युदय होगा)।"

यह उपदेश वास्तव में उपयोगी है, पर इस समय इसे सुनता कौन है ?

परिपूर्णानंद वर्मा



१. कहानी

पिस्तौल का निशाना (रूसी कहानियाँ)—संग्रहकर्ता तथा अनुवादक, श्रीयुत व्रजमोहन वर्मा ; प्रकाशक, ५ श्रीगुरु-ग्रंथ-गुफा, राजेंद्रलाला स्ट्रीट, कलकत्ता ; पृष्ठ-संख्या ३७८; मूल्य ३)

प्रस्तुत पुस्तक रूस के यशस्वी कलाकारों की प्रसिद्ध तथा चुनी हुई कहानियों का संग्रह है। रूस में कहानी-कला चरम उत्कर्ष को प्राप्त हुई है। वहाँ के चेख़ोव, तुर्गनेव, टॉल्सटॉय प्रभृति लेखकों की कला का मूल उत्स विश्व-मानवता है। उनकी कहानियों के रूसी Background, रूसी वातावरण तथा रूसी पात्रों में हमको विश्व-मानव की आत्मा का साक्षात्कार होता है। इसीलिये वे देश-काल की सीमा का अतिक्रमण कर सर्वत्र, समान रूप से, चिरंतन उपभोग की वस्तु बन गई हैं। रूस कहानी-कला में संसार का गुरु बन बैठा है। नितांत आवश्यक था कि इन प्रसिद्ध कलाकारों की उत्कृष्ट कृतियों का हिंदी-अनुवाद प्रकाशित होता। अनुवादक ने इन कहानियों का हिंदी-रूपांतर उपस्थित कर एक अभाव की पूर्ति की है। पुस्तक के प्रारंभ में प्रस्तावना लिखकर वर्माजी ने रूसी-साहित्य के इतिहास पर विहंगम-दृष्टि डाली है। वास्तव में जैसा प्रस्तावना में बतलाया गया है, रूसी साहित्य का आधुनिक काल पुश्किन से आरंभ होता है। पुश्किन से लेकर आज (बोलशेविक रूस) तक के सभी श्रेष्ठ कलाकारों की अच्छी-अच्छी रचनाओं का इस पुस्तक में समावेश हुआ है। परिचयात्मक टिप्पणियों तथा लेखकों के चित्रों से पुस्तक की उपादेयता तथा आकर्षण की वृद्धि हुई है। पुस्तक की चार कहानियाँ 'मूमू', देहाती 'डॉक्टर', 'जब हसन का पैजामा उतर गया था' और 'ज़रूरी चीज़ें' श्रीबनारसीदास चतुर्वेदी आदि अन्य सज्जनों द्वारा अनुवादित हैं। अनुवाद एकरस, सरस और प्रांजल है।

प्रत्येक लेखक की श्रेष्ठ कृति के निर्वाचन के संबंध में यदा-कदा पर्याप्त मतभेद की गुंजाइश है। परंतु अधिकांश कहानियों का चयन सर्वप्रकार संतोष-प्रद है। तुर्गनेव की 'मूमू' कहानी—यदि हम कविता को छंदादि बंधनों से परे मान लें —मानव-हृदय की एक श्रेष्ठ करुण काव्याभिव्यक्ति है। कॉर्लाइल ने ठीक ही कहा होगा—मूमू संसार की सबसे करुणा-जनक कहानी है।

'चेख़ोव' कहानीकारों का सम्राट् है; उसकी संगृहीत सभी कहानियाँ सुंदर हैं। 'डार्लिंग' बेजोड़ है, इसमें संदेह नहीं। उसके साथ टॉल्सटॉय का भाष्य जोड़कर अच्छा ही किया गया है। अन्यान्य कहानियों में मुझे टॉल्सटॉय, गोर्की तथा बूसाफ़ की कहानियाँ अत्यधिक पसंद आईं। पुश्किन की जिस कहानी में अनुवादक को कृत्रिमता का आभास मिला है, वह कहानी (बर्फ़ का तूफ़ान) Art of Climax की एक उदात्त व्यंजना है।

संक्षेप में यह कहानी-संग्रह सब प्रकार सुंदर हुआ है। छपाई-सफ़ाई, जिल्द-बंदी सभी नेत्र-रंजक हैं। आज जब हिंदी-जनता पर तृतीय श्रेणी के बँगला अथवा अँगरेज़ी के अनुवाद लादे जा रहे हैं, यह संग्रह मरुस्थल में शस्य-श्यामल एक भूमि-खंड की तरह सामने आया है। क्या ही अच्छा हो, यदि इसी तरह हमारे अनुवादक और प्रकाशक संसार के अन्यदेशीय नोबेल-पारितोषिक-प्राप्तकर्ता साहित्यिकों के ग्रंथ-रत्नों के रूपांतर द्वारा साहित्य के रिक्त भांडार की पूर्ति करें!

(कुँवर) चंद्रप्रकाशसिंह

× × ×

२. अर्थशास्त्र

नागरिक शास्त्र—लेखक, श्रीभगवानदास केला; प्रकाशक, श्रीमध्यभारत-हिंदी-साहित्य-समिति, इंदौर; पृष्ठ-संख्या; ३३२; छपाई उत्तम; मूल्य अजिल्द १।।), सजिल्द १।।।)

यह नागरिक शास्त्र के विषय पर सर्वप्रथम उत्तम पुस्तक है। इस पुस्तक में विद्वान् और अनुभवी लेखक ने नागरिकों के अधिकार और कर्तव्यों का बहुत अच्छी तरह विवेचन किया है। इस पुस्तक के लिखने में श्रीमान् केलाजी ने अँगरेज़ी में इस राजनीतिक विषय पर प्रकाशित प्रायः सब उत्तम पुस्तकों का उपयोग किया है। ऐसे समय में, जब कि भारतवासियों को स्वराज्य-संबंधी अधिकार शीघ्र ही मिलनेवाले हैं, भारतवासियों को अपने अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान प्राप्त कर लेना अत्यंत आवश्यक है। समालोच्य पुस्तक से उनको इस कार्य में बड़ी सहायता मिलेगी। लेखक ने कठिन विषयों को भी रोचक भाषा में लिखने का पूर्ण प्रयत्न किया है। इस पुस्तक को लिखने के लिये हम श्रीमान् केलाजी को हार्दिक बधाई देते हैं! श्रीमध्यभारत-हिंदी-साहित्य-समिति, इंदौर ने इस उत्तम पुस्तक को प्रकाशित कर जनता का बड़ा उपकार किया है। आशा है, हिंदी-संसार इस पुस्तक का उचित आदर करेगा।

× × ×

३. धार्मिक

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावलि (खंड एक)—लेखक, श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी; प्रकाशक, गीता-प्रेस, गोरखपुर; पृष्ठ-संख्या ३०५+४८; छपाई उत्तम; मूल्य अजिल्द ।।।=), सजिल्द १=)

गोरखपुर का गीता-प्रेस धर्म-संबंधी उत्तम पुस्तकें सस्ती क़ीमत पर निकालने के लिये सुप्रसिद्ध है। उसने श्रीश्रीचैतन्य-चरितावलि पाँच खंडों में निकालने का निश्चय किया है। उसका प्रथम खंड हमारे सामने है। इसकी भाषा सरल और सुंदर है। इसमें श्रीचैतन्य महाप्रभु के अध्यापकी छोड़ने के समय तक का वर्णन है। इस भाग में सुंदर पाँच तिरंगे चित्र हैं। इनसे पुस्तक की शोभा और भी बढ़ गई है। वर्णन बहुत सरस है। हम आशा करते हैं कि चरितावलि के शेष चार भाग भी इसी के समान उत्तम होंगे। हम इस उत्तम चरितावलि को लिखने के लिये ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी को हार्दिक बधाई देते हैं। हिंदी-प्रेमी सज्जनों को इस चरितमाला को एक बार पढ़कर अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

दयाशंकर दुबे

× × ×

४ राजनीतिक

हिंदू-हित की हत्या (अथवा प्रधान मंत्री का सांप्रदायिक निर्णय)--लेखक, श्रीपारिपूर्णानंद वर्मा; प्रकाशक, दीवान रामचंद्र कपूर, धर्म-ग्रंथ-माला-कार्यालय, ब्रह्मनाल, काशी; पृष्ठ-संख्या ६५; मूल्य ।); छपाई साधारण।

इस छोटी सी-पुस्तक में प्रधान मंत्री के 'कम्यूनल एवार्ड' या सांप्रदायिक निर्णय पर विचार किया गया है। इस पुस्तक के तीन लेख 'माधुरी', 'आज' तथा 'भारत' में प्रकाशित हो चुके हैं। प्रोफ़ेसर राधाकुमुद मुकर्जी के सारगर्भित लेख 'दि प्राबलम ऑफ़् माइनोरिटीज़' (अल्पमत की समस्या) में यह प्रतिपादित किया गया है कि जिस प्रकार राष्ट्र-संघ ने योरपीय अल्पमत की समस्या हल की थी, उसी प्रकार भारत की

अल्पमत समस्या भी सुलझाई जा सकती है। श्रीवर्माजी का भी यही कहना है। आपका कथन है—"भारतीय समस्या योरपीय समस्या से कहीं सरल है, और बड़ी सरलता से निबटाई जा सकती थी। इसे व्यर्थ का तूल दिया जा रहा है।" पुस्तक के दूसरे और तीसरे परिच्छेद में सांप्रदायिक निर्णय तथा निर्वाचन के पुराने और नए क्रम पर अच्छा विवेचन है। चतुर्थ परिच्छेद में यह दिखलाने की चेष्टा की गई है कि भारतीय लोकमत सांप्रदायिक निर्णय के विषय में क्या कहता है। पुस्तक यद्यपि छोटी है, तथापि है उपयोगी।

जीवनचंद्र जोशी

× × ×

५. पत्र-पत्रिकाएँ

हिंदी-प्रचारक (सम्मेलनांक)—इस अंक के संपादक पं० हरिहर शर्मा, पं० सत्यनारायण और पं० हृषीकेश शर्मा हैं; प्रकाशक, पं० हरिहर शर्मा, हिंदी-प्रचार-सभा, मदरास; वार्षिक मूल्य २)

यह हिंदी के लिये बड़े ही सौभाग्य की बात है कि अब मदरास-ऐसे प्रांत से भी हिंदी के सुंदर पत्र का प्रकाशन होने लगा है। वर्तमान अंक हिंदी-प्रचार-सभा के वार्षिक अधिवेशन के उपलक्ष्य में निकाला गया है। सभी लेख पठनीय हैं। लेख कुछ अँगरेज़ी में भी हैं। छपाई-सफ़ाई सुंदर। इस अंक का मूल्य ॥) है।

हिंदी-संदेश—संपादक, श्रीभीमसेन विद्यालंकार; प्रकाशक, भीमसेन वर्मा; वार्षिक चंदा ३); एक प्रति का मूल्य ≡)

यह पत्र अभी हाल ही में प्रकाशित होने लगा है। यह इसका तीसरा अंक है। पंजाब-ऐसे उर्दू-प्रधान देश से हिंदी-पत्रों का प्रकाशित होना हिंदी के लिये गौरव की बात है। लेख छोटे और अच्छे हैं। छपाई-सफ़ाई भी उत्तम है। मुख-पृष्ठ पर नानक साहब का चित्र है। हिंदी-संसार को हिंदी-संदेश अपनाना चाहिए।

अनुभूत योग-माला (सिद्ध प्रयोगांक)—इस अंक के संपादक, बाबू श्यामविहारीलाल गुप्त वैद्य-भूषण; प्रकाशक, अनुभूत योगमाला-ऑफ़िस, बरालोक-पुर, इटावा; वार्षिक मूल्य ४); इस अंक का १)

आयुर्वेद का यह पत्र क़रीब दस वर्ष से प्रकाशित हो रहा है। समय-समय पर इसने आयुर्वेद-संबंधी विशेषांक भी निकाले हैं। आलोच्य अंक भी विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ है। सभी लेखक अपने-अपने विषय के विद्वान् हैं। अंत में कुछ अनुभूत प्रयोग भी दे दिए गए हैं। यदि ये प्रयोग वास्तव में काम में लाए जाकर फ़ायदा पहुँचा चुके हैं, तो जन-साधारण को इनसे बहुत कुछ लाभ होने की संभावना है।

यदि हिंदी में इसी तरह के और भी पत्र निकलने लगें, तो बहुत कुछ लाभ की संभावना है। छपाई मध्यम श्रेणी की है। काग़ज़ भी बहुत ही मामूली है। यत्र-तत्र कुछ ग़लतियाँ भी छप गई हैं। यह सब होते हुए भी प्रयोगांक संग्रह करने योग्य है।

जैन-युवक—संपादक, श्रीदयाकृष्ण दीक्षित शास्त्री काव्यतीर्थ, साहित्याचार्य; संचालक, पं० छोटेलाल यति; वार्षिक मूल्य ३), एक अंक का ।≈)

जैन-युवक दो वर्ष से प्रकाशित हो रहा है। जैन-धर्मानुयायियों के योग्य ही इसमें लेख रहते हैं। पत्र छोटा और अच्छा है। जैन-संप्रदायवालों को इसका आदर करना चाहिए। मैनेजर जैन-युवक-कार्यालय, अजमेर को लिखने से मिल सकता है।

लोकमान्य—संपादक, श्रीएम्० एन्० चौधरी; प्रकाशक भी वही; वार्षिक मूल्य ३); मिलने का पता—१६० हरिसन रोड, कलकत्ता।

लोकमान्य ने अब अपना रंग-रूप बदलकर अपनी अच्छी उन्नति कर ली है। इस अंक के लेख सभी पठनीय हैं। हमें आशा है, भविष्य में और भी अच्छे ढंग से प्रकाशित होगा, और यह भी आशा है कि शीघ्र ही यह दैनिक रूप में भी निकलने लगेगा। 'ताड़ के झाड़'-शीर्षक स्तंभ में अच्छे-अच्छे समाचार रहते हैं। स्त्रियों और बालकों के लिये भी स्थान रखना चाहिए।

आर्य-मित्र (होलिकांक)—संपादक, श्रीयुत हरिशंकर शर्मा; प्रकाशक, आर्य-भास्कर-प्रेस, माईथान, आगरा; वार्षिक मूल्य ३॥)

शर्माजी हास्य-रस लिखने में बड़े कुशल हैं। आपका लिखा 'चिड़ियाघर' हिंदी-संसार में आज-कल ख़ूब चहचहा रहा है । प्रस्तुत अंक आपने सुंदर निकाला है। कविताओं के अतिरिक्त 'विशाल-भारत' का 'स्वयंवधू-निर्वाचन' तथा 'पोंगा-पंथ' हास्य-रस के पठनीय लेख हैं।

भारत-मित्र (होलिकांक)—संचालक, पं० मोती-लाल मिश्र एम्० ए०; संपादक, श्रीकालीपद घोष; प्रकाशक, भारत-मित्र-प्रेस, कलकत्ता।

भारत-मित्र हिंदी का पुराना लब्ध-प्रतिष्ठ दैनिक है। प्रस्तुत अंक में कई सामयिक कार्टून तथा व्यंग्य लेख हैं। मुख-पृष्ठ पर 'रमेश' विशारद की कविता मार्मिक है।

जयाजी प्रताप (होली-अंक)—संपादक, श्रीयुत विनायकमाधवराव पवार; प्रकाशक, दरबार-प्रेस, ग्वालियर; वार्षिक मूल्य ३)

समालोच्य अंक में कार्टून बड़े नेत्र-रंजक हैं। पं० गणेशदत्त शर्मा गौड़ 'इंद्र'जी का 'गड़बड़-प्रकरणम्' अनूठा व्यंग्य-लेख है। कविताओं का चयन भी अच्छा है।

रसिकरंजन रतूड़ी

× × ×

६. विविध

जीवन-सूत्र—अनुवादक, श्रीरामनाथलाल 'सुमन'; प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर; मूल्य ॥)

मूल पुस्तक Imitatio christie लैटिन में है। पाश्चात्य देशों में लोक-प्रियता की दृष्टि से बाइबिल के बाद इसी का स्थान है। संसार की प्रमुख सभी भाषाओं में इसके अनुवाद हो गए हैं। स्वीय देशीय भाषाओं में बँगला कभी की इस ग्रंथ-रत्न को समादृत कर चुकी है। हिंदी में यह ग्रंथ अँगरेज़ी द्वारा आया है। अँगरेज़ी में Imitation of christ पर्याप्त प्रसिद्ध है। उसी का यह एक स्वतंत्र रूपांतर है। पुस्तक का मूल-लेखक एक Dutch divine टॉमस केंपिस बतलाया जाता है, परंतु यहाँ विचारकों में पारस्परिक मतैक्य नहीं। लोगों ने तद्विषयक कितनी ही बातें प्रचारित कर रक्खी हैं। बात कुछ हमारे यहाँ की पुराणों की-सी है। प्रणेता व्यास प्रसिद्ध हैं, परंतु उनके विषय में विद्वानों की विभिन्न धारणाएँ हैं। कुछ भी हो, पुस्तक एक शुद्धात्मा की कल्याणी वाणी है, जो सीधे अंतस्तल तक प्रवेश कर थोड़ी देर के लिये तो अवश्य ही अंतस् के समस्त कलुष-कल्मष धो डालती है; निदाघ-दग्ध को सुधा-सिंचन मिलता है।

पुस्तक के रूपांतरकार हिंदीवालों के चिर-परि-चित श्रीरामनाथलालजी 'सुमन' हैं। आपने मूल-पुस्तक के ईसाई-पुराणवाद को निकालकर उसे सर्व-ग्राह्य और सार्वभौम स्वरूप प्रदान किया है, इसके लिये वह बधाई के पात्र हैं। अनुवाद का कौशल भी सराहनीय है। कितने ही अंश उत्कृष्ट गद्य-काव्य बन गए हैं। हिंदी-जनता को इस पुस्तक का उचित आदर करना चाहिए। गेट-अप वस्तु के अनुरूप ही गंभीरता-समन्वित है। मूल्य ॥) कुछ भी नहीं है।

× × ×

अपठित प्रवेशिका अथवा सुमन-संचय—लेखक, साहित्यरत्न पं० रामचंद्र शर्मा हिंदी-प्रभाकर; प्रकाशक, गुप्ता ब्रादर्स ऐंड को०, मंडी धनौरा (मुरादा-बाद); पृष्ठ-संख्या २८४; मूल्य ॥)

यह पुस्तक, जैसा इसके नाम से प्रकट है, हिंदी के शिक्षार्थियों को अपठित विषय का सम्यक् बोध कराने की दृष्टि से लिखी गई है। लेखक महोदय अनुभवी शिक्षक ज्ञात होते हैं। प्रारंभ के 'परीक्षा-र्थियों के कर्तव्य'-शीर्षक अध्याय में उन्होंने उचित ही उपदेश का समावेश किया है। तीसरे अध्याय में हिंदी के सभी नए-पुराने कवियों के अवतरण, परिचया-त्मक टिप्पणियों के साथ, दिए गए हैं। आजकल के दो-एक प्रतिनिधि कवि अवश्य छूट गए हैं।

गद्यांश के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। अंतर्गत कथाएँ आदि देकर लेखक ने पुस्तक को सब तरह उपादेय बना दिया है। चीज़ विद्यार्थियों के काम की है।

× × ×

शिक्षा-सप्तशती—लेखक, श्रीयुत दीनानाथ 'अशंक'; प्रकाशक, कुँवर युगराजसिंह, पूँछ (काश्मीर); पृष्ठ-संख्या १८६ ; मूल्य ॥)

पुस्तक में ७०० दोहे हैं, पुरानी चली आती हुई सतसइयों की परिपाटी पर । दोहे सभी उपदेशात्मक हैं। परंतु विशेषता यह है कि सब शुद्ध खड़ी बोली में लिखे गए हैं। खड़ी बोली में मैंने यह पहली ही पुस्तक दोहों में देखी। भाषा का शुद्ध रूप में सुंदर निर्वाह सर्वथा अभिनंदनीय है। उदाहरण-स्वरूप दो दोहे उद्धृत हैं—

पीत-वसन-मणि-मुकुटधर, घनश्याम, छविधाम ,
शुभासीन सीता-सहित, जयति महीपति राम ।
जो अवसर पर युक्ति की लेता युक्ति निकाल ,
कुछ बिगाड़ सकता नहीं उसका आपत्काल ।

पुस्तक में गुंफित विचार, जैसा लेखक ने विज्ञप्ति में बतला दिया है, स्वाध्याय द्वारा संगृहीत हुए हैं। भूमिका लेखक के बाल्य-बंधु श्रीकृष्णानंदजी गुप्त ने लिखी है। छपाई-सफ़ाई अच्छी है। पुस्तक संग्रहणीय है।

(कुँवर) चंद्रप्रकाशसिंह

× × ×

प्रथमा-साहित्य-दर्पण—संपादक या उत्तरकार, पं० बाबूराम बित्थरिया, साहित्यरत्न; प्रकाशक, पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी, साहित्य-मंदिर, दारागंज प्रयाग ; पृष्ठ-संख्या २२९ ; मूल्य १॥)

पुस्तक क्या है, साहित्य-पर्वत के शिखर तक पहुँचने की सीढ़ी है। इसमें सन् १९७१ से १९८९ वि० तक प्रथमा की परीक्षाओं में आए हुए प्रश्नों के समुचित उत्तर बड़ी ख़ूबी के साथ दिए गए हैं। यह केवल प्रथमा के विद्यार्थियों एवं परीक्षार्थियों के काम की ही चीज़ नहीं है, वरन् इस मार्ग के सभी पथिकों की पथ-प्रदर्शिका है। हिंदी-साहित्य को उन्नत करने के लिये ऐसे ही ग्रंथों की परमावश्यकता है।

× × ×

भजन-संग्रह (दूसरा भाग)—संग्रहकर्ता, श्रीवियोगी हरिजी ; मुद्रक तथा प्रकाशक, श्रीघनश्यामदास, गीता-प्रेस, गोरखपुर ; पृष्ठ-संख्या २०८; मूल्य =) मात्र।

प्रस्तुत पुस्तक २०४ भजनों का जेबी गुटका है। संग्रहकर्ता श्रीवियोगी हरिजी ने दादूदयाल, रैदास, मलूकदास प्रभृति संतों के भक्ति-रस-पूर्ण भजनों का संग्रह बड़ी ही खोज के साथ किया है। यों तो इसके सभी भजन स्मरण एवं मनन करने योग्य हैं, तथापि मुझे ललितकिशोरी के भजन बहुत कर्णप्रिय जँचे । ये भजन इतने मर्मस्पर्शी और आनंददायक हैं कि इनकी विवेचना के लिये एक स्वतंत्र लेख लिखा जा सकता है । अस्तु ।

× × ×

निबंध-निधि—लेखक, श्रीजगदीश झा 'विमल' ; प्रकाशक, श्रीयुत जगदेव पांडेय, मुँगेर ; मूल्य १) मात्र; पृष्ठ-संख्या २२४ ।

प्रस्तुत पुस्तक उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों के निमित्त ही लिखी गई है, अतएव इसके खरे-खोटे का निर्णय विज्ञ पाठक ही कर सकते हैं। इसमें दो खंड हैं। प्रथम खंड में विविध विषयों पर रचना है, और दूसरे खंड में Re-translation इत्यादि है। लेखक का प्रयास सफल है।

× × ×

हिंदी-रचना-कौमुदी—लेखक, श्रीजगदीश झा 'विमल' ; प्रकाशक, पं० जगदेव पांडेय बखुरा, कोइलवर, शाहाबाद ; मूल्य ॥) ; पृष्ठ-संख्या १२२ ।

'रचना-कौमुदी' मध्य-कक्षा के बालकों के निमित्त ही लिखी गई है । पुस्तक शिक्षकों के अनुरोध पर ही लिखी गई है, जैसा कि वक्तव्य में लिखा हुआ है। पुस्तक का विषय-प्रवेश उत्तम है । कहीं-कहीं पर अक्षम्य अशुद्धियाँ दृष्टि-गत होती हैं।

'विह्वल'

सुधा-चित्रावली



मिस सुलोचना

[अभिनय-कला में आप भारत की सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री मानी जाती हैं। सवाक् चित्र-पट में आपने दूसरी बार 'डाकू की लड़की' में भाग लिया है।]



पं० रत्नांबरदत्त चंदोला 'रत्न'

[आप हिंदी के सुकवि हैं, आपकी जीवनी पृष्ठ ६६२ पर देखिए।]



श्रीप्रो० इंद्र विद्यावाचस्पति

[आप 'अर्जुन' के व्यवस्थापक और दिल्ली के प्रसिद्ध नेता हैं। अभी हाल में आप इंदौर के संपादक-सम्मेलन के सभापति हुए थे।]



मिस करीमा ख़ानिम

[टर्की की प्रसिद्ध सुंदरी। आप इस समय भारतवर्ष में आई हुई हैं।]



श्रीमती महादेवी वर्मा बी० ए०

[आप महिला-कवि-सम्मेलन की स्वागत-मंत्री थीं ।]



श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान



कुमारी रामेश्वरीदेवी गोयल एम्० ए०
[आप स्त्री-कवि-सम्मेलन की स्वागत-मंत्री हैं ।]



सौ० व० रानी साहिबा
रियासत कुड़ंदबाद
[आप स्त्री-जाति और अछूत-जाति के लिये बहुत परिश्रम करती रहती हैं ।]



इस स्तंभ में हम हिंदी-प्रेमियों की जानकारी और सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई पुस्तकों के नाम देते हैं। पिछले महीने में निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—

(१) 'उच्छ्वास' (काव्य)—लेखक, श्रीकाली-प्रसाद 'विरही' ; मूल्य ।)

(२) 'वर्तमान संसार'—लेखक, पं० रामानुग्रह शर्मा व्यास ; मूल्य १)

(३) 'स्वदेशी तान'—लेखक, पं० रामानुग्रह शर्मा व्यास ; मूल्य ≡)

(४) 'हरिश्चंद्र' (जीवनी)—लेखक, श्रीकाशी-नाथनारायण मिश्र ; मूल्य ।)

(५) 'आल्हा' (जीवनी)—लेखक, श्रीपं० रामनरेश त्रिपाठी ; मूल्य ।)

(६) 'सनातन धर्म'—लेखक पं० माधवाचार्य शास्त्री ; मूल्य कुछ नहीं।

(७) 'शीतलनाथयोग'—लेखक, पं० बालमुकुंद व्यास ; मूल्य कुछ नहीं।

(८) 'चंद्रगुप्त' (जीवनी)—लेखक, श्री-रामनरेश त्रिपाठी ; मूल्य ।)

(९) 'अशोक'—लेखक, पं० रामनरेश त्रिपाठी ; मूल्य ।)

(१०) 'मृदंग-तबला-वादन-सुबोध'—लेखक, श्रीगोविंदराव देवराव ; मूल्य १।)

(११) 'पिता और पुत्र' (उपन्यास)—अनुवादक, ठा० राजबहादुरसिंह ; मूल्य २)

(१२) 'साहसी बालक' (बालोपयोगी)—लेखक, गुरुराम भक्त; मूल्य ।)

(१३) 'नल नरेश' (महाकाव्य)—लेखक, श्री पु० प्रतापनारायणजी कविरत्न ; मूल्य २।)

(१४) 'अलका' (उपन्यास)—लेखक, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'; मूल्य १॥)

(१५) 'आशीर्वाद' (कहानी-संग्रह)—लेखक, श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव बी० ए०, एल्-एल्० बी०; मूल्य १)

(१६) 'अलकापुरी' (उपन्यास)—लेखक, राजा चक्रधरसिंह ; मूल्य १॥)

(१७) 'माधुरी' (उपन्यास)—लेखक, कन्हैया-लाल जैन ; मूल्य १)

(१८) 'स्वास्थ्य और रोग'—लेखक, श्री-त्रिलोकीनाथ वर्मा ; मूल्य ७)



१. आगामी २३वाँ हिंदी-साहित्य-सम्मेलन



सहयोगी अर्जुन में प्रकाशित पं० रमाकांतजी मालवीय, मंत्री हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की विज्ञप्ति से यह जानकर परम प्रसन्नता हुई कि स्थायी समिति ने दिल्ली का निमंत्रण स्वीकार कर लिया है, और आगामी सम्मेलन दिल्ली में होगा। दिल्ली-नगर में हिंदी-प्रचार के लिये बहुत अधिक क्षेत्र है, और वहाँ की जनता के लिये यह एक गौरव की बात होगी कि उसके यहाँ हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का यह दूसरा अधिवेशन भी सफलता-पूर्वक समाप्त हो जाय। इसके लिये, आशा है, वहाँ के निवासी अपने तन-मन-धन से पूर्ण प्रयत्न करेंगे, और सम्मेलन को सफल बनाएँगे।

इस संबंध में यह भी कहना आवश्यक है कि स्वागत-समिति का शीघ्र ही चुनाव हो जाना चाहिए, और उसके बाद सभापति के चुनाव में भी शीघ्रता करनी चाहिए। इस कार्य में विलंब करने का परिणाम यह होता है कि लोगों को प्रबंध की ओर से ध्यान हटाकर इस निर्वाचन पर देना पड़ता है। फिर जो सभापति निर्वाचित होता है, उसके लिये भी यह असुविधा खड़ी हो जाती है कि वह अपना भाषण भली भाँति नहीं तैयार कर पाता। साहित्य-सम्मेलन के सभापति का उत्तरदायित्व बहुत बड़ा है। वह राष्ट्र-भाषा का प्रतिनिधि ही नहीं, वरन् नेता बनकर सभापति का आसन ग्रहण करता है, उसे अपनी विद्वत्ता और अपने अध्ययन का परिचय देना पड़ता है, अन्य भाषाओंवाले उसकी ओर उत्सुकता की दृष्टि से देखते हैं, ऐसी स्थिति में यदि सभापति का भाषण आशानुकूल, गंभीर और विद्वत्ता-पूर्ण न हुआ, तो न केवल सभापति को ही, वरन् समस्त साहित्य-सेवियों को ही संतोष नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में साहित्य-सम्मेलन के लिये यह आवश्यक है कि वह शीघ्र ही सभापति का निर्वाचन कर ले।

इसके अतिरिक्त सम्मेलन का समय भी बहुत देर पश्चात् निश्चय किया जाता है। कोई भी काम हो, उसके लिये समय निश्चित कर लेना परमावश्यक ही नहीं, वरन् सर्व-प्रथम काम होना चाहिए। समय मालूम हो जाने से बहुत-से लोगों को सुविधा हो जाती है। वे अपने समस्त प्रोग्रामों के लिये समय निश्चित कर लेते हैं, और इस प्रकार उनके सम्मुख कोई भी अड़चन नहीं रह जाती।

यदि साहित्य-सम्मेलन उपर्युक्त कार्यों को शीघ्र ही समाप्त कर डाले, तो, हमें आशा है, सम्मेलन के पास अन्य तैयारियों के लिये पर्याप्त समय रह जायगा। दिल्ली के हिंदी-प्रेमियों को शीघ्रता करनी

चाहिए। जितनी समितियाँ बननेवाली हों, वे बन जायँ, और सम्मेलन के संबंध में अन्य बातों का भी निश्चय कर लिया जाय।

अंत में हम हिंदी-संसार के समस्त साहित्यिकों, प्रेमियों, हितैषियों, राजा-महाराजों और सेठ-साहूकारों से अनुरोध करेंगे कि वे इस सम्मेलन को अधिकाधिक सफल बनाने का प्रयत्न करें, और स्वागत-समिति को तन, मन, धन से सहायता दें। सम्मेलन की सारी सफलता जनता के प्रेम पर ही निर्भर है। हम आशा करते हैं कि दिल्ली-निवासी इस कार्य में तनिक भी पीछे नहीं रहेंगे।

× × ×

२. माउंट एवरेस्ट या माउंट सिकदार

उड़ाकों के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित होनेवाली नई घटना से सभी परिचित हैं। हास्टन-दल ने संसार के सर्वोच्च शैल-शिखर पर हवा के मार्ग से चढ़ाई की थी। हास्टन-दल अपने इस ख़तरनाक कौतुक में सफल हुआ। वैज्ञानिक आविष्कारों की प्रशंसा करें, या हास्टन-दल को बधाई दें। वास्तव में दोनो ही इस हवाई कौतुक की सफलता के श्रेय के अधिकारी हैं। हम तो शेर के शिकारी और उसकी बंदूक़ दोनो ही को बधाई का पात्र समझते हैं।

कितने हैं, जिन्हें उस व्यक्ति का नाम भी मालूम होगा, जिसकी मेहनत का मीठा फल एक अँगरेज़ अफ़सर के मुँह में डाल दिया गया था। वह था एक भारतीय, जिसने सबसे पहले संसार की सबसे ऊँची चोटी की खोज की थी, परंतु आज उस यशस्वी भारतीय की किसी को याद भी नहीं आती। याद आए, तो कैसे आए। हममें गुण-ग्राहकता तो है ही नहीं—किसी की सफलता पर ख़ुश होना और उस ख़ुशी का उचित रूप में प्रदर्शन करना तो हमें आता ही नहीं। एक वे हैं—यदि उनका कुत्ता एक चूहे का भी शिकार करने में सफल होता है, तो उनके यहाँ शोर मच जाता है—सारा नगर-का-नगर उस कुत्ते के पंजे चूमने के लिये, उसे बधाई देने के लिये उमड़ पड़ता है—अख़बारों के प्रतिनिधि उस वीर शिकारी की फ़ोटो उतारने के लिये, उससे दो-दो बातें करने के लिये, टूट पड़ते हैं—चारों ओर उत्सव मनाए जाते हैं—नाच-रंग होते हैं—लोग उस कुत्ते को सिर पर चढ़ा लेते हैं। देखते नहीं, उनके समाचार-पत्र शिकारियों, बाजीगरों, नटों और मदारियों के चित्रों से भरे पड़े रहते हैं। वह छोटे-छोटे कलाकारों और साहसी व्यक्तियों को भी इतना प्रोत्साहन देते हैं कि वे अपने क्षेत्र में नाम कर जाते हैं—जो वास्तव में प्रोत्साहन और प्रशंसा के पात्र हैं, उन्हें तो वे सातवें आसमान पर बिठा देते हैं।

एक भारतीय था श्रीयुत राधानाथ सिकदार। वही संसार की सबसे ऊँची चोटी का पता लगानेवाला था। उसकी सफलता, उसकी प्रतिभा तथा उसके सारे यश का सेहरा उसके भूतपूर्व स्वामी के सिर से बाँधा गया। आज वह शैल-शिखर, जो माउंट सिकदार के नाम से प्रसिद्ध होता, माउंट एवरेस्ट कहकर पुकारा जाता है। यह कोई नई बात नहीं है। हमारी गोली से गिरे हुए शिकार की छाती पर बैठकर कितने ही विदेशियों ने समय-समय पर अपने चित्र उतरवाए हैं। उनके चित्र, उनके नाम समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुए हैं, उन्हें ढेरों बधाइयाँ मिली हैं, परंतु हमसे कभी किसी ने एक बार यह भी नहीं पूछा कि तुम किस खेत की बथुई हो।

श्रीराधानाथ सिकदार का शुभ जन्म सन् १८१३ में हुआ था। शुरू-शुरू में सिकदार महोदय केवल तीस रुपए मासिक पर भारतीय अनुसंधान-विभाग में नौकर हुए थे। उस समय सर जॉर्ज एवरेस्ट इस विभाग के अध्यक्ष थे। अपनी अलौकिक प्रतिभा तथा अनवरत परिश्रम द्वारा, कुछ ही काल में, उसी विभाग में, सिकदार महाशय छै सौ रुपए मासिक पर एक बड़े पदाधिकारी नियुक्त हो गए। सिकदार सर जॉर्ज एवरेस्ट के उत्तराधिकारी सर एंड्रू वाफ़ के साथ काम करते थे। एक समय सिकदार साहब सर वाफ़ के साथ पहाड़ों की नाप-जोख करने गए हुए थे। एक दिन की

बात है कि सिकदार सर वाफ़ के तंबू में एकाएक घुस पड़े, और मारे ख़ुशी के चिल्लाकर कह उठे—"हुज़ूर, मैंने संसार के सबसे ऊँचे पर्वत का आज पता लगाया है।" सर वाफ़ ने मुस्किराकर कह दिया—"ख़ूब!" सिकदार को अपने परिश्रम का पुरस्कार मौखिक प्रशंसा तथा सराहना के अतिरिक्त और कुछ भी न मिला। सर वाफ़ ने उस चोटी का नामकरण अपने पेशे के पिता सर जॉर्ज एवरेस्ट के नाम पर कर दिया। तभी से वह ऊँची चोटी माउंट एवरेस्ट कहलाती है। सिकदार—अभागे सिकदार—का उस दिन से किसी ने नाम भी नहीं लिया।

माउंट सिकदार आज माउंट एवरेस्ट के नाम से सारे संसार में प्रसिद्ध है। क्या संसार श्रीराधानाथ सिकदार को बिलकुल ही भुला देगा? भारतवर्ष को स्वर्गीय श्रीराधानाथ सिकदार पर गर्व है। जिस सर्वोच्च शैल-शिखर को एक साधारण पथारोही भारतीय ने खोज निकाला था, आज उसी चोटी तक पहुँचने के लिये हवाई बेड़ों की चढ़ाइयाँ होती हैं। यदि कोई उस चोटी के चरण चूमने में भी सफल होता है, तो संसार-भर में धूम मच जाती है। हास्टन-दल को संसार के सभी समाचार-पत्रों ने बधाइयाँ दीं—हम भी स्वर-से-स्वर मिलाकर वीर उड़ाकों को बधाइयाँ दे रहे हैं। बात चलने पर हमें भाई सिकदार की याद आ गई। वह अभागा था। उसके भाग में यश बदा न था, इसीलिये हम उसके प्रति सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं।

सुनते हैं, रटलज साहब ने थल-मार्ग से एवरेस्ट-यात्रा करने का बीड़ा उठाया है। भगवान् उन्हें एवरेस्ट की चढ़ाई में सफल करें, वह सही-सलामत वापस आएँ, हमारी यही कामना है।

× × ×

३. हैदराबाद में घोर असंतोष

अखिल भारतवर्षीय रियासती हिंदू-हितैषी मंडल द्वारा स्थापित की गई जाँच-कमेटी ने हैदराबाद-राज्य के हिंदुओं के दुख-दर्द की कहानी, रिपोर्ट के रूप में, प्रकाशित कर दी है। रिपोर्ट बड़े परिश्रम से तैयार की गई है। सौ से अधिक मान्य व्यक्तियों की गवाहियों, विविध हिंदू-संस्थाओं की लिखी हुई फ़रियादों और सरकारी विज्ञप्तियों के आधार पर कमेटी ने अपनी रिपोर्ट का निर्माण किया है। उसका कहना है कि हैदराबाद-राज्य में हिंदुओं के अधिकारों की घोर अवहेलना की जा रही है—उनकी धार्मिक स्वतंत्रता तक में हस्तक्षेप हो रहा है—मसजिदों के सामने बाजा बजाना सर्वथा निषिद्ध है। तीन सौ गज़ की दूरी तक गाना-बजाना हो ही नहीं सकता, चाहे प्रार्थना का समय हो या न हो—चाहे दिन हो या रात—चाहे जाड़ा हो या बरसात। इस संबंध में जो क़ानून है, वह हर घड़ी, हर मौसम, हर युग के लिये एक है। हिंदुओं के पुराने मंदिर जर्जर अवस्था में हैं, उनके जीर्णोद्धार में अड़चनें डाली जाती हैं, पख़ें लगाई जाती हैं। राज्य की ओर से जो कुछ भी आर्थिक सहायता तथा दान-पुण्य किया जाता है, वह मुसलमानों के लिये।

जहाँ तक नौकरियों आदि में हिंदुओं की भरती का प्रश्न है, उसके विषय में भी रिपोर्ट की सूचना संतोष-जनक नहीं है। न्याय-विभाग में २१ न्यायाधीश हैं, ६ सरकारी वकील हैं, तथा ४ नगर की दीवानी अदालतों के न्यायाधीश हैं, और सब-के-सब मुसलमान हैं। इसी प्रकार फ़ौजी, धार्मिक क़ानून-विधान आदि मंत्रि-मंडल के कर्मचारियों में मुसलमानों के अतिरिक्त हिंदू दृष्टिगोचर ही नहीं होते। कमेटी का कथन है कि हिंदुओं की जन-संख्या ८६ फ़ी सदी है, पर तो भी उनके साथ ऐसा दुर्व्यवहार हो रहा है!

कमेटी की रिपोर्ट पढ़कर हैदराबाद-राज्य की हिंदू-प्रजा पर तरस आता है। ऐसा आभास होता है कि उक्त रियासत की निस्सहाय प्रजा मुसीबतों के पहाड़ के नीचे दबी जा रही है। रिपोर्ट के हर पन्ने से दुखी तथा पीड़ित नर-नारियों के करुण-क्रंदन की हृदय-द्रावक आवाज़ उठ रही है। हमें तो एकाएक

विश्वास नहीं होता कि निज़ाम हैदराबाद-ऐसे सुशिक्षित, समझदार तथा समय की गति पहचाननेवाले नरेश के राज्य में भी ऐसा अंधेर हो सकता है! वह तो प्रजा-वत्सल होने का दम भरते हैं! फिर यह भेद-भाव कैसा? क्या हम यह आशा करें कि वह अपनी हिंदू-प्रजा की फ़रियाद सुनेंगे, और उसका दुख-दर्द दूर करने का यत्न करेंगे?

× × ×

४. स्वदेश-भक्त हसनइमाम

वह देश का शुभ-चिंतक था। सच्चा देश-भक्त था। जातीय कट्टरता से कोसों दूर था। वह अपने को भारतीय कहता था। उसे भारतीय होने का गर्व था। वह मुसलमान था, परंतु उसका हृदय मातृभूमि के प्रेम से ओत-प्रोत था। १९१८ की बंबई-कांग्रेस के अवसर पर उसे सारे देश ने एक स्वर से अपना राजा स्वीकार किया था—वह राष्ट्रपति चुना गया था। देश ने उसे उसकी अलौकिक प्रतिभा, विद्वत्ता, पांडित्य तथा सच्चे स्वदेश-प्रेम का पुरस्कार दिया था अपना राष्ट्र-पति चुनकर। उसने अपनी आन अपने हाथों से जाने न दी। १९१८ में वह सारे देश का प्यारा था—पथ-प्रदर्शक था। आज तक वह हमारा स्नेह-पात्र रहा, मुसीबत में हमें मार्ग दिखलाता रहा। इधर कुछ वर्षों से वह यद्यपि राजनीति से पृथक्-सा हो गया था, फिर भी देश-प्रेम तथा देशोद्धार की लगन उसके हृदय में जीवित थी। राजनीति-क्षेत्र में अब भी उसका बड़ा मान था।

वह क़ानून का प्रकांड विद्वान् था, उसकी सूझ तथा क़ानून-ज्ञान का लोहा सभी मानते थे।

उसका जन्म सन् १८७१ में हुआ था। अपने जीवन-काल में उसने वकालत से अपार धन पैदा किया। १९१२ से १९१६ तक कलकत्ता-हाईकोर्ट की जजी की। १९१८ में कांग्रेस का प्रेसीडेंट हुआ—कुछ काल तक अखिल भारतवर्षीय होमरूल-लीग का भी सभापति रहा। १९२३ में भारत का प्रतिनिधि होकर लीग ऑफ़् नेशंस में सम्मिलित हुआ।

उस प्रतिभाशाली व्यक्ति का सारा जीवन सच्ची सफलता का आदर्श उपस्थित करता है। उसकी मृत्यु से मा की गोद से एक प्रबल क़ानून का पंडित, राज-नीति का आचार्य तथा सच्चा देश-भक्त छिन गया। उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर किसका हृदय द्रवित न हो उठा होगा! ईश्वर उसकी पुण्य आत्मा को शांति प्रदान करे, तथा परिवार को यह अपार दुःख सहन करने की शक्ति दे।

× × ×

५. श्याम-सम्राट् की अनर्थकारी नीति

गत वर्ष श्याम पर महाक्रांति के बादल गरज रहे थे—चारो ओर भीषण अशांति और उपद्रव मचा हुआ था। संसार श्याम-नरेश महाराजाधिराज प्रजाधीपक महोदय की अवस्था पर सहानुभूति प्रकट कर रहा था। लेकिन प्रजाधीपक की चातुरी तथा बुद्धिमत्ता ने उनकी लाज रख ली। नेशनलिस्ट-दल ने उनके ताज और तख़्त के चिथड़े उड़ा दिए होते, परंतु श्याम-नरेश चेत गए। श्याम-नरेश ने नेशनलिस्ट नेताओं के सामने घुटने टेक दिए। एक प्रजा-प्रतिनिधि-मंडल की स्थापना हो गई, जिसको राज्य-शासन के बहुत कुछ अधिकार दे दिए गए। असंतुष्ट, पागल जन-समूह अपनी इस विजय पर हँस उठा—उसका क्रोध शांत हो गया। प्रजाधीपक भी सुख से शासन करने लगे।

इधर कम्युनिस्ट-दल ज़ोर पकड़ने लगा—प्रजा-प्रतिनिधि-मंडल में भी उसके आदमियों ने क़दम जमाना प्रारंभ कर दिया। कम्युनिज़्म के नाम से सत्ता-धारियों की नानी मरती है। श्याम-नरेश को सिंहासन के पाँव उखड़ते प्रतीत होने लगे, उन्होंने फोड़े को दूर करने के लिये समूची टाँग ही काट डाली। प्रजा-मंडल के मुट्ठी-भर कम्युनिस्ट सदस्यों को पृथक् करने के अभिप्राय से समस्त मंडल ही को जड़-मूल से उखाड़ फेंका। अक्सर मृत्यु के भय से मनुष्य की बुद्धि मारी जाती है। श्याम-नरेश ने उतावली में प्रजा-प्रतिनिधि-मंडल को तोड़कर वास्तव में बड़े साहस

का कार्य किया है। शासन-प्रणाली में ऐसा भीषण क्रांतिकारी परिवर्तन—प्रजा के अधिकारों पर अचानक प्रहार—उसके प्रतिनिधि-मंडल का अकस्मात् अंत वास्तव में एक विकट परिस्थिति के जन्म का कारण बन सकता है। श्याम-नरेश की इस नीति से हित की नहीं, अहित तथा अनर्थ की अधिक संभावना है।

× × ×

६. स्वर्गीय जाम साहब

हमें जाम साहब की मृत्यु का दुःख है, क्योंकि वह हमारे देश की कीर्ति फैलाने में, भारत मा का गौरव बढ़ाने में अपने क्षेत्र में एक ही थे। क्रिकेट के वह ग़ज़ब के खिलाड़ी थे। जिसने उनका खेल देखा है, वह उनकी स्मृति भुला नहीं सकता। इँगलैंड-वाले तो उनके खेल पर लट्टू हो गए थे—वह उन्हें क्रिकेट-खेल का राजा कहने लगे थे। जाम साहब की मृत्यु से संसार के सभी खिलाड़ी शोकाकुल हो रहे हैं। हमें तो यह रोना है कि आज हमारा गौरव बढ़ानेवाला हमसे बिछुड़ गया—उसकी जगह लेने-वाला भारतवर्ष में दूसरा कोई दृष्टिगोचर ही नहीं होता।

× × ×

७. साम्यवाद या सहयोग

गत २५ वर्षों से सारी पृथ्वी पर साम्यवाद की चर्चा बड़े ज़ोरों में चल रही है। यों तो सारे योरप में ही इसका काफ़ी ज़ोर रहा है, परंतु जब से रूस में बोलशेविक लोगों ने ज़ोर पकड़ा है, यह चर्चा बहुत ही अधिक प्रभावशालिनी हो गई है। इस भावना ने जगत् के पुराने-से-पुराने प्रबंधों को उलट दिया और साम्राज्यों को ध्वंस कर दिया है। राज-मुकुटों को धूल में मिला दिया है। और, राजमुकुट से सुशोभित होनेवाले प्रतापी सिरों को धड़ से जुदा कर दिया है।

भारतवर्ष में भी यह चर्चा बड़े ज़ोरों पर है, और प्रायः सारे शिक्षित लोग साम्यवाद को पसंद करने लगे हैं। परंतु हमारी सम्मति में इस विषय पर स्वतंत्रता से गंभीर विचार नहीं किया गया।

पहली बात तो यह कि भारतवर्ष का सामाजिक जीवन योरप के जीवन से बिलकुल भिन्न है। परंतु जिन लोगों में समाज में उन्नति के भाव उत्पन्न हुए हैं, उन पर भारत का तो बहुत कम और योरप का कुछ ऐसा अद्भुत प्रभाव पड़ा है कि वे बड़ी ही आतुरता से योरप की नक़ल करने लग जाते हैं। प्रायः वे भारतीयता को समझते ही नहीं—समझने की चेष्टा भी नहीं करते।

साम्यवाद की चर्चा जो योरप में इतनी तीव्रता से उठी है, इसका कारण वहाँ के ग़रीबों, मज़दूरों और पूँजीपतियों में अप्रिय कारण पैदा होना है। वास्तव में योरप के अमीरों और ग़रीबों का जीवन इस क़दर सहानुभूति-शून्य और स्वार्थ-परिपूर्ण है कि जिसका परिणाम कभी मित्रता नहीं हो सकती। भारत की स्थिति इससे बिलकुल ही भिन्न है। पहली बात तो यह है कि जहाँ योरप में ख़िताब और संपत्ति हरएक घराने में पीढ़ियों तक रहती है, वहाँ भारत में सब संतानों को बराबर बाँट दी जाती है। और ३-४ पीढ़ियों बाद उसके इतने हिस्से हो जाते हैं कि वह नहीं के बराबर हो जाती है। दूसरी बात यह कि भारत में बिरादरी के बंधन ऐसे हैं, जिन्होंने अमीरों और ग़रीबों को ख़ूब कसकर सहयुक्त कर रक्खा है। बिरादरी के प्रश्न पर अमीर-ग़रीब बराबर हो जाते हैं। तीसरी बात भारत के प्राचीन रहन-सहन की है। प्राचीन काल में भारत के धनी और निर्धनों का रहन-सहन सादा और लगभग एक-जैसा था, कम-से-कम इतनी विषमता तो न थी, जितनी अब है। फिर राजा-महाराजाओं के जीवन और उत्तरदायित्व इतने जोखिम-पूर्ण थे कि वे प्रजा से ख़ूब घनिष्ठ बनकर रहते थे। व्यापारियों के दायित्व भी कम जोखिम-पूर्ण न थे, परंतु आज राजाओं और धनियों में वह बात नहीं रही। आज आलस्य और प्रमाद में अपनी संपत्ति और अधिकारों को बुरे-से-बुरे ढंग से उपयोग

में लाने की उन्हें काफ़ी फ़ुर्सत तथा सुबीते हैं। ऐसी दशा में उनके संबंध सर्वसाधारण से शिथिल हो गए हैं, और सर्वसाधारण और वे परस्पर बहुत दूर हो गए हैं, फिर भी उनके प्रति जो असंतोष देश में फैला है, वह उन दलित साधारण वर्ग में नहीं, प्रत्युत उन शिक्षितों में है, जिनका उस पीड़न से केवल दूर का संबंध है। ऐसी दशा में हमें इस बात पर पूर्ण विचार कर लेना चाहिए कि वास्तव में हमारी इस भावना का परिणाम क्या होगा।

कल्पना कीजिए, आपकी धर्मपत्नी किसी दफ़्तर में नौकर हो गईं। ऐसी दशा में यह अनिवार्य है कि उन पर दफ़्तर के अधिपति का सीधा प्रभुत्व और अधिकार रहेगा। साथ ही इस प्रकार के पुरुषोचित कार्य करने से उन पर दीवानी और फ़ौजदारी के दायित्व भी आ जायँगे। फिर आप क्या यह सब सहन कर सकेंगे? योरप की स्त्रियाँ बच्चे उत्पन्न करने से तो घृणा करती हैं, किंतु पुलिस और फ़ौज में भर्ती होने का अवश्य चाव रखती हैं। स्त्री-स्वातंत्र्य की सीमा यहाँ तक बढ़ गई है कि रूस में ऐसे अस्पताल खोले गए हैं, जहाँ कोई भी स्त्री विना कारण बताए अपना गर्भ गिरा सकती है। परंतु गर्भपात तो सदैव ही पाप और अपराध माना जाता रहा है। साम्यवाद में ईश्वर के बड़प्पन को भी स्थान नहीं है। यह ईश्वर क्या चीज़ है, हम वास्तव में ठीक-ठीक नहीं जानते, परंतु मानवीय अपूर्णता का एक आश्रय वह अवश्य है। हम समझते हैं, ईश्वर का सार्वजनिक मज़ाक़ जिस भाँति आज उड़ाया जा रहा है, शायद हज़ारों वर्ष से नहीं उड़ाया गया था।

आप मनुष्यों को बल-पूर्वक समान बना दें, वे अपनी प्रतिभा के कारण असमान बन जायँगे। मानव-समाज का विकास और वृद्धि रोकी नहीं जा सकती। ऐसा करना मनुष्य-जाति को पतन के मार्ग पर ले जाना है। सच्ची व्यवस्था यही है कि सब श्रेणी और योग्यता के पुरुष अपने व्यक्तित्व में पूर्ण विश्वास प्राप्त करें। स्त्री में पूर्ण स्त्रीत्व हो, पुरुष में पूर्ण पुरुषत्व हो, वैज्ञानिक में पूर्ण विज्ञान हो, सिपाही में पूर्ण योद्धा-भाव हो। और, फिर वे व्यक्तिगत स्वार्थों को त्यागकर समाज-सेवा के नाते परस्पर एकत्र हो जायँ, एक दूसरे का सहयोग करें, मनुष्य-समाज में तभी शांति प्राप्त हो सकती है।

× × ×

८. हिटलर

जर्मनी में मिस्टर हिटलर अब फिर सर्वेसर्वा बन गए हैं, और जर्मनी फिर उस पथ पर चलने की तैयारी में है, जिस पर महायुद्ध से पहले इठलाकर चलता था। अब वहाँ के क़ानून कठोर बना दिए गए हैं। बाहरी देशवासी जर्मनी में नहीं रह सकेंगे। उनके पीछे निगरानी रक्खी जायगी। प्रधान मंत्री ने विज्ञप्ति निकालकर घोषणा कर दी है कि विदेशी डॉक्टर, बैरिस्टर जर्मनी में प्रैक्टिस नहीं कर पावेंगे।

परंतु हिटलर को अभी अनगिनत विपत्तियों में होकर गुज़रना पड़ेगा। मज़दूरों की बेकारी बेहद बढ़ गई है। उनकी आत्मजागृति ने अंधविश्वास के पर्दे दूर कर दिए हैं। वे पहले आर्थिक प्रश्न सुलझाएँगे। व्यापार की दशा हिटलर के उपयुक्त नहीं है। फिर भी निम्न श्रेणी के लोग उसका साथ देने को तैयार दिखाई देते हैं। उसके दल का नाम 'फ़ेसिस्ट' है, जो प्रबल सुधारक है। महायुद्ध के बाद जर्मनी ने हिटलर को अलग कर दिया था, पर धीरे-धीरे वह फिर उसी पद पर आ पहुँचा। इस बार वह तीव्र सुधार करेगा, जिसके कारण जर्मनी में क्रांति होगी।

× × ×

९. बेकारी

गत १० वर्षों से संसार में बेकारी बढ़ती जा रही है। प्रत्येक राष्ट्र पर इसका प्रभाव पड़ा है। पूँजीपति भी इसकी चपेट से नहीं बचे। इसकी ज़िम्मेदारी साम्राज्यवाद, पूँजीवाद तथा वैयक्तिक जीवनवाद पर लगाई जा सकती है, जिसके प्रलोभन में राष्ट्र परस्पर में दुर्भावना रखकर उनके स्वतंत्र रूप से अर्थोपार्जन करने के क्षेत्र को नष्ट करके अपने व्यापार-केंद्र बनाते,

उनकी शक्तियों को अपना लेने की इच्छा करते और विजित करने की धुन रखते हैं। जापानी माल के ऊपर भारत-सरकार ने जो कठोर चुंगी लगाने का बिल असेंबली में पास किया है, इस बात का ताज़ा उदाहरण है। मिलों और कारख़ानों में लाखों मनुष्य काम करते हैं। अपनी स्त्री-बच्चों को भी उसी में रखते हैं। जो कभी सुख और शांत निद्रा नहीं सो सकते। आज उनके बंद हो जाने पर बेकार बैठे हैं, उन्हें अब क्या काम मिल सकता है। अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन के मज़दूर संगठन बनाकर प्रदर्शन करते और अपनी माँग पार्लियामेंट तक पहुँचाते हैं, और राज्य की ओर से उन्हें कुछ सहायता मिलती तो है, परंतु भारत के मजूर किसे सुनाएँ। वे अपने भाग्य के सहारे अपने दुर्दिनों को करुणा-पूर्वक आधा पेट, आधपाव भोजन पाकर ही व्यतीत करते हैं। रूस ने पिछले पंचवर्षीय आयोजन में कितनी दक्षता से अपनी बेकारी और दरिद्रता नष्ट कर दी, वहाँ के किसान, मजूर अपने को मनुष्य और संपन्न समझने लगे—तब वास्तव में यह बात माननी पड़ेगी कि यदि पूँजीवाद का अस्तित्व मिट जाय, तो भारत बेकारी से बच सकता है।

× × ×

१०. संसार की शांति ख़तरे में

युद्ध मचना ही भयानक है। गत योरपीय महा-समर में कितना अधिक नर-संहार हुआ, और संसार-भर में कैसी अशांति रही, इसकी कल्पना करना भय-प्रद है। वर्सेले की संधि होने पर राष्ट्र-संघ ने भविष्य में किसी देश में युद्ध छिड़ने के अवसर न आने देने की भरसक चेष्टा की है, पर वह इसमें सफल नहीं हुआ। जापान ने चीन को नष्ट करने को ठान ली है, और चीनी सरहद पर हमले कर रहा है। राष्ट्र-संघ को उसने धमका दिया है, और अपनी प्रतिज्ञाओं से वह मुक्त है। इससे तो साफ़ प्रकट है कि राष्ट्र-संघ शक्ति-हीन है, वह केवल कहता-ही-कहता है, कुछ कर नहीं सकता। चीन-जापान के उदाहरण के सिवा हम नित्य यह समाचार भी पढ़ते हैं कि अमुक राष्ट्र ने इतनी जंगी तैयारियाँ कीं। प्रत्येक राष्ट्र गुप्त रूप से युद्ध के अस्त्र-शस्त्र और सामग्री एकत्र कर रहा है। जुगोस्लाविया ने ६ अरब ३० करोड़, ज़ेकोस्लोवाकिया ने १५ करोड़ ६० लाख, रूमानिया ने १६ करोड़ ९० लाख और पोलैंड ने २६ करोड़ रुपयों की लागत का जंगी सामान ख़रीदा है। अमेरिका, इँगलैंड, फ्रांस और जर्मनी के आँकड़े इनसे कईगुना अधिक हैं। अस्त्र-शस्त्र बनाने के कारख़ाने ख़ूब ज़ोरों पर चल रहे हैं। राष्ट्रों के बड़े-बड़े लॉर्ड और राजनीतिज्ञ इन कारख़ानों के मालिक हैं। और, इतना सामान तैयार किया जा रहा है कि समस्त संसार १ घंटे के अंदर-अंदर भस्म कर दिया जायगा। अस्त्रों के साथ-साथ विषैली गैसें, गुब्बारे और धुएँ तैयार किए जा रहे हैं, जो जादू की तरह असर दिखाएँगे। वैज्ञानिकों को अनुसंधान करने के प्रत्येक सुभीते दे दिए गए हैं।

पिछले १½ वर्ष से राष्ट्र-संघ ने जेनेवा में निरस्त्रीकरण-कान्फ्रेंस की कई बैठकें बहुत जल्दी-जल्दी कीं, और जितनी शीघ्रता शांति-स्थापना के लिये की जा रही है, उतनी ही शीघ्रता युद्ध देख रहा है। ब्रिटेन अपने रण-कौशल पर कमर कसे निकट है, अमेरिका अपने ऐश्वर्य पर गर्व कर रहा है, फ्रांस अपनी बाक़ी वीरता पर फूल रहा है, रूस संसार में नवीन योजनाओं के आधार पर लोहा लेने की धुन में है, जापान अपनी मुटमर्दी और मुस्तैदी पर निश्चित है, चीन अपनी खुली तलवारों पर आश्रित है। इटली, टर्की, आस्ट्रिया आदि छोटे-छोटे राष्ट्र कमर कसे चौकन्ने हैं, कहीं भी धमकी कि झंकार उठेंगी। लो, यह संसारव्यापी महायुद्ध छिड़ा, जो तब तक बंद न होगा, जब तक एक शक्ति सबको पराजित न कर देगी—इस भयानक संकट के टालने की चेष्टा राष्ट्र-संघ को मुस्तैदी से करनी चाहिए।

× × ×

११. दूसरे महायुद्ध के लिये जर्मनी की तैयारी

पूर्ण शांति नहीं हो पाती कि योरप में एक

नया गुल खिल जाता है, जिसे देखते ही वहाँ की समस्त शक्तियाँ हलचल में पड़ जाती हैं। यहाँ नीतियों का खेल होता है, और इस क्षेत्र में बढ़ने की होड़-सी लगी रहती है। खाते-पीते, सोते-जागते और हँसते-रोते सर्वदा ही वहाँ के लोग अपनी शक्ति-वृद्धि का चिंतन करते रहते हैं। फिर वहाँ शांति कैसी! और वह भी चिरस्थायिनी!!

अभी पिछले योरपीय महायुद्ध के चिह्न उसी प्रकार सजग हैं। उसके परिणाम से इस समय भी बहुतों को छुटकारा नहीं मिल सका है। और क्या कहें, जर्मनी उस आँधी से उजड़ा हुआ, फिर बस जाने की कोशिश में निरत रहते हुए भी अभी पूर्ण रूप से नहीं सँभल सका है। गत महायुद्ध के बाद जर्मनी और फ्रांस की सीमा ह्राइन-नदी के दोनो किनारों पर बाँध दी गई थी, और उसी समय से फ्रांस तथा जर्मनी, दोनो राष्ट्रों ने ही वहाँ जल-सेना के मोर्चे बनाकर अपनी रक्षार्थ युद्ध की सामग्री संचित कर रक्खी है। इस शक्ति का अनुमान करके बहुत कुछ कहा और किया जा सकता था, और फ्रांस ने ऐसा किया भी। वह समय-समय पर जर्मनी की शक्ति का आभास देता रहा है, और अन्य राष्ट्र इस नीति से लाभ उठाते रहे हैं।

जर्मनी हिटलर की सरकार के हाथों में आने के पूर्व कुछ दबा हुआ था, किंतु हिटलर की सरकार के हाथ में जर्मनी का राज्य-सूत्र आते ही एक विचित्र परिवर्तन हो गया है। जर्मनी अपनी नीति में अधिक निर्भीक और कार्यों में अधिक खुला हुआ हो गया है। इसके प्रत्येक कर्म इसकी नीति के द्योतक हो रहे हैं, और जर्मनी की वर्तमान नीति पर ध्यान देने से यह स्पष्ट मालूम होता है कि जर्मनी युद्ध से पीछे भागने की तैयारी नहीं कर रहा है, वरन् अधिक उत्सुक हो रहा और युद्ध के लिये हर तरह की तैयारी कर रहा है।

हाल ही में रूटर ने तार द्वारा यह समाचार भेजा है कि "१६ एप्रिल को जर्मनी के कुछ फ़ोटोग्राफ़र दो नावों में बैठकर ह्राइन-नदी के फ्रांसवाले किनारे के निकट होकर बड़ी दूर तक चले गए, और बीच में जहाँ-जहाँ इन्होंने फ्रांस के फ़ौजी मोर्चे देखे, वहाँ के फ़ोटो ले लिए। फ्रांस के तट-रक्षक सैनिकों ने उन्हें ऐसा करते देख रोकने की चेष्टा की, बार-बार मना करने पर भी जब वे नहीं बाज़ आए, तो उन लोगों ने दूसरी नीति का अवलंबन करना चाहा, किंतु उस समय तक जर्मन-नौकाएँ अपने प्रदेश की सीमा पर जा लगीं, और फ़ोटोग्राफ़र लोग मोटर पर बैठकर चंपत हो गए।"

यह घटना स्पष्ट रूप से जर्मनी की मनोवृत्ति प्रकट कर रही है। फ्रांस जर्मनी की शक्ति का अनुमान करने में बहुत चंचल रहा है, लेकिन अब मालूम होता है, जर्मनी भी अपनी नीति को खुलेआम घोषित कर देगा, और आवश्यकता पड़ेगी, तो युद्ध की घोषणा भी कर देगा। नहीं तो जर्मनी के उपर्युक्त फ़ोटो-ग्राफ़रों को फ्रांस के मोरचों की फ़ोटो लेने की क्या आवश्यकता थी? वे इसी खोज में गए होंगे कि फ्रांस ने किस ढंग की मोर्चेबंदी कर रक्खी है। फ़ोटो से जर्मनी को फ्रांस की बाहर शक्ति का अवश्य ही अनु-मान हो सकेगा, और इस स्थिति में जर्मनी को अपनी तैयारी पूर्ण करने में अवश्य ही बहुत अधिक सहायता मिल सकेगी।

जर्मनी की वर्तमान सरकार और आंतरिक परिस्थिति पर विचार करते हुए प्रसिद्ध साम्यवादी 'लीओ ट्राटस्की' ने बहुत-सी अन्य बातों के साथ 'अमेरिकन रिव्यू' में यह भी लिखा है कि अंतर्राष्ट्रीय वैर-भाव के अत्यधिक दबाव के कारण शीघ्र ही कोई भयंकर धड़ाका होने की सूचना दे रहे हैं।

इन बातों के अतिरिक्त हिटलर की सरकार अपनी सैनिक-शक्ति की वृद्धि के लिये कमर कसकर तैयार है। जर्मनी की वर्तमान स्थिति भी ऐसी ही हो गई है कि उसकी इस स्कीम में दिन-प्रति-दिन उत्तेजना फैलती जा रही है। श्रम-जीवी की वृद्धि और व्यवसाय-मंदी के कारण वहाँ की स्थिति भी असंतोष-जनक

हो गई है। इस दशा में जर्मनी का पुनरुत्थान के लिये प्रयत्नशील होना आश्चर्य-जनक नहीं है। जर्मनी युद्ध की तैयारी कर रहा है, और यदि उसकी तैयारी पूरी हो गई, तो फ्रांस से युद्ध करने के लिये वह तैयार हो जायगा। फ्रांस आदि पूँजीपति राष्ट्र साम्यवाद का केवल विरोध ही नहीं करेंगे, वरन् साम्यवाद को समूल नष्ट कर देने का भी प्रयत्न करेंगे, और इस प्रकार से दोनो राष्ट्रों के सहायक दल भी एक दूसरे के साथ सम्मिलित हो जायँगे।

यदि ये बातें हो गईं, जर्मनी पूर्ण तैयार हो गया, तो निकट भविष्य में ही दूसरे महायुद्ध के हो जाने की पूर्ण संभावना है। लेकिन इस महायुद्ध में क्या होगा, यह भविष्य की बात है, और इसके संबंध में उसी समय कुछ कहा जा सकता है, जब यह नया गुल खिल जाय। लेकिन देश को इसकी आवश्यकता नहीं है। इस समय शक्ति की उपासना न करके शांति की उपासना करनी चाहिए, और इसी में समस्त विश्व-मंडल का कल्याण है।

× × ×

१२. महिला-कवि-सम्मेलन

स्त्रियों में जागृति आ गई है। उन्होंने अब अपने को शक्ति और सरस्वती का अवतार मानकर अग्रसर होने की ठान ली है। आडंबरों को चकनाचूर करके वे अपने स्वत्वों की रक्षा करने के लिये तैयार हैं। पुरुषों की गुलामी नहीं कर सकतीं। आख़िर ये पीछे किस बात में हैं। शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। राष्ट्रीयता में अपनी शक्ति दिखला दी, और अन्य क्षेत्रों में भी पुरुषों से स्वतंत्र अपनी सत्ता स्थापित करने पर वे तुली हुई हैं।

अभी तक कवि-सम्मेलनों पर केवल मर्दों का ही सिक्का जमा हुआ था। स्त्रियाँ उसमें सम्मिलित होने में संकोच करती थीं। हाँ, जहाँ उन्होंने भाग लिया, वहाँ अपनी छाप डाल दी। उन्होंने यह दिखा दिया कि कवित्व पर हम स्त्रियों का पूर्ण अधिकार है, और भावना हममें अधिक वेगवती और स्पष्ट है।

अभी-अभी प्रयाग के महिला-विद्या-पीठ में महिला-कवि-सम्मेलन हुआ, उसमें स्त्रियों का ही राज्य था। पुरुष हस्त-क्षेप नहीं कर सकते थे। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान (चित्र पृष्ठ ३७५) इसकी सभानेत्री थीं, और श्रीमती महादेवी वर्मा थीं इसकी स्वागतनेत्री (चित्र पृष्ठ ३७५)। कुमारी रामेश्वरी-देवी गोयल एम्० ए० (चित्र पृष्ठ ३७६) स्वागत-मंत्री थीं। ख़ूब धूम के साथ कवि-सम्मेलन हुआ। स्त्री-कवियों का अच्छा जमघट रहा। भिन्न-भिन्न स्थानों से आई हुई स्त्रियों की संख्या भी पर्याप्त मात्रा में थी। अच्छी, सुंदर और उत्तम रचनाएँ पढ़ी गईं। इसमें उनके झिझकने की गुंजाइश नहीं थी, पुरुष हंगामा नहीं मचा सकते थे, इसलिये सम्मेलन ख़ूब सफल हुआ।

श्रीमती सुभद्राकुमारीजी ने सभानेत्री की हैसियत से भाषण दिया। भाषण अन्यत्र इसी अंक में छपा है। यह भाषण कैसा है, इसके संबंध में हम और कुछ नहीं कहेंगे, लेकिन इतना अवश्य कहेंगे कि यह भाषण एक स्त्री-कवि के सर्वथा उपयुक्त है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक कोमलता होती है, हम मानने को तैयार हैं। किंतु श्रीपाठकजी अथवा उपाध्यायजी की उद्धृत पंक्तियाँ उनकी कठोरता की द्योतक नहीं हैं। पंक्ति विशेष से किसी सिद्धांत को स्थिर कर देना ठीक नहीं। पाठकजी और उपाध्यायजी की बहुत-सी क्या, अधिकांश में ऐसी रचनाएँ मिलेंगी, जो बहुत कोमल और हृदय को स्पर्श कर देनेवाली हैं।

हम महिला-कवि-सम्मेलन की सफलता पर श्रीमती सुभद्राकुमारीजी चौहान और महादेवी वर्मा आदि उत्साही महिलाओं को अनेक धन्यवाद देते और आशा करते हैं कि महिला-कवियों की यह जागृति आगे चलकर और भी उन्नति करेगी।

× × ×

१३. अछूतों की समस्या

अछूतों का प्रश्न आजकल बहुत जटिल हो गया

है। निस्संदेह यह एक महत्त्व-पूर्ण समस्या है, जिसका सुलझ जाना परमावश्यक है, और जहाँ तक हो, जल्दी। महात्मा गांधी ने अपनी सारी शक्ति इसके सुलझाने में लगा दी है, और परिणाम-स्वरूप सारे देश में ही एक सामाजिक क्रांति उठ खड़ी हुई है। यह क्रांति जब तक रहेगी, देश में शांति नहीं आ सकती, इसलिये इसका कुछ निपटारा हो जाना ही ठीक है। लेकिन जिस प्रकार का भी निश्चय किया जाय, उस पर पूर्ण रूप से विचार कर लेना चाहिए। क्योंकि इसके साथ अनेक प्रश्न लगे हुए हैं, और यह समस्या हल होते ही सामाजिक व्यवस्था में अनेक प्रकार के परिवर्तन ला देगी।

हमारे अछूत भाई आज तक परित्यक्त और समाज के दलित अंग बने थे। उनके प्रति उच्च जातियों के व्यवहार भी उचित नहीं थे। ये जातियाँ नीचे गिरी हुई थीं। इनमें जीवन लानेवाला कोई नहीं था। ये लोग छिन्न-भिन्न होकर चारो ओर पतितावस्था में पड़े थे। इनकी किसी को चिंता नहीं थी। आर्य-समाज ने समाज-सुधार का प्रयत्न किया, लेकिन इस अंग की पूर्ति उसके द्वारा भी नहीं हो सकी। इसके क्या कारण थे? एक तो समाज में उदारता नहीं व्यापी थी, और दूसरे इस कार्य में अग्रसर होनेवाला कोई सर्व-मान्य पुरुष नहीं था। देश में कोई भी सुधार हो, उसके लिये सर्व-मान्य होना आवश्यक है, और इसके लिये एक ऐसे नेता की ज़रूरत है, जो देश का नेता हो, किसी एक समूह का नहीं। उसे ऐसा होना चाहिए, जिसके सामने सब मस्तक झुकाने को तैयार हों, और वह भी अपने व्यक्तित्व, अपने वैभव और सुखों की तिलांजलि देकर अपने सिद्धांत पर खड़ा रहे। इसके लिये स्वामी दयानंदजी सब प्रकार से उपयुक्त थे, लेकिन कमी इस बात की आ गई कि वह समय से पूर्व हो गए। देश उस समय में इस कार्य के लिये तनिक भी नहीं तैयार था। अँगरेज़ी-शिक्षा अभी प्रारंभिक रूप में थी, लोगों का दृष्टि-कोण अभी बहुत उदार नहीं था, और न लोग सभ्यता को हिंदू-धर्म की रूढ़ियों से अलग करने को तैयार थे।

महात्मा गांधी को यह सुविधा मिली कि उनके कार्य के लिये एक बना-बनाया क्षेत्र मिल गया। इस कार्य को प्रारंभ करने के पूर्व वह जनता के हृदय के स्वामी बन चुके, और सब लोग उन्हें ईश्वरांश तक मानने को तैयार हो गए हैं। ऐसी स्थिति में महात्माजी ने बाज़ी भी ख़ूब लगाई। यह बाज़ी अपने प्राण की थी। एक ओर उनका प्राण था, और दूसरी ओर जनता का त्याग। इन दोनो में एक का हट जाना आवश्यक हो गया। महात्माजी ने जनता का हृदय टटोला, और उन्हें विश्वास हो आया। परिणाम-स्वरूप एक वर्ष के अंदर ही यह आंदोलन पूर्ण रूप से विकसित हो गया, और आज अछूत-जातियों के साथ लोग कंधा मिलाने के लिये तैयार हो गए हैं।

यह काम बहुत आवश्यक था, लेकिन इसके संबंध में हमें एक बात कहनी है। जहाँ अछूत भाइयों के साथ के लिये हम पीछे हटने को तैयार हैं, वहाँ अछूत भाइयों को भी कुछ आगे बढ़ना चाहिए। जब तक यह न होगा, तब तक यह सुधार स्थायी नहीं हो सकता। प्रतिष्ठित और ऊँची जातियों के लोग एक दिन के लिये सड़कों पर झाड़ू लगा लें, पाख़ाना साफ़ कर दें, इससे अछूत भाइयों को थोड़ी देर के लिये भले ही संतोष हो जाय, लेकिन यह कब तक चलेगा? हम इसे कितने दिनों तक इस प्रकार करेंगे। हमारा यह काम एक नुमाइश का दृश्य अवश्य उपस्थित कर देगा, लेकिन इसमें कुछ तत्त्व नहीं मिल सकता। हमारे नौकर ही कमरों में झाड़ू लगाएँगे। भंगी ही हमारे यहाँ सफ़ाई करेंगे। फिर इससे क्या हो सकता है? यह बहुत-से लोगों की सम्मति है, और बहुत-से लोग इस पर हँसते भी हैं। लोगों का यह ख़याल है कि इस प्रकार के दिखावटी कामों से हमारे उद्देश्य को सफलता नहीं मिल सकती। अछूत भाई इस तरह आगे नहीं बढ़ सकते हैं, और हममें तथा उनमें साम्य-भाव

की सृष्टि नहीं हो सकती। फिर भी इससे एक बात अवश्य हो जायगी। अछूत भाइयों के कामों से हम घृणा नहीं करेंगे। हमारी झिझक छूट जायगी, और हम उनको इस तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखेंगे, जिससे आज तक देखते रहे हैं। अछूत भाई हमारे अंग हैं, और हमारे जीवन के प्रतिदिन के सहायक हैं। हम उनके विना नहीं चल सकते, और अपनी उन्नति के लिये हमें उनकी उन्नति का ध्यान अवश्य रखना पड़ेगा।

अंत में हम इस संबंध में कार्य करनेवालों का ध्यान एक बात की ओर और भी आकर्षित करना चाहते हैं। अभी तक जितने भी काम इसके लिये हुए हैं, उनके केंद्र नगर ही रहे हैं, देहातों में उनकी चर्चा तक नहीं हुई है। देहातों में हमारे समाज का नग्न-रूप अधिक स्पष्ट रूप से मिलेगा। इसलिये किसी भी सुधार के लिये हमें देहातों को अवश्य अपनाना पड़ेगा। देहात ही हमारे सुधारों के उद्‌गम-स्थान होने चाहिए।

हम आशा करते हैं कि इन बातों पर अवश्य ध्यान दिया जायगा।

× × ×

१४. चित्रकारों के लिये अपूर्व अवसर

देश में एक लाख सार्वजनिक और घरेलू पुस्तकालयों की स्थापना करने के संबंध में हमारी योजना आपको, सामयिक पत्र-पत्रिकाओं तथा गत मास की सुधा द्वारा, ज्ञात ही हो चुकी है। पूरी योजना भी अब तैयार है। हम इस योजना को प्रदर्शित करनेवाला एक टाइटिल-पेज तैयार कराना चाहते हैं, अतएव कला-कुशल चित्रकारों से अनुरोध है कि वे इस अवसर को हाथ से न जाने दें, और हमारे भावों को अपने कला-चातुर्य द्वारा सुंदर-से-सुंदर रूप में व्यक्त करने का उद्योग करें। जिन महाशय का चित्र भाव-प्रकाशन और कला की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट होगा, उन्हें पारितोषिक-रूप में २१) भेंट किए जायँगे।



सिंधु मथैं सुर ही लही नैंकु जु सतजुग माँहि,
सहज सुलभ सोई सुधा सबै समै सब काँहि।

वर्ष ६ खंड २ | ज्येष्ठ, ३१० तुलसी-संवत् (१९९० वि०)— जून, १९३३ | संख्या ५ पूर्ण संख्या ७१

मंगल-गान

[श्रीयुत मुंशी अजमेरी]

(हमीर)

मंगलमय हे ! मंगलकर हे !
मंगल-मूर्ति, अमंगलहर हे !
नमो-नमो नारायण नर हे !
सरस्वतीश्वर, कमला-वर हे !
विश्वंभर हे ! गंगाधर हे !
जय जगपालक, जगदीश्वर हे !

राजपूत का दोस्त

[आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री]

(१)



"वहीं खड़ा रह, और तलवार रख दे। दोज़ख़ के कुत्ते, काफ़िर, हमारी आँखों में धूल झोंककर, तू अब बचकर नहीं जा सकता। हम तुझे जानते हैं, और तेरे बेशक़ीमत सिर को भी पहचानते हैं, उसे हम अभी भुट्टा-सा उड़ाए देते हैं।"

युवक लौटकर खड़ा हो गया, और उसने अपनी तलवार सूत ली। वह उछलकर उस क्षुद्र नदी के पुल पर चढ़ गया।

आततायी कुल छ थे। रात अँधेरी थी, और आकाश पर बदली छाई थी—अभी मेह बरस चुका था, मार्ग में कीचड़ हो रही थी।

छहों ने एकबारगी ही आक्रमण किया। तलवारें झनझना उठीं। उसके कंधे, बाज़ू और सिर पर चोटें होने लगीं, और वह फ़ुर्ती से पैतरे बदलने लगा। आततायी भी तलवार के धनी थे। वे दृढ़ता-पूर्वक आक्रमण कर रहे थे। युवक के प्राण संकट में थे। वह अल्पवयस्क और छरहरे बदन का आदमी था। उसका रंग गोरा और बाल सुंदर थे। वह साधारण वस्त्र पहने था। और, उसके पास घोड़ा भी न था। वह इन प्रबल प्रहारों को न रोक सका—वह कई घाव खा गया, उनसे रक्त बहने लगा। परंतु उसने दो आततायियों को भी धराशायी कर दिया। शेष भी घायल हुए, परंतु उनका आक्रमण तो जारी ही था। वह पुल के प्रवेश-द्वार की ओर पीठ किए खड़ा था, जहाँ केवल एक ही मनुष्य के निकलने का स्थान था। वह दृढ़ता-पूर्वक शत्रुओं का सामना कर रहा था।

आततायी आक्रमण भी करते जाते थे, और गालियाँ भी देते जा रहे थे। मालूम होता था, उनका इरादा युवक को क़त्ल करने का है, और उन्हें सहायता आने की आशा भी है। वे लोग बड़े क़दावर और भयानक थे। उनकी आँखें लाल और दाढ़ी काली थी। वे क़दम-क़दम पर युवक को पीछे दबा रहे थे।

युवक विलक्षण फ़ुर्ती से छहों से युद्ध कर रहा था। वह उन्हें तनिक भी विश्राम का अवसर नहीं देता था, परंतु वह स्वयं भी थक गया था, और उसकी साँस फूल गई थी। इसके सिवा वह दो-एक गहरे घाव खा गया था, जिनसे बहुत-सा रक्त निकल गया था, और उसकी शक्ति क्षीण हो गई थी।

अचानक उसने देखा, ढालू पहाड़ी के पीछे के खलिहान से, जो नदी-तट पर था, एक आदमी अपनी तलवार चमकाता दबे पैरों लपका चला आता था।

आततायियों को इसका भान न था। वे युवक को दबाए आ रहे थे। उसने पीछे से अकस्मात् आक्रमण किया, और रक्षा के लिये चिल्लाना प्रारंभ किया। आततायी इस अकस्मात् के आक्रमण से घबरा गए। वे उलटकर नए शत्रु पर टूट पड़े। यह सुयोग पा युवक चीते की भाँति उछलकर शत्रुओं पर टूट पड़ा, और उसने दो को और धराशायी किया। शेष दो भी नवीन आगंतुक की तलवार का पानी पी गए। एक भी शत्रु बचकर भागने न पाया। नवागंतुक अपनी तलवार की नोक गड़ाकर मुर्दों को देखने और पहचानने लगा। वह कुछ बड़बड़ाया और हँसा। फिर उसने दूर खड़े युवक की ओर देखा। उसने आगे बढ़कर कहा—"प्यारे दोस्त, तुम बहुत घायल हो गए हो, और सुस्त हो रहे हो। मेरे हाथ का सहारा लो, और धीरे-धीरे चले आओ। यहीं, सामने ही मेरा खलिहान है। मैं अपनी स्त्री-सहित वहीं रहता हूँ। रात को वहीं रहना, सुबह मैं तुम्हें अपना टट्टू दूँगा, और

स्वयं साथ चलकर नगर में पहुँचा आऊँगा। तुम परदेशी प्रतीत होते हो।" इतना कहकर उसने युवक का हाथ अपने कंधे पर रख लिया। युवक ने उसकी ओर कृतज्ञ नेत्रों से देखा, और बिना एक शब्द मुँह से कहे चल दिया।

(२)

"मित्र, मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ। यदि तुम ठीक समय पर न पहुँच गए होते, तो मेरा प्राण बचना असंभव था।"

"नहीं दोस्त, यह कोई बात ही नहीं, यह तो एकतरफ़ा लड़ाई थी। ये लोग बड़े बदमाश थे, यदि पुल पर चढ़ पाते, तो ग़ज़ब था।" उसने सिर हिलाया और कहा—"इसकी ज़िम्मेदारी बादशाह पर है, जिसकी अमलदारी में इस तरह भले आदमी लूटे जाते हैं। अजी, वह बड़ा भारी शराबी और लंपट आदमी है। तुम कहाँ के रहनेवाले हो ? शहर में अजनबी मालूम देते हो ?"

युवक कुछ हिचकिचाया, फिर उसने कहा—"सच है दोस्त, मैं अजनबी आदमी हूँ, और इन मामलों से बिलकुल ही अनजान हूँ।"

"तब तुम ज़रा दिल्ली में सँभलकर रहना, यहाँ एक-से-एक लुच्चे भरे पड़े हैं। कोई किसी का रक्षक नहीं है। तुम नवयुवक हो, और भोले हो, बतलाओ, यहाँ क्या करते हो ?"

"मुझे एक नौकरी लालक़िले में मिल गई है। नौकरी अच्छी है, और मेरी मज़े में कट रही है।"

"तब अच्छा है, मगर बादशाह से हमेशा दूर रहना। हमेशा ज़्यादा हौसले न बढ़ाना, चुपचाप गुज़र किए जाना, इसी में भलाई है।"

"मैं तुम्हारी अच्छी नसीहत कभी न भूलूँगा। मगर दोस्त, खुले ख़ज़ाने बादशाह की ऐसी आलोचना न किया करो, वरना धरे जाओगे।"

"वाह यार, सच्ची कहने में क्या है, अगर मौक़ा पड़े, तो बादशाह के मुँह पर भी वह सुनाऊँ कि सींक खड़ी रहे।"

युवक मुस्किराया। उसने बूढ़े राजपूत का हाथ थामकर कहा—"क्या कभी तुमने बादशाह को देखा भी है ?"

"कभी नहीं, पर सुना है कि वह हमेशा या तो अफ़ीम घोलकर पीनक में झूमा करता है, या शराब पीकर औरतों में मस्त रहता है। क्या बादशाह को ऐसा होना चाहिए ?" युवक इस बार खिलखिलाकर हँस पड़ा।

युवक टट्टू पर सवार था और राजपूत पैदल। अब युवक टट्टू से उतर पड़ा। उसने कहा—"दोस्त, अब तो शहर आ गया, अपना टट्टू ले जाओ। मैं टहलता हुआ चला जाऊँगा।"

"तुम चाहो, तो टट्टू शहर तक ले जा सकते हो।"

"नहीं दोस्त, इसकी ज़रूरत नहीं।"

युवक ने टट्टू की रास बूढ़े के हाथ में थमा दी। बूढ़े ने हर्षोत्फुल्ल नेत्रों से युवक की ओर देखकर कहा—"कहो दोस्त, मेरा टट्टू कैसा है ?"

"बहुत अच्छा। क्या तुम इसे बेचोगे ? मैं मुँह-माँगा दाम दूँगा।"

"नहीं यार, बुरा न मानना, मैं इसे लाख रुपए को बेचनेवाला नहीं।"

"सच, क्या तुम इस जानवर को इस क़दर प्यार करते हो ?" युवक मुस्किराया।

"इससे भी ज़्यादा।" बूढ़ा एकाएक गंभीर हो गया, और उसकी आँखें भर आईं। युवक ने उसके दोनो हाथ पकड़ लिए, और स्निग्ध स्वर में कहा—"माफ़ करना प्यारे दोस्त, मैंने तुम्हारे दिल दुखाने को नहीं कहा था, मगर क्या मैं जान सकता हूँ कि इस जानवर में ऐसी क्या सिफ़त है, जो तुम इसे इतना चाहते हो ?"

बूढ़े ने क्षण-भर युवक की ओर टकटकी बाँधकर देखा, और कहा—"तुम-जैसे जिगरी दोस्त से क्या छिपाऊँ, यह मेरे बेटे का टट्टू है।"

"तुम्हारा बेटा कहाँ है ?"

"वह इसी जगह, इसी पुल पर, मारा गया था।"

"इसी पुल पर !" युवक ने आश्चर्य-चकित होकर कहा।

"हाँ, वह तुम्हारे ही-जैसा ख़ूबसूरत और प्यारा बेटा था। ऐसी ही उसकी आँखें और चेहरा था।" उसने युवक के मुँह को दोनो हाथों से पकड़कर अपनी ओर फेरा। उसकी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे।

युवक की आँखें भी गीली हुईं, उसने पूछा—"वह कैसे मारा गया ? क्या डाकुओं ने उस पर हमला किया था ?"

"नहीं, डाकू उसका कुछ न बिगाड़ सकते थे। वह तलवार का धनी, रण-बंका रजपूत-बच्चा था। यह उसकी तलवार है, जिसने कभी दाग़ नहीं खाया।" बूढ़े ने कमर से लटकती तलवार सूत ली, और उसे चूमकर छाती से लगा लिया। फिर वह कहने लगा—"वह बादशाह के लिये मरा, लड़ते हुए। इसी पुल के पास मैंने लोथों में से उसकी लोथ निकाली, और इन्हीं खेतों में उसे जला दिया। तब से हम स्त्री-पुरुष यहीं बस गए हैं। इन्हीं खेतों को जोतते-बोते और अपने प्यारे बच्चे की याद करते हैं। यह टट्टू उसी ने पाला था। इसे वह साथ खिलाता-पिलाता था। हम भी इसे बेटे की भाँति रखते हैं, कभी सवारी नहीं लेते। तुम मेरे बेटे के ठीक समान हो, इसी से टट्टू मैंने तुम्हें दे दिया था।" बूढ़ा एकाएक हँस पड़ा। युवक गंभीर हो गया। कुछ ठहरकर उसने कहा—

"ये खेत क्या तुम्हारे ही हैं ?"

"नहीं यार, ये सलीमपुर के ख़ाँसाहब के खेत और ज़मीन हैं। मेरे पास तो मैं और मेरी बुढ़िया और यह टट्टू। बस यही है। पर मुझे कुछ विशेष इच्छा नहीं। साधारण आदमी को जो चीज़ चाहिए, वह सब मेरे पास है। मेरी मड़ैया में सब सामग्री है।" वह मुस्किराया—"मगर क्या अच्छा होता कि वे सब खेत मेरे हो जाते और सलीमपुर भी, फिर तो बहार थी। यार, फिर तो तुम्हारी वह ख़ातिरदारी करता कि जिसका नाम। मगर नहीं, अनहोनी बात क्यों कहूँ ? पराई चीज़ पर नियत डुलाने की ज़रूरत नहीं, जिसके हैं, उसे ही मुबारक रहें।"

युवक हँस पड़ा। उसने कहा—"दोस्त, वे कभी तुम्हारे भी हो सकते हैं। इससे भी ज़्यादा अनहोनी बातें हो जाया करती हैं।"

बूढ़े की आँखें चमकने लगीं। उसने ज़रा करारे स्वर में कहा—"यह तो ऐसी असंभव बात है कि जैसे मैं बादशाह से इस तरह अपने आमने-सामने होकर बातें करूँ, जैसे इस समय तुमसे कर रहा हूँ।"

युवक ने हँसकर बूढ़े का हाथ पकड़ लिया। उसने कहा—"मैं फिर तुम्हारा शुक्रिया अदा करता हूँ। तुमने बड़े संकट के समय मेरी जान बचाई है। मुझे क़िले में अच्छी नौकरी मिल गई है, और मेरा वहाँ रसूख़ भी अच्छा है। मुझे विश्वास है, मैं तुम्हारे लिये कभी कुछ कर सकूँगा। क्या तुम अगले जुमे को मुझसे वहाँ मिल सकते हो ? प्यारे दोस्त, ज़रूर मिलना, देखो, इनकार न करना। मैं तुम्हें बहुत-सी अद्भुत चीज़ें और बादशाह के महल भी दिखाऊँगा, और बहुत-से बड़े-बड़े आदमी भी देखने को मिलेंगे।"

"ज़रूर, ज़रूर मैं आऊँगा। मगर यार, मैं उस शराबी बादशाह को देखना पसंद नहीं करूँगा।"

"अच्छी बात है, याद रखना अगला जुमा। किसी से और कुछ कहने की ज़रूरत नहीं। परदेशी सिपाही को पूछ लेना। तुम मेरे पास पहुँच जाओगे।" युवक ने हँसकर उसके मोढ़े पर हाथ रक्खा। बूढ़े ने युवक के दोनो कंधे पकड़कर हिलाए, और कहा—"जैसे तुम मेरे बेटे हो।" इसके बाद उसने गद्गद होकर युवक को छाती से लगा लिया। युवक ने उसे फिर धन्यवाद दिया, और चल दिया।

(३)

बूढ़े राजपूत ने अपनी पोशाक निकाली, जो उसने मुद्दत से नहीं पहनी थी। कुसुमल पाग पहनी, और तलवार कमर से बाँधी। अपनी दाढ़ी का भी उसने संस्कार किया। फिर उसने अपना पुराना आइना

निकालकर देर तक वह अपनी छवि देखता रहा। अपनी स्त्री से उसने हज़ारों बार कहा—"मैं अपने दोस्त से मिलने लालक़िले जाता हूँ, जहाँ बादशाह रहता है। मैं ज़रा कपड़े-लत्तों से चाक-चौबंद जाना चाहता हूँ।"

वह अकड़ता हुआ निकला, और टट्टू पर सवार होकर चल दिया। वह लालक़िले के फाटक पर खड़ा हो गया। वहाँ भीषण आकृति के पहरेदारों को मुस्तैदी से टहलते देखा, और सहमते हुए पूछा—"मुझे परदेशी सिपाही से कहाँ मुलाक़ात हो सकती है?"

वह बिना आपत्ति के दीवाने-ख़ास तक पहुँचा दिया गया। चारो तरफ़ हाथी-घोड़ों की क़तारें खड़ी थीं। बीच में फ़ौजों की सफ़ें मुस्तैदी से खड़ी हुई थीं। घोड़े हिनहिना रहे थे। जुझाऊ बाजे बज रहे थे। खोजे लोग बल्लम हाथ में लिए मुस्तैदी से खड़े थे। राजपूत चला ही गया। दीवाने-ख़ास के बाहरी भाग में उसने देखा, उसका दोस्त युवक उसी दिन की पोशाक पहने खड़ा मुस्किरा रहा है। राजपूत लपककर उसके पास पहुँच गया। युवक ने उसका हाथ पकड़ा और कहा—"दोस्तमन्, तुम वादा पूरा करनेवालों में एक ही हो। आओ, मैं पहले तुम्हें शाही महलों की सैर कराऊँ। मैं बेरोक-टोक सब जगह जा सकता हूँ, भय की कोई बात नहीं है।"

युवक ने उसका हाथ पकड़ लिया। दोनो दोस्त महल के कमरों और बरामदों में चक्कर काटने लगे। बड़े-बड़े आलीशान कमरे और बारहदरियाँ उसने देखीं, जहाँ सोने-चाँदी के काम के चँदोवे तन रहे थे, जिनमें मोतियों की झालरें टकी थीं। जगह-जगह फ़व्वारे चल रहे थे, जिनमें संगमरमर के भाँति-भाँति के पक्षी बने थे।

घूमते-घूमते वे दीवाने-ख़ास में आए। वहाँ जड़ाऊ शाही तख़्त बिछा था। उस पर कारचोबी के काम का बहुमूल्य चँदोवा तना था। पीछे के झरोखों से यमुना में धुली वायु आ रही थी। दूसरे कमरे में बड़े-बड़े आइने लगे थे, जिनमें पूरा प्रतिबिंब दिखलाई पड़ता था। अब वे शीशमहल में जा पहुँचे, जहाँ एक के हज़ारों दिखलाई पड़ते थे।

राजपूत यह सब देखकर, प्रसन्न होकर तारीफ़ करता जाता था। एकाएक उसने ज़रा ऊँचे स्वर से कहा—"यार, इस मनहूस बादशाह के पास ऐसे बढ़िया सामान कैसे आ गए?"

युवक ने हँसकर कहा—"दोस्त, बादशाह के घर में भी उसकी बुराई करते हो। ख़याल रक्खो, वह पास ही है, सुन लेगा, तो दोनो की जान आफ़त में आवेगी।" राजपूत सावधान हो गया। युवक ने हँसकर कहा—"कहो, क्या बादशाह को देखना चाहते हो?"

राजपूत कुछ झिझका, फिर उसने कहा—"क्या हर्ज है? क्या वह पास ही कहीं है?"

"बिलकुल पास।" युवक ने उसका हाथ पकड़ लिया, और आगे को ले चला। वह एक छोटे-से द्वार पर रुक गया। इस पर साटन का पर्दा पड़ा था, और ज़रदोज़ी का बढ़िया काम हो रहा था। दो मज़बूत खोजे नंगी तलवार लिए वहाँ चुपचाप खड़े थे। युवक ने पर्दा उठाकर आगे क़दम बढ़ाया। राजपूत ने कहा—"दोस्त, यह तो कहो, वहाँ बहुत-से आदमी होंगे, मैं बादशाह को कैसे पहचानूँगा?"

"बादशाह की पाग कुसूमल रँग की होगी।" युवक ने कसकर उसका हाथ पकड़ा, और आगे ले चला। वहाँ बहुत-से प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। वे सब अदब से खड़े थे। सबके चेहरों पर प्रसन्नता थी। एक-से-एक बढ़कर उनकी पोशाकें थीं। जगह-जगह बल्लम-बरदार खड़े थे। प्रहरी इधर-उधर घूम रहे थे। राजपूत ने कभी शाही दरबार नहीं देखा था। वह घबराया-सा दोस्त का हाथ पकड़े जा रहा था। उसने धीमे स्वर में कहा—"कहो दोस्त, क्या तुम्हारी इच्छा सचमुच उस शराबी बादशाह को देखने की है?" युवक मुस्किरा दिया।

राजपूत ने कुछ घबराकर पूछा—"वह—वह—क्या वह बड़े-बड़े आदमियों में होगा, यहाँ?"

लोग उन्हें देखकर मुस्किरा रहे थे, कुछ हँस रहे थे। युवक ने हँसकर कहा—

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं। वह मनहूस अवश्य इन्हीं में कहीं होगा, और उसके सिर पर कुसूमल पाग होगी, और किसी के सिर पर नहीं।"

"परंतु यार, हमारे कपड़े-लत्ते क्या इस योग्य हैं, और तुम्हारे भी?" वृद्ध ने चिंतित होकर लजाते हुए कहा—"क्या तुम्हारी हिम्मत है?"

"वाह यार, हिम्मत की एक ही कही। उस दिन तुमने नहीं कहा था कि तुम बादशाह को भी, सामना होने पर, फटकार देते हो।"

"कहा तो था, किंतु..." राजपूत कुछ सोचने लगा। उसने कुछ लोगों को उसी की ओर देखकर हँसते और संकेत करते देखा। उसने धीरे-से युवक के कान में झुककर कहा—"यार, ये लोग हमारी हँसी उड़ा रहे हैं।"

"उड़ाने दो।" युवक ने हँसकर उसका हाथ पकड़कर घसीट लिया। बूढ़े का पुराना अँगरखा फर्रा रहा था। सामने कुछ लोग बहुत बढ़िया चिकन-तंज़ेब की पोशाकें पहने खड़े थे। उन्होंने अदब से इनका रास्ता छोड़ दिया, और मुस्किराने लगे।

राजपूत ने साथी की ओर मुड़कर कहा—"तुमने कहा था, वह कुसूमल पाग बाँधे होगा। यहाँ तो किसी के सिर पर कुसूमल पाग नहीं है।" यह बात उसने ज़रा ज़ोर से कही। वे लोग हँस पड़े। युवक भी हँस पड़ा। वह उसका हाथ पकड़कर कमरे के दूसरी ओर ले गया। अंत में वे एक बड़े आइने के सामने पहुँचे, जिसके चौखटे पर सुनहरा काम हो रहा था। युवक मित्र का हाथ पकड़कर आइने के सामने खड़ा हो गया।

दोनो का साफ़ प्रतिबिंब पड़ रहा था। युवक ने हँसते-हँसते कहा—"मैंने तुमसे कहा था न कि उस शराबी बादशाह के सिर पर कुसूमल पगड़ी होगी।" इतना कहकर उसने अपनी पगड़ी को ज़रा ठीक से सिर पर रख लिया।

राजपूत का मुँह खुला-का-खुला रह गया। उसने देखा, युवक के सिर पर कुसूमल पाग है, और उसके सिर पर भी। ऐं, यह क्या, यार, सुनो-सुनो, या तो तुम या मैं, उसने हँसने की चेष्टा की। पर हँस न सका, वह एकटक युवक की ओर देखता रहा। युवक की आँखें राजपूत के मुख पर थीं, और वह मुस्किरा रहा था। राजपूत के होठ हिले। उसने क्षण-भर चारो ओर आँख उठाकर देखा। चारो तरफ़ से लोग मुस्किराते आ रहे थे, और युवक के सम्मुख सिर झुकाकर अदब से खड़े हो रहे थे।

राजपूत कुछ देर सक्ते की हालत में खड़ा रहा। उसके मुँह से टूटी-फूटी भाषा में निकला—"क्या तुम—दोस्त...आप...जहाँपनाह...।" युवक ज़ोर से खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसने सामने झुकते हुए राजपूत को उठाकर छाती से लगाया। युवक ने उसकी कमर से तलवार निकाली, उसे चूमा, और आदर से दोनो हाथों पर रखकर राजपूत की ओर बढ़ाई, और कहा—"मेरे बहादुर दोस्त, अपने निकम्मे शराबी बादशाह के हाथ से यह अपनी प्यारी तलवार क़बूल करो। यह तुम्हारे जिगरी दोस्त की मित्रता है।"

राजपूत ने काँपते हाथों से तलवार ले ली, और मस्तक पर चढ़ाई। इसके बाद उसने कहा—"जहाँपनाह!" सब लोग खिलखिलाकर हँस दिए। युवक ने कहा—"प्यारे दोस्त, ये लोग तुम्हारे ऊपर फिर हँस रहे हैं, मगर डरो मत, यह ख़ुशी का मौक़ा है।" उसने दोनो हाथ राजपूत के कंधे पर रख दिए, और फिर कहा—"सलीमपुर और वे सब खेत और उसके आस-पास के ८० गाँव तुम्हारे और तुम्हारी आल-औलाद के हुए। अब से यह बात तय हुई कि जब कभी दिल्ली का बादशाह उस पुल पर से गुज़रेगा, सलीमपुर का स्वामी अपना घोड़ा उसकी सवारी में पेश करेगा। यह उस दिन की ख़ुशी में है, जब तुमने उस वाहियात युद्ध में अपने शराबी और निकम्मे बादशाह के प्राणों की रक्षा की थी।"

राजपूत ने दोनो हाथ उठाकर कुछ कहना चाहा,

पर बादशाह फिर रुका नहीं। उसने एक इशारा किया, और कमरे में पड़े हुए एक उच्च सिंहासन पर बैठ गया। क्षण-भर में चारो तरफ़ से खोजों की फ़ौज भाँति-भाँति के सामान लेकर निकल पड़ी। किसी के हाथ में फलों और मेवों से भरे थाल थे, किसी के हाथ में सुगंध द्रव्य, गुलाब-पाश और इत्रदान, किसी के हाथ में अन्य क़ीमती चीज़ें।

इसके बाद ही पर्दा हटा, और कई एक मदमाती, यौवन छलकाती वारवधुएँ छमाछम करती निकल आईं। रँगरेलियाँ मच गईं। संगीत और सुरा का ऐसा तूफ़ान चला कि दरबारी डूबने-उतराने लगे। एक बार बादशाह ने शराब का प्याला हाथ में लिया, और चिल्लाकर कहा—"हमारे जिगरी दोस्त राजा साहब सलीमपुर के इस्तक़बाल में, जिसने हमारी जान बचाई।" उसने प्याला चढ़ाया, और चारो तरफ़ मेवा और फल दरबारियों पर बखेरना प्रारंभ किया।

बूढ़ा राजपूत चुपचाप यह भाग्य के खेल देख रहा था।

सुधा की सर्व श्रेष्ठता का प्रमाण

सुधा
के
विशेषांक पर
हिंदी-
साहित्य के महारथी
सर्वश्रेष्ठ संपादक
और
अद्वितीय समालोचक
पं० महावीरप्रसादजी
द्विवेदी की
सम्मति

सम्मति

सुधा का विशेषाङ्क मिला। धन्यवाद। उत्तम। नेत्ररञ्जक है, दिव्य है, अद्भुत है, अद्वितीय है।

म० प्र० द्विवेदी
20/12/32

मूक संभाषण

[श्रीयुत बाबू वृंदावनलाल वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०]



दो-तीन तरह के बँधे हुए सवालों और बहुत ही साधारण विषयों के सिवा उनसे शायद ही कभी कोई और बात हुई हो। कहाँ गए थे, कैसे हो, क्या कर रहे हो ? ये बँधे हुए सवाल थे। उत्तर मुझको पहले से ही मालूम थे। फिर भी सवाल किए। उत्तरों में विशेषता न थी, परंतु उनको बोलते हुए सुनना चाहता था।

विषय—निकटवर्ती वातावरण की व्यवस्था और ऋतु की दशा ! और विषय कहाँ से लाता ? उनको यदि कभी और कोई विषय सुनाना आरंभ भी किया, और उन्होंने रुचि न दिखलाई, तो अधूरा ही छोड़ दिया। कदाचित् कोई कहानी ही अच्छी लगे। सुनाई। अधसुनी छोड़ दी। फिर छूट ही गई। तब और कौन-से विषय संसार में हो सकते हैं ?

यह उनसे कभी नहीं पूछा। पूछ भी नहीं सकता था। पूछने पर वह क्या कहते ? जैसे वह स्तब्ध थे, वैसे ही स्तब्ध बन जाने में बुराई ही क्या ?

स्तब्ध रहने पर बहुत वाचाल होना पड़ा। जिससे वार्तालाप करने में कभी कोई संकोच नहीं होता, कभी किसी तरह का भय नहीं लगता और शायद कुछ सुख भी मिलता है—उसी से ख़ूब बातचीत की। अर्थात् अपने हृदय से।

लोगों के घरों को फाँदकर अपने हृदय से बातचीत कर पाने का अवसर बहुत ही कम मिल पाता है। अकेले में भी लोग अदृश्य होकर घेर लेते हैं, परंतु मैं इन लोगों से जल्दी छुट्टी ले लेने में सफल हुआ।

प्रत्यक्ष में उनके साथ दीर्घ काल में कुल दो ही चार बातें ऐसी हुई हैं, जिनको चेष्टा करने पर भी नहीं भुलाया जा सकता। बार-बार उनको सोचा, और चाहा कि विस्मृत कर दूँ, परंतु वे उतनी ही अधिक और याद हो गईं। फिर तो जब कभी अकेले में अपने से बातचीत करता था, तब वे ही थोड़ी-सी बातें या घटनाएँ विस्तृत मैदान में दूर-दूर बिखरे हुए थोड़े-से, किंतु ऊँचे पर्वत-शृंगों की तरह अनंत स्थान को सीमित करनेवाली, थकी हुई दृष्टि को निस्सीम वातावरण में भटक जाने से बचानेवाली, आश्रय देनेवाली, जान पड़ीं। एक बार उन्होंने कहा था—"स्नेह के प्रकाश में देख लेने का बल पाओ।" एक बार बोले—"हिम-कण से कलिका का जीवन तरल हो गया।" उनकी गुनगुनाहट में एक बार मेरे कानों में यह झनक

पड़ी—"वज्र-सदृश चट्टान को छोटी-सी धार का कल-कल नाद पार कर गया।"

मैंने व्यंग्य का हास्य, और उपहास का अट्ट-हास देखा है, परंतु एकाध बार पवित्र, दिव्य मुस्किराहट भी देखी है, जैसे नवार्जित गुलाब के फूलों की ढेरी पर एकाएक चंदन की खौर खींच दी गई हो। और ऐसे स्नेह का, ऐसी आत्मीयता का संबोधन भी सुना है, जिससे मैं पुनर्जीवित हो गया। उस संबोधन में क्यों इतनी दीप्ति थी?

परंतु इन विषयों के संबंध में कभी कोई स्वल्प या विशद वार्ता नहीं हुई। यदि मैं स्वाभिमानी या संकोची हूँ, तो क्या संपूर्ण संसार का भी ऐसा ही बन जाना चाहिए? इस प्रश्न को मैं हल न कर सका।

अकेले में बैठकर, जब वह पास न थे, मैंने उनको ख़ूब देखा। वह यदि चाहते भी, तो मुझको ऐसा करने से कैसे रोक सकते थे?

मैं अपने हृदय से एक बात पूछा करता हूँ। क्या उनको मेरे पास रहने में सुख मिलता है? ऐसा तो नहीं है कि कभी-कभी उनका मन उकता जाता हो? वह संसार में सबसे अधिक किस वस्तु को चाहते हैं? सबसे अधिक उनके आनंद का कौन कारण है? मेरे किन दोषों को वह दूर हटा हुआ देखना चाहते हैं? वह क्या मुझसे कुछ दूर रहना चाहते हैं? क्या वह मुझको अपना समझते हैं? और अपने को........? इत्यादि असंगत-से सवाल उठे। मुझको इस बात का थोड़ा-सा अभिमान है कि मैं इधर-उधर के प्रश्नों को सिलसिले के साथ सोच सकता हूँ, परंतु न-मालूम उनके साथ संबंध रखनेवाले सवालों को मैं कभी सिलसिले के साथ नहीं सोच पाता हूँ? सामर्थ्य ही नहीं दिखाई पड़ती। स्थिरता नहीं रहती। हृदय से मैं कहता—"शांत होकर सुनो।" वह कहता—"तुम शांत होकर कहो।"

उनमें निस्सीम साहस दिखलाई पड़ता है। फिर उन थोड़े-से प्रश्नों का उत्तर वह क्यों नहीं देते? परंतु मुझमें साहस नहीं है कि उनसे पूछूँ।

इसलिये हृदय से ही पूछता रहता हूँ। इस अन्वेषण और शंका-समाधान से न मैं थका, और न मेरा हृदय। जब कभी उनके कलित स्वर को मेरा कान दुहराने की चेष्टा करता—"तुम कब से बैठे हो?"—कभी-कभी इस शब्दावलि की उस कंठ कल्लोल को मेरा कान ज्यों-का-त्यों उतार देता, तब यह जान पड़ता कि मेरे पास मंदाकिनी की तरह, अर्द्ध-विकसित कुसुम की तरह, किसी शुभ्र प्रकाश-रेखा की तरह वह मेरे पास आ खड़े हुए हैं।

एक बार उनके साथ एक व्यक्ति आया। उस व्यक्ति के मंतव्य पर मैं सहमत न हो सका। मुझको असहमत करने में उनकी भी प्रेरणा थी। फिर वह असहमति मुझको उस व्यक्ति के प्रति

ज़रा ज़ोर के साथ एक अवसर पर प्रकट करनी पड़ी। वह मौजूद न थे। परंतु ऐसा जान पड़ा, मानो मेरे विवाद पर वह हँस रहे हों। वह व्यक्ति उनके साथ आया था। मुझको उससे असहमत न होना चाहिए था। साथ न आता, तो और बात थी। मैं अपने विवाद को उस हँसी के बाद आगे न बढ़ा सका। सन्न होकर बैठ गया। बला से वह विवाद में मुझको पराजित कर दे। मैं जानना चाहता हूँ कि वह उसके साथ आए ही क्यों थे; साथ थे ही क्यों?

परंतु किसी बहाने से ही, एक क्षण के लिये अदृश्य रूप में वह निकट आ गए थे। उस समय मैंने उनको अच्छी तरह देख लिया था। क्या इसीलिये सन्न हो जाना पड़ा? एकांत में जब मैं अपने हृदय से सवाल करता, और जब वह कभी तो ठीक-ठीक या ऊल-जलूल जवाब देता, और कभी मचल-सा जाता, तब मैं भटक-भटककर सोचता—"अब क्या कर रहे होंगे? क्या सोच रहे होंगे?" चाहता कि वह सुखी हों, और कल्पना यह करता कि मेरे-सरीखे विक्षिप्त-से होंगे!

निराश्रयों का आश्रय आशा होती है। क्या आशा? कौन-सी आशा? यही कि वह कुछ कहेंगे, कुछ करेंगे।

इस जगह आशा के लिये कोई आधार हो, या न हो, परंतु उस मंजुलता में, उस शुभ्र दीप्ति-रेखा में जो प्रचुर संपन्नता थी, उस कलरव में जो अक्षय माधुर्य था, वह काफ़ी प्रबल आश्रय था। क्या वह जानते थे इस बात को?

मैंने जो वार्तालाप अपने हृदय से किया, वह क्या उन्होंने सुन लिया होगा? यदि सुन लें, तो क्या कहेंगे?

बार-बार हृदय के साथ उक्त वार्तालाप करते रहने के कारण जी में एक हठ आया। उनसे सब कुछ कह डालूँ। फिर?

परंतु जब हृदय के साथ वार्तालाप करता था, तब यही अभिलाषा रहती थी कि मेरे बिना बतलाए हुए ही वह जान जायँ। अच्छा, और यदि वह न जानें, तो कौन-सा बड़ा हर्ज होगा?

परंतु अनंत मूक संभाषण से तो निस्सीम धैर्य भी घबरा जाता होगा। स्वयं वक्ता स्वयं श्रोता! बात कुछ बहुत बुरी नहीं है, केवल भय यह है कि इस प्रकार की प्रकृतिवाले को पागल कहा जाने लगता है। क्या ऐसा व्यक्ति वास्तव में पागल भी हो जाता है या नहीं?

यह प्रश्न भी हृदय से ही करना पड़ा। उस सदा के संगी ने उत्तर दिया—"इस पागलपन में भी आनंद है। ऐसा कि जो बढ़ता रहता है, कोई उसको छीन नहीं सकता।" मैंने कहा—"कोई सहभागी, सहभोगी या सहयोगी उस पागलपन के लिये अवश्य चाहिए।"

वह बोला—"इधर है, मेरे भीतर।" वह दिख गए।

परंतु मूक संभाषण! अनंत मूक संभाषण!!

क्यों ? उसमें क्या हानि है ? यदि उनको मालूम हो जाय कि मैं उनसे, उन्हीं के मुख से अपने प्रश्नों के विषय में, अपने विषय में और उनके विषय में कुछ सुनना चाहता हूँ, तो वह क्या कहेंगे ?

यदि उन्होंने कुछ न कहा, और स्वयं मूक संभाषण को ही पसंद किया, तब ?

और यदि कुछ ऐसा कहा, जिसकी अपेक्षा स्वगत वार्तालाप ही अच्छा, तब ?

तब तो कुछ बात ही नहीं।

तब तो मेरा मूक संभाषण अक्षुण्ण है। उसको बंद करने की किसमें सामर्थ्य है ?

कदाचित् उनमें भी नहीं।

आशा का छल

[श्रीयुत 'दिनकर']

क्षितिज के कनक-लोक में खड़ी
हिलाकर अंचल वारंवार;
बुलाया संकेतों से मुझे
दिखाने निज सुवर्ण-संसार।

"जहाँ खिलते नव कनक-प्रसून,
बहा करती नित मलय-बतास,
पथिक! उस वन में हम-तुम चलो
रचगे राका-निशि में रास।"

विदेशिनि! तू थी अतिशय मधुर,
मुझे था नेक न अपना ध्यान;
तुम्हारे चरण-चिह्न पर चला
अबुध-सा मैं बालक अनजान।

यहाँ इस मरु-प्रदेश तक मुझे
खींच लाई तेरी मुसकान;
दिखा रौरव का भीषण द्वार
हुई पल में तू अंतर्धान।

झटककर बुझा पंथ का दीप,
छुड़ाकर अंचल अरी कठोर,
गई तू मुझे छोड़कर कहाँ
अकेला इस विनाश की ओर।

वर्तमान हिंदी-कविता और जातीयता के भाव

[श्रीयुत परशुराम चतुर्वेदी एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]



दी-कविता में उसके आदिकाल से ही जातीयता के भावों का अभाव-सा हो रहा है। आदिकाल के कवि चारणों की भाँति अपने-अपने आश्रय-दाताओं की वंशावली का सदा गुण-गान किया करते थे। उनके पूर्व-पुरुषों अथवा उन्हीं की प्रशंसा से भरे हुए ग्रंथ-के-ग्रंथ लिख डालने, उन्हें उत्साहित करते रहने के लिये उनके शत्रुओं की निंदा अथवा हीनता से संबंध रखनेवाली कविताएँ बार-बार पढ़ा करते तथा युद्ध के समय अवसर उपस्थित होने पर उनके सामने भाँति-भाँति के काल्पनिक चित्रों का समाँ बाँधकर उन्हें मुग्ध एवं मदांध बनाए रखने का प्रयत्न किया करते थे। वंशाभिमान अथवा कुलाभिमान के स्थान पर कभी-कभी क्षत्रियत्व के गर्व की भी बातें सुनाई पड़ती थीं। परंतु वास्तव में ये दोनो भाव जातीयता के वर्तमान विकसित रूप के सामने केवल संकुचित-मात्र ही कहे जा सकते हैं। समयानुसार आगे चलकर जब मुसलमानों का आधिपत्य जम गया, और हिंदू तथा मुसलमान-नामक दो भिन्न-भिन्न जातियों के साथ-साथ रहने का अवसर उपस्थित हुआ, एवं यदा-कदा पारस्परिक संघर्ष होते रहने के कारण जब हिंदू-जाति के भिन्न-भिन्न कुलवाले भी अपने-अपने पारस्परिक कलहों को न्यूनाधिक दूर कर मुसलमानों के विरोध में एक होने लगे, तो वंशाभिमान और क्षत्रियत्व की मर्यादा के भाव क्रमशः हिंदुत्व के रूप में परिणत हो गए, और मराठों, सिक्खों अथवा जाटों ने उनका सामना, उन्हें म्लेच्छ कहकर, हिंदू-धर्म के नाम पर ही किया, जिस कारण उस समय की रची हुई हिंदी-कविता में चारण-युग की जातीयता का क्षेत्र और भी विस्तृत हो गया। 'चौहान' अथवा 'छत्तिरी' के स्थान पर अब 'हिंदुआने की मरजाद' का नाम लिया जाने लगा। किंतु तो भी भौगोलिक एकता का अनुभव अभी नहीं हो पाया था, और न एक भाषा अथवा ऐतिहासिक परंपरा के ही भाव आ पाए थे, जिस कारण इंद्रप्रस्थ, चित्तौर, महोबा के स्थान पर अभी सितारा और काशी आदि के नाम लेकर उन्हें दिल्ली से बढ़ाया जाता था, तथा भोंसला एवं चंदेल-वंश की विजय की कल्पना 'चकत्ता के घराने' के विरुद्ध की जाती थी। भारतीयता के भावों का अभी प्रायः एकदम अभाव था।

मुसलमान बादशाहों की शक्ति क्षीण होते-होते अँगरेज़ों का प्रभुत्व इस देश में क़ायम होने लगा, और ईस्वी सन् की अठारहवीं शताब्दी के अंत तक इसके प्रभाव भली भाँति स्पष्ट हो गए। अँगरेज़ों के आने पर एक दूर-देश-निवासी जाति के साथ भारतीयों का संपर्क हुआ। भिन्न भाषा, भिन्न वेश-भूषा, भिन्न ऐतिहासिक परंपरा अथवा भिन्न सभ्यता का अनुभव होने लगा, और दो भिन्न-भिन्न प्रकार के विचारों के आदान-प्रदान तथा विवेचन से भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक प्रांत में नवीन भावों की जागृति होने लगी। अँगरेज़ विदेशी थे, इसलिये अपने में देश-विषयक भाव का उदय हुआ। उनकी सभ्यता एकदम भिन्न थी, इसलिये अपनी सभ्यता को, उसकी तुलना में, अध्ययन करने का अवसर मिला। अपनी बातों पर उनके द्वारा की हुई समालोचना को सुन-सुनकर उन पर ध्यान देने तथा उनकी सचाई जाँचने एवं आवश्यक सुधार करने पर हम लोग आरूढ़ हुए, और धीरे-धीरे जातीयता के भावों में व्यापकता आने लगी। लगभग पचास-साठ वर्षों के ही भीतर इन नवीन भावों का प्रचार रेल, प्रेस, डाक आदि साधनों द्वारा देश के कोने-कोने में हो गया, और सभी

प्रांतीय भाषाओं की कविताओं में जातीयता के भावों की एक लहर-सी आ गई । हिंदी-कविता में इस नई जागृति का प्रभाव उस समय आरंभ हुआ, जब भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ग्रंथ-रचना करते थे । इसलिये हिंदी में कदाचित् सबसे पहले इन्हीं ने इन बातों को अपनाया । इन्होंने पूर्व-भारत का गुण-गान किया। वर्तमान दुर्दशा पर आँसू बहाए, तथा सारे दुःखों का कारण समय के फेर को समझते हुए आर्यों की विवशता पर खेद प्रकट किया, और उसे दूर करने के लिये ईश्वर से प्रार्थना की। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र, पं० बदरीनारायण चौधुरी, पं० प्रतापनारायण मिश्र आदि उस समय के कवियों की जातीयता-विषयक कविता पढ़कर यही ज्ञात होता है कि धर्म की विभिन्नता के भाव अभी पूर्ण रूप से नहीं जा पाए हैं, और कवि के समक्ष सदा आर्य-मात्र के ही गौरव का आदर्श उपस्थित रहता है। कवि की रचना का प्रभाव हम पर राजनीतिक रूप में न पड़कर केवल नैतिक अथवा सामाजिक रूप में ही अधिकतर पड़ता है। और, ऐसा प्रतीत होता है कि जिन दुर्दशाओं का प्रदर्शन किया जा रहा है, वे सब राजनीतिक स्वतंत्रता के अभाव से नहीं, बल्कि दुर्दैव के कोप के कारण ही हो रही हैं। अपने पूर्व-गौरव का गान तक अभी बहुत अंशों में एक पछतावे की धुन-मात्र है। जातीयता के भावों को उत्साह के रूप में जाग्रत् करनेवाली कविता की अभी कमी थी*।

भारतेंदु हरिश्चंद्र की मृत्यु के उपरांत भी कुछ दिनों तक उपर्युक्त मनोवृत्ति के ही साथ हिंदी-कविता होती रही, और यद्यपि पं० प्रतापनारायण मिश्र और पं० बदरीनारायण चौधुरी 'प्रेमघन' की कविताओं में कहीं-कहीं राजनीतिक पराधीनता की भी पुट दिखलाई पड़ती है, परंतु तो भी ये दोनो कवि तथा विशेषकर पं० प्रतापनारायण मिश्र के मित्र पं० नाथूराम शंकर शर्मा 'शंकर' वास्तव में हिंदू थे, और यह जब तक जीवित रहे, हिंदुत्व का ही गौरव-गान गाते तथा उसी की दुर्दशा पर आँसू बहाते रहे, और यही दशा बाबू राधाकृष्णदास आदि की भी थी। राजनीतिक पराधीनता तथा उसके द्वारा होनेवाली देश की दुर्दशा का अनुभव करनेवाले कवियों की रचनाएँ वास्तव में बीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही प्रादुर्भूत हुई। इस समय तक समस्या - पूर्तिवाली शृंगार - रस - संबंधी कविताओं का प्रायः अंत-सा हो चला था, और भिन्न-भिन्न राजनीतिक एवं सामाजिक आंदोलनों द्वारा भारतीय समाज के जीवन में एक नई उमंग अथवा नई स्फूर्ति का संचार होने लगा था, तथा सबके हृदयों में एक उज्ज्वल भविष्य के देखने की उत्कंठा प्रबल होने लगी थी।

हिंदी-कविता के जातीयता-युग का भारतेंदु-कालीन खंड वास्तव में पूर्वार्द्ध था, जिसका अंत १९वीं शताब्दी के साथ हो गया । इसके उत्तरार्द्ध का आरंभ प्रयाग की मासिक पत्रिका सरस्वती में प्रकाशित बाबू मैथिलीशरण गुप्त की कविताओं से होता है। गुप्तजी के पहले भी भारत की भौगोलिक एकता द्वारा जातीय गान रचने की परंपरा चल चुकी थी, और 'प्रेमघन'जी तथा पं० श्रीधर पाठक ने भारतमाता को लक्ष्य करके उसकी वंदना आरंभ कर दी थी। परंतु गुप्तजी ने स्वदेश-संबंधी बातों को अपना मुख्य विषय ही बना लिया। उनकी कविताएँ इस विषय को लेकर अन्यान्य पत्र-पत्रिकाओं में भी निकलने लगीं, और उस समय के नवीन तथा उनके पुराने कवियों तक ने इनके अनुकरण में जातीयता के गान रचना आरंभ कर दिए। बाबू मैथिलीशरण गुप्त का विशेष ध्यान भारतवर्ष के प्राचीन गौरव की ओर रहा। उन्होंने भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास, उसके प्रसिद्ध पौराणिक उपाख्यान तथा धार्मिक महापुरुषों की जीवन-संबंधी घटनाओं का परिश्रम के साथ अध्ययन किया, और भारतीय सभ्यता के महत्त्व पर गर्व करते हुए उसके आधार पर कई कविताएँ लिख डालीं। इनका उद्देश्य सदा भारतीयता की रक्षा तथा उसकी

* देखिए 'सुधा' वर्ष ३, खंड १, संख्या ६ में मेरा 'भारतेंदु-काल की हिंदी-कविता में जातीयता'-शीर्षक लेख ।
—लेखक

अभिवृद्धि की ओर था, और इसके साधन-स्वरूप वह निरंतर भारतीय उच्च आदर्शों के अनुसार नीतिमय उपदेश देते रहे।

गुप्तजी ने अपने इष्ट विषय के आधार पर कई रचनाएँ पुस्तकाकार भी निकालीं। 'भारत-भारती' द्वारा अपने पूर्वजों का गौरव-गान करते हुए उनके अतुल ऐश्वर्य, अद्भुत शक्ति, आदर्श आचरण, व्यापक संदेश तथा सर्वांगीण सफलता की भूरि-भूरि प्रशंसा की, और वर्तमान हीनावस्था की ओर संकेत करते हुए उसके प्रतिकारार्थ लीलामय भगवान् से विनीत याचना की। साथ ही अपने देश-वासियों को आर्य-जाति के पुनरुज्जीवन के प्रति विश्वास भी दिलाया। 'जयद्रथ-वध', 'सैरंध्री', 'शकुंतला', 'वन-वैभव', 'साकेत', 'पंचवटी', 'अनघ', 'तिलोत्तमा', 'चंद्रहास', 'रंग में भंग', 'पत्रावली', 'हिंदू', 'गुरुकुल' आदि का महाभारत, रामायण, पुराण, इतिहास एवं जातकादि के आधार पर निर्माणकर उनमें वर्णित कथाओं अथवा उपदेशों के द्वारा भारतीयता के आदर्शों की ओर भारतवासियों का ध्यान आकर्षित किया, और साथ ही उनसे मिलनेवाली शिक्षाओं से लाभ उठाकर अपनी गिरी दशा सुधारने के लिये उन्हें परामर्श भी दिया। इसी भाँति उन्होंने 'वैतालिक', 'झंकार' एवं कतिपय छोटी-छोटी फुटकर कविताओं द्वारा अपने पूर्व-गौरव को स्मरणकर उसकी मर्यादा एक बार फिर स्थापित करने के लिये भी लोगों को उद्बोधित किया। गुप्तजी को अपनी प्राचीन सभ्यता की महत्ता में पूर्ण विश्वास है, और वह उसका पुनरावर्तन केवल अपने देश के ही लिये नहीं, किंतु सारे संसार के कल्याणार्थ अत्यंत आवश्यक समझते हैं। अतएव वह अपने उपर्युक्त प्रायः सभी ग्रंथों में इस बात पर किसी-न-किसी ढंग से ज़ोर देते हुए दिखलाई पड़ते हैं।

गुप्तजी के अनुसार भारतवर्ष सारे संसार का गुरु है, और इसके द्वारा शिक्षित और संपन्न होने के कारण इसके सभी ऋणी भी हैं। वास्तव में ऐसा उत्कृष्ट देश इस पृथ्वीतल पर दूसरा नहीं है। यह सबका सरताज है, और इसी कारण इसे स्वयं भगवान् भी अपनाया करते हैं। गुप्तजी के ही शब्दों में—

हरा-भरा यह देश बनाकर
विधि ने रवि का मुकुट दिया;
पाकर प्रथम प्रकाश जगत ने
इसका ही अनुसरण किया।
प्रभु ने स्वयं 'पुण्य-भू' कहकर
यहाँ पूर्ण अवतार लिया;
देवों ने रज सिर पर रक्खी,
दैत्यों का हिल गया हिया।
लेखा श्रेष्ठ इसे शिष्टों ने,
दुष्टों ने देखा दुर्द्धर्ष,
हरि का क्रीड़ा-क्षेत्र हमारा
भूमि भाग्य-सा भारतवर्ष।

इसी कारण अपने देश की वर्तमान हीनावस्था का कारण वह उसकी केवल 'आत्म-विस्मृति' बतलाते हैं। उनके अनुसार यह देश इधर कतिपय सदियों तक मानो सो-सा गया था, और इसका फिर से प्रबुद्ध होकर अपनी दशा सँभाल लेना कोई आश्चर्य की बात नहीं। वर्तमान समय में यदि उसके सँभलने में कुछ विलंब-सा देख पड़ता है, तो केवल इसलिये कि वह सोकर उठते समय वर्तमान दुर्दशा का सहसा परिचय पाकर आश्चर्यित-सा हो गया है, और वह अब मानो कहता है—

विश्व, तुम्हारा भारत हूँ मैं?
हूँ या था, चिंता-रत हूँ मैं!

❀ ❀ ❀

क्या मैं सोता ही था? कब से?
सदियाँ बीत गईं, क्या जब से?
स्वप्न देखता था, हा! तब से?
फिर भी जीवित भारत हूँ मैं?
हूँ या था, चिंता-रत हूँ मैं!

तो भी उसको अपनी मर्यादा एकदम भूली नहीं है, और उसके निवासी अवसर पड़ने पर अपने प्रति किए गए व्यवहारों के उत्तर में बराबर यही कहते हैं—

दीन हैं हम, किंतु रखते मान हैं;
भव्य भारतवर्ष की संतान हैं।

❀ ❀ ❀

यह न समझो तुम कि हम डर जायँगे;
प्राप्य अपना छोड़कर घर जायँगे।
चित्त में यह ठान हमने है लिया—
मोद पाकर मान पर मर जायँगे।

गुप्तजी भारतवर्ष को 'स्वर्ग-सहोदर' भी कहते हैं, और यही समझते हुए उसको पुनरुद्धार द्वारा स्वर्ग-तुल्य बनाने के लिये ईश्वर से प्रार्थना भी करते हैं। इस विषय की उनकी सबसे सुंदर कविता 'भारत की जय'-शीर्षक है, जिसमें उन्होंने भारत के लिये सारे सात्विक गुण प्रदान करने की भगवान् से विनय की है। इस कविता में ध्यान-पूर्वक देखने पर भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक प्राचीन आदर्श की झलक दिखलाई पड़ती है, और इसी कारण कवि की इच्छा है कि एक बार फिर—

मही पर ही स्वर्गोदय हो,
दयामय, भारत की जय हो।

और इसी भाव के साथ अपने देशवासियों से भी इनका यही अनुरोध है—

फिर अपने को याद करो,
उठो, अलौकिक भाव भरो।

भारत के इस गौरव-गान का विषय लेकर कविता करनेवालों में पं० श्रीधर पाठक का भी नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पाठकजी वास्तव में एक प्रकृति-पुजारी कवि थे। जिन्हें प्राकृतिक दृश्य एवं सुंदर वस्तुएँ सदा आकृष्ट कर लिया करती थीं। वह भारतवर्ष के सौंदर्य पर मुग्ध थे, और उसका गुण-गान करते-करते कभी थकना नहीं जानते थे। अपनी 'हिंद - वंदना' - शीर्षक कविता में उन्होंने भारतवर्ष के प्राकृतिक दृश्यों के साथ ही उसके प्राचीन ऐश्वर्य, अलौकिक व्यवहार-परंपरा तथा पौराणिक एवं ऐतिहासिक वृत्तों की भी किसी-न-किसी रूप में जय मनाई है, और अंत में कहते हैं—

जय जयति सदा स्वाधीन हिंद,
जय जयति-जयति प्राचीन हिंद।

यह कविता पाठकजी ने सं० १९४२ अर्थात् सन् १८८५ ई० में लिखी थी, किंतु उस समय के इनके और पद्य इस कोटि के नहीं मिलते। इनकी इस विषय की अधिकतर कविताएँ सन् १९१६ या १७ के अनंतर की ही देखने में आती हैं। इन कविताओं में सुंदर शब्दों का चुनाव, मधुर भक्तिमय भावों की अभिव्यक्ति एवं इन सबसे बढ़कर इनकी पंक्तियों का गेयत्व बहुत ही चित्ताकर्षक हुआ है। इनकी 'देश-गीत'-शीर्षक प्रसिद्ध कविता के कुछ अंश नीचे देते हैं—

जय-जय प्यारा भारत देश।
जय-जय प्यारा, जग से न्यारा,
शोभित सारा देश हमारा,
जगत - मुकुट, जगदीश - दुलारा,
जग - सौभाग्य सुदेश।
जय-जय प्यारा भारत देश।

❀ ❀ ❀

जय-जय शुभ्र हिमाचल-शृंगा,
कलरव निरत कलोलिन गंगा,
भानु - प्रताप - चमत्कृत अंगा,
तेज - पुंज तप वेश।
जय-जय प्यारा भारत देश।

इसी प्रकार पूर्व-भारत के गौरव का गान करनेवाले कवियों में पं० माधव शुक्ल, पं० सत्यनारायण कविरत्न, भगवन्नारायण भार्गव, ठाकुरप्रसाद शर्मा, रामनरेश त्रिपाठी, गिरिधर शर्मा, द्वारकाप्रसाद गुप्त आदि के भी नाम लिए जा सकते हैं। इन कवियों में से कुछ ने प्राचीनता की ओर अधिक न ढलते हुए भी केवल देश-प्रेम के ही नाते कविताएँ रची हैं। गौरव-गान एवं देश-प्रेम के इन कवियों ने अधिकतर फुटकर पद्य ही लिखे हैं, जो 'राष्ट्रीय वीणा' आदि कुछ संग्रहों में मिल सकते हैं। भारत की प्राचीनता के प्रेमी कुछ ऐसे भी कवि हैं, जिन्होंने वीर-पूजकों की भाँति पुराने अथवा नए आदर्श वीरों

की जीवन-घटनाओं के आधार पर छोटे-बड़े प्रबंध-काव्यों की भी रचना की है, जिनमें से बाबू मैथिलीशरण गुप्त के 'जयद्रथ-वध', 'साकेत', 'अनघ' आदि के सिवा पं० गोकुलचंद्र शर्मा के 'प्रणवीर प्रताप', 'गांधी-गौरव' तथा 'तपस्वी तिलक', लाला भगवान-'दीन' के 'वीर-पंचरत्न', 'वीर प्रताप', 'वीर माता' और पं० रामचरित उपाध्याय के 'रामचरित-चिंतामणि' तथा द्वारकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेंद्र' के 'आत्मार्पण'-नामक ग्रंथों का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें से प्रायः सबमें प्राचीन आदर्शों का ही महत्त्व किसी-न-किसी रूप में वर्णित है।

हिंदी-कविता के इस जातीयता-युग के अंतर्गत बहुत-सी रचनाएँ ऐसे कवियों की भी हैं, जिन्होंने भारतवासियों की वर्तमान दुरवस्था की ही ओर विशेष ध्यान दिया है। इनमें से मुख्य कवि पं० गया-प्रसाद शुक्ल 'सनेही' हैं, जो 'त्रिशूल' उपनाम के साथ भी राष्ट्रीय कविताएँ लिखते आए हैं। 'सनेही'जी ने पूर्व-गौरव तथा स्वदेश-प्रेम के विषयों पर भी कुछ कविताएँ लिखी हैं, और इनकी कतिपय रचनाएँ अपने देशवासियों को जगाने के अभिप्राय से भी बनाई गई समझी जा सकती हैं, परंतु इनकी अब तक प्रकाशित सभी रचनाओं को ध्यान-पूर्वक देखने से पता चलता है कि इनकी प्रवृत्ति अधिकतर कृषकों की दुर्दशा, राजनीतिक परतंत्रता एवं कष्ट-निवारणार्थ भगवान् से कल्याण-याचना की ही ओर रही है। देश की गिरी दशा देखकर उनके हृदय पर गहरी चोट लगा करती है, परंतु वेदना के असह्य होने पर भी वर्तमान परिस्थिति से विवश हो वह बहुधा ईश्वर की ही ओर उन्मुख होते हैं। कृषकों की दुर्दशा दिखलाने के लिये इन्होंने 'कृषक-क्रंदन'-नामक एक छोटी-सी पुस्तक लिखी है, और बहुत-सी अन्य छोटी-बड़ी फुटकर कविताएँ भी रची हैं। वास्तव में दीनों का दैन्य तथा कृषकों की करुण कहानी अथवा ग़रीबों की गुहार लिखने में 'सनेही'जी के समान बहुत कम कवि मिल सकते हैं।

'ग़रीबों की गुहार' का शीर्षक देकर उनकी एक कविता 'त्रिशूल-तरंग' में प्रकाशित हुई है, जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

आँखें काढ़े दिवानाथ नित आ जाते हैं;
जले हुओं पर और आग बरसा जाते हैं।
धान, बाजरा, ज्वार, उड़द, काकुनी, मकाई—
जिह्वा सूखी दिखा रहे, पर हा! निठुराई।
जल-छींटों की जगह पर लगे तमाचे धूप के;
क्रूर हो गए श्याम घन, तुम भी हो किस रूप के।
मेवों के हैं मोल मटर की बिक्री आई;
बनियों की बेतरह आजकल है बन आई।
हैं किसान मज़दूर भूख के मारे मरते;
तृण भी सूखा हाय! नहीं, उसको ही चरते।
निकट समय है आ गया, महा कठिन जीना हुआ;
पड़े विपद-पर-विपद शर, छलनी अब सीना हुआ।
इधर पेट को नहीं, उधर आती है सरदी;
कपड़ों का यह हाल, काल की यह बेदर्दी।
तन ढकने को नहीं, लँगोटी फटी हुई है;
जीने से ही चित्त-वृत्ति अब हटी हुई है।
अकड़-अकड़ असहाय हा! कितने ही मर जायँगे;
उजड़ा ही था देश, अब और उजड़ घर जायँगे।

'त्रिशूल-तरंग' 'सनेही'जी की उन कविताओं का संग्रह है, जिन्हें उन्होंने 'त्रिशूल' के उपनाम से प्रकाशित की थी। इनकी भाषा अधिकतर उर्दू है, और इनके छंद भी उसी ढंग के अधिक हैं। इनमें से आधी से कहीं अधिक कविताओं में वेदना का अनुभव, हृदय की कसक, व्यंग्य और उपालंभ के ही उदाहरण देखने को मिलते हैं। प्रसिद्ध राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र 'प्रताप' की सन् १९१८ की ज़मानत की ज़ब्ती पर लिखी गई इस विषय की कविताएँ बहुत सुंदर हैं।

देश की हीनावस्था देखकर अपने दीन भाइयों के साथ सहानुभूति प्रदर्शित करनेवाले ऐसे कवियों में पं० लोचनप्रसाद पांडेय, बाबू शिवदास गुप्त 'कुसुम', बाबू शंभूदयाल श्रीवास्तव, बाबू देवीप्रसाद

'पूर्ण', पं० बेचन शर्मा 'उग्र', बा० सियारामशरण गुप्त, पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी, पं० नाथूराम शंकर शर्मा तथा बाबू मैथिलीशरण गुप्त के भी नाम लिए जा सकते हैं। इनमें से बाबू मैथिलीशरण गुप्त की कविताएँ अधिकतर फुटकर हैं, और कुछ दिनों तक भारत के बाहर प्रवास करनेवाले एक भारतीय का आत्म-चरित्र भी है, जो 'किसान' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इस छोटे-से ग्रंथ में कवि ने बड़े ही मार्मिक ढंग से, अरकाटियों द्वारा छल-पूर्वक बहकाकर कुलियों में भर्ती होनेवाले एवं फ़िज़ी-द्वीप में कुछ दिनों तक रहकर विविध कष्ट उठानेवाले भारतीय किसान की दुःख-भरी गाथा वर्णन की है। इस पुस्तक की गणना गुप्तजी के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथों में होने योग्य है। बाबू सियारामशरण गुप्त भी दीनों, अनाथों तथा निर्धनों के मनोगत गंभीर भावों से भली भाँति परिचित जान पड़ते हैं, और उनके मर्मस्थल पर लगनेवाली चोटों का गहरापन समझकर उसे उपयुक्त शब्दों द्वारा व्यक्त करने में यह अपने बड़े भाई से किसी बात में कम नहीं दिखलाई पड़ते। इनकी 'आर्द्रा', 'अनाथ' आदि पुस्तकें इस बात के लिये उत्तम उदाहरण हैं। पं० नाथूराम शंकर शर्मा का ध्यान अधिकतर हिंदुओं की गिरी हुई सामाजिक अवस्था की ओर है। वह सच्चे समाज-सुधारक थे, और इसी कारण समाज में अंधपरंपरानुकूल नित्यशः होनेवाले कुरीति-पूर्ण व्यवहारों से उनका हृदय क्षुब्ध हो उठता था। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बेमेल-विवाह, मद्य-पान, अछूतों के प्रति दुर्व्यवहार, अपव्यय, मूर्ति-पूजादि धर्मांधता-मूलक कृत्यों के प्रति उन्होंने अपनी कविताओं में घोर घृणा व्यक्त की है, और उन्हें दूर करने के लिये हिंदू-जाति को बार-बार उपदेश दिए हैं। उनके शब्दों में कभी-कभी उद्दंडता के भाव भी दिखलाई पड़ते हैं, जो उनके खरेपन के द्योतक हैं। 'शंकर'जी वास्तव में इन बातों की दृष्टि से हमारे आधुनिक कबीर थे। इनके 'अनुराग-रत्न' और 'शंकर-सरोज' इनकी फुटकर कविताओं के संग्रह हैं, और 'गर्भरंडा-रहस्य' में बाल-विवाह के निकृष्ट परिणामों को उदाहृत किया गया है। इनकी कविता के उदाहरण में हम निम्न-लिखित दो पद्य दे सकते हैं—

शैल विशाल महीतल फोड़,
बढ़े तिनको तुम तोड़ कढ़े हौ;
लै लुढ़की जल-धार धड़ाधड़,
ते धर गोल-मटोल गढ़े हौ।
प्राण-विहीन कलेवर धार,
विराज रहे न लिखे न पढ़े हौ;
है जड़देव शिला-सुत शंकर,
भारत पै करि कोप चढ़े हौ।

× × ×

तथा—सैयाँ, न ऐसी नचाओ पतुरियाँ।
गाने पै रीझो, बजाने पै रीझो,
बंदी की छाती में छेदो न छुरियाँ।
पापों की पूँजी पचैगी न प्यारे,
खाते फिरोगे हकीमों की पुरियाँ।
डोलोगे डाली डुलाते-डुलाते,
हाथों में पूरी न होंगी अँगुरियाँ,
जो हाय! शंकर दशा होगी ऐसी,
तो मेरी कैसे बचा लोगे चुरियाँ?

पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी ने फुटकर कविताएँ, राजनीतिक दुर्दशाओं को स्पष्ट करने के लिये, अधिकतर 'चक्रसुदर्शन' के उपनाम से लिखी हैं। इनकी पंक्तियों में विशेषकर गंभीर व्यंग्यमय भाव दिखलाई पड़ते हैं। पं० बेचन शर्मा 'उग्र' ने भी फुटकर पद्य ही अधिक लिखे हैं, और उनमें भी राजनीतिक परतंत्रता तथा उसके कारण सहे जानेवाले विविध अत्याचारों की ही टीका-टिप्पणी अधिक मिलती है। पं० मन्नन द्विवेदीजी की निम्न-लिखित पंक्तियाँ कितनी चुटीली हैं—

मुझे आग में लेके जलाना प्रभो!
मुझे मिट्टी में चाहे मिलाना प्रभो!
मुझे मच्छ औ कच्छ बनाना चहै;
मुझे सूकर-सा भटकाना चहै।

चिड़ियों-सा आकाश उड़ाना चहै ;
मुझे श्वान की योनि पठाना चहै।
यदि पेड़ भी हूँ परवाह नहीं ;
जल जाउँ दवानल आह नहीं।
चाहे स्यार कभी मैं हुआ हू करूँ ;
मृगतृष्णा पड़ा मृग हाके मरूँ।
यदि भूसा-खली है खिलाना मुझे ;
यदि बैल बना दिखलाना मुझे।
सब करके दिखा जो दिखाना मुझे;
नरकों में पठा, जो पठाना मुझे।
पर मान न मेरा मिटाना हरे,
नर-कोटि में है यदि लाना हरे।
बिनती न धनी को सुनाऊँ कहीं ;
पर और के सीस झुकाऊँ नहीं।
हरि, आपसे मेरी यही बिनती ;
न गुलामन में हो मेरी गिनती।
इत्यादि।

परंतु हिंदी के इन उपर्युक्त जातीय कवियों में से बहुत कम ऐसे हैं, जिन्होंने अपनी कविता का मुख्य विषय आशा, उत्साह, उत्कर्ष एवं स्फूर्ति-प्रदान करनेवाले अथवा नए जीवन की ज्योति दिखलाकर उसके आलोक द्वारा अलौकिक शक्ति भरनेवाले के ऊँचे भावों का भांडार हो। बाबू मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी 'भारत-भारती' के अंतिम खंड, 'वैतालिक,' 'हिंदू' अथवा अन्य छोटी-बड़ी रचनाओं द्वारा आशा की किरणों की ओर संकेत अवश्य किया है, और अपने पूर्व-गौरव को स्मरणकर उसके बल पर ईश्वर में भरोसा रखने के लिये अपने देश-बंधुओं को उपदेश भी दिया है, परंतु वास्तव में वह नवीन जीवन के पथ-प्रदर्शक नहीं, किंतु स्वदेशाभिमान भरनेवाले कवि हैं, और इसी भाँति 'जीवन-संग्राम', 'जीवनोद्देश्य' तथा इसी प्रकार की अन्य कविताएँ लिखनेवाले पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' की भी पंक्तियाँ अधिकतर उपदेशमय तथा तर्क-वितर्क से भरी होती हैं। उनमें जीवन-जोश भरनेवाले कड़खे की पूरी शक्ति नहीं है। इस प्रकार की उमंग भरनेवाले पद्यों की रचना करनेवाले हिंदी में इने-गिने कवि हैं, जिनमें पं० माखनलाल चतुर्वेदी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। चतुर्वेदीजी एक 'भारतीय आत्मा' के उपनाम से कविताएँ रचा करते हैं, और इनके प्रायः सभी पद्य फुटकर के रूप में हैं। इनकी बहुत-सी ऐसी रचनाएँ 'प्रताप' तथा 'कर्मवीर' में निकल चुकी हैं, परंतु उनका कोई अच्छा संग्रह हमारे देखने में नहीं आया। प्रताप-कार्यालय, कानपुर से प्रकाशित कविता-संग्रह 'राष्ट्रीय वीणा' के प्रथम तथा द्वितीय भाग में केवल पाँच कविताएँ संगृहीत हैं, जिनके शीर्षक 'जीवन-जोश', 'चेतावनी', 'जीवन-फूल', 'बलिदान' और 'ऐसे बालक आवेंगे' हैं। इनकी कुछ पंक्तियाँ हम नीचे उद्धृत करते हैं—

आने दे, दुख के मेघों की घोर घटा घिर आने दे ;
जल ही नहीं, उपल भी उसको लगातार बरसाने दे।
कर-करके गंभीर गर्जना, भारी शोर मचाने दे ;
उससे कह दे—गहरे झोंके, तू जितने मन माने दे।
किंतु कहे देता हूँ तुझसे—सब जाएँगे भूल—
तेरे चरणों पर ही अर्पित होगा 'जीवन-फूल'।
खाने को न अरे ओ भाई! दिन-भर में दो दाने दे ;
कर दे बंद न स्वच्छ वायु में हमको आने-जाने दे।
लाने दे न उमंग हृदय में नित मनमाने ताने दे ;
बिजली के पंखों से उसको मेरी ज्योति बुझाने दे।
उससे कह दे, तेरे-मेरे बीच बिछा दे शूल ;
किंतु किसी विध चढ़ जावेगा तुझ पर 'जीवन-फूल'।
इत्यादि।

तथा—बीज जब मिट्टी में मिल जाय,
वृक्ष तब उगता है हे मित्र!
क़लम की स्याही गिरती जाय,
पत्र पर उठता जाता चित्र।
नदी-नद सब जल के भांडार—
चढ़ा देते हैं अपना रक्त ;

अहा ! तब कहीं मधुरता बूँद—
मेघ से पाते वर्षा भक्त।
सफलता पाई अथवा नहीं—
उन्हें क्या ज्ञान दे चुके प्राण।
विश्व को चाहिए—उच्च विचार—
नहीं केवल अपना बलिदान।
बिगुल बज गया, चली सब सैन्य,
धरा भी होने लगी अधीर;
खाइयाँ खोदीं रिपु ने हाय !
पार हों कैसे सैनिक वीर।
"पूर दें इनको मेरे वीर—
शरीरों से"—दे दिए शरीर !
इधर यों सेनापति ने कहा,
उधर दब गए सहस्रों वीर !
समय पर किया शत्रु का नाश,
देश ने आहा ! पाया त्राण।
शेष वीरों ने छेड़ी तान—
"अहा बलिदान ! धन्य बलिदान !"
'कार्य छोटा है अथवा बड़ा ?'
नहीं है हमको इसका ध्यान;
'समय अनुकूल है कि प्रतिकूल ?'
न रक्खा इसका भी कुछ मान।
'कठिनता होगी कितनी ?'
हमें नहीं चाहिए इसका भी ज्ञान;
'लोग क्या सोचेंगे ?'
यह व्यर्थ रूढ़ि-सम्मान कर्म अपमान।
कर्म है अपना जीवन - प्राण,
कर्म में बसते हैं भगवान,
कर्म से बड़ा न कोई मान,
चलो हों सब मिलकर बलिदान।

इन पंक्तियों में चतुर्वेदीजी ने शब्दों के साथ-साथ छंदों का भी चुनाव उत्तम किया है।

इस प्रकार आशा एवं उद्‌बोधन के भावों से भरी हुई कविताएँ लिखनेवाले कवियों में पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', ठाकुर लक्ष्मणसिंह 'मयंक', पं० दशरथप्रसाद द्विवेदी, बाबू जगमोहन 'विकसित', पं० लगन्नाथ जोशी तथा सुभद्रादेवी चौहान के नाम भी लिए जा सकते हैं। इनमें भी 'नवीन'जी की कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्होंने प्रायः सभी कविताएँ फुटकर लिखी हैं, और लगभग सभी में एक नए जीवन, नए युग, नई शक्ति, नई उमंग आदि के पूरे क्रांतिकारी भाव भरे दिखलाई पड़ते हैं। 'प्रभा' में इनकी कविताएँ सदा निकलती रहती हैं, और उस पत्रिका के यह संपादक भी रह चुके हैं। 'मयंक'जी की कविताओं में भी राजनीतिक परतंत्रता के बंधनों से मुक्ति-लाभ करने का संदेश भरा है। इन उपर्युक्त कवियों के सिवा बहुत-से अन्य अज्ञात कवियों ने वर्तमान असहयोग-आंदोलन के विशेष अवसरों पर गाने योग्य अनेक सुंदर पदों की भी रचना की है, जिन्हें सुनकर देश-प्रेम, बलिदान, आत्म-विश्वास, नवजीवन के उत्साह-पूर्ण भावों का संचार हृदय में होने लगता है। परंतु वास्तव में हिंदी-कविता का मुख्य विषय अब जातीयता का भाव नहीं रह गया। हिंदी-साहित्य इस समय क्रमशः एक नए ढर्रे के साथ चलने लगा है, जिसे बहुत-से लोग रहस्यवाद या छायावाद कहते हैं।

प्रसून-प्रलाप

[श्रीसरदार नर्मदाप्रसादसिंहजी]

(१)

चित चाह रही, निज सौरभ सों—
दुखी-दीन दिलों की दवा करूँ मैं ;
बिन वस्त्र हैं लाजवती जो जहाँ,
कलियों से बिथा उनकी हरूँ मैं ।
क्षुधा-पीड़ित बालकों के चित को—
रँग-रूप से रंजित जा करूँ मैं ;
शुचिता के सिवा जिनके न कछू,
उनके पद पै निधि जा धरूँ मैं ।

(२)

पति-नेह की आगरी नागरी जो,
यदि वैसी प्रभाकरी पाऊँ कहूँ ;
शुचिता जिनके तन की सुषमा,
उपमा उनके पद की मैं गहूँ ।
उनके सुख में निज सौरभ त्यों,
रँग-रूप दे जीवन-लाभ लहूँ ;
सुन-गूँथन में हिय-भेदन की—
उनके कर कीलन पीर सहूँ ।

(३)

गरिमा हैं, गरूर हैं, गौरव हैं,
शुचि सौरभ हैं, जननी ममता के ;
धृति में, कृति में, वित में, सहसा—
क्षिति में न मिलें जिनकी समता के ।
जिनके तप-ताप से भंग भईं—
तपि दासता की कड़ियाँ पद-मा के ;
उनके ही जिये हम फूलि खिलें,
कलियाँ ले पराग रहें मग ताके ।

(४)

यशोपार्जन की नहीं वांछना थी,
मेरी कामना तो कछु और ही थी ;
निषकाम स्वकर्म की भावना थी,
अरु' साधना भी कछु और ही थी ;
परमार्थ का पंथ था धर्म मेरा,
फल-वासना भी कछु और ही थी ;
पर भाल की पंक्ति ही और ही थी,
बदी ताड़ना भी कछु और ही थी ।

(५)

निधि-सौरभ, रूप त्यों रंग यों दे,
उन पै न करी तनिकौ गति मेरी ;
धन-धर्म की, लाज की हैं जो चिता,
उन पै बिखरा के हरी पति मेरी ।
पुनि लंपटों के गल-हार बना,
प्रभु, तूने करी है अधोगति मेरी ;
मति औरै दई, गति औरै भई,
अरे नाथ, अभाग्य की की अति मेरी ।

(६)

जिन कंठ पै धार कुठार फबै,
उनके हित हा विध ! हार बनूँ ;
जिन सेज पै सूलों की होती व्यथा,
उन पै बिछिकै सुख-सार बनूँ !
जिन शीश के क्रीट हों पाप-सने,
उनकी छवि का रखवार बनूँ ;
निज वैभव की गति यों लखिकै,
कबलों अब भूतल-भार बनूँ ।

(७)

अब ऊब उठा इन कुंजन सों,
अरे मारुत, तू भी अधीर न हो;
पहुँचा दे मुझे मरुभूमि कहीं—
जहाँ शीतल नीर-समीर न हो ।
जहाँ बस्ती न हो, धन-मस्ती न हो,
अरु पापों की हस्ती बेपीर न हो;
वहीं सौरभ, रूप ले रंग जरूँ—
जहाँ कोई मेरा हमशीर न हो ।

बँगला-साहित्य के आदि और ब्राह्मण-युगों का इतिहास

(सिंहावलोकन)

[श्रीयुत नलिनीमोहन सान्याल भाषातत्वरत्न एम्० ए०]

(गतांक से आगे)

(६)



अनुमान होता है कि शिवजी का गान बहुत पुराने समय में रचित हुआ था, और उसी के आधार पर रामेश्वर कवि ने अब से दो सौ वर्ष पहले अपना 'शिवायन'-नामक काव्य लिखा था। इस काव्य में उस पुराने समय के भाव मिलते हैं, जब असभ्य देहाती लोग गीत बनाकर गाते थे। इसमें शिवजी अच्छे समाज के मनुष्य के समान नहीं पाए जाते हैं, वह बहुत असभ्य हैं। वह इंद्र के पास व्याघ्र-छाल और त्रिशूल गिरवीं रखकर एक जोड़ा बैल, एक हल और थोड़ी-सी ज़मीन लेकर खेती करने गए। वह वृद्ध थे, नौकर के द्वारा हल जुतवाकर खेती के पहरे में बैठे रहते थे, और समय-समय पर छोटी क़ौमों के मुहल्लों में जाकर औरतों के साथ हास-परिहास करते थे।

उनकी स्त्री पार्वती उनके आचरण से बहुत क्रुद्ध हुईं। दोनो में सर्वदा कलह होता रहता था। एक दिन पार्वती कार्त्तिक और गणेश को लेकर नैहर चली गईं। शिवजी को बहुत शोक हुआ। इसके पीछे वृद्ध शंखवाले के भेष में हिमालय की पुरी में जाकर अपने हाथों से पार्वती को शंख का कंगन पहराकर कैलास लौट आए, तब दोनो में फिर प्रीति हुई।

रामेश्वर का शिवायन बहुत बड़ा ग्रंथ है। इसकी भाषा बहुत दोष-युक्त है। कहीं-कहीं रामेश्वर ने प्राचीन पोथी की भाषा ज्यों-की-त्यों रक्खी है। ये अंश अच्छे लगते हैं। परंतु जहाँ-जहाँ उन्होंने पुराने उपकरणों को नए साँचे में ढाला है, उन्हीं-उन्हीं अंशों में संस्कृत-शब्दों का उपयोग होने के कारण भाषा कदर्य हो गई है।

(७)

इस देश से निकाले जाने के पहले बौद्ध-धर्म का एक विकट आकार हो गया था। निम्न श्रेणी के लोगों के भीतर बुद्धदेव धर्म-ठाकुर के नाम से पूजा पाते थे। इस धर्म-ठाकुर की पूजा-विषयक गान का भी किसी समय वंग-देश में बहुत आदर था। अनेक कवियों ने धर्म-मंगल काव्य लिखे थे।

धर्म-मंगल काव्यों के प्रधान पात्र थे लाउसेन। वह मेदिनीपुर-ज़िले के मयनागढ़ के राजा कर्णसेन के पुत्र थे। उस समय धर्मपाल गौड़ देश के चक्रवर्ती राजा थे, अतएव कर्णसेन उनका सामंत राजा था। धर्मपाल का प्रधान मंत्री था उनका साला माहुदा।

धर्मपाल के एक गोआला प्रजा इछाइ घोष ने विद्रोही होकर ढेकुर-नामक स्थान में राज्य-स्थापन किया था। धर्मपाल ने बहुत दफ़े उसके विरुद्ध सेना भेजी थी, पर इछाइ ने प्रत्येक बार उन्हें युद्ध में हरा दिया था।

धर्मपाल ने वृद्ध राजा कर्णसेन को इछाइ के विरुद्ध में भेजा। कर्णसेन हार गया, और युद्ध में उसके सात पुत्र मारे गए। पुत्र-शोक से उसकी रानी की मृत्यु हुई। कर्णसेन संन्यासी होने का संकल्प कर धर्मपाल से विदा होने गया। धर्मपाल ने सोचा कि उन्हीं की आज्ञा-पालन के निमित्त इस वृद्ध सामंत राजा के पुत्र-कलत्र मर गए हैं, और अब यह फ़क़ीरी

लेना चाहता है। उनका चित्त कर्णसेन के दुःख से पसीज गया। उन्होंने षोड़शवर्षीया, परम रूपवती रंजावती-नामक अपनी साली के साथ वृद्ध कर्णसेन का विवाह करवा उसे फिर घर में प्रतिष्ठित किया। उस समय माहुदा गौड़ में नहीं था। लौटकर जब उसने सुना कि उसकी बहन का ब्याह एक ८० वर्ष के बूढ़े के साथ हो गया है, तब वह बहुत दुखी हुआ। उसने रंजावती को बूढ़े के घर जाने से मना किया, पर रंजावती ने नहीं माना, और पति के साथ चली गई। माहुदा रंजावती पर क्रुद्ध हो गया।

रंजावती मयनागढ़ में पहुँचकर धर्म-ठाकुर की पूजा करने लगी, और उनके वर से उसके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम लाउसेन रक्खा गया।

लाउसेन बड़ा हुआ। उसका मामा माहुदा रंजावती से क्रुद्ध रहने के कारण लाउसेन का भी शत्रु हो गया। गौड़ेश्वर को मंद परामर्श देकर लाउसेन को मारने के लिये उसे विपद्-पूर्ण युद्ध-विग्रहों में भेजता था। लाउसेन धर्म-ठाकुर की पूजाकर सब विपत्तियों से परित्राण पाता था। धर्मपाल ने उसे इछाइ घोष के विरुद्ध में भेजा। युद्ध में उसने इछाइ को मारा। उसके मामा ने उसे और भी अनेक विपदों में डाला था। पर धर्म-ठाकुर की दया से उसने सब विपत्तियों से उद्धार पाया।

यही है धर्म-मंगल काव्य का विषय। इस विषय के आदि लेखक थे मयूर भट्ट। उन्होंने सन् १२०० ई० के लगभग एक धर्म-मंगल काव्य लिखा था। उनके पीछे रूपराम, माणिक गाँगुली, सहदेव चक्रवर्ती इत्यादि अनेकों ने धर्म-मंगल लिखे थे। परंतु सबसे उत्तम रचना घनराम चक्रवर्ती की है। उनका धर्म-मंगल सन् १७१३ ई० में लिखा गया था।

(८)

नाथ-संप्रदाय नाम की एक श्रेणी के लोग बारहवें शतक ईस्वी में बंग-देश में तथा भारतवर्ष के अन्यान्य स्थानों में प्रबल हो गए थे। इन्होंने बौद्ध-धर्म और शैव-धर्म के मतों का संग्रह कर एक मध्यवर्ती धर्म-मत का प्रचार किया था। इस धर्म का नाम था नाथ-धर्म।

नाथ-धर्म के गुरु थे मीननाथ। मीननाथ के प्रधान शिष्य थे गोरक्षनाथ। गोरक्षनाथ की जन्म-भूमि थी पंजाब, किंतु उनके जीवन का अनेक अंश बंग-देश में व्यतीत हुआ था, और इस देश में उनके अनेक शिष्य थे। गोरक्ष-विजय-नामक एक पुराना काव्य मिला है। इस ग्रंथ की पांडु-लिपि बारहवीं सदी ईस्वी में बनी थी। उस पर बहुत कवियों ने हाथ डालकर उसकी भाषा को सरल कर डाला है। इनमें से तीन कवियों के नाम उल्लेख योग्य हैं—भवानीदास, फ़ैज़ुल्ला और भीमदाससेन।

गोरक्षनाथ के जीवन की बहुत-सी बातें गोरक्ष-विजय में पाई जाती हैं। इसमें उच्च कोटि की नीति तथा धर्म की बातें हैं।

एक दिन शिवजी समुद्र-तीर-वर्ती एक टीले पर बैठकर पार्वतीजी को जीवन-मृत्यु-विषयक अनेक उपदेश दे रहे थे। इस उपदेश का नाम है महा-ज्ञान। इसे जो कोई सुनता है, वह मृतक को बचा सकता और सब देवताओं को वशीभूत कर सकता है। उस टीले के नीचे उस समय मीननाथ तपस्या कर रहे थे। शिव-कथित महाज्ञान-तत्त्व उनको सुनने में आया। इस अपराध के लिये शिवजी ने मीननाथ को अभिशाप दिया कि वह नारी-माया में फँसकर महाज्ञान खोएँगे।

कुछ वर्षों के भीतर मीननाथ ने हाड़िपा, कालुपा, गोरक्षनाथ इत्यादि शिष्यों को महाज्ञान सिखा दिया। पार्वतीजी को विश्वास था कि ऐसा कोई साधु नहीं, जो नारी के मोह का वशीभूत नहीं होता। उन्होंने मीननाथ, हाड़िपा, कालुपा और गोरक्षनाथ की परीक्षा ली। सब कोई नारियों के मोह में फँसे, पर गोरक्षनाथ अटल रह गए।

मीननाथ कदली-पत्तन में जाकर नारियों के प्रेम में फँसे थे। गोरक्षनाथ ने उनका उद्धार किया था।

हाड़िपा रानी मयनामती के रूप से मुग्ध होकर मेहेरकुल में झाड़ूदार का काम करने लगा। कालुपा का भी ऐसा ही कुछ हाल हुआ।

गोरख-विजय का दूसरा नाम है मीन-चेतन।

(६)

जिन्होंने गोरखनाथ के विषय में गान की रचना की थी, उनमें से कुछ लोगों ने मयनामती का गान भी तैयार किया था। मयनामती के गान में हाड़िपा और उसकी शिष्या मयनामती के विषय में बहुत-सी बातें लिखी हैं। इसमें भी गोरखनाथ का उल्लेख है।

मयनामती मेहेरकुल के राजा तिलकचंद्र की बेटी थी। किसी समय गोरखनाथ तिलकचंद्र के राजभवन में उपस्थित हुए थे। उस समय मयनामती की अवस्था १२ वर्ष की थी। मयनामती की सेवा से संतुष्ट होकर गोरखनाथ ने मयनामती को महाज्ञान सिखा दिया था।

बंग के राजा माणिकचंद्र के साथ मयनामती का विवाह हुआ था। माणिकचंद्र ने पीछे और भी कई सुंदरी स्त्रियों का पाणि-ग्रहण किया था। मयनामती की उम्र अधिक हो जाने पर राजा ने उसे राज-भवन से निकाल दिया। वह फेरुसा-नामक स्थान में रहने लगी।

मयनामती और हाड़िपा एक ही गुरु के शिष्य थे। इसलिये दोनो में प्रीति थी। हाड़िपा झाड़ूदार का काम करता था।

जब राजा माणिकचंद्र मृत्यु-शय्या पर पड़ा था, तब उसने मयनामती को अपने पास बुलवाया। मयना ने उसकी बहुत सेवा की, पर राजा को बचा न सकी। मयना ने महाज्ञान की शक्ति से यम को बहुत तंग किया था।

धर्मदेव के वर से मयनामती के एक पुत्र हुआ। यही राजा गोविंदचंद्र हैं, जिन्होंने दाक्षिणात्य के राजा राजेंद्रचोल को पराभूत किया था। गोविंद-चंद्र का दूसरा नाम था गोपीचंद। राजेंद्रचोल का राज्य-काल था १०६७ ई० से १११२ ई० तक। गोविंदचंद्र-गीति ओड़िया भाषा में भी लिखी पाई जाती है। सुप्रसिद्ध रवि वर्मा ने गोपीचंद्र का संन्यास-विषयक चित्र बनाया है। भागलपुर, काशी और पंजाब में भी हिंदी-भाषा में लिखित 'गोपी-चंद की पोथी' मिलती है। महाराष्ट्रदेशीय कवि महीपति ने (१७१५—१७९० ई०) इनके विषय में 'संतलीलामृत' और पूना के अप्पाजी गोविंद ने 'गोपीचंद-नाटक' लिखे हैं।

गोविंदचंद्र जब छोटे थे, तब मयनामती हाड़िपा की मंत्रणा के अनुसार राज्य-शासन करती थी। गोविंदचंद्र जब १८ वर्ष का हुआ, तब मयनामती ने उन्हें १२ वर्ष के लिये संन्यास ग्रहण करने को बाध्य किया। संन्यास लेने के समय उनकी स्त्री अदुना का विलाप करुण-रस का निर्झर है। संन्यास की अवस्था में गोविंदचंद्र को अनेक कष्ट झेलने पड़े। उनमें से एक था हीरा-नाम्नी रूपसी धनाढ्य वारवनिता का दासत्व। हीरा ने उस सुंदर युवक को फँसाने की चेष्टा की, परंतु नाना अत्याचार सहकर भी गोविंदचंद्र ने अपना चरित्र निष्कलंक रक्खा। १२ वर्ष के बाद हाड़िपा उन्हें उद्धार कर ले गया।

दीर्घकाल के बाद गोविंदचंद्र संन्यासी के वेश में अपने राज-प्रासाद में उपस्थित हुए। अदुना उन्हें पहचान न सकी। अपरिचित व्यक्ति के राजांतःपुर में प्रवेश करने के अपराध में अदुना ने उन पर कुत्ता छुड़वा दिया, एवं उन्हें हाथी के पैरों के तले फेंकवा दिया। पर दोनो ने अपने प्रभु को पहचाना। कुत्ता दुम हिलाने लगा, और हाथी की आँखों से आँसुओं की धाराएँ बहने लगीं। तब अदुना गोविंदचंद्र को पहचान कर बहुत लज्जित हुई। गोविंदचंद्र ने फिर सिंहासन पर अधिकार किया।

(१०)

पहले ही कहा गया है कि निम्न श्रेणी के लोग धर्म-ठाकुर के नाम से बुद्धदेव की पूजा करते थे।

रामाइ पंडित-नामक एक व्यक्ति धर्म-पूजा के प्रधान पुरोहित थे। यह राजा द्वितीय धर्मपाल के समय अर्थात् ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में विद्यमान थे। इन्होंने शून्यपुराण-नामक एक पुस्तक लिखी थी। इसमें धर्म-पूजा की पद्धति विशद रूप से दी गई है। सृष्टि किस प्रकार से हुई, सृष्टि के पहले निरंजन प्रभु का उद्भव कैसे हुआ, और उनके वाहन उलूक ने क्या किया, इत्यादि विवरण इस पुस्तक में हैं। सबसे पहले शिवजी ने धर्म की पूजा की थी। शिवजी कभी नग्न रहते थे, दुर्गंधित बाघ की छाल पहनते थे, कभी भिक्षाटन करते थे, कभी उपवास करते थे। यह सब देखकर उनका एक भक्त उन्हें कृषि और कार्पास-उत्पादन करने का परामर्श दे रहा है। शिवजी ने भस्म लगाकर अपनी देह रूखी कर डाली है, इसलिये वह तिल पेरकर तैल बनाने का अनुरोध कर रहा है। हनुमानजी धर्मदेव के मंदिर के द्वार-रक्षक हैं। इसमें मीननाथ, चौरंगी इत्यादि साधुओं के नाम पाए जाते हैं। इस पुस्तक के कुछ अंश पद्य में और बाक़ी एक अद्भुत गद्य में लिखे हैं। साँप के मंत्रों के सिवा इससे प्राचीन गद्य नहीं पाया गया।

बौद्ध-धर्म के त्रिरत्न हैं—बुद्ध, धर्म और संघ। काल-क्रम से बौद्ध-शब्द भारतवर्ष के लोगों में अप्रीतिकर हो गया, इसलिये अथवा दूसरे किसी कारण से बौद्ध-संप्रदाय अपना परिचय बौद्ध नाम से देने में संकुचित होता था, और उसने त्रिरत्न के द्वितीय रत्न के नाम (धर्म) के अनुसार अपने देवता का नाम-करण किया था, और अपने संप्रदाय के लोगों को सद्धर्मी कहता था।

(११)

डाक और खना के वचन कितने पुराने हैं, नहीं कहा जा सकता। बौद्ध-धर्म जब प्रबल था, तब बौद्ध लोग भक्ति पर ज़ोर नहीं देते थे। पूजा, जप इत्यादि का बाहुल्य नहीं था। जीवों पर दया, महोत्सव, पुष्करिणी, खनन इत्यादि बौद्ध-युग के प्रधान धर्म थे। ब्राह्मणों ने जब हिंदू-धर्म को नए साँचे में ढाला, तब पूजा, जप, तप इत्यादि में लोग व्यस्त हुए। डाक और खना के वचनों में जप-तप की बातें विशेषता से नहीं पाई जातीं। इनमें बौद्ध-धर्म के सत्कर्मों पर ज़्यादा ज़ोर दिया गया है। अतएव अनुमान होता है कि ये हिंदू-अभ्युत्थान के पहले रचित हुए थे। यद्यपि इनकी भाषा का बहुत परिवर्तन हो गया है, तथापि बीच-बीच में ऐसी कठिन पुरानी भाषा के नमूने पाए जाते हैं कि उनका अर्थ लगाना मुश्किल होता है। एक उदाहरण यह है—

आदि अंत भूजासि ; इष्टदेवे जहे पूजासि।
मरनेर यदि डर वासासि ; असंभव कभु न खायसि।

ये वचन किसके रचित हैं, इसका ठीक निर्णय करना कठिन है। हमारा अनुमान यह है कि बंग-देश के कृषक, देहाती ज्योतिषी और बूढ़ी स्त्रियाँ जिन सब ग्राम्य कविताओं को बनाकर ज़बानी चलाती आई हैं, वे ही डाक और खना के वचन के नाम से प्रचलित हैं। अब इन वचनों का आकार बृहत् हो गया है। इनमें गृहस्थ के काम की बातें बहुत हैं। यथा—

यदि बरे आगने, राजा नामेन मागने ;
यदि बरे पोउषे, कड़ि हयं तुषे।
यदि बरे माघेर शेष, धन्य राजार पुण्य देश ;
यदि बरे फागुने, चिना का ओन हय द्विगुणे।

अग्रहायण-मास में वर्षा होने से धान इतना ख़राब हो जाता है कि मालगुज़ारी न पाकर राजा को भिक्षा के लिये निकलना होता है। पौष में वृष्टि होने से धान एकदम नष्ट हो जाता है, तब तुष का भी दाम होता है। माघ के शेष में वारि-पात होने से फ़सल अधिक होती है। फागुन में पानी बरसने से चिना का ओन (?) दुगना होता है।

(१२)

हिंदू-धर्म के उत्थान के समय नाना मतावलंबी पंडितगण अपने-अपने मतों के प्रचार के निमित्त नियुक्त हुए। इनका धर्म-कलह अतीव कौतूहलोद्दीपक है।

गौड़वासी चिरंजीव भट्टाचार्य अपनी 'विद्योन्माद-तरंगिणी' में इस कलह का एक सुंदर चित्र-पट रख गए हैं। धर्म-कलह से बँगला-साहित्य की पुष्टि हुई है।

अनुमान होता है कि हिंदू-धर्म के पुनरुत्थान के समय शैव-धर्म ने ही सबसे पहले मस्तकोत्तोलन किया था। चट्ट ग्राम की प्राचीन 'मृगलुब्ध' पोथी में शिव-माहात्म्य वर्णित है। शिवायन इत्यादि अपरापर ग्रंथों में भी शैव-धर्म का परिचय मिलता है।

प्राचीन वंग-साहित्य के पुष्टि-साधन में चंडीदेवी ने विशेष सहायता की है। यह देवी अपने भक्तों के लिये जैसी कार्य-तत्पर हैं, शिव वैसे सचेष्ट वर्णित नहीं हुए। खुल्लना की विपत्ति में, श्रीमंत की कातरता में चंडीदेवी का हृदय विदीर्ण हो रहा है, ऐसा मालूम होता है। अपनी पूजा के प्रचार के लिये मनसादेवी को शांति न थी, परंतु शिवजी की ऐसी उद्यमशीलता नहीं वर्णित हुई है। चाँद सौदागर की सात नावें डूब जाने पर वह 'शिव', 'शिव' कर वृथा ही पुकारने लगे, परंतु शिवजी निश्चेष्ट और निर्मम होकर बैठे रह गए। धनपति का अश्रु-मोचन देखकर भी शिवजी ने अपनी कनिष्ठ उँगली भी न हिलाई। अतएव वंग-देश में मनसा और चंडी का प्रभाव बढ़ जाना आश्चर्य का विषय नहीं है। पाश-मुक्त होने से शिव-भक्त शिवत्व प्राप्त करता है। शिव गुणातीत हैं, अतएव उनके निकट कामना करना वृथा है। उक्त शैवगण अद्वैत-वादी हैं। वे भगवान् के सगुण भाव प्रत्यक्ष नहीं करते। अतएव वंगीय लौकिक काव्य-समूह में शिव की यह निश्चेष्टता कैसे आई, यह सहज में ही हम समझ सकते हैं। अनुमान होता है कि इसी-लिये शक्ति की उपासना उस समय के बंगाली को आकर्षक हुई थी। वे कामना पूर्ण करनेवाली देवी को चाहते थे। जब मुसलमान लोग प्रत्यक्ष ईश्वर में ज्वलंत विश्वास का परिचय दे रहे थे, तब हिंदू लेखकगण केवल निर्गुण ब्रह्मोपासना की व्याख्या कर निश्चेष्ट नहीं रह सके। शैव और शाक्त की कलहात्मक पुस्तकों के प्रणयन द्वारा वंग-साहित्य की उन्नति हुई थी, इसमें कुछ संदेह नहीं।

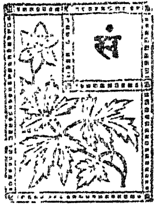
यह लेख बहुत बड़ा हो गया है। अतएव वंगीय साहित्य के अनुवाद-युग तथा वैष्णव-युग के इतिहास द्वितीय लेख में और आधुनिक युग का इतिहास तृतीय लेख में दिए जायँगे ॐ।

(समाप्त)

ॐ इस लेख के उपकरण रायबहादुर डॉक्टर दीनेशचंद्र सेन बी० ए०, डी० लिट्० के लेखों से संगृहीत हुए हैं।

मोक्ष का मार्ग

[श्रीयुत आई० बी० सक्सेना एम्० ए०, ऑनर्स]



संसार के तमाम मतों में कुछ-न-कुछ विचित्रता अवश्य पाई जाती है। यद्यपि ये भिन्न-भिन्न देशों की सभ्यता के अनुसार बने हैं, परंतु उनमें एक ही आदर्श सर्वोच्च शिखर पर रक्खा गया है। मनुष्य सदैव स्वतंत्र रहना पसंद करता है, परंतु पग-पग पर उसे कठिनाइयाँ जकड़े रहती हैं। इसका कारण यही है कि जीव बिना किसी सहारे के संसार-चक्र से पार नहीं हो सकता। उसे क्षण-क्षण में किसी अज्ञात शक्ति की आवश्यकता प्रतीत होती है। परंतु इसके लिये यह आवश्यक नहीं कि उस उच्च आदर्श का कोई नाम ही रख लिया जाय। महात्मा बुद्ध ने भी उस उच्च स्थान की खोज की है। उनका मत अंध-विश्वास का समर्थक और सुंदर तर्क का पक्षपाती नहीं है। वह तो एक जीती-जागती दुनिया का पवित्र दृश्य है। सत्य और जीवन के संग्राम का अद्भुत खेल। महात्मा बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं से प्राचीन आर्यों के अंधविश्वास के अंधकार को धीरे-धीरे दूर करने का यत्न किया है। जिस समय गौतम पैदा हुए थे, भारतवर्ष अपनी यौगिक क्रियाओं के लिये प्रसिद्ध था। इन क्रियाओं का बाद में इतना दुरुपयोग हुआ कि शरीर को कष्ट पहुँचाने की एक प्रथा-सी प्रचलित हो चली। गौतम ने भी पहले-पहल उसी मार्ग को ग्रहण किया, परंतु ६ वर्ष की घोर तपस्या के पश्चात् उन्हें ये सब बातें मिथ्या जान पड़ीं। एक दिन उर्विला में बोधी पेड़ के नीचे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ, और दुःख का कारण तथा उससे छुटकारा पाने की राह मालूम हो गई।

वर्तमान समय में हम उसी को ज़्यादा पसंद करते हैं, जो बजाय लेक्चर देने के स्वयं उसी मार्ग पर चलता और हमारी आशाओं की पूर्ति कर दिखाता है। महात्मा बुद्ध का मत इस हिसाब से अधिक उपयोगी है। मेरा आशय इससे यह नहीं कि जो कुछ इसमें है, सब सत्य ही है। आप चाहे इस मत को मानें, या न मानें, परंतु इतना तो अवश्य ही करना होगा कि महात्मा बुद्ध का यह सबसे उत्तम और कठिन परिश्रम था, और उनकी पवित्र आत्मा एक उच्च कोटि की आत्मा थी।

जैसे मनुष्य का शरीर दो टाँगों पर स्थित है, उसी प्रकार बौद्ध-मत दो मुख्य बातों पर आश्रित है। दुनिया क्या है, और जीव से इसका क्या संबंध है, इन सबका अर्थ यही है कि संसार दुःखमय है। शाक्य मुनि ने दुःख ही संसार का मुख्य कारण बतलाया है, परंतु इससे यह नहीं समझा जा सकता कि यदि दुःख का अंत कर दिया जाय, तो संसार सुखमय हो जायगा। इसके विपरीत अगर हमारा जीवन कष्टदायक है, तो सबका जीवन ऐसा कैसे हो सकता है। इसका उत्तर केवल इतना ही है कि जीवन सदैव परिवर्तनशील है, और जो वस्तु बदलती है, वह कभी चिरस्थायी नहीं हो सकती। परंतु अब यह प्रश्न उठता है कि अगर तमाम चीज़ें बदलती-बदलती रहती हैं, तो कम-से-कम परिवर्तन तो अवश्य स्थायी है। लेकिन नहीं, संसार में कोई चीज़ बिना किसी कारण के नहीं पैदा होती, और ज्यों ही कारण अपनी शक्ति नष्ट कर देता है, कार्य का भी अंत हो जाता है। तो क्या अब यह समझा जाय कि मनुष्य का कहीं भी ठिकाना नहीं रहा? क्या उसके लिये कोई भी वस्तु स्थायी रूप में नहीं रक्खी गई। बौद्ध-मत के अनुसार मनुष्य का निस्तार उसके ज्ञान पर ही निर्भर है। यदि जीव को यह ज्ञान प्राप्त हो जाय कि वह कुछ भी नहीं है, और तमाम संसार दुःखमय है, तो उसका छुटकारा

पाना कुछ दूभर नहीं। दुख क्या है, पाप का परिणाम नहीं, बल्कि मनुष्य का अज्ञान। आत्मा बंधनों से जकड़ी हुई है, और कई दूसरी चीज़ों पर निर्भर है। अगर यह बंधन नष्ट कर दिया जाय, तो आत्मा के मुक्ति पाने में कुछ संदेह नहीं। उपनिषदों ने भी इसी आत्म-कथा का सुंदर वर्णन किया है। परंतु उनमें आत्मा ही सब कुछ है। आत्मा अमर है, और सारे संसार में व्यापक है। इस मत ने आत्मा अमर होने की बहुत ही उत्तम दलीलें पेश की हैं, परंतु बौद्ध-मत ने आत्मा को जड़ से खोद डाला है। आश्चर्य तो इसमें है कि कर्म को इस पर भी एक प्रतिष्ठित स्थान प्रदान किया गया है। तर्क और ज्ञान विना किसी अस्तित्व के आगे नहीं बढ़ सकते, परंतु बौद्ध-मत ने ऐसा ही करके दिखलाया है। आत्मा के बजाय यहाँ कर्म को ज़्यादा महत्त्व दिया गया है, बल्कि यों कहिए कि कर्म ही राजा बन बैठा है। हम पहले लिख आए हैं कि आत्मा कई तत्त्वों पर निर्भर है। वे पाँच प्रकार के हैं, जिन्हें पाली भाषा में 'खंधा' कहते हैं। उनके नाम ये हैं—रूप, इंद्रिय-ज्ञान, प्रत्यक्ष अनुभव, संस्कार और विमनान अथवा ज्ञान। इन सबसे मिलकर आत्मा की पूर्ति होती है, परंतु इनका सरदार ज्ञान ही रक्खा गया है। ये पाँच तत्त्व अलग-अलग कुछ भी महत्त्व नहीं रखते, और मिलकर 'भाव' कहलाते हैं। डॉक्टर दाहल्के ने इस घटना को बहुत ही थोड़े शब्दों में यों कहा है—"Five fictitious realities thus blend together to form a real fiction"-अर्थात् पाँच मिथ्या चीज़ों से बनकर एक उत्तम मिथ्या वस्तु तैयार होती है। परंतु कर्म क्या है? कर्म एक शक्ति है, जो मनुष्य को दूसरा जन्म लेने में सहायता देती है, या यों कहिए कि जैसे बीज जब तक बीज के रूप में है, पेड़ नहीं कहा जा सकता, परंतु खाद-पानी से मिलकर अपना असली रूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार कर्म भी एक छिपी हुई वस्तु है, जो अनुकूल जल-वायु पाकर मनुष्य के भाग्य का अधिकारी होता है। कर्म केवल उस पुल के समान है, जो यात्रियों को इस जीवन से दूसरा जीवन ग्रहण करने में सहायता पहुँचाता है। लेकिन अगर कर्म इतना ही कर सकता है, तो मनुष्य-जाति को दूसरे जीवन की कल्पना न करनी चाहिए, क्योंकि विना दूसरी ओर का हाल जाने कोई यात्री नदी पार नहीं करता, और उस पर भी मज़ा यह कि मनुष्य का तो कहीं नाम ही नहीं रह जाता। जिसे हम आत्मा कहते हैं, उस चिरस्थायी वस्तु को बौद्ध-मत ने पाँच चलायमान तत्त्वों से बदल दिया है, जब तक कोई टेक नहीं है। ज्ञान कैसे स्थिर रह सकता है? कुम्हार का चाक विना किसी धुरे के कैसे चल सकता है?

अगर हम यह कहें कि हमारा जन्म अपने कर्मों का फल भोगने के लिये होता है, तो यह नहीं समझ में आता कि जब हम हैं ही नहीं, फिर फल-भोग कौन करेगा? अगर हम नहीं भोगते, तो संसार में पाप-पुण्य का ढोंग क्यों रचा जाता है। बौद्ध-मत का कहना है कि आत्मा नहीं है, परंतु मिथ्या आत्मा तो अवश्य ही है। जिसे हम आत्मा मानते हैं, उसे वे लोग मिथ्या आत्मा समझते हैं। इस मत के अनुसार मनुष्य का उद्धार इसी अंधकार के हटाने और आत्मा के असली रूप जानने से हो सकता है। जो कुछ कार्य मनुष्य करता है, वह सब मिथ्या आत्मा को ही भोगना पड़ता है। उस आशय को भले प्रकार समझने के लिये हम लोगों को 'दुःख'-शब्द पर विचार करना चाहिए। दुःख-शब्द साधारणतः जो अर्थ रखता है, उससे कहीं गूढ़ मतलब बौद्ध-मत में माना गया है। हम कह आए हैं कि दुःख ही संसार की जड़ है, परंतु इसके झेलने ही से काम नहीं चल सकता। इसका समझना भी बहुत ही आवश्यक है। दुःख का अर्थ है 'कारण और परिणाम के नियम की जानकारी।' जो इस मंत्र को समझ गया, उसे मोक्ष प्राप्त होना कुछ मुश्किल नहीं। परंतु यदि कर्म का फल अवश्य भोगना

पड़ता है, तो यह कैसे माना जाय कि हम अपने ही कर्मों का फल भोगेंगे। इसका उत्तर यही है कि कर्म और कर्ता दो वस्तु नहीं हैं। कर्ता ही कर्म है और कर्म ही दंड। जैसे सब चीज़ें बदलती रहती हैं, उसी प्रकार हमारी मिथ्या आत्मा भी बदलती है। कर्म इस आत्मा को फल भोगने के लिये अपने पाश में जकड़े रहता है। दुःख केवल उस आश्रय-हीन आत्मा का दूसरा नाम है। आत्मा ही दुःख है, परंतु जहाँ दुःख है, वहाँ इच्छा है, इसलिये इच्छा ही सब बंधनों की जड़ है; अगर इच्छा का लोप हो जाय, तो दुःख भी संसार में न रहे। हमारी इंद्रियाँ अपनी इच्छा ही से सदैव नई-नई वस्तुओं की लालसा करती और दुःख पाती हैं। परंतु इच्छा का आत्मा की हिंसा से नाश नहीं हो सकता, उसके लिये ज्ञान की पुष्टि चाहिए। वह ज्ञान क्या है, यही कि हमारी आत्मा अमर नहीं है।

बौद्ध-मत वास्तव में एक मोक्ष का मार्ग है, इसका तर्क से उतना संबंध नहीं, जितना संसार से। शाक्य मुनि ने मनुष्य को 'नेयर आत्मा' तथा आत्मशून्य बतलाया है। उसका कर्म यही है कि वह अपनी इस स्थिति का पूरा ज्ञान प्राप्त कर ले, और आवागमन के बंधन से छूट जाय; परंतु यह स्वतंत्रता नहीं के बराबर समझनी चाहिए, क्योंकि मोक्ष का अर्थ दुःख का अंत ही माना गया है। इससे यह अनुमान करना कि दुःख के अंत के साथ सुख का संचार होगा, भारी भूल है। बुद्ध ने तो स्वयं साफ़-साफ़ शब्दों में कई स्थानों पर घोषित कर दिया है कि 'कर्ता स्वतंत्रो नास्ति'। जिसको हम आत्मा मानते हैं, वह तो केवल पाँच भूतों से बनी हुई एक वस्तु है, परंतु इस पर भी कर्मों का फल आवश्यक माना गया है। इस विपरीत वर्णन से बचने के लिये टीकाकारों ने कई प्रकार के अर्थ निकाले हैं। बहुतायत से लोगों की राय है कि शाक्य मुनि ने आत्मा के नष्ट होने की दीक्षा दी है। परंतु इसके साथ-साथ कर्म भोगने के लिये एक जीव की उत्पत्ति होना भी आवश्यक समझा है। लेकिन पोसिन इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि यद्यपि आत्मा कोई वस्तु नहीं है, तथापि यह मनुष्य-रूप में एक मिश्रित जीवधारी द्रव्य पदार्थ है, जो दो क्षण तक न तो एक-सी रहती है, और न बिलकुल विपरीत ही हो जाती है। बौद्ध-मत ने आत्मा को इस प्रकार परिवर्तनशील मानकर संसार का कोई महत्त्व ही नहीं रक्खा। इस मत ने आत्मा का महत्त्व नष्ट करने के लिये वही कारण दिए हैं, जो वर्तमान समय के किसी वैज्ञानिक से पूछे जा सकते हैं। आत्मा का अमर होना संसार की सब शिक्षित जातियों ने माना है, परंतु आज तक कोई भी इसके रूप को न जान सका। आत्मा क्या है, विरला ही कोई मनुष्य इसका उत्तर दे सकता है। आत्मा को किसने देखा है, फिर हम इस पर कैसे विश्वास कर सकते हैं। जो कुछ हम जानते हैं, वह केवल अपना इंद्रिय-ज्ञान है। इसके अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं जानी जा सकती, यह जानना कि हम जानते हैं, असंभव है। इन्हीं कारणों से बौद्ध-मत ने आत्मा को नहीं माना है। राजा मलिंद के प्रश्नों में इसी प्रकार की एक उपमा दी गई है। नागसेन ने एक दिन राजा मलिंद से पूछा—"रथ में कौन-सा भाग रथ कहलाने योग्य है?" वास्तव में न पहिया ही रथ है, और न बाँस इत्यादि। रथ नाम तो केवल कई भागों से बनी हुई वस्तु का है। उसी प्रकार आत्मा भी पाँच तत्त्वों पर निर्भर है। हम उसे अजर-अमर नहीं कह सकते। यदि आप आत्मा को सब भागों में श्रेष्ठ मानते हैं, तो आपको प्रत्येक वस्तु में आत्मा माननी पड़ेगी। इस मत का समर्थन ग्रीस के विद्वान् प्लेटो ने भी किया है, परंतु गौतम बुद्ध ने ऐसी स्थिति से साफ़ इनकार कर दिया है। यदि ऐसा माना भी जाय, तो गुण तथा अवगुण का कोई भी आशय नहीं समझा जा सकता। स्वयं शाक्य मुनि ने ऐसे नास्तिकों की कड़ी समालोचना की है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कई स्थानों पर कर्म के फल और आवागमन के गूढ़ रहस्य का वर्णन किया है। अंत में इन सब बातों पर विचार

करते हुए इस कठिनाई से बचने के लिये एक ही उपाय शेष रह जाता है। यदि हम यों कहें कि आवागमन नहीं है, बल्कि क्रियाओं का पुनर्जन्म होता है, तो सब बातें सुगम हो जाती हैं। जो कुछ रक्त-मांस से बना है, सब मृत्यु के समय नष्ट हो जाता है, केवल मनुष्य के कर्म शेष रह जाते हैं। दूसरे जन्म में आत्मा पुनः जन्म नहीं लेती, उसका कर्म ही जाग्रत् होकर आवागमन के चक्कर को जारी रखता है। इसी आशय को ए० बार्थ ने यों प्रकट किया है—"The dead Buddhist does not revive, but another revives in his stead." अर्थात् मृतक भिक्षु पुनः नहीं जी उठता, बल्कि उसी स्थान पर दूसरी वस्तु उपस्थित हो जाती है, या जैसा कि प्रोफ़ेसर राईस डेविड्स ने कहा है—There is no migration of the soul, but migration of the character." अर्थात् आत्मा का पुनर्जन्म नहीं होता, बल्कि चरित्र का ही परिवर्तन होता है। परंतु यदि मनुष्य का जन्म नहीं होता, और एक नई वस्तु की उत्पत्ति होती है, तो यह कैसे संभव है कि जो वर्तमान वस्तु पैदा हुई है, वह भूत का दूसरा रूप है। इस समस्या की व्याख्या करने के लिये पोसिन ने एक उत्तम उदाहरण से काम लिया है। अनुमान कीजिए, एक घना वन चारो ओर नदी से घिरा है, और उसके मध्य भाग में अग्नि प्रज्वलित है। इसकी प्रत्येक ज्वाला अग्नि नहीं कही जा सकती। अग्नि तो एक उठती हुई ज्वालाओं का समूह है, जो न तो बिलकुल एक ही समान है, और न बिलकुल विपरीत। इसी प्रकार मनुष्य भी किसी स्थायी अथवा अमर वस्तु से वंचित है, उसका ज्ञान वन की ज्वाला की नाईं क्षण-मात्र का बोध है, जो सदैव न तो एक-सा रहता है, और न उससे भिन्न ही हो जाता है। कल्पना कीजिए, वायु किसी प्रकार अपने झोंके से अग्नि को उस पार नहीं पहुँचा देती है। हम नहीं कह सकते कि नदी के उस तट की अग्नि वन की अग्नि से भिन्न है, अथवा दोनो एक ही समान हैं। वास्तव में अग्नि तो है ही नहीं। वह तो एक उठती-बैठती ज्वालाओं का ढेर है, जो विना वायु के उस पार नहीं जा सकता। इसी प्रकार मनुष्य भी क्षणिक अवस्थाओं का पुतला है, जो कर्म वायु के बल से सदा जन्म लिया करता है। अब रही निर्वाण की बात।

निर्वाण क्या है, यह प्रश्न अनेकों बार हमारे सामने उपस्थित हो चुका है। हिंदू-विद्वानों तथा प्राचीन ऋषि-मुनियों ने मोक्ष की बहुधा छान-बीन की है, परंतु बौद्ध-मत का निर्वाण एक नए प्रकार का मार्ग है। निर्वाण कर्ता तथा कर्म के गूढ़ रहस्य पर निर्भर है। इसी की जानकारी से दुःख का महत्त्व जाना जा सकता है। या यों कह लीजिए कि निर्वाण दुःख का अंत है। बौद्ध-मत ने तो उपनिषद् की 'अनुभव'-अवस्था से भी इनकार कर दिया है। निर्वाण का समझना कितना कठिन है, यह तो आपको पोसिन के कथन ही से प्रकट हो जायगा। पोसिन ने लिखा है—"Buddhist dialectic has a four branched dilemma: Nirvana is existence or non-existence, or neither existence nor non-existence. We are helpless." जिसका आशय यह है कि बौद्ध-मत के अनुसार निर्वाण या तो कोई स्थिति है, या है ही नहीं, या न तो है, और न है ही नहीं।

वास्तव में निर्वाण का अर्थ है—'शांति-स्थिति अथवा मोह, द्वेष तथा कुवासनाओं का अंत'। पाली भाषा में निर्वाण के अर्थ 'पवित्रता' के हैं। संस्कृत में इसका अर्थ है 'मृत्यु के उपरांत एक पवित्र जीव की स्थिति'। डॉक्टर दालके ने इसका अर्थ 'इच्छा से पूर्ण स्वतंत्रता' बतलाया है। सब मतों को ध्यान में रखते हुए निर्वाण या तो प्रलय है, या उत्तम स्थिति या अनश्वरता। जहाँ तक पुस्तकों के अवलोकन से पता चला है, निर्वाण का आशय प्रलय ही से है। मनुष्य की मृत्यु के बाद केवल कर्म ही बच रहता है। यदि अच्छा कर्म किया

जाय, तो शेष कुछ नहीं रह जाता ; परंतु यह मत महात्मा बुद्ध के कथनानुसार ठीक नहीं जँचता। इसलिये प्रोफ़ेसर राईस डेविड्स ने इसका अर्थ यों बतलाया है—

"It is a salvation from the sorrows of life, which has to be reached here on earth in a changed state of mind."

अर्थात् निर्वाण दुःखमय जीवन से मोक्ष पाना है, जो स्वच्छ मन से इस संसार में ही प्राप्त हो सकता है। परंतु यदि निर्वाण एक स्वर्ग-तुल्य स्थिति है, तो इसका पाना अत्यंत कठिन होगा, क्योंकि ज्यों ही कोई मनुष्य इसके पाने की चेष्टा करेगा, उसे खो बैठेगा। इच्छा ही दुःख की जड़ है। यदि निर्वाण की भी इच्छा की जायगी, तो सिवा दुःख के सुख प्राप्त नहीं हो सकता, परंतु यदि निर्वाण प्रलय अवस्था है, तो कोई भी इसे पाने की चेष्टा न करेगा। इस कारण दोनो अवस्थाओं में 'पवित्रता' असंभव है। निर्वाण के बारे में केवल इतना ही कहना ठीक होगा—"let that remain unsettled that has not been settled by Sakyamuni". अर्थात् जिस विषय को शाक्य मुनि ने निर्णय नहीं किया, उसका निर्णय न होना ही अच्छा है।

सवाल !

[श्रीयुत 'वीरात्मा']

कितना है उल्लास हृदय में, कितनी यह अभिलाषा—
समझ सकूँ मैं कभी चित्रपट ! तेरी नीरव भाषा !
जीवन का है मोल तुम्हारे हाथों में, बेदाम !
क्या कहकर तुमसे बोलूँ मैं हे मेरी 'बेनाम' !

× × ×

'साक़ी-पैमाने' की दुनिया, मुझसे कितनी दूर—
दिखलाने को आओगी तुम, थी आशा भरपूर।
इसीलिये आँखों में आँसू, दिल में दर्द भरा था !
उस पथ के ये संबल लेकर कब से आह ! खड़ा था !

× × ×

पर न चाप सुन पड़ी—प्रतीक्षा अब खलती जाती है।
जा होती क्या दवा मर्ज़ की, वही मर्ज़ बनती है ?

तुम ?

[श्रीराजेश्वरप्रसादसिंहजी]

(१)

मेरी निर्जन पर्ण - कुटी में
उस दिन अनायास आकर ;
कण-कण में उन्माद जगाया—
वीणा में मृदु स्वर भरकर !

(२)

मन - मंदिर में वीणा मेरी
मृतक - सदृश थी पड़ी हुई ;
उदासीनता के उर में हो
मानो तृष्णा गड़ी हुई !

(३)

जगा दिया कोमल उँगली से
छूकर तुमने तारों को ;
लगी कूकने आतुर वीणा—
तोड़ स्वप्न के हारों को !

(४)

उद्वेलित हो पर्ण - कुटी तब
भरने लगी मधुर उल्लास ;
मानो खींच रही हो विह्वल
मूक - वेदना ठंढी साँस !

(५)

मंत्र - मुग्ध - आंदोलित, तन्मय,
चित्र - लिखित - सा होकर मौन ;
सुनता सोच रहा था बैठा—
क्यों आए यों, हो तुम कौन ?

(६)

सारहीन, निर्मूल, स्वप्नवत् ,
लगता था सब जग का खेल ;
सब कुछ मिथ्या, एक सत्य था—
तुम, तब गान-व्यथा-सुख-मेल !

(७)

उसी गान - सरिता - दर्पण में
सकल विश्व की छाया थी ;
स्वर्ण सत्य की स्वर - लहरी में
नृत्य कर रही माया थी !

(८)

सिहर उठा विह्वल मन-मंदिर,
सहसा रुका सुखद संगीत ;
तब आँखें मैंने भी खोलीं—
होकर के स्तंभित, भयभीत ।

(९)

मैं था, पर्ण - कुटी थी मेरी,
वीणा भी थी पड़ी वहीं ;
तप्त, विकंपित तारों में थीं
प्रतिध्वनियाँ भी गूँज रहीं ।

(१०)

लगीं खोजने प्यासी आँखें
तुमको, प्रियवर, यहाँ - वहाँ,
किंतु तुम्हारी दिव्य मूर्ति की
छाया भी थी वहाँ कहाँ !

(११)

कला - निपुण स्मृति ने आ करके
सुंदर चित्र बनाया ;
उसी चित्र के नख-शिख में
आ बसी तुम्हारी छाया !

(१२)

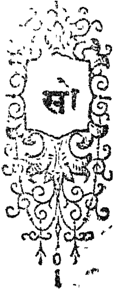
मेरे हृदय - पटल पर वह जो
चित्र तुम्हारा अंकित है—
उसकी अक्षय रूप - राशि पर
सब कुछ मेरा अर्पित है !

(१३)

उसी चित्र की छाया में मैं
'निश' - दिन तन्मय रहता हूँ—
उसके करुण प्रणय - सुख-में-मैं
जीवन - पीड़ा सहता हूँ !

थैंक्स का बोझ

[श्रीयुत हरिश्चंद्र वर्मा विशारद]



मवार का दिन था। प्रातःकाल सात बजे के समीप मैं मकान की बैठक में बैठा दैनिक 'प्रताप' देख रहा था कि हैट-सूटधारी एक ट्वेनटि-एथ सेंचुरी के जेंटिलमैन ने प्रवेश किया। अवस्था तो होगी उनकी तेईस-चौबीस वर्ष की, परंतु दुबले-पतले, बाँस-सा शरीर, हड्डी निकले सुते हुए क्लीनशेव चेहरे और बालों की बनावट देखने से ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह अपने को षोड़शवर्षीय दिखाने का प्रयत्न कर रहे हों। और, सफल भी हो जाते वह अपने इस कौशल में, यदि मूछों के स्थान की कालौंच और शरीर की लंबाई भी उनके वश की बात होती।

निकट आते ही हाथ उठाकर गुडमॉर्निंग कहने जा ही रहे थे कि कुछ विचारकर (कदाचित् मेरे खद्दर के वस्त्रों को देखकर) रुक गए, फिर जल्दी से दोनो हाथ जोड़कर प्रणाम किया। यथोचित उत्तर देते हुए मैंने निकट पड़ी कुर्सी की ओर संकेत किया। कुर्सी को आगे खींचकर बैठते हुए वह बोले—"यद्यपि आज से पूर्व कभी मेरा आपका परिचय नहीं हुआ है, फिर भी आज एक अत्यंत आवश्यक कार्य के कारण आपको कष्ट देने आया हूँ।"

"कष्ट की क्या बात है, कहिए, क्या काम है?" पत्र को मेज पर रखते हुए मैंने कहा—

"बाबू राजबहादुरसिंहजी से तो आपकी मित्रता है न?"

"हाँ, साधारण जान-पहचान है।"

"वह मेरे भी मित्र हैं, और उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है। मेरे ऊपर मेल में बिना टिकट चलने का केस क़ायम हो गया है। उसी के लिये आपके पास आया हूँ।"

यह वाक्य कहकर उन आगंतुक महोदय ने ऐसा भाव धारण कर लिया, जिसमें मैं यह अनुमान न लगा सकूँ कि वह सदा ही रेल में बिना टिकट यात्रा करने को फ़ैशन समझते हैं।

मैंने पूछा—"आपका शुभ नाम?"

"महेंद्रकुमार चेतो।" उन्होंने टाई की नाट को हाथ से दबाते हुए उत्तर दिया।

"मैं इस विषय में आपकी क्या सहायता कर सकता हूँ?"

"राजबहादुरसिंहजी ने ही मुझे बताया है कि रेलवे-मजिस्ट्रेट साहब आपके मित्र हैं, और यदि आप चाहें, तो उनसे बहुत कुछ करा सकते हैं।"

"परंतु वह नियम-विरुद्ध कार्य करने ही क्यों लगे? फिर मेरा उनसे यह कहना भी तो असत्य को आश्रय देना होगा।"

"नहीं-नहीं, मेरा यह इंटेंशन (इच्छा) नहीं है कि आप उनसे इस मामले को दबवा दें, वरन् आप केवल यह करा दें, जिससे वह जो कम-से-कम दंड हो, वही दें।"

यह वाक्य उन्होंने इतने गिड़गिड़ाए स्वर में कहा था, जितना मुझे विश्वास ही न था कि कोई आजकल का जेंटिलमैन कर सकेगा। मैं साफ़-साफ़ मना न कर सका। फिर इतनी सिफ़ारिश कर देने में कुछ हानि भी न थी, अतः मैंने कहा—"हाँ, इतना मैं कर सकता हूँ। कल-परसों जब वह मुझे मिलेंगे, मैं उनसे कह दूँगा।"

"परंतु केस तो आज ही है। अभी चले चलिए ज़रा।"

"अभी तो मैं न चल सकूँगा। आज मुझे एक आवश्यक कार्य है। ९ बजे एक महाशय मेरा कुछ रुपया लौटाने आएँगे। वह कल ही कलकत्ता जानेवाले हैं, इस कारण यदि मैं आज ही उनसे न मिला, तो रुपया रह जायगा।"

अपनी कलाई पर बँधी घड़ी की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—"परंतु अभी तो सवा सात ही बजे हैं, अधिक-से-अधिक आध घंटा लगेगा। ज़रा चले चलिए, बड़ी कृपा होगी।"

उनके भावों को देखकर मुझे विश्वास हो गया कि सीधी तरह टिकट का मूल्य दे देने के स्थान पर आपने अवश्य ही रेलवालों से झगड़ा किया है, और फल-स्वरूप भारी दंड मिलने की संभावना है। अतः पहले तो मैंने सोचा, अच्छा है, ज़रा तबियत दुरुस्त हो जायगी, परंतु फिर उनकी मुद्रा और स्थिति का विचारकर मैं उनके साथ जाने को तैयार हो गया।

मैंने कहा—"यद्यपि इस समय मुझे जाना तो नहीं चाहिए, परंतु...ख़ैर, चलिए।" कृतज्ञता-पूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देख वह उठ खड़े हुए।

❀ ❀ ❀

मजिस्ट्रेट साहब ने जैसे ही मुझे आते देखा, कुर्सी से उठ खड़े हुए, और नमस्ते कर कुर्सी की ओर संकेत कर बोले—"आइए-आइए, बैठिए, कहिए, कैसे भूल पड़े ?"

"ऐसे ही ज़रा चला आया।"

मजिस्ट्रेट साहब के पास इस समय और भी दो-तीन व्यक्ति बैठे किसी विषय पर बहस-सी कर रहे थे। उनकी ओर देखकर मजिस्ट्रेट साहब बोले—"तनिक देर बैठिए, मैं इन्हें बिदा कर दूँ।"

"हाँ-हाँ, कर दीजिए। फिर सुबीते से बातचीत हो।" मुझे कहना पड़ा।

उनको बिदा करने में मजिस्ट्रेट साहब को आध घंटा से भी अधिक समय लग गया। इसके उपरांत एक दूसरे की कुशल-क्षेम की चर्चा चली। अंत में महेंद्रकुमार की ओर देखकर उन्होंने पूछा—"आपका परिचय ?"

मैंने संक्षेप में उनका परिचय देकर कहा—"आपके यहाँ इनका एक मुक़द्दमा है, उसी के लिये मैं आया हूँ।"

"कैसा मुक़द्दमा है ?"

मैं—"बिना टिकट चलने के अपराध में।"

मजि०—"अच्छा, मैं समझा। आज ही तो है न ?"

महेंद्र०—"जी हाँ।"

मजि०—"आप-जैसे जेंटिलमैन को कम-से-कम ऐसा व्यवहार न करना चाहिए था। आपने तो जैसे यही समझ लिया था कि रेल आपके बाप ही की है।"

महेंद्रकुमार का मस्तक झुक गया। वह कुछ न बोले। मैंने कहा—"खैर, जो होना था, वह तो हो ही गया, अब आप कृपा करके जो कम-से-कम दंड हो, वही दें।"

मजिस्ट्रेट साहब हँसे—"खैर, यह तो कोई बात नहीं है, हो जायगा।"

फिर कुछ क्षण सन्नाटा रहा। उसी समय दीवार पर टँगी क्लाक ने टन-टन कर नौ बजा दिए।

"अच्छा, अब चले। जरा इनका ध्यान रखना।" कहकर मैं उठ खड़ा हुआ।

"अच्छी बात है, नमस्ते।"

हम लोग बाहर चले आए। बाहर आकर मैंने कहा—'देखा आपने, नौ बज गए, मेरी ५०)-६०) रुपए की हानि हो गई ! वह बेचारे आए होंगे, और चले गए होंगे।"

महेंद्रकुमार ने कुछ उत्तर न दिया। कदाचित् वह अपनी चिंता में लीन थे।

अपनी गली के पास आकर जब मैं उनसे विदा होने लगा, तो उन्होंने कहा—"आपने मुझ पर बड़ी कृपा की, यदि आज दिन में भी मेरे साथ चले चलते, तो मैं बड़ा थैंकफ़ुल होता। आपके कारण मुझे बड़ी हेल्प (सहायता) मिलेगी।"

विवशता दिखाकर मैंने कहा—"क्षमा कीजिए। यह मुझसे न हो सकेगा, मुझे अभी घर जाना है।"

करुणा-पूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए उन्होंने मेरे हाथ पकड़ लिए, और अत्यंत दीनता-पूर्वक बोले—"इतना तो आपको करना ही होगा। मैं आपका उपकार जन्म-भर नहीं भूल सकता।"

मैं सोचने लगा, क्या उत्तर दूँ ?

वह पुनः बोले—"आप घर हो आइए। खाना खा-पीकर चले चलिएगा। देखिए, मैं बड़ी आशा से आपके पास आया हूँ।"

"अच्छी बात है।" कहकर मैंने उनसे पीछा छुड़ाया। घर पहुँचने पर ज्ञात हुआ, एक महाशय आए थे, और दस-पंद्रह मिनट प्रतीक्षा कर चले गए। कह गए थे कि आज ही तीसरे पहर कलकत्ता जा रहा हूँ।

मुझे रुपए लेने आवश्यक थे। अतः सोचा, कचहरी न जाकर सीधे उनके घर जाऊँगा, और रुपए ले आऊँगा। इस समय उनसे न मिलने का मुझे बड़ा खेद हो रहा था।

❀ ❀ ❀

भोजन करके उठा ही था कि द्वार पर आवाज लगी। कुल्लाकर बाहर पहुँचा, तो

देखा, महेंद्रकुमार खड़े हैं। देखते ही बोले—"मैंने सोचा, लाओ, इधर ही से चलकर आपको भी लेता चलूँ।"

मैंने विवशता-पूर्वक कहा—"भाई! इस समय तो मैं न चल सकूँगा। वह महाशय आज ही तीसरे पहर कलकत्ता जा रहे हैं, इसलिये अभी उनके पास से जाकर रुपए लाना आवश्यक हैं।"

गहरी उदासीनता दिखाकर वह बोले—"देखिए, अब तो आपको चलना ही होगा, आप वचन दे चुके हैं।"

"क्या करूँ, विवश हूँ।" मैंने कहा।

"नहीं-नहीं, आपको चलना तो अब पड़ेगा ही। केस जल्दी ही हो जायगा, इसके बाद आप जा सकते हैं। अभी तो बहुत समय है। कलकत्तावाली ट्रेन साढ़े चार बजे छूटती है।"

अनेक बार कहने-सुनने पर भी वह न माने। मनुष्य अपने स्वार्थ के लिये इतना हठ कर सकता है, इसका पता मुझे आज ही चला। अंत में मुझे उनके साथ जाना ही पड़ा।

दस बज चले थे। ताँगा कर जल्दी कचहरी पहुँचे। ताँगे से उतरते ही मनीबेग खोलते हुए उन्होंने ताँगेवाले से पूछा—"बाक़ी है जी?"

"नहीं बाबूजी, अभी तो जोता है।"

बाबूजी अब लगे बग़लें झाँकने। गुनगुनाकर मन-ही-मन कहने लगे—"पैसे तो हैं नहीं, रुपया है।"

जेब से पैसे निकालते हुए मैंने कहा—"पैसे मेरे पास हैं, मैं दिए देता हूँ।"

मैंने तीन आने ताँगेवाले को दे दिए। इसके बाद कचहरी में गए। सौभाग्य से उन्हीं का नंबर पहले आया। डरते-डरते गए, मुक़द्दमा पेश हुआ, और फ़ैसला भी हो गया जल्दी ही। मजिस्ट्रेट ने एक नवयुवक का प्रथम अपराध मानकर, भविष्य के लिये चेतावनी देकर ही केस समाप्त कर दिया।

हँसते-हँसते महेंद्रकुमार बाहर आए। अब उनमें न तो थी वह पहले की-सी चिंता, और न थी वह दीनता। मुख पर पुनः रोब छा गया था। मुस्किराकर बोले—"हो गया भाई! धन्य भाग्य!! बड़ी कृपा की आपने, अन्यथा दो-तीन महीने की तो नपती ही।"

मुझे अब अपने रुपयों की चिंता सवार थी, अतएव मैंने कहा—"अच्छा भाई! अब आज्ञा दो। मुझे तुरंत अपने रुपयों के लिये जाना है।"

बड़े तपाक से शेक करने के लिये हाथ बढ़ाते हुए वह बोले—"ऑल राईट (बहुत अच्छा), थैंक्स।"

बस, मैं अपनी राह चला गया, वह अपनी।

❁ ❁ ❁

अब भी यदि वह यदा-कदा बाज़ार आदि में मिल जाते हैं, तो बात करना तो दूर, बड़ी तेज़ी से दृष्टि बचाकर इस प्रकार बेपरवाही से ऐंठते

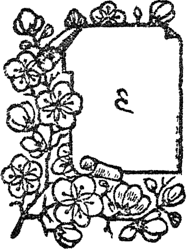
हुए निकल जाते हैं, जैसे उन्होंने कभी मुझे देखा ही नहीं है, और न जानते ही हैं।

और तो नहीं, मेरी भी इतनी इच्छा अवश्य है कि किसी दिन उन्हें रोककर कहूँ—

"भाई साहब! आप अपने थैंक्स को तो वापस ले लीजिए। उसके बोझ से तो मैं दबा जा रहा हूँ।"

नेपोलियन के अंतिम दिन

[श्रीयुत हरिश्चंद्र बी० ए०]



अगस्त १८१५ की बात है। नार्थंबरलैंड-नामक जहाज़ नौ अन्य जहाज़ों के साथ सेंटहेलेना के लिये प्रस्थानित होनेवाला था। जहाज़ों के चलते ही नेपोलियन नार्थंबरलैंड के डेक पर खड़ा होकर अश्रु-पूर्ण नेत्रों से अपने प्यारे फ्रांस की ओर देखने लगा, जिसे वह सदा के लिये छोड़ रहा था। जहाज़ों पर बैठे हुए समस्त फ्रांसीसी एक स्वर से चिल्ला उठे—"फ्रांस-फ्रांस !" सम्राट् नेपोलियन ने पुनः एक बार चुपचाप फ्रांस की पवित्र मेदिनी पर दृष्टि डाली, जिस पर उसने इतने दिनों तक शासन किया था। फिर उसने अपना टोप उतारकर फ्रांस की सुदूरवर्ती रमणीक पहाड़ियों को अभिवादन करते हुए कातर स्वर से कहा—"फ्रांस ! ऐ वीरों के क्रीड़ांगण ! मैं तुझे सादर प्रणाम करता हूँ।" अँगरेज़ अफ़सरों के हृदय भी पिघल गए, और उन्होंने अपने टोप उतारकर अपने यशस्वी बंदी की अंतर्वेदना का सम्मान किया।

नार्थंबरलैंड पर नेपोलियन का अधिकांश समय पढ़ने-लिखने में व्यतीत होता था। वह बड़ी गंभीरता के साथ अपने गत युद्धों का वृत्तांत अपने फ्रांसीसी मित्रों से कहा करता था। कभी-कभी वह अकेला डेक पर घंटों घूमा करता था, और अपने जीवन की अतीत स्मृतियों को स्मरण करते-करते ध्यानस्थ हो जाता था। अँगरेज़ अफ़सर जब सम्राट् के विगत ऐश्वर्य तथा पराक्रम की बात सोचते, तो उनके मस्तक श्रद्धा से उसके चरणों में झुक जाते थे।

दस सप्ताह के पश्चात् जहाज़ सेंटहेलेना पहुँचे। नेपोलियन ने डेक पर से ही इस स्थान की भयंकरता का अनुभव किया। योरप से ६ हज़ार मील की दूरी पर स्थित इस टापू के चारो ओर काली-काली, ऊँची पहाड़ियाँ देख पड़ती थीं। घास-फूल का कहीं पता न था। पहाड़ियों के दर्रों में बड़ी-बड़ी तोपें रक्खी हुई थीं। उस समय इस टापू की जन-संख्या पाँच सौ थी—दो सौ सैनिक और तीन सौ ग़ुलाम। जल-वायु इतनी दूषित थी कि किसी भी व्यक्ति की अवस्था पचास वर्ष से ऊपर न पहुँचने पाती थी। ब्रिटिश सरकार की आज्ञा थी कि बोनापार्ट को जहाज़ पर से उस समय तक न उतारा जाय, जब तक बंदीगृह का प्रबंध पूरा न हो जाय, एडमिरल काकबर्न ने इस अमानुषिक आज्ञा का पालन करना आवश्यक न समझा, और उसने सम्राट् तथा उसके साथियों को सूचित कर दिया कि वे कल ही जहाज़ से उतारे जायँगे। १६ ऑक्टोबर को उन्हें समुद्र-तट पर ले जाने का प्रबंध किया गया। संध्या हो चुकी थी। सूर्य रजनी के अंचल में छिपने जा रहा था। सर्वत्र शांति का साम्राज्य था। इसी समय नेपोलियन अपने फ्रांसीसी सहचरों के साथ जन-शून्य पर्वत-श्रेणियों के बीच से जेम्सटाउन की ओर ले जाया जा रहा था। इसी छोटे-से ग्राम में सम्राट् के लिये एक अत्यंत साधारण कमरे का प्रबंध किया गया था। सशस्त्र सैनिक इसे बड़ी सतर्कता से घेरे हुए थे। जेम्सटाउन के निवासी बंदीगृह की ओर इँगलैंड के उस शाही क़ैदी को देखने के लिये टूटे पड़ रहे थे, जिसने एक दिन समस्त योरप को भय से प्रकंपित कर दिया था। सम्राट् की आकृति से उद्विग्नता प्रतिबिंबित होती थी। उसने शीघ्रता से कमरे का प्रकाश बुझा दिया, और चुपचाप लेट गया। सेंटहेलेना में नेपोलियन की प्रथम रात्रि इस प्रकार व्यतीत हुई।

जेम्सटाउन से तीन मील की दूरी पर निर्जन चट्टानों के बीच में एक घाटी थी। इसी तृण-शून्य घाटी

में लांगउड-नामक स्थान पर एक जीर्ण-शीर्ण झोपड़ी स्थित थी। यही झोपड़ी सम्राट् के लिये तजवीज़ की गई थी। दूसरे दिन प्रातःकाल नेपोलियन एडमिरल काकबर्न के साथ इसे देखने के लिये प्रस्थानित हुआ। सम्राट् मौन था। उसने चुपचाप अपने समाधि-स्थल को देखा। झोपड़ी इतनी अधिक टूटी-फूटी थी कि उसके जीर्णोद्धार के लिये पर्याप्त समय की आवश्यकता थी।

जेम्सटाउन की ओर लौटते समय नेपोलियन की आकृति पर उदासीनता की गहरी छाप थी। वह यह सोचता ही जा रहा था कि जेम्सटाउन के उस भयानक कमरे में वह दूसरी रात्रि किस प्रकार काटेगा कि उसे ब्रायर्स-नामक स्थान में स्थित एक भवन दिखाई दिया। इस भवन के स्वामी मि० बालकांब एक बहुत ही सज्जन व्यक्ति थे। सम्राट् की प्रार्थना पर उन्होंने सहर्ष उसे अपने यहाँ रहने की अनुमति दे दी। उन्होंने नेपोलियन के लिये एक कमरा रिक्त कर दिया, पर सम्राट् ने उन्हें कष्ट देना उचित न समझा, और पास में बने हुए एक प्रकोष्ठ में रहने लगा। प्रकोष्ठ का ऊपरी भाग सम्राट् के मित्र लेसकेसस को मिल गया। यह व्यक्ति नेपोलियन पर असीम श्रद्धा रखता था। एक दिन की बात है—अर्द्धरात्रि का समय था, नेपोलियन प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न था। प्रकोष्ठ के द्वार कपाटों से शून्य थे, और सन-सन प्रवाहित वायु के शीतल थपेड़े सम्राट् के शरीर में लग रहे थे। लेसकेसस ने चुपचाप आकर यह हृदय-विदारक दृश्य देखा। वह सम्राट् के शरीर की रक्षा करने के लिये व्यग्र हो उठा। वह शीघ्र ही अपना लबादा पहनकर द्वार को छेंक-कर लेट गया। लेसकेसस ने सम्राट् की दशा का मर्मस्पर्शी चित्र इस प्रकार खींचा है—

"सम्राट् नेपोलियन, जिसकी शक्ति का कुछ ही काल पूर्व वारापार न था, जिसने अपने अतुल पराक्रम से योरप के बड़े-बड़े राजाओं को सिंहासन से च्युत तथा सिंहासनासीन किया, जिसके स्मरण-मात्र से सारा योरप थर्रा उठता था—वही सम्राट् नेपोलियन आज किंकर से भी दीन है। उसे भोजन इतना ख़राब दिया जाता है कि छूने से ही घृणा लगती है। जल की कमी के कारण सम्राट् नियमित रूप से स्नान नहीं कर सकता, जो उसके स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यंत आवश्यक है। उसके मित्र तथा भृत्य उससे दो मील की दूरी पर रक्खे गए हैं, और वे उसके पास केवल सैनिकों की निगरानी में ही आ-जा सकते हैं।"

एक दिन नेपोलियन अपने प्रकोष्ठ में बैठा हुआ था। उसके साथी उसके पास बैठे हुए अपनी-अपनी दुःख-गाथा कह रहे थे। सुनते-सुनते सम्राट् व्याकुल हो गया। वह कहने लगा—

"अभी हमें न-जाने कितने कष्ट और दिए जायँगे। अन्याय के साथ-ही-साथ हमारे साथ गर्हित व्यवहार करके वे अहर्निश हमारा अनिष्टोत्पादन किया करते हैं। इस प्रकार घुला-घुलाकर मारने से क्या लाभ? यदि उन्हें मेरी अपमृत्यु ही अभीष्ट थी, तो तुरंत ही मेरा अभिसर्जन क्यों नहीं कर डाला? मुझे आश्चर्य है कि योरप के अधिपति मेरे रूप में राज-सत्ता का ऐसा अपमान कैसे देख रहे हैं। क्या वे यह नहीं समझते कि वे सेंटहेलेना में अपने हाथों से ही अपना सर्वनाश कर रहे हैं? मैंने उनकी राजधानियों में विजेता के रूप में प्रवेश किया, और यदि मैंने भी उनके प्रति ऐसा ही व्यवहार किया होता, तो उनकी आज क्या दशा होती? क्या वे समझते हैं कि प्रवह राष्ट्रों के विचारशील व्यक्ति उनके आचरण से संतुष्ट हैं! आप लोग अपनी कष्ट-गाथा क्रुद्ध योरप के कानों में अवश्य पहुँचाएँ। मैं ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि यह मेरी मर्यादा तथा मेरे स्वाभिमान के विरुद्ध है। मैं शासन करना जानता हूँ, विनय करना नहीं।"

नेपोलियन के प्रति घृणित व्यवहार दिन-प्रति-दिन चरम सीमा के निकट पहुँचता जाता था। उस पर बहुत कड़ी निगरानी रक्खी जाती थी, और

कोई दिन ऐसा न जाता था कि नियंत्रण-संबंधी एक-न-एक नियम न निकाला जाय। ब्रिटिश सरकार को रात-दिन यह भय लगा रहता था कि कहीं नेपोलियन, जो एक हज़ार मील से भी अधिक दूरी पर नज़र-बंद था, भाग न जाय! सशस्त्र सैनिक उसके छोटे-से प्रकोष्ठ को अहर्निश घेरे रहते थे। समुद्र-तट पर भी जंगी जहाज़ घूमा करते थे। सेंटहेलेना में बंद केवल एक बंदी के भय से योरप के समस्त सिंहासन हिल रहे थे! ऐसी स्थिति में सम्राट् का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। लेसकेसस प्रायः उससे टहलने के लिये कहा करता था, पर सम्राट् उसे यही उत्तर देता था—

"जहाँ मैं जाता हूँ, एक अँगरेज़ अफ़सर मेरी निगरानी के लिये मेरे आगे चलता है। उसे देखते ही मुझे अपनी पराधीनता का स्मरण आ जाता है, और इससे मुझे अपरिच्छिन्न मानसिक वेदना होती है। ऐसी अवस्था में टहलने से लाभ की अपेक्षा हानि की ही अधिक संभावना है।"

मि० बालकांब की वाटिका में एक नीगरो गुलाम काम करता था। सम्राट् उसके जीवन-वृत्त को सुनने के लिये सदा उत्सुक रहता था। वह उसे अपने प्रकोष्ठ में बुलाकर प्रायः नित्य ही उससे वार्तालाप किया करता था। जब वह अपने जीवन की करुण-कथा कहने लगता, तो सम्राट् के नेत्र आर्द्र हो जाते और उसके अंतस्तल से एक दीर्घ निःश्वास निकल पड़ती थी। एक दिन नेपोलियन इसी वृद्ध गुलाम की दुःख-वार्ता सुन रहा था। उसके साथी भी उसके पास बैठे हुए थे। उनको संबोधित करके वह कहने लगा—

"इस बेचारे को सभी सुख प्राप्त थे। इसकी स्त्री थी और छोटे-छोटे बच्चे थे। अँगरेज़ माँझियों ने इन सब बातों का विचार न किया, और इसे मलय-द्वीप से पकड़ लाकर दासत्व की शृंखला में जकड़ दिया।"

फिर सम्राट् ने लेसकेसस की ओर देखकर कहा—

"तुम्हारी आकृति कह रही है कि केवल यह वृद्ध गुलाम ही यहाँ ऐसा उदाहरण नहीं है; पर प्यारे लेसकेसस, यह स्मरण रक्खो कि हमारी स्थिति में अभूतपूर्व आकर्षण है। संसार की दृष्टि हमारे ऊपर है। विश्व की असंख्य आत्माएँ अपने करुण-क्रंदन द्वारा हमारा स्वागत कर रही हैं। इसके अतिरिक्त यदि मैं केवल अपने ही ऊपर विचार करूँ, तो मुझे तो प्रसन्न ही होना चाहिए; विपुल वैभव के आवरण से आवृत यदि मेरी मृत्यु राजसिंहासन पर हुई होती, तो मैं संसार के लिये एक पहेली होता, परंतु अब संसार मुझे मेरे वास्तविक रूप में देख सकेगा। विपत्तियाँ कीर्ति-शून्य नहीं होतीं; ये दुर्दिन मेरे जीवन के पूरक हैं।"

१० दिसंबर, १८१५ को सम्राट् लांगउड की झोपड़ी में लाया गया। लेसकेसस उसे छोड़कर जेम्स-टाउन नहीं जाना चाहता था। उसने नम्रता-पूर्वक सम्राट् की झोपड़ी के पास टेंट में रहने की अनुमति माँगी। आज्ञा मिल जाने पर उसका हृदय हर्ष से पुलकित हो गया। अपने प्रति उसके प्रगाढ़ प्रेम को देखकर सम्राट् के नेत्रों में आनंदाश्रु झलकने लगे। नेपोलियन के अँगरेज़ चिकित्सक डॉ० ओमेरा के लिये भी समीप ही एक दूसरे टेंट का प्रबंध कर दिया गया।

लांगउड में सम्राट् तथा उसके साथियों की स्थिति और भी शोचनीय हो गई। भ्रमणार्थ जाते समय उन्हें सशस्त्र सैनिकों की पंक्तियों के बीच से चलना पड़ता था। निर्दिष्ट समय के पश्चात् वे बाहर नहीं निकल सकते थे। द्वीप के निवासियों से बात-चीत करना अपराध था। समुद्र-तट पर जाने की मनाही थी। सम्राट् के कमरे की खिड़कियों के सामने सदा कड़ा पहरा रहता था। नेपोलियन ने इस संकटापन्न स्थिति का जिस धैर्य और गंभीरता के साथ सामना किया, उसका वर्णन करना लेखनी का काम नहीं। उसके चरित्र की छटा जितनी सेंटहेलेना में देखने को मिलती है, उतनी अन्यत्र नहीं।

अँगरेज़ी मल्लाह सम्राट् की दुर्गति पर आँसू बहाते थे। उनके हृदय उसके प्रति श्रद्धा और प्रेम से परिपूर्ण थे। एक दिन एक मल्लाह ने प्रेमाश्रुओं की

वर्षा करते हुए लेसकेसस से कहा—"उस प्यारे व्यक्ति से कह दो कि हम लोग उसे प्रसन्न और सुखी देखने के लिये ईश्वर से प्रार्थना किया करते हैं।" यह कह-कर उसने एक जंगली फूलों का गुच्छा सम्राट् को भेंट किया। एक दूसरे दिन नेपोलियन अँगरेज़ी छावनी के पास से निकला। उसे देखते ही अपने विभिन्न कार्यों को छोड़कर अँगरेज़-सैनिकों ने एक क़तार में खड़े होकर उसका अभिवादन किया। सम्राट् प्रेम-विह्वल होकर बोला—"योरप का ऐसा कौन-सा सैनिक है, जिसके हृदय में मुझे देखते ही श्रद्धा और भक्ति के भाव जाग्रत् न हो जायँ!"

इँगलैंड में नेपोलियन पर अन्यान्य मिथ्या दोषा-रोपण किए जाते थे। इसी विषय की एक पुस्तक डॉ० ओमेरा के पास थी। सम्राट् ने इस पुस्तक में अपनी मा के ऊपर घृणित आक्षेप देखकर अवरुद्ध कंठ से कहा—"मा! ओह! तुम्हारा चरित्र कितना उज्ज्वल था! यदि कहीं तुमने यह पुस्तक पढ़ी होती, तो तुम्हारी क्या दशा हुई होती!" फिर अपनी लंपटता के वृत्तांत को देखकर उसने कहा—"जान पड़ता है, पुस्तक-रचयिता मुझे सभी बातों में प्रवीण बनाना चाहता था! मुझ पर भ्रष्टाचरण का दोष कदापि नहीं लगाया जा सकता। संसार जानता है, मेरी प्रवृत्ति लंपटता की ओर नहीं थी। मेरे कार्यों की भीड़ ने मुझे व्यभिचार की ओर बढ़ने ही न दिया होता।"

१८ जून आने पर नेपोलियन को वाटरलू की याद आ गई। हृदय की भीषण वेदना ने उसकी आकृति को आच्छादित कर लिया। उसने मर्मस्पर्शी यंत्रणा का अनुभव करते हुए धीमी आवाज़ से कहा—"रहस्यमय दिन! ग्रूशे! ने! वह दुर्भाग्य था अथवा विश्वासघात? अभागे फ्रांस!" यह कहते-कहते उसने अपने हाथों से अपनी आँखों को छिपा लिया। वह कुछ देर तक मौन रहा और पुनः कहने लगा—"इस अद्भुत युद्ध में एक सप्ताह के भीतर-ही-भीतर मैंने तीन बार फ्रांस की निश्चित विजय और तीन ही बार उसकी बागडोर को अपने हाथों से छिनते देखा। यदि एक देश-द्रोही ने षड्यंत्र न रचा होता, तो युद्ध के आरंभ ही में मैंने शत्रु की विजय-लालसा को सदा के लिये पृथ्वी के गर्भ में दफ़ना दिया होता।"

सर हडसन लो १७ एप्रिल को ही सेंटहेलेना का गवर्नर होकर आ गया था। इसकी अवर्णनीय क्रूरता ने नेपोलियन के हृदय से जीवन के मोह को पूर्ण रूप से निकाल दिया था। गवर्नर ने आते ही यह आज्ञा निकाली कि बोनापार्ट के साथियों को सेंटहेलेना छोड़ देना चाहिए। यदि वे ऐसा न करेंगे, तो उन्हें भी बोनापार्ट की तरह कठिन नियंत्रण में रहना पड़ेगा। सब साथियों ने इस आज्ञा-पत्र पर अपने-अपने हस्ताक्षर करके यह स्वीकार कर लिया कि वे सम्राट् के सुख-दुख के भागी बनेंगे। उन्होंने उस आज्ञा-पत्र पर बोनापार्ट काटकर नेपोलियन बना दिया। इस पर हडसन लो के रोष की सीमा न रही। उसने लिख भेजा कि आज्ञा-पत्र के शब्दों में तनिक भी परि-वर्तन नहीं किया जा सकता। डॉक्टर ओमेरा के यह कहने पर कि फ्रांसीसी उस आज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कदापि न करेंगे, जिसमें सम्राट् के स्थान पर बोनापार्ट लिखा होगा, सर हडसन लो ने हर्ष प्रकट करते हुए कहा—"यही तो मैं चाहता हूँ! हस्ताक्षर न करने पर उन्हें बोनापार्ट को अकेला छोड़कर योरप के लिये प्रस्था-नित होना पड़ेगा। मैं नहीं चाहता कि बोनापार्ट अपने साथियों के साथ रहकर यहाँ पर अपना जीवन सुख-पूर्वक व्यतीत करे।"

समस्त फ्रांसीसी नेपोलियन का निर्णय सुनने के लिये उसके कमरे में एकत्रित हुए। सम्राट् दृढ़ता के साथ कहने लगा—"यह अपमान सहनशीलता की सीमा के परे है। मुझे यहीं पर छोड़ जाइए। मैं यह कभी नहीं देख सकता कि आप लोग उस घृणित आज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करके अपने आत्म-सम्मान के भाव को ठेस पहुँचाएँ। मैं यहाँ पर अकेला रहूँगा। आप लोग योरप को लौट जाइए, और इस बात के साक्षी रहिए कि मैं किस प्रकार असमय

में ही अपनी समाधि की ओर घसीटा जा रहा हूँ।"

उसी दिन रात्रि को गवर्नर ने नेपोलियन के मित्रों का निर्णय माँगा। सम्राट् को अकेला छोड़कर जाने की बात सोचते ही उनकी आँखों में आँसू भर आए। उन्होंने उस अपमान-जनक प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए।

उनकी प्रीति को देखकर सम्राट् के नेत्र प्रेमाश्रुओं से भर गए। उसने गद्गद होकर कहा—"आप सबको मुझे छोड़ने का अच्छा बहाना मिल सकता था। दूसरे, मैंने भी जाने की सम्मति दे दी थी। आप लोग इस नरक-कुंड से निकलकर योरप जा सकते थे, जहाँ सब प्रकार के सुख प्राप्त होते।"

हडसन लो ने नेपोलियन को पीड़ित करने का एक दूसरा उपाय निकाला। उसने बिना कुछ कहे-सुने सम्राट् के प्यारे सहचर लेसकेसस को एक माह तक क़ैद रखकर योरप भेज दिया। सम्राट् को लेसकेसस का वियोग असह्य प्रतीत हुआ। उसके योरप भेजे जाने के पूर्व नेपोलियन ने उसे निम्नाशय का पत्र लिखा—

"मेरे प्यारे लेसकेसस, तुम्हारे बिछोह ने मुझे विक्षिप्त बना दिया है। तुम्हारी उपस्थिति मेरे लिये आवश्यक थी। जब मैं बीमार पड़ता था, तो तुम रात-रात-भर मेरे पास बैठे रहते थे। पर अब तुम शीघ्र ही योरप को चले जाओ। मुझे, यह सोचकर सांत्वना मिला करेगी कि तुम इस नरक से निकलकर एक स्वर्गीय स्थान में पहुँच गए हो। योरप पहुँचकर तुम यहाँ के दुखों को भूल जाना और यह विचार कर अपने हृदय को प्रसन्न किया करना कि मैं तुम्हें कितना प्रेम करता हूँ। यदि कभी तुम मेरी पत्नी और पुत्र को देखो, तो उन्हें हृदय से लगा लेना। दो वर्ष से मुझे उनकी कोई ख़बर नहीं मिली। कुछ महीनों से इस टापू में एक जर्मन-वनस्पति-वेत्ता ठहरा हुआ है। उसने उन्हें यहाँ आने से पूर्व देखा था। वह उनका हाल मुझसे कहना चाहता था, पर गवर्नर ने मना कर दिया! प्यारे लेसकेसस, ज़रा सोचो तो, मनुष्य कितना नीच हो सकता है! मुझ पर कैसे-कैसे अत्याचार किए जाते हैं, यह तुमसे छिपा नहीं है। पर लेसकेसस, भगवान् करुणानिधि हैं, और वह इन बीभत्स अत्याचारों को सहने के लिये मुझे अधिक दिन तक जीवित नहीं रक्खेंगे। तुम दुखी मत होना। ईश्वर तुम्हें सुखी रक्खे।

तुम्हारा प्रेमी—नेपोलियन।"

लेसकेसस के चले जाने के पश्चात् नेपोलियन की अवस्था बिगड़ती ही गई। वह प्रायः रुग्ण रहा करता था। वह न किसी से बोलता और न बाहर निकलता था। उसकी चिकित्सा का भी प्रबंध नहीं था। क्योंकि डॉक्टर ओमेरा, सम्राट् से सहानुभूति रखने के कारण, योरप भेज दिया गया था। सन् १८१९ में सरकार ने नेपोलियन के मित्रों की बात मान ली, और डॉक्टर ऐंटोमार्शी सम्राट् के चिकित्सक के रूप में सेंटहेलेना भेजा गया।

डॉक्टर यथासमय सेंटहेलेना पहुँच गया। उसने एक संदूक़ नेपोलियन के सम्मुख रख दी। इसमें पुस्तकें थीं, जो उसके मित्रों ने उसके लिये भेजी थीं। सम्राट् ने उस संदूक़ को बड़ी उत्सुकता से खोला। तत्क्षण उसकी दृष्टि अपने प्यारे पुत्र के फ़ोटो पर पड़ी। उसने पागल की तरह उसे अपने हृदय से चिपटा लिया। वह विह्वल होकर रो पड़ा। फिर वह बड़ी देर तक चुपचाप अपने प्यारे बेटे की आकृति की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखता रहा। इस मर्मस्पर्शी दृश्य को देखकर सैनिकों के हृदय पिघल गए। वे अपना-अपना काम छोड़कर सम्राट् की ओर देखने लगे। उनके नेत्र सहानुभूति के आँसुओं से सिक्त थे।

एक दिन डॉक्टर ऐंटोमार्शी नेपोलियन को देखने गया। वह प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न था। उसने उसके मस्तक को देखा—उस मस्तक को, जिस पर मेरिंगो, आस्टरलीट्ज़ प्रभृति सैकड़ों लड़ाइयों के विजय-टीके लगे हुए थे। डॉक्टर ने धीरे से सम्राट् को जगाया। उसने आँखें खोलीं, और कहने लगा—"आह! डॉक्टर, मुझे सोने दो। निद्रावस्था में ही मुझे सुख मिलता

है। यही समय होता है, जब मानवीय यंत्रणा, उद्वेग तथा चिंताएँ विलुप्त हो जाती हैं।" यह कहकर उसने करवट ली, और पुनः निद्रादेवी की गोद में विलीन हो गया। इस प्रकार नेपोलियन के बंदी-जीवन का पाँचवाँ वर्ष समाप्त हुआ।

सम्राट् के स्वास्थ्य की अवस्था अत्यंत शोचनीय थी। शारीरिक व्याधियाँ उसे निरंतर समाधि की ओर अग्रसर कर रही थीं। एक दिन उसे अपनी जन्म-भूमि कोर्सिका की याद आ गई। वह डॉक्टर ऐंटोमार्शी से कहने लगा—"आह! डॉक्टर, कोर्सिका की वह विशुद्ध वायु कहाँ है? कोर्सिका की संचित स्मृतियाँ आज भी मेरे हृदय में एक विचित्र प्रकार के आनंद का उद्रेक कर देती हैं। मुझे वे दिन याद हैं, जब मैं बस्ती के बाहर घूमता हुआ मीलों चला जाता था। डॉक्टर, कोर्सिका की पवित्र मेदिनी पर क्या मैं फिर कभी स्वच्छंदता-पूर्वक विचरण कर सकूँगा?" यह कहते-कहते सम्राट् के नेत्र सजल हो गए।

नेपोलियन इतना अशक्त हो गया था कि उसे उठना-बैठना भी कठिन प्रतीत होता था। वह शय्या का अभिन्न सहचर हो गया था। उसने एक दिन डॉ० ऐंटोमार्शी को देखकर कहा—"डॉक्टर, विश्राम में कितना सुख है। मेरे लिये शय्या स्वर्ग हो गई है। ओह! मुझमें कितना परिवर्तन हो गया है! मैं कितना अकर्मण्य हो गया हूँ! एक दिन था, जब मेरी कर्मशीलता की सीमा न थी, जब मेरा मस्तिष्क विश्राम से घृणा करता था; पर आज, आज मुझे नेत्रोन्मीलन में भी कष्ट होता है। एक समय था, जब मैं अकेला एक साथ पाँच-पाँच मंत्रियों को विभिन्न विषयों पर मज़मून बोला करता था; पर तब मैं नेपोलियन था, अब कुछ भी नहीं हूँ। मनुष्य को जीवित रहने की इच्छा तभी तक रहती है, जब तक उसे संसार में कोई आकर्षण दिखाई देता है। मेरे लिये विश्व शून्य है, इसीलिये संसार में रहने की इच्छा मेरे हृदय से सर्वथा लोप हो चुकी है।"

सर हडसन लो ने एक अँगरेज़ अफ़सर इसलिये नियुक्त किया था कि वह नित्य नेपोलियन को देखकर उसकी उपस्थिति की सूचना गवर्नर को दे। १७ मार्च १८२१ से नेपोलियन की बीमारी इतनी बढ़ चली थी कि उसके लिये कमरे से बाहर निकलना असंभव हो गया था। वह दिन-रात शय्या पर पड़ा रहता था। अँगरेज़ अफ़सर में इतनी बर्बरता न थी कि वह ज़बरदस्ती कमरे के भीतर प्रवेश करके मरणासन्न बंदी को अपनी उपस्थिति से मानसिक वेदना पहुँचाए। नेपोलियन की अब केवल यही एक इच्छा थी कि उसे शांति-पूर्वक मरने दिया जाय। हडसन लो क्रुद्ध सिंह की भाँति सशस्त्र सैनिकों के साथ सम्राट् के निवास-स्थान पर आ पहुँचा। उसने वहाँ पर नियुक्त अँगरेज़ अफ़सर को चेतावनी देते हुए कहा कि यदि वह कमरे के भीतर घुसकर बोनापार्ट की उपस्थिति की सूचना उसे न देगा, तो वह घोर दंड का भागी होगा। अफ़सर असमंजस में पड़ गया। उसे किंकर्तव्य-विमूढ़ देखकर नेपोलियन के एक साथी ने ऐसी युक्ति सोची, जिससे अफ़सर तो नेपोलियन को देख ले, पर सम्राट् उसे न देख सके। वह सामनेवाली खिड़की को खोलकर उसमें से यह दिखाने को झाँकने लगा कि वह बाहर कुछ देख रहा है। इस प्रकार अँगरेज़ अफ़सर ने बाहर से ही नेपोलियन को देखकर उसकी उपस्थिति की सूचना गवर्नर को दी। सर हडसन लो इससे संतुष्ट नहीं हुआ। उसने कहा कि यदि भविष्य में अँगरेज़ अफ़सर को भीतर न आने दिया जायगा, तो वह स्वयं सैनिकों-सहित अंदर घुस आवेगा। सम्राट् के साथियों के बहुत कहने-सुनने पर गवर्नर इस बात पर राज़ी हो गया कि अँगरेज़ अफ़सर के बजाय डॉ० आर्नाट नेपोलियन की उपस्थिति की सूचना दिया करेगा।

एक दिन डॉक्टर ऐंटोमार्शी ने नेपोलियन को उसकी बहन की मृत्यु का समाचार पढ़कर सुनाया। सम्राट् के अंतस्तल से एक दीर्घ निःश्वास निकल पड़ी।

उसने भीषण अंतर्वेदना का अनुभव करते हुए अपने हाथों से अपने मुख को छिपा लिया । थोड़ी देर के बाद वह अवरुद्ध कंठ से कहने लगा—"डॉक्टर, तुम देखते हो कि एलीज़ा ने मुझे मार्ग बता दिया है। अब मेरे परिवार में एलीज़ा का सर्व-प्रथम अनुगामी महान् नेपोलियन होगा, जो इस अवस्था में भी समस्त योरप को भय-त्रस्त रखता है।"

सम्राट् ने अपनी रुग्णता के कारण बीस दिन से दाढ़ी नहीं बनाई थी । डॉक्टर ऐंटोमार्शी ने उससे अनुरोध किया कि वह किसी चौरक से अपनी दाढ़ी बनवा ले । नेपोलियन गंभीरता से कहने लगा—"आज तक किसी ने मेरे मुख को नहीं छू पाया। मैं सदा अपने ही हाथ से दाढ़ी बनाया करता था। डॉक्टर, इस द्वीप-भर में मैं केवल तुम्हीं से अपनी दाढ़ी बनवा सकता हूँ।" डॉक्टर ऐंटोमार्शी के यह कहने पर कि वह अनभ्यस्त है, सम्राट् बहुत हिम्मत करके उठा, और उसने स्वयं अपनी दाढ़ी बनाई।

यमपुरी की पुकार नेपोलियन को स्पष्ट सुन पड़ती थी । वह अपनी सन्निकट मृत्यु की चर्चा आश्चर्य-जनक स्थिरता से किया करता था । २८ एप्रिल को सम्राट् अतिशय श्रांति-युक्त दिखाई पड़ता था, तथापि उसने शांति-पूर्वक अपने मित्रों से कहा—"मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरे मृत शव से मेरे हृदय को निकालकर तुम मेरी प्यारी मेरिया लुइसा के पास पार्मा में ले जाना। तुम उससे कहना कि इस हृदय ने उसे प्यार करना कभी नहीं छोड़ा। इस टापू पर मेरी अकाल मृत्यु का वृत्तांत उसे सुना देना। यदि मेरे शव को फ्रांस में ले जाने की आज्ञा न मिले, तो उसे कोर्सिका में दफ़नाना। यदि इसकी भी स्वीकृति न मिले, तो इसी द्वीप में मुझे निर्मल जल के उस स्रोत के पास समाधिस्थ करना, जिसका शीतल जल पीकर मैं अपने को परितुष्ट किया करता था। तुमने इस कुत्सित द्वीप में मुझे सुखी बनाने की हर प्रकार से चेष्टा की है, और मुझे विश्वास है कि तुम मुझे मेरी समाधि में भी न भूलोगे।"

४ मई की रात अत्यंत भयानक थी। घनघोर वर्षा हो रही थी। वायु का प्रचंड वेग वृक्षों को निर्मूल कर धराशायी कर रहा था। सारा द्वीप भैरव कोलाहल से प्रकंपित-सा जान पड़ता था। कहीं कुछ दिखाई न देता था। चारो ओर घोर अंधकार था, और सेंटहेलेना रौरव-नरक के सदृश विकराल प्रतीत होता था। सम्राट् को प्रकृति के इस तांडव-नृत्य का तनिक भी पता न था। वह शय्या पर पड़ा हुआ बेचैनी से करवटें बदल रहा था। उसके साथी उसकी असीम वेदना के इस हृदय-विदारक दृश्य को न देख सके। उनके यत्न से रोके हुए आँसू बह चले। यह ध्यान आते ही कि सम्राट् उन्हें छोड़कर अनाथ किए जा रहा है, वे बिलख-बिलखकर रोने लगे। वे उसके प्यारे मुख को जी-भरकर देखना चाहते थे, पर चक्षु-जल का अविरल प्रवाह उन्हें ऐसा न करने देता था। सम्राट् वेग से हाँप रहा था, और बीच-बीच में चिल्ला उठता था—"फ्रांस! आर्मी! जोसेफ़ीन!"

५ मई को सम्राट् तनिक भी आक्रांत नहीं देख पड़ता था। वह चुपचाप अपनी शय्या पर लेटा हुआ किसी गंभीर विचार में निमग्न था। वह शांत था, और उसका सुंदर मुख एक अभूतपूर्व आभा से आलोकित था। संध्या का समय था। छ बज चुके थे। इसी समय नेपोलियन की आत्मा अपना पार्थिव आवरण छोड़कर एक अज्ञात प्रदेश में प्रविष्ट हुई!

ब्रिटिश सरकार ने सम्राट् के शव को फ्रांस ले जाने की आज्ञा नहीं दी। योरप के शासक उसे उसकी समाधि में भी डरते थे। उसके हृदय को भी अलग करने की अनुमति नहीं दी गई। ८ मई का दिन अत्यंत सुहावना था। आकाश निर्मल था। समुद्र की भीनी-भीनी वायु धीरे-धीरे द्वीप पर बह रही थी। इसी दिन सम्राट् का मृत शव उसी शुभ्र स्रोत के समीप समाधिस्थ किया गया, जिसने न-जाने कितनी बार उसके संतप्त हृदय को अपने शीतल जल से शीतल किया था।

नेपोलियन मर चुका था, पर उसका यश-सौरभ भूमंडल के कोने-कोने को सुरभित कर रहा था।

उसे परलोक सिधारे १ वर्ष हो चुके थे, पर अब भी जब कभी फ्रांस-निवासी उसकी दुर्दशा की चर्चा करते, तो उनकी आँखों में आँसू भर आते थे। जुलाई सन् १८३० में फ्रांसीसी राष्ट्र ने तृतीय बार बोरबों-वंश को अपदस्थ कर दिया। इस घटना के बाद ही नेपोलियन की शव-प्राप्ति के लिये लोगों का जोश उमड़ पड़ा। फ्रांस की सरकार को प्रजा की इस अभिलाषा का स्वागत करना पड़ा। उसने ९ मई १८४० को ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना की कि सम्राट् नेपोलियन का समाधिस्थ शव फ्रांस को सौंप दिया जाय। इँगलैंड के पर-राष्ट्र-सचिव लॉर्ड पामर्स्टन ने फ्रांस की यह माँग स्वीकार करते हुए नेपोलियन को 'सम्राट्' स्वीकार कर लिया। १५ ऑक्टोबर को सम्राट् नेपोलियन की समाधि फ्रेंच तथा अँगरेज़ अफ़सरों की उपस्थिति में ठीक अर्द्ध-रात्रि को खोदी गई। सम्राट् को समाधि में सोते हुए १६ वर्ष हो चुके थे, तथापि उसकी आकृति अधिक विकृत न हुई थी। उसकी फ़ौजी पोशाक सहज ही में पहचानी जा सकती थी। इस दृश्य को देखकर बहुतों के कंठ अवरुद्ध हो गए। बहुत रो पड़े।

फ्रांस ने किस प्रेम से अपने बिछुड़े हुए अधिपति के शव को अपनी गोद में लिया, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सारा फ्रांस सम्राट् के प्रेम में पागल हो गया था। सीन नदी के किनारे असंख्य जन-समूह दिखाई पड़ता था। लोग योरप के दूर-दूर देशों से आकर इस अभूतपूर्व दृश्य को देखने के लिये उपस्थित थे। फ्रांस के वृद्ध सैनिक कभी रोते और कभी सम्राट् का नाम लेकर चिल्लाते थे। उन्हें वे दिन याद थे, जब वे उसके सेनापतित्व में शत्रुओं की बड़ी-बड़ी सेनाओं को परास्त करते थे। जहाज़ों के दिखाई पड़ते ही उपस्थित जन-समूह उनकी ओर तृषित नेत्रों से देखने लगा। इसी समय नेशनल गार्ड की विशाल तोपों ने मेघों की गगन-भेदी गड़गड़ाहट से भी भीषण नाद-द्वारा सम्राट् के शव-आगमन की सूचना दी। आज भगवान् भास्कर अपनी समस्त सुषमा के साथ निरभ्र व्योम में शोभित थे। सहसा असंख्य कंठ चिल्ला उठे—"यह आस्टर-लिट्ज़ का भानु है!"

सम्राट् विधिवत् संस्कार के पश्चात् सीन-नदी के समीप समाधिस्थ किया गया। अब वह बंदी के रूप में शत्रु की भूमि पर नहीं, प्रत्युत फ्रेंच सम्राट् के वेश में अपने प्यारे फ्रांस की पवित्र मेदिनी पर सो रहा था। क्या नेपोलियन स्वर्गलोक से अपनी अनश्वर कीर्ति के इस अश्रुतपूर्व दृश्य को देख रहा था?

निमोनिया

[कविराज डॉ० वीरसेन आयुर्वेद-शिरोमणि, प्रतिष्ठित स्नातक, 'विद्या'-संपादक डॉ० टी० आर० सोलंकी]



आज हम पाठकों को एक ऐसे रोग का परिचय देना चाहते हैं, जो अत्यंत प्राचीन होने पर भी नवीन रूप में एवं नवीन नाम से हमारे सम्मुख उपस्थित हो रहा है।

यद्यपि 'निमोनिया'-शब्द आंग्ल भाषा का है, तथापि इस रोग की प्राचीनता आर्य-वैद्यक-ग्रंथों से प्रमाणित होती है। हमारे प्राचीन आर्यवैद्यकशास्त्र में सान्निपातिक ज्वर के जो लक्षण निर्दिष्ट किए गए हैं, उनका इस 'निमोनिया'-रोग के लक्षणों से स्पष्ट सामंजस्य होने के कारण सान्निपातिक ज्वर में इसका अंतर्भाव स्वतः ही सिद्ध है। इस नवीन 'निमोनिया' नाम से आजकल की शिक्षित जनता तो भली भाँति परिचित ही है, परंतु अशिक्षित जनता में भी इसके नाम का पर्याप्त प्रचार है। प्रतिवर्ष शीत एवं वसंत में अनेक मनुष्य इस रोग के ग्रास बनते रहते हैं। रोगी को दारुण कष्ट होता है, और वह अत्यंत कठिनता से आरोग्य लाभ कर पाता है। चरक में भी इसको "सन्निपातो दुश्चिकित्स्यानाम्" कहकर कठिनता से अच्छे होनेवाले रोगों में परिगणित किया है, एवं भालुकि-तंत्र में तो "मृत्युना सह योद्धव्यं सन्निपातचिकित्सता" कहकर इस रोग को अत्यंत ही दुःसाध्य एवं भयंकर प्रमाणित कर दिया है। पुनः ऐसे भयंकर रोग के विषय में केवल नाम से ही परिचय प्राप्त कर लेने-मात्र से कोई विशेष लाभ नहीं है। अतः जिस प्रकार के आयुर्वेदशास्त्र द्वारा उक्त रोग की संज्ञा की गई है, उसी के अनुसार इसका पूर्ण परिचय हम पाठकों को कराना चाहते हैं।

सामान्य परिभाषा—फुप्फुसों के वायु-कोषों के तंतुओं में शोथ की उत्पत्ति होना एवं उससे श्वास आदि का रुकना 'निमोनिया' कहलाता है।

मुख्यतः 'निमोनिया' दो प्रकार का माना गया है—

(१) 'लोबर निमोनिया'—इसमें फुप्फुसों के किसी एक भाग में पूर्ण रूप से सूजन होती है, अथवा दो या अधिक भागों में भी।

(२) 'ब्रॉन्को निमोनिया'—इसमें फुप्फुसों के वायु-कोषों में स्थान-स्थान पर सूजन हो जाती है।

लोबर निमोनिया

इसमें, जैसा ऊपर बता चुके हैं, फुप्फुसों के वायु-कोषों के एक भाग अथवा अनेक भागों में सूजन आ जाती है। इसके प्रधान कारण अनेक हैं, जो क्रमशः आगे बताए जायँगे। ग्लासगो के प्रसिद्ध डॉ० स्टीविन अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं कि उन्होंने एक बीमार को २३ वर्ष में ७२ बार इस रोग से आक्रमित होते देखा। इस रोग का आक्रमण बालकों एवं वृद्धों पर विशेष रूप से होता है।

निदान—यह रोग प्रायः अति शीत या अपने शरीर को उष्ण वस्त्रों से आच्छादित रखने के पश्चात् शीघ्र ही शीतल वायु में प्रवेश करने से हो जाता है। वैज्ञानिक लोग इसकी उत्पत्ति 'नीमोकोकस'-कीटाणुओं तथा अन्य इसी प्रकार के कीटाणुओं से मानते हैं। इन कीटाणुओं के लिये गृह तथा आस-पास की अस्वच्छता, शारीरिक निर्बलता तथा ऐसे रोग—जो शरीर को क्षीण करते रहते हैं, जैसे खाँसी, ज्वर, इन्फ़्ल्युएंज़ा, डायबिटीज़, वृक्कों के रोग, हृद्रोग आदि—विशेष रूप से सहायक होते हैं।

संप्राप्ति—यदि निमोनिया के रोगियों का भली भाँति निरीक्षण किया जाय, तो प्रतीत होगा कि इसमें आदि से अंत तक रोग जिस प्रकार शरीर पर अपना प्रभाव करता है, उसकी चार श्रेणियाँ हैं—

प्रथम अवस्था—इसमें 'निमोनिया' के कृमि श्वास द्वारा फेफड़ों में प्रवेश करके दुर्बल गात्रवाले

मनुष्यों में अपना आधिपत्य स्थापित कर लेते हैं। उसका फल यह होता है कि जिस स्थान पर यह अपना आधिपत्य कर लेते हैं, वह विषाक्त हो जाता है। पुनः वह विष अपने स्थान पर तथा समीप के वायु-कोषों के तंतुओं में शोथ उत्पन्न कर देता है, जो शीघ्र ही फैलकर फुप्फुसों के किसी एक अवयव में या संपूर्ण फुप्फुस में शोथ उत्पन्न कर देता है।

द्वितीय अवस्था—इस अवस्था में यदि फेफड़ों को काटकर देखें, तो रक्त में 'रक्तवारि' (Serous Fluid.) प्रचुर परिमाण में प्राप्त होता है। 'रक्त-कण' टूट-टूटकर वायु-कोषों के तंतुओं में जम जाते हैं, जिनका वर्ण लालिमा-युक्त होता तथा वायु-कोषों को दबाने से कुछ कठोरता प्रतीत होती है। इस अवस्था को 'स्टेज ऑफ़् रेड हेपेटिज़ेशन' कहते हैं।

तृतीय अवस्था—उपर्युक्त अवस्था के कुछ ही काल पश्चात् वायु-कोषों का वह रक्त वर्ण भूरे वर्ण में परिणत हो जाता है। इस अवस्था में यदि फुप्फुसों को काटकर पानी में डाला जाय, तो वे डूबेंगे नहीं। इस अवस्था को 'स्टेज ऑफ़् ग्रे हेपेटिज़ेशन' कहते हैं।

चतुर्थ अवस्था—तृतीयावस्था के कुछ ही काल पश्चात् वह अवस्था धीरे-धीरे कोमल होती जाती है, और जो कठोर वस्तु वायु-कोषों के तंतुओं में जम गई थी, उसका कुछ अंश 'रक्तवारि' में परिणत हो जाता है, और कुछ अंश खखार के रूप में परिणत होकर बाहर निकल जाता तथा शेष अंश रक्त के श्वेत रक्ताणुओं के रूप में परिवर्तित होकर पुनः शरीर में व्याप्त हो जाता है। इस अवस्था को 'स्टेज ऑफ़् रिज़ोल्यूशन' कहते हैं।

प्रायः देखा गया है कि यह रोग दाहने फेफड़ों के अधःभागों में विशेष रूप से होता है। बहुत ही कम ऐसे रोगी देखे गए हैं, जिनमें यह रोग फेफड़ों के ऊर्ध्व भागों से अथवा बाएँ फेफड़ों से प्रारंभ हुआ हो।

सामान्य लक्षण—प्रायः इस रोग में ज्वर अत्यंत तीव्रता के साथ ठंड देकर १०४° या १०५° तक पहुँच जाता है। रोगी को यह प्रतीत नहीं होता कि ज्वर आनेवाला है। अकस्मात् ही कार्य करते समय या सोते-सोते, ठंड देकर ज्वर आ जाता है। सिर तथा हाथ-पैर दुखते हैं। प्रायः छाती के उस भाग में असहनीय शूल होता है, जिसमें 'निमोनिया' का प्रभाव हो गया हो। इस दशा में कुछ सूखी खाँसी का ठसका, श्वास अधिक चलना, कफ में रक्त का कुछ अंश आना आदि प्रधान लक्षण पाए जाते हैं। दूसरे या तीसरे दिन रोगी अपने संपूर्ण लक्षणों से युक्त हो जाता है। वह अपने पलंग पर अचेतनावस्था में चुपचाप पड़ा रहता है। बदन का वर्ण रक्त हो जाता है। श्वास तीव्रता से चलने लगती है। दोनो नासा-पुट श्वास के वेग के कारण हिलते हुए प्रतीत होते हैं। नेत्र रक्त एवं विस्फुटित रहते हैं। पुतलियों में में भी कुछ अंतर आ जाता है। खखार रक्त-मिश्रित एवं पिच्छिल होती है। नाड़ी की गति अत्यंत वेग-पूर्वक एवं बल-युक्त हो जाती है। इस अवस्था में श्वास और नाड़ी का अनुपात विभिन्न हो जाता है। छाती पर सुनने से विविध प्रकार की मधुर ध्वनियाँ सुनाई देती हैं। इस प्रकार से ७वें या १०वें दिन के बाद ज्वर एकदम नीचे हो जाता है, तथा रोगी की अवस्था आशा-जनक प्रतीत होने लगती है।

यह तो हुआ सामान्य लक्षण। अब हम ऊपर बताई हुई चारो अवस्थाओं के अनुसार लक्षण लिखते हैं—

(१) प्रथम अवस्था में रोगी को शीत-पूर्वक ज्वर आता है, तथा ताप १०२°, १०३° या १०४° तक पहुँच जाता है। जी घबराना, भूख न लगना, वमन होना, जिह्वा पर काँटे-से हो जाना, ओठों पर फुंसियों का उठना, सिर, हाथ तथा पीठ में दर्द होना, श्वास का शीघ्रता से चलना, छाती के किसी एक भाग में या अधिक भागों में शूल होना इत्यादि लक्षण इस अवस्था में प्रकट हुआ करते हैं। वक्षःस्थल-दर्शक यंत्र (Stethescope) से सुनने पर छाती के जिस भाग में यह रोग होगा,

वहाँ कुछ सुरसुराहट—जिस प्रकार बालों को उँगलियों के बीच में रगड़ने से होती है, उस प्रकार की ध्वनि—सुनाई देती है। इस अवस्था में खखार पिच्छिल तथा किंचित् पीत एवं रक्तवर्णमयी होती है। यदि इस खखार को रँगकर अनुवीक्षण यंत्र (Microscope) से देखा जाय, तो इसमें प्राधान्यतः निम्न-लिखित वस्तुएँ उपलब्ध होंगी—

(क) रक्त के 'लाल कण'

(ख) वायु-कोषों के तंतुओं के कुछ भाग

(ग) 'न्यूमोकोकस' कीटाणु

(घ) पॉली मॉरफस न्युक्लियर सेलस।

(२) द्वितीय अवस्था में जिस समय फुफ्फुसों के वायु-कोष ठोस हो जाते हैं, उस समय यदि छाती के रोग-ग्रस्त भाग को उँगलियों से धीरे-धीरे ठोका जाय, तो उस स्थान पर शब्द सुनाई नहीं देगा, और यदि वक्षःस्थल-दर्शक यंत्र लगाकर उस स्थान को देखा जाय, तो उसके आस-पास श्वास-प्रश्वास का वेग तीव्र प्रतीत होगा। यदि उस स्थान पर हथेली लगाई जाय, और बीमार को बोलने के लिये कहा जाय, तो वहाँ शब्द का कंप तीव्र प्रतीत होगा। इसी प्रकार वक्षःस्थल-दर्शक यंत्र से सुनने पर भी वहाँ ऊँची ध्वनि सुनाई देगी। इस दशा में रोगी के कपोल तथा ललाट रक्तवर्णमय हो जाते हैं, जैसे क्रोध की अवस्था में हुआ करते हैं। श्वास की गति तीव्र हो जाती है। यहाँ तक कि एक मिनट में ५०, ७० तथा ८० बार श्वासोच्छ्वास-क्रिया होने लगती है। नाड़ी की गति भी तीव्र हो जाती है। नाड़ी तथा श्वासोच्छ्वास-क्रिया का अनुपात ३:१, २:१ अथवा १½:१ तक पहुँच जाता है। शारीरिक उष्णता १०३° से १०५° तक हो जाती और त्वचा शुष्क प्रतीत होने लगती है। कफ, जो बहुत थोड़ा होता है, इस अवस्था में निकलते समय बड़ा दुःख देता है। मूत्र का परिमाण कम हो जाता एवं उसका वर्ण भी आरक्त अथवा पीत हो जाता है।

(३) तृतीय अवस्था में रोगी की दशा अत्यंत शोचनीय हो जाती है। वह सदैव बड़बड़ाता रहता है। निद्रा बिलकुल नहीं आती, और नेत्र खुले रहते हैं। रक्त में ऑक्सीजन की न्यूनता के कारण ओष्ठ काले पड़ जाते हैं। यह अवस्था तीन-चार दिवस तक रहती है। जिस समय रोग अपना भीषण रूप धारण कर लेता है, तो कभी-कभी यह दशा छठे या सातवें दिन तक बनी रहती है। उस समय अकस्मात् ही ज्वर पसीना देकर कम हो जाता और रोगी को अत्यंत सुख प्रतीत होने लगता है। किसी-किसी रोगी को छठे या सातवें दिन के बाद ज्वर क्रमशः तीन या चार दिन पश्चात् सामान्य अवस्था पर आ जाता है।

(४) चतुर्थ अवस्था में ज्वर अपनी सामान्य अवस्था (Normal point) में आ जाता है। रोगी की अवस्था अत्यंत दुर्बल हो जाती है। श्वासोच्छ्वास प्रति मिनट में १८ से २० तक होने लगता है। जिह्वा पर कुछ तरी-सी आ जाती है। रोगी को ऐसा प्रतीत होता है, जैसे उसे कुछ आराम हो गया हो। जिस समय ज्वर का वेग शांत होता है, उस समय रोगी को पसीना अधिक आता है, और इसी प्रकार धीरे-धीरे ज्वर से छुटकारा हो जाता है। वक्षःस्थल-दर्शक यंत्र से छाती की परीक्षा करने पर नाना प्रकार के स्वर सुनाई देंगे, क्योंकि जो वस्तुएँ वायु-कोषों में कठोर हो गई थीं, उनके द्रवीभूत हो जाने एवं कुछ अंश खखार द्वारा बाहर निकल जाने से वायु-कोषों के तंतु ढीले पड़ जाते हैं, अतः उनमें से रुक-रुककर श्वास-प्रश्वास की क्रिया होने लगती है। यही रुकावट उक्त शब्दों को उत्पन्न करनेवाली होती है। इस दशा में कफ विशेष रूप से निकलता है, और कुछ द्रव अंश शरीर के अवयवों में फिर मिल जाता है। इस प्रकार थोड़े ही काल में फेफड़े स्वच्छ हो जाते हैं, एवं रोगी स्वस्थ हो जाता है।

असाध्य लक्षण—रोगी के लिये अत्यंत भयंकर दशा तीसरे व चौथे दिन की होती है, अथवा छठे

या सातवें दिन की। यदि रोगी इन दिनों में बच गया, तो उसके जीवित रहने की कुछ आशा रहती है, अन्यथा प्रायः रोगियों की मृत्यु उपर्युक्त दिनों में हो जाती है। जिस रोगी के ओष्ठ या नख नीले पड़ गए हों, जिसकी नाड़ी जल्दी तो चलती हो, परंतु निर्बल हो, श्वास-प्रश्वास अधिक बढ़ गए हों, एवं उल्टी श्वास चलने लग गई हो, गले में कफ़ अटक गया हो, और दोनो फेफड़े रोग-ग्रस्त हों, ऐसे रोगी असाध्य कोटि में गिने जाते हैं। प्रायः उनकी मृत्यु निश्चित होती है।

चिकित्सा

रोगी को खुले कमरे तथा शुद्ध वायु में रखना परमावश्यक है। जिस कमरे में रोगी हो, उसमें किसी अन्य व्यक्ति का प्रवेश न होने दिया जाय। जो एक या दो व्यक्ति रोगी की परिचर्या में नियुक्त हों, केवल उन्हें ही रहने दिया जाय। रोगी के शरीर को गरम कपड़ों से अच्छे प्रकार ढक देना चाहिए, और मुँह सदैव खुला रखना चाहिए। रोगी को इस प्रकार लिटाना चाहिए, जिससे अधिक उसको सुख प्रतीत हो। यदि व्याकुलता अधिक बढ़ गई हो, और श्वास-प्रश्वास वेग से चलते हों, तो रोगी की पीठ के नीचे तकिया लगाकर छाती को कुछ उन्नत कर देना चाहिए, जिससे उसको श्वास लेने में कुछ सरलता प्रतीत हो सके। यथासंभव रोगी को अपने बिस्तरे से उठने न देना चाहिए।

भोजन—सादा पानी, लेमनेड या सोडावाटर अधिक परिमाण में, कुछ-कुछ समय पश्चात्, दिया जाय। दूध, पतली थूली, साबूदाना, बारलीवाटर या अन्य इसी प्रकार के पतले व हल्के भोजन देने चाहिए। भोजन में शक्कर का अंश अधिक होना चाहिए। यदि हो सके, तो गन्ने का रस दिया जाय, क्योंकि वह इसी दशा में लाभदायक प्रमाणित हुआ है।

कोठे को सदैव स्वच्छ रखना चाहिए। इसके लिये केलोमल और सोडा बाई कार्ब देना चाहिए। पश्चात् कुछ ऐसे विरेचन, जिनमें नमक व क्षार का अंश अधिक हो, देने चाहिए। यदि पेट फूल गया हो, तो 'टर्पिन्टाईन' तेल की मालिश करनी चाहिए, जिससे वायु, जो पेट में एकत्रित हो गई हो, अथवा बढ़ गई हो, निकल जाय। यदि इससे कोई लाभ न हो, तो गरम पानी में साबुन घोलकर उसमें ½ औंस टर्पिन्टाईन का तेल मिलाकर वस्ति (एनिमा) देनी चाहिए। इससे पेट के अंदर जो कुछ भी टॉक्सिन्स* होंगे, वे निकल जायँगे।

कई बड़े-बड़े चिकित्सकों का यह मत है कि जब ओष्ठ या नाख़ून काले पड़ जायँ, रोगी को अधिक व्याकुलता हो, हृदय† का आकार बढ़ जाय, उस समय रोगी की फ़स्त खोल देनी चाहिए। परंतु बहुत-से विद्वानों का मत है कि रक्त निकाला ही न जाय, क्योंकि इससे रोगी अधिक दुर्बल हो जाता है। इससे तो अच्छा यह है कि रोगी को 'न्यूमो-कोका सीरम' नं० १, २ या ४, जो डॉक्टर समयानुसार उचित देखें, रोगी की अवस्था देखकर पहले ही से देना प्रारंभ कर दे। इससे बहुत कम रोगी मृत्यु को प्राप्त होते हैं, और लगभग सभी आरोग्य लाभ करते हैं। इसी प्रकार इन डॉक्टरों की सम्मति में यह रोग भय-सूचक बिलकुल प्रतीत नहीं होता (देखो Indian medical Gazette, 1932)। ठंडे पानी के अंदर कपड़ा भिगोकर निचोड़ लेना चाहिए। पश्चात् उस कपड़े को रोगी की छाती पर कुछ समय तक लपेट दिया जाय। इस प्रकार यह

* शरीर में उत्पन्न हुए उन द्रव्यों को कहते हैं, जो शरीर को हानि पहुँचाने में साधक होते हैं। ये कीटाणुओं से भी उत्पन्न होते हैं।

† फुप्फुसों में जितना रक्त जाना चाहिए, उतना फुप्फुसों में कठोरता होने के कारण न जाकर हृदय में ही पुनः लौट आता है, और परिणामतः हृदय को अपने परिमाण से अधिक रक्त फेंकना पड़ता है, अतः हृदय का आकार बढ़ जाता है।

क्रिया दिन में कम-से-कम तीन-तीन घंटे बाद करनी चाहिए। इस क्रिया को करने की सबसे सरल विधि, जिससे रोगी को भी कष्ट न हो, यह है कि एक फ़लेनेल का टुकड़ा, जो लंबाई में रोगी की छाती व पीठ को, एवं चौड़ाई में नाभि से गर्दन तथा बग़ल तक के प्रदेश को पूर्णतया आच्छादित कर सके, ले लेना चाहिए। फिर रोगी को करवट से लिटा देना चाहिए, जिससे उसे बार-बार इधर-उधर होने में कष्ट न हो। इस कपड़े को ठंडे पानी में निचोड़कर छाती के एक भाग से पीठ के दूसरी ओर तक लपेट देना चाहिए। इस प्रकार कार्य करने से उक्त विधि सरलता से संपादित हो सकती है। जो पानी कपड़े के भिगोने में व्यवहृत किया जाय, उसकी उष्णता ५०° या ६०° होनी चाहिए। यदि रोगी को इस भीगे वस्त्र के लगाने से अधिक कष्ट हो, और श्वास की गति बढ़ जाय, तो इसे शीघ्र ही बंद कर देना चाहिए। उक्त क्रिया के करने से शरीर के अंदर जो बहुत प्रकार के 'टॉक्सिन्स' हैं, वे कम हो जाते हैं।

यदि रोगी को अत्यंत कष्ट होता हो, और छाती में दर्द हो, तो मॉरफ़िया $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{4}$ ग्रेन तक का इंजेक्शन देना चाहिए। अथवा ऐसी ही अन्य ओषधि, जिसमें अफ़ीम का अंश हो, देनी चाहिए। परंतु इस प्रकार की ओषधियाँ रोग की पहली ही अवस्था में देने से हितकर होती हैं। यदि इस प्रकार की ओषधियाँ तीसरी या चौथी अवस्था में दी जायँ, तो रोगी के लिये विष का कार्य करती हैं।

'टॉक्सिन्स' कम करने के लिये निम्न-लिखित उपाय करने चाहिए—

(१) रोगी को पानी प्रचुर परिमाण में पिलाना चाहिए, जिससे मूत्र अधिक हो।

(२) शरीर के अंदर नमक का पानी (Saline water), जो डॉक्टरी रीति से निर्मित होता है, इंजेक्शन द्वारा देना चाहिए। परंतु जब हृदय की गति बंद होती प्रतीत हो, उस समय इसका उपयोग कम करना चाहिए।

(३) ठंडे पानी की पट्टी लगाते रहना चाहिए।

(४) आँतों को विरेचन आदि द्वारा स्वच्छ रखना चाहिए।

(५) गुदा द्वारा नमक का पानी बूँद-बूँद करके देना चाहिए, क्योंकि यह क्रिया भी अत्यंत आवश्यक है।

इस रोग में रोगी को ऐसी ओषधियाँ देनी चाहिए, जिससे हृदय की गति मंद न होने पावे। टिंचर-डिजीटेलस की १० बूँदें या लाइकर स्ट्रिकनियाँ की दो बूँद या इसी प्रकार की अन्य दवाएँ, जो हृदय की गति को तीव्र करनेवाली हैं, देनी चाहिए। जैसे रम ब्रांडी (२ ड्राम से ४ ड्राम की मात्रा में), कॉफ़ी इत्यादि। 'डिजीटेलिन' $\frac{1}{100}$ ग्रेन या कैफ़िनी ५ ग्रेन या 'कैंफ़र इन ऑइल' 1 c. c. का इंजेक्शन देना चाहिए।

ऑक्सीजन धीरे-धीरे देना चाहिए। कफ़ निकलने में कठिनाई प्रतीत हो, तो वाइन एपीकॉक १० बूँद, अमोनिया कार्ब ५ ग्रेन, टिंक्चर सिनेगा २० बूँद पिलानी चाहिए।

यदि निद्रा न आती हो, रोगी को अधिक व्याकुलता हो, तो पोटाशियम ब्रोमाइड १० ग्रेन या क्लोरल हाईड्रेट १० ग्रेन अथवा अन्य कोई निद्रा-कारक योग देना चाहिए। सिर पर ठंडे पानी की पट्टी रखनी चाहिए। इससे रोगी की घबराहट शांत हो जायगी, तथा सिर की बढ़ी हुई गर्मी शांत होकर रोगी को सुख-पूर्वक नींद आ जायगी। सातवें या दसवें दिन, जब पसीना निकलकर रोगी का ज्वर अपनी सामान्य स्थिति पर आ जाता है, रोगी को बहुत सँभालना चाहिए। यदि अधिक पसीना आता ही रहे, तो 'एट्रोपिन सल्फास' का इंजेक्शन देना चाहिए। हाथ-पैर गरम रखने चाहिए। और, जब रोगी आरोग्य-स्थिति पर आ जाय, उस समय जितना भी आराम दिया जा सके, देना चाहिए। इस अवस्था में रोगी को नींद अधिक आती है, क्योंकि रोग-मुक्त होने से उसको आराम मिलने लगता। है रोगी को यदि निद्रा आ जाय, तो उसको

सोने देना चाहिए। इस अवस्था में रोगी के भोजन आदि की व्यवस्था अधिक अच्छी रखनी चाहिए। जितना भी पचा सके, उतना भोजन देते रहना चाहिए। ओषधियाँ भी ऐसी देनी चाहिए, जिनसे बढ़े हुए कफ को निकलने में सरलता और शरीर को बल प्राप्त हो सके। जब रोगी की इस रोग से मुक्ति हो जाय, तब उसको शक्ति पहुँचानेवाली ओषधियाँ देनी चाहिए—जैसे 'फ़्रेरियट किनाइन साइट्रेट' ५ ग्रेन, लाइकर आर्सेनिक दो बूँद इत्यादि।

कई डॉक्टर निमोनिया में 'एंटिफ़्लोजिस्टिन' का लेप करते और उस पर सिकाई करने की अनुमति देते हैं। नस में 'आइसोटॉनिक आयोडिन' १ C. C. का इंजेक्शन दो-तीन बार, २४ घंटे के अंतर से, लगाने पर विशेष लाभ दृष्टिगोचर हुआ है।

ब्रॉन्को निमोनिया

यह प्रायः बालकों को होता है। सर्व-प्रथम नाक बहने लगती है। फिर खाँसी प्रारंभ हो जाती है। खाँसी होने के पश्चात् गला दुखने लगता है, और फिर रोग इसी प्रकार धीरे-धीरे श्वास-नलिका द्वारा भीतर-ही-भीतर, फेफड़ों के अंदर, प्रवेश करता जाता है, जो कालांतर में खाँसी का अथवा निमोनिया का उग्र रूप धारण कर लेता है। इसकी चिकित्सा 'लोबर निमोनिया' के सदृश होती है।

पूजन*

[श्रीसियारामशरण गुप्त]

पद पूजन का भी क्या उपाय ?
तू गौरव - गिरि उत्तुंगकाय !

तू अमल-धवल है, मैं श्यामल,
ऊँचे पर हैं तेरे पद-तल ;
यह हूँ मैं नीचे का तृण-दल।
पहुँचूँ उन तक किस भाँति हाय !
तू गौरव - गिरि उत्तुंगकाय !

हों शत-शत झंझावात प्रबल,
फिर भी स्वभावतः तू अविचल।
मैं तनिक-तनिक में चिर चंचल ;
मेटूँ कैसे यह अंतराय ?
तू गौरव - गिरि उत्तुंगकाय !

अविरत तेरा करुणा - निर्झर
अगणित धाराओं से झरकर,
जीवित रखता है जीवन - भर
मेरा यह जीवन जड़ितप्राय।
तू गौरव-गिरि उत्तुंगकाय !

हैं जहाँ अगम्य दिवाकर-कर,
तेरे गह्वर भी आकर - वर
हैं ऊँचों से भी ऊँचे पर ;
मन उन तक भी किस भाँति जाय ?
तू गौरव - गिरि उत्तुंगकाय !

---

* आचार्य, पूज्यपाद पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी महाराज के अभिनंदनार्थ लिखित।—संपादक

हे प्रियतम !

[श्रीसत्यव्रत शर्मा 'सुजन']

(१)

दीवाने हो ? छीन विपंची कहते—"ज़रा बजाओ।"
युग-व्यापी क्रंदन भर उर में कहते हो—"मुसकाओ।"
कैसा यह उपहास तुम्हारा ? कैसा कटु व्यापार ?
कहते हो सर्वस्व हमारा लेकर—"कुछ दे जाओ।"
छेड़ो मत, रोने दो निर्दय ! बस जी-भर रोने दो !
पीड़ा के फूलों पर प्राणों को, जाओ, सोने दो !!

(२)

जितनी दुर्लभ निधियों की मैं माँग रहा हूँ भिक्षा ;
तुच्छ दान उतना ही तेरा, क्या है तेरी इच्छा ?
मन ऊँचा उड़ता है, पर बेपर तुम कर देते हो ;
डाल भँवर में क्यों मेरी नौका नवीन खेते हो ?
बड़ी आस से आज खड़ा हूँ लेकर खाली प्याली;
एक बूँद जूठी ही दे दो देव ! किंतु रसवाली।

(३)

आना, किंतु दबी ज्वाला को नहीं हाय ! धधकाने;
नहीं अरे ! इस दुखिया के घावों पर नमक गिराने।
आओ, हाँ आओ अवश्य, पर ज़रा सँभलकर आना;
पीड़ित की आहों से जलकर कहीं न हो पछताना !

❀ ❀ ❀

चलनी-सा तो छिदा हृदय है,
कैसे, कहाँ बिठाऊँगा ?
आँसू तो सब सूख चुके हैं,
कैसे पैर पखारूँगा ?

हवन-धूम के लाभ

[राजरत्न पं० आत्मारामजी अमृतसरी]



औषध-सेवन के दो प्रकारों का आजकल साधारण प्रजा भी नित्य अनुभव करती है । सब जानते हैं कि यदि कुनेन को रोगी ठोस गोली के रूप में खावे, तो उसका प्रभाव तीन घंटे में होता है । यदि वही कुनेन जल के साथ मिक्शचर के रूप में सेवन की जाय, तो उसका प्रभाव एक घंटे में होता है । ये प्रत्यक्ष अनुभव की बातें हैं । हमारे भारतीय आर्य वैद्य ऋषियों ने प्राचीन काल में एक और भी विधि योग-दृष्टि तथा विज्ञान-बल से निकाली थी । इस विधि से औषध का वायु द्वारा सेवन किया जाता था । वह विधि हवन-धूम की है, और उसका प्रभाव एक घड़ी में होता है ।

पंजाब में, प्रत्येक सनातनी आर्य या हिंदू के घर में, उसके किसी संबंधी की मृत्यु पर, 'दीया-बत्ती' को, जो घड़े में १३ दिन तक रहती है, हिंदू महाब्राह्मण आकर रोज़ देखता और 'यवपिंड' कराता है, तथा यम-पीड़ा-शमनार्थ एक मिट्टी के सकोरे में आग डालकर एक सुगंधित घास भी जलाता है, जिसको पंजाबी भाषा में बालछड़ और हिंदी में जटामासी या बिल्लिलोटन कहते हैं । घर या कोठरी उत्तम, रोचक, महा सुगंधित बालछड़ से भर जाती है, और मक्खी या मच्छर निस्संदेह उस धूम से भाग जाते हैं, यह हम रात-दिन देखा करते हैं ।

अमृतसर के पवित्र सिख-मंदिर 'श्रीदरबार साहब' में, मेलों के समय, अनेक साधु सिख, लोहे के करछे में एक परम रोचक तथा सुगंधित द्रव्य लेकर, सर्वत्र मेले में, घूमते फिरते और भिक्षा प्राप्त करते हैं । इस धूम के आते ही मच्छर तथा मक्खियाँ भागने लगती हैं, और रोचक सुगंध हमारी नासिका को बहुत ही भली लगती है । इस द्रव्य का नाम गुग्गुल है ।

लाहौर की बच्छोवाली-गली में सनातनी आर्यों या हिंदुओं का एक खुला 'भैरों-स्थान' मार्ग में है । उसका पुजारी प्रातः तथा सायं सदा मिट्टी के अँगीठी-रूपी एक बड़े धूप-पात्र में पुष्कल बत्तियाँ अति रोचक तथा परम सुगंधित दो द्रव्यों की आग में डालता है । ये कम-से-कम एक प्रहर तक प्रातः और सायंकाल सभी आने-जानेवालों की नासिकाओं को परम आनंद देती हैं । इन दो द्रव्यों के नाम काश्मीरी धूप तथा शुद्ध घृत हैं । इसी जगह पचास वर्ष से एक हिंदू-भक्त की हाट भी है । यह धर्मात्मा भक्त काश्मीरी धूप की लकड़ी को कूट-कूटकर, उसमें

शुद्ध घी मिलाकर काली धूप-बत्ती भी बनाता जाता है।

अनारकली में श्रीसीतारामजी आर्य-समाजी ने आज से तीस वर्ष-पूर्व जो उत्तम धूप की दूकान खोली थी, वह अब भी चालू है, और हिंदू तथा आर्य लोग यहाँ से शुद्ध घृत-युक्त काश्मीरी धूप मोल लेकर घर के मच्छर आदि नित्य दूर किया करते हैं। पंजाब-भर में अँगरेज़ी राज्य से पहले हिंदू-समाज में काश्मीरी धूप का भारी प्रचार चला आता है, और अब तक भी है।

गुजरात तथा दक्षिण-भारत में अगर-बत्ती जलाने का भारी प्रचार हिंदू तथा यवन-जनता में है। पारसी लोग अपने अग्नि-गृह के अतिरिक्त घरों में दो काल, हिंदुओं के समान, चंदन की धूनी देते हैं। इससे भी मच्छर या मक्खियाँ भाग जाती हैं।

बड़ौदा-राजमहल के प्रत्येक कोठे में चंदन और लोबान की धूनी अनेक बार दी जाती है, जो घंटों रहती है। भारतीय मुसलमान अपनी दरगाहों में लोबान या अगर-बत्ती जलाते हैं। जैनी लोग अपने देवलों में अगर-बत्ती जलाते और केसर रगड़कर माथे पर लगाते हैं। ब्राह्मण लोग अपने मंदिरों में काश्मीरी धूप, अगर-बत्ती, चंदन और चूरे का धूम करते, और घी का दीपक भी नित्य उससे पृथक् जलाते हैं। अमृतसर के सिख-मंदिर 'श्रीदरबार साहब' में चाँदी के मनुष्याकार दीपक में घी की अखंड बत्ती रात-दिन जला करती है, और श्वेत जाली के वेष्टन से ढका चाँदी का महादीप रात-दिन ढका भी रहता है। अँगरेज़ी में जिनको germs of Diseases कहते हैं, उनको दूर करने के लिये योरपवाले निम्न-लिखित बातें किया करते हैं—

(१) आग का कोठरी में प्रचंड रूप से जलाना।

(२) गंधक की धूनी देना।

(३) कपड़ों में फ़ेनाइल की परम दुर्गंधित गोलियाँ रखना।

(४) फ़ेनाइल का पानी छिड़कना।

जब कोई हवन करता है, तो उसको कोठे में आग तो प्रचंड रूप से जलानी ही होती है। इसमें वे और अग्निहोत्री सहमत हैं। किंतु अँगरेज़ लोग पत्थर का भारी दुर्गंधित कोयला जलाकर भी कीटाणुओं का नाश करते हैं। पर हमारे अग्निहोत्री उक्त कोयले के स्थान पर पलाश या शमी आदि की लकड़ियाँ जलाते हैं, जिनमें कोयले की अपेक्षा बहुत ही कम दुर्गंध है।

कपूर, जटामासी, गुग्गुल, काश्मीरी धूप, अगर, चंदन, लोबान—ये सब सुगंधित द्रव्य Disinfectant का काम देती हैं। फ़ेनाइल की दुर्गंध सिर-पीड़ा करती है, यह निर्विवाद है। गंधक की धूनी, लाल मिर्च की धूनी के समान,

भयंकर खाँसी-रोग उत्पन्न करती है। इसलिये हवन-धूम में इन्हें हम नहीं ले सकते, जब कि रोग-नाशक सुगंधित द्रव्य (Disinfectants) से काम चल सकता है।

हवन में घी भी डाला जाता है। पंजाब-भर में काश्मीरी धूप को कूट-कूटकर नरम मोमबत्ती बनाने के लिये सभी धर्मात्मा हिंदू शुद्ध घी मिलाते हैं, और घृत-युक्त उक्त धूप की सुगंध अति उच्च कोटि की होती है। जैन या हिंदू-देवालयों में जो घृत-दीपक जलाए जाते हैं, वे दुर्गंध कभी नहीं देते, वरन् मंद-मंद सुगंध देते हैं।

हवन में भी नित्य सनातनी तथा आर्य-समाजी घृत जलाते हैं। यह कभी दुर्गंध नहीं देता। घी में एक विशेष गुण है, जिसको हमारे सुश्रुत ने कहा है—

"घृत परम विष-नाशक है।"

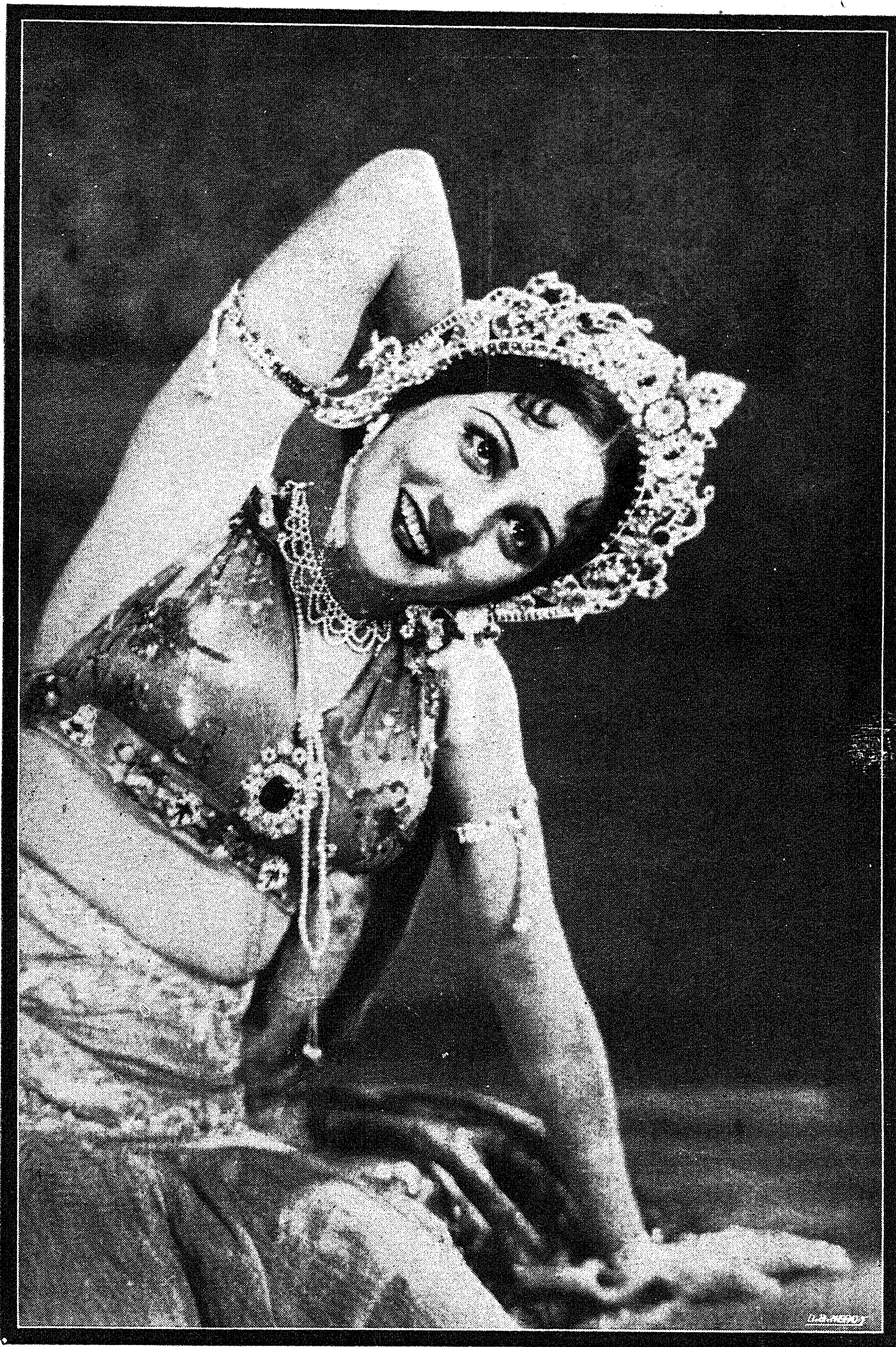
भारत के ग्रामों के हिंदू तथा यवन लोग साँप के काटे हुए को केवल घृत पिला-पिलाकर चंगा कर देते हैं। यह बात उसका परम विष-नाशक होना सिद्ध करती है।

इलाहाबाद के पॉयनियर-प्रेस से एक वैज्ञानिक पुस्तक 'The Buobanic Plague' छपी है। यह प्लेग के चीरे के आविष्कारक डॉक्टर हॉफकिन साहब-रचित है। इसमें वह लिखते हैं कि मैंने यह बात खोज निकाली है कि Clarified Butter, जिसको भारत में ghee (घी) कहते हैं, परम विष-नाशक है। इसलिये हवन-धूम, जिसमें घी तथा अनेक गुग्गुल आदि विष-नाशक द्रव्य जलते हैं, मलेरिया आदि अनेक रोगों के जनक कीटाणुओं का नाशक होने के कारण बड़ी लाभकारी वस्तु है।

अनुरोध

[श्रीकामेश्वर शर्मा 'कमल' साहित्यभूषण]

चितवन यों न फेर लो, क्षण-भर भी न अभी तो बीता है;
यह अनंत छवि, नयन-पात्र प्यारे, अब भी तो रीता है।
संध्या-किरणों में न छिपाओ यों अपनी मुस्कानों को;
देव, उन्हीं का सुधा-पान कर कोई अब तक जीता है।
इन असंख्य तारों में मैं तेरा कुछ पता न पाऊँगा;
भूल तुम्हारे भोलेपन में स्वयं स्वप्न बन जाऊँगा।



मिस माधुरी
सवाक् चित्र-पट की एक प्रसिद्ध अभिनेत्री

Ganga Fine Art Press, Lucknow

हस्त-लिखित प्राचीन ग्रंथ

[श्रीपं० एल्० पी० त्रिवेदी 'मधु', प्राचीन साहित्यान्वेषक]



किसी भी देश की पुरातन-से-पुरातन संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, कला-कौशल, सामाजिक स्थिति, राजनीति, शासन - पद्धति, साहित्य, विज्ञान—कहाँ तक गिनाएँ—प्रायः ऐसी-ऐसी सभी बातों का ज्ञान दो प्रकार से प्रकाश में आता है। एक तो भू-गर्भ के उस ख़ज़ाने से, जो भूमि के नीचे—बहुत ही नीचे—मिट्टी में मिला हुआ पड़ा है। मिश्रदेश, सूसा, हिटाइट, बेबीलोन, समरिया और सिरिया आदि स्थानों की खुदाई इसका ज्वलंत प्रमाण है। ख्रीष्ट की शताब्दी से सहस्रों वर्ष पूर्व के—वसुंधरा की विशाल गर्भस्थली में विलीन—विराट् नगरों, महलों, मंदिरों, क़ब्रों, सड़कों, नहरों, पुस्तकालयों, सिक्कों और आश्चर्य-पूर्ण कारीगरी तथा खुदाई के बर्तनों ने सारे भू-मंडल के पुरातत्व तथा इतिहासज्ञों की आँखों में चकाचौंध पैदा कर दी है। ये पुरातन वस्तुएँ हज़ारों वर्ष की संस्कृति, महोच्च सभ्यता, लोगों के रहन-सहन आदि को डंके की चोट चिल्ला-चिल्लाकर बतला रही हैं। ७००० वर्ष पूर्व का बर्तन का टुकड़ा मेरे एक अँगरेज़ मित्र ने बेबीलोन से लाकर, अभी कुछ दिन हुए, मुझे दिखलाया था। जिस गारे से वह बना है, उसे देखकर दाँतों-तले उँगली दबानी पड़ती है। इतनी दूर क्यों जाइएगा, मोहन-जो-दरो (सिंध) की खुदाई ने—जिसका पता प्रथम एक बुद्ध का स्तूप खोदते हुए स्वर्गीय पुरातत्वविद् श्री० आर० डी० बनरजी ने सन् १९२२ में लगाया था—इन दस वर्षों में भारत के इतिहास की कायापलट कर दी है। मोहन-जो-दरो में प्राप्त वस्तुओं का संबंध सूसा, मासोपोटामिया, मिश्र-देश आदि तक से बिलकुल ठीक-ठीक मिलता-जुलता है। इसी प्रकार समरिया के खोदे हुए रत्नों (प्राचीन चीज़ों) पर भारतीय द्राविड़ी सभ्यता की छाप, एक बड़े पैमाने पर, स्पष्टतः पड़ी हुई है। हरप्पा (भारत) की खुदाई ने भी सबको आश्चर्य-चकित कर दिया है। नालंद-बिहार के प्राचीन आर्य-विद्यापीठ की खुदाई से निश्चय हो गया कि दो हज़ार वर्ष पूर्व के आर्य-भवनों की दृढ़ता आजकल की वैज्ञानिक ढंग से बनी हुई गगन-चुंबी अट्टालिकाओं को मात करती है। वहाँ के एक ताम्र-पत्र द्वारा—जिसे डॉ० हीराचंद ने पढ़ा है—निश्चित हो गया है कि बिहार के राजा पाल का बहुत निकटतम संबंध जावा के राजा से था। पटना-म्यूज़ियम में चंद्रगुप्त के महलों को सज्जित करनेवाली स्वर्ण-लताओं के वे टुकड़े पाटलिपुत्र की खुदाई से लाकर रक्खे गए हैं, जिन्हें मेगास्थनीज़ ने यहाँ आकर देखा था। अशोक और चंद्रगुप्त के विशाल साम्राज्य का विस्तार फ़ारस के पूर्व तक सिद्ध करना भी इसी खुदाई का काम है।

यह तो अभी श्रीगणेश ही है। हमारा तो विश्वास है, मिश्र आदि देशों तथा यहाँ की भूमि के गर्भ से प्राप्त वस्तुओं का तुलनात्मक—विशेषतः भारतीय दृष्टि-कोण से, अथक परिश्रम-पूर्वक—अध्ययन किया जाय, और निष्पक्ष छान-बीन की जाय, तो समस्त विश्व के पूर्व इतिहास में क्रांति उपस्थित हो जायगी, और उसे एक नए सिरे से पुनः लिखना होगा। हमारा ख़याल है, यदि भारतीय छात्र इस पुण्य अनुष्ठान की साधना करें, तो आशातीत सफलता हस्तगत होने की संभावना है।

साहित्य द्वारा संस्कृति पर प्रकाश

प्राचीन सभ्यता, संस्कृति एवं इतिहास को खोज। निकालने का दूसरा ज़बरदस्त ज़रिया साहित्य है वह प्रायः दो प्रकार का है। एक तो वह, जो अक्षर

अथवा लिपि-रूप में मिलता है, दूसरा पीढ़ी-दर-पीढ़ी (परंपरा) से लोगों को स्मरण चला आता है। वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् आदि सहस्रों शताब्दी तक आर्य-जाति की विलक्षण स्मृति के कारण ही जीवित रहे हैं। वेदांत, सांख्य, व्याकरण आदि की सूत्र-प्रणाली भी इस बात का पुष्ट प्रमाण है। देश के प्राचीन साहित्य से हज़ारों वर्ष पहले का जीवन, पूर्वजों के मस्तिष्क का जौहर, एक जीते-जागते चित्र के स्वरूप में, हमारे नेत्रों के सम्मुख आ थिरकता है। पुरातन भारत का साहित्यिक क्षेत्र अत्यंत विस्तीर्ण है—यहाँ तक कि इस उन्नत बीसवीं सदी में भी कोई इसकी तली तक अभी नहीं पहुँच सका। इसी में तो हमारे व्यापक प्राचीन साहित्य का कमाल है। सत्य-प्रेमी पाश्चात्य विद्वान् डबल्यू० डी० ब्राउन् कहता है—"निष्पक्ष तथा ध्यान-पूर्वक परीक्षा करने से स्वीकार करना ही होगा कि भारत जगतीतल के साहित्य तथा धर्म की जन्म-भूमि है।" हमारा तो जन्म-जात अचल विश्वास है कि सारे संसार के हम विधाता हैं। संसार को मनुष्य हमने बनाया है। उसकी सांस्कृतिक तथा बौद्धिक रचना हमने की है। विशुद्ध विदेशी तथा वैदेशिक रंग में रँगे हुए विद्वानों का वाक्-चातुर्य, उनकी विवादात्मक दलीलें, उनके इतिहास के 'पोथाएे' हमें इस ध्रुव विश्वास से विचलित नहीं कर सकते। परंतु स्वभावतः अपने इस विश्वास को, पूर्णरूपेण, अकाट्य रूप से, सिद्ध कर दिखाने की महती आवश्यकता है, और इसके लिये एकमात्र द्वार यह है कि पहले हम अपने पुरातन साहित्य का संपूर्णतः मथन कर डालें, उसे बाहरी लूट तथा भयंकर विकृतीकरण से बचाएँ, घोर, अटूट परिश्रम से उसका गहरे धँसकर अध्ययन करें, उसे विश्व के प्रकाश में ले आएँ, और अपनी संस्कृति को क़ायम रक्खें, अथवा आधुनिक गति में, बहुत ही सावधानी से, उसे परिवर्तित करें।

यह लोकोक्ति हमें अक्षरशः हृदयंगम कर लेनी चाहिए कि जिस जाति अथवा देश को दासत्व की शृंखला से आबद्ध करना हो, उसका इतिहास, पुरातन साहित्य पहले से ही नष्ट कर डाला जाय। इसी से आपको इसका कल्पनातीत महत्त्व प्रकट हो जायगा।

अब हम दो-चार उदाहरण देकर बतलाते हैं कि साहित्य द्वारा पुरातन संस्कृति तथा उत्थान किस प्रकार प्रकाश में आते हैं। वेद, ब्राह्मण, दर्शन, उपनिषद्, वेदांत आदि भारत के पूर्वजों की अद्भुत एवं खरी बुद्धिमत्ता के निर्विवाद प्रमाण हैं। यह दूसरी बात है कि वे ईसा की सदी के दो-चार सौ वर्ष अथवा दो लाख वर्ष पूर्व के हैं; ईश्वरीय थे या मानवीय। भारतीय पुरातन सभ्यता का चाहे कोई कितना ही कट्टर शत्रु क्यों न हो, पर क्या वह उन्हें मनुष्य का हृदय लेकर, रद्दी काग़ज़ तथा गँवारू अथवा जंगली गीत कह सकेगा? क्या हमारे न्याय, वेदांत, नाटक, वैद्यक, ज्योतिष, चंपू, काव्य, पुराण, शास्त्र, दर्शन, स्मृतियाँ, सांख्य आदि के विषयों की विशालता तथा गंभीरता एक नई दुनिया का कपाट हमारे सामने नहीं खोल देती? हीब्रू, ग्रीक, लेटिन आदि पुरानी भाषाओं का भी क्या साहित्य इतना व्यापक है? कौटिल्य का अर्थशास्त्र—जिसमें अंतर्राष्ट्रीय क़ानून, देशी-विदेशी जल-थल के व्यापार, सुसंघटित एवं सुसंचालित शासन-व्यवस्था, अर्थनीति, राजनीति आदि अत्यंत महत्त्व-पूर्ण विषयों का समावेश है—उस समय की उन्नत सभ्यता पर कैसा प्रकाश डालता है? दुनिया के सर्वश्रेष्ठ भाषा-विज्ञान-विशारद—पाणिनि और पतंजलि—का संस्कृत-व्याकरण २००० वर्ष से लगातार संस्कृत-भाषा पर एकतंत्र शासन करता चला आ रहा है। अपने समय का समाज-शास्त्र एवं दंड-विधान मनुस्मृति कैसी विचक्षण विद्वत्ता से ओत-प्रोत है। भगवद्गीता कर्मयोग का कैसा दिव्य संदेश है, जिसका साम्य संसार के साहित्य में नहीं है। इस प्रकार के साहित्य में आर्य-संस्कृति अपनी प्रखर रश्मियों से जाज्वल्यमान हो रही है!

बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी में, अकबर के समय का लिखा हुआ, 'तारीख़े-ख़ांदाने-तैमूर'-नामक ग्रंथ रक्खा है। इसके १३२ पृष्ठ इतनी सुंदरता

से चित्रित हैं कि देखते ही बनता है। इसमें ख़्वाजा अब्दुस्समद की भी चित्रकारी है, जिन्होंने पोस्त के एक दाने पर क़ुरान का एक अध्याय लिखा था। पुरातत्त्ववेत्ता रायबहादुर श्रीहीरालाल साहब ने गत ओरियंटल कॉन्फ्रेंस, पटना में कहा था, यह कला दिल्ली में थोड़ी-बहुत अब भी विद्यमान है। एक चावल पर अँगरेज़ी के १२५ शब्द अच्छी तरह लिखकर उन्हें भेजा गया था। उन्होंने इसे पटना-म्यूज़ियम को भेंट कर दिया।

मेरे एक फ़ारसी-उर्दू के ज्ञाता मित्र ने बतलाया कि उनके पास क़ुरान की एक ऐसी प्राचीन हस्त-लिखित प्रति थी, जिसके किसी भी पत्र में यदि मीम अथवा किसी भी अक्षर को आप सुई से छेदेंगे, तो समस्त पत्रों में वही अक्षर छिदा हुआ पाएँगे! अभाग्य है कि वह ग्रंथ उनके यहाँ से चोरी चला गया।

आगरे-ज़िले के विद्यापुरा गाँव में रिसर्च के लिये दौरा करते हुए मैं पहुँचा, तो एक पंडित के यहाँ, ठीक कुंडली के आकार में, समस्त आद्योपांत भागवत संस्कृत में लिखी हुई पाई। अक्षर सभी पठनीय हैं। काली-चमकीली स्याही से मूँजी काग़ज़ पर लिखी गई है। इतने थोड़े-से काग़ज़ पर सारी भागवत लिख देना वास्तव में एक आश्चर्य-जनक काम है। नीचे का संवत् आदि इसका फट गया है, तो भी अनुमान से कहा जा सकता है कि यह दो सौ वर्ष से कम की नहीं है।

विदेशियों की लूट

विदेशियों ने इस अमूल्य धन—हस्त-लिखित ग्रंथों—की किस तरह लूट की है, यह सभी कोई जानते हैं। यहाँ तक कि अपढ़ देहाती भी इससे अनभिज्ञ नहीं हैं। मुझे रिसर्च के मिशन पर काम करते हुए इसका कई बार अनुभव हुआ। उन्होंने इस आशंका से अपने प्राचीन ग्रंथ नहीं दिखाए कि कहीं मैं विदेशियों का एजेंट न होऊँ। उनका यह भय मुझे बिलकुल उपयुक्त जँचा। हस्त-लिखित ग्रंथ पहले तो मुग़ल-ज़माने में, हज़ारों की संख्या में, नष्ट कर डाले गए, उनकी होलियाँ जलाई गईं, किंतु सबसे अधिक लूट-खसोट खुल्लमखुल्ला अथवा लुक-छिपकर गत १५० वर्षों से अविराम हो रही है। इतने समय की लूट के ठीक-ठीक आँकड़े मिलाना नितांत असंभव है। राजपूताने के इतिहासज्ञ कर्नल टाड ८०० संदूक़, ग्रंथों से ठसाठस भरे हुए, जहाज़ द्वारा ले गए। अभी १० वर्ष पूर्व, नेपाल से, संस्कृत के २०,००० प्राचीन ग्रंथ ऑक्सफ़ोर्ड भेज दिए गए। सर डबल्यू जोंस, टेलर, फ़्लीट, कर्नल मेकेंज़ी, बेलनटाइन आदि लोग संस्कृत तथा पाली-ग्रंथों की एक अपार राशि भारत से बक्सों में पैक करा-कराकर अपने-अपने देशों को ले गए। इन ग्रंथों का अधिक भाग इंडिया-ऑफ़िस-लाइब्रेरी, लंदन में मौजूद है। सन् १८५७ के बाद तो ग्रंथों की लूट अपनी चरम सीमा तक जा पहुँची। ऑक्सफ़ोर्ड की बोडलिन लाइब्रेरी, ऑक्सफ़ोर्ड की इंडियन इंस्टीट्यूट, कैंब्रिज की ट्रिनिटी-कॉलेज-लाइब्रेरी, एडिनबरा-युनिवर्सिटी हिंदोस्तान से ले जाए हुए संस्कृत, अरबी और फ़ारसी के ग्रंथों से लबालब भरी पड़ी हैं। ग्रेटब्रिटेन और आयर्लैंड की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की लाइब्रेरी में हज़ारों संस्कृत के ग्रंथ हैं। जर्मनी का तो कुछ हाल ही न पूछिए। वहाँ के प्रायः समस्त बड़े पुस्तकालय इस देश के ग्रंथों से ओत-प्रोत हैं। जर्मनी के बरलिन, वुज़बर्ग, गॉटजिन, स्ट्रासबर्ग, बॉसे, स्टुटगार्ट, टबिंजन आदि सैकड़ों पुस्तकालय भारतीय पुरातन साहित्य से, एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक, भरे पड़े हैं। कहा जाता है, जर्मन लोगों की डाढ़ ब्रिटिश राज्य यहाँ पर प्रारंभ होने से पहले ही लग गई थी, और वे ख़रीदकर, चोरी से, दोस्ती से, दबाव से—जैसे बना तैसे—ग्रंथों को यहाँ के बंदरों से, माल की नाईं, बक्सों में बंद करके ले गए। जर्मन लोगों की प्रकृति-दत्त जिज्ञासा ही का यह फल है। दूसरे देशों के साहित्य की इतनी क़द्र करनेवाली कोई अन्य जाति है भी नहीं। संसार की भाषाएँ भी वे, भू-मंडल की अन्य जातियों की अपेक्षा, जल्दी

सीखने में बढ़े-चढ़े हैं। उनकी जाति की यह विशेषता है। उड़ाए गए ग्रंथों में ऐसे-ऐसे ग्रंथ भी हैं, जो अब भारत में कहीं मिलते ही नहीं, या मिलते भी हैं, तो पाव-आधे। संस्कृत में सहस्रों नहीं, तो सैकड़ों कवियों के एक-दो-चार-छ फुटकल श्लोक मिलते हैं, और उनका नाम-गाँव, उनकी रचनाएँ सब विनाश के मुख में विलीन हो गई हैं, अथवा यों कहें कि यहाँ से हज़ारों मील दूर अलमारियों में बंद पड़ी हैं। आज भारतीय वायु तथा भारतीय बच्चे का हाथ भी उन्हें स्पर्श नहीं कर सकता।

कहा जाता है, अजमेर के किसी पुस्तकालय में ताड़-पत्र पर लिखा हुआ एक 'रणमंडल'-नामक बृहद् संस्कृत-ग्रंथ था। वह राजा भोज के समय का लिखा हुआ बतलाया जाता है। इसमें समस्त युद्ध-विद्या, सैनिक-शिक्षा, सेना-संचालन, व्यूह-रचना, खाई की लड़ाई (Trench War), थल की लड़ाई उत्तम प्रकार से वर्णित थी। ईस्ट इंडिया के शासन-काल में एक जर्मन-विद्वान् को इस अमूल्य ग्रंथ का पता लगा और वह अजमेर में जा धमका, वहाँ के लाइब्रेरियन को—या जो भी हो—घूस देकर, ग्रंथ लेकर वह नौ-दो-ग्यारह हो गया। कई लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि जर्मन-युद्ध-विद्या-विशारदों ने, इसी ग्रंथ के बल पर, मित्र-दल को नाकों-चने चबवाए। लड़ाई के पश्चात् विजेतागण सद्भावों से प्रेरित हो आज भी कह उठते हैं—Methods of the German's fighting were most wonderful. हो सकता है, घटना का अंतिम भाग किंवदंती हो, किंतु इस प्रकार का कोई ग्रंथ उड़ा ले जाना अवश्य सत्य प्रतीत होता है। राजा भोज की सैनिक कुशलता की कहानियाँ आज तक लोगों के ओठों पर हैं, फिर उस-सरीखे विद्या-प्रेमी का युद्ध-विद्या पर कोई ऐसा ग्रंथ लिखवाना नितांत स्वाभाविक प्रतीत होता है।

गत २६ सितंबर को प्राचीन स्मारक-संरक्षण के संशोधन-बिल (The ancient monument preservation Amendment Bill) पर व्यवस्थापिका सभा में स्वनाम-धन्य श्रीहरविलास शारदा ने बोलते हुए अक्षरशः ठीक कहा था—"All provinces of India have been ransacked, every nook and corner of it has been searched the country has been denuded of its old manuscripts, invaluable for a proper writing of the history of India and tracing the evolution of its social polity or its annals." अर्थात् यहाँ के सारे प्रांतों की छान-बीन कर डाली गई है। एक-एक कोना खोज डाला गया है। प्राचीन ग्रंथों से तो देश को बिलकुल ख़ाली ही कर दिया गया है, जो भारत के सामाजिक शासन-विधान के विकास का पता लगाने तथा उसका शुद्ध इतिहास लिखने में आज दिन अमूल्य सिद्ध हुए होते।

लूट का परिणाम

जो कुछ भी हुआ है, वह हृदय को अत्यंत ठेस पहुँचानेवाला है। जिस भारत में प्राचीन साहित्य का कारूँ का-जैसा ख़ज़ाना मौजूद था, वह आज दूसरों के मुँह की ओर निराशा की दृष्टि से देख रहा है। इतिहास को ही लीजिए, इसकी एक भी प्रामाणिक पुस्तक नहीं है। विदेशी प्रोफ़ेसर रैपसन का इतिहास (Cambridge History of India) ही अभी तक के प्रकाशित ऐतिहासिक ग्रंथों में विशाल-काय तथा अपने विषय में व्यापक कहा जाता है। हमें वह मान्य है, अथवा अमान्य, यह दूसरी बात है। पर कैंब्रिज-हिस्ट्री को पढ़कर किसी भी भारतीय का अपनी अधम अकर्मण्यता एवं विवशता पर लज्जा से सिर नीचा हुए बिना न रहेगा। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि उक्त बृहद् ग्रंथ का समस्त लेखक-मंडल पाश्चात्य प्रोफ़ेसरों तथा विद्वानों से बना है। हाँ, अलबत्ता सिर्फ़ एक लेख उन स्वर्गीय आर० डी० बनरजी का है, जो पुरातन मुद्रा-पठन में अद्वितीय दक्ष थे। हमें उपर्युक्त इतिहास के विषय में विशेष

कुछ नहीं कहना। यह तो स्वयं इसी स्पष्ट तथ्य से प्रकट है कि इसके लेखकगण सब विदेशी हैं, अतः भारतीय दृष्टि-कोण से वे कहाँ तक ऐतिहासिक सत्य का अन्वेषण कर सके होंगे। फिर भी उनके पांडित्य, परिश्रम तथा प्रयत्नों की भूरि-भूरि प्रशंसा किए बिना कोई नहीं रह सकता।

किस तरह जर्मनी, इँगलैंड, फ्रांस, डेनमार्क, हॉलैंड, ऑस्ट्रिया, अमेरिका के पुस्तकालयों तथा अजायबघरों की शोभा यहाँ के प्राचीन ग्रंथों तथा अन्यान्य वस्तुओं से हो रही है, इसके एक-दो प्रमाण और सुन लीजिए—कौटिल्य के अर्थशास्त्र की एक भी प्रति यहाँ पहले नहीं थी, किंतु विलायत में इस अपूर्व ग्रंथ की कई प्रतियाँ मौजूद थीं। इसका एक-दो प्रति संयोग-वश मैसूर के पंडित श्याम शास्त्री के हाथ आ जाने से यह पुस्तक भारत में भी प्रकाशित हो गई।

कहा जाता है, कालिदास के पूर्व संस्कृत में भास-नामक एक प्रतिभाशाली कवि हुए हैं। इन्होंने कोई १७-१८ नाटक लिखे हैं। पर अभी तक इनका पता नहीं लगा। केवल दो-तीन नाटकों की प्रतियाँ दक्षिण के एक पंडित को मिली हैं। उसने उनके संशोधन तथा प्रकाशन आदि का भी कुछ प्रबंध किया है। कहते हैं, भास के बहुत-से अथवा प्रायः सभी नाटक जर्मनी में हैं, और उन्हें प्राप्त करना दुःसाध्य है। कुछ पंडितों का अनुमान है कि भास ऐसा धुरंधर विद्वान् हुआ है कि उसे संस्कृत के नाटक-रचयिताओं का गुरु कहा जाना चाहिए।

श्रीशारदा ने अपने भाषण में कहा है—"मुझे अजमेर का इतिहास लिखते हुए शेरशाह के आक्रमण तथा क़ब्ज़ा करने का हाल जानने की आवश्यकता पड़ी। भारत के सारे पुस्तकालयों को उलट-पुलटकर देखने पर भी मुझे इसका वर्णन न मिला, किंतु 'तारीख़-द नामक ग्रंथ में—जो लंदन के ब्रिटिश म्यूज़ियम में है—इच्छित विषय मिला, तब कहीं कार्य पूरा हो सका!" सो भी मूल-पुस्तक के दर्शन आपको नहीं हुए, सिर्फ़ दो पृष्ठों का फ़ोटोग्राफ़ आपको मिला। इसी तरह चित्तौर के महाराजा कुंभ के चित्र का एक फ़ोटो आपको इंडिया-ऑफ़िस, लंदन से, बड़ा सिर मारने पर, प्राप्त हुआ। ये कठिनाइयाँ सिर्फ़ श्रीशारदा की ही नहीं, वरन् भारत के सभी पुरातत्त्व एवं इतिहास-प्रेमियों की हैं। उन्हें तो फ़ोटो-वोटो भी प्राप्त हो गए, औरों को वह भी नसीब होना असंभव है। इन्हीं कारणों से भारतीय इतिहास के ज़मीन-आसमान का ठिकाना अब तक नहीं लगा।

वर्तमान प्रचलित भाषाओं का इतिहास भी, योग्य सामग्री के अभाव से, बट्टेखाते में पड़ा है। पुरातत्त्वविद् तथा प्रसिद्ध इतिहासज्ञ रायबहादुर श्रीहीरालाल साहब तथा पटना के श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल ने, तो भी, इस ओर स्तुत्य प्रयत्न किए हैं। रायबहादुर साहब ने नवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक की भाषा का लगातार सफल अन्वेषण किया है, तथा श्रीजायसवालजी ने मूल-हिंदी का समय पाँचवीं शताब्दी तक बतलाया है, जो देश-भाषा के नाम से गुप्त-युग में प्रचलित थी। जैन-साहित्य से उन्होंने इसके प्रमाण भी दिए हैं, जिसकी चर्चा पुनः कभी जैन-साहित्य पर लिखते हुए की जायगी। यहाँ इतना ही कहना यथेष्ट है कि यदि भारत के समस्त ग्रंथ यहीं होते, तो हमारे इन विद्वानों को पेचीदी समस्याएँ हल करने में कितनी सुगमता होती!

लूट अब भी जारी है!

मुझे विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात है, हस्त-लिखित ग्रंथ अब भी विदेशों को पोशीदा तौर पर जाते हैं, और जनता को विदित नहीं होता। जन-साधारण जब तक विकट सजगता से इस विषय में सावधान न हों, अथवा विदेशों को भारतीय प्राचीन ग्रंथ ले जाना जुर्म क़रार न दिया जाय, तब तक इस संबंध में कुछ होना मुश्किल है। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के अन्वेषण-कार्य पर दौरा करते समय मुझसे एक-दो अवसरों पर नहीं, कई बार लोगों ने कहा—एक

साहब आया था, और हमारे गाँव से अमुक-अमुक ग्रंथ ख़रीदकर ले गया। आगरे-ज़िले के अछनेरा-गाँव में लोग अब भी पुराने ग्रंथ तथा सिक्के इसलिये जमा कर रख छोड़ते हैं कि जब रेलवे का एक वृद्ध अँगरेज़ कर्मचारी—बाँदोकुई या जहाँ से हो—आएगा, तब अच्छी क़ीमत देकर ले जायगा! वहाँ के लोगों ने मुझे बतलाया, सैकड़ों पुराने ग्रंथ और सिक्के उन्होंने उस बुड्ढे को बेच दिए।

ख़ैर, यह तो हुई अशिक्षित जन-समूह की बात, मुझे यह भी पता है कि स्वर्गीय भंडारकर तक ने अमेरिकन और अन्य देशों के प्रोफ़ेसरों तथा विद्वानों को, ख़ासी क़ीमत लेकर, भगवान् बुद्ध की मूर्तियाँ, सिक्के, प्राचीन ग्रंथ आदि बेचे थे। श्रीभंडारकर की सेवा के हम ऋणी हैं, पर कोई भी भारत-वासी उनका कौड़ियों के मूल्य अपनी संस्कृति बेच देने का कृत्य, चाहे कितनी ही महत्त्व-हीन वस्तुएँ वे क्यों न रही हों, क्षमा न करेगा। हम तो कहेंगे, यह उनका नैतिक पतन था।

विदेशी लोग प्राचीन वस्तु (Curio) प्राप्त करने के लिये अत्यंत उत्सुक रहते हैं। मुझे इस संबंध में कुछ निजी अनुभव है। यथार्थ में उनकी इस उत्सुकता का मैं बड़ा ही क़ायल हूँ, और चाहता हूँ, हमारा जन-समुदाय भी उनसे यह पाठ सीखे। मैंने एक अपने मिशनरी मित्र को कुछ प्राचीन चित्र तथा ग्रंथ दिखलाए। देखकर वह प्रायः आत्म विस्मृत-से हो गए। उन्होंने एक-दो चित्र प्राप्त करने के लिये मुझसे बड़ीचिरौरी की, पर भला मैं क्यों बेचने लगा। ऑक्सफ़ोर्ड के विद्यार्थी एक द्वितीय अँगरेज़ मित्र को मैंने, उनके मनोरंजन के लिये, कुछ पुराने ग्रंथों की रद्दी के पत्र (leaves) भेजे। अगले पत्र में उन्होंने लिखा—

"आपके भेजे हुए हस्त-लिखित प्राचीन पत्रों के अर्थ मैं आपको अत्यधिक धन्यवाद देता हूँ। इनमें मेरी बड़ी दिलचस्पी है। आपके ख़याल से ये कितने पुराने हैं? आपके अन्वेषण-कार्य के संबंध में जानने के लिये मैं बहुत ही उत्सुक हूँ। मुझे निश्चय है, आपको इन ग्रंथों का घंटों अध्ययन करना पड़ता होगा।"

मैंने यह प्रदर्शित करने के लिये ये सब लिखा कि पाश्चात्य लोगों में एक जिज्ञासा है, एक पुरातत्त्व-प्रेम (archaelogical sense) है, जो उन्हें अन्य देशों की प्राचीन वस्तुओं की क़द्र करने तथा उन्हें अपने देश को ले जाने के लिये बाध्य करता है।

विदेशी अधिकारीगणों का एक बड़ा समुदाय ऐसा है, जो भारत की प्राचीन वस्तुएँ, ग्रंथ आदि, प्रतिवर्ष यहाँ से ले जाता है। इसके मुझे कई उदाहरण मालूम हैं। विशेषतः वे अधिकारी, जो अपने अध्ययन-काल में इतिहास लिए रहे हैं, प्राचीन चीज़ों की खोज में सदैव ही रहा करते हैं, और उन्हें ले जाकर या तो विलायत के अजायबघरों अथवा पुस्तकालयों को भेज देते हैं, या उन्हें दिखाकर अपने मित्रों का मनोरंजन करते हैं। इस प्रकार देश के हस्त-लिखित ग्रंथ आज भी, थोड़ी-बहुत तादाद में, विदेशों को जाते हैं, और यहाँ भी बहुत बुरी तरह वे काल के गाल में जा रहे हैं। विदेशी विद्वानों ने हस्त-लिखित साहित्य की और कौन-कौन सेवाएँ की हैं, हस्त-लिखित ग्रंथों के कहाँ-कहाँ भंडार हैं, कहाँ तक उनका अन्वेषण हुआ है, उनसे क्या लाभ हो सकता है आदि बातों की पुनः कभी चर्चा की जायगी।

आलस्य

[श्रीयुत वृंदावनदास बी० ए०, एल्-एल्० बी०]



आलस्य के चिर-संगी हैं निर्धनता और अपमान। निर्धनता और अपमान आलस्य के अनिवार्य फल हैं*। निर्धन और मान-रहित पुरुष में ही हम आलस्य को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, परंतु एक सुंदर रमणी के मद-पूर्ण आलस्य को प्रशंसा की दृष्टि से देखते हैं। एक सौंदर्य एवं लावण्य-युक्त महिला का शयनागार में शयन करना अथवा उसे आराम से कुर्सी पर बैठे देखना हमारे लिये अरुचिकर प्रतीत नहीं होता, परंतु एक नौकर का आरामतलब होना हमको असह्य हो जाता है। किसी सर अथवा राय-बहादुर के आलसी जीवन को हम रईसी कहते हैं, तथा उसकी अकर्मण्यता को ऐश्वर्य। एक धन-कुबेर अपनी आरामतलबी की चकाचौंध से सम्मानित होता है, और एक कृषक इसके कारण बर्बाद हो सकता है। परंतु वस्तुतः आलस्य, चाहे वह धनवान् में हो या निर्धन में, सदैव और सभी में घृणा की दृष्टि से देखे जाने योग्य है।

आलस्य में एक गुण भी है। वह यह कि यह अन्य दुर्व्यसनों को, जिनमें स्फूर्ति की आवश्यकता है, दबा देता है। परंतु इस गुण के बदले यह अनेक दुर्व्यसनों को उत्पन्न करता है, जैसे ईर्ष्या, द्वेष, मत्सरता, घृणा आदि।

* जॉन रस्किन।

आलस्य 'दुःख और असंतोष' का उत्पादक है। यदि एक सज्जन पुरुष आलसी है, तो उसको निश्चय ही सदैव दुःख और असंतोष रहेगा। किसी कार्य के पूरे न होने का अथवा किए ही न जाने का जो दुःख एक शुद्ध चित्त को होता है, वह वर्णनातीत है।

कर्मण्यता पर ही संसार स्थिर है। क्रिया-शीलता ज्योति है, और आलस्य अंधकार। यह दोष हम अपने में स्वयं नहीं देख सकते, परंतु दूसरों में यह दोष स्पष्ट प्रतीत होता है। पिता पुत्र में देखता है, पुत्र पिता में देखता है, स्वामी सेवक में देखता है, और सेवक स्वामी में देखता है। परंतु हम सभी पराक्रमी पुरुषों का सम्मान करते हैं। उनकी उपस्थिति सर्वथा वांछनीय है। वे अपने आदर्श से हमें उन्नत बनाते हैं, हमारे आलसी हृदयों में स्फूर्ति का संचार करते हैं। सचमुच आलसी मनुष्य अपने मित्र की स्फूर्ति और जागृति का नाश कर देता है। उसका अनुकरण करना एक रोग है। उसका संग संक्रामक है।

आलस्य का एक भारी दुर्गुण है उसका आकर्षण। हम विश्राम को अपने स्वास्थ्य के लिये परमावश्यक समझते हैं, और इसी कारण विश्राम करते भी हैं। परंतु विश्राम इतनी प्रिय वस्तु है कि उसका लाभ उठाते समय हम उसके उचित परिमाण एवं अवधि को भूल जाते हैं। परिणाम यह होता है कि अधिकाधिक

विश्राम लेने की हमारी आदत-सी पड़ जाती है, और हम आलसी बन जाते हैं।

स्वाभिमान को ठेस लगने से भी आलस्य हो जाता है। किसी कार्य में स्वाभिमान को धक्का पहुँचने से उससे उदासीनता हो जाती है, और उससे अकर्मण्यता तथा आलस्य की वृद्धि होती है। कोई देश-प्रेमी देश की कुछ सेवा करता है, और यदि उसका उपकार मानने की अपेक्षा जनता उसको स्वार्थी बतलाकर उसका निरादर करती है, तो उसका चित्त खिन्न हो जाता है, और वह संसार की कृतघ्नता के कारण उसकी ओर से उदासीन हो जाता है। परंतु यहाँ पर ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि हमारी उदासीनता होते हुए भी संसार तो यथाक्रम चलता ही रहेगा। हमें खूब समझ लेना चाहिए कि संसार को हमारी कुछ परवा नहीं, उसे तो हम खुद खुश करना चाहते हैं। हम कितने ही दान-वीर, परोपकारी, समाज-सेवक क्यों न हों, हमारा भाग संसार के विशाल रंग-मंच पर नगण्य ही है। इसलिये हम जितने मुँह, उतनी बातों और पाषाण-हृदय जन-समूह की परवा न करके समाज की सेवा एवं उपकार में निरंतर रत रहें, तो अत्युत्तम है।

पाश्चात्य विद्वानों ने तो उदासीनता को भी आलस्य की ही संज्ञा दी है। निवृत्त (Retire) होकर निश्चेष्ट बैठने को वे आलस्य कहते हैं।

परंतु आलस्य और वास्तविक संतोष में भेद है। अपनी स्थिति से संतुष्ट मनुष्यों को नितांत आलसी नहीं कह सकते। एक आलसी मनुष्य दुर्व्यसनी हो सकता है, परंतु संतोषी मनुष्य नहीं।

आलस्य अविचार से भी होता है। अविचार-जन्य आलस्य बहुत बुरा होता है। आज एक काम रहा, कल दूसरा रहेगा। यदि आज एक घंटा नष्ट हुआ, तो कल चार घंटे नष्ट होंगे। आलसी होने की प्रवृत्ति बराबर बढ़ती है। अगर हम आज नियत समय से दस मिनट बाद उठते हैं, तो कल निश्चय ही बीस मिनट बाद उठेंगे, इस प्रवृत्ति में कभी कमी न होगी। किसी अँगरेज़ विद्वान् ने कहा है—"Laziness is absorbing, like Saturn it Swallows its own children."

व्यक्तिगत पुरुषों में क्या, समस्त जाति में आलस्य देखा गया है। बहुत-सी जातियाँ जब तक आलसी रहीं, उन्होंने कभी उन्नति नहीं की।

किसी समस्त जाति अथवा राष्ट्र में यह व्याधि निम्न-लिखित कारणों से प्रचलित होती है—

(१) राष्ट्र के स्वास्थ्य पर जल-वायु का बड़ा प्रबल प्रभाव पड़ता है। मातदिल जल-वायु-वाले प्रदेशों के रहनेवाले मनुष्य अत्यंत उष्ण अथवा अत्यंत शीतल प्रदेशों के मनुष्यों की अपेक्षा अधिक पराक्रमी होते हैं। यही कारण है कि योरपीय जातियाँ अन्य देशों के मनुष्यों की अपेक्षा अधिक पराक्रमी, कर्मण्य एवं उद्यमी हैं।

(२) धार्मिक विचारों का भी राष्ट्रीय कर्मण्यता पर बड़ा असर होता है। विधिवादी अथवा दैव पर अपने को छोड़देनेवाले पुरुष सदैव आलसी पाए गए हैं।

(३) जाति की क्रियाशीलता किसी अंश में उसके शासन पर भी निर्भर है। जब तक टर्की में कुशासन रहा, योरपीय जातियों ने उसे बार-बार पछाड़ा, और अंत में क़रीब-क़रीब योरप से बाहर ही निकाल दिया।

सुधा-चित्रावली



श्रीनर्मदाप्रसाद खरे

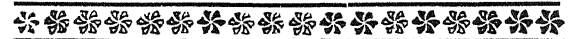
[आप जबलपुर के होनहार कवि हैं।]






श्रीमती सुशीलादेवी श्रीवास्तव

[आप कानपुर-म्युनिसिपिल-बोर्ड की सदस्या हैं। आप योरप-भ्रमण कर चुकी हैं।]







कुमारी ललिता

[आप भाषण देने में बड़ी पटु हैं। मदरास में आपने इस विषय में पारितोषिक भी प्राप्त किया है।]








हिंदी के सुप्रतिष्ठित उपन्यासकार
बाबू वृंदावनलाल वर्मा
बी० ए०, एल्-एल्० बी०

[आपको नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा हिंदी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'गढ़-कुंडार' पर २००) का पुरस्कार और सुधाकर-रौप्य-पदक प्राप्त हुआ है। किंतु आपने उदारता-पूर्वक वे २००) उसी के कला-भवन को दान कर दिए। आपका यह दान सराहनीय है।]



मिस्टर प्रेमचंद्र वली
बी० ए०, एल्-एल्० बी०, ऐडवोकेट, लाहौर

[इन्होंने एक घंटा १३ मिनट में अविराम रूप से ५,१३१ डंड करके डंड में समस्त संसार का रेकार्ड नीचे कर दिया है।]





राय कृष्णदासजी

[आप एक सुंदर कलाविद् हैं। चित्र-कला की उन्नति के साथ-साथ आप साहित्य की उन्नति के लिये भी सर्वदा तत्पर रहते हैं। स्वयं एक कलाकार, कवि, गद्य-काव्य तथा कहानी-लेखक के रूप में हिंदी-साहित्य-संसार में प्रसिद्ध हो चुके हैं। गत वर्ष आप काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के प्रधान मंत्री थे, अब उसके उप-सभापति हैं।]



श्रीमती एन्० के० सुंदरम्

[आप विरुधनगर की ऑनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त हुई हैं।]

देवनागरी-वर्णमाला में कुछ संकलन-दोष

[विद्यावाचस्पति श्रीगणेशदत्त शर्मा गौड़ 'इंद्र']



इस बात को सभी विद्वान् एक मुख से स्वीकार करते हैं कि आज पृथ्वी पर किसी भी देश की कोई वर्णमाला देवनागरी-वर्णमाला के समान सुसंकलित नहीं है । हमारे पूर्वज वर्ण-संकलन-कर्ताओं ने इसे इतनी उत्तमता से गूँथा है कि आज हम सगौरव इस संबंध में अपना सिर ऊँचा किए हुए हैं । उन भारतीय वर्णमालाओं के संबंध में हम कुछ भी कहना नहीं चाहते, जिनका ग्रंथन देवनागरी-वर्णमाला का अनुकरण है । बँगला, गुजराती, मोडी (मराठी), तामिली, तेलगू, गुरुमुखी (पंजाबी) इत्यादि वर्णमालाएँ बिलकुल नागरी-वर्णमाला का अनुसरण करती हैं । इतना होने पर भी, अर्थात् नागरी-वर्णमाला की आदर्श सुशृंखल रचना सामने होते हुए भी, प्रांत-भेद से यथावश्यक वर्णक्रम-संपादन में हेर-फेर किया है । गुरुमुखी में इसका प्राधान्य है । यथा—

ड, अ, इ, स, ह वर्णों के बाद कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग—देवनागरी की भाँति हैं, और य, र, ल, व, स, ड़, इस प्रकार अंतस्थ रक्खे हैं । उक्त वर्ण-क्रम कुछ ठीक नहीं है । ए, ऐ बनाने के लिये 'अ' पर मात्रा लगाकर अे, अै, इस प्रकार बना लिया जाता है । अस्तु ।

भारत में दो लिपियाँ विदेशी भी प्रचलित हैं—१ उर्दू और २ अँगरेज़ी । इन दोनो लिपियों की वर्णमाला बड़ी ही विशृंखल है । स्वर और व्यंजनों को एक ही में मिलाकर रख दिया है । उर्दू में कोई ३१ वर्ण हैं । इनमें स्वर भी हैं, फिर भी ज़ेर, ज़बर और पेश के विना काम नहीं चलता । अकेले 'ज' के लिये छ अक्षर हैं—१ जीम, २ ज़ाल, ३ जे, ४ ज़े, ५ ज़्वाद और ६ ज़ोय । सकार के लिये चार अक्षर हैं—१ से, २ सीन, ३ शीन और ४ स्वाद । 'ह' तीन हैं—१ हे (ح), २ हे (ہ) और ३ दोचश्मी हे (ھ) । 'त'कार के लिये दो वर्ण हैं, १ ते और २ तोय । सारांश यह कि वर्णाडंबर तो ख़ूब और मतलब कुछ नहीं । वर्ण-संकलन तो बिल्कुल ही भद्दा है । चाहे जहाँ, चाहे जिस अक्षर को जा रक्खा है । 'अलिफ़' पहला अक्षर है, जो 'अ' का काम देता है । परंतु 'ऐन' भी अकार का काम करता है, वह चौबीसवें नंबर पर है । 'से' छठा है, तो 'सीन' अठारहवें स्थान पर है । 'जीम' सातवें स्थान पर है, 'ज़ाल' तेरहवें नंबर पर है, 'जे', 'ज़े' का सोलहवें और सत्रहवें नंबर पर मुक़ाम है, तो ज़्वाद को इक्कीसवें स्थान पर जा रक्खा, और 'ज़ोय' को तेईसवीं जगह में रक्खा है । मतलब यह कि वर्ण-संकलन का क्रम कुछ भी नहीं है ।

यही दशा अँगरेज़ी-वर्णमाला की है । इस वर्ण-माला में २६ अक्षर हैं । स्वर-व्यंजन आपस में गड्डमड्ड हैं । 'ए' स्वर है । यह पहले रक्खा गया है । दूसरा स्वर 'ई' पाँचवें नंबर पर विराजमान है । तीसरा 'आइ' नवें स्थान पर बैठा है । बेचारा 'ओ' पंद्रहवें नंबर पर रक्खा गया है । 'यू' तो सबसे अंत में, इक्कीसवें स्थान पर, है । दो अर्द्ध-स्वर (Semi-vowel) भी हैं, जिन्हें 'डब्ल्यू' और 'वाई' कहते हैं । कहिए, कितनी बारीकी है ! अर्द्ध-स्वर तक रक्खे गए हैं ! परंतु वर्णमाला का संकलन बहुत ही ऊटपटाँग, बेतुका और अपूर्ण है । त, थ, द, ध, ख, घ, ङ, छ, झ, ञ, ठ, ढ, ण, भ, श के लिये कोई स्वतंत्र वर्ण ही नहीं है । इनको बनाने के लिये अक्षरों को मिलाकर काम निकाल लिया जाता है । 'टी' और 'एच्' मिलने से तीन प्रकार का उच्चारण होता है—१ 'थ', २ 'द' और ३ 'ठ' । क्या वैचित्र्य है ! अस्तु ।

देवनागरी-वर्णमाला का गुंफन बहुत ही उत्तम, स्वाभाविक और सरल है। इसके वर्ण उच्चारण-स्थान के अनुसार ही गूँथे गए हैं। जितने भी स्वर हैं, सबों को पहले ही रख दिया है, क्योंकि व्यंजनों को इनकी सहायता अपेक्षित है। स्वर-संकलन भी मनमाना नहीं है। वह भी उच्चारण-स्थानानुसार ही है। व्यंजन स्वरों के बाद अपने-अपने वर्ग में रक्खे गए हैं। संयुक्ताक्षर सबके बाद में जा रक्खे हैं। कैसी सुंदर रचना है! परंतु इतना होने पर भी देवनागरी-वर्णमाला में थोड़ा-सा दोष है। विद्वानों का ध्यान मैं इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ।

दोष

सबसे पहली बात यह है कि उच्चारण-स्थान के क्रमानुसार ही वर्ण-क्रम होना चाहिए। हमारे शरीर में शब्दोच्चारण के लिये पहले कंठ, बाद में तालु, इसके बाद दंत और अंत में ओष्ठ, ये क्रमशः शरीर के स्थान हैं। इन्हीं उच्चारण-स्थानों के अनुसार वर्ण-संकलन होना आवश्यक है। वर्तमान रचना इस प्रकार है—

उच्चारण-स्थान	स्वर	उच्चारण-स्थान	व्यंजन	अंतस्थ और ऊष्म
कंठ	अ, आ	कंठ	क, ख, ग, घ, ङ	ह,
तालु	इ, ई	तालु	च, छ, ज, झ, ञ	य, श,
ओष्ठ	उ, ऊ	मूर्द्धा	ट, ठ, ड, ढ, ण	र, ष,
मूर्द्धा	ऋ, ॠ	दंत	त, थ, द, ध, न	ल, स,
दंत	ऌ, ॡ	ओष्ठ	प, फ, ब, भ, म	
कंठ-तालु	ए, ऐ	दंत-ओष्ठ		व
कंठ-ओष्ठ	ओ, औ			

यह वर्ण-संकलन ठीक नहीं है। यदि मुख के उच्चारण-स्थानों के क्रमानुसार रक्खा जाय, तो वर्ण-रचना इस प्रकार होगी—

उच्चारण-स्थान	स्वर	उच्चारण-स्थान	व्यंजन	ऊष्म और अंतस्थ
कंठ	अ, आ	कंठ	क, ख, ग, घ, ङ	ह,
तालु	इ, ई	तालु	च, छ, ज, झ, ञ	य, श,
दंत	ऌ, ॡ	दंत	त, थ, द, ध, न	ल, स,
ओष्ठ	उ, ऊ	ओष्ठ	प, फ, ब, भ, म	
मूर्द्धा	ऋ, ॠ	मूर्द्धा	ट, ठ, ड, ढ, ण	र, ष,
कंठ-तालु	ए, ऐ			व,
कंठ-ओष्ठ	ओ, औ	दंत-ओष्ठ		

इस कोष्ठक के अनुसार वर्णमाला इस प्रकार तैयार होती है—

स्वर

अ, आ, इ, ई ऌ, ॡ, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः।

व्यंजन

क, ख, ग, घ, ङ । च, छ, ज, झ, ञ ।

त, थ, द, ध, न । प, फ, ब, भ, म ।

ट, ठ, ड, ढ, ण । ह, य, श, ल, स, र, ष, व ।

यदि उच्चारण-स्थानानुसार रखना ठीक न हो, तो फिर स्वर-संकलन-अनुसार इस प्रकार व्यंजन, अंतस्थ और ऊष्म रक्खे जाने चाहिए—

स्वर

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, लॄ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः ।

व्यंजन

क, ख, ग, घ, ङ । च, छ, ज, झ, ञ ।

प, फ, ब, भ, म । ट, ठ, ड, ढ, ण ।

त, थ, द, ध, न । ह, य, श, र, ष, ल, स, व ।

यदि व्यंजनों को वैसा ही रखना हो, वर्ग-क्रम न बिगाड़ना हो, तो स्वरों को इधर-उधर करना चाहिए, अर्थात् 'उ, ऊ' को 'लृ, लॄ' के बाद रखने से व्यंजनों का वर्तमान वर्ग-क्रम जैसा-का-तैसा रक्खा जा सकेगा। सारांश यह कि किसी भी प्रकार देखा जाय, देवनागरी-वर्णमाला के संकलन में कुछ दोष अवश्य हैं, जिन्हें मिटाने की ओर विद्वानों का ध्यान जाना आवश्यक है। वर्तमान विश्रृंखलता हटकर यदि देवनागरी-वर्णमाला सुश्रृंखल हो जायगी, तो बड़ा ही अच्छा होगा।

अंतस्थ और ऊष्म का क्रम तो बिलकुल ही ठीक नहीं है। इनमें सर्वथा परिवर्तन की आवश्यकता है, जो ऊपर बताए गए दो ढंगों से हो सकता है।

रहा संयुक्ताक्षरों के विषय में। इस संबंध में इतना ही कहना है कि 'क्ष त्र ज्ञ' का क्रम क्ष, ज्ञ, त्र होना चाहिए। क्योंकि प्रथम वर्ग कवर्ग का क+श=क्ष होता है। दूसरे वर्ग तवर्ग का ज+ञ=ज्ञ होता है, और तवर्गीय (हमारे बताए परिवर्तन के अनुसार तृतीय वर्ग, किंतु वर्तमान में चतुर्थ वर्ग) त+र=त्र होता है। अतएव क्ष ज्ञ त्र ही ठीक क्रम होता है। 'त्र' को बीच में रखने का कारण ही समझ में नहीं आता। आशा है, वर्ण-क्रम-रचना की ओर विद्वानों, नागरी-प्रचारिणी सभा के सभासदों तथा हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के संचालकों का ध्यान शीघ्र ही आकृष्ट होगा, और इसमें जो दोष हैं, उन्हें हटाया जायगा *।

* इस संबंध में जो लेख हमारे पास आएँगे, उन्हें हम सहर्ष स्थान देंगे।—सुधा-संपादक

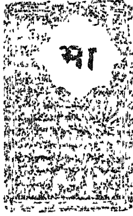
हरि-भक्तों से

[श्रीदुलारेलाल भार्गव]

हरिजन तें चाहो भजन, तौ हरि-भजन फ़िज़ूल ;
जन द्वारा ही करत हैं, राजन मिलन कबूल ।

मैथिल कवि हर्षनाथ

[श्रीयुत जनार्दन झा एम्० ए०]



षा-साहित्य में मिथिला का स्थान अत्यंत गौरव-पूर्ण है। यद्यपि चंद-बरदाई हिंदी के प्रथम महाकवि माने जाते हैं, किंतु उनकी रचना में अत्यधिक प्राकृत एवं अपभ्रंश का सम्मिश्रण है। मैथिली का ही नहीं, वरन् भाषा-मात्र का सर्व-प्रथम गद्य-काव्य ज्योतिरीश्वराचार्य का 'वर्णन-रत्नाकर' इनसे भी पूर्व का है, जिसकी एकमात्र प्रति एशियाटिक सोसाइटी-कार्यालय, कलकत्ते में रक्षित है। इसकी भाषा की विशदता एवं आधुनिक मैथिली के संग साम्य देखकर आश्चर्य होता है। महाकवि विद्यापति यद्यपि सूर और तुलसी से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व हो गए हैं, तथापि ऐसी मधुर-कोमल-कांत पदावली अन्यत्र दुर्लभ है। मैथिल-कोकिल की अलौकिक काकली से मिथिला की ही नहीं, वंग की भी शस्य-श्यामला भूमि परिप्लावित है। कवि-सम्राट् रवींद्र एवं शतशः अन्यान्य कवि आज भी इन्हें अपना पथ-प्रदर्शक मान अपने को धन्य समझते हैं।

किंतु मैथिली साहित्य का अशेष सौंदर्य अत्यंत अंधकार में निहित है। इसका कारण मैथिल विद्वानों का संस्कृत का अनुचित पक्षपात एवं हिंदी-संसार की उपेक्षा ही है। न-जाने कितने उत्कृष्ट कवियों के मानस-प्रसून स्वतः ही बिखर गए, तथा प्रतिवर्ष जो मिथिला में अग्निदेव का तांडव-नृत्य होता है, उसमें कितने ग्रंथ-रत्नों की एकमात्र अलभ्य प्रति भस्मसात् हो गई! आज जो विद्यापति अथवा गोविंददास झा की सुधामयी उक्तियाँ अवशिष्ट हैं, उसका श्रेय बंगालियों के सत्साहित्य-प्रेम एवं मिथिला की स्त्रियों को है। अन्यथा मैथिल विद्वान् तो उन्हें काल-कालिंदी के प्रवाह में विसर्जित कर ही चुके थे।

बहुतों की यह भ्रम-पूर्ण धारणा है कि मिथिला का साहित्य विद्यापति को लेकर ही इदमित्थं है, किंतु यह सर्वथा निराधार है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल-पर्यंत शतशः सत्कवियों ने इस भूमि को समलंकृत किया है। संस्कृत की कथा ही क्या, भाषा-साहित्य भी यहाँ का विशद एवं गंभीर है।

गत शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दरभंगाधिपति महाराज श्रीलक्ष्मीश्वरसिंह बड़े दानी एवं यशस्वी थे। पंडितों एवं कवियों के निमित्त तो मानो कल्पतरु-रूप ही थे। अतः इनके दरबार में एक अपूर्व साहित्यिक वातावरण की सृष्टि हुई। इस साहित्योद्यान के दो प्रफुल्लित पारिजात हर्षनाथ एवं कविवर चंद्रनाथ झा उपनाम 'चंदा कवि' हैं। चंद्रनाथ एक उत्कृष्ट कवि थे, और इनकी 'मिथिला-रामायण' सुप्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त इनकी एक 'हरगौरी-पदावलि' डॉक्टर श्रीगंगानाथ झा द्वारा इंडियन प्रेस से मुद्रित हुई है। इनके अन्यान्य ग्रंथ, जिनमें मिथिला का साहित्यिक एवं राजनीतिक इतिहास भी है, अभी अप्रकाशित ही हैं। प्रस्तुत लेख का संबंध द्वितीय कवि हर्षनाथ से है।

हर्षनाथ झा का जन्म सन् १८४६ ई० में, दरभंगा-ज़िले के अंतर्गत उजान-ग्राम में, हुआ। आप श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। संस्कृत के यद्यपि बड़े विद्वान् एवं प्रसिद्ध वैयाकरण थे, तथापि भाषा-साहित्य की ओर ही आपकी विशेष प्रवृत्ति थी। इनका एक ग्रंथ 'उषा-हरण'-नाटक प्रकाशित है, किंतु इनकी विशेषता विद्यापति के अनुकरण पर लिखित स्फुट कविताओं में है। एक-एक पद्य कवि के मानसिक भावों का नैसर्गिक चित्र है। इसकी नवनवोन्मेषिनी प्रतिभा का प्रतिबिंब है। रस-सिद्ध कवीश्वर किसी भी भाषा में मधुर शब्द-विन्यास के द्वारा काव्य-सुधा की अजस्र वृष्टि कर सकता है—

"उत्ति विसेसो कव्वो, भाषा जा होइ सा होदु।"
—'राजशेखर'

सौंदर्य का सम्मोहन अनिवार्य है। मनुष्य स्वभाव से ही सौंदर्य-प्रिय होता है। अरुणोदय की अरुणिमा-आभा, अस्तोन्मुख सहस्ररश्मि के अनुपम राग से अनुरंजित पश्चिमाचल की रक्तिमा-रेखा, कलकलनादिनी कल्लोलिनी की सुमधुर ध्वनि हृदय को एक अनिर्वचनीय आनंद से परिपूर्ण कर देती है, किंतु केवल प्राकृतिक सौंदर्य से ही मानवीय भावों की तृप्ति नहीं होती, वह मानव-जीवन में भी इस सौंदर्य को उपलब्ध करने की चेष्टा करता है। जिस चैतन्य शक्ति एवं अनुपम कांति का अनुभव उसने प्रकृति में किया है, उसे वह मनुष्य-जगत् में भी प्रत्यक्ष करना चाहता है। जहाँ जीवन की ज्योति पूर्ण कला से प्रकाशित है, वहीं यथार्थ में सौंदर्य है। बाह्य प्रकृति की एक-एक रम्य वस्तु प्रिय के अंग-प्रत्यंग में प्रतिबिंबित दिखलाई पड़ती है। यही मानवी भावों का प्राकृतिक दृश्य के संग सामंजस्य है। अतएव एक अपूर्व रूप-रेखा देख कवि के हृदय में प्रबल भाव-तरंगें उठने लगती हैं, और उसका सरस अनुभव काव्य-सुधा-धारा के रूप में प्रवाहित होता है।

(१)

"जाइत देखलि नवनागरि रे नवकंचन रेहा;
त्रिभुवन विजय मनोरथ रे जनि रचल विदेहा।"

आज नायिका की अपूर्व रूप-माधुरी की एक झलक देख पड़ी। वह जा रही थी, और एक क्षण में ही आँखों से ओझल हो गई। हृत्पट पर उसका पूरा अक्स खिंच गया। कैसी अनुपम कांति थी, और कैसी मनोहारिणी माधुरी! मानो कंचन की नवीन, अतएव विमल दीप्तिमान रेखा! कवि के स्वप्न-समान, विश्व के विस्मय-सी अभिरामा! ज्ञात होता है, अनंग ने त्रिभुवन-विजय की आकांक्षा से इस अनुपम सौंदर्य की 'कल्पना' की है। हाँ, ठीक है; अनंग के सिवा अंगवाला ब्रह्मा ऐसी रूप-रेखा कैसे खींच पाता? रचना-काल में अंग-स्पर्श होने पर मालिन्य का आना अनिवार्य था, फिर ऐसी निरवद्य-निर्मल रूप-रेखा कैसे हो पाती, अतः विधाता के स्थूल हाथों से ऐसी रचना का होना नितांत असंभव है!

"तड़ित वेकत हो अ निज रुचि रे परगासल कामा;
तसु तनु लखि लज्जित हो अ रे
पुनु - पुनु गत धामा।"

दामिनी अपनी दीप्ति दिखाने को बार-बार प्रकट होती है, किंतु इस अलौकिक रूप-रेखा को देख लज्जित हो कृष्ण जलद-पट से अपना मुख छिपा लेती है। केवल दामिनी ही नहीं, इसे देखकर तो—

"कोउ जल में कोउ वन में रहे दुरि,
कोउ गगन समाने।"
"लसत कुटिल कच लोचन रे के कह उपमाने;
मीन-जुगल बंसी लय रे बेधल पंचवाने।"

पवन के मंद झोंकों से लहराती हुई अलकें उस 'लावण्य-निधि' में अठखेलियाँ करती हुई चंचल आँखों पर आ पड़ी हैं, मानो मदन ने मीन-युगल को विद्ध करने के निमित्त काले रेशम की डोरी में बंसी लगाई है। भला, इन क़ज़ाक़ी आँखों को छेड़ने का और साहस ही किसे है?

(२)

नैसर्गिक सौंदर्य के दर्शन से कवि का हृदय चकित और स्थगित हो जाता है, और उसके मुख से निर्गत होती हैं विस्मयातिरेक से प्रेरित भाव-तरंगें—

"माधव, देखलि अपुरब रामा;"
"देख इत जनम सफल कय मानलि
पूरल लोचन कामा।"

आँखें सफल हो गईं, और जीवन सार्थक हो गया। वह नैसर्गिक विभूति की एक अलौकिक झाँकी थी।

"तड़ित चपल रुचि, कठिन
कनकमय वल्ली, करि अवधाने;
निज कौसल पर गासल
कंजज तसु तनु करि निरमाने।"

ब्रह्मा ने प्रथम जड़ प्रकृति का निर्माण किया, और सबसे उत्कृष्ट वस्तुएँ बनाईं विद्युत्प्रभा एवं स्वर्ण-लता। किंतु फिर भी उसे संतोष न हुआ। विद्युत्प्रभा की कांति चंचल एवं क्षणस्थायी है, और कनक-वल्ली यद्यपि चिरस्थायी है, तथापि उसमें कोमलता का अभाव है। अतः उसका सृष्टि-कौशल सदोष रहा। अस्तु। अलौकिक आभा एवं सुकुमारता का अपूर्व सम्मिश्रण कर इस "काऽपि सौन्दर्यमुद्रा" का निर्माण किया।

"मदन-धनुष हरनयन दहन तह स्यामल केसर सेषे ;
हेरि चतुरानन भाग युगल करि करु तसु भौंह बिसेषे।"

पुष्प-धन्वा के धनुष को हर-कोपानल में भस्मसात् देख ब्रह्मा ने उस अवशिष्ट श्यामल केसर को दो भागों में विभक्त कर उसके भौंह-युगल को बनाया। जिस प्रकार मदन अनंग होने पर भी विश्व को क्षुब्ध करने में समर्थ है, उसी प्रकार उसके धनुष के भस्मावशेष से निर्मित ये भौंहें भी 'ईछन-तीछन बान' द्वारा विदग्ध हृदय को सदा क्षत-विक्षत करती हैं।

(३)

"आजु देखलि एक कामिनि रे नव दामिनि-रेहा ;
नील वसन लखि अवतरु रे जनि जलद सनेहा।"

ग्रीष्म के प्रचंड ताप से उत्तापित हृदय नव जलद में प्रथम चंचला की चमक देख नाच उठता है। कृष्ण-मेघमाला में विद्युत् की दीप्ति की नाईं नील-वसन के अभ्यंतर में मैंने उस कांतिमयी कामिनी को देखा, और विना कुछ कहे ही अपने को सदा के लिये बेंच दिया—

"चुपचुपाते उसे दे आए दिल एक बात पै हम ;
माल महँगा नज़र आता, तो चुकाया जाता।"
—हाली

"भिशत गिरिश नयनानल रे जनि लज्जित चाने ;
तसु मुख हेरि नहिं वर जन रे सह निअ अपमाने।"

उस नायिका के मुख के सौंदर्य से लज्जित हो चंद्रमा अपने को शिव-नेत्राग्नि में आहुति कर देना चाहता है। अतएव वह उनके तृतीय नेत्र के सम्मुख स्थित है। इस संसार में श्रेष्ठ पुरुष अपमान सहन कर जीवन धारण करना नहीं चाहते।

चंद्रमा ही क्यों, खंजन भी तो उसकी 'अमल-कमल-दल-गंजन' आँखों की चपलता और विमलता देख वन-वास ले रहा है !

"अमल-कमल-दल-गंजन रे लखि नयन-बिलासे ;
जनि लज्जित भय खंजन रे करि बिपिन निवासे।"
"जुब-जन मानस-हाटक रे अनुछन कर चोरी ;
ते जनि कुच जुग बान्हल रे दृढ़ कंचुक जोरी।"

प्रायः युवक दिल की चोरी करते हैं, हृदय-हाटक (सुवर्ण) के निमित्त लुब्ध रहते हैं। इसीलिये कामिनी ने कंचुकी से दृढ़ करके अपने हृदय को बाँध रक्खा है। वाह, हृदय को कंचुकी से बाँधे रखने का कैसा अच्छा कारण आपने ढूँढ़ निकाला है !

"हर्षनाथ भन मन दय रे नागरि अनुपामा ;
पुरुष जनम तप देखल रे लोचन-अभिरामा।"

अवश्य ही प्राक्तन पुण्य के प्रभाव से यह नैसर्गिक दर्शन प्राप्त होता है। इस दर्शन में ही अलौकिक आनंद है।

(४)

मान के विना प्रेम फीका है। स्नेह के उत्कट माधुर्य को रुचिकर बनाने के निमित्त प्रेम-कलह अत्यावश्यक है। अन्यथा भावावेश में कुछ शिथिलता आ जाती है। किंतु प्रियतमा की कुछ टेढ़ी भौंहें, कोमल कमल-से मुख पर मलिनता की एक रेखा हृदय को अधीर कर देने के लिये पर्याप्त है। प्रेमी हृदय प्रेम-प्रतिमा के सामने घुटना टेक देता है—

"करिअ न हृदय कठोर ;
अवगुन परिहरि परसन भय
धनि पूरिअ अभिमत मोर।
आनन मलिन निहार तोहर
धनि, घुमय - फिरय सभ ठाम ;
तुअ मुख चान चकोर मोर मन,
कतहुँ न कर बिसराम।"

एक अनुगत हृदय पर ऐसी वक्र दृष्टि क्यों ? यह स्नेह-सुमनांजलि स्वीकार कर सेवक पर अनुग्रह करो। तुम्हारा मलिन मुख देखकर हृदय में एक हूक-सी लग जाती है।

"सालैं अजौं उर माँझ गड़ी।
वे बड़ी अँखियाँ उमड़ी अमुवानि सों।"

चित्त को कहीं भी चैन नहीं होता, मन-चकोर सदा मुख-चंद्र की ओर लगा रहता है।

"Wherever I roam, whatever realms to see,
My heart untravelled fondly turns to thee."

"चान-किरन, चंपक-दल, चंदन,
कोकिल-पंचम गाने;
तुअ विगलित मन हेर इत अनुछन,
लगइछ अनल-समाने।
जाचक जन नहिं करिअ विमुख धनि,
मन गुनि बुझिअ से आनि;
मधु तेजि मधुकर फिरय कंटक उर,
केतकि काँथिक हानि।"

जब तक तुम प्रसन्न नहीं होतीं, संसार की सभी रम्य चीज़ें विषमय हैं। याचक को निराश करना उचित नहीं। मधु-लुब्ध मधुप के अतिरिक्त पुष्प के सौंदर्य की सार्थकता ही क्या ? फिर यदि कंटक के भय से मधुप अन्यत्र भटके, तो इसमें केतकी की ही हानि है।

(२)

विरह-वेदना की करुण ध्वनि अत्यंत मर्मस्पर्शिनी होती है। कोमल कंठ से निर्गत एक आह हृदय को तरंगित कर देती है। मनुष्य की कथा ही क्या, पशु एवं वनस्पतियाँ भी समवेदना से आकुल हो उठती हैं। परित्यक्ता सती सीता की करुण-क्रंदन-ध्वनि सुनकर वन में शोक की एक धारा उमड़ पड़ती है; उसमें जड़-चेतन, पशु-पक्षी सभी मग्न-से दिखाई पड़ते हैं।

"नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षाः
दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः;
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभाव-
मत्यंतमासीद्रुदितं वनेऽपि।"

यथार्थ में जिस कविता में विश्व-वेदना का स्वर नहीं, वह माधुर्य से हीन है। अतः कवियों का वियोग-वर्णन अत्यंत मनोरम होता है। प्रेम के आनंद में वियोग-दुःख के सम्मिश्रण से काव्य में एक दूसरा ही सौंदर्य आ जाता है।

सखि, सखि! को न परि राखव धीरे;
देखह-देखह सखि! पहु परदेस
लखि देह दह दहिन समीरे।
"चान-किरन, चंपक-दल, चंदन
से सभ दुख दय बीते;
परम सिसिर जत देह दहै तत,
बिन पहु के ओअन हीते।"

प्रिय के वियोग में शीतल-मंद-सुरभित मलय-समीर दाहक प्रतीत होता है, शुभ्र चाँदनी, सुकोमल चंपक एवं चंदन विष-तुल्य ज्ञात होता है। सच है, सुख के साथी सभी हैं, दुख के कोई नहीं।

"विपदि हन्त सुधापि विषायते।"
"कुसुमित उपवन नयन दहन सन
श्रुति दह कोकिल गाने;
मदन-वेदन तन असह सहब कत
छन-छन निकसत प्राने।"

न-जाने यह वेदना कब तक सही जायगी ? प्रतिक्षण प्राणों का संशय है, किंतु पिया-मिलन की आस है, आशा लता में अरुझाकर रुकी हुई है।

"सिव-सिव जिअओन न जाय,
आस अरु झायल रे।"
—विद्यापति

"आतप बितिगेल, जलद समयभेल,
चौदिसि अविरह मेहा;
एहन समय पहु परदेस थिर रहु,
अजहुँ न आयल गेहा।"

प्रतीक्षा करते-करते आँखें थक गईं, वसंत व्यतीत हुआ, ग्रीष्म भी आया और चला गया, किंतु

वह न आया ! चारो दिशाएँ मेघ की अविरल श्रेणी से परिपूर्ण हो गईं। कृष्ण जलद की गंभीर गर्जना हृदय को कंपायमान कर देती है, किंतु "एहन समय पहु परदेस थिर रहु, अजहुँ न आयल गेहा।"

(६)

व्यथित हृदय को किसी भी प्रकार से शांति नहीं होती। असहाय समझकर चंद्रमा तीक्ष्ण रश्मियों के प्रहार से जर्जरित कर रहा है—

"सखि, सखि ! करिअ एकर उपचारे ;
रहत विकल मन, दहत सतत तन ,
चान - किरन दुरवारे ।
कुमुद - बंधु, छिर - सिंधु तनूभव ,
कुंद - कुसुम सन धामे ;
एहन चान तन, दहत सतत छन ,
असित हृदय परिनामे ।"

प्राणों के वैरी चंद्रमा का परिचय कितना विशद है ! वह कमनीय-कलेवरा कुमुदिनी का प्रिय बंधु है। क्षीर-सिंधु से उसकी उत्पत्ति हुई है, और उसका आवास अत्युज्ज्वल, कुंद-कुसुम-सदृश विमल है। किंतु, फिर भी, मनःप्राण को आकुलित कर रहा है। यह 'असित हृदय परिनामे' है। जिसका हृदय ही काला है, वह कठिन, क्रूर क्यों न हो। सूरदासजी भी कवि-कंठ से स्वर मिलाकर कह रहे हैं—"ऊधो, कारे बहुत बुरे।"

बड़वानल जक उदर गोइ धरु
किय जलनिधि नहिं चाने ;
कालकूट-सम जानि मदन-हर,
किय न कमल तसु पाने ।"

ऐसा दुष्ट विश्व में प्रकट ही क्यों हुआ ? समुद्र ने बड़वानल के सदृश अपने उदर में ही क्यों न इसे छिपा रक्खा ? अथवा शिवजी ने कालकूट के संग इसे भी उदरस्थ क्यों न कर लिया ?

"राहु असन करु, तइओ जिवन धरु,
शशि विरहिनि जिव मारे ;
जे जन कुटिल कठिन दुखदायक,
से जन होअ दुरवारे ।"

यद्यपि राहु इसे सर्व ग्रास कर लेता है, तथापि इसका अस्तित्व नष्ट नहीं होता। यह चंद्र असहाय विरहिणी कामिनियों के जीवन का ग्राहक होता है। संसार के दुष्ट जीव दुर्निवार्य हैं, मृत्यु भी इनसे भय खाती है।

(७)

वासंती वैभव के विकास से विकसित विश्व की सुमन-समृद्धि वियुक्त हृदय को और भी विकल कर देती है—

"समय वसंत पिया परदेस ;
असह सहब कत विरह - कलेस ।
सुमिरि-सुमिरि पहु रहय न धीर ;
मदन - दहन तइ दगध सरीर ।
मधुकर - गुंजित, कुसुमित कुंज ;
लाग नयन जनि पावक - पुंज ।
सीतल पंकज चंपक - माल ;
हृदय दहय जनि विषधर - जाल ।
श्रवण - दहन कोकिल - कलगान ;
चान - किरन तन अनल - समान ।
हर्षनाथ कवि मन दय गाव ;
नृप लक्ष्मीश्वरसिंह बुझ भाव ।"

इस प्राचीन संसार में कोई भी वस्तु नवीन नहीं, किसी भी कवि का भाव पूर्णतया उसकी स्वतंत्र कल्पना नहीं। कवि अपनी कला द्वारा विश्व-भव का ही अन्वेषण करते, और उसी में अपनी प्रतिभा-बल से नूतन चमत्कार की अभिव्यंजना करते हैं। नैसर्गिक आनंद की सृष्टि से स्वयं विमुग्ध होना और विश्व को विमोहित करना ही कवि का कार्य है। उसके भावों का अनुभव सभी देश एवं जाति के लोग करते हैं। देश या भाषा उसके भावों का नियंत्रण नहीं करती। प्रत्येक भाषा की एक विशेषता होती है। कवि की कला यही है कि वह विशेष में भी निर्विशेष को प्रकट करता है। कविवर हर्षनाथ ने

भी अपनी मातृभाषा मैथिली में कविता की है, और वह है उत्कृष्टोत्कृष्ट। इनके भावों की विशदता, कल्पना की कोमलता एवं रचना का माधुर्य प्रशंसनीय है। इनकी छंद-योजना एवं सुकुमार शब्दों का चयन कविता-स्रोत की गति को श्रुति-मधुर बनाता है। इनकी अनोखी कल्पना विदग्ध-हृदय-विमुग्धकारी एवं अत्यंत हृदय-ग्राहिणी है।

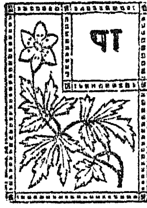
"लसत कुटिल कच लोचन रे के कह उपमाने;
मीन-जुगल बंसी लय रे बेधल पंचबाने।
मदन-धनुष हर-नयन दहन तह,
स्यामल केसर सेषे;
हेरि चतुरानन भाग जुगल करि
करु तसु नैन बिसेपे।"

इत्यादि पद अवश्य ही हृदय को एक अनिर्वचनीय भाव से परिपूर्ण कर देते हैं।

साहित्य की सौंदर्य-सृष्टि किसी भी भाषा में क्यों न हो, वह आदरणीय है। वह किसी एक देश अथवा जाति की संपत्ति नहीं, जो 'सत्यं, शिवं, सुंदरं' है, वह कहीं का हो, उसका स्वागत करने के लिये सभी को तैयार रहना चाहिए।

पैग़ंबर ज़रदुश्त

[श्रीयुत शंकरराव जोशी]



पारसी लोग सदियों से भारत में रहते हैं। शिक्षा, वाणिज्य आदि में भारत की कोई दूसरी जाति उनका मुक़ाबला नहीं कर सकती। पारसी-जाति अपने को भारतीय मानती है, और गत राष्ट्रीय युद्ध में पारसियों ने अपूर्व त्याग किया था। इस जाति के धर्म के संबंध में हिंदी-भाषा-भाषी जनता कुछ नहीं जानती। और, यही कारण है कि इस धनी जाति के रीति-रिवाजों और धार्मिक विचारों के संबंध में कई मन-गढ़ंत क़िस्से सुने जाते हैं। विद्वानों को चाहिए, वे इस ओर ध्यान दें, और पारसी-धर्म के संबंध में अपने विचार प्रकट करके हिंदी-भाषा-भाषी जनता को इस धर्म के स्थूल सिद्धांत समझाने का प्रयत्न करें। इस लेख में पारसी-धर्म के पैग़ंबर हज़रत ज़रदुश्त की जीवनी पर हम संक्षेप में लिखेंगे।

आधुनिक ईरान के पैग़ंबर हज़रत ज़रदुश्त स्मरणातीत काल में इस लोक में अवतीर्ण हुए थे। ज़रदुश्ती साहित्य से यह भी पता नहीं चलता कि वह कब, कहाँ पैदा हुए थे, और उन्होंने कब अपने को पैग़ंबर घोषित किया। इधर वर्षों से पश्चिमी विद्वान् प्रयत्न कर रहे हैं, और उन्होंने इस पर प्रकाश भी डाला है। किंतु अभी तक विद्वानों में मतैक्य नहीं हो पाया है। कुछ विद्वान् मानते हैं कि हज़रत ज़रदुश्त का जन्म सिकंदर 'महान्' से २५८ वर्ष पहले हुआ था, किंतु इनसायक्लोपीडिया में इस मत को ठीक नहीं माना है। सामान्यतः माना जाता है कि ज़रदुश्त की धार्मिक पुस्तक 'अवेस्ता' ज़िंद-भाषा में लिखी गई है। किंतु प्रोफ़ेसर ब्राउन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ़् परशिया' में इस बात को सप्रमाण सिद्ध कर दिखाया है कि 'अवेस्ता' की भाषा 'ज़िंद' नहीं है। 'अवेस्ता' एक विशेष भाषा में लिखी गई है, जिसमें संसार की कोई अन्य पुस्तक नहीं लिखी गई है। 'अवेस्ता' का वह भाग, जिसे गाथा कहते हैं, कुछ भिन्न भाषा में लिखा गया है। सासा के ज़माने से पहले 'अवेस्ता'-शब्द का पता नहीं चलता। ऑपर्ट ने दारा के एक शब्द 'अपास्ताम' को ही अवेस्ता मान लिया है। 'अवेस्ता' और ज़िंद का वास्तविक अर्थ यह है कि ज़रदुश्त पर जो पवित्र ग्रंथ उतरा, वह अवेस्ता है, और पहलवी भाषा में जो विवेचन (Commentary) किया गया है, वह ज़िंद है।

कुछ इतिहासकारों का कथन है कि ज़रदुश्त ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हैं, किंतु यह बात ग़लत है। अनेकानेक ग्रंथों से ज़रदुश्त के ऐतिहासिक व्यक्ति होने का प्रमाण मिलता है।

अवेस्ता और गाथा में ज़रदुश्त के ऐतिहासिक पुरुष होने का पर्याप्त प्रमाण मिलता है। ग्रीक लोगों के इतिहास में भी ज़रदुश्त के संबंध में सविस्तर वर्णन मिलता है। उन्होंने 'मोबेदों' की जमाअत तैयार की थी, और यूनानी इतिहासकार स्वीकार करते हैं कि पायथागोरस मोबेदों का शिष्य था। कहा जाता है, अफ़लातून भी उनका शिष्य होना चाहता था। तीबरी और इलनुल असीर की अरबी तवारीख़ों में लिखा है कि ज़रदुश्त पेलिस्टाइन के रहनेवाले और हरीमिया के शिष्य थे। वह पेलिस्टाइन से आइनर ओजान होकर बलख़ गए थे, जहाँ के राजा ने उनका धर्म स्वीकार कर लिया था। अरब के इतिहासकार ज़रदुश्त को 'मजूसियों का सरदार' और 'मजूसी-धर्म' का हामी मानते थे।

जन्म-काल

कई यूनानी इतिहासकारों का मत है कि ज़रदुश्त हज़रत ईसा से क़रीब छ हज़ार वर्ष पहले हो गए हैं। अरिस्टाटल का भी यही मत है। किंतु आधुनिक विद्वान् इस बात को नहीं मानते। कुछ विद्वानों का कथन है कि भगवान् बुद्ध और हज़रत ज़रदुश्त समकालीन थे। दूसरे कुछ विद्वानों का मत है कि वह 'वैदिक काल' में पैदा हुए थे। पहलवी ग्रंथों में लिखा है कि ज़रदुश्त का जन्म सन् ६६० और ५८३ फ़सली के बीच में हुआ था। अलबेरूनी का कहना है कि पैग़ंबर ज़रदुश्त ने सिकंदर महान् से क़रीब ३२० वर्ष पहले जन्म ग्रहण किया था।

जन्म-भूमि

पैग़ंबर ज़रदुश्त की जन्म-भूमि के संबंध में भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि वह बलख़ में पैदा हुए थे, और वहीं उन्होंने अपना मज़हब फैलाया था। कुछ लोग मीडिया या आज़रबेन को उनकी जन्म-भूमि बतलाते हैं। अरब और सीरिया के इतिहासकारों का मत है कि ज़रदुश्त पश्चिमी ईरान में पैदा हुए थे, और बलख़ में उन्होंने अपना धर्म फैलाया था। ज़िंद, फ़ारसी और पहलवी भाषा के ग्रंथ इसी मत का प्रतिपादन करते हैं।

ख़ानदान

पैग़ंबर ज़रदुश्त ने किस वंश में जन्म ग्रहण किया था, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। कहा जाता है, ज़रदुश्त के पिता 'आज़र बोजान' में रहते थे। अवेस्ता और पहलवी पुस्तकों में ज़रदुश्त के पिता का नाम 'पुरस्प' और माता का नाम 'दोगदु' लिखा है। आधुनिक ईरानी इतिहासकार उन्हें शाही ख़ानदान का मानते हैं।

ज़रदुश्त-शब्द का अर्थ

कई यूनानी-भाषा-शास्त्र-विशेषज्ञ ज़रदुश्त-शब्द का अर्थ 'तारों को पूजनेवाला' बतलाते हैं। अरबी विद्वानों के मतानुसार ज़रदुश्त-शब्द का अर्थ 'सुनहरी सल्तनत' होता है। किंतु प्रसिद्ध अँगरेज़ विद्वान् श्री-हेनरी इस शब्द का अर्थ 'अग्नि का मित्र' मानते हैं।

बाल्यावस्था

पैग़ंबर ज़रदुश्त के जन्म के संबंध में अनेकानेक दंत-कथाएँ प्रचलित हैं। ज़रदुश्त की बाल्यावस्था के संबंध में अवेस्ता में बहुत कुछ लिखा गया था, किंतु अवेस्ता का वह भाग अब नहीं मिलता। इस लुप्त भाग के बहुत-से अवतरण पहलवी और फ़ारसी-भाषा के ग्रंथों में इधर-उधर बिखरे हुए मिलते हैं। 'दीन-कर्द' और 'अवेस्ता-नामा' से पैग़ंबर ज़रदुश्त की बाल्यावस्था का हाल मालूम होता है। इन ग्रंथों से मालूम होता है कि हज़रत ज़रदुश्त पैदा हुए, तब दैवी शक्ति (Angelic faculties) ख़ुश हुई थी, और पशु-शक्ति (Beastly faculties) भयभीत हुई थी। भूमिष्ठ होते ही बालक रोता है, किंतु हज़रत के मुख पर हास्य-रेखा चमक रही थी। हज़रत को मार डालने के लिये शैतान ने नाना उपाय किए, किंतु ईश्वरी शक्ति के आगे उसकी एक न चली, हज़रत का बाल भी बाँका न हुआ। सात वर्ष की अवस्था में वह पाठशाला में बिठलाए गए। उस ज़माने में जादू का ख़ूब ज़ोर था। एक-से-एक बढ़कर जादूगर मौजूद थे। एक विख्यात जादूगर ने हज़रत पर अपना जादू फेंका। जादू बेकार हुआ, और जादूगर ख़ुद बुरी मौत मर गया।

पंद्रह वर्ष की अवस्था में वह मज़हबी रंग में अच्छी तरह रँग गए। इस छोटी अवस्था में भी वह सादगी के पुतले और ख़ुदापरस्ती के नमूने थे। परहेज़गारी तो उनमें कूट-कूटकर भरी थी। वह दिन-रात दीन-दुखियों और अतिथियों की सेवा में लगे रहते थे। पशु-पक्षियों तक की सेवा करना वह अपना धर्म समझते थे।

युवावस्था

बीस वर्ष की अवस्था में वह घर-बार छोड़कर संन्यासी हो गए। संन्यास ग्रहण करने पर वह सच्चे महात्मा की खोज में इधर-उधर विचरण करने लगे।

हज़रत सत्यवादी थे, और जो कुछ कहना होता था, साफ़-साफ़ शब्दों में कह दिया करते थे। विवाह की बातचीत चलने पर आपने अपने पिता से साफ़ शब्दों में कह दिया था कि भावी पत्नी को अपनी आँखों से देखे बिना हरगिज़ शादी नहीं करूँगा।

एक बार एक महात्मा से आपकी भेंट हुई। आपने महात्मा से प्रश्न किया कि आत्मा की 'पवित्रता' के लिये क्या किया जाना चाहिए? महात्मा ने उत्तर दिया, दीन-दुखियों की सेवा और सहायता करना, पशु-पक्षियों पर दया करना और उनको भोजन देना, पवित्र अग्नि (पाक आतश) प्रज्वलित रखना और देवतों की पूजा करना। हज़रत ने महात्मा की प्रथम तीन बातों को उत्तम समझा, और आजन्म उन पर अमल करते रहे। मूर्ति-पूजा को वह निकृष्ट समझते थे, और आजन्म मूर्ति-पूजा का विरोध करते रहे। हज़रत के संबंध में इससे अधिक कुछ नहीं मालूम हो पाया है।

संन्यास ग्रहण करने के बाद दस वर्ष तक हज़रत कहाँ रहे, और क्या करते रहे, कुछ भी पता नहीं चलता। कहा जाता है, इस अवधि में उन्होंने ख़ूब भ्रमण किया था। कुछ लोगों का मत है कि वह 'सियालन'-पहाड़ की गुफा में रहकर भिन्न-भिन्न विषयों पर मनन करते रहे थे। कहा जाता है, इसी समय उन्हें 'ईश्वरीय प्रेरणा' (Inspiration) हुई। इस समय उनकी अवस्था तीस वर्ष की थी।

पैग़ंबर होने का दावा

जिस समय हज़रत ज़रदुश्त तीस वर्ष के हुए, तब 'ख़ुदा बंदे आलम' 'अहुरमज़्द' का खेर का फ़रिश्ता बहुमान उनके पास आया, और उन्हें उनके दरबार में ले गया। इस संबंध का सविस्तर हाल पहलवी-पुस्तकों में इस प्रकार लिखा है—

"ज़रदुश्त पूर्व ईरान में जा रहे थे। रास्ते में एक बड़ी नदी मिली। हज़रत अपनी 'रूहानी क़ुदरत' से उसे पार करने लगे। आधे से कुछ अधिक हिस्सा पार कर चुकने पर उन्हें धुएँ का बादल-सा उठता नज़र आया। कुछ ही क्षण बाद वह धुएँ का बादल खेर के फ़रिश्ता बहुमान के रूप में दिखाई देने लगा। बहुमान उनको 'जिस्मानी लिबास' उतारकर 'दरगाहे-इज़दी' में ले गए। वहाँ फ़रिश्तों की एक सभा हुई। हज़रत ज़रदुश्त को 'नबी' का ख़िताब अता फ़र्माया गया। मज़हब फैलाने की आज्ञा प्राप्त कर हज़रत पृथ्वी पर लौट आए।"

गाथा में भी ऐसा ही लिखा है।

धर्म-प्रचार का प्रारंभ

अहुरमज़्द की आज्ञा से वह काफ़िरों को मूर्ति-पूजा न करने का उपदेश देने और धर्म-प्रचार करने लगे। किंतु वह अपना धर्म फैलाने में समर्थ न हो सके। उन्होंने ख़ुदा के हुक्म से शाहे-तूरान के पास जाकर 'पैग़ामे-इलाही' सुनाया। शाह ने उनका ख़ूब आदर-सत्कार किया, किंतु उनका धर्म स्वीकार करने से इनकार कर दिया। इससे निराश होकर उन्होंने ख़ुदा के दरबार में जाकर शिकायत की। उनको आश्वासन दिया गया कि वह तन-मन से प्रयत्न करें, अवश्य सफलता प्राप्त होगी। उन्हें शाहे-तूरान की बरबादी का समाचार भी वहीं मिला। पृथ्वी पर आकर हज़रत ज़ोरों से धर्म-प्रचार करने लगे। गाँव-गाँव घूमकर हज़रत नवीन धर्म का प्रचार करते रहे। किंतु लगातार दस वर्ष तक कठिन परिश्रम करने पर भी किसी ने उनका धर्म स्वीकार नहीं किया।

फ़रिश्तों का आगमन

लगभग दस वर्ष तक फ़रिश्ते हज़रत ज़रदुश्त को धार्मिक शिक्षा देते रहे। इन 'पाक रूहों' के आज्ञानुसार वह तन-मन से धर्म-प्रचार में जुट गए। दस वर्ष में वह सिर्फ़ अपने एक मित्र को नवीन धर्म की दीक्षा देने में समर्थ हो सके। तब भगवान् अहुरमज़्द के दरबार में उपस्थित होकर उन्होंने अपनी असफलता की कहानी कह सुनाई। भगवान् ने उनको सांत्वना देते हुए कहा—"आगामी दो वर्षों में असीम सफलता लाभ करोगे।" तदनंतर भगवान् अहुरमज़्द की आज्ञा लेकर वह बलख़ गए।

ज़रदुश्त और गुस्ताश्प

बलख़ जाने पर हज़रत ज़रदुश्त वहाँ के राजा गुस्ताश्प से घुड़दौड़ के मैदान में मिले। उन्होंने राजा को पैग़ामे-इलाही सुनाया। हज़रत की सचाई और दलीलों ने राजा पर अच्छा प्रभाव डाला। वह नवीन धर्म की दीक्षा लेने को तैयार हो गया। किंतु धर्म-गुरुओं (मज़हबी उल्माओं) ने उसे ऐसा करने से रोका। हज़रत ने एक बार और ज़ोर लगाया। उनके ज़ोर देने पर राजा गुस्ताश्प ने धार्मिक वाद-विवाद के लिये पंडितों को निमंत्रित करना स्वीकार कर लिया। सभा बुलाई गई। कई दिनों तक ख़ूब वाद-विवाद होता रहा। हज़रत अकेले ही हज़ारों पंडितों से शास्त्रार्थ करते रहे। अंत में पाखंडी धर्म-लंठों को हार माननी पड़ी। राजा ने भरी सभा में नवीन धर्म में दीक्षित होने की इच्छा प्रकट की। धर्माचार्यों ने राजा को नाना उपायों से धर्म-परिवर्तन करने से रोका। उन्होंने घोषित कर दिया कि ज़रदुश्त जादूगर है। हज़रत के मकान में बिल्ली और कुत्ते के नाख़ून और बाल फेंक दिए गए। उनको जादूगर सिद्ध करने के लिये अनेक चालें चली गईं। धीरे-धीरे राजा को भी यक़ीन हो गया कि ज़रदुश्त ज़बरदस्त जादूगर है। तब वह गिरफ़्तार कर कारावास में बंद कर दिए गए।

ज़रदुश्त के क़ैद किए जाने के बाद बादशाह का प्यारा घोड़ा एकाएकी बीमार हो गया। हज़रत को इस दैवी प्रकोप का समाचार क़ैदख़ाने में मिला। राजा को विश्वास हो गया कि ज़रदुश्त को क़ैद करने के कारण ही इस दैवी प्रकोप का शिकार होना पड़ा है। राजा इस घोड़े को बहुत चाहता था। उसने हज़रत से क्षमा माँगते हुए प्रार्थना की कि घोड़े का रोग दूर कर दिया जाय। हज़रत ने कहा—"यदि राजा नीचे लिखी शर्तें स्वीकार करे, तो घोड़े की बीमारी दूर हो सकती है।" वे शर्तें ये थीं—

१. स्वयं राजा नवीन धर्म की दीक्षा ग्रहण करे।

२. राजा अपने प्यारे पुत्र शेरदिल असफंदीयार को धर्म-प्रचार के लिये मेरे सिपुर्द कर दे।

३. राजमहल की बेगमें भी नए धर्म को स्वीकार करें।

४. राजा पाखंडी उल्माओं को मरवा डाले।

राजा ने हज़रत की इन शर्तों को स्वीकार कर लिया, और ज़रदुश्त के सामने अपनी चार शर्तें पेश कीं। वे शर्तें ये थीं—

१. मुझे मेरी आक़बत का हाल अभी बतला दिया जाय।

२. मेरा शरीर लोहे का हो जाय, और उसे कोई क्षति न पहुँचा सके।

३. मैं अमर हो जाऊँ।

४. मैं सर्व-ज्ञान-संपन्न हो जाऊँ।

ज़रदुश्तनामे में लिखा है कि ईरानी पैग़ंबर ने ये शर्तें पूरी करना स्वीकार तो कर लिया, किंतु कहा—"ये सभी गुण किसी एक व्यक्ति को नहीं प्राप्त हो सकते हैं।"

राजा के चारो शर्तें पूरी करते ही घोड़ा चंगा हो गया। हज़रत ने भी शर्तें पूरी कीं। राजा को आक़बत का हाल दिखला दिया गया। शाहज़ादा असफंदीयार का शरीर लोहे का हो गया। जामाश्प सर्व-ज्ञान का भांडार बन गया, और बशुतन अमर हो गया।

धर्म-परिवर्तन का प्रभाव

राजा के धर्म-परिवर्तन करते ही उसके सभी दरबारियों ने भी नवीन धर्म की दीक्षा ले ली। राजा ने ढिंढोरा पिटवा दिया कि सभी प्रजा-जन आगा-पीछा सोचे बिना ही नया धर्म स्वीकार कर लें। शीघ्र ही नवीन धर्म ईरान का राष्ट्रीय धर्म और शाही मज़हब बन गया।

धार्मिक युद्ध

संसार के इतिहास को उठाकर देखने से मालूम होता है कि प्रारंभ में सभी धर्मों का प्रचार तलवार के ज़ोर से किया गया है। सभी इतिहास यह बात स्वीकार करते हैं कि भौतिक शक्ति के बल पर ही ज़रदुश्ती-धर्म का इतना प्रचार हो पाया था।

धर्म के नाम पर ख़ून की नदियाँ बहाई गईं, और तलवार के बल पर ज़रदुश्त-धर्म की धाक जमा दी गई। अवेस्ता में इन धार्मिक युद्धों का सविस्तर वर्णन पाया जाता है। तूरान के शाह अरजाश्प और ईरान के मजूसी बादशाह गुस्ताश्प में जो युद्ध हुए थे, वे धर्म-प्रचार के लिये ही हुए थे।

अन्य देशों में धर्म-प्रचार

अवेस्ता से पाया जाता है कि ज़रदुश्ती धर्म अन्य देशों में भी फैल गया था। शाहनामे में लिखा है कि शाहज़ादे असफंदीयार के प्रयत्न से ही तूरान में इस धर्म का प्रचार हुआ था। भारत पर भी इस धर्म का प्रभाव पड़ा था। कंगराकाछ-नामक एक ब्राह्मण इस इरादे से इस धर्म का ज्ञान प्राप्त करने ईरान गया था कि ज़रदुश्ती धर्म का थोथापन दिखाकर इसका प्रचार रोके। ईरान आने पर उसने मजूसी-धर्म स्वीकार कर लिया। इसी के प्रयत्न से ८० व्यक्तियों ने भी इस धर्म को स्वीकार कर लिया। यासा-नामक एक दूसरे भारतीय ने बलख़ जाकर इस धर्म का अध्ययन किया था। कुछ वर्षों बाद इसने भी मजूसी-धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली। पहलवी ग्रंथों से पाया जाता है कि ग्रीस पर भी इस धर्म का कुछ-कुछ असर पड़ा था। 'दसातीर'-नामक ग्रंथ से पता चलता है कि ग्रीस के तत्त्ववेत्ताओं ने तुत्यानूश-नामक मनुष्य को ईरान भेजा था। दैवी शक्ति से हज़रत ज़रदुश्त को यह बात मालूम हो गई। आपने उसका स्वागत किया। कई रोज़ तक वह हज़रत के पास रहा। अपने प्रश्नों के समाधानकारक उत्तर पाकर तुत्यानूश ने ज़रदुश्ती धर्म स्वीकार कर लिया।

अग्निशाला

थोड़े ही वर्षों में ज़रदुश्त द्वारा प्रचारित धर्म के लाखों अनुयायी हो गए। हज़रत ने तब अग्नि-शालाएँ स्थापित कराईं। हज़रत की आज्ञा पाकर शाह गुस्ताश्प ने हर बड़े शहर में एक-एक अग्निशाला बनवा दी, जिसमें रात-दिन पवित्र अग्नि (पाक आतश) जलती रहती थी।

मृत्यु

ग्रीक और लैटिन-इतिहासों में लिखा है कि हज़रत ज़रदुश्त की मृत्यु बिजली पड़ने से हुई। किंतु यूनानी लोग कहते हैं कि वह एक ज्योतिषी थे, और युद्ध-क्षेत्र में दैवी तीर से उनकी मृत्यु हुई थी। ईरानी इतिहासकारों के मत से वह बलख़ की लड़ाई में काम आए थे। उस वक़्त उनकी अवस्था ७७ साल की थी। शाहनामे में लिखा है कि तूरानियों से लड़ते समय 'तीरु-करलीश'-नामक मनुष्य के हाथ से वह मारे गए थे।

पैग़ंबर के चमत्कार

हज़रत के चमत्कारों के संबंध में अनेकानेक दंत-कथाएँ प्रचलित हैं। कहा जाता है, एक बार आपने एक अंधे की आँखों में एक झाड़ के पत्तों का रस डाल-कर उसका अंधापन दूर कर दिया था। कई विद्वानों का कहना है कि हज़रत को वैद्यक-शास्त्र, ज्योतिष और कई वैज्ञानिक विद्याओं का अच्छा ज्ञान था। उन्हें ईसा के अवतार ग्रहण करने की बात भी ज्ञात थी *।

* एक गुजराती लेख के आधार पर लिखित।—लेखक

धूम्र-पान

[श्रीयुत कृष्णमनोहरसिंह सॉंडल]



गूढ़ विषयों पर विचार करनेवाली छोटी-सी मंडली में, जो नियमित रूप से रात्रि में ऐंजिलरस् रेस्ट * के बार पारलर† में एकत्रित होती है, विचारों में मतभेद होना अवश्यंभावी है। हम सब उत्साही नवयुवक हैं, और हम लोग-जैसे उत्साही मनुष्य जब एक स्थान पर एकत्रित होते हैं, तब झगड़ों का होना निश्चित ही है। अतएव प्रायः वहाँ के शांति के साम्राज्य में भी ज़ोर-ज़ोर की आवाज़ें निकलने लगती हैं, कुर्सियाँ हाथ में आकर सिर के ऊपर पहुँच जाती हैं, और मेज़ें उठाकर इधर-उधर फेंक दी जाती हैं। मैंने घूँसे भी तनते देखे हैं, और विशेष अवसरों पर मूर्ख इत्यादि शब्दों का भी प्रयोग होता है।

सौभाग्य-वश मिस्टर मुलीनर सर्वदा तूफ़ान को शांत करने के लिये उपस्थित रहते हैं। आज रात को जब मैंने उस कमरे में प्रवेश किया, तब उन्हें एक तमतमाए हुए लेमनस्क्वैश ‡ और एक गुर्राते हुए टैंकर्ड ऑफ़् एल × (जो लड़ते-लड़ते खिड़की के नीचे कोने में पहुँच गए थे) के बीच समझौता कराते हुए पाया।

"सज्जनो, सज्जनो!" वह अपने मधुर स्वर में एक राजदूत के समान कह रहे थे—"यह सब क्या झगड़ा है?"

टैंकर्ड ऑफ़् एल ने अपने पाइप की ओर संकेत करते हुए कहा—"यह धूम्र-पान को भला-बुरा कह रहा है।" इस समय वह बहुत ही विचलित मालूम पड़ता था।

"मैं ठीक बात कहता हूँ।"

"मैंने कोई ठीक बात नहीं सुनी।"

मैंने कहा—"धूम्र-पान स्वास्थ्य के लिये हानिकर है, और यह है।"

"यह नहीं है।"

"यह है, मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव से इस बात को प्रमाणित कर सकता हूँ। मैं स्वयं पहले धूम्र-पान करता था, और इसका परिणाम यह हुआ कि मेरा स्वास्थ्य मिट्टी में मिल गया, आँखों में धुँधलापन छा गया, गालों में गड्ढे पड़ गए, चेहरा मुरझा गया और झुर्रियाँ पड़ गईं। परंतु जब मैंने धूम्र-पान करना त्याग दिया, तब मुझमें फिर परिवर्तन हो गया।"

"क्या परिवर्तन?" टैंकर्ड ने प्रश्न किया।

ऐसा प्रतीत हुआ, मानो लेमनस्क्वैश को किसी बात पर क्रोध आ गया। क्योंकि वह उठा, ऐंठता हुआ दरवाज़े की ओर गया, और अंधकार में तिरोहित हो गया। मिस्टर मुलीनर ने निश्चिंतता की एक निःश्वास ली।

"मैं ख़ुश हूँ, वह चला गया।" टैंकर्ड ने कहा—"धूम्र-पान ऐसा विषय है, जिस पर मेरे बहुत ज़बरदस्त विचार हैं। मेरी सम्मति में तंबाकू जीवन की एक विभूति है, और जब मूर्ख लोग इसकी निंदा करते हैं, तो मुझको बड़ा बुरा लगता है।" कुछ देर तक वह चुपचाप सिगार पीता रहा। उसका चेहरा गंभीर हो गया था।

"यदि आप लोग मेरी राय सुनना चाहते हैं," उसने फिर कहना आरंभ किया—"तो किसी मनुष्य का धूम्र-पान त्याग करना केवल मूर्खता-पूर्ण ही नहीं, परंतु हानिकारक भी है। इससे हमारे अंदर का शैतान जाग्रत् हो जाता है। इसका त्याग करना समाज के लिये जंजाल हो जाता है। मेरे भतीजे इगामटियस की जो दशा हुई, वह मैं सरलता से विस्मरण नहीं कर सकता। यद्यपि यह सुखांत ही है, परंतु......

तुम लोगों में से उन लोगों ने, जिनको कला

* मद्युओं का विश्राम-गृह। † बैठकखाना। ‡ नीबू का शरबत। × शराब का प्याला।

तथा साहित्य से ज़रा भी रुचि है, मेरे भतीजे का नाम अवश्य सुना होगा। वह एक उदीयमान चित्रकार है। जिस समय का ज़िक्र मैं कर रहा हूँ, उस समय वह इतना प्रसिद्ध नहीं था, जितना आजकल। अतएव उसका अधिकांश समय ख़ाली बीतता था। अपना अवकाश का समय वह 'यूकलील' बजाने में, मिस्टर रोज़ीटर की रूपवती कन्या हरमियन से विवाह की प्रार्थना करने में व्यतीत करता था। उसकी चित्रशाला से स्कैंटलबरी स्क्वायर, जहाँ वह रहती थी, चार क़दम की ही दूरी पर था। उसका नियम था कि ज्यों ही उसको अवकाश मिलता, वह अपनी चित्रशाला से निकलकर हरमियन के यहाँ पहुँचता, विवाह का प्रस्ताव करता, अस्वीकृत होने पर वापस आता, एकआध गत 'यूकलील' पर बजाता, और आश्चर्यान्वित होकर विचार करता, उसमें कौन-से ऐसे दोष हैं, जिससे वह उसे नापसंद करती है।

"यह संभव नहीं, वह उसकी इस ईमानदारी और ग़रीबी से घृणा करती हो। उसकी आमदनी संतोषजनक है। यह हो नहीं सकता कि उसने उसके विरुद्ध कुछ सुना हो; क्योंकि उसका जीवन इस समय तक बिलकुल निर्दोष था। यह हो नहीं सकता कि उसको उसकी भाव-भंगी पसंद न हो। सभी मुलीनरों की तरह उसकी बाह्य रूप-रेखा सुंदर थी, अथवा यह कहना भी अनुचित न होगा कि मनोमोहक थी। इसके अलावा हरमियन का बाप और दोनो भाई जॉर्ज और सिपरियन तो आस-पास कुरूपता के लिये विख्यात थे। सिपरियन दुबला-पतला और पांडु-वर्ण था, वह साप्ताहिक पत्रों में कला पर समालोचनाएँ लिखा करता था। जॉर्ज मोटा था, रंग गुलाबी, पर वह कुछ काम न करता था। छुटपन से ही उसने अपने मित्रों और परिचितों से ऋण लेने में विशेष दक्षता प्राप्त कर ली थी। इगनाटियस ने सोचा, शायद इन दोनो में से कोई उसको आंतरिक बात बताकर उसकी समस्या सुलझाने में समर्थ हो। वह नितांत संभव था, उसने कभी उनको बताया हो कि वह क्यों एक भले आदमी के प्रेम को वारंवार ठुकरा रही है।

"वह फ़ौरन् सिपरियन के पास गया, और उससे सब बात साफ़-साफ़ कह दी। सिपरियन ने संपूर्ण कथा अपनी बाईं तरफ़ की गलमुच्छों पर हाथ फेरते हुए ध्यान-पूर्वक सुनी।

"आह!" सिपरियन ने कहा—"कोई जानता है, क्या कोई जानता है कि लड़की को किसी से ब्याह करने में हिचकिचाहट है?"

"हाँ, कोई जानता है।"

"क्या कोई आश्चर्य करता है कि कोई कुछ उन्नति करने में सफल क्यों नहीं होता?"

"हाँ, कोई आश्चर्य करता है।"

"कोई अपने से पूछता है कि इसका क्या कारण है?"

"हाँ, पूछता है वारंवार।"

"अच्छा, यदि कोई सचमुच सत्य जानने का इच्छुक है।" सिपरियन ने अपने दाईं तरफ़ के गलमुच्छे पर हाथ फेरते हुए कहा—"मैं जानता हूँ, हरमियन तुम्हें इस वजह से नापसंद करती है कि तुम उसे उसके भाई जॉर्ज का स्मरण दिलाते हो।"

इगनाटियस पीछे की तरफ़ लड़खड़ाया, और उसके मुँह से डरी हुई आवाज़ में एक चीत्कार निकल गया।

"जॉर्ज का स्मरण दिलाता हूँ!"

"हाँ, वह यही कहती है।"

"किंतु मैं जॉर्ज की तरह नहीं हो सकता, यह किसी के लिये संभव नहीं है कि जॉर्ज की तरह हो।"

"कोई वही दुहराता है, जो उसने सुना है।" इगनाटियस लड़खड़ाता हुआ कमरे से बाहर हो गया, फ़लहाम रोड पर पहुँचा, और 'बकरा और बोतल' के यहाँ से, चित्त को स्वस्थ करने के लिये, कुछ ख़रीदा। कमरे में पहुँचकर प्रथम मनुष्य जिस पर उसकी दृष्टि पड़ी, जॉर्ज था। वह और मोटा-ताज़ा दिखाई पड़ रहा था। उसके गालों

पर गुलाबीपन कुछ और अधिक हो गया था। इगनाटियस को देखकर उसने कहा—"हैं क्या ! हैं क्या !!"

इगनाटियस ने द्वितीय सम्मति लेना उचित समझा, और प्रश्न किया—"क्या तुम कुछ समझ सकते हो कि तुम्हारी बहन हरमियन मेरा प्रस्ताव क्यों अस्वीकृत कर देती है ?"

"अवश्यमेव ।" जॉर्ज ने कहा।

"क्यों ?"

जॉर्ज ने अपना गिलास हिलाया।

"तुम मुझसे पूछते हो, क्यों ?"

"हाँ।"

"तुम कारण जानना चाहते हो ?"

"हाँ।"

"अच्छा, तो सर्व-प्रथम" जॉर्ज ने कहा—"क्या तुम मुझे इसी सप्ताह के अंदर एक क्विड * उधार दे सकते हो ?"

"नहीं।"

"दस 'बाब' भी नहीं।"

"नहीं, कृपया इस विषय से न भागिए, और बताइए कि वह मेरी ओर क्यों नहीं कृपा-दृष्टि करती ?"

"अच्छा" जार्ज ने कहा—"केवल तुम कमीने और कंजूस ही नहीं हो, बल्कि उसे मेरे भाई सिपरियन की याद दिलाते हो।"

इगनाटियस लड़खड़ाया, और गिर पड़ा होता, यदि उसने पास की पड़ी हुई बेंच का सहारा न ले लिया होता।

"मैं उसको सिपरियन की याद दिलाता हूँ ?"

"वह यही कहती है।"

वह सिर झुकाए हुए कमरे से निकला, और अपनी चित्रशाला में सोचने-विचारने के लिये आ पड़ा। उसकी अंतरात्मा काँप उठी थी। वह आंतरिक बात मालूम करना चाहता था, और वह उसको मालूम हो गई थी। लेकिन उसको सुलझानेवाला कोई न था। वह अत्यंत विस्मित था। वह नहीं समझ पाता था कि कोई आदमी जॉर्ज रोज़ीटर की तरह कैसे हो सकता है। यह तो संभव भी था कि कोई सिपरियन की तरह हो, परंतु एक ही आदमी दोनो की तरह कैसे हो सकता है।

उसने एक काग़ज़ और पेंसिल उठा ली, और दोनो भाइयों की विशेषताएँ लिखने लगा। जब लिख चुका, तब पढ़ा, उसने यह लिखा था—

जॉर्ज	सिपरियन
सुअर का-सा मुँह	ऊँट का-सा मुँह
गाल फूले हुए	गलमुच्छे
बेकार	समालोचक
कहता है—"हैं क्या"	कहता है—"कोई जानता है"
बहुत खाता है	फलाहारी
हास्य-जनक कहानियाँ कहता है	गीत गाता है
मोटे हाथ	सूखे हाथ

उसने मुँह बनाया। अभी तक वह किसी निश्चित परिणाम पर न पहुँचा था। अब उसने अंतिम पंक्ति पढ़ी—बहुत तंबाकू पीता है। बहुत तंबाकू पीता है।

इगनाटियस के शरीर में कँपकँपी दौड़ गई। यह बात दोनो में पाई जाती है। क्या यह संभव है कि वह तंबाकू का...क्या यह संभव है। एक यही उपाय दिखलाई पड़ा। उसने इसके विरुद्ध चेष्टा भी की। हरमियन का प्रेम प्राप्त करना ही उसके जीवन का लक्ष्य था। इसके बाद पाइप का नंबर आता था। क्या उसको इन दोनो के बीच में चुनाव करना होगा ? क्या वह इतना त्याग कर सकता है ? उसका जी विचलित हो गया।

उसने हरमियन रोज़ीटर के ग्यारह चित्रों को अपनी ओर घूरते हुए पाया। उनके होठों पर उसने उत्साह-वर्द्धक मुस्कान देखी। वह फिर न हिचकिचाया। उसने अपने मुँह से पाइप निकाल लिया, दूसरे पाइपों को एकत्रित किया, सब तंबाकू और सिगार उठा लाया, उनका एक बंडल तैयार किया, और जो नौकरानी उसके कमरे में झाड़ू लगाती थी,

* एक सिक्का, जो मूल्य में एक पौंड के बराबर होता है।

उसको बुलाकर वह बंडल उसके पति को, जो एक बड़ा भारी पियक्कड़ था, परंतु निर्धनता के कारण उतना ही पी पाता था, जितना उसको सड़क पर पड़ा मिलता था, दे दिया। इगनाटियस मुलीनर ने अपना पथ निश्चित कर लिया था। तुम लोगों को मालूम होगा कि धूम्र-पान त्याग करने के बाद ही फ़ौरन् उसका दुखदाई प्रभाव नहीं मालूम होता। इसकी अनुभूति शनैः-शनैः होती है। पहले त्याग का गर्व होता है।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब वह टहलने निकला, उसने अपने मित्रों को, जो सिगार पीते थे, बहुत ही करुणा-पूर्ण दृष्टि से देखा; जैसे एक योगी माया-मोह के बंधन से फँसे हुए मनुष्यों की ओर देखता है। उसके जी में आया कि वह उनसे कहे कि तंबाकू एक बहुत ही विषैली वस्तु है। स्वास्थ्य के लिये अत्यंत हानिप्रद है। मनुष्य अपनी इच्छा-शक्ति से अत्यंत सरलता-पूर्वक इसका त्याग कर सकता है।

जब वह चित्रशाला में लौटकर आया, और एक चित्र बनाने लगा, तब उसने एक दूसरी अवस्था का अनुभव किया। खाना खाने के पश्चात् वह अत्यंत व्यग्र हो उठा, जब उसे मालूम हुआ कि वह पाइप नहीं पी सकेगा। बार-बार वह दाँत पीसता और होठों को दबाता था। वह उनसे कोई वस्तु पकड़ना चाहता था, जो वहाँ नहीं थी।

फिर वह 'यूकलील' बजाने लगा, परंतु उसकी उदासी दूर न हुई। वह सोचने लगा, उसकी उदासी का कारण यह है कि उसने इस संसार में आकर कोई अच्छा काम नहीं किया।

तीन बजे तीसरी अवस्था आ पहुँची। उसने अपना हैट उठाया, और स्कैंटलबरी स्क्वायर की ओर चल दिया। परंतु सदा की भाँति आज वह विवाह का प्रस्ताव लेकर नहीं जा रहा था। कुछ समय पूर्व उसे मिसेज़ रोज़ीटर की बातों से आभास मिला था कि वह उससे अपनी पुत्री का चित्र बनवाना चाहती है। परंतु उसने इस पर कुछ ध्यान न दिया था, क्योंकि वह जानता था कि वह उसे इसका मूल्य न देगी। लेकिन उस संध्या को महान् परिवर्तन हुआ। उसने मिसेज़ रोज़ीटर से कहा कि उसके जीवन की एकमात्र अभिलाषा उसकी कन्या का चित्र खींचना है। वह इस कृपा का अत्यंत कृतज्ञ होगा, और इसका कुछ मूल्य न लेगा। यदि वह कल सुबह कन्या-सहित आवें, तो वह तभी से कार्य आरंभ कर देगा। फिर उसने सिपरियन के पास अपने चित्रों की समालोचना लिखवाने और जॉर्ज के पास उसे कुछ रुपया उधार देने के लिये जाना निश्चित किया। दस मिनट पश्चात् वह सिपरियन के कमरे में था।

"कोई क्या चाहता है?" सिपरियन ने प्रश्न किया।

"कोई चाहता है," इगनाटियस ने कहा—"तुम कल आओ, किसी की तस्वीरें देखो, और उनके विषय में कुछ बतलाओ।"

"क्या कोई वस्तुतः यह इच्छा करता है?" सिपरियन ने ज़ोर से कहा। उसकी आँखें चमकने लगी थीं। इससे पूर्व उसे ऐसे निमंत्रण के मिलने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ था। प्रायः वह अपनी सम्मति प्रदान करने के कारण चित्रशालाओं के बाहर उठाकर फेंक दिया गया था।

"कोई पूर्णतया यही चाहता है," इगनाटियस ने उसे आश्वासन दिया, "कोई एक विज्ञ की सम्मति को बहुमूल्य समझता है।"

"तो कोई वहाँ ग्यारह बजे पहुँच जायगा।"

अब इगनाटियस 'बकरा और बोतल' की तरफ़ जॉर्ज को ढूँढ़ने के लिये चला।

"जॉर्ज!" इगनाटियस ने कहा—"मेरे प्यारे जॉर्ज, कल रात-भर मुझे नींद नहीं आई। मुझे यह भय एक छुरे की तरह काटे डालता था कि कहीं तुम्हें रुपए की कमी न पड़ जाय। मेरे घर पर आओ, और जितने रुपए की आवश्यकता हो, ले जाओ।"

जॉर्ज का चेहरा एक शराब के प्याले से छिपा हुआ था। ये शब्द सुनते ही उसने प्याला हटा लिया, और

अपना दायाँ हाथ ऊपर उठाया। उसकी आँखों से भय टपक रहा था।

"यह" उसने काँपते हुए स्वर में कहा—"अंतिम है, अब से मुझे इससे वंचित हो जाना पड़ता। हाँ, तुमने जॉर्ज पिलिमग्गोल रोज़ीटर को अंतिम प्याला पीते हुए देखा है। मैं शीघ्र ही घबरा जानेवाला मनुष्य नहीं हूँ, लेकिन जब किसी के कान जवाब दे रहे हों......।" इगनाटियस ने उसको प्यार से थपथपाया।

"तुम्हारे कान ठीक हैं, जॉर्ज!" उसने कहा—"वे अब भी अपने ही स्थान पर हैं।" और, सचमुच वे वहीं थे, सदा की तरह बड़े और लाल। परंतु जॉर्ज को विश्वास न हुआ।

"मैं कहता हूँ, जब कोई मनुष्य ऐसी बात सुनता है, जिसको कि...मैं गंभीरता-पूर्वक कहता हूँ, क्या मैं क़सम खाकर कह सकता हूँ कि मैंने स्वयं ही तुमको रुपए देने का वचन देते हुए सुना?"

"हाँ।"

"क्या सचमुच?"

"हाँ।"

"बिना मुझसे ख़ुशामद करवाए बिना, बिना मेरे एक शब्द भी कहे।"

"हाँ।"

जॉर्ज ने एक लंबी साँस ली, और शराब का प्याला उठा लिया—"अच्छा, तो कितना दे सकोगे, एक 'किड'?"

"एक किड कुछ भी नहीं है।" इगनाटियस ने भर्त्सना-पूर्ण शब्दों में कहा—"एक फ़ाइवर।"

इगनाटियस ने सिर हिला दिया। यह एक मूक भर्त्सना थी।

"मैं १२ सावरन देने को था," उसने कहा—"यदि इससे तुम्हारा काम चल जाय।"

"हैं क्या?"

"क्या इससे तुम्हारा काम चल जायगा? मैं जानता हूँ कि तुम्हारे व्यय कितने अधिक हैं!"

"हैं क्या?"

"अच्छा, यदि तुम्हारा काम इससे चल जाय, तो कल सुबह मेरी चित्रशाला में आना।"

इगनाटियस ने जॉर्ज की पीठ पर शाबाशी दी, और चला गया।

"कुछ चेष्टा की, और कुछ सफलता प्राप्त की।" कई घंटे पश्चात् इगनाटियस ने स्वयं ही कहा—"और एक रात्रि की निद्रा का उपार्जन किया।"

उन लोगों की तरह, जो मस्तिष्क से बहुत परिश्रम करते हैं, मेरा भतीजा भी ख़ूब सोनेवाला है। दूसरे दिन सुबह जागकर भी वह निद्रित अवस्था के समान कौच पर पड़ा रहा। उसको एक विचित्र प्रकार का अनुभव हो रहा था। एक बिल्ली का बाहर खड़बड़ मचाना उसे बहुत ही खला। वह उसे भगाने के लिये अपनी नौकरानी पारकिंस को बुलाने ही वाला था कि वह स्वयं आ गई, और कहा—"हजामत के लिये पानी बाहर रक्खा हुआ है।" ये शब्द सुनते ही वह अचानक उछल पड़ा, तीन दफ़े लुढ़कियाँ खाईं, और बीच कमरे में आ गिरा। फिर उठा, और चारो तरफ़ आश्चर्य से देखने लगा। उसके जी में आया कि वह रोवे। परंतु यह स्मरण करके कि वह कुलीनर है, उसने आँसू रोक लिए, स्नान-गृह में गया, और ठंडे पानी से स्नान करके उसका चित्त कुछ स्वस्थ हुआ। जल-पान ने तो उसको बिलकुल ही नीरोग कर दिया, परंतु जब उसको ज्ञात हुआ कि न तो पाइप है, और न तंबाकू, तो वह फिर उदास हो गया। वह बहुत देर तक हाथों में सिर दिए बैठा रहा। संसार के सारे दुख उसके सामने एक-एक करके आने लगे। फिर एकाएक उसकी दशा में परिवर्तन हुआ। एक क्षण पूर्व वह संपूर्ण मानव-जाति को दया की दृष्टि से देख रहा था। परंतु अब उसको उनके लिये तनिक भी परवा नहीं रही। वह उनको घृणा की दृष्टि से देखने लगा। यदि इस समय बिल्ली उसके सामने होती, तो उसने उस पर पाद-प्रहार किया होता। यदि मिसेज़ परकिंस इस समय कमरे में प्रवेश करतीं, तो इनको पीठ पर कई डंडे पड़ गए होते। परंतु बिल्ली न-जाने कहाँ

चली गई थी। मिसेज़ पर्किंस रसोई-गृह में थीं। इगनाटियस मुलीनर बैठा-बैठा क्रोध में भुन रहा था। कोई सामने न था, जिस पर क्रोध उतारा जा सके। ठीक इसी समय किवाड़ खुला, और सिपरियन दिखाई दिया।

"ऐ मेरे प्यारे दोस्त!" सिपरियन ने कहा—"क्या कोई आ सकता है?"

"अंदर चले आओ।" इगनाटियस ने कहा।

उसने उसकी ओर ऐसे देखा, जैसे चिड़िया घर का चीता खाना लेकर आते हुए रखवाले की ओर देखता है। उसने होंठ चबाए, और उसे घूरा। पास ही कील पर एक छुरा लटक रहा था। उसने उसे उतार लिया, और अपने अँगूठे के पोरवे से उसकी नोक की परीक्षा की। सिपरियन ने उसकी ओर पीठ कर ली थी, और चित्रों का निरीक्षण कर रहा था।

"हाँ, चित्र अच्छा तो है।" उसने कहा—"परंतु क्या कोई इसे पसंद करता है? किसी को भय है कि नहीं।"

"नहीं।" इगनाटियस ने कहा।

"नहीं।" सिपरियन ने उत्तर दिया। वह अपनी बाईं तरफ़ की गलमुच्छों पर हाथ फेरने लगा—"कोई प्रथम दृष्टि में ही कह सकता है कि चित्र जीवन है।"

"हाँ?" इगनाटियस ने प्रश्न-सूचक स्वर में कहा।

"हाँ।" सिपरियन ने उत्तर दिया—"रंग ऐसे देने चाहिए कि..." वह रुक गया। वह कुछ और कहता, परंतु उसने अपने पीछे एक विचित्र प्रकार की आहट का अनुभव किया। पीछे मुड़ने पर उसने देखा, इगनाटियस एक छुरा लिए उसकी ओर आ रहा है। उसे पहले भी ऐसे कई अवसरों का सामना करना पड़ा था। उसने चाहा, वह निकल भागे, परंतु किवाड़ बंद थे। वह दौड़कर ईज़ल (चित्र बनाने का ठाठ) के पीछे हो गया। इगनाटियस ने उसका पीछा किया। दोनो ईज़ल का चक्कर काटने लगे। बारहवें चक्कर में इगनाटियस की छुरी उसके कंधे में घुस गई। इतने ही में इगनाटियस का पाँव चटाई में उलझ गया, और वह गिर पड़ा। सिपरियन ने इस अवसर का उचित प्रयोग किया, और अलमारी में घुसकर किवाड़ बंद कर लिए। इगनाटियस ने किवाड़ खोलने की चेष्टा की, परंतु सफल न हुआ। उसने 'यूकलील' उठा लिया, और बजाने लगा। इतने ही में जॉर्ज ने "हैं क्या?" कहते हुए कमरे में प्रवेश किया।

"आह!" इगनाटियस ने कहा।

"आह से तुम्हारा क्या मतलब है?"

"केवल आह!" इगनाटियस ने उत्तर दिया।

"मैं रुपए के लिये आया हूँ।"

"आह!"

"बीस क्विड या जो कुछ कल आपने देने का वादा किया था, आज सुबह पलंग पर पड़े-पड़े मैंने सोचा, क्यों न इसको २५ कर दिया जाय।"

"आह!"

"तुम 'आह' ही कहते चले जाते हो!" जॉर्ज ने कहा—"तुम आह क्यों कहते हो?"

इगनाटियस उठ खड़ा हुआ।

"यह मेरी चित्रशाला है, और मैं इसका किराया देता हूँ। मुझको अधिकार है कि मैं जितनी बार चाहूँ, उतनी बार आह कहूँ।"

"बेशक।" जॉर्ज ने स्वीकार करते हुए और नीचे की तरफ़ देखते हुए कहा—"मेरे जूते का फ़ीता खुला हुआ है, और इससे आदमी गिर सकता है। एक मिनट के लिये क्षमा कीजिए।"

वह फ़ीता बाँधने के लिये झुका। इगनाटियस ने उसके प्रशस्त, विशिष्ट नितंबों की ओर देखकर कुछ सोचा, और आगे बढ़कर अपनी दाईं टाँग उठाई। एक ज़ोर का शब्द हुआ, और जॉर्ज नीचे की तरफ़ लुढ़कता हुआ चला गया।

मिसेज़ रोज़ीटर कन्या-सहित चित्रशाला के लिये चल चुकी थीं। आधी सीढ़ियाँ चढ़ने के पश्चात् इतना थक गईं कि उन्हें विश्राम के लिये रुकना पड़ा। जिस समय वह सीढ़ियों पर खड़ी हुई थीं,

उन्हें ऐसा मालूम हुआ, जैसे सील मछली किसी छोटी मछली का पीछा करती हुई उनके सामने से निकल गई।

"यह क्या था ?" मिसेज़ रोज़ीटर ने कहा।

"मैंने भी कुछ देखा।" हरमियन ने कहा।

"कोई बहुत भारी चीज़।"

"हाँ।" हरमियन ने कहा—"हमें ऊपर चलकर मिस्टर मुलीनर से पूछना चाहिए कि वह क्या चीज़ें नीचे फेंक रहे हैं।"

जिस समय वह ऊपर पहुँचीं, इगनाटियस एक टाँग से खड़ा अपने दाएँ पाँव के अँगूठे को खुजा रहा था। इस समय उसे मालूम हुआ कि वह स्लीपर पहने है। यद्यपि इस समय वह अत्यंत त्रासित था, परंतु उसके मुख पर विषाद के चिह्न न थे।

"नमस्कार, मिस्टर मुलीनर !" मिसेज़ रोज़ीटर ने कहा।

"नमस्कार-मिस्टर मुलीनर !" हरमियन ने कहा।

"नमस्कार।" इगनाटियस ने उनकी ओर तिरस्कार-पूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा। वह अत्यंत विस्मित था कि इस लड़की के प्रति वह कैसे आकृष्ट हुआ।

"अच्छा, हम लोग आ गए।" मिसेज़ रोज़ीटर ने कहा।

इसी समय अलमारी का दरवाज़ा धीरे-से खुला, और एक पीले चेहरे ने उसमें से झाँका। दूसरे ही क्षण कुछ गर्द उड़ी, कुछ आवाज़ हुई, और किसी के ज़ोर-ज़ोर से सीढ़ियों पर से उतरने की पद-ध्वनि हुई।

मिसेज़ रोज़ीटर हृदय पर हाथ रखकर हाँफने लगीं।

"यह क्या था ?"

"अस्पष्ट था।" हरमियन ने उत्तर दिया—"परंतु मुझे सिपरियन मालूम पड़ता है।"

इगनाटियस के मुँह से एक चीख़ निकली, और वह सीढ़ियों की तरफ़ चला गया।

परंतु वह शीघ्र ही लौट आया। मिसेज़ रोज़ीटर ने सिपरियन का विचार अपने मन से दूर करते हुए कहा—"अच्छा, मिस्टर मुलीनर, आज सुबह हरमियन ख़ाली थी। यदि आपको अवकाश हो, तो आज ही प्रथम बैठक के लिये अच्छा अवसर होगा।"

"बैठक ?"

"चित्र के लिये।"

"कैसा चित्र ?"

"हरमियन का।"

"क्या आपकी इच्छा है कि मैं मिस हरमियन का चित्र खींचूँ ?"

"क्यों ? आप ही ने तो कल रात को कहा था।"

"क्या !" इगनाटियस ने अपने माथे पर हाथ फेरते हुए कहा—"शायद मैंने कहा था। बहुत अच्छा। कृपया मेज़ पर जाकर ५० पौंड का चेक लिख दीजिए। क्या आप किताब साथ लाई हैं ?"

"पचास क्या ?"

"सावरन।" इगनाटियस ने कहा—"पचास ही, क्योंकि कार्य आरंभ करने के पूर्व मैं केवल आधा ही लेता हूँ।"

"परंतु कल रात्रि को आपने कहा था, आप कुछ न लेंगे।"

"मैंने कहा था कि मैं कुछ न लूँगा ?"

"हाँ।"

इगनाटियस को सहसा कुछ स्मरण हो आया।

"अच्छा, मान लीजिए, मैंने कहा था।" वह तेज़ी से बोला—"क्या आप लोग यह नहीं समझतीं कि कब आदमी हँसी में बात कर रहा है ? क्या आप लोगों में कुछ भी समझ नहीं है ? यदि आप मिस रोज़ीटर का चित्र बनवाना चाहती हैं, तो आपको मूल्य देना पड़ेगा। मुझको आश्चर्य यह है कि आप ऐसी लड़की का, जो केवल कुरूपा ही नहीं, परंतु जिसके चेहरे पर पीलापन भी है, चित्र बनवाना चाहती हैं। उसका मुँह बिलकुल भद्दा है। उसकी आँखों से कुछ भी बुद्धिमत्ता प्रकट नहीं होती। उसके कान आगे को निकले हुए हैं, नाक पिचकी

हुई है, और चिबुक अंदर को घुसा हुआ है। संक्षेप में, मुझे उसे देखकर बहुत ही दुख होता है। यदि आप मुझसे चित्र बनवाना ही चाहती हैं, तो मैं कुछ अधिक मूल्य लूँगा। क्योंकि मुझे उसके सम्मुख बैठा रहना पड़ेगा।"

यह कहकर इगनाटियस ने पाइप लेने के लिये दराज़ निकाली, किंतु दराज़ में पाइप न था।

"क्या?" मिसेज़ रोज़ीटर चिल्लाई।

"आपने सुन लिया।" इगनाटियस ने कहा।

"मेरी सुँघनी कहाँ है?" मिसेज़ रोज़ीटर ने पूछा।

इगनाटियस ने चिमनी पर, कौच पर और अलमारियों में पाइप ढूँढ़ा, परंतु कहीं न मिला।

"यह संभव है," इगनाटियस ने कहा—"मेरी बातों से आपको कुछ कष्ट पहुँचा हो। परंतु मैं क्षमा चाहता हूँ। मैं संपूर्ण मानव-जाति से घृणा करने लगा हूँ, और सबसे अधिक रोज़ीटर-कुटुंब से। मैं उनका रक्त-पान करने का इच्छुक हूँ। मैं छुरा लेकर सिपरियन पर टूट ही पड़ा था, परंतु मेरे लिये वह अधिक तेज़ निकला, और जॉर्ज के नितंबों पर तो मैंने इस ज़ोर से पाद-प्रहार किया, जैसा इससे पूर्व कभी न किया था। शायद वह आपको सीढ़ियों पर मिला हो।"

"तो यह वह था।" हरमियन ने कहा—"मुझे उसमें कुछ जॉर्ज का-सा आभास मिला था।"

मिसेज़ रोज़ीटर आँखें फाड़कर देख रही थीं।

"तुमने मेरे लड़के को मारा?"

"हाँ, ऐसी अच्छी तरह से," इगनाटियस ने नम्रता-मिश्रित गर्व के साथ कहा—"जैसे मैं उस गुदगुदे स्थान पर मारने के लिये बहुत दिनों से अभ्यास कर रहा हूँ।"

"हे मेरे प्यारे बच्चे!" कहती हुई मिसेज़ रोज़ीटर कमरे के बाहर हो गईं।

थोड़े समय तक दोनो ही चुप रहे।

"मैं नहीं समझती थी कि तुम इतना अच्छा बोलते हो।" हरमियन ने शांति-भंग करते हुए कहा—"तुमने मेरा कैसा अच्छा वर्णन किया। बिलकुल ही गद्य-काव्य था।"

"क्या तुम सचमुच उसे पसंद करती हो?"

"और मेरे नेत्र........।" इसके आगे वह कुछ कहना ही चाहती थी, पर इगनाटियस ने नहीं सुना। अचानक उसे स्मरण हो आया कि कुछ सप्ताह पूर्व जब उसने चित्रशाला में अपने मित्रों को एक दावत दी थी, तब उसने एक अधजला सिगार बक्स के पीछे फेंक दिया था, और नौकरानियाँ बक्स के पीछे से तो कूड़ा निकालती ही नहीं हैं, अतएव वह वहाँ अवश्य होगा। वह अति शीघ्रता से सिगार वहाँ से उठा लाया। उस अधजले, धूल-धूसरित, चूहों से कटे हुए सिगार को वह बड़े आनंद से पीने लगा। उसकी सारी घृणा, जो मनुष्य-जाति के प्रति थी, दूर हो गई। उसने हरमियन की ओर देखा, और सोचा, मैंने इसके प्रति बड़ा अन्याय किया है। इस समय उसे वह अत्यंत सुंदर प्रतीत हो रही थी। फिर उसको याद आया कि अभी उसने उसके विषय में क्या कहा था। उसका चेहरा पीला पड़ गया। वह उसी की तरफ़ देख रही थी।

"मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ।" इगनाटियस ने कहा।

"मैं ख़ुश हूँ।" हरमियन ने कहा—"तुम मुझको मेरी सुंदरता के कारण प्यार नहीं करते हो, बल्कि स्वभाव के कारण, और मैं भी यही चाहती थी।"

इगनाटियस ने सिगार रख दिया, और एक लंबी साँस ली।

"अच्छा, क्या तुम मुझसे विवाह करोगी?"

"हाँ, मैं हमेशा से तुम्हें प्यार करती हूँ। परंतु मैं समझती थी कि तुम मुझे एक निर्जीव गुड़िया के समान समझते हो।"

उसने अपना सिगार उठा लिया, और पीने लगा।

"और" हरमियन ने कहा—"उसको एक लड़की क्यों न प्यार करेगी, जो एक लात में उसके भाई को आकाश से पृथ्वी पर पहुँचा दे।"

इगनाटियस गंभीर हो गया।

"जॉर्ज इससे मुझे स्मरण हो आया। सिपरियन ने मुझसे कहा था कि तुमने कहा है कि मैं जॉर्ज की तरह हूँ।"

"परंतु मेरा यह मतलब नहीं था कि वह तुमसे कहे।"

"उसने कहा, और मुझे इससे अत्यंत संताप हुआ।"

"परंतु मेरा मतलब यह था कि तुम और जॉर्ज दोनो यूकलील बजाते हो, और मुझे यूकलील से घृणा है।"

"अच्छा, आज मैं अपना यूकलील किसी को दे दूँगा। परंतु जॉर्ज ने मुझसे कहा था कि मैं तुम्हें सिपरियन का स्मरण कराता हूँ।"

अब के वह कुछ हिचकिचाई।

"तुम दोनो एक ही प्रकार के भद्दे कपड़े पहनते हो।"

"मुझे तुम अभी लंदन के सबसे अच्छे दर्ज़ी के पास ले चलो।" इगनाटियस ने कहा—"मुझे केवल एक मिनट का अवकाश जूता पहनने के लिये दो, और मैं कुछ मिनटों के लिये तंबाकूवाले के यहाँ अवश्य ठहरूँगा, मुझे उसके यहाँ से बहुत सामान ख़रीदना है।" *

* यह कहानी किसी पाश्चात्य कहानी से अनुवाद की हुई जान पड़ती है। मालूम होता है, लेखक महोदय इस बात का उल्लेख करना भूल गए हैं।—संपादक

यशोधरा

[श्रीयुत बाबू मैथिलीशरण गुप्त]

सखि, प्रियतम हैं वन में,
किंतु कौन इस मन में?

दिव्य मूर्ति-वंचित भले चर्म-चक्षु गल जायँ,
प्रलय! पिघलकर प्रिय न जो प्राणों में ढल जायँ।
जैसे गंध पवन में।
सखि, प्रियतम हैं वन में।

नयन, वृथा व्याकुल न हो, नई नहीं यह रीति;
रखते हो यदि प्रीति, तो धारण करो प्रतीति।
यही बड़ा बल जन में;
सखि, प्रियतम हैं वन में।

भक्त नहीं जाते कहीं, आते हैं भगवान;
यशोधरा के अर्थ है अब भी यह अभिमान।
मैं निज राजभवन में;
सखि, प्रियतम हैं वन में।

उन्हें समर्पित कर दिए यदि मैंने सब काम,
तो आवेंगे एक दिन निश्चय मेरे राम।
यहीं, इसी आँगन में!
सखि, प्रियतम हैं वन में।

स्वतंत्रता

[श्रीभगवतीलाल वर्मा विशारद]



संसार सांसारिक जीवों के अंतः एवं बाह्य वृत्तियों तथा अनुभूतियों का क्रीड़ा-क्षेत्र है। इस अखिल जगत् में जिधर दृष्टि जाती है, विभिन्नताओं का ही अटूट स्रोत प्रवाहित होता दिखलाई पड़ता है। जगन्नियंता की अलौकिकता का इससे और पुष्ट प्रमाण क्या होगा कि उसकी समस्त कृतियाँ एक दूसरे से भिन्न हैं। अंतःभावनाएँ भी कदाचित् ही किसी-किसी की एकता की द्योतक होती हैं। मार्ग भले ही एक हो, किंतु कार्य-पद्धति, नियम-निर्वाचन, उद्योगपरता तथा विचार-विपाक में न्यूनाधिक अंतर अवश्य रहता है। किसी विकट परिस्थिति अथवा संकीर्ण स्थल-विशेष-वश चाहे हम भले ही आपकी हाँ-में-हाँ मिला देने के लिये बाध्य हों, किंतु आत्मा का आकर्षण उसी लक्ष्य की ओर रहेगा, जो हमारा वास्तविक कर्म-पथ होगा। अनुमोदन और स्वीकार में भी यही अंतर है।

विचारणीय विषय यह है कि इस सृष्टि में कोई ऐसी भी वस्तु है, जिसकी प्रशंसा सभी मुक्त कंठ से करते और उसकी सत्ता हृदय से स्वीकार करते हैं, अथवा नहीं? हाँ, है। वह 'स्वतंत्रता' है। यह वह वस्तु है, जिसके लिये सभी लालायित और उत्सुक रहते हैं। अनेक शताब्दियों से पिसी अथवा दलित की हुई जीवात्मा में यदि नवजीवन का संचार करनेवाली कोई संजीवनी है, तो यही स्वतंत्रता है। यह वह शक्ति है, जिसके स्मरण-मात्र से पतित-से-पतित आत्मा भी उन्नत हो जाती है, उसकी टूटी, छिन्न-भिन्न हृत्तंत्री से भी सजीवता की रागिनी निकलने लगती है। दलित भावनाएँ पूर्ण परिष्कृत हो परिपक्वता को प्राप्त हो जाती हैं। इसका अनुभवकर्ता भी क्षण-भर के लिये अपने को एक नवीन और अद्भुत जगत् का प्राणी समझने लगता है। प्रबल-से-प्रबल शक्तियों से लोहा लेने योग्य अपने को मान बैठता है। इसके अनुमान-मात्र से वह दिव्य आभा प्रस्तारित हो उठती है कि अंधकार का अस्तित्व ही लोप हो जाता है। सारी चेष्टाएँ एक बार पुनः अपने पूर्व गौरव की प्राप्ति के लिये प्रचंड गति से झुक पड़ती हैं। उस समय आपदाओं की उत्तुंग श्रेणियाँ भी उसे अवरोधित, भयभीत अथवा विचलित नहीं कर सकतीं। उस समय उसकी प्रज्ञा-शक्ति क्षितिज को भी निराहत करने लगती है। वह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाता है, शुभाशा की असीमता ही प्रतिलक्षित होती है। उसकी सद्भावनाएँ अनंत हो उठती हैं, तथा कल्पनाएँ कलित कलेवरों में परिवेष्टित होकर भविष्य की उज्ज्वलता प्रदर्शित करने में समर्थ होती हैं।

वास्तव में स्वतंत्रता परमात्मा की अलौकिक देन है। उसकी प्राप्ति के लिये की जानेवाली चेष्टाएँ उन्नति का मूल-मंत्र हैं। उसकी प्राप्ति कल्पतरु तथा कामधेनु की प्राप्ति के समान सुखद है। संसार के समक्ष यह प्रश्न बड़ी विकटता का द्योतक है कि इस स्वतंत्रता का वास्तविक अधिकारी कौन है? परमात्मा के निकट यह प्रश्न अत्यंत सरल है। उसने इस परमानंददायिनी वस्तु का निर्माण सबके लिये किया है। उसके समक्ष इस पर सबका समान अधिकार है, चाहे हमसे यह दिव्य देन भले ही छिन जाय, इसके लिये वह दोषी नहीं, यह तो हमारे कर्तव्यों की निकृष्टता ही कही जायगी। इसकी स्थिरता हमारे बलाबल

पर निर्भर है। आलस्य का त्याग ही बल और उसके प्रति अनुराग ही निर्बलता है। दीर्घसूत्री होना उतना बुरा न हो, यदि उसमें कार्य की सुचारुता विद्यमान हो। उद्योग और परिश्रम भी इसी कुटुंब के हैं। वास्तव में यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय, तो ज्ञात होगा कि परमात्मा ने बल रूपी परकोटा इसी स्वतंत्रता के रक्षार्थ निर्मित किया है, न कि किसी की स्वतंत्रता अपहरण कर उसमें बंद करने के लिये। यदि कोई ऐसा करता है, तो संदेह नहीं कि वह ब्रह्म से ब्रह्म को लड़ाकर, ब्रह्माग्नि की उत्पत्ति का आयोजन कर समस्त संसार को उसी में भूनना चाहता है। सदुपयोगिता और दुरुपयोगिता की यह भी एक कसौटी है।

कोई ऐसा समय था कि सभी स्वतंत्रता के भोगी थे। समय-पट-परिवर्तन के साथ-साथ उसके उपासक बने; फिर कुछ समय बाद इसके लिये उत्सुक और उत्कंठित हुए। कोई समय ऐसा भी दृष्टिगत हुआ कि उसके लिये रोना पड़ा। कहना न होगा कि उसके लिये बलिदान की भी आवश्यकता समझी गई। इतना होने पर भी उसकी प्राप्ति दुरूह ही नहीं, अपितु असंभव-सी प्रतीत होती रही। संसार में सर्वदा से इस परिवर्तन का नृत्य प्रारंभ है। राष्ट्र-के-राष्ट्र इसके शिकार हो गए। यही कारण है कि इस शब्द का अर्थ खोलकर बतलाने की आवश्यकता नहीं रह गई। विशेषकर इस बीसवीं शताब्दी में तो इसकी टीका और भी स्पष्ट हो चुकी है। प्रत्येक आत्मा, चाहे वह बालक की हो, चाहे वृद्ध अथवा युवक की, स्वतंत्रता का स्पष्ट, सुबोध और सरल कोष-सी बनी हुई है। खोजने पर भी आज दिन कठिनता से कदाचित् ही कहीं एक-आध आत्मा ऐसी मिले, जिसमें उसका स्पष्टार्थ अंकित न हो। हाँ, एक बात हो सकती है, प्रेस की छपाई, पत्र-पटल अथवा मसि आदि में किसी प्रकार की ख़राबी के कारण वह स्पष्टार्थ पढ़ा न जाता हो, तो दूसरी बात है; किंतु यह निर्विवाद है कि स्वतंत्रता का अर्थ सभी समझते हैं। विशेष विशेषता इस शब्द के प्रयोग में यह भी है कि इस शब्द का कोई कृत्रिम आवरण भी नहीं कि अर्थ एक स्थान पर एक प्रकार से, तो दूसरे स्थान पर दूसरे प्रकार से ग्रहण करें; यह तो लोक अथवा शास्त्र में, चाहे कहीं भी हो, एक ही रूप में ग्रहण अथवा प्रयुक्त होता है। इसमें संदेह नहीं कि जो एक होता है, वह सबके लिये होते हुए भी एक ही रहता है। वह अव्यय होने के साथ-साथ अपनी व्यापकता पर संसार को लट्टू बनाए रहता है। भगवान् की भी महत्ता इसी में है।

सच पूछा जाय, तो ऐसे व्यक्तियों का अभाव अनिवार्य है, जो ऐसे व्यापक, महत्व-पूर्ण तथा उपयुक्त शब्द का अर्थ समझने में असमर्थ हों। यदि कल्पना-संसार में ऐसा होना संभव हो, तो इसका समझाना भी कोई कठिन नहीं है। सरल-से-सरल तथा प्रत्यक्ष उदाहरणों एवं युक्तियों द्वारा इसका स्पष्टार्थ हृदयंगम कराया जा सकता है।

साहित्य-क्षेत्र में तथा लौकिक और वैदिक दोनो स्थलों पर वायु की स्वतंत्रता व्यापक है। प्रायः लोग प्रमाण देते हैं कि अमुक व्यक्ति वायु की भाँति स्वतंत्र है। इस कथन का भाव क्या है? इसका भाव यही है कि वायु संसार के सभी अवरोधक साधनों से उन्मुक्त है। संसार की सभी शक्तियाँ एक प्रकार से इसकी गति में बाधक होने में असमर्थ हैं। हाँ, इतना तो सभी कर सकते हैं कि उसके मार्ग में अड़चनें उपस्थित करके गति-विपर्यय कर दें, किंतु गति की आबद्धता उनकी शक्ति के बाहर है। वायु अपना मार्ग निर्धारित करने तथा अपनी स्वतंत्रता के रक्षार्थ सर्वथा समर्थ है। दूसरे प्रमाण में पिंजड़े के उन्मुक्त शुक अथवा अन्य पक्षी-समुदाय को उपस्थित किया जाता है। लोग कहते हैं—"सुग्गा पिंजड़े से छूटकर स्वतंत्र हो गया।" किसी प्रतिबंध का भोगी जब अपनी प्रतिबंधता से पार हो जाता है, तो लोग कह बैठते हैं, वह बंधन-विमुक्त हो स्वतंत्र हो गया। ऐसे ही अनेक प्रमाण इसे करने के लिये प्रस्तुत

किए जा सकते हैं। इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि प्रतिबंधनों का अभाव ही स्वतंत्रता का दूसरा रूप है, अथवा अवरोधक शक्ति के चंगुल में न आनेवाला ही स्वतंत्र है। इसके आगे बढ़कर भी हमें यही कहना पड़ता है कि स्वतंत्रता की शक्ति किसी की वशवर्तिनी नहीं। यही इसका अर्थ है, और यही इसकी विशेषता भी है। इतने पर भी यदि कोई स्वतंत्रता का अर्थ समझने से वंचित रह जाय, तो विवश होकर कहना पड़ेगा कि वह जीवात्मा प्रथम से ही एक ऐसे लोक के लिये उद्भूत हुई है, जो अनंत काल से परतंत्र रहा है, और भविष्य में भी सर्वदा रहेगा। इस दोष से परमात्मा भी दूषित नहीं किया जा सकता, और न किसी प्रकार के आक्षेप का शिकार ही होगा।

संसार में सर्वदा किसी वस्तु पर किसी का अधिकार नहीं रहता। इसमें भी विधित्व का रहस्य अटल रूप में विद्यमान है। यदि ऐसा संभव हो जाय, तो पारस्परिकता टके के लिये मँहगी हो जाय, कोई किसी की ओर फूटी आँखों भी न देखे। अधिकार-प्राप्त-मूलक वस्तुओं का नियंत्रण सर्वदा विनिमय के अधीन रहता है। आज यदि हम असीम क्षेत्र के अधिपति हैं, तो यह भी संभव है कि कल उसी क्षेत्र में याचक-स्वरूप परिभ्रमणकर्ता होकर मिलें। इस विनिमय अथवा परिवर्तन द्वारा विधाता एक दूसरे के हृदय-पटल पर एक दूसरे का मूल्य अंकित करता रहता है। इसी के प्रभाव से प्रभावान्वित होकर संसार वस्तुओं की ओर आकृष्ट होता और प्रिय वस्तु की प्राप्ति के लिये प्रबल चेष्टाओं का कर्ता बन बैठता है। मनुष्य की चेष्टाओं, भावनाओं, उत्सुकताओं और इच्छाओं में एक यह भी विशेषता है कि वह अति प्रिय वस्तु के अभाव में यथासाध्य उसी की प्राप्ति के लिये प्रबल उद्योग करता है। असफल होने पर वह इस पर भी संतोष कर बैठता है कि यदि हमारी प्यारी वस्तु हमें नहीं मिलती है, तो उसी के समकक्ष अन्य वस्तु ही मिल जाय, तो क्या बुरा है। "आवश्यकता आविष्कार की जननी है" के अनुसार, ऐसी विकट परिस्थिति में, वह ऐसी प्रिय वस्तुओं का आविष्कारक स्वयं बन बैठता है। यद्यपि वह नवीन आविष्कृत वस्तु संतोषदायिनी कल्पना करके प्रिय वस्तु के समान ही समझ ली जाती है, किंतु उसमें अत्यधिक अंतर अवश्य रहता है।

उपरि-लिखित नियमानुसार अतीत काल की स्वतंत्रता भोगनेवाली जाति उसके लुट जाने पर उसी के अनुरूप अन्य वस्तु अथवा तंत्रता या अवलंब के निर्माण के लिये बाध्य हुई। निर्माण में उसे सफलता भी मिली। स्वतंत्रता की अप्राप्ति की निराशा से उसने तंत्रता का एक ऐसा स्वरूप उपस्थित किया, और उस पर संतोष किया, जिसमें समस्त अक्षर तो वे ही रहे, केवल 'स्व' के स्थान पर 'सु' का प्रयोग हो गया, और उसने उसी नवीन 'सुतंत्रता' पर संतुष्ट होना स्वीकार भी किया। लेखन-कला की दृष्टि से तो शब्दों में विशेष अंतर नहीं दृष्टिगोचर होता, केवल 'सु' और 'स्व' का ही हेर-फेर है, किंतु वास्तव में इनमें क्या अंतर है, इसे अंतर्चक्षु-वाले ही जानते हैं। ऊपरी दृष्टि से अवलोकन करने पर भी इसमें स्पष्ट अंतर है। स्थूल अंतर को बोध-गम्य बनाने के लिये इनके 'स्व' और 'सु' अक्षर ही पर्याप्त हैं। 'स्व' अपना का द्योतक है, और 'सु' अच्छाई का सूचक है। क्या ही अच्छा होता, यदि ये दोनो अक्षर संयुक्त कर दिए गए होते? इसके लिये विशेष चिंता अथवा पश्चात्ताप की आवश्यकता नहीं। यह तो बाएँ हाथ का खेल है, यदि 'स्व' सुरक्षित रहे। दोनो अक्षरों के इकट्ठे न होने का मूल-कारण भी यही प्रतीत होता है कि 'स्व' के अपहरण पश्चात् ही तो 'सु' ढूँढ़ा गया, अन्यथा इसकी आवश्यकता ही क्या थी? अस्तु।

यह सब पर भले प्रकार विदित है कि 'स्व' (अपना) कितना प्यारा शब्द है, और इससे संयुक्त अन्य शब्द भी कितने कर्ण-प्रिय अथवा सुखद प्रतीत

होते हैं। इस 'स्व' से संयुक्त कोई भी वस्तु हो, अपने सुख की अनुपम सृष्टि करनेवाली हो जाती है। उसमें एक अनुपम आकर्षण आ विराजता है। उसमें मुग्धता की एक सरस धार लहरा उठती है, जिसमें हम अनायास ही प्लावित हो उठते हैं। देश, गृह, जाति, अर्थ एवं राज्य तथा धर्म किसे प्यारे नहीं, और इनमें किसकी असीम श्रद्धा नहीं? किंतु 'स्व'-शब्द से संयुक्त स्वदेश, स्वगृह, स्वजाति, स्वार्थ, स्वराज्य तथा स्वधर्म आदि में कितना आकर्षण है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं, यह तो समझते ही बनता है। इनके स्मरण से न्योछावर की लिप्सा जाग्रत् हो उठती है। इन शब्दों में कितना अनुराग है, कितनी भक्ति और श्रद्धा है, ये शब्द हमें कितने प्यारे हैं, यह प्रत्येक प्राणी जानता है। इनके उच्चारण-मात्र से हमारे रोम-रोम में स्वाभिमान की बिजली-सी दौड़ जाती है। उस समय हम अपने को एक दूसरे ही लोक में पाते हैं। उस समय हमें सर्वस्व न्योछावर कर देना ही प्रिय जँचता है। उस समय हमें यह ज्ञात होता है कि हम कोई हैं, और हमारा भी कोई ऐसा है, जिसके प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना शेष और आवश्यक है।

मान हम सबको देते हैं, साथ ही सबसे मान पाने के इच्छुक भी रहते हैं, किंतु स्वमान को छिनते देख हमें जो आंतरिक असह्य दुःख, कष्ट, क्षोभ और खेद होता है, वह अनर्थकारी ही नहीं, प्रलय से भी विशेष विध्वंसकारी होता है। यही 'स्व' की विशेषता है। इसी 'स्व' के पीछे न-जाने कितने रण-क्षेत्रों का निर्वाचन हुआ, कितने अस्त्र-शस्त्रों से विप्लवकारिणी झंकारें झंकरित हुईं, कितनी घनी फुलवारियाँ मरुस्थल हो गईं, कितने पद्म-पाणिपल्लव कठोर कृपाण धारण करने के लिये बाध्य हुए, तथा कितने माई के लाल अकाल ही में इस धराधाम में विलीन हो गए—इसकी गणना नहीं। इसके प्रमाण में इतिहास के पन्ने आज तक रँगे हुए प्रस्तुत हैं। यह 'स्व' के आकर्षण का फल है। इसी से प्रकट है कि 'स्व' हमको कितना प्यारा है—मधुर है!

अब 'सु' की व्यापकता एवं सर्व-प्रियता का अनुमान करना है। इसमें संदेह नहीं कि यह भी एक प्रिय शब्द है, और इससे संयुक्त सुदेश, सुजाति, सुकर्म तथा सुवर्ण आदि को सभी चाहते हैं, और अत्यधिक रूप में इसकी इच्छा करते हैं। विचारणीय विषय यह है कि कोई वस्तु भली अथवा अच्छी कब लगती है? प्रायः देखा जाता है कि किसी सुदेश का प्रवासी प्राणी सम्यक्-रूपेण, सानंद जीवन-यापन करते हुए भी 'स्वदेश' के लिये आँसू बहाया करता है। जाति का पूछना ही क्या? इसकी व्यापकता तो सर्वमान्य है। एक निम्न श्रेणी का व्यक्ति भी अपने को जाति-बाहर का कहलाना, चाहे वह उच्च ही क्यों न कहा जाय, सहन नहीं कर सकता। कोई भंगी अपने को ब्राह्मण कहलाना नहीं चाहता, अथवा कोई क्षत्रिय अपने को ब्राह्मण सुनना नहीं चाहता, यद्यपि सर्वदा से ब्राह्मण-जाति सर्व-श्रेष्ठ और पूज्य मानी गई है। बात क्या है? वास्तव में वहाँ भी इसी 'स्व' और 'सु' का अंतर है। स्वजाति जितनी प्रिय है, सुजाति उतनी नहीं। हाँ, पारस्परिक प्रेम-भाव सुचारु रूप में दृढ़ स्थायी रखने के लिये स्वजाति अवश्य माननीय है। किंतु स्पष्ट है कि जीवन-यात्रा निर्विघ्न समाप्त करने के लिये स्वजाति का मर्यादा-पालन सर्वथा अनिवार्य है।

इसे सभी मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं कि सुकर्म प्रत्येक प्राणी के लिये अनिवार्य और प्रिय है। मैं जानना चाहता हूँ कि सुकर्म की परिभाषा क्या है? आप जिसे सुकर्म समझते हों, संभव है, मैं उसे वैसा न समझता होऊँ, और संसार का नियम भी है कि "प्रत्येक मनुष्य से यह आशा करना कि सभी हमारे ही विचारों के अनुयायी हो जायँ, घोर अन्याय और पाप है।" अस्तु। संसार भिन्नकर्मा प्रत्यक्ष है। एक वस्तु का सुकर्म क्या भलेमानुस के लिये भी सुकर्म हो सकता है? यदि नहीं, तो किसी भी प्रकार किसी का कर्म

सुकर्म की सीमा में नहीं आ सकता। इसी तत्त्व पर कहा गया है कि अपनी आत्मा जिसे सुकर्म कहे, वास्तव में वही सुकर्म है; किंतु स्मरण रहे कि आत्मा पर दबाव डालकर किसी कर्म के संबंध में स्वीकृति न ली जाय। आत्मा कभी दूषित नहीं होती। कर्तव्यों के अच्छे अथवा बुरे आवरण से केवल वह ढकी रहती है, फिर भी उसकी दिव्य ज्योति किसी कर्म का बोध कराने के समय कलुषित आवरण को विदीर्ण कर देती है। इसकी परीक्षा प्रत्येक प्राणी कर सकता है। जब हम कोई कर्म करने के लिये उद्यत होते हैं, तो आत्मा कह देती है—"बुरा है, मत करो, अथवा अच्छा है, करो।" चाहे इन शब्दों के अनंतर हम उसे दबा ही क्यों न दें। अस्तु। यह भी बात निर्विवाद सिद्ध है कि स्वकर्म ही सुकर्म भी हो सकते हैं। यही अवस्था सुवर्ण के संबंध में भी घटित होती है। कोई असित वर्णवाला अपनी असितता को बुरा नहीं कहता, और न मानता ही है। भगवान् को भी यही असितता सुवर्ण-रूप में मान्य हुई, और उन्होंने उसे सादर अपनाया, वह पूज्य भी हुए। अधिक लिखना येन-केन प्रकारेण परिच्छेद-पूर्ति-मात्र ही होगा, अतः इतना ही कथन इस संबंध में पर्याप्त होगा। निष्कर्ष यह कि 'स्व'-संयुक्त वस्तु हमें 'सु'-संयुक्त वस्तुओं से विशेष प्रिय एवं मान्य होती है। इसी से यह भी ध्वनि निकली कि 'स्वतंत्रता' 'सुतंत्रता' से विशेष प्रिय है। फिर 'सुतंत्रता' तो परतंत्रता में भी आ सकती है, जो अच्छी होने पर भी विष की पुड़िया, पतन की सीढ़ी, जीवन-दुर्ग की विध्वंसकारिणी एवं सर्व-रूपेण त्याज्य है।

एक शब्द के अनेक ऐसे समानार्थवाची शब्द भी होते हैं, जो प्रयोग में आते हैं। ऐसे शब्दों में स्थूल दृष्टि से अधिक अंतर प्रतिबिंबित नहीं होता, किंतु सूक्ष्म दृष्टि से देखने में कुछ विभेद अवश्य लक्षित होता है। ऐसे ही शब्दों में एक शब्द 'स्वच्छंदता' भी है, जो प्रायः स्वतंत्रता के ही अर्थ में प्रयुक्त होता है। ये दोनो शब्द यद्यपि एक दूसरे के सदृशार्थ बोधक हैं, किंतु इनमें भी अंतर है। विद्वानों ने जो भेद इनमें रक्खा है, वास्तव में वह विवेचनीय है।

स्वतंत्रता, जैसा ऊपर कथन किया गया है, मर्यादा की सीमा से सीमित उत्थान का सुघर सोपान है, किंतु स्वच्छंदता में यह बात नहीं। जहाँ एक में शीतलता, अनुनय, अनुकंपाशील एवं लौकिक, वैदिक सीमाओं की रक्षा का बीज है, वहीं दूसरे में ताप, उद्दंडता, निरंकुशता, कठोरता तथा मनमानापन और अंधाधुंधी भी आ सकती है। एक से यदि हम सर्व-प्रिय हो सकते हैं, तो यह कभी संभव नहीं कि दूसरे से भी ऐसे ही हों। वास्तव में सच्ची बात यह है कि स्वतंत्रता हमें लोक-सीमा के अंदर ही रखकर हमारी रक्षा और सर्व-प्रियता का साधन प्रस्तुत करती है, किंतु स्वच्छंदता हममें लोक-सीमा का ध्यान तक रहने नहीं देना चाहती। उसके समक्ष सांसारिक प्रचलित पद्धति कोई मूल्य नहीं रखती। यदि स्वतंत्रता कहती है कि जीव-हिंसा पाप है, वह मार्ग कंटकाकीर्ण है, अतः त्याज्य है; अथवा अमुक कार्य से अन्य लोगों को क्षति पहुँचने की संभावना है, मत करो, तो स्वच्छंदता उसको इन बातों को ध्यान तक में लाने को बाध्य नहीं हो सकती। उसका तो यह कहना है कि मैं स्वच्छंद हूँ, चाहे जो करूँ। संसार के हानि-लाभ से मुझे क्या? मुझे कोई नहीं रोक सकता। यही स्वच्छंदता का मूल-तत्त्व है। परम स्वतंत्रता ही स्वच्छंदता की उत्पादिनी है। आज तक किसी ने परम स्वतंत्रता नहीं माँगी, चाहनेवाले स्वतंत्रता ही माँगते हैं।

लोक में आकर लौकिक नियमों का निरादर करना सागर में रहकर मगर से वैर करने के समान है। बहुतेरे लोग ऐसा कहलवाने में ही अपनी वीरता का अनुभव करते हैं कि "हमारा पुत्र सिंह का शिकार करने के लिये गया था।" पूछा गया कि क्या हुआ, तो उत्तर मिला—"सिंह ने फाड़कर खा लिया।" इसमें क्या तत्त्व है, समझनेवाले समझें। बहुत-से लोगों के कथनानुसार इसमें भी किया गया साहस सराहनीय है। मेरी समझ में तो इस साहस से

विशेष सराहनीय और श्रेष्ठतर वे पौरुष, उपाय, उद्योग आदि होते, जिनके द्वारा विजय नहीं, तो सामना ही किया जा सकता, अथवा अपने को तो सुरक्षित किया जा सकता। यही समस्या यहाँ भी है। हम समय, समाज, राष्ट्र अथवा व्यक्ति को निरादृत भले ही कर लें, किंतु सफलता के लिये हमें इन सबका मुख कभी-न-कभी अवश्य जोहना पड़ेगा। यदि हम ऐसा नहीं करते, तो बहुत संभव है, सबकी दृष्टि से गिर जायँ। हमारी यात्रा सहायक-रहित होकर प्रतिकूल अथवा अनिष्टकारी साँचे में ढल जाय, और सभी मज़े किरकिरे होकर सरस के स्थान पर नीरस होकर प्रकट हों, जिससे यात्रा अपने उद्देश्य से नीचे गिरकर एक जंजाल-मात्र रह जाय। अतः संसार में सफलता प्राप्त करने, सर्व-प्रियता का पात्र बनने तथा लोक-मर्यादा को सुरक्षित रखने के लिये जितनी उपयोगी स्वतंत्रता जँचती है, उतनी स्वच्छंदता नहीं।

इन सब विवेचनाओं के साथ ही एक प्रश्न यह भी सम्मुख आता है कि स्वच्छंदता किसी रूप अथवा अवस्था में ग्राह्य भी हो सकती है अथवा नहीं? इसके उत्तर में भी 'हाँ' आ सकता है। किंतु अवस्था ऐसी होनी परमावश्यक है कि फिर हमारे ऊपर अथवा समकक्ष कोई शासक या आलोचक न हो, अथवा हृदय ऐसा हो, जहाँ व्यंग्य, शाप, विषाद, भर्त्सना, धिक्कार तथा दुत्कार आदि तीक्ष्ण बाणों का कोई प्रभाव न पड़ता हो। यदि ऐसा होना संभव होगा, तो पतन भी अवश्य संभव होगा, इसमें किंचित् संदेह नहीं। यदि ऐसे अवसर पर रक्षा का चाव उदय होगा, तो हमें बाध्य होकर स्वतंत्रता की शरण लेनी पड़ेगी। ऊपर मैंने परम स्वतंत्रता को स्वच्छंदता का रूप माना है, यही परम स्वतंत्रता (स्वच्छंदता) भगवान् में भी थी, जिसके कारण नारद को भी कहना पड़ा था—

"परम स्वतंत्र, न सिर पर कोई ;
　　भावै मनहिं, करहु सोइ-सोई।"

अनेक बार उन्हें शाप का शिकार भी होना पड़ा था। अब तक भी लोग उन्हें धिक्कारते, फटकारते, दोष देते एवं व्यंग्य-बाणों से वेधित करते हुए मिलते हैं, पहले भी मिलते थे; किंतु उन्हें इसका रंच-मात्र भी क्षोभ अथवा विषाद नहीं। उनमें इतना बल, साहस, धृति, क्षमा, पौरुष, सहिष्णुता एवं इतनी शांति थी कि वह सब कुछ सहन कर अपनी स्वतंत्रता की रक्षा कर सकते थे। वास्तव में किसी वस्तु का अधिकारी वही है, जो उसकी पूर्ण रूप से रक्षा कर सके। उसकी गुरुता भी इसी में है, और इसीलिये वह गौरव का पात्र भी समझा जाता है। शक्ति के बाहर का खाद्य पदार्थ अजीर्णता का कारण बन सर्वनाश दिखलाता है, इसे सब जानते और मानते हैं। मायामय प्रेम-परिवेष्टित, लोक-लोलुप, अर्थ-उत्सुक तथा सौख्य-शून्य जीव कभी स्वच्छंद होकर कृत-कार्य नहीं हो सकता। वह तो यदि स्वतंत्रता की रक्षा कर ले, तो वही उसके लिये बड़ी बात है।

ऊपर मैंने स्वतंत्रता के समकक्ष रहनेवाली सुतंत्रता और स्वच्छंदता का विवेचन किया है। अब यहाँ उसके प्रतिपक्ष की निवासिनी के संबंध में विचार अवशेष है। किसी की महत्ता, गुरुता, श्रेष्ठता अथवा उपयुक्तता उसके प्रतिपक्षियों से ही विकीर्ण होती है। एक सैनिक की वीरता अपने प्रतिपक्षी के निहत होने पर ही प्रतिलक्षित होती है। यहाँ प्रतिपक्षी का भाव शत्रु से नहीं है, किंतु विभिन्नता-सूचक अनुसंधानों से है। हम दीर्घ हैं, तो हमारी दीर्घता का मापक कोई लघु अवश्य होगा। इस कसौटी के कई रूप हैं। समानता, सादृश्य एवं समकक्षता का खटकनेवाला अभाव ही हमारी भाव-पूर्ति का मूर्त आधार होता है। संसार ऐसी विभिन्नताओं का भांडार है। दिन-रात, मित्र-शत्रु, लाभ-हानि, सज्जन-दुर्जन, सुविधा-असुविधा, सुख-दुःख, प्रशंसा-निंदा आदि अनेक जोड़े ऐसे हैं कि एक के अभाव में ही दूसरे की स्थिति है, फिर स्वतंत्रता के अभाव की भी कोई वस्तु अवश्य होगी। यदि है, तो उस पर विचार न करना भी अन्याय होगा। क्योंकि होने-

वाली वस्तु का अस्तित्व उसी अभाववाली वस्तु से प्रदर्शित होगा। अस्तु।

स्वतंत्रता के अभाव में आनेवाली 'परतंत्रता' का विवेचन यहाँ होता है। संसार के नियमानुसार मनुष्य-मात्र उन्नति-पथ का पथिक होना चाहता है। समाज को भी नहीं छोड़ना चाहता, किंतु साथ ही वह किसी से दबकर अपने को नीचे अथवा निरादृत रूप में भी नहीं देखना चाहता। यह उसकी स्वाभाविक ईश्वर-दत्त लिप्सा होती है। यहीं से स्वाधीनता-साम्राज्य में धपलेबाज़ी प्रस्तुत होती है, और अनेक बाधाओं से मुठभेड़ें होती हैं। आपदाओं की बौछार एवं दलित दशा का अनुभव-पुंज व्यक्ति को डावाँडोल करने लगता है। उसके हृदय-राज्य में अनेक कल्पनाओं, भावनाओं, मनोवेगों एवं विचारों आदि का ठट्ट लग जाता है, और सबके परस्पर टक्कर खाने से हृदय एक विचित्र उथल-पुथल का उद्भव-केंद्र बन जाता है। इस धाँधली से हृदय-देश का भ्रम आक्रांत हो उठता है, और ऐसी युक्तियों का प्रचारक बन बैठता है, जिससे शांति के साथ-साथ उसकी मर्यादा-रक्षा भी हो जाय, और धाक भी बनी रहे। इस कार्य-सिद्धि के लिये वह दूसरे पर हावी होने का प्रयत्न करता है, और उसकी इस चेष्टा के परिणाम-स्वरूप स्वतंत्रता का अभाव होने लगता है, धीरे-धीरे उसके स्थान पर परतंत्रता आकर डट जाती है। परतंत्रता का यह विस्तार कल, बल, छल, अस्त्र-शस्त्र आदि साधनों से होता है।

यहाँ पर हम परतंत्रता पर विचार करने नहीं बैठे हैं, किंतु यह दिखलाना चाहते हैं कि स्वतंत्रता और परतंत्रता में परस्पर क्या संबंध है? इसका कुछ-कुछ आभास ऊपर मिल चुका है। यहाँ कुछ विद्वानों के विचार उद्धृत किए जाते हैं, इससे यह संबंध और स्पष्ट हो जायगा। एक अनुभवी विद्वान् का कथन है कि "परतंत्रता एक भाव-रूपी वस्तु है, और स्वतंत्रता अभाव-रूपी।" इस विचार में भी वही बात है कि एक का अभाव दूसरे का भाव, तथा एक का भाव दूसरे का अभाव है। इसी आधार पर कहा जाता है कि स्वतंत्रता का अभाव ही परतंत्रता है। कोई परमात्मा के घर से परतंत्र होकर नहीं आता। हाँ, इतना अवश्य है कि वह जिस प्राकृतिक परिस्थिति में विचरण करता है, उस पर एक प्रकार का बंधन आकर उसमें परिवर्तन उपस्थित कर देता है, और उसी परिवर्तन के साथ-साथ परतंत्रता का उद्भव आरंभ हो जाता है। यदि इन बंधनों का लोप हो जाय, तो फिर स्वतंत्रता-ही-स्वतंत्रता हो जाय, इसमें संदेह नहीं। रूसो-नामक विद्वान् का यह कथन कि "मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुआ है", इसी भाव का द्योतक है।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि स्वतंत्रता और परतंत्रता एक दूसरे के प्रतिकूल है। यदि एक सुख की गोद में पली है, तो दूसरी दुख की जननी है। यदि एक का लक्ष्य प्रकाश की ओर है, तो दूसरी का अंधकार की ओर। एक ऊपर उठानेवाली है, तो दूसरी नीचे गिरानेवाली। एक अमृत है, तो दूसरी विष। इसी लक्ष्य पर एक विद्वान् ने कह डाला कि "विकास की स्वतंत्रता के मार्ग में जो विघ्न उपस्थित होते हैं, वे परतंत्रता के नाम से पुकारे जाते हैं।" ऐसी निकृष्ट परतंत्रता से कौन नहीं बचना चाहेगा? इससे मुक्त होने के लिये किसने और कब हाथ-पैर नहीं पटके? यदि मेरी धृष्टता न समझी जाय, तो मैं ऐसे व्यक्ति को सामने देखना चाहता हूँ, जो अपने को परतंत्र रखने में ही सुख का अनुभव करता हो। जब ऐसी अवस्था है कि इसके लिये कोई भी तैयार नहीं, तो इसके प्रति-बंधनों से जकड़ा हुआ यदि हाथ-पैर पटकता है, तो उसका क्या दोष? उसकी स्वतंत्रता उसको मिले, अथवा न मिले, किंतु आक्रांत आत्मा सब प्रकार उद्योग करने की अधिकारिणी है। उसके अपनी स्वतंत्रता के लिये किए गए सतत उद्योग प्रशंसनीय और श्लाघ्य हैं। यह उद्योग उसका जीवन है। यही उसका इतिहास होगा। इस भाव से उत्पन्न भूकंप

संभावी है। इसे कोई रोक नहीं सकता, चाहे सारा संसार उसमें भस्मीभूत हो जाय या तुप जाय।

कदाचित् इससे सरल कोई प्रश्न न होगा कि "स्वतंत्रता की क्या आवश्यकता है?" किसी कवि का कथन है—

"(पर के) अधीन होकर बुरा है जीना;
है मरना अच्छा स्वतंत्र होकर।"

यद्यपि काव्य-कला की दृष्टि से यह पद्य-चरण परम उत्कृष्ट नहीं, किंतु परतंत्र हृदय-देश में क्रांति उत्पत्ति के लिये पर्याप्त है। एक कवि ने क्या ही अच्छा कहा है—

"पराधीनता दुख महा, सुख जग में स्वाधीन;
सुखी रहत सुक बन-बिषे, कनक-पींजेर दीन।"

स्वतंत्रता की आवश्यकता इससे बढ़कर क्या हो सकती है? संसार में कौन-सा ऐसा पक्षी है, जो सुख की खोज में न निकला हो। इसी सुख का कुंड स्वतंत्रता है, फिर स्वतंत्रता की आवश्यकता क्यों न हो। जब पशु-पक्षी तक स्वतंत्रता के इच्छुक हैं, तो चेतना-युक्त मानव-समाज का क्या पूछना। वह इस पर क्यों न लट्टू हो? वृष कभी जुए के अधीन रहना स्वीकार नहीं करता। यह है परतंत्रता का विष।

उपर्युक्त उदाहरणों एवं अवतरणों से स्पष्ट है कि परतंत्रता दुख की खानि है, तो स्वतंत्रता सुख की; परतंत्रता एक भार है, तो स्वतंत्रता जीवन को सफल बनाने का दृढ़ आधार। परतंत्रता में हमारी इच्छाएँ संकुचित रहती हैं, किंतु वेही इच्छाएँ स्वतंत्रता में विकसित और विस्तृत हो जाती हैं। परतंत्रता में हमें सर्वदा दूसरों का मुँह जोहना पड़ता है, किंतु यह बात स्वतंत्रता के लिये सर्वथा लागू नहीं हो सकती। मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए एक स्वतंत्र-व्यक्ति का मुँह इस प्रसन्नता से प्रफुल्लित मिलता है कि उसे स्वतंत्रता की मृत्यु मिल रही है, किंतु महान् सुख के उपकरणों से संयुक्त, पर परतंत्र आत्मा इस बात के स्मरण से सर्वदा रक्त के आँसू बहाया करती है, और अपने को कोसती तथा विधाता को दोष देती है कि मेरा यह जीवन व्यर्थ ही गया कि स्वतंत्र मृत्यु भी न मिल सकी। इसी आधार पर आत्महत्या की प्रथा प्रचलित हुई। इस बात के अनेक उदाहरण देखने में आए हैं कि दुष्टों के चंगुल में फँसी अबला, आततायियों के आतंक से आच्छादित धर्मात्मा, देश को दलित एवं छिन्न-भिन्नावस्था में ले जानेवाली नीति से घिरा हुआ देश-भक्त तथा अतीत काल से असाध्य रोग का जकड़ा हुआ रोगी क्रांति का उपासक होता है। यदि क्रांति उसे शांति देने में असमर्थ होती है, तो वह आत्महत्या की शरण लेता है। इस प्रकार जीवन्मुक्त होने की इच्छा रखनेवाला प्राणी समझता है कि मैं किसी के अधीन तो न रहूँगा, और परतंत्रता के रौरव का द्वार तो न झाँकना पड़ेगा। क्लाइव-जैसे वीरात्मा को भी इसकी शरण लेनी पड़ी थी। सारांश यह कि ऐसी प्रिय, अमूल्य एवं उपयुक्त स्वतंत्रता की अत्यंत आवश्यकता है, क्योंकि इसके न होने से प्रथम तो कोई उन्नति कर ही नहीं सकता, और न सुख का भागी ही हो सकता है। और, यदि उन्नति जन्म के साथ लेता भी आवेगा, तो शीघ्र ही अवनति के गढ़े में गिरता हुआ देखा जायगा; यह निर्विवाद सिद्ध है। यह स्वतंत्रता ऊँचे उठने का एक लक्ष्य है, और इसी लक्ष्य से देश, जाति, समाज आदि ऊँचे की ओर जाते हैं। उनकी यही चढ़ाई उत्थान के नाम से बोधित होती है, और इसी उत्थान की समस्त चेष्टाएँ, उद्योग, व्यापार तथा प्रयत्न आदि उसके इतिहास के मूलाधार होते हैं।

जिस प्रकार स्वतंत्रता की आवश्यकता का प्रश्न सरल है, उसी प्रकार उसके ग्राहकों की संख्या भी अपरिमित है। अपरिमित कहना तो एक प्रकार से अपराध-सा जँचता है; उसके संबंध में तो यही कथन वस्तुतः यथार्थ प्रतीत होता है कि संसार के जड़-चेतन सभी इसके ग्राहक हैं। मैं ही क्या, समस्त संसार इसे मुक्त कंठ से स्वीकार करेगा कि यदि महँगी-से-महँगी वस्तुओं का बाज़ार लगाया जाय, तो भी कदाचित् स्वतंत्रता की माँग पूरी न

हो सके, और वह लूट से भी बढ़े हुए रूप में ग्राह्य हो। यह बात उतनी ही सत्य है, जितनी आँख की पुतली।

ऊपर कहा गया है कि जड़-चेतन कोई भी अपने को परतंत्रता के सिकंजे में कसना नहीं चाहता; उसके समक्ष इससे बढ़कर तो आत्महत्या का ही महत्त्व है। इसके ग्राहकों की संख्या का अनुभव एक विद्वान् के इस वाक्य से भले प्रकार किया जा सकता है—"शायद कोई भी सत्य इतना स्पष्ट नहीं है, जितना यह कि मनुष्य स्वभावतः बंधन से छूटकर स्वतंत्र होना चाहता है।"

संसार की समस्त वस्तुओं का मूल्य सिक्कों में चुकाया जा सकता है, अथवा विनिमय में उसी मूल्य की वस्तु दी जाती है। इस नियम के अनुसार जब हम स्वतंत्रता की ओर दृष्टि दौड़ाते हैं, तो स्पष्ट दिखलाई पड़ता है कि यह सिक्कों द्वारा नहीं क्रय की जा सकती। इसके लिये बलिदान ही मुख्य मूल्य है। बलिदान भी ऐसी-वैसी वस्तुओं का नहीं, प्रत्युत सर्व-श्रेष्ठ एवं सर्व-प्रिय प्राणों के बलिदान की महान् आवश्यकता होती है। कभी-कभी तो इसके लिये किए जानेवाले बलिदानों की संख्या असंख्य होती है। यह हमारे कहने की बात नहीं, और न युक्तियों से ही सिद्ध की जा सकती है। इसकी पुष्टता एवं सत्यता के लिये इतिहास के पन्ने प्रस्तुत हैं, चाहे वह किसी देश के हों। सर्वत्र स्वतंत्रता का यही मूल्य आँका गया है। जिन्हें अपने प्राणों का लोभ है, उन्हें स्वतंत्रता आकाश-कुसुम अथवा वंध्या-पुत्र के समान ही है। यह बलिदान कोई नई योजना नहीं है, यह तो अनंत काल से होता आ रहा है, तथा आज भी हो रहा है, और भविष्य में भी होगा।

एक बालक भी अपनी स्वतंत्रता में बाधा उपस्थित होते देख उसको सहन नहीं कर सकता, प्रत्युत अशक्त रहते हुए भी वह बाधा उपस्थित करनेवाले पर घोर प्रहार करना चाहता है, चाहे भले ही उसका पक्ष निर्बलता का सूचक हो, उसका वश न चलने दे। यह किसका प्रताप है? यह उसी स्वतंत्रता का प्रताप है। उसकी सर्व-प्रियता एवं ग्राहकता का उज्ज्वल प्रमाण है। स्वतंत्रता में चाहे हम भले ही अपार दुख के भोगी हों, हमें दुख का अनुभव भी नहीं होता, किंतु परतंत्रता का सुख भी दुख ही प्रतीत होता है। इतना ही नहीं, परतंत्रता का अपार सुख अपार दुख और स्वतंत्रता का अपार दुख अपार सुख ज्ञात होता है। ऐसी सर्व-प्रिय तथा ग्राह्य वस्तु के ग्राहकों की संख्या का अनुमान करना एक प्रकार से उसको अपमानित करना है। इसके संबंध में एक प्रतिष्ठित सज्जन का यह वाक्य ही उद्धृत करना अलम् होगा कि "स्वतंत्रता की अभिलाषा पशु-पक्षी तथा मानव-हृदय के पोर-पोर और रोम-रोम में बसी हुई है।"

विधाता द्वारा निर्मित सृष्टि के रहस्य समझ में नहीं आते। उसके रहस्यों को मनुष्य, न समझने के कारण, अलौकिकता की पदवी देने लगता है। विशेष झुँझलाने पर विधि-विडंबना कहकर टाल देता है। इस झुँझलाहट में पड़कर कवियों ने यहाँ तक कह डाला—

"नाम चतुरानन, पै चूकतै चलो गयो।"

महाकवि महात्मा तुलसीदास ने अपनी रामायण के पात्रों द्वारा विधाता के रहस्य का उद्घाटन इस प्रकार किया है—

"..............................
बिधि-करतब उलटे सब अहहीं।
निपट निरंकुस, निठुर, निसंकू;
जेहि ससि कीन्ह सरुज, सकलंकू।
रूख कलपतरु, सागर खारा;
....

❀ ❀ ❀

...............बिधि-बुधि बाँकी;
जो पय-फेन फोर पबि-टाँकी।
सुनिय सुधा, देखिय गरल, सब करतूति कराल;
जहँ-तहँ काक-उलूक-बक, मानस-सुकृत मराल।

....

विधि-गति बड़ि विपरीत, विचित्रा ।
जो सृजि पालइ, हरइ बहोरी ;
बाल-केलि-सम विधि-मति भोरी ।" आदि ।

वास्तव में इस उलट-फेर, बाँकेपन, विचित्रता तथा भोलेपन और चूकने में क्या रहस्य है ? इसे तो वही समझता है । हाँ, यह निष्कर्ष अवश्य निकलता है कि उसके यहाँ अच्छी और सर्व-प्रिय वस्तु का अभाव नहीं, तो कमी तो अत्यधिक रूप में अवश्य है । सब प्रकार आनंददायक चंद्रमा कलंक-युक्त है । अथाह जल का कुंड समुद्र खारा है । अमरकारक अमृत अप्राप्य है । सुकृत हंस मानस-वासी है । संपूर्ण कामना-प्रदत्त कल्पतरु वृत्त है, साथ ही अंतरिक्ष में है; किंतु सर्वसंहारक विष प्रत्यक्ष है । खोपड़ी चाट जानेवाला एवं कर्कश ध्वनिकारक काक-समूह सर्वत्र प्राप्य है । यही दशा सर्व-प्रिय और समस्त संसार को भानेवाली स्वतंत्रता की भी है । यह बात जितनी ही आश्चर्य-जनक है, उतनी ही सत्य भी है कि संसार में स्वतंत्र कोई भी नहीं है । ध्यान से देखने पर स्पष्ट प्रकट होता है कि विधाता की यह सृष्टि एक दूसरे के आश्रित है । यदि इसे अवलंबन का लोप कर दिया जाय, तो पता न चले कि सृष्टि की सत्ता क्या हुई !

लोग कहते हैं, वायु स्वतंत्र है; किंतु विज्ञान चिल्ला-कर कह रहा है, वह भी सूर्य, अग्नि, शीत, समुद्र तथा ऋतुओं के अधीन है । वन्य जीवन व्यतीत करनेवालों की दशा तो और भी जटिल है, क्योंकि वहाँ तो सब एक दूसरे के प्राण के ग्राहक हैं, और 'जीवो जीवस्य भोजनम्' का नियम पूर्ण आधिपत्य जमाए हुए है ।

यदि हम इन सब विवादों को हटाकर स्थूल रूप से देखें, तो भी प्रत्येक प्राणी किसी-न-किसी रूप में बँधुवा है । वह दूसरे का आश्रित भले ही न हो, किंतु समाज, राज्य एवं लोक में रहकर वह उनके रीति-बंधनों से मुक्त नहीं कहा जा सकता । इससे भी यदि वह पृथक् मान लिया जाय, तो शारीरिक नियंत्रणों से वह किसी प्रकार भी पृथक् नहीं माना जा सकता । सबसे आवश्यक और अनिवार्य मृत्यु का पंजा उसे कभी छोड़ ही नहीं सकता, यह तो निर्विवाद सिद्ध है । तात्पर्य यह कि प्रकृति की कोई वस्तु उसके नियम के बहिर्भूत होकर स्वतंत्र नहीं । यही स्वतंत्रता का प्रसार है । देखने में स्वतंत्रता कहीं भी नहीं, किंतु उसका प्रसार किसी से कम भी नहीं है ।

इतना होते हुए भी मनुष्य स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये अनवरत प्रयत्नशील रहा है, आज भी है, और भविष्य में भी रहेगा । विज्ञान इस बात का दावा करता है कि 'प्रकृति की सारी बातें हमारे वश की हैं, केवल धैर्य और साहस चाहिए ।' हम जिसको आकस्मिक कहकर आगे बढ़ते हैं, विज्ञान उसके पीछे पड़ जाता है, और सिद्ध करके दिखला देता है कि इसमें भी कार्य-कारण का अविचल नियम निबंधित है । जिस सूर्य, पवन, समुद्र तथा जलद के हम सर्वदा याचक रहे, आज उन्हीं से हम काम ले रहे हैं । यह क्या है ? यह स्वाधीनता के लिये किए गए सतत परिश्रमों, प्रयत्नों, उपायों और उद्योगों का प्रति-फल है । शिल्प भी हमको यही बोध कराता है ।

आज दिन संसार में कोई परतंत्र नहीं रहना चाहता, चाहे उसे पूरी सफलता भले ही न मिले । आज हम स्वतंत्र वायु पर भी हावी हैं—पंचभूतों से लोहा ले रहे हैं, जल, स्थल अथवा आकाश कोई भी स्थान ऐसा नहीं, जहाँ हमारी गति न हो, और उसके अंतः एवं बहिः तत्त्वों से हम अभिज्ञ न हों । आज के पूर्व हम इनके इतने आश्रित थे कि इन्हें देवी-देवता-स्वरूप अनुमान कर पूजते थे, और सब प्रकार इन पर अधिकार पाने का उद्योग अथवा विचार मूर्खता-पूर्ण समझकर, हाथ-पैर समेट-कर चुपचाप बैठ रहना ही अपना कर्तव्य समझते थे । आज वह बात नहीं । यह कर्म-युग उन्नति की ओर है । एक बड़े विद्वान् का कथन भी है कि "संसार में जिसे उन्नति कहते हैं, वह मनुष्य-

जाति की जड़ और चेतन बंधनों से छूटकर स्वाधीन होने की इच्छा का परिणाम है।" इस उद्योग का क्या फल होगा, यह लेख लिखते समय उसके संबंध में कुछ भी कहने का अधिकार नहीं, वह तो अनधिकार चेष्टा-मात्र होगी।

अब हमें केवल एक बात पर और ध्यान देना है। वह यह कि समाज का अंग होते हुए इस स्वतंत्रता की रक्षा कैसे की जा सकती है? स्वतंत्रता कल्याण का द्वार है, किंतु देखा जाता है कि कल, बल, छल अथवा अन्याय या अधर्म की सहायता से हम संसार पर प्रभुत्व जमाना और अपने को स्वतंत्रता सिद्ध करना चाहते हैं। यह स्वतंत्रता वास्तव में कोई स्वतंत्रता नहीं। ऐसे कर्मकर्ताओं को स्मरण रखना चाहिए—

अधर्मेणैधते लोकस्ततो भद्राणि पश्यति ;
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति।

भावार्थ—"अधर्म की सहायता से मनुष्य ऐश्वर्य-लाभ करते हैं, शत्रुओं पर विजयी होते हैं, तथा अपना मनोरथ सिद्ध करते हैं, किंतु वे समूल नाश भी हो जाते हैं।"

सर्वदा से देखने में आ रहा है कि कूट-नीति और पशु-बल से प्राप्त विजय के पीछे सर्वनाश डोला करता है। असत्य उन्नतिशील अवश्य होता है, किंतु अल्पकालिक और सात्त्विक जीवन की जड़ का विनाशक। इससे स्पष्ट है कि किसी की स्वतंत्रता समाज का निरादर कर प्रतिष्ठा-लाभ नहीं करा सकती। स्वतंत्रता तो समाज के आश्रित होकर उसकी हितैषिणी है, न कि उस पर भार-स्वरूप हो उसे कुचल डालनेवाली हो।

व्यक्ति और समाज का चोली-दामन का साथ है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता समाज के लिये किसी भी रूप में हितकर नहीं हो सकती। हित का अंकुर तो विश्व-भर के व्यक्तियों की स्वतंत्रता में होता है, जो समाज-सूत्र से ग्रथित होता है। जो कर्तव्य व्यक्ति का समाज के प्रति है, वही समाज का भी व्यक्ति के प्रति है। यदि ऐसा न हो, तो एक दूसरे का मूल्य ही न आँक सके, और अहर्निश सिर-फुड़ौवल की अवस्था उपस्थित रहे।

हमारी स्वतंत्र भावना चाहती है कि इस भूमि पर टहलें, किंतु उस पर किसी दूसरे का अधिकार है। ऐसी अवस्था में हमें उस अन्य की सहानुभूति की आवश्यकता पड़ेगी, ऐसा करने पर ही हमारी स्वतंत्रता मर्यादित कही जायगी; अन्यथा हम अन्यायी घोषित होंगे, और हमारी स्वतंत्रता अन्याय-मूलक कही जायगी। तात्पर्य यह कि चाहे व्यक्ति की स्वतंत्रता हो, चाहे समाज की, प्रत्येक पहलू से उसके रक्षार्थ एक दूसरे की सहानुभूति प्राप्त करनी होगी।

आज सारा संसार आर्थिक समस्या की उलझनों में फँसा हुआ है। अनेक 'वादों' का जन्म हुआ। कोई दल के दलदल में फँसा है, कोई पृथक्ता का उच्च स्वर अलाप रहा है। साम्राज्यवाद तथा साम्यवाद, दोनो की पुष्टि करनेवाले अभी विद्यमान हैं। कोई व्यक्तिगत स्वतंत्रता की पुष्टि में तल्लीन है, तो कोई समाजगत स्वतंत्रता का अनुमोदक है। स्वतंत्रता के समर्थक दोनो हैं, किंतु ध्यान-पूर्वक देखा जाय, तो स्पष्ट है कि समाज व्यक्ति को पद-दलित कर कभी स्थिर नहीं रह सकता, उसकी स्थिरता तो व्यक्तिगत स्वतंत्रता-रक्षण पर ही अवलंबित है। यदि ऐसा न होगा, तो समाज 'क्रांति' का केंद्र हो जायगा। यह एक अटल विधान है। इसमें किसी का पक्षपात लोलुपता का परिचायक होगा।

लेख पर्याप्त विस्तार पा चुका है। इस तुच्छ बुद्धि से इसके अंगों पर भी यथाशक्ति प्रकाश पड़ चुका है। अतः एक मोटी बात लिखकर यह विषय समाप्त किया जाता है। जिस प्रकार अपने प्रति अच्छा अनुराग पाने के लिये हम उत्सुक और लालायित रहते हैं, उसी प्रकार हमारा भी परम धर्म है कि सबके प्रति पर्याप्त सहानुभूति से काम लें, प्रेम-भाव रक्खें, तथा उनके स्वत्वों की रक्षा का उद्योग करें, सबके हितों की रक्षा से ही अपने हितों की रक्षा हो सकती है,

अन्य किसी प्रकार से 'निज-स्वत्व-रक्षा' असंभव है।

अंत में हम महापुरुष लिंकन के ही वाक्यों में स्वतंत्रता की महत्ता प्रदर्शित करते हुए उसका स्वागत करते हैं, और परमात्मा से प्रार्थी हैं कि वह संसार को ऐसी बुद्धि दे कि वह अपनी स्वतंत्रता के साथ-साथ अन्य की स्वतंत्रता की रक्षा के भी योग्य हो। वह वाक्य यह है—

"No government can be better than self-government."

अर्थात् स्वतंत्र से बढ़कर और कोई तंत्र नहीं हो सकता।

रेडियम के चमत्कार

[श्रीयुत दशरथलाल श्रीवास्तव एम्० एस्-सी० और श्रीअवधविहारीलाल बी० एस्-सी०, एल्० टी०]



रेडियम एक धातु है। यदि ध्यान से इसके गुणों का अवलोकन करें, तो पता चलेगा कि अविच्छिन्न रूप से रेडियम से ऊर्ज (energy) का निकलना ही एक अत्यंत अद्भुत बात है। देखा गया है कि रेडियम या उसका यौगिक अपने आस-पास की वस्तुओं से अधिक गर्म होता है। यह गर्मी वैसे उत्पन्न नहीं होती, जैसे तेज़ाब के पानी में डालने या दियासलाई जलाने से होती है। रेडियम की गर्मी की कुछ विचित्र गति है। आप जितना चाहे प्रयत्न करें, गर्मी की मात्रा न घटा सकते हैं, न बढ़ा सकते हैं। आप चाहे उत्तरी ध्रुव में जाकर देखें, जहाँ हद दर्जे की सर्दी पड़ती है, या मध्य आफ्रिका में, जहाँ प्रचंड गर्मी पड़ती है, दोनो जगह एक तरह रेडियम से गर्मी निकलती है। यह बात विज्ञान में बिलकुल नवीन है। आज तक किसी भी ऐसे रासायनिक सम्मिलन का पता नहीं, जिसमें इस प्रकार ताप का निस्सरण होता हो। प्रत्यक्ष रूप से ऐसा मालूम पड़ता है कि रेडियम बिना किसी बाह्य वस्तु की सहायता के ही इतने ऊर्ज का उत्पादन कर रहा है।

आधुनिक विज्ञान के सिद्धांतों पर विचार करने से पता चलता है कि मुख्य दो सिद्धांत ऐसे हैं, जिन पर शेष सब किसी-न-किसी प्रकार से निर्भर रहते हैं। पहला यह है कि पदार्थ का नाश नहीं हो सकता, उसे केवल रूपांतरित किया जा सकता है। जैसे मोमबत्ती का जलना। देखने से ऐसा मालूम होता है कि जलने से मोमबत्ती का नाश हो जाता है। परंतु वास्तव में बात यह है कि जलने से मोमबत्ती के अवयवों की, ऑक्सीजन से सम्मिलित होने पर, वाष्प और एक गैस बनती है, जिसको कार्बोनिक एसिड गैस कहते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि पदार्थ का नाश नहीं होता, वह एक रूप से दूसरे रूप में बदल जाता है।

जैसे पदार्थ का नाश नहीं होता, वैसे ही ऊर्ज का भी नाश नहीं हो सकता। यह दूसरा मुख्य सिद्धांत है। हम एक देश का सिक्का दूसरे देश के सिक्के में तब्दील कर सकते हैं, इसी तरह ऊर्ज भी एक रूप से दूसरे रूप में बदला जा सकता है। जैसे बिजली की बत्ती में विद्युत्-ऊर्ज से प्रकाश-ऊर्ज बनता है, ऐसे ही डायनामो में यांत्रिक ऊर्ज (Mechanical energy) विद्युत्-ऊर्ज में परिणत हो जाता है। इससे देखते हैं कि हम ऊर्ज का नाश नहीं कर सकते। जैसे नाश नहीं कर सकते, उसी तरह उसकी सृष्टि भी नहीं कर सकते। परंतु रेडियम एक ऐसा पदार्थ प्रतीत होता है, जिसमें प्रत्यक्ष रूप से ऊर्ज की सृष्टि होती मालूम पड़ती है। किंतु वास्तव में यह बात नहीं। आगे चलकर यह बात सिद्ध हो जायगी कि रेडियम भी इन दोनो सिद्धांतों से बाधित है।

रेडियम से ऊर्ज निकलने के कारण को जानने के पहले यह जानना आवश्यक है कि इस ऊर्ज का वास्तविक रूप क्या है। ऊर्ज रेडियम से किरणों के रूप में निकलता है। इन किरणों के बारे में प्रथम जानने योग्य बात यह है कि ये एक्स-रेज़ की तरह भेदक हैं, यानी पदार्थ को पार कर अपना प्रभाव दिखला सकती हैं। यदि विचार कर देखें, तो मालूम होगा कि इन किरणों की प्रकृति दो प्रकार की ही सकती है। (१) एक्स-रेज़ या प्रकाश की तरह तरंगें हो सकती हैं या (२) रेडियम से छोटे-छोटे कण किरणों के रूप में गोलियों के छर्रे की तरह निकलते हों। इस प्रकार हमारे सम्मुख दो समस्याएँ

हैं। इनमें से पहली समस्या ठीक है या दूसरी, या दोनो, इसका पता चलाना आवश्यक है।

इनका अध्ययन दो तरह से किया गया है। यदि रेडियम को अल्युमीनियम की एक पतली परत से ढक दें, तो देखा जाता है कि किरणों का कुछ-कुछ अंश ऐसा भी है, जो पतली परत को भेद नहीं सकता, क्योंकि बाहर निकली हुई किरणों का प्रभाव पहले की अपेक्षा कम हो जाता है। अब यह देखना चाहिए कि और अधिक मोटी परत का प्रयोग करने से सब या पहले से अधिक किरणें रोकी जा सकती हैं, या नहीं। देखने से पता चलता है कि अल्युमीनियम की परत को मोटी करने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। बाहर निकली हुई किरणों का प्रभाव जैसा-का-तैसा बना रहता है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि इन किरणों में कम-से-कम दो प्रकार की किरणें मिश्रित हैं। एक वह, जो अल्युमीनियम को भेद नहीं सकती, और दूसरी वह, जो उसको भेदकर पार निकल जाती है। इस प्रयोग को दूसरी धातुओं के साथ भी करना उचित है। यदि अल्युमीनियम की जगह सीसे की एक आधी या चौथाई इंच मोटी चद्दर का प्रयोग करें, तो देखें, क्या प्रभाव पड़ता है। इससे देखा जाता है कि किरणें कुछ अधिक रुक जाती हैं; परंतु एक ऐसी भेदक किरण भी इनमें है, जो सीसे को भी पार कर निकल जाती है। इसकी भेदक शक्ति इतनी तीव्र है कि सीसे-जैसे घने पदार्थ की ६ इंच मोटी या लोहे की कई फ़ीट मोटी चद्दर को भेदकर अपना प्रभाव दिखला सकती है। इसलिये इन प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ कि रेडियम से निकलनेवाली किरणों में कम-से-कम तीन प्रकार की किरणें मिश्रित हैं। एक वह, जो अल्युमीनियम को भेद नहीं सकती, दूसरी वह, जो उसको भेद सकती है, परंतु सीसे से रुक जाती है। तीसरी वह है, जिसकी भेदक शक्ति अति प्रबल होने के कारण सीसे को भी पार कर निकल जाती है।

इसके बाद यह देखना चाहिए कि ये किरणें लहरों के रूप में निकलती हैं, या छोटे-छोटे विद्युत्-कणों के छर्रों के रूप में। इसका पता चलाने के लिये थोड़ा-सा रेडियम सीसे के बर्तन में रखकर एक तीव्र चुंबकीय क्षेत्र (Magnetic field) में रख दीजिए। इससे फ़ौरन् पता चल जाता है कि तीन प्रकार की किरणें मिश्रित हैं। इनमें दो किरणें ऐसी हैं, जो चुंबक की आकर्षण-शक्ति के प्रभाव से अपना सीधा मार्ग छोड़कर वक्र मार्ग का अवलंबन करती हैं। इससे पता चलता है कि इन दोनो किरणों के अवयव विद्युतावृत हैं। ये बहुत छोटे-छोटे कण हैं। इनके गुणों का अवलोकन आगे करेंगे। परंतु यहाँ इतना जानना आवश्यक है कि इनमें एक प्रकार के कण धनात्मक विद्युतावृत (Positively charged) * हैं, और दूसरे ऋणात्मक विद्युतावृत (Negatively charged)। पहले प्रकार को हम क-कण के नाम से और उनके समूह को क-किरण से सूचित करेंगे। इसी तरह दूसरे को ख-कण और ख-किरण

* शीशे की छड़ी को रेशम पर रगड़ने से शीशे में एक प्रकार की ऐसी शक्ति आ जाती है, जो काग़ज़ के छोटे-छोटे टुकड़ों को अपनी ओर खींचने लगती है। यह विद्युत्-शक्ति है। रेशम में भी ऐसी ही शक्ति आ जाती है। परंतु दोनो की शक्तियों में भेद है। यदि रेशम और शीशे की छड़ी को मिला दें, तो इस शक्ति का लोप हो जाता है। शीशे में जिस प्रकार विद्युत्-शक्ति है, उसको धनात्मक विद्युत् और रेशम में स्थित शक्ति को ऋणात्मक कहते हैं। इनको इस प्रकार कहने का कोई विशेष प्रयोजन नहीं है, चाहे जिसको धनात्मक और ऋणात्मक कह सकते हैं। परंतु परंपरा से शीशे में उत्पन्न हुई विद्युत्-शक्ति को ही धनात्मक कहते आए हैं। हरएक तत्त्व के परमाणु में ये दोनो प्रकार की विद्युत् उपस्थित हैं। धनात्मक अंश (Proton) मध्य में होता है, और ऋणात्मक विद्युत्-कण (Electrons) उसके चारो ओर चक्कर लगाया करते हैं। ये कण भार में बहुत ही कम हैं; बिलकुल नहीं के बराबर है। परमाणु का भार धनात्मक अंश के कारण ही होता है।

कहेंगे। तीसरे प्रकार की किरणें ऐसी हैं, जिन पर चुंबकीय आकर्षण का कोई प्रभाव नहीं होता। ये एक प्रकार की लहरें हैं, और ये ही सबसे अधिक भेदक हैं। इनको ग-किरण के नाम से पुकारेंगे।

इन तीनो प्रकार की किरणों की भेदक शक्ति में बड़ा अंतर होता है। क-कण की भेदक शक्ति सबसे कम, उससे अधिक ख-कण की और सबसे अधिक ग-किरणों की है। दूसरे प्रकार की किरणों की भेदक शक्ति पहली की शतगुनी है, और तीसरी की दूसरी से भी शतगुनी अधिक है। क-कणों की भेदक शक्ति इतनी कम है कि वे एक मामूली काग़ज़ के टुकड़े से रोके जा सकते हैं। हम लोगों को मालूम है कि ये कण धनात्मक विद्युतावृत हैं, और रेडियम से लगभग २०,००० मील प्रति सेकंड की तीव्र गति से निकलते हैं। अर्थात् एक क-कण पृथ्वी की भू-मध्यरेखा (Equator) की यदि सैर करना आरंभ करे, तो एक सेकंड से कुछ ही अधिक समय में पूरा सफ़र तय करके अपने प्रस्थान की जगह पर आ जायगा। कितनी विकट गति है! मनुष्य द्वारा आविष्कृत कोई भी डाक-गाड़ी या हवाई जहाज़ इसका मुक़ाबला नहीं कर सकता। परंतु यह गति ख-कणों की गति या प्रकाश की गति के आगे कोई चीज़ नहीं।

क-कणों में एक और आश्चर्य-जनक गुण है। प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि ये कण विद्युतावृत हीलियम * नामी एक तत्त्व के परमाणु हैं। रेडियम एक तत्त्व है, और उससे एक दूसरा तत्त्व उत्पन्न हो रहा है। आश्चर्य है! रसायन के सिद्धांतों के बिलकुल प्रतिकूल है। इससे पता चलता है कि प्राचीन काल के तांत्रिकों का लोहे से सोना बनाने का प्रयत्न निरर्थक नहीं था।

ख-कण के गुणों में भी बड़ी-बड़ी विचित्र बातें हैं। ये ऋणात्मक विद्युतावृत कण हैं। इनका भार बिलकुल नहीं के बराबर है। हाइड्रोजन गैस के परमाणु से भी २,००० गुना हलके हैं। ये कण बड़ी ही तीव्र गति से रेडियम से निकलते हैं। इनकी गति प्रकाश की गति से कुछ ही कम है। प्रकाश की गति १,८६,००० मील प्रति सेकंड है, और ख-कण की गति ८०,००० मील से लेकर १,७०,००० मील प्रति सेकंड तक पहुँच जाती है। पदार्थ की, जितना अभी तक पता चलता है, यही सबसे प्रबल गति है। अगर एक ख-कण चंद्रमा की यात्रा करने को पृथ्वी पर से चले, तो लगभग एक सेकंड में २-३ भाग पार कर लेगा। परंतु अफ़सोस यही है कि वहाँ पहुँचने के बहुत पहले ही उसकी गति नष्ट हो जायगी। जब हवा के अणुओं से सामना होता है, तब कणों को उनके सामने सिर झुकाना ही पड़ता है। आख़िर छोटी-सी वस्तु की हैसियत ही क्या। सभी जगह बल ही प्रधान है।

ग-किरणें तरंगों के रूप में निकलती हैं। इनके गुण एक्स-किरणों से मिलते-जुलते हैं, अंतर केवल इतना है कि इनकी भेदक शक्ति अधिक तीव्र होती है।

किरणों के गुणों का अध्ययन करने के बाद यह देखना चाहिए कि रेडियम अपने आस-पास की वस्तुओं से अधिक गर्म क्यों रहता है। जिन्होंने क-कणों के गुणों का अध्ययन ध्यान-पूर्वक किया है, उनको इसका पता चल गया होगा। आपने शायद पत्थर के दो टुकड़ों की रगड़ से आग की चिनगारी निकलती हुई देखी हो। लोहार जब लोहे का टुकड़ा निहाई पर रखकर हथौड़े से चोट लगाता है, तो लोहा गर्म हो जाता है, और अधिक समय तक पीटा जाय, तो लाल हो जाता है। हथौड़े की चोट जितनी प्रबल होगी, उतनी ही जल्दी लोहा लाल होगा। चोट की प्रबलता हथौड़े के भार और उसकी गति पर निर्भर है। भार कम होते हुए भी यदि गति

* हीलियम एक गैस है। सबसे पहले इसकी स्थिति का सूर्य-मंडल में ही यंत्र द्वारा ज्ञान हुआ था। इसीलिये इसका नाम हीलियम पड़ा। ग्रीस की भाषा में सूर्य को हीलियस कहते हैं। इसी से हीलियम-शब्द की उत्पत्ति हुई है।

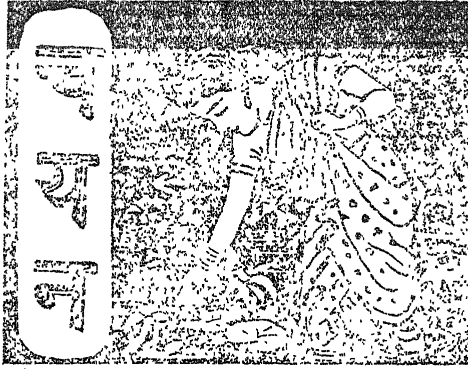
तीव्र हो, तो भी चोट प्रबल हो सकती है। रेडियम की गर्मी भी इसी तीव्र गति का परिणाम है। क-कण, जिनका भार ख-कण की अपेक्षा कहीं अधिक है, तीव्र गति से बाहर निकलते समय अपने चारो तरफ़ के रेडियम से रगड़ खाते हैं, और इसी से गर्मी भी पैदा होती है। स्पिनथारिसकोप नामी एक यंत्र है, जिसमें यह अच्छी तरह देखा जा सकता है कि क-कण जब किसी पदार्थ से जाकर टकराते हैं, तो चिनगारियाँ निकलती हैं। आप अच्छी मिश्री के दो सूखे टुकड़ों को लीजिए, और एक अंधकार-पूर्ण कमरे में ले जाकर ज़ोरों से रगड़िए, तो ध्यान-पूर्वक देखने से दो-एक बहुत धीमी चिनगारियाँ निकलती हुई दिखलाई देंगी। चीनी के बताशे को उसी तरह, अंधकार में, हथेली पर रखकर तोड़ने से ऐसा ही दृश्य देखने में आता है। ये चिनगारियाँ ज़र्रों के टूटने की वजह से नज़र आती हैं। जिस यंत्र का ज़िक्र ऊपर कर आए हैं, वह इसी सिद्धांत पर बना है। उसमें क-कण जाकर जस्त (Zinc) के एक यौगिक* के ज़र्रों से टकराते हैं, और उससे बड़ी सुंदर चिनगारियाँ निकलती हुई दिखलाई पड़ती हैं।

अब यह अंतिम प्रश्न है कि रेडियम से इतना ऊर्ज क्यों और कैसे निकलता है? क्या यह किसी दूसरी जगह से ऊर्ज ग्रहण करके समय आने पर उसी ऊर्ज को तीव्र भाव में परिणत कर उसका निस्सरण करता है, या इसका कारण वह स्वयं ही है। सोचने से और प्रयोगों से यह पता चलता है कि रेडियम किसी दूसरी जगह से ग्रहण करके, इस प्रकार अविच्छिन्न भाव से और इस अधिक मात्रा में ऊर्ज का उत्पादन नहीं कर सकता। असली कारण उसके परमाणु ही हैं।

रेडियम एक तत्त्व है। आज तक रसायन में तत्त्व उसे मानते थे, जिसके विघटन से विजातीय पदार्थ न निकल सकें। उदाहरणार्थ दो पदार्थों को ले लीजिए, पानी और लोहा। यह सबको मालूम है कि पानी दो गैसों (हाइड्रोजन और ऑक्सीजन) से बना है, और इसलिये उसके विघटन से ये दोनो गैस मिलेंगी। परंतु लोहे को देखिए। उसका यदि हम विघटन करें, तो क्या मिलेगा? लोहा। इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिल सकता। इससे लोहा रासायनिक परीक्षा से एक तत्त्व ठहरा, परंतु जल वैसा नहीं। इसी प्रकार रासायनिक रीति से भले प्रकार सिद्ध हो चुका है कि रेडियम भी एक तत्त्व है। परंतु यह एक विचित्र तत्त्व है। इसके आविष्कार ने वैज्ञानिक जगत् में हलचल मचा दी है। इसी वजह से कितने नए सिद्धांत बनाने पड़े हैं। यह एक अस्थिर तत्त्व है। इसके परमाणु बराबर टूटते रहते और इससे नए तत्त्व बनते रहते हैं। रेडियम से क-कण के रूप में एक नया तत्त्व हीलियम सदा बनता रहता है। इसके अतिरिक्त एक दूसरा तत्त्व भी बनता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि एक तत्त्व से दूसरा बन सकता है। एक बात और विचारने योग्य है। जब एक तत्त्व से दूसरा तत्त्व बनता है, तो प्रचुर ऊर्ज का उत्पादन होता है। इसको हम चाहे जिस कार्य में लगा सकते हैं। यह परमाणुओं का ऊर्ज है। एक-एक परमाणु में ऊर्ज कूट-कूटकर भरा हुआ है। परंतु शोक यही है कि मनुष्य का इस पर कोई अधिकार नहीं। जिस दिन मनुष्य का इस पर पूर्ण रूप से अधिकार हो जायगा, वह जो चाहे, कर लेगा। अगर वह चाहेगा, तो अपने भाइयों का बहुत अधिक भला कर सकता है, और यदि चाहे, तो बात-की-बात में सबका नाश कर देगा। इसका उपयोग भी हो सकता है, और घोर दुरुपयोग भी। इसकी प्राप्ति होने पर ईश्वर मनुष्य को सुबुद्धि दे।

---

* Zinc sulphide



१. धौलपुर-राज्य के एक नामी कवि



संसार में बहुत-से ऐसे कवि हुए हैं, जिन्होंने अपने जीवन-काल में अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त की है, और जिस नगर अथवा ग्राम के वे रहनेवाले थे, वहाँ के सभी लोगों ने उनका पर्याप्त सम्मान और आदर किया है। पर उनके ग्रंथ अप्रकाशित रहने के कारण हिंदी-संसार उनसे अपरिचित रहा है। ऐसे ही धौलपुर-राज्य के ईश्वरी कवि थे। जीवन-काल में इनकी कविता की ख़ूब धूम रही, और राजे-महाराजों ने इनका यथेष्ट सम्मान किया, पर इस समय इनका नाम अंतर्हित होता जाता है। कारण यही कि इनकी मृत्यु के पीछे इनके ग्रंथों को किसी ने प्रकाशित न किया। सच्ची बात तो यह है कि इनके ग्रंथों का पता ही न लगा। मैं भी उनकी खोज में वर्षों से था, पर अब तक मेरे सब प्रयत्न असफल रहे। अभी हाल में मेरे एक मित्र पं० हरिप्रसादजी की कृपा से इनके कुछ ग्रंथों के नामों का पता लगा है। एक हस्त-लिखित ग्रंथ भी प्राप्त हुआ, जिसके पढ़ने से मालूम होता है कि यह कवि बड़े उच्च श्रेणी के थे। इनकी काव्य-रचना वास्तव में बड़ी भाव-पूर्ण और चमत्कारिणी है।

ईश्वरी कवि दीक्षित ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम माणिकचंद्र और पितामह का कपूरचंद्र था। इनका जन्म संवत् १८८४ में हुआ, और मृत्यु संवत् १९७५ में। यह घर के मालदार थे, और बौहरा कहलाते थे। इनका पुश्तैनी काम बौहरगत था। इनकी जायदाद भी लगभग डेढ़ लाख रुपए की थी। यह स्वयं राज्य-परिषद् में मेंबर थे। यह एक अच्छे वैद्य भी थे, और इस विषय पर भी इन्होंने कुछ पुस्तकें लिखी हैं, जो अप्राप्य हैं। इनके लिखे ग्रंथों के विषय में पता लगा है कि इन्होंने लिखे तो बहुत-से ग्रंथ थे, पर इस समय अधिकांश अप्राप्य हैं। जिन ग्रंथों का पता लगा है, उनके नाम निम्नांकित हैं—

१. काव्य-कल्पद्रुम, २. भावाब्धि, ३. रस-रत्नाकर, ४. चंद्रिका, ५. चित्र-कौमुदी, ६. योग-चिंतामणि, ७. काल-ज्ञान, ८. वैद्य-सुजीवन, ९. नख-सिख, १०. अहि-लीला, ११. मन-प्रबोध, १२. ऋतु-बोध, १३. कोक-कलाधर, १४. रामचंद्रिका टीका, १५. कदम-चंद्रिका और १६. राधा-रहस्य।

इनके सिवा फुटकर कवित्त बहुत हैं। इन सब ग्रंथों में राधा-रहस्य बड़े महत्त्व का ग्रंथ है, और कलेवर में भी विपुल है। यह ग्रंथ खंडों और समुद्देशों में इस भाँति विभक्त है—

१	खंड	गोलोक	६	समुद्देश
२	,,	सृष्टि	१०	,,
३	,,	मत्स्य	२१	,,
४	,,	गोकुल	१९	,,



स्व० राजकुमार श्रीरणवीरसिंहजी

[आप श्रीरणंजयसिंहजी के ज्येष्ठ भ्राता थे । आप समाज-सुधारक, हिंदी-प्रेमी, कवि और उपन्यासकार थे । अमेठी-राज्य में आपने बहुत-से सुधार किए थे ।]



श्रीकुँवर रणंजयसिंहजी

[आप अमेठी-राज्य (अवध) के द्वितीय राजकुमार हैं। आप लेजिसलेटिव-एसेंबली के मेंबर भी रह चुके हैं, और हिंदी के विशेष प्रेमी, होनहार लेखक और सहृदय, सुशील, सज्जन हैं।]

Ganga Fine Art Press, Lucknow.

५	खंड	वृंदावन	२०	समुद्देश
६	,,	मथुरा	१४	,,
७	,,	द्वारिका	१३	,,
८	,,	श्रोणितपुर	६	,,
९	,,	धर्म	१९	,,
१०	,,	कुरुक्षेत्र	७	,,
११	,,	विनय	२१	,,
१२	,,	शांति	७	,,
१२	,,		१६२	,,

ग्रंथ के खंडों के नाम से ज्ञात होगा कि इनमें क्या-क्या विषय हैं, समस्त पुस्तक विविध प्रकार के छंदों में रचित है। कविता मार्के की है, जो कवि की प्रतिभा को भली भाँति प्रकट करती है। इस ग्रंथ की कुछ कविता, नमूने के तौर पर, नीचे दी जाती है—

घनाक्षरी-मंगलाचरण

छेदन हरत अघ छेदन धरत खल,
　　फंदन परत ऐसो नाम अघहरना कौ;
ईश्वर कहत तन ताप न रहत पाप,
　　दापन दहत जाप जग जसकरना कौ;
रिद्धि देत, सिद्धि देत, बुद्धि देत, वृद्धि देत,
　　सरस समृद्धि देत, ध्यान धरत चरना कौ;
लोक त्रियकर्ता, हर्ता, सरस अभर्ता, कर्ता,
　　तारन सुतरता कर्ता भेदन अपरना कौ।

पंडित की परिभाषा

चहिए प्रथम धारणा-शक्ति;
　　फिर निश्चय सुदेवक भक्ति।
स्मृति सभ्यता उर में राखे;
　　पंडित नाम ताहि सब भाखे।
सारासार वस्तु को ज्ञान;
　　सम इनका न मान-अपमान।
धर्म धीर शुचि समता जाने;
　　पंडित ताहि कहै सब स्याने।
लोभ-मोह-मद-काम न व्यापै;
　　पर ऐश्वर्य सुनत नहिं तापै।
हानि-लाभ, दुख-सुख ना मानै;
　　पंडित ताहि कहै सब स्यानै।
गई वस्तु को मन नहिं सोचै;
　　प्रापत भए अमित नहिं रोचै।
स्वस्तुति पर-निंदा न बखानै;
　　पंडित ताहि कहै सब स्यानै।
पर-कृत में कछु दोष न लावै;
　　सुकृत आपनो आप छिपावै।
हर्ष-शोक चित में नहिं आनै;
　　पंडित नाम कहैं सब स्यानै।
विद्या - विनय - शील - आचार;
　　शम-दम - शुभ - संतोष-विचार।
अहंकार गुण को नहिं आनै;
　　पंडित ताहि कहै सब स्यानै।
कबहूँ मुख ते कटुक न भाखै;
　　कछु लंपटता कपट न राखै।
कहै न, सकल दोष-गुण जानै;
　　पंडित ताहि कहै सब स्यानै।

दोहा

जह मन राचो आनकह, कह कुटल मति कूल;
जीब नगोरी क्यों लगे, बोरी जाख अँगूर।

सवैया

जिन आँखन मानसी आवे कहा,
　　तिन रंभ रमापति गौरी लखी;
कवि ईश्वर ऊख-मयूख कहा,
　　तिन सौम की जौम गिंदोरी भखी।
रस तोसों रचो न रचो उनसों,
　　अब तू तो कहे जिन और हो सखी;

यह वोरी निबोरी क्यों जीभ लगे,
जिन जोरी अँगूर की भोरी चखी।

कवित्त

उन्नत सपुंग-से पिनाकी चक्रवाक गुच्छ—
घट मठ श्रीफल के रूपन धरेंगे ये;
ईश्वर कहित ऐसी ओपन से ओप-ओप,
कोप-कोप सौतिन के सुखन हरेंगे ये।
उजरे अमल मन भरण वशीकर-से—
उकस बनेंगे नाहिं डुकस कसेंगे ये;
लाग-लाग पीतम के उरसों उरोज तेरे—
उकसन लागे जब उकस परेंगे ये।

गज-ग्राह का युद्ध (कवित्त)

भयौ जुद्ध दुहुनि प्रचंड हो घमंड करि,
लरि-लरि, बल करि-करि लखराइ गयौ;
ईश्वर इतेक महँ आयौ कछु ज्ञान ताहि—
गिरवरधरन गुपालै मन लाइ गयौ।
कमल-प्रसून और कमल-समान सुंडि—
बाहर रही है सब आपमें समाइ गयौ;
जल ते कढ्यौ के बल नक्र ते कढ्यौ कै गज-
रट ते कढ्यो कै बनमाली हाल आइ गयौ।
हार्‌यो तोय बीच गजराज हो धिराज सब
ही को सिरताज ता समाज कहि रै रह्यो;
ईश्वर कहत वाके कुटम कलित्रगन—
हाइ - हाइ करत बचाय काहू ना लह्यो।
सब ते निरास भयो आस करि गोविंद को—
करुनानिवास मैं तौ बूड़त बह्यो कह्यौ;
सुनत सुधाऐ पच्छिराय कों न चित्त चह्यौ,
चक्र को न चित्त चह्यौ, चित्त नक्र कौं चह्यौ।

चंद्रमा (कवित्त)

एरे मतिमंद चंद, काहे कौ जरावत है,
बिरही बिचारे जेतौ आपु ही जरे परे;
औगुन अनेक तेरे कवि सौं न कहे जात,
घात पात-पात की सजो जोतैं करे धरे।
दूजैं कोक कंजनि कौं करै शोक अरे शोक,
सो तौ शोक-सागर मैं आपु ही डरे परे;
याही दोस दानुन तैं दिन मैं मलीन होत,
छीन होत अंग और राह सै खरे डरे॥ १॥

वर्षा

बोरे देत मदन, झकोरे देत झंझानल,
तोरि देत तनु निस पल्लव मरोर देत;
ईश्वर कलापी कूँक जोर करि सोरै देत,
बिरह बिथोरैं देत, धीरज सुछोरैं देत;
दीह सुर दादुर के स्रवननि फोरैं देत,
रोरैं देत लाजकुल-काननि बहोरैं देत;
घने घन घोरैं देत दुंदभी टकोरैं देत,
धाराधर-धारनि धरा को आज बोटै देत॥२॥

ये थोड़े-से उदाहरण जो हमने यहाँ दिए हैं, उनसे भली भाँति ज्ञात हुआ होगा कि कवि बड़े प्रतिभाशाली हैं। खेद है, इनके ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित रहे। यदि कोई प्रकाशक महाशय इनके किसी ग्रंथ को छापना चाहें, तो वह इस लेख के लेखक से पत्र-व्यवहार करें *।

कन्नोमल (एम्० ए०)

× × ×

२. 'मधु-कोष'

संसार की वस्तुओं और व्यापारों के देखने तथा अनुभव करने से—सृष्टि की विचित्रता की समीक्षा करने से—जो भावुक हृदय आंदोलित हो उठता है, उससे प्रसूत ध्वनि-प्रवाह को ही कविता कह सकते हैं।

* इनके छंद तो बहुत अशुद्ध हैं। संभव है, यह लिखने की ग़लती हो।—संपादक

प्रकृत कविता की जननी वह चित्त-वृत्ति होती है, जिसमें हृदय पर लगी हुई ठेस के परिणाम-स्वरूप भाव-धारा श्रावण की समुद्रोन्मुखी सरिता बन जाती है। हिंदी-संसार के चिर-परिचित पंडित रत्नांबरदत्त चंदोला 'रत्न' का 'मधु-कोष'-काव्य कवि की इस चित्त-वृत्ति का पूर्ण परिचायक है। यह हिंदी-साहित्य की उन रचनाओं में नहीं है, जो एकदम दिमाग़ी कसरत का फल हैं। इसकी तो एक-एक पंक्ति के साथ कवि का हृदय लिपटा हुआ चला आता है।

मधु-कोष-काव्य अभी छप ही रहा है, अतएव यह पेशगी आलोचना संभवतः कुछ लोगों को अनुचित जान पड़े, किंतु मैं इसे अनुचित या धृष्टता-पूर्ण नहीं समझता। कारण, इसकी अधिकांश कविताएँ समय-समय पर 'सुधा', 'सरस्वती', 'माधुरी' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनका यह संग्रह-मात्र है।

इस मुक्तक काव्य की रचनाएँ चार शीर्षक-पुंजों में विभक्त की गई हैं। वे ये हैं—रस, सौरभ, रेणु और पंखड़ियाँ। कविताएँ छोटी-बड़ी सभी प्रकार की तथा अनेक विषयों पर हैं। प्रधानता छायावाद या रहस्यवाद की है। किंतु चंदोलाजी का छायावाद वह शब्दाडंबर-विभूषित, अस्पष्ट तथा अर्थ-शून्य छायावाद नहीं है, जिसके अर्थ की छाया तक छू सकना स्वयं कवि के लिये भी असंभव हो। जिसकी प्रधानता आजकल की अधिकांश छायावादी कविताओं में पाई जाती है, तथा जिसके कारण हिंदी-काव्य-जगत् दूषित तथा पाखंड-पूर्ण बन रहा है। जिन आलोचकों का विचार है कि 'प्रसाद', 'पंत' तथा 'निराला' के अतिरिक्त छायावाद की सफल रचना आजकल कोई कर ही नहीं रहा है, या कर नहीं सकता, उन्हें, मैं समझता हूँ, मधु-कोष-काव्य पढ़कर अपना मत बदलने को बाध्य होना पड़ेगा। आधुनिक छायावादी कविताओं में प्रयुक्त 'रबर-छंद', 'केचुवा-छंद' या 'कँगारू-छंद' इसमें नहीं मिलते। दो-चार स्थानों पर मात्रा-संबंधी साधारण त्रुटियों के अतिरिक्त छंद-शास्त्र के नियमों का भी गला नहीं घोटा गया है, जैसा कि अधिकांश आधुनिक छायावादी रचनाओं में होता है। इस ग्रंथ की रचनाएँ बड़ी ही रसीली और जोशीली हैं। शैली ओज-पूर्ण, गंभीर, संयत और आकर्षक है। भाषा मधुर तथा प्रांजल है। उसमें काव्य के लिये अपेक्षित कोमल-कांत-पदावली का प्राचुर्य है। सारांश यह कि मधु-कोष-काव्य के अनेक गुणों से संपन्न तथा हिंदी-साहित्य की स्थायी निधि है।

प्रो० गयाप्रसाद शुक्ल (एम्० ए०)

×　　×　　×

३. प्रकृति का नर्तन

(१)

स्वर्ण-सरोवर के शुभ तट पर,
　　ऊषा - दीप्त शैल - पट पर,
स्मृति के सद्मों पर लिखती है—
　　इस प्रकार वह हँस-हँसकर।

(२)

विरह-विदग्ध हृदय की आहें—
　　स्वर्ण-रश्मि-चय से मिलकर—
पहुँच रही हैं उसी लोक में—
　　जहाँ शोक भी है सुखकर।

(३)

श्री-संपन्न कभी थे जो, वे—
　　श्री-हत - से ही अब होकर—
प्रायश्चित्त आज करते हैं—
　　नयन-अंबु से मुँह धोकर।

(४)

जाती है जब लुटी हुई-सी—
　　रजनी निज निधि को खोकर,
आती है तब प्यारी ऊषा—
　　द्युति के बीजों को बोकर।

(५)

अहा ! सुखद निस्सीम विश्व में—
कर उदयास्त अंत प्रतिदिन—
बिता रहो वह इस जीवन के—
छिन-छिन, पल-पल को गिन-गिन ।

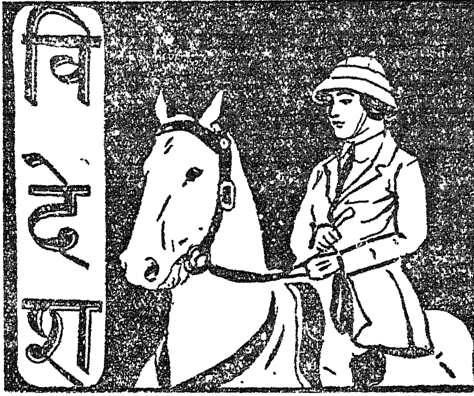
कन्हैयालाल तिवारी 'व्रजेश'
(विशारद, बी० ए०)

× × ×

४. हृदय के टुकड़े

क्यों छलकाता फिरता है
गलियों में मद का प्याला ?
दो दिन में हो जाएगा
मतवाले ! जग मतवाला ।
तेरी मदिरा की मस्ती !
यह तेरा रूप-खज़ाना—
साक़ी ! क्या सारा जग ही
बन जाएगा मयख़ाना !
ऐ चातक ! फिर छलका दे
वह 'पी' का तरल तराना ;
फिर सिंच जाए गूँजों से
विरही का दिल वीराना ।
फिर उपवन हरा बना जा
इन सूनी-सी गलियों को ;
ऐ माली ! फिर विकसा जा
इन मुरझाई कलियों को ।
मतवाले ! तेरा यौवन
वसुधा की दीपक-माला ।
बन जा प्रेमी अंधों का
तू हाथ पकड़नेवाला ।
तुझको दिल देकर ख़ूनी !
किसने सर क़ज़ा बुला ली ?
है किसे ढूँढ़ती फिरती
तेरे नयनों की लाली !
दिल पर रख हाथ किसी ने
उफ़् ! ठंडी आह निकाली ;
जो कुछ न करें, थोड़ा है,
तेरी आँखें मतवाली !
निष्ठुर ! सुनता जा मेरे
इस दग्ध हृदय की आहें ;
हैं दुआ दे रही तुझको
ये मेरी करुण कराहें ।
सुन ले इस टूटे दिल की
कुछ टूटी-फूटी बातें ;
कल जग में कौन रहेगा !
कब घातें ! किसकी रातें !
हम घूमें जहाँ, वहाँ ही
दुनिया की ठोकर खा ली ;
जीवन से ख़ाली अब तो
है साक़ी ! जीवन-प्याली ।
ऐ दिल ! दिल भरके तूने
अपनी अरमान (?) निकाली ;
अब बता, कहाँ जाऊँ मैं
लेकर मैं ख़ाली प्याली ?
जग के कितने प्यालों में
निज यौवन-मदिरा ढाली ;
साक़ी ! क्यों ठुकराता है
मेरे जीवन की प्याली ।

बाबूराम अग्निहोत्री



१. मध्य योरप के छोटे राज्य



रप में वार्सेले की संधि की चर्चा ज़ोरों में चल रही है। जर्मनी संधि को दुहराने पर तुला हुआ है। दूसरी ओर एक नवीन रोमन-साम्राज्य की रचना की चर्चा हो रही है। आस्ट्रिया-हंगरी को एक सूत्र, एक शासन में रखने के लिये लालायित लोग फिर से हैब्सबर्ग-राजपरिवार को गद्दी पर बिठाना चाहते हैं। राष्ट्र-परिषद् बड़ी शक्तियों की संस्था है। इसी कारण वार्सेले की संधि के बाद ही स्वतंत्र तथा स्वाधीन रचना पानेवाले छोटे मध्य-योरपीय राज्य बहुत चिंतित हो उठे हैं। उन्होंने अपनी रक्षा के लिये अपना अलग ही संघ बनाया है। इसे 'लिटिल इंटेंटी' कहते हैं। इसके तीन सदस्य हैं—रुमानिया, यूगोस्लाविया और ज़ेकोस्लोवाकिया। इनकी रचना की वर्तमान योरपीय परिस्थिति में बड़ी महत्ता है। इस संघ के प्राण हैं डॉ० बेनेस। आपने बलग्रेड में इसी संघ पर भाषण भी दिया था। प्रेग की राष्ट्रीय महासभा की विदेशी संबंध-समिति के सम्मुख इस संघ के विषय में आपने मनोरंजक तथा सूचना-पूर्ण बातें बतलाई थीं। आपने कहा था—

"इस संघ की तीन शक्तियों की तीन बड़ी शक्तियाँ पड़ोसी हैं—जर्मनी, इटली और सोवियट-रूस। इनका पारस्परिक प्रभाव इस प्रकार विभाजित है कि तीनो बड़ी शक्तियों में से किसी एक का प्रभाव तीनो छोटी शक्तियों में से एक पर ज़्यादा होता है, और ऐसा नहीं होता कि दो छोटी शक्तियों का भी एक साथ मिलकर किसी एक बड़ी शक्ति पर विशेष प्रभाव हो। उदाहरण के लिये यूगोस्लाविया को ही लीजिए। उसका इटली में कुछ विशेष स्वार्थ है, और उसी प्रकार इटली का यूगोस्लाविया में। पर रुमानिया और ज़ेकोस्लोवाकिया भी इटली के साथ बहुत अच्छा संबंध रखना चाहते हैं, पर उनका संबंध और साथ की मात्रा उतनी अधिक और प्रत्यक्ष नहीं है। अब संघ की रचना के बाद तीनो छोटी शक्तियों को एक समझना चाहिए। कम-से-कम अंतर्राष्ट्रीय मामले में वे एक हैं, और मौक़ा पड़ने पर यदि यूगोस्लाविया तथा इटली में झगड़ा हो जाय, तो एक साथ मिलकर चारो में मित्रता पैदा कराने की चेष्टा करेंगी। यही स्थिति जर्मनी के प्रति ज़ेकोस्लोवाकिया के रुख़ तथा रुमानिया के प्रति रूस के रुख़ के समय पैदा हो सकती है। इस प्रकार यह संघ किसी से वैर पैदा करने के लिये नहीं, पर निजी संबंध की उदारता तथा सहूलियत के लिये बनाया गया है। जो लोग यह पूछते हैं कि इसके पास कितनी सेना है, क्या

सैनिक योजना है, वे या तो अज्ञानी हैं, या जान-बूझकर इसे बदनाम करना चाहते हैं।

"इसकी रचना का एक कारण यह भी था कि हैब्सबर्ग-राजवंश को पुनः गद्दी मिलने का ख़तरा है। इस कार्य में यह 'छोटे राज्यों' का संघ घोर बाधक होगा। पर हंगरी के विरुद्ध इस संघ की रचना नहीं हुई है। हंगरी के ख़िलाफ़ संघ के मन में कोई मैल नहीं। यह प्रकट बात है कि यदि मध्य-योरप को अपनी रक्षा करनी है, तथा संधियों की पुनरावृत्ति से अपने को बचाना है, तो उसे एक मज़बूत राजनीतिक संघ की रचना करनी होगी। यह संघ इसी आवश्यकता का परिणाम है। यह आत्मरक्षा का अस्त्र है। यह पुनर्निर्माण का भी साधन है। साथ ही, राज्य-सीमा के भाव से दूर, वास्तविक योरपीय भावना से प्रेरित, अपने ढंग के निराले संघों में से है।"

उपर्युक्त पंक्तियाँ इस विषय को स्पष्ट कर देती हैं, तथा वर्तमान योरपीय अविश्वास को भी चित्रित करती हैं।

× × ×

२. जर्मनी-आस्ट्रिया-हंगरी

इस समय जर्मनी में फ़ैसिज़्म सफल हो गया, हिटलर निरंकुश शासक बन गए, तथा संभावना है कि राजसत्ता फिर से स्थापित हो। जर्मनी-आस्ट्रिया-हंगरी की जनता की धमनियों में एक ही रक्त बहता है। आस्ट्रिया तथा हंगरी में फ़ैसिस्ट-दल जी-जान से सफलता की कोशिश कर रहा है। आस्ट्रिया-हंगरी के राजतंत्र के समर्थक फिर से दोनो देशों का ताज एक करना चाहते हैं। वे चाहते हैं, उधर जर्मनी में होहेंज़ोलर्न-वंश गद्दी पर बैठे, इधर आस्ट्रिया-हंगरी में हैब्सबर्ग-वंश! 'छोटे राज्य' जिस बात से डर रहे हैं, उसी की चेष्टा हो रही है। तीनो देशों के राजतंत्र के समर्थक एकत्रित होकर एक हो रहे हैं, और योरप में अपनी सम्मिलित शक्ति का गुट बनाकर वार्सेले की संधि के अपमान का बदला चुकाना चाहते हैं। हवा का रुख़ किस ओर है, इसका पता हाल ही में, बर्लिन में, दिए गए भूतपूर्व हंगेरियन प्रधान मंत्री कौंटबेथलेन के भाषण से लगता है। इस व्याख्यान को जर्मन-जनता ने बहुत पसंद किया था। कौंट ने कहा था—

"महासमर के बाद हंगरी के लिये दो ही रास्ते खुले थे, या तो वह 'छोटे राज्यों' के साथ मित्रता कर लेता, या उनके शत्रु जर्मनी और इटली का साथ देता। हंगरी ने पिछला रास्ता अख़्तियार किया। इटली और जर्मनी दोनो के सामने उत्तरी तथा दक्षिणी स्लाव लोगों के एक हो जाने का ख़तरा था। एक हज़ार वर्ष पूर्व की बात है कि हंगेरियन-जाति ने हमला कर इस जाति को दो टुकड़ों में बाँट दिया था, और मनुष्यता की, इटली तथा जर्मनी की यह बड़ी भारी सेवा थी। अभी तक वे यही करते आ रहे हैं। नहीं तो फ़्रांस उनके साथ मिलकर जर्मनी पर चढ़ बैठता। विगत महासमर में हंगेरियन और जर्मन सखा थे। उनका राज्य रक्त और लोहे से छिना था, और उसी से मिलेगा। मीठी, चिकनी-चुपड़ी राजनीतिक भाषा से नहीं।"

इस बात पर टीका करता हुआ ज़्यूरिक का 'सेंट्रल योरपियन टाइम्स' पत्र लिखता है—

"कौंटबेथलेन के व्याख्यान फ़्रांस को ग़ौर से पढ़ना चाहिए, जो हंगरी को अपना मित्र बनाना चाहता है। फ़्रेंच यह देख लेंगे कि कौंट फ़्रांस के विरुद्ध जर्मनी तथा इटली को सहायता देना चाहते हैं। हंगरी के अँगरेज़ मित्र भी कौंट की भाषा तथा इस कथन से कि हंगरी 'जर्मनी के लिये डेन्यूब-नदी पर रखवाली कर रहा है', यह अर्थ निकाल सकेंगे कि कौंट जर्मनी को निकट-पूर्व में बढ़ने के लिये सहायता देने को तैयार हैं, जिसका ब्रिटेन को महासमर के पूर्व भी भय था।"

अस्तु। जर्मनी की समस्या योरपीय शांति के लिये गुरुतर रूप धारण करती जा रही है।

× × ×

३. ताँबे की खपत

हम भारतीय सोना-चाँदी से अधिक यदि किसी धातु को जानते हैं, तो वह ताँबा है। पर हमें यह जानकर आश्चर्य होगा कि नवीन वैज्ञानिक जगत् में ताँबे का बहुत बड़ा उपयोग है। १९३१ तक ब्रिटेन में इसकी सबसे ज़्यादा खपत थी। १९३२ में जर्मनी बाज़ी मार ले गया। फिर भी, संसार-भर की खपत मिलाकर पिछले वर्ष, १९३० की तुलना में, ६ प्रतिशत कम ताँबा काम में आया। नीचे जर्मनी के 'जर्मन इंडस्ट्रियलस्को'-नामक पत्र से इस धातु की बड़े राज्यों में खपत के आँकड़े दिए जाते हैं—

	१९३०	१९३१	१९३२	
जर्मनी	८०४,०००	७१६,०००	६४६,०००	टन
ग्रेटब्रिटेन	१८९,६००	१६०,०००	१३०,०००	,,
फ्रांस	१३१,०००	१११,१००	८७,०००	,,
जापान	७०,३००	७०,४००	७१,२००	,,

× × ×

४. रूस में बच्चों की देख-रेख

बच्चे राष्ट्र की संपत्ति और भावी आशा हैं। इन्हीं के हाथों में राष्ट्र की बागडोर आनेवाली है। यदि इनकी ठीक से देख-रेख की जाय, तो ये सच्चे शूर और नागरिक निकलते हैं। प्राचीन समय तथा इस युग में बड़ा अंतर है। पहले माता ही बच्चे की प्राण होती थी। उसी से वे जो शिक्षा पाते थे, उसी का जन्म-भर उपयोग करते थे। माताओं के विदुषी तथा शूर होने के कारण ही अभिमन्यु, श्रवण तथा वभ्रुवाहन-ऐसे तेजस्वी पैदा हुए थे। भारतीय माताएँ अशिक्षा के कारण अपने बच्चों की शिक्षा का भार अपने ऊपर नहीं लेतीं। योरपीय स्त्रियाँ विलासिता के कारण अपनी संतान धाय के सुपुर्द कर निश्चित हो जाती हैं।

यह घोर स्त्री-स्वाधीनता का युग है। अब अमीर माताएँ बच्चे नहीं सँभाल सकतीं। पर जो ग़रीब और मज़दूर हैं, उनको तो मज़दूरी करनी है—वे क्या करें? अतः हर दशा में बच्चे की आफ़त है, इसीलिये रूस ने बच्चों की देख-रेख को राष्ट्रीय विषय बना लिया है। राज्य स्वयं बच्चों की देख-रेख करता है। ऐसा करने से रूस में 'सहचार' के लिये ब्याह करने में भी सुविधा होगी। इस विषय में, अमेरिका के मिशिगन-विश्वविद्यालय में, स्वास्थ्य तथा सार्वजनिक शुचिता के प्रोफ़ेसर डॉ० जॉन सनुवल लिखते हैं—

"सोवियट रूस के बड़े-बूढ़ों को दूध-दही न मिले, पर उन्हें इस बात का संतोष है कि उनके बच्चों को ये वस्तुएँ काफ़ी मात्रा में मिलती हैं।

"पेट से ही बच्चों की हिफ़ाज़त शुरू हो जाती है। गर्भ पूरा होने के दो मास पहले तथा बच्चा पैदा होने के दो महीने बाद तक उन्हें पूरा विश्राम दिया जाता है। पूरे वेतन पर छुट्टी मिल जाती है। गर्भवती को प्रोत्साहित किया जाता है कि वह नियमित रूप से डॉक्टरों (सरकारी) के पास जाया करे, तथा अपनी छोटी-छोटी शिकायतों की चिकित्सा किया करे। आवश्यकता होने पर उसे विशेष प्रकार का भोजन सरकार की ओर से मिलता है। यदि गर्भवती को क्षयी का रोग है, तो उसकी विशेष चिकित्सा होती है। यदि उसे कोई बुरा धातु-विकार इत्यादि बीमारी है, तो पहले तो उसे गर्भपात की सलाह दी जाती है, अन्यथा यदि गर्भाधान १० सप्ताह से अधिक का हो गया है, तो ज़च्चा-अस्पताल को सूचना दे दी जाती है, और वहाँ विशेष देख-रेख होती है। इस प्रकार सतर्क रहने का फल यह हुआ है कि मास्को-नगर में ही जहाँ गर्मी की बीमारी १९२३ में ६ प्रतिशत थी, अब केवल एक प्रतिशत रह गई है। योरप की तुलना में यह बड़ी भारी बात है। नगरों में प्रायः अस्पताल में ही बच्चे पैदा होते हैं, फलतः १९१० में जहाँ फ़ी एक हज़ार पैदा होनेवाले बच्चे पीछे २८९ मर जाते थे, वहीं अब इसी अनुपात से, लेनिनग्राड (राजधानी) में १३७ तथा मॉस्को में १२८ मृत्यु हुई थीं।

"काम करने के घंटे के समय अधिकांश बच्चों की

देख-रेख 'क्रीचेज़' या 'हिंडोल' में होती है। कारखाने के दफ़्तर या विश्वविद्यालय के साथ भी ऐसे हिंडोलों के लिये कमरे बने रहते हैं। सात बजे सुबह से पाँच बजे शाम तक ये स्थान खुले रहते हैं। जो माता चाहें, अपना बच्चा झूले में डाल जायँ। इसके तीन भाग होते हैं—एक में दो से ६ महीने तक के बच्चे रहते हैं। एक कमरे में दस से ज़्यादा बच्चे नहीं रहते। साफ़-सुथरा बिस्तरा होता है। बच्चे को कपड़े नहीं पहनाए जाते, कपड़े से ढँके जाते हैं। उन्हें राज्य की ओर से शुद्ध परीक्षित में दूध पिलाया जाता है। दूसरे विभाग में ६ से १८ महीने तक के बच्चे रहते हैं। यहाँ उनके चलने-फिरने तथा खेलने का सामान रहता है। तीसरे विभाग में १८ महीने से तीन वर्ष तक के बच्चे रहते हैं। उनके लिये छोटी मेज़-कुर्सी रहती हैं। यहीं उनको सामाजिक आदतों की शिक्षा दी जाती है।

"पहले ७९ लाख लड़के प्रारंभिक पाठशालाओं में शिक्षा पा रहे थे। यह संख्या १९१३ की थी। १९३२-३३ में यही बढ़कर २,५०,००,००० हो गई है। प्रारंभिक स्कूल की पढ़ाई सात वर्ष से बढ़ाकर सत्रह वर्ष कर दी गई है। १९३२ में नगर-ग्राम सभी के, ८ से ११ वर्ष की उम्र के, ९९.२ प्रतिशत बच्चे स्कूल में थे।"

डॉ० जॉन के कथनानुसार इन लड़कों के लिये शिक्षा-विभाग की ओर से ही, मनोविनोद के लिये, थिएटर-तमाशे तक का प्रबंध है! भारत की तुलना में रूस के बच्चे स्वर्ग-सुख लूट रहे हैं।

परिपूर्णानंद वर्मा



१. उपन्यास

ख़वास का ब्याह—लेखक, श्रीचतुरसेन शास्त्री; संपादक, श्रीदुलारेलाल भार्गव; मिलने का पता—गंगा-ग्रंथागार, लखनऊ; क़ीमत १)

यह पुस्तक गंगा-पुस्तकमाला का १२६वाँ पुष्प है। इसका वृत्तांत माध्यमिक काल की ऐतिहासिक घटनाओं पर निर्धारित है। जब तक आप समूची पुस्तक न पढ़ लेंगे, आपको यह नहीं मालूम पड़ेगा कि इसका नाम 'ख़वास का ब्याह' क्यों है, और यह ख़वास कौन है, और ख़वास क्यों हुआ। पहले नाम से ही लेखक की चतुराई ज्ञात होती है। यह कहना न होगा कि श्रीचतुरसेन शास्त्री हिंदी-संसार में एक अद्भुत प्रतिभाशाली उपन्यास-लेखक हैं। इनकी लेखनी में जादू है। जिसने इनकी लिखी कहानी पढ़ी, वह मान गया कि लेखन-शक्ति ऐसी ही होती है। ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर उपन्यास लिखने में लेखक का सर्वोच्च स्थान है। हमने इनकी लिखी कई कहानियाँ पढ़ीं, और मानना पड़ा कि शास्त्रीजी इस कला में अद्वितीय हैं। हम सभी हिंदी-प्रेमियों से आग्रह करते हैं कि इस पुस्तक को वे ज़रूर पढ़ें। इस पुस्तक में क्या है, उसका वर्णन करने में इसके पठन का आस्वादन जाता रहेगा; अतः हम इस भेद को खोलना नहीं चाहते। गंगा-ग्रंथागार से पुस्तक का निकलना काफ़ी गारंटी है कि पुस्तक सज-धज, छपाई-सफ़ाई में प्रथम श्रेणी की है।

× × ×

२. स्त्रियोपयोगी

धात्री-शिक्षा—लेखक, वैद्यराज श्रीअत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार; संपादिका, श्रीकृष्णाकुमारी; क़ीमत २); मिलने का पता—गंगा-ग्रंथागार, लखनऊ।

यह पुस्तक महिला-माला की १६वीं मणि है, और सचित्र २७० पृष्ठों का कलेवर रखती है। धात्री-शिक्षा को अँगरेज़ी में Midwifery कहते हैं, जो प्रसव-विज्ञान की उच्च श्रेणी में है। इस विषय की पुस्तकें हिंदी-भाषा में बहुत ही कम हैं। प्रसूति-तंत्र के सिवा अन्य पुस्तकें ऐसी नहीं, जिसमें इस विषय का कोई महत्त्व-पूर्ण वर्णन हो, पर बहुत अंशों में धात्री-शिक्षा इससे बढ़कर है, और प्रत्येक महिला के काम की चीज़ है। जितने विषय धात्री-शिक्षा से संबंध रखते हैं, उन सभी का इसमें सरल और विशद भाषा में उल्लेख है। विषय-वर्णन में चित्रों से सहायता ली गई है। इसमें केवल प्राच्य प्रसव-संबंधी विचार ही नहीं हैं, बल्कि पाश्चात्य विचारों का भी समावेश है। संस्कृत-ग्रंथों के प्रमाण भी दिए हैं। यह पुस्तक इस विषय की अप-टू-डेट है, और न केवल महिलाओं के पढ़ने योग्य है, बल्कि वैद्यों, हकीमों, कॉलेजों के छात्रों के भी। लेखक ने

इस विषय का संस्कृत, अँगरेज़ी, बँगला और गुजराती-साहित्य ख़ूब खोजा है, और उसके निष्कर्ष को इस पुस्तक में भर दिया है। पुस्तक में ३४ प्रकरण मय परिशिष्ट के हैं। चित्रों में १६ हाफ़टोन-ब्लॉक और ३५ लाइन-ब्लॉक हैं। गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय से प्रकाशित होने के कारण पुस्तक की छपाई-सफ़ाई प्रशंसनीय है।

× × ×

३. बालोपयोगी

रेखागणित के खेल अथवा काग़ज़ी करतब (द्वितीय भाग)—लेखक, श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ; क़ीमत ।।ॾ)

यह पुस्तक बाल-विनोद-वाटिका का चौबीसवाँ पुष्प है। इसमें सुप्रसिद्ध लेखक ने रेखागणित-जैसे शुष्क और अप्रिय विषय को भरसक मनोरंजक बनाने का प्रयास किया है, एवं इस कार्य में सफलता भी प्राप्त की है। बालकों को रेखागणित की शिक्षा देने में आपका कार्य सर्वथा श्लाघनीय है। इस पुस्तक में १३ खेल हैं, जो रेखागणित के सिद्धांतों पर अवलंबित हैं। कुछ खेलों के नाम ये हैं—उड़नेवाली चिड़िया, सफ़री गिलास, काग़ज़ का फ़ुटबाल, पंख हिलानेवाली चिड़िया, स्टीमर, काग़ज़ का मकान, फ़्लेट-हैट इत्यादि। पुस्तक बड़े काम की है। अध्यापकों को इससे पूरी सहायता लेनी चाहिए। छपाई-सफ़ाई भी अच्छी है।

कन्नोमल (एम्० ए०)

× × ×

अहः हः हः—संपादक, पं० विद्याभास्कर शुक्ल; प्रकाशक, साहित्य-निकेतन, दारागंज, प्रयाग; मूल्य ।-)

इस छोटी-सी पुस्तक में छोटे चुटकुले हैं। ऐसे चुटकुले पढ़ने से बच्चों को बड़ा आनंद आता है, और साथ ही शिक्षा भी मिलती है। इसमें जो चुटकुले हैं, वे मनोरंजन के साथ ही शिक्षा-प्रद भी हैं। प्रत्येक बालक के पिता को यह पुस्तक अपने बच्चे के लिये ख़रीद लेनी चाहिए। बच्चे चाव से इसे पढ़ेंगे।

× × ×

महाभारत की कहानियाँ—लेखक, पं० विद्याभास्कर शुक्ल; प्रकाशक, साहित्य-निकेतन, दारागंज, प्रयाग; मूल्य ।=)

इस छोटी-सी पुस्तक में कुल मिलाकर ६ कहानियाँ हैं।

महाभारत के मैदान में ऐसे-ऐसे वीर जूझ गए हैं कि यदि हम उनकी अलग-अलग जीवनियाँ लिखने बैठ जायँ, तो एक बहुत बड़ा पोथा तैयार हो सकता है। महाभारत-काल से ही भारतवर्ष का पतन आरंभ होता है। जो बड़े-बड़े योद्धा थे, वे १८ दिन में समाप्त हो गए, तब से उस श्रेणी का कोई भी वीर उत्पन्न नहीं हुआ। अनेक विद्याओं का नामोनिशान मिट गया। यह आपसी युद्ध ही भारत को दुर्दिन दिखलानेवाला था।

हम इन वीरों के जीवन-वृत्तांत से बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में जो कहानियाँ संगृहीत की गई हैं, उनसे बहुत-सी शिक्षाएँ मिलती हैं। देश के होनहार बालकों को इन कहानियों से अवश्य लाभ उठाना चाहिए। कवर-पृष्ठ पर सुंदर रंगीन चित्र है। इन अनमोल कहानियों का मूल्य भी अधिक नहीं।

× × ×

नल-दमयंती—लेखक, लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी विशारद, हिंदी-प्रभाकर; प्रकाशक, साहित्य-निकेतन, दारागंज, प्रयाग; मूल्य ।)॥

नल-दमयंती का चरित्र प्रायः सभी ने पढ़ा होगा। अभी तक जितने भी चरित्र प्रकाशित हुए हैं, वे बड़े-बड़े हैं। उनकी भाषा भी कुछ कड़ी है, जो साधारण बालकों की समझ में नहीं आ सकती।

किंतु इस छोटी-सी पुस्तक में लेखक ने बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ नल-दमयंती का चरित्र बिलकुल साधारण भाषा में लिखा है— और प्रायः उनके

जीवन की सब घटनाएँ आ गई हैं। प्रत्येक बालिका को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए।

'ग'

× × ×

४. नवयुवकोपयोगी

ब्रह्मचर्य-साधन—लेखक, आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री; संपादक, श्रीदुलारेलाल भार्गव; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ; क़ीमत ॥)

यह पुस्तक गंगा-पुस्तकमाला का १२७वाँ पुष्प है। इसमें १८ अध्याय हैं, जिनमें इस विषय से संबंध रखनेवाली सभी बातों का वर्णन है। कोई दृष्टि-कोण ऐसा नहीं, जिससे प्रकाश न डाला गया हो। हमारे स्कूलों, पाठशालाओं, गुरुकुलों और कॉलेजों के छात्रों के लिये यह अनमोल वस्तु है। इस विषय पर कितनी ही पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, पर जैसे महत्त्व की यह पुस्तक है, वैसी अन्य नहीं हैं। यह कहना न होगा कि इसके लेखक हिंदी-साहित्य के धुरंधर, अद्वितीय एवं प्रकांड पंडित हैं। जिस विषय को इनकी लेखनी उठाती है, उसका पूरा चित्र खींचकर सामने खड़ा कर देती है। आपकी लेखनी में जादू है। शंकराचार्यजी का वाक्य है कि ब्रह्मचर्य की अखंडता से सहज ही परमात्मदर्शन होता है। खेद है, ऐसे महत्त्व के विषय पर हमारे स्कूलों में कुछ भी शिक्षा न होवे! नर-नारी, युवा-वृद्ध, बाल-बालिका, सभी से हमारा आग्रह है कि इस सुंदर, उपयोगी एवं शिक्षा-प्रद पुस्तक को अवश्य पढ़ें, और उससे लाभ उठावें। इस पुस्तक के प्रकाशक भी पं० दुलारेलालजी भार्गव हैं, जो सुंदर, उपयोगी एवं मनोरंजक साहित्य के ग्रंथ प्रकाशन करने में अपना सानी नहीं रखते। यदि कोई पुस्तक गंगा-ग्रंथागार की है, तो जान लो कि वह सुसंपादित और सुमुद्रित है।

× × ×

५. समीक्षा

प्रसादजी के दो नाटक (समीक्षा)—लेखक, श्रीकृष्णानंद गुप्त; प्रकाशक, श्रीदुलारेलाल भार्गव, अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ; क़ीमत १)

यह पुस्तक गंगा-पुस्तकमाला का १२९वाँ पुष्प है। बाबू जयशंकरप्रसादजी ने चंद्रगुप्त मौर्य और स्कंदगुप्त-नामक दो नाटक लिखे हैं, जिनकी कुछ हिंदी-पत्र-पत्रिकाओं ने भरसक प्रशंसा की है। ये नाटक वास्तव में इतनी प्रशंसा के योग्य हैं या नहीं, इस बात को समीक्षाकार ने भली भाँति दिखला दिया है। समीक्षा ऐसे ऊँचे ढंग की है कि प्रत्येक पाठक को उसका महत्त्व मानना पड़ेगा। हिंदी-साहित्य में समीक्षा-संबंधी पुस्तकें बहुत कम हैं, और जो हैं भी, वे इतनी रोचक, मनोहर एवं चित्ताकर्षक नहीं। इस समीक्षा को पढ़नेवाला कभी ऊबता नहीं—उसका दिल चाहता है कि पढ़े ही चला जाऊँ। लेखन-शैली बड़ी सुंदर है। किसी वस्तु को उपहास में उड़ा देना लेखक के बाएँ हाथ का खेल है। समीक्षा-साहित्य में इस पुस्तक का स्थान सदैव रहेगा। इसका महत्त्व देखकर ही तो प्रकाशकों ने इसे छापा है। जिस पुस्तकालय में चंद्रगुप्त और स्कंदगुप्त-नाटक रहें, उसमें इस पुस्तक का स्थान भी अनिवार्य है।

कन्नोमल (एम्० ए०)

× × ×

६. धार्मिक

धर्मग्रंथावली की पुस्तकें

इस बीसवीं सदी में धर्म के नाम पर लोग नाक-भौं सिकोड़ते हैं, किंतु मेरा तो ऐसा विश्वास है कि विना धार्मिक उन्नति के देश का कल्याण होना कठिन है। भारतवर्ष में प्राचीन काल से धर्म का स्थान रहा है, और रहेगा। धर्म के तत्त्व को न समझनेवाले ही धर्म पर आक्षेप किया करते हैं। जब धर्म की समुचित व्याख्या करनेवाला कोई मिल जाता है, तो प्रतिपक्षी भी उसके गुणों का आदर करने लगते हैं।

पंडित दयाशंकरजी दुबे एम्० ए०, एल्-एल्०बी०, प्रो० अर्थ-शास्त्र, प्रयाग-विश्वविद्यालय ने इस धर्म-ग्रंथा-

वली का प्रणयन किया है। दुबेजी ने इस पुण्य कार्य में हाथ बढ़ाकर बड़ी प्रशंसा का कार्य किया है। इस ग्रंथावली के अंतर्गत दो मालाएँ हैं। इन दोनो मालाओं के पुष्प हमारे सामने हैं। एक भक्त-चरित-माला, दूसरी हिंदू-तीर्थ-माला। भक्त-चरित-माला में भक्तों के चरित बड़ी सुंदरता के साथ वर्णन किए गए हैं, और हिंदू-तीर्थ-माला में भारतवर्ष के तीर्थों का वर्णन किया गया है—

प्रयाग—संपादक, पं० दयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, अर्थशास्त्र-अध्यापक, प्रयाग-विश्वविद्यालय ; प्रकाशक, धर्म-ग्रंथावली, दारागंज, प्रयाग ; मूल्य ≈)॥

इस छोटी-सी पुस्तक में प्रयाग के सभी स्थानों का वर्णन आ गया है। प्रयाग-यात्रा करनेवालों के लिये यह पुस्तक पथ-प्रदर्शिका का काम करेगी। इस पुस्तक को आप ले लीजिए, तो विना किसी से पूछे तमाम प्रयाग का भ्रमण कर लीजिए।

बेनीमाधो का मंदिर, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, अशोक-स्तंभ (जो क़िले के भीतर है), प्रयाग-विश्वविद्यालय, इन चार इमारतों के चार सुंदर चित्र आर्ट-पेपर पर छपे हुए दे दिए गए हैं, इससे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। यात्रियों की सुविधा के लिये मूल्य भी बहुत थोड़ा रक्खा गया है। प्रयाग जानेवाले प्रत्येक यात्री को इससे लाभान्वित होना चाहिए।

× × ×

चित्रकूट—संपादक, पं० दयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ; प्रकाशक, धर्म-ग्रंथावली, दारागंज, प्रयाग ; मूल्य ≈)॥

चित्रकूट इतना रमणीक स्थान है, जहाँ भगवान् रामचंद्रजी ने वन-यात्रा करते समय उसके मनोरम स्थानों पर मुग्ध होकर लक्ष्मणजी को पर्ण-कुटी बनाने की आज्ञा दी थी, और बारह वर्ष तक वहीं निवास भी किया था। यही नहीं, चित्रकूट प्राकृतिक दृश्यों का घर है। तीर्थ-स्थान के अतिरिक्त यह एक ऐतिहासिक स्थान भी है। पुस्तक छोटी है, किंतु चित्रकूट से संबंध रखनेवाले सभी स्थानों का वर्णन बड़ी सुंदरता के साथ किया गया है। चित्रकूट का महत्त्व, वहाँ जाने का रेल-मार्ग, रहने का प्रबंध, नाम पड़ने का कारण आदि बातों का वर्णन भी कर दिया गया है।

चित्रकूट के यात्रियों को एक और सुविधा है। रामायण-प्रवर्तक भक्त-प्रवर गोस्वामी तुलसीदासजी का निवास-स्थान राजापुर वहाँ से क़रीब २३ मील है। उस पुण्य भूमि का दर्शन भी करते आइए।

× × ×

केदारनाथ—संपादक, पं० दयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्०-एल्० बी०, प्रो० प्रयाग-विश्वविद्यालय ; प्रकाशक, धर्म-ग्रंथावली, दारागंज, प्रयाग ; मूल्य ≈)

विषय नाम ही से स्पष्ट है। पुस्तक अच्छी लिखी हुई और संग्रह-योग्य है।

× × ×

भक्त प्रह्लाद—लेखक, आयुर्वेदाचार्य श्रीप्रबोधचंद्र मिश्र ; प्रकाशक, धर्म-ग्रंथावली, दारागंज, प्रयाग ; मूल्य ।)

भक्त प्रह्लाद भक्त-चरित-माला का द्वितीय पुष्प है। भक्त प्रह्लाद ने उस युग में जन्म लिया था, जब अत्याचारियों का आतंक बढ़ रहा था। भगवान् ने अपने भक्त को पहले से ही भेज दिया था। जब उनके भक्त पर अत्याचार होने लगे, और वे अत्याचार अपनी पराकाष्ठा को भी पार कर गए, तब भगवान् ने प्रकट होकर अत्याचारी का अंत किया।

भक्त प्रह्लाद का जीवन-चरित्र हमें अनेक प्रकार की शिक्षा देता है। पुस्तक संग्रह करने योग्य है। मूल्य भी कुछ अधिक नहीं।

× × ×

भक्त मीरा—लेखक, 'व्यथित हृदय' ; प्रकाशक, धर्म-ग्रंथावली, दारागंज, प्रयाग ; मूल्य ।)

मीरा ने एक भक्त कवि के रूप में जन्म ग्रहण किया था। मीरा को सब सुख सुलभ थे। यदि वह चाहतीं, तो एक महारानी बनकर सब सुखों का

उपभोग आसानी से कर सकती थीं, किंतु वह तो सबको भक्ति और प्रेम का पाठ पढ़ाना चाहती थीं।

मीरा को उनके संबंधियों ने अनेक प्रकार से रोका, किंतु मीरा ने एक की भी बात न सुनी। इस छोटी-सी पुस्तक में मीरा-संबंधी सभी बातों का वर्णन आ गया है। अंत में मीरा के कुछ सुंदर पद भी दे दिए गए हैं। पुस्तक संग्रह करने योग्य है।

'ग'



इस स्तंभ में हम हिंदी-प्रेमियों की जानकारी और सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई पुस्तकों के नाम देते हैं। पिछले महीने में नीचे-लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुई हैं—

(१) 'प्राकृतिक स्वास्थ्य और दीर्घजीवन' (स्वास्थ्य)—लेखक, श्रीठाकुरदासजी ; मूल्य ।।)

(२) 'पाँड़ेजी का पोथा' (हास्य-रस)—लेखक, श्रीरामशीषसिंह ; मूल्य १)

(३) 'मुग़लों के अंतिम दिन' (इतिहास)—लेखक, श्रीउमरावसिंह ; मूल्य १)

(४) 'चालाक चोर' (उपन्यास)—लेखक, श्रीदुर्गाप्रसाद खत्री ; मूल्य ३)

(५) 'फूलदान' (उर्दू-काव्य)—लेखक, श्रीशिवनाथसिंह ; मूल्य ।।=)

(६) 'शेर का शिकार' (बालोपयोगी)—लेखक, श्रीबैजनाथ केडिया ; मूल्य ।)

(७) 'दूर्वादल' (कहानी-संग्रह)—लेखक, श्रीबैजनाथ केडिया ; मूल्य ।।)

(८) 'गृहदेवी' (स्त्रियोपयोगी)—लेखक, श्रीसूरजभानु वकील ; मूल्य ।=)

(९) 'मेरी योरप-यात्रा'—लेखक, श्रीगणेश-नारायण सोमानी ; मूल्य १)

(१०) 'सभ्यता का शाप' (नाटक)—लेखक, श्रीठा० राजबहादुरसिंह ; मूल्य १।)

(११) 'साहित्य की उपक्रमणिका' (साहित्य)—लेखक, पं० किशोरीदास वाजपेयी ; मूल्य ।।≡)

(१२) 'लकड़ी का घोड़ा' (बालकोपयोगी)—लेखक, बा० किशनचंद्र ; मूल्य ।।)

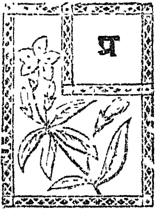
(१३) 'जानवरों की कहानियाँ' (बालोपयोगी)—लेखक, श्रीबा० किशनचंद्र ; मूल्य ।।)

(१४) 'राजपूताने के जैन वीर' (जीवनियाँ)—लेखक, श्रीअयोध्याप्रसाद गोयलीय ; मूल्य २)

(१५) 'सब रोगों की बेदाम अचूक औषधि'—लेखक, श्रीकालीचरण रावत ; मूल्य ।)



१. साहित्य और जनता



प्रत्येक साहित्य में ऐसे मनुष्य हुआ करते हैं, जो स्थूल उपयोगितावाद से साहित्य के उत्कर्ष का अंदाज़ा लगाते हैं। वे कहते हैं, जिस साहित्य में जनता के हित की जितनी शक्ति है, कसौटी में वह उतना ही खरा, उतना ही उपयोगी और उतना ही मूल्यवान् है।

प्रचलित प्रथा की तरह वे लोग केवल प्रचलन को ही देखते हैं, प्रचलन के मूल-कारण को नहीं। वहाँ तक उनकी पहुँच होती भी नहीं। यदि हो, तो किसी भी सत्य के प्रचलन के वे पक्षपाती हो जायँ, केवल रूढ़ि के ही न रहें।

एक दिन लिखा गया था कि चावल से माँड़ में ज़्यादा ताक़त होती है, इसलिये माँड़ फेकना न चाहिए। पर जो लोग चावलों के पकने की सफ़ाई और सौंदर्य को देखने के आदी थे, उन्होंने स्वास्थ्य के इस उपयोगितावाद को ग्रहण नहीं किया कि माँड़-समेत चावल खाना या माँड़ न फेकना अधिक लाभ-प्रद है। युक्तप्रांत में, जहाँ के रहनेवाले पहले ही से माँड़ फेकने के आदी नहीं, विवाह के समय इस उपयोगिताबाद को सौंदर्यवाद के सामने रद्द कर देते हैं, अर्थात् रुपए सेरवाले बासमती चावलों को वरयात्रियों की वर रुचि के ही अनुकूल, अधिक-से-अधिक जल में पकाकर, अलग-ही-अलग, फूलों की तरह, चुन लेते हैं। यहाँ हमें मालूम होता है, समाज में सौंदर्यवाद का कम महत्त्व नहीं।

कभी-कभी उपयोगितावाद और सौंदर्यवाद एक दूसरे से मिले रहते हैं, जैसे मनुष्य का जीवन अधिक स्वच्छ, सुंदर, सुखमय होकर अधिक स्वस्थ भी हो। इसी तरह किसी वाद-विशेष को साहित्य में अलग महत्त्व न देकर साहित्य के ही एक द्रुम से भिन्न-भिन्न शाखा की तरह सन्निविष्ट समझें, तो विचार में मिट्टी, जल, आग, हवा और आसमान की तरह जुड़ी हुई सारी सृष्टियों को भिन्नता के भीतर से एक ही सूत्र में गुथी हुई देख सकते हैं। यही उद्यम साहित्य का सर्वोत्तम विकास रहा है।

हमें अच्छी तरह मालूम है, हमारे निन्नानबे फ़ीसदी साहित्यिकों को और सौ फ़ीसदी जनता को भगवान् श्रीरामचंद्र पर, उनके जन्म-कर्मादि पर पूरा-पूरा विश्वास है। अतः आज यदि राम के विरोध में कोई प्रासंगिक बात भी कही जाय, तो जनता उसे सुनने को तैयार नहीं; साहित्यिकों में केवल सुनने का धैर्य है, मत बदलने की शक्ति नहीं। यह अवश्य ही युगों की संचित साहित्य-शक्ति का ही दौर्बल्य है। इससे जनता को कुछ

हासिल हुआ, तत्त्व के भीतर से यह साबित नहीं होता। किसी महान् भक्त से ही पूछिए, अग्नि से यज्ञ-हवि कैसे पैदा होती है, जानकीजी ऋषियों के ख़ून से भरे घड़े से, ज़मीन से, कैसे निकलती हैं, महावीरजी लंका से एक ही रात में उत्तराखंड जाकर, सजीवन-मूरिवाला पहाड़ लेकर, रात ही-भर में लंका कैसे लौट आते हैं, तो आपको युक्ति-पूर्ण, संतोष-प्रद उत्तर कदापि प्राप्त न होगा। भारत में प्रचलित, भारतीय नाम से प्रसिद्ध आर्य-सभ्यता की उज्ज्वल श्री से मंडित जो कुछ प्राप्त होगा, उसका अधिकांश इसी प्रकार शिरश्चरण-हीन, अदृष्ट, काल्पनिक जंतु-विशेष ज्ञात होगा, जहाँ मानवीय दृष्टि की गति नहीं। पर पता नहीं, प्राचीन कितनी सदियों से इस जातीय उपयोगिता-वाद का आर्यों में महत्त्व है! इससे जाति की जितनी भी भलाई हुई हो, आज हमें कहने में कुछ भी संकोच नहीं कि उतनी ही बुराइयाँ हुई हैं। आज उन्हीं बुराइयों का दूरीकरण देश का, साहित्य का सच्चा उद्धार है। अतः, हम देखते हैं, उपयोगितावाद में भी भिन्न-भिन्न दृष्टि-कोण संभव हैं। पहले सत्य को जिस रहस्यमय ढंग से व्यक्त करने की प्रथा थी, आज उसी रहस्य को सत्य शब्दों के भीतर से खोलने की रीति प्रचलित हो रही है।

पर यह आधुनिक साहित्यिक प्रगति कभी जनता के हृदय से सहयोग नहीं प्राप्त कर सकती। कोई भी बड़ा नया प्रचलन अपने प्रथम चरण-क्षेप से ही जनता के हृदय से सहानुभूति प्राप्त कर सका हो, ऐसा देखने में नहीं आया। यहाँ तक कि जो पौराणिक कथाएँ जनता के प्राणों में प्रवेश कर गई हैं, उनके लिये वह एक रोज़ बिल्कुल तैयार न थी। हज़ारों प्रचारक साधू जनता को सुना-सुनाकर अंध-विश्वास पर प्रतिष्ठित कर रहे थे। अंध-विश्वास भी क़ीमती है, जहाँ संसार में किसी भी रूप का विश्वास ऊँचे विचार से सत्य नहीं।

अस्तु, हम देखते हैं, हर साहित्य का पहले सूक्ष्म-रूप में आगम होता है, प्रचार तत्पश्चात्। जो साहित्यिक जनता से तरक़्क़ी में सदियों का फ़ासला रखते हैं, वे कभी जनता के साथ नहीं बैठते, जनता स्वयं मंद-मंद चलती हुई वर्षों बाद उनके साथ होती है। साहित्य की प्रगति के ऐसे ही प्रमाण इतिहास देते हैं। जिस शूद्रक को एक दिन सामाजिक नियमों के लंघन के कारण अवतार-श्रेष्ठ भगवान् श्रीराम के हाथों प्राण देने पड़े थे, जिस एकलव्य को गुरु की मिथ्या तृप्ति के लिये अँगूठा काट देना पड़ा था, क्या आर्य-सभ्यता का पक्षपाती कोई भी मनुष्य कह सकता है, कि भारत में आज वैसा ही वर्ण-धर्म प्रचलित है, अथवा उसी के प्रचलन की ज़रूरत है? वही शूद्रक शक्ति आज सहस्र-सहस्र रामचंद्रों को पराजित कर देने में समर्थ है—अछूत ही आज भारत के प्रथम गण्य मनुष्य, चिंत्य समस्या हैं। आप देखें, वही एक उपयोगितावाद आज कैसा विपरीत रूप धारण किए हुए है। जनता आज भी इस उपयोगिता-वाद का साथ नहीं दे रही, उसी प्राचीन के साथ है। इसीलिये कहा कि जनता साहित्य के साथ नहीं रहती, साहित्य के साथ लाई जाती है, और जिसे साहित्यिक उपयोगितावाद का आज एक रूप प्राप्त है, कल दूसरा प्राप्त होगा।

अँगरेज़ी-साहित्य में क्राइस्ट-विचारवाली जो ख़ास धारा प्रचलित थी, युग-प्रवर्तन को उसके समय सबसे बड़ा धक्का लगा, इसलिये उस काल के वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स आदि कविगण अपने समय में ही जनता द्वारा समादृत नहीं हुए। अँगरेज़, मुसलमान, पारसी और जैन, हिंदू तथा अन्यान्य जनों को अपने-अपने समूह में रहकर, दूसरे के प्रति द्वेष पैदा करते हुए देखकर प्राचीन काल से बहती आती हुई विश्व-धारा में जिन रवींद्रनाथ ने आत्म-मज्जन किया, उनका भी समादर उनकी भाषावाली जनता ने पहले नहीं

किया, और उनके विश्व-जनीन भावों का समर्थन पूर्णतः आज भी नहीं कर रही है। जिस उमर-ख़ैयाम से प्रसिद्ध कवि संसार में आज दूसरा नहीं, वह अपनी उच्छृंखल वृत्तियों के कारण अपने ही भाइयों की स्मृति में लगातार सदियों तक, स्वप्नवत्, विलीन था। इस तरह, हम देखते हैं, जनता बहुत बाद को नेता साहित्यिक से सहयोग करती है। हिंदी में ऐसे साहित्यिक और साहित्य का एकांत अभाव नहीं, जो कुछ हद तक जनता को जड़ता से मुक्त कर सामने लाने की कोशिश कर रहे हैं, पर विचारों की कमज़ोरी और स्वाभाविक पतन के कारण प्रचारक-गण अपने साथ बरग़लाकर रखना चाहते हैं, जिससे सत्य का प्रकाश उन तक नहीं पहुँच पाता, प्रचार-प्राप्त नहीं हो पाता। आज हमारे साहित्य के सिर कौन-सा उत्तरदायित्व सबसे गुरु है, लोग नहीं सुन पाते। निम्न श्रेणी के प्रचारक साहित्यिक जनता की ही प्रिय बातें उन्हें सुनाते रहते हैं। इस प्रकार सत्य के बदले वे अपना ही प्रचार करते हैं।

हमारे साहित्य की इस हीनता का मुख्य कारण यही है कि हम अपनी हीनता को प्रश्रय देकर उत्कर्ष समझ बैठे हैं, अपने अज्ञान को ज्ञानाडंबर कर रक्खा है। आज जिस युग-साहित्य की दृष्टि में मनुष्य-मात्र के समान अधिकार हैं, वह पुरुष हो या स्त्री, उसका जनता में प्रचार रोकना, उसकी सूक्ष्मतम व्याख्या न समझकर उसके अस्तित्व को ही न स्वीकार करना हिंदी की इस हीन दशा का एक अत्यंत पुष्ट स्थूल प्रमाण है। पर, हमें विश्वास है, साहित्य की महाप्राणता, जो जनता को ज्ञान के भीतर से बहा ले गई है, एक दिन अपनी शक्ति का परिचय देगी।

× × ×

२. अखिलभारतवर्षीय शिक्षा-सम्मेलन

अखिलभारतवर्षीय शिक्षा-सम्मेलन डॉ० ज़िया-उद्दीन अहमद के सभापतित्व में, गत १४-१५ एप्रिल को, लाहौर में, हो गया। स्वागतकारिणी के अध्यक्ष थे राजा नरेंद्रनाथ।

राजा नरेंद्रनाथ ने अपने भाषण में अँगरेज़ी-शिक्षा पर बड़ा ज़ोर दिया। आपका कहना है कि जिन विश्वविद्यालयों में अँगरेज़ी दूसरी भाषा के तौर पर है, वहाँ से निकले हुए छात्र देश के कार्यों में प्रथम स्थान अधिकृत नहीं कर सकते। मुमकिन है, राजा नरेंद्रनाथ के इस अँगरेज़ी मोह का कोई कारण हो। पर हमें साथ-साथ देखना है, इस विषय पर देश के अपर मनीषी क्या राय देते हैं।

गत फ़रवरी की बात है। विश्वकवि श्रीरवींद्रनाथ का कलकत्ता-विश्वविद्यालय में, स्वीकृत अध्यापक-पद से, एक भाषण हुआ था। आपकी काव्यमयी वक्तृता सुनने के लिये छात्र-छात्राओं के अतिरिक्त साधारण-जनों की भी सिनेट-हाल में अपार भीड़ थी। महाकवि ने उच्छ्वास-पूर्ण व्यंजनामयी भाषा में कहा कि आजकल हमारी शिक्षा का माध्यम अँगरेज़ी होने के कारण हमारी भाव-प्रकाशन-शक्ति मंद पड़ गई है, हम इच्छानुसार, अनायास अपने भाव प्रकट नहीं कर पाते, क्योंकि प्रकाश-पथ मस्तिष्क में मातृभाषा से ही परिष्कृत होता है। महाकवि मातृभाषा के माध्यम द्वारा मस्तिष्क में सब प्रकार के भावों की प्रकाशन-शक्ति का संचार देखना चाहते हैं। आपने कहा, जापान का पाश्चात्य शिक्षा से भारत के विचार से कम दिनों से तअल्लुक़ है, पर वहाँ की सार्वभौम शिक्षा-संस्कृति से मनुष्यों की अपने ढंग पर होनेवाली चिंतना-शक्ति अधिक पुष्ट है। ओत-प्रोत जल के भीतर मछली की प्रगति जैसे अबाध होती है, शून्य में खग की, वैसे ही अपनी भाषा के मुक्त पंखों से परिव्याप्त विश्व-भाव-नभ में, मनोविहग स्वच्छंद उड़ सकता है। दूसरी भाषा कभी जाति के मुक्त कंठ की भाषा नहीं हो सकती, खुले फूलों के परिमल की तरह उससे जीवन-विकास की गंध-सुरभि नहीं मिल सकती।

अभी कुछ ही दिनों की बात है, विश्व-विख्यात, देश-पूज्य आचार्य प्रफुल्लचंद्र राय प्रयाग का 'लीडर-

कार्यालय, देखने गए थे। वहीं एक प्रबंध आपने लिखा। उसका शीर्षक है 'विदेशी डिग्रियों का मोह'। इसमें आचार्य राय लिखते हैं कि विज्ञान की शिक्षा के लिये देश में सुबीता न रहने के कारण उन्हें एडिनबरा जाना पड़ा था। परंतु अब यहाँ विज्ञान-शिक्षण का समुचित प्रबंध है। फिर भी अधिक-से-अधिक संख्या में छात्र विदेश ही को जाते हैं। यह ठीक है कि सरकार की आँखों में विदेशी विश्वविद्यालयों की अधिक मर्यादा है, और पदवीधरों को पद-प्राप्ति में सुबीता होता है। परंतु हमें याद रखना चाहिए कि विदेशियों के प्रति हमारा एक अंध-विश्वास है (कि वे क़ाबिल हैं)। विदेशी बराबर भारत के ज्ञान-विज्ञान को नेस्तनाबूद कर देने की कोशिश करते आ रहे हैं। भारतीय चिकित्सा-विज्ञान, भारतीय स्थापत्य-कला, भारतीय भास्कर्य आदि ग्रीस, मिस्र, अरब से लिए हुए हैं, ऐसे मिथ्या कथनों के प्रमाण के लिये योरप के लेखकों ने कितना परिश्रम किया है। परंतु अब बहुजन-सम्मत सिद्धांत यह है कि भारतवर्ष ही इन सब विज्ञानों की आदि जन्मभूमि है। भारतीय दर्शन इतना आगे बढ़ गया है कि आज तक पाश्चात्य दर्शन उसकी बराबरी को नहीं पहुँच पाया। विज्ञान के अपर विभागों में भारत ने क्या किया था, इसके प्रभाव-चिह्न अब लुप्त हैं, नहीं तो देखा जाता, वे भी पृथ्वी के अपर देशों से श्रेष्ठ थे या निकृष्ट। भारतीय स्वास्थ्य-विज्ञान भी यहाँ तक बढ़ गया था कि उसके नियम हमारे दैनिक कृत्यों में आ गए थे।

अब ज़रा राजा नरेंद्रनाथ की अँगरेज़ी-प्रिया उक्ति के साथ विश्व में अपनी विशेषता से प्रतिष्ठित इन दो महापुरुषों की उक्तियों का मिलान कीजिए। आपको सत्य निष्कर्ष प्राप्त हो जायगा। जिस अँगरेज़ी को राजा साहब शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते हैं, वह एक भिन्न-भाषा-भाषी के स्वाधीन चिंतन का भी माध्यम बन सकती है, इस विषय पर राजा साहब ने सोचने का कष्ट स्वीकार नहीं किया। यहाँ तक सोच भी सकते हैं, हमें इसमें यथेष्ट संदेह है; इसलिये इस संबंध में विश्व-कवि श्रीरवींद्रनाथ की उक्ति पर सविशेष ध्यान देने को हम पाठकों से साभिप्राय निवेदन करते हैं।

राजा नरेंद्रनाथ के विचार से यदि देशी भाषाएँ रोमन-लिपि में लिखी जायँ, तो अँगरेज़ी सीखना अधिक सुविधा-जनक हो! आपका यह भी ख़याल है कि यदि भारत ने रोमन-लिपि को अपनाया, और अपनी भाषा को समृद्ध करने का मूल-स्रोत अँगरेज़ी को स्वीकार किया, तो इँगलैंड से भारत साधु बंधन में सुदृढ़ होगा।

देखा आपने! कितनी सहृदय, निष्कपट उक्ति है! कानपुर में हुए हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष के पद से दिया आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी का भाषण हिंदी-भाषियों को न भूला होगा। उसमें रोमन-लिपि के संबंध में, उससे होनेवाले राहु-ग्रास पर, जो प्रकाश आपने डाला है, अपनी हिंदी-संतति को इस लिपि से बचने की जो चेतावनी दी है, हिंदी के समर्थक विद्वान् पाठक न भूले होंगे। आज राजा नरेंद्रनाथ की आवाज़ उसी रोमन-लिपि के समर्थन में उठ रही है। इसके समर्थक हैं राजा नरेंद्रनाथ और विरोधी आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी। अनुभव किस तरफ़ अधिक हो सकता है, पाठक स्वयं इसका निर्णय कर लें।

राजा साहब ने यथाधर्म पहले सहयोग किया है अँगरेज़ और अँगरेज़ी से, फिर पंजाब से जो संस्था जितनी दूर है, उससे—जैसे उसमानिया और कर्वे। पास की गुरुकुल, कन्या-महाविद्यालय आदि संस्थाओं का उल्लेख भी नहीं किया। इससे आपके भाषण की परार्थपरता प्रकट है।

× × ×

३. जापान के युवक

आजकल जापान में उठी हुई बहुत-सी समस्याओं में बेकार-समस्या भी एक है। अमेरिका-जैसे वाणिज्य के केंद्र-स्थलों में भी जब इस सीमा तक बेकारी

बढ़ी हुई है, तब जापान की बात ही क्या ! बेकार जापानियों में पढ़े-लिखे नौजवानों की काफ़ी बड़ी संख्या है। जापान के नवयुवक छात्रों और छात्राओं में सबसे अधिक, सबसे प्रबल चिंता जगह पानेवाली है। वे सोचते हैं, उपाधि लेकर, विश्वविद्यालय से बाहर निकलने पर वे क्या करेंगे। यह दशा बहुत कुछ भारत के युवकों से मिलती है। दस वर्ष पहले उन्हें ऐसी चिंता न थी। कोई भी ग्रैजुएट बेकार न रहता था। विश्वविद्यालय से निकलनेवाले लड़कों में इस समय साठ प्रतिशत ऐसे हैं, जिन्हें कोई काम जी-तोड़ प्रयत्न करने पर भी नहीं मिल रहा। इसका कारण संसार-व्यापी अर्थ-संकट है, लेकिन जापान के लिये कुछ लोग कहते हैं कि इसका कारण यह है कि वहाँ पूँजीवाद दम तोड़ रहा है। लड़के अधिक-से-अधिक संख्या में ग्रैजुएट होकर, एकांत में बैठकर योरप के राष्ट्र-विप्लवों पर विचार करते रहते हैं, और उनके मा-बाप के हज़ारों इयन नष्ट हो जाते हैं। जापानी इसलिये कहते हैं, आज जापान में केवल आर्थिक दुरवस्था ही नहीं, मानसिक दुश्चिंताएँ भी फैली हैं। जापान का अर्थ-संकट, अनेकानेक श्रमिक-विद्रोह, चीज़ों की क़ीमत का बढ़ना और बेकारियों की संख्या का बढ़ना आदि विषय जापान के छात्र-छात्राओं के मन को पीड़ित कर रहे हैं। इस दुर्दशा और सामाजिक ह्रास को दूर करने के लिये उपायों की उद्भावना के निमित्त जापानी छात्रों ने एक संस्था खोली थी—सोशल-सायंस-स्टडी-सोसाइटी।

समाज के विधान पर विचार करते हुए स्वभावतः वे कार्लमार्क्स और लेनिन की तरफ़ झुके, और अंत में निश्चय किया, केवल पुस्तकें रटने से काम न चलेगा। श्रमिकों, उनके नेताओं, ट्रेड यूनियनों के साथ मिलना चाहिए। इन बातों में जापान ब्रिटिश-साम्राज्यवादियों से कम नहीं। थोड़े ही समय में तमाम शिक्षा-संस्थाओं से आदेश निकले कि छात्रों की यह संस्था ग़ैर-क़ानूनी है, इसे तोड़ देना चाहिए। अस्तु, संस्था तोड़ दी गई, परंतु छात्रों का आंदोलन न रुका। जो खुली सड़क पर हो रहा था, वह छिप-छिपकर साधारण वाचनालयों में होने लगा।

१६२८ ई० में जापान की सरकार ने कम्युनिस्टों के ख़िलाफ़ युद्ध-घोषणा की। जहाँ कहीं कम्युनिस्टों की ख़बर मिलती थी, वहीं बाज़ की तरह पुलीस टूटती थी, वहीं दो-चार जापानी छात्र मिलते थे। कम्युनिस्टों के साथ पुलीस उन्हें भी गिरफ़्तार करने लगी। इन घटनाओं से इधर छात्र भी क्षुब्ध हुए, और स्कूल, कॉलेजों के कार्यकर्ता भी वैसे ही नाराज़ हुए। हर स्कूल के छात्र-समाज से यह दुराचार दूर करने के लिये उन लोगों ने कोशिश की। छात्रों के भीतर ही दो-एक को चुनकर उन्होंने छात्रों के ही विरुद्ध चर नियुक्त किए, परंतु ऐसी व्यवस्था द्वारा भी जापानी छात्रों का वह अनाचार दूर न हुआ। डरे हुए दो-एक विद्यार्थियों को छोड़कर बाक़ी सभी लेनिन, मार्क्स आदि की चर्चा में लगे रहते हैं।

जापानी छात्रों में आत्म-सम्मान का भी काफ़ी ज्ञान है, और यह स्कूल और कॉलेज के मालिकों के लिये भय का विषय हो रहा है। इस समय यदि लेनिन की चर्चा से किसी छात्र को दंड दिया जाय, तो स्कूल या कॉलेज के लड़के उसी समय एक साथ बाहर निकल आवेंगे, और वह दंड वापस न लेने तक भीतर न जायँगे। इस तरह जापान के युवकों की मनोवृत्ति बदल रही है।

× × ×

४. भविष्य के मनुष्य

सुनते हैं, पहले के मनुष्य बड़े डील-डौल के होते थे। यदि रामायण तथा महाभारत के कथानकों पर विश्वास किया जाय, यदि रावण, कुंभकर्ण, हनुमान, बालि, भीम, सहस्रार्जुन आदि ऐतिहासिक व्यक्ति माने जायँ, यदि दैत्यों और असुरों की आकार-चर्चा कपोल-कल्पना न समझी जाय, तो यह मानना पड़ेगा कि प्राचीन काल के मनुष्यों का शरीर आजकल के पुरुषों के मुक़ाबले बड़ा ही सुदृढ़, सुसंगठित और सुडौल होता था, और कोई-कोई तो, श्रीगोस्वामीजी

के शब्दों में, 'भूधराकार' होते थे। यदि 'भूधराकार'-पद अतिशयोक्ति ही माना जाय, तो भी यह विचारना कि पुराने काल के मनुष्यों की लंबाई १५-२० फ़ीट रही होगी, कुछ असंगत न होगा।

आजकल की दृष्टि से यद्यपि १५-२० फ़ीट की लंबाई बहुत ज्ञात होती है, तथापि इसके सत्य होने में संदेह के लिये अधिक स्थान नहीं। कहते हैं, आज से ६-७ सौ वर्ष पूर्व के जो मनुष्य थे, उनकी औसतन् लंबाई ९-१० फ़ीट थी। आज दिन भी संसार में सबसे लंबे पुरुष की ऊँचाई ८½ फ़ीट से अधिक है। अतः यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं कि ६-७ सौ वर्ष पूर्व के मनुष्य ९ या १० फ़ीट लंबे रहे हों, और ५-६ हज़ार वर्ष पूर्व के स्त्री-पुरुषों की ऊँचाई १५-२० फ़ीट रही हो।

यदि वैज्ञानिकों की बातें मानी जायँ, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राणिमात्र में क्षय का क्रम चल रहा है। मनुष्य ही केवल ऐसा जीव नहीं, जो इस क्षय-चक्र में फँसा हो। यदि क्षय का यही क्रम रहा, तो यह मानना पड़ता है कि एक दिन ऐसा भी आवेगा, जब आजकल के बौने भीमकाय असुर समझे जायँगे! वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत भावी मनुष्य का चित्र पुराणकारों के वर्णन से बहुत कुछ सादृश्य रखता है। पौराणिकों का विश्वास है कि भविष्य के मनुष्यों की लंबाई अँगूठे से अधिक न होगी! कल्पना तो कीजिए, उन अँगूठे-भर लंबे मनुष्यों की, और फिर अपनी ऊँचाई से उनका मिलान कीजिए। देखिए, फिर कल्पना आपको कैसा सिनेमा दिखलाती है। इँगलैंड के सुप्रसिद्ध लेखक स्विफ़्ट ने लंबे और नाटे के इस विस्मयकारी भाव का बड़ा ही रोचक वर्णन अपनी पुस्तक 'गुलिवर की यात्राएँ' (गुलिवर्स ट्रैवेल्स) में किया है।

भविष्य के मनुष्य के संबंध में, हाल ही में, अमेरिका के प्रोफ़ेसर हार्डलिक ने बड़ी ही रोचक भविष्यवाणी की है। आपका कथन है कि भविष्य के मनुष्य स्वरूपवान् और सुंदर होंगे, परंतु उनमें खल्वाटों की संख्या अधिक होगी। प्रोफ़ेसर साहब का विश्वास है कि भावी पुरुषों की मानसिक शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी होगी। उनका यह भी कहना है कि भविष्य के मनुष्यों की भौंहें चौड़ी, नाक नोकदार और अधिक उभड़ी, मुख छोटा और ठोढ़ी निकली हुई होगी। एक बात में प्रोफ़ेसर साहब को बड़ा ही तीव्र मतभेद है, और वह है लंबाई के संबंध में। अधिकांश जन-समुदाय का मत है कि मनुष्यों की ऊँचाई कम होती जायगी, परंतु प्रोफ़ेसर साहब कहते हैं कि भावी मनुष्य लंबे होंगे।

पुराणों के अनुसार यह कहा जा सकता है कि भविष्य के मनुष्य चिड़चिड़े स्वभाववाले और ईर्षालु होंगे। उनमें स्वार्थ की मात्रा अधिक होगी, और लोलुपता का प्राधान्य होगा। वे अपने को सबसे चतुर और कुशल समझेंगे। प्रोफ़ेसर हार्डलिक का कहना है कि भविष्य के मनुष्य जहाँ सर्व-गुण-संपन्न होंगे, वहाँ उनमें सनक भी पर्याप्त मात्रा में रहेगी, और इसी के कारण मनुष्य सब प्रकार के बंधनों से अपने को मुक्त रखने का प्रयत्न करेंगे, और एक दूसरे की परवा कम करेंगे। आपका यह भी कहना है कि भावी मनुष्यों में पागलपन ही प्रधान रोग होगा।

प्रोफ़ेसर साहब की इस भविष्यवाणी में कितना सत्य है, यह अभी कोई नहीं कह सकता। परंतु हाँ, आपकी कही एक-दो बातें ऐसी हैं, जो हठात् ध्यान आकृष्ट करती हैं। आपकी पहली बात है कि भावी मनुष्य अपने को सब प्रकार के बंधनों से मुक्त रक्खेगा। प्रश्न यह होता है कि मनुष्य में प्रेम, सौजन्य, सौहार्द, दया, करुणा, सहृदयता आदि कोमल भावों के लिये स्थान रहेगा या नहीं? प्रेम और घृणा दोनो ही सापेक्ष हैं। यदि यह माना जाय कि भावी मनुष्य में प्रेम आदि का अभाव रहेगा, तो यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि घृणा, शोक, क्रोध आदि भाव भी उद्भूत न होंगे। ऐसी स्थिति में मनुष्य की कैसी दशा होगी? मनुष्य की परिभाषा यह की जाती है कि वह एक समाज-प्रिय प्राणी है। क्या भविष्य के मनुष्य समाज-शत्रु होंगे?

दूसरी बात जो प्रोफ़ेसर हार्डलिक ने कही है, वह है भावी मनुष्य के उन्मत्त होने की आशंका। आजकल मनुष्य-समाज में चतुर्दिक् क्रांति मच रही है। धर्म, समाज, शिक्षा, आहार, आचार, सभी ओर, सभी समाजों में, परिवर्तन के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं। हाँ, यह अवश्य है कि कहीं इस क्रांति का रूप उत्कट है, कहीं कोमल, परंतु है परिवर्तन का चक्र ज़ोरों पर, यह निर्विवाद है। ऐसी स्थिति में प्रश्न यह उठता है कि क्या ये क्रांति के चिह्न मनुष्य की उस इच्छा के द्योतक हैं, जो भावी मनुष्य में पूर्ण-रूपेण स्पष्ट होनेवाली है, और जिस ओर प्रोफ़ेसर हार्डलिक ने इशारा किया है? क्या आजकल के आत्म-घातों की संख्या-वृद्धि भावी मनुष्य की उस प्रवृत्ति की द्योतिनी है, जो भविष्य में अधिकाधिक प्रकटित होती जायगी, और जिसे आधुनिक मनुष्य मानसिक दौर्बल्य और उन्माद कहते हैं? भविष्य के मनुष्यों के बारे में प्रोफ़ेसर साहब के लेखों ने, सभ्य-समाज के सामने, एक बड़ा ही रोचक प्रश्न उपस्थित किया है, इसमें संदेह नहीं।

× × ×

५. रूज़वेल्ट का आह्वान

संसार शांति चाहता है। पिछले महायुद्ध ने जन-समाज पर यह भली भाँति स्पष्ट कर दिया है कि युद्ध का क्या अर्थ होता है! चारो ओर से समय-समय पर युद्ध के बहिष्कार की आवाज़ें उठी हैं, और उठ रही हैं; परंतु अभी संसार में शस्त्रीकरण जारी है, आयुधों की वृद्धि होती जा रही है। हमारे कहने का यह तात्पर्य नहीं कि संसार के सभी मनुष्य युद्ध से ऊब गए हैं। अब भी कुछ पुरुष ऐसे हैं, जो युद्ध-स्थल को मनुष्य के पौरुष की कसौटी समझते हैं। हाल में फान पेपन ने जर्मनी में जो भाषण दिया है, उससे यह स्पष्ट लक्षित होता है कि उनकी दृष्टि में मनुष्य का युद्ध के साथ वही संबंध है, जो रमणियों का मातृत्व से, अर्थात् वे युद्ध के बहिष्कार करने की नीति के समर्थक नहीं। परंतु योरप में भी सभी पेपन के मत को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं। वहाँ का अधिकांश युद्ध-विरोधी है, इसमें संदेह नहीं।

युद्ध के बहिष्कार और निःशस्त्रीकरण के संबंध में पिछले कई वर्षों से निःशस्त्रीकरण-परिषद् की बैठकें हो रही हैं, परंतु इन बैठकों में अभी तक कोई मार्के की बात नहीं हो पाई। हो भी क्योंकर? परिषद् के जितने भी सदस्य हैं, उनमें एक दूसरे पर अविश्वास है। इँगलैंड, फ्रांस, अमेरिका, जापान, इटली आदि देश अपने को छोड़कर अन्य देशों को निरायुध देखना चाहते हैं। इँगलैंड के पास हवाई बेड़ा कम है, फ्रांस के पास अधिक; इँगलैंड की जल-सेना बढ़ी हुई है, फ्रांस की शक्ति उतनी सुसंगठित नहीं, अतः इँगलैंड चाहता है कि हवाई बेड़े कम किए जायँ, और फ्रांस कहता है कि जल-सेना घटाई जाय। ग़रज़ यह कि निःशस्त्रीकरण चाहते सभी देश हैं, मगर इस ढंग से कि उन पर अन्य देशों के आक्रमण का आतंक न रहे। इस स्थिति में वास्तविक निःशस्त्रीकरण भला कैसे हो सकता है?

हाल में अमेरिका के नए प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट ने संसार की समस्त जातियों के प्रति एक विज्ञप्ति निकाली है, और कहा है कि समस्त संसार का भला इसमें ही है कि तू-तू मैं-मैं के संकुचित दृष्टि-कोण को छोड़ विश्व-हित के नए दृष्टि-कोण से कार्य किया जाय। आपने बड़े ही ओजस्वी शब्दों में शांति का आह्वान किया है। आप कहते हैं, निःशस्त्रीकरण की कसौटी यह है कि संसार का कोई राष्ट्र शस्त्र-युक्त रहे ही नहीं। आप यथार्थ ही कहते हैं कि जब तक पूर्णरूपेण शस्त्रास्त्रों का बहिष्करण न हो, यह कहना ही व्यर्थ है कि संसार निरायुध हो गया। सच्चे, वास्तविक निरायुधीकरण में शस्त्रास्त्रों के अनुपात की परीक्षा नहीं हो सकती। जहाँ युद्ध-सामग्री रखनी ही नहीं है, वहाँ भला यह प्रश्न कैसे उपस्थित हो सकता है कि अमुक राष्ट्र १०० हवाई जहाज़ क्यों रखता है, और अमुक दस ही क्यों? प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट ने यहाँ तक कह दिया है कि यदि अन्य

सभी राष्ट्र निःशस्त्रीकरण के लिये तत्पर हो जायँ, तो अमेरिका इस मामले में कभी कसर न रक्खेगा, और किसी को भी यह कहने का मौक़ा न मिलेगा कि संसार की निरायुधीकरण चेष्टा एक विशिष्ट ढोंग-मात्र है।

अमेरिका के इस अर्थ-पूर्ण आह्वान ने शांति का एक नया ही वातावरण उपस्थित कर दिया है, और युद्ध के बहिष्कारवादियों की सूखती हुई आशा-लता पर सामयिक सिंचन हुआ है। आज तक अमेरिका अपने जल-सेना-विभाग और हवाई बेड़े में न्यूनता करने का पक्षपाती न था। आज उसका यह कहना कि जल-सेना ही क्या, वह सभी प्रकार के सैन्य-उपांगों को तोड़ देने के लिये तत्पर है, बड़ा महत्त्व रखता है। इस समय अमेरिका संसार के समस्त देशों से अधिक संपन्न है, उसके पास धन और जन दोनो पर्याप्त मात्रा में हैं, और यही नहीं, संसार के अन्य सभी देश उसके क़र्ज़दार हैं। उसका शांति के नाम पर इस प्रकार संसार से विज्ञप्ति करना बहुत कुछ अर्थ रखता है।

शांति की इस पुकार ने संसार में बड़ा प्रभाव डाला है। प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट के विचारों की सभी मनुष्यों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। और तो और, जर्मनी का क्रांतिकारी नेता हिटलर भी रूज़वेल्ट की योजना (स्कीम) से सहमत है! कुछ ही दिनों पूर्व पेपन जिस देश में युद्ध की महत्ता और पुरुषार्थ की कसौटी पर लेक्चर दे सकता हो, उसी देश में एक सप्ताह के उपरांत वहाँ के चांसलर के भावों में इतना परिवर्तन हो जाय कि वह शांति की उपयोगिता और निःशस्त्रीकरण का पक्षपाती बन जाय, यह परिवर्तन साधारण नहीं। जिन्होंने हिटलर के कार्य-क्रम की परीक्षा की है, वे भी उसके इन विचारों से स्तंभित हो गए हैं। हिटलर की स्पीच से और रूज़वेल्ट की अपील से यह भासित होता है कि शांति की गरिमा और युद्ध के माहात्म्य के बीच, जाँच करने पर, शांति का वज़न अधिक उतरता है।

क्या कभी ऐसा दिन भी आवेगा, जब शांति की यह भावना वास्तविक होगी? ऐसा दिन जितनी ही जल्द आवे, उतना ही अच्छा। देखना यह है कि प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट अपनी कल्पना को मूर्तिमती करने के हित कुछ और भी प्रयास करते हैं या नहीं! शांति की पुकार संसार सुन चुका है। क्या इस पुकार पर विश्व के राष्ट्र विचार करेंगे? या क्या कुछ दिनों के उपरांत, बमों के धड़ाके और तोपों के घोर गर्जन के आगे, शांति की यह प्रतिध्वनि विनष्ट हो जायगी? इस प्रश्न के उत्तर पर ही संसार का हित-अनहित निर्भर है।

× × ×

६. लेखक-संघ

इँगलैंड में लेखकों का एक संघ है, जिसे ई० पी० एन्० भी कहते हैं। इस संघ का संगठन सन् १९२१ के ऑक्टोबर-मास में, एक आंग्ल-महिला मिसेज़ डासन स्कॉट द्वारा, हुआ था। इसके प्रधान थे इँगलैंड के प्रख्यात नाटककार जॉन गाल्सवर्दी। गाल्सवर्दी की मृत्यु के उपरांत इस संघ के प्रधान का पद संसार के यशस्वी लेखक श्रीएच्० जी० वेल्स को दिया गया है। यह वास्तव में हर्ष का विषय है कि इस लब्ध-प्रतिष्ठ संघ की एक शाखा भारत में भी खुलनेवाली है, जिसके प्रधान श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर बनाए गए हैं। सर राधाकृष्णन्, श्रीसरोजिनी नायडू, श्रीरामानंद चटर्जी इस संस्था के उप-प्रधान बनाए गए हैं।

इस लेखक-संघ के कई उद्देश्य बड़े ही सुंदर हैं। यह संघ चाहता है कि सरस्वती की अभ्यर्थना करनेवाले सभी लेखक परस्पर प्रेम-सूत्र में आबद्ध कर दिए जायँ। इन्हीं उद्देश्यों से प्रेरित हो इस संघ के सदस्यों ने राष्ट्रीयता के संकुचित दृष्टि-कोण का सर्वथा परित्याग कर दिया है। यह संघ यह भी अपना कर्तव्य समझता है कि जहाँ तक वश चले, संसार के राष्ट्रों में परस्पर आदर और प्रेम के भाव जाग्रत् किए जायँ, और यह चेष्टा की जाय कि युद्ध के आवेश में आकर

कोई भी राष्ट्र अपने शत्रु के कलाविदों की मनोहारिणी कृतियाँ विनष्ट न करने पावे।

साहित्य का नाता या संबंध ऐसा नहीं, जो सीमित समझा जा सके। प्रारंभ में साहित्यिकों की कृतियाँ भले ही देश-विशेष या राष्ट्र-विशेष के नाम से ख्याति पावें, परंतु आगे चलकर उनका रूप विशद और भव्य हो जाता है। सच्चे साहित्यिक की यही पहचान है कि वह देश और काल के संकुचित क्षेत्र से बहुत ऊँचा उठ जाता है। ऐसे शिल्पियों, कलाविदों की सुमधुर, सुंदर और शोभन कृतियों की आततायियों के हाथों से रक्षा करने के जितने भी उपाय सोचे जा सकें, सभी भावी संतति को हितकर प्रतीत होंगे। इँगलैंड के सुप्रसिद्ध कवि कीट्स का कथन है कि शोभन वस्तु द्वारा आनंद का अजस्र स्रोत प्रवाहित होता है, अतः प्रत्येक सभ्य व्यक्ति का यह ध्येय होना चाहिए कि वह सदा ऐसी चेष्टा करे, जिसके कारण संसार की शोभन कृतियाँ विनष्ट न होने पावें, और आनंद के अकृत्रिम स्रोत विलुप्त न हो जायँ। यह निर्विवाद है कि साहित्यिक कलाविदों की कोमल कृतियाँ अजस्र आनंद की जननी हैं, अतः लेखक-संघ का यह प्रयत्न करना कि युद्ध के समय कला-भवन, पुस्तकालय तथा अन्य कला-संबंधी वस्तुएँ नष्ट-भ्रष्ट न की जायँ, वास्तव में स्तुत्य है।

भारत में भी लेखकों की संख्या पर्याप्त है, परंतु यहाँ के लेखकों में अभी संगठन का भाव जाग्रत् नहीं हुआ है। यहाँ के लेखकों में अभी प्रादेशिकता का प्रभाव अधिक है, और परस्पर प्रेम की मात्रा नहीं के बराबर है। हिंदी के लेखकों में परस्पर जिस ईर्ष्या और मनोमालिन्य की रेखाएँ दिखाई देती हैं, उनका वर्णन न करना ही अच्छा है। इस पारस्परिक कलह को मिटाने का सबसे सरल और सुगम उपाय यह है कि विरोधी परस्पर एक दूसरे से मिलें, और एक दूसरे के दृष्टि-कोण को समझने की चेष्टा करें। इस प्रकार की पारस्परिक चेष्टा से दोनो व्यक्तियों का उपकार होता है, और वह बहुधा पारस्परिक वैमनस्य, प्रेम या श्रद्धा में परिणत हो साहित्यिक शत्रुओं को मित्र बनाने में समर्थ होता है।

किसी भी कार्य को यदि संगठित रूप से किया जाय, तो उसमें सिद्धि का होना अवश्यंभावी है। संगठित और सामूहिक रूप से कार्य करने के कारण भाषा की अनायास ही अभिवृद्धि होती है। इसी प्रकार सत्साहित्य की सृष्टि भी अबाधित रूप से होती जाती है। साहित्य की वृद्धि के लिये यह आवश्यक है कि समय-समय पर ऐसे साधन प्रस्तुत किए जायँ, जिनसे सभी लेखक लाभ उठाएँ, और साहित्य-भांडार की न्यूनताओं को दूर करने की चेष्टा करें। इँगलैंड के जिस लेखक-संघ की हमने ऊपर चर्चा की है, उसके अधिवेशन भी हुआ करते हैं, और साहित्य-संबंधी प्रश्नों पर परस्पर विचार-विनिमय भी होता है।

हिंदी-लेखक-संघ की आवश्यकता पर यहाँ विस्तार-पूर्वक न लिख हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि ऐसे संघ के स्थापित हो जाने से हिंदी-लेखकों का बड़ा उपकार होगा।

भारत में जिस लेखक-संघ की शाखा खुलनेवाली है, उसके सभी कार्यकर्ता संसार-प्रसिद्ध हैं, और हमें पूरी आशा है कि इस भारतीय शाखा का कार्य सुचारु रूप से परिचालित होगा। हम इस शाखा की उत्तरोत्तर उन्नति चाहते हैं, और हिंदी-प्रेमियों से अनुरोध करते हैं कि वे भी अपनी मातृ-भाषा की अभिवृद्धि के लिये संगठित रूप से कार्य करें। संगठन ही शक्ति है। जिस समय हमारे लेखक भली भाँति संगठित हो भाषा-भांडार की पूर्ति के लिये संलग्न हो जायँगे, उसी समय से हिंदी-साहित्य की दिन दूनी उन्नति होने लगेगी। साहित्यिक का चित्त उदार होना चाहिए। पारस्परिक गाली-गलौज से शुद्ध साहित्य की हत्या होती है। अतः हमारी लेखकों से विज्ञप्ति है कि वे साहित्य के विमल वातावरण को कलह की विष-पूर्ण वायु द्वारा दूषित न करें, वरन् सुंदर सत्साहित्य की रचना की ओर अधिक ध्यान

दें। घृणा से प्रेम में अधिक बल है, यह स्पष्ट ही है।

× × ×

७. लेडी वज़ीरहसन की अपील

हमारे देश में सांप्रदायिकता की जो भीषण अग्नि प्रज्वलित हो चुकी है, उसे बुझाना प्रत्येक देश-हितैषी का कर्तव्य है। हिंदू-मुसलिम-समस्या ने देश की उन्नति में जो बाधाएँ उपस्थित कर दी हैं, उनसे सभी परिचित हैं। दंगे-फ़िसादों से जो हानि भारत की हुई है, उसकी सहज ही पूर्ति होना कठिन है, अतः प्रत्येक नागरिक को चाहिए कि वह सांप्रदायिकता की विष-बेलि को पनपने और बढ़ने न दे।

हर्ष की बात है, पिछले दिनों कानपुर में यू० पी०-इत्तिहाद-कान्फ़्रेंस की पहली बैठक हुई है। कानपुर-जैसे सांप्रदायिकता-पूर्ण क्षेत्र में इत्तिहाद-कान्फ़्रेंस का होना बहुत बड़ी बात है। कानपुर के भीषण दंगे की स्मृतियाँ बड़ी ही दुःखद हैं। कानपुर के दंगे का ख़याल आते ही अमर शहीद मित्रवर गणेशजी के अद्वितीय बलिदान की बात बरबस याद आ जाती है। अस्तु। ऐसे नगर में पारस्परिक प्रेम और सांप्रदायिक शांति के लिये जो कुछ भी चेष्टाएँ की जायँ, कम हैं। दंगों से तंग आकर वहाँ के नागरिकों ने इत्तिहाद के लिये जो परिश्रम किया है, वह प्रशंसनीय है।

यह लिखते हमें बड़ा हर्ष हो रहा है कि इस यू० पी०-इत्तिहाद-कान्फ़्रेंस में स्त्रियों ने भी विशेष भाग लिया था। यह बात वास्तव में बड़े गौरव की है कि कान्फ़्रेंस में दी गई स्पीचों में सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण और प्रभावशाली भाषण लेडी वज़ीर-हसन का हुआ था। लेडी वज़ीरहसन भारत की उन देवियों में हैं, जो देश के हित-अनहित के प्रश्नों पर अपने विचार प्रकट ही नहीं करतीं, वरन् देश की दयनीय स्थिति में वास्तविक सुधार करने में प्रयत्नशील भी रहती हैं। स्त्रियों के लिये यह बड़े ही अभिमान का विषय है कि उन्होंने सांप्रदायिक दंगों में कभी भाग नहीं लिया, और सदा-सर्वदा इस हानिकर वृत्ति की निंदा की है। जनता की उद्दंड चेष्टाओं को रोकने में स्त्रियाँ—यदि चाहें, तो—बहुत कुछ कर सकती हैं। संतोष का विषय है कि भारतीय देवियों का ध्यान सांप्रदायिकता की ओर आकृष्ट हुआ है, और उन्होंने इस भयानक भूत के पंजे से देश को छुड़ा लेने की बात मन में ठान ली है।

लेडी वज़ीरहसन ने जिन ओजस्वी शब्दों में जनता के सामने अपने विचार रक्खे हैं, उनकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। हम श्रीमतीजी को हार्दिक बधाई देते और आशा करते हैं कि श्रीमतीजी का अनुकरण अन्य देवियाँ भी करेंगी। श्रीमती हसन ने यथार्थ ही कहा है कि यदि हिंदू-मुसलमान शपथ लेकर अपनी संतति को ऐसा पाठ पढ़ावें, जिससे वे समझें कि एक के ऐश्वर्य में दूसरे का भी ऐश्वर्य निहित है, और एक के नाश से दूसरे का भी नाश हो सकता है, तो सांप्रदायिकता का अंत ही हो जाय। आपका यह कहना भी सत्य है कि सभी हिंदू या सभी मुसलमान सांप्रदायिक झगड़ों से दूर नहीं। प्रत्येक संप्रदाय में सैकड़ों ऐसे अशिक्षित हैं, जो क्षण-मात्र में आवेश में आ जाते हैं, और जिनके कारण सदा झगड़ा हुआ करता है। श्रीमती वज़ीरहसन ने समाज के क्रोध-पूर्ण अंग से देश की रक्षा का जो उपाय बतलाया है, वह भी सुंदर है। आप कहती हैं कि शिक्षितों का यह कार्य होना चाहिए कि अपढ़ों में फैले हुए अविश्वास और झूठी भावनाओं को समूल नष्ट करने का प्रयत्न करें, और धर्म के नाम पर हिंसा के भाव फैलानेवालों की चेष्टाओं को फलीभूत न होने दें। आपका यह कथन भी कितना महत्त्व-पूर्ण है कि यदि मुसलमान हिंदुओं को चिढ़ाने की ग़रज़ से गो-हत्या करें, और यदि हिंदू मुसलमानों को छेड़ने के अभिप्राय से नमाज़ के वक़्त बाजा बजाएँ, तो दोनो को चाहिए कि एक दूसरे की इन बुरी वृत्तियों को

उपेक्षा की दृष्टि से देखें। सचमुच पारस्परिक प्रेम और शांति जो करिश्मे दिखा सकते हैं, वे और किसी तरह संभव नहीं।

श्रीमती वज़ीरहसन ने भारतीय देवियों से अपील की है कि वे सांप्रदायिकता के विषाक्त काँटे को निकालने के लिये प्राण-पण से चेष्टा करें। आपका विश्वास है कि जो समस्याएँ पुरुष नहीं सुलझा सकते, उन्हें स्त्रियाँ अनायास ही हल कर देती हैं।

लेडी वज़ीरहसन बड़ी ही सुयोग्य और सुसंस्कृत महिला हैं। दो-एक बार आपके दर्शन हमने अपनी माताजी के पास किए हैं। तब देश के प्रश्नों पर आपसे जो बातें हुईं, उनसे हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि आप सांप्रदायिकता से कोसों दूर हैं। लखनऊ-महिला-सभा की आप प्रधान हैं, अतएव आपने सर्वथा अपनी शिक्षा-दीक्षा और प्रतिष्ठा के अनुरूप ही भाषण दिया है। आपकी सांप्रदायिकता-नाशक यह अपील बड़ी ही सामयिक हुई है। हमें विश्वास है, श्रीमती के विचारों का भारतीय देवियों में ख़ूब प्रचार होगा। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि जिन सदिच्छाओं से प्रेरित हो लेडी वज़ीरहसन ने अपील की है, उनका घर-घर में आदर हो, और सांप्रदायिकता का रोग भारत से सदा के लिये बिदा हो जाय।

× × ×

८. बिक्री किस पुस्तक की होती है ?

कैसी पुस्तक सबसे अधिक बिकती है? जिसे भगवान् ने भविष्यवक्ता बनाया हो, वही इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है। ऐसा कौन प्रकाशक होगा, जो यह जानना पसंद न करे कि कौन-सी और किस प्रकार की पुस्तक अधिक बिकती है ?

साधारण पाठक पुस्तक को किस दृष्टि से देखते हैं? वे उसे किस तराज़ू पर तौलते हैं? किस कसौटी पर कसकर 'सु' और 'कु' की परीक्षा करते हैं? वे पुस्तक के किस गुण से किस प्रकार आकृष्ट होते हैं? ये सब प्रश्न ऐसे हैं, जिनका हम उत्तर नहीं दे सकते।

रस का परिपाक, कला, विषय, कथानक, चरित्र-चित्रण, प्रकाशन-योजना, विज्ञापन-कौशल, अथवा संयोग, इनमें से कौन-सा गुण ऐसा है, जो पुस्तक की बिक्री में सहायक होता है? आप शीघ्र कहेंगे कि निस्संदेह साहित्यिक योग्यता और कला ही एक ऐसी चीज़ है, जिससे पाठक आकृष्ट होते हैं; पर हम आपको बताते हैं कि बहुत-सी लोक-प्रिय पुस्तकें, जिन्हें अँगरेज़ी में बेस्ट सेलर्स कहते हैं, सच्चे अर्थ में श्रेष्ठ साहित्य में परिगणित होने योग्य नहीं होतीं। अथवा यह कहना चाहिए कि वे उतनी श्रेष्ठ नहीं होतीं, जितनी हम उनको समझ लेते हैं।

सच पूछो, तो साहित्य में लोक-प्रियता का कोई मूल्य नहीं। जिस पुस्तक की अधिक माँग होती है, यह कोई आवश्यक बात नहीं कि वह श्रेष्ठ भी हो। बल्कि उपन्यासों के संबंध में तो यह देखने में आता है कि जो ग्रंथ जितना अधिक बिके, समझना चाहिए कि वह उतना ही अधिक अंतःसार-शून्य भी है। इसमें अपवाद ज़रूर है। शरद् और रवींद्र जितने अधिक पढ़े जाते हैं, उससे कहीं अधिक वे श्रेष्ठ हैं। इस दृष्टांत में ही हमारे वक्तव्य की सत्यता छिपी है। सर्व-साधारण श्रेष्ठ रचना को प्रायः जल्द ग्रहण नहीं कर पाते। निम्न श्रेणी की रचना उनके मन को शीघ्र वशीभूत करती है। अँगरेज़ी और हिंदी में भी इसके अनेक उदाहरण हैं। अँगरेज़ी के तीन-चार अत्यंत लोक-प्रिय उपन्यास हैं—If winter comes, All Quiet on the Western Front, Simon called Peter और Beau Geste. इनमें से पहले तीन हमने पढ़े हैं। ये सभी साधारण कोटि के उपन्यास हैं, और अँगरेज़ी के समालोचक भी इनको श्रेष्ठ साहित्य में स्थान देने को तैयार नहीं। परंतु इनकी लाखों कापियाँ योरप और अमेरिका में बिकी हैं। अतएव जहाँ तक लोक-प्रिय उपन्यासों का संबंध है, हम कह सकते हैं कि

साहित्यिक दृष्टि से वे प्रायः निम्न श्रेणी के होते हैं।

तब कारण क्या है कि एक पुस्तक का पहला संस्करण तो हाथों-हाथ बिक जाता है, और दूसरा प्रकाशक की दूकान अथवा मकान ख़ाली करने को वर्षों तक नाम नहीं लेता ?

All Quiet on the Western Front का उदाहरण लीजिए। प्रेस में जाने के पहले ही शायद लोगों ने अनुमान कर लिया था कि इसकी लाखों प्रतियाँ बिकेंगी। बात यह हुई कि यह मौके की चीज़ थी। समयानुकूल थी। योरप के महाभारत की स्मृति जनता के मन में ताज़ी थी। युद्ध की भयंकरता से समाज त्रस्त हो उठा था, और उसकी बीभत्सता से वह काँप रहा था। उसी समय युद्ध की भीषणता की ज़मीन पर एक लेखक ने एक चित्र-पट तैयार किया—एक दृष्टि से बहुत ही भीषण, बहुत ही रोमांचकर, परंतु कला से नितांत शून्य और कोरा। तो भी पुस्तक छपने की देर थी कि हाथों-हाथ बिक गई, और साल-भर में उसकी लाखों कापियाँ निकल गईं। प्रकाशकों ने लाखों के वारे-न्यारे किए।

यदि यह पुस्तक युद्ध के पहले प्रकाशित होती, तो, हमारा विश्वास है, इसकी इतनी बिक्री कदापि न हुई होती।

हम समझते हैं, ग्रंथ के लोक-प्रिय होने का यही रहस्य है। कम-से-कम आधुनिक युग में तो यही सत्य है। समयानुकूल और जनता की रुचि को 'अपील' करनेवाली पुस्तक ही अधिक बिकती है। कुछ थोड़े ही ग्रंथ ऐसे होते हैं, जो मानव-हृदय की तंत्रियों में सच्ची झंकार पैदा करते हैं। परंतु यह क्रिया सहसा और शीघ्र नहीं होती। अर्थात् कई पीढ़ियों तक धीरे-धीरे वे जनता के मन पर अपना अधिकार जमाते हैं, जिसका अर्थ यह है कि ऐसे ग्रंथ ही शताब्दियों तक जीवित रहते हैं, और श्रेष्ठ साहित्य की कोटि में स्थान पाते हैं।

× × ×

६. द्विवेदी-अभिनंदन-ग्रंथ

पूज्यपाद, आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी की ७०वीं वर्ष-गाँठ के अवसर पर, मई के प्रथम सप्ताह में, काशी और प्रयाग में, जो बृहत् समारोह हुए, वे हिंदी-साहित्य के इतिहास की चिर-उज्ज्वल घटनाएँ हैं। आचार्य के साथ मई के ये ६-७ दिन भी अमर हो गए हैं। "पंडितजी हमारे साहित्य-क्षेत्र के उदयादित्य हैं।" जायसवालजी के इस एक श्रद्धा-पूर्ण वाक्य में द्विवेदीजी का महान् वैभव, सूर्य की भाँति, दीप्तिमान हो रहा है। ऐसे पुरुष का यदि हमने सम्मान किया, तो उससे आज हमारी ही सम्मान-वृद्धि हुई है ; उसका यदि हमने बड़ी धूमधाम से अभिनंदन किया, तो उससे हमें ही गौरव मिला है। काशी में जो अभिनंदनोत्सव हुआ, वहाँ नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से द्विवेदीजी महाराज को एक सुंदर ग्रंथ भेंट किया गया। यह कार्य महाराज ओरछा के हाथों संपन्न करवाया गया। यह यथोचित हुआ, क्योंकि योग्य को ही योग्य के सम्मान का अधिकार है।

अभिनंदन-ग्रंथ एक सुंदर और विशाल ग्रंथ है। हिंदी के प्रायः सभी प्रख्यात लेखकों की रचनाएँ इसमें सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रांतों तथा भाषाओं के विद्वानों की कृतियाँ भी इसमें मौजूद हैं। चित्रों का तो पूछना ही क्या ? ऐसे सुंदर और विविध भाव-पूर्ण चित्र एक स्थान पर हमने बहुत कम देखे हैं। कुछ चित्र तो बहुत ही कला-पूर्ण हैं। यहाँ उनकी चर्चा के लिये स्थान नहीं। और, फिर चित्र तो देखने की वस्तु हैं। फिर भी इतना कह देना आवश्यक है कि सर्वश्रीनंदलाल बोस, निकोलस रोरिक, गगनेंद्रनाथ ठाकुर, शैलेंद्रनाथ, वेंकट अप्पा, रविशंकर रावल, चग़ताई, रामप्रसाद, रसिकलाल पारिख, मनीषिदे आदि जैसे प्रख्यात और कुशल चित्रकारों की भावमयी कृतियों से यह ग्रंथ समुज्ज्वल बना है।

ग्रंथ इतना विशाल है कि अभी हम उसके पन्ने-

भर उलट पाए हैं। सब लेख तो तीन-चार महीने में पढ़ पाएँगे। उस समय शायद उन पर हम अपनी सम्मति भी दे सकें। अभी तो हम इतना ही कहना चाहते हैं कि ग्रंथ की विशालकायता को यदि आधा नहीं, तो कम-से-कम एक चौथाई कम कर दिया जाता, तो हमारी सम्मति में अन्य भाषाओं के विद्वानों की दृष्टि में इसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता।

देश और विदेश के अनेक विद्वानों की श्रद्धांजलि के बीच में नारवे के प्रख्यात लेखक नूट हामजून का संदेश हमें न-जाने क्यों कुछ विदेशी-सा लगा।

ग्रंथ में जहाँ अनेक विद्वान् लेखकों और कवियों की श्रेष्ठ रचनाएँ सम्मिलित हैं, वहाँ कहानी अथवा एकाध छोटे एकांकी नाटक का अभाव अखरता है।

ग्रंथ की सजावट अतीव सुंदर है। उसके प्रत्येक पन्ने में मित्र राय कृष्णदासजी की सुरुचि-संपन्नता और कला-प्रियता की छाप मौजूद है। अजंता, बाघ, मर्हेजोदारो और फ़ारसी चित्रों के अनेकानेक सुंदर 'डिज़ाइनों' से यह ग्रंथ समलंकृत है। मुग़ल और पहाड़ी शैली के दो चित्र ग्रंथ में सम्मिलित हैं। वे उनके ही कला-भवन की चीज़ें हैं, और अन्यत्र अब तक अप्रकाशित हैं। यह ग्रंथ उनके ही भगीरथ-प्रयत्न और परिश्रम का फल है। एतदर्थ वह हमारे निकट धन्यवाद के पात्र हैं।

ग्रंथ को ऐसे सुंदर रूप में छाप देने के लिये इंडियन प्रेस के स्वामी भी सर्वोपरि धन्यवाद के योग्य हैं। यह ग्रंथ उन्होंने बिना मूल्य छापा है।

प्रत्येक सार्वजनिक पुस्तकालय और संपन्न व्यक्तियों की प्रत्येक निजी लाइब्रेरी में इस दुर्लभ ग्रंथ का रहना आवश्यक है।

क्या देश के और विशेषकर हिंदी के प्रतिष्ठित पत्रकारों के पास भी यह ग्रंथ भेजा गया है? हमने अभी तक कहीं भी इसकी समालोचना नहीं देखी! हमें भी यह अपने एक मित्र की कृपा से देखने को मिला।

× × ×

१०. बेकारों की सहायता

व्यवसाय-धंधे मिट्टी में मिले जा रहे हैं। दूकानदार दिन-भर मक्खियाँ मारते रहते हैं। वकील-डॉक्टर अपनी क़िस्मत को रोते रहते हैं। जिसे देखिए, वही दुखी नज़र आता है, परेशान-हाल दिखलाई पड़ता है। मिलों में ताले पड़े हैं, हज़ारों मज़दूर बेकार घूम रहे हैं, उनके खाने-पीने का भी ठिकाना नहीं, उनके पेटों पर नौबतें बज रही हैं—उनके जीवन के लाले पड़ रहे हैं।

ग़रीबों का भगवान् सहायक है! ग़रीबों का अंतरराष्ट्रीय मज़दूर-संघ सहायक है! संघ ने निश्चय किया है कि जिनेवा में होनेवाली ८ जून की बैठक में वह मज़दूरों की दयनीय अवस्था पर ग़ौर करेगा, तथा उनकी अवस्था सुधारने के लिये उनकी मिहनत के घंटे ६० घंटे प्रति सप्ताह से घटाकर ४० घंटे प्रति सप्ताह कर देगा। अंतरराष्ट्रीय मज़दूर-संघ एक शक्तिशाली संस्था है—उसकी हर बात में कुछ तत्त्व होता है। संघ अपनी यह नवीन व्यवस्था संसार-भर के राष्ट्रों के गले बाँधेगा—कैसे बाँधेगा, यह समय बताएगा।

इस व्यवस्था से बहुत-से बेकारों की रोज़ी लग जायगी—बहुत-से भूखों का पेट भर जायगा। परंतु पूँजीपतियों के लिये क़यामत बरपा हो जायगी। हमारे देश में मज़दूरों और मिल-मालिकों में नित्य ही द्वंद्व-युद्ध हुआ करता है। मिल-मालिक मज़दूरों की मज़दूरी कम करने की नोटिसें दे रहे हैं। भला ऐसी अवस्था में वे संघ की इस नवीन व्यवस्था को स्वीकार कर लेंगे? उनकी छाती फट जायगी—वेतन उतना ही और काम ६० घंटे प्रति सप्ताह के बजाय केवल ४० घंटे! वे सुनेंगे, और उनके जूड़ी चढ़ आवेगी। संभव है, संघ के बहाने से वे मेहनत के घंटों में कमी कर दें, परंतु वे साथ-ही-साथ मज़दूरी भी कम कर देंगे। यदि मज़दूरी में कमी नहीं हुई, और काम करने के घंटे कम कर दिए गए, तो मिल-मालिकों का बोझ अवश्य ही बढ़ जायगा, और

इसका यह प्रभाव होगा कि महँगी मज़दूरी उत्पत्ति पर लागत भी बढ़ा देगी। वस्तुएँ महँगी हो जायँगी। फिर जब भारत में अर्थ-संकट पैर जमाए हुए है, और इस सस्ती में भी लोग अच्छी तरह नहीं खा-पहन सकते हैं, तो महँगी में व्यवसाय की किस प्रकार उन्नति हो सकेगी, यह एक सोचने की बात है। उत्पत्ति-व्यय के बढ़ जाने से, संभव है, बहुत-से मिल-मालिक अपना यह क्षेत्र छोड़ दें। फिर यह एक दूसरी बेकारी खड़ी होगी या नहीं?

लेकिन मज़दूरी कम करने की बात सुनकर कैसी भयंकर अशांति फैलेगी, इसकी कल्पना करना कठिन है। जो अपनी मज़दूरी से अपने बाल-बच्चों का पालन-पोषण तक करने में असमर्थ हैं, क्या वे मज़दूर अपनी मज़दूरी में से एक पाई भी काटने देंगे? वे आत्महत्या कर लेंगे। भूखों—कुत्तों की मौत मरना कदापि न पसंद करेंगे।

हमें मज़दूरों से सहानुभूति है—हम उनका दुःख अपना दुःख समझते हैं—हम उनका दर्द अपना दर्द समझते हैं। अतंरराष्ट्रीय मज़दूर-संघ की कोई भी व्यवस्था, जिससे मज़दूरों का फ़ायदा है, हमें सहर्ष स्वीकार है। लेकिन इसके साथ ही हमें यहाँ के व्यवसाय पर भी ध्यान देना होगा।

× × ×

११. भाग्य-हीन अलवरेंद्र

विलायत की शानदार यात्राओं में जो राजे अपने हीरे-मोती की भड़क दिखाकर वहाँवालों के सामने अपने बड़प्पन, वैभव और शाहख़र्ची का प्रदर्शन करते हैं, उनकी प्रतापी ग्रेट ब्रिटेन के सामने कितनी हीन दशा हो गई है, इसके अनेक प्रमाण मिल चुके हैं। हाल ही में नया प्रमाण अलवर-दर्बार का निष्कासन है।

धीरे-धीरे लाख तरह से यह बात हम समझते जा रहे हैं कि वास्तव में भारतीय राजों और ब्रिटिश सरकार के बीच जो मैत्री थी, पुरानी संधियाँ थीं, उनके अब बदलने का समय आ गया है। मालूम पड़ता है, अब आगे ये बेचारे राजे-महाराजे और ब्रिटिश सरकार, मित्र की भाँति नहीं, प्रजा और राजा की भाँति रहेंगे।

क़ानूनी दाँव-पेंच ब्रिटेन का सबसे भारी हथियार है। वह जिस राजा को उसके बाप-दादों के राज्य से निकालना चाहती है, उसे उसी क़ानून के शिकंजे में गिरफ़्तार कर लेती है। इस बार भी उसने महाराज अलवर को जाँच कराने या गद्दी त्यागने को ललकारा, और निरुपाय हो उन्होंने जाँच का अभियुक्त बनने की अपेक्षा अपना घर छोड़ देने ही में भलाई समझी। ये राजा लोग पूरे दूध-धोए हैं, ऐसा तो हम नहीं समझते, न कहते हैं, परंतु हमारा यह भी कहना है कि राज-सत्ता चीज़ ही ऐसी है कि किसी राजा की जाँच नहीं की जा सकती। उसे बहुत-से छल, पाखंड और ऐसे कार्य करने पड़ते हैं, जो नीति-युक्त नहीं कहे जा सकते।

अलवर-महाराज का ऐसा कोई भी अपराध प्रकाश में नहीं आया कि उन्हें अपने बाप-दादों की उपार्जित गद्दी को अनिच्छा से त्यागना पड़े। उनका एक अपराध तो शायद यह है कि वे मेवों का उपद्रव शांत न कर सके। पर क्या ब्रिटिश भारत में आए दिन उपद्रव नहीं होते? दूसरी बात शायद महाराज की फ़िज़ूल-ख़र्ची है, जिससे ख़ज़ाना ख़ाली हो रहा है। यह फ़िज़ूल-ख़र्ची भी हमारी तुच्छ राय में सरकार की ही सिखाई हुई प्रतीत होती है। उदाहरण के लिये हम साधारण बात कहते हैं। वायसराय जब किसी देशी राज्य में जाते हैं, तब २-४ दिनों ही में कितना ख़र्च करना पड़ता है! हम समझते हैं, वायसराय साहब इसे कभी फ़िज़ूल-ख़र्ची नहीं समझते और न कभी इसका विरोध करते हैं।

यह तो हम स्वीकार करेंगे ही कि देशी राजे बहुत गिर गए हैं, और उन्हें अभी बहुत कुछ सहने और देखने के दिन आ रहे हैं। यहाँ हम सिवा इसके और कुछ नहीं कहना चाहते कि ये सब अब भी चेतें, तो अच्छा है। वे अपनी असली स्थिति जानें,

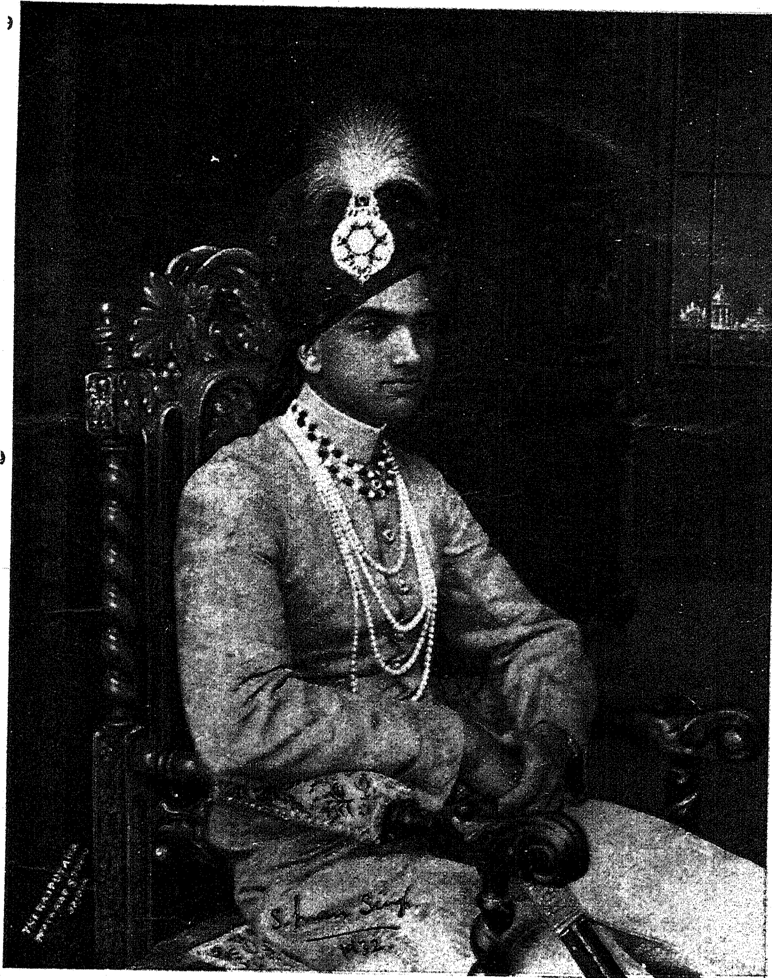
अपने दोष दूर करें, फ़िज़ूलखर्च से हाथ रोकें, और अपने राजकाज में मन लगावें। विलायत की सैर पर लानत भेजें। जिस झूठे गर्व में वे फँसे हैं, उसे भूल जायँ, और राष्ट्र के सच्चे अंग बनें—अपने देश, अपनी जाति और अपनी भाषा की उन्नति में तन-मन-धन से लगें।

× × ×

१२. धूम्र-पान

इस नाम से एक कहानी अन्यत्र छपी है। इस फ़ार्म के छपते-छपते हमें लेखक से पूछने पर सूचना मिली है कि वह अँगरेज़ी के लेखक श्रीयुत पी० जी० वुडहाउस की लिखी "The man who gave up smoking" नामक कहानी का अनुवाद है। पहले वह लिखना भूल गए थे।





हिज़ हाइनेस् महाराजाधिराज
हिज़ हाइनेस सर आमदे राजहाय हिंदुस्थान राजराजेंद्र महाराजाधिराज
(वर्तमान जयपुर-नरेश)

Ganga Fine Art Press, Lucknow.



सिंधु मथैं सुर ही लही नैंकु जु सतजुग माँहि,
सहज सुलभ सोई सुधा सबै समै सब काँहि।

वर्ष ६ खंड २	आषाढ़, ३१० तुलसी-संवत् (१९९० वि०)— जुलाई, १९३३	संख्या ६ पूर्ण संख्या ७२

पति-परायणा

[महाकवि श्रीपं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध']

(चौपदे)

मैंने फूलों को देखा,
वे थे बन ललित विलसते;
थी उन पर छटा निराली,
वे मंद-मंद थे हँसते ॥ १ ॥

थी उनकी रंगत प्यारी,
वे बहु प्रफुल्ल दिखलाए;
थे विपुल विमुग्ध बनाते
मोहक विभूतियाँ पाए ॥२॥

पर उन पर नहीं विलोका
वह तेज-पुंज भव-पाता,
जो दिव्य तुम्हारा मुखड़ा
लोकोपकार कर पाता ॥३॥

राका-मयंक है मंजुल—
कोमलतम कांति-विधाता ;
वह बिहँस-बिहँसकर बहुधा
है सरस सुधा बरसाता ॥४॥

उसकी कमनीय कलाएँ
किसको हैं नहीं लुभाती ;
किसके मानस में रस की
लहरें हैं नहीं उठाती ? ५॥

पर कांत तुम्हारा आनन
जब है आलोकित होता,
जिस काल कांति से अपनी
मानस का तम है खोता ॥६॥

उस काल मुग्ध कर मन को
जो छवि उस पर छा जाती,
रजनी - रंजन में कब है
वैसी रंजनता आती ? ७॥

विधु, है सकलंक दिखाता,
मुख है अकलंक तुम्हारा ;
फिर कैसे वह बन पाता
मेरे प्राणों का प्यारा ? ८॥

कितने कमलों को देखा ,
नभ के तारे अवलोके ;
दिनमणि पर आँखें डालीं
मैंने परमाकुल होके ॥ ९ ॥

पर नहीं किसी में मुख-सी
महनीय कांति दिखलाई ;
कमनीयतमों में भी तो
मैंने कम कमी न पाई ॥१०॥

कैसे जुग फूटा मेरा ?
प्रतिकूल पड़े क्यों पासे ?
प्रियतम, क्यों वदन विलोकें
दृग रूप-सुधा के प्यासे ॥११॥

प्रेमिका-परिचय

[श्रीयुत पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला']

(१)



बाबू प्रेमकुमार कैनिंग कॉलेज, लखनऊ में बी० ए०-क्लास के विद्यार्थी हैं। मेस्टन होस्टल में रहते हैं। इस समय लखनऊ की बादशाहत अँगरेज़ी हुकूमत में बदल गई है, पर उन्हें बादशाह-बाग़ की ही हवा लग रही है। चमन, बहार, गुल और बुलबुल के परिस्तान में पैर रखते, सैर करते हैं। उर्दू-शायरी का अज़हद शौक़, इश्क़ का नाज़ उठाते हुए चलते, पलकों पर एक सदी पहले का स्वप्न। उर्दू के ख़ुद भी कुछ अशआर लिखे हैं, कभी-कभी हौज़ की बग़ल में बैठकर पढ़ते हैं। होस्टल के मुशायरों में सबसे ज़्यादा चंदा देते, हिंदी के ज्ञान में अक्षर-परिचय-भर, पत्रिका में शेर खोज-खोजकर पढ़ते हैं। तारीफ़ उसी पत्रिका की करते हैं, जो हिंदी-अक्षरों में उर्दू के शेर छापती है। मीर, ग़ालिब, ज़ौक़ आदि के दीवान-के-दीवान बरज़बान याद, दाग़ को उस्ताद मानते हैं। होस्टल के छात्र उन्हें नव्वाब साहब कहते हैं। यों वहाँ दो-एक को छोड़कर सभी नव्वाब हैं, पर एक दर्जे में पाँच साल फ़ेल होकर शिकस्त न खानेवाले बाबू प्रेमकुमार इज़्ज़त की सल्तनत में बढ़ गए हैं। घर के अमीर हैं, कहते हैं, तहज़ीब सीखने के लिये लखनऊ आए थे, चौक इसी मतलब से जाया करते हैं, इसीलिये किताबों को तलाक़ दे दिया है। सर में ऐंगल-कट इँगलिश-फ़ैशन बाल, पैरों में बूट, आज के यही दो चिह्न; बाक़ी अचकन, पाजामा, टोपी, चाल-ढाल और गुलाबी उर्दू हिंदोस्तानी एकेडेमी की नेशनल ड्रेस और लिंगुआ-इंडिका से चस्पाँ होती हुई। अँगरेज़ी बंदरगाहों से दोस्तों को नव्वाबी गुलिस्तानों में लाकर छोड़ते और हर तरह हवा खिलाकर क़ुबूल करा लेते हैं कि सिवा नव्वाबी सभ्यता के चिकारे के विश्व-सभ्यता का कोई भी बाजा मनुष्य के गले से हूबहू नहीं मिल सकता, अँगरेज़ी कार्नेट तो गधे की धुधकार है। ऐसे गुणों से बाबू प्रेमकुमार छात्रों की आँख-आँख पर रहते, गले-गले से फिरते हैं। ख़ास बात यह कि क्लास की छात्राओं से, निषेध की ऊँची चारदीवार छायावादी ढंग से अनायास पार कर, प्रायः मौनालाप किया करते हैं, लिहाज़ा विद्यार्थी प्रतिक्षण इनकी तरफ़ देखने से विरत नहीं होते। छात्राओं की निश्चल मौन दृष्टि में छात्रगण अनेक प्रकार की चपलता सोच लेते हैं, और ख़ुद-ब-ख़ुद बातचीत के कच्चे सूत से बाबू प्रेमकुमार को मज़बूत बाँध देते हैं।

होस्टल में प्रेमकुमार की बग़ल में शंकर का रूम है। शंकर ब्राह्मण का लड़का है, अँगरेज़ी पढ़ता हुआ भी पीढ़ियों के संस्कारों की पूरी रक्षा करनेवाला। साबुन और सुरती का कारख़ाना खोलकर पिता ने कई लाख रुपए पैदा किए हैं। पुत्र को धर्म-रक्षा के साथ अँगरेज़ी शिक्षा प्राप्त करने को लखनऊ भेजा है। सुयोग्य पुत्र पिता की ही तरह धर्म की रक्षा में जितना पटु, ख़र्च में उतना ही कटु है। पीछे पूँछ-सी मोटी चोटी, कई पेंच के बाद बाँधने में एक कौशल, खोलने पर बाल बल खाते हुए। कहता है, इलेक्ट्रिसिटी शरीर में प्रिज़र्व करने का सबसे पहले यह आर्यों का निकाला हुआ तरीक़ा है। एक समय वह प्रेमकुमार के साथ था। अब दो साल आगे, फ़ाइनल एम्० ए० में है। तीन साल से बाबू प्रेमकुमार इसे अपने रास्ते पर सभ्य करने का परिश्रम कर रहे हैं, पर यह अब तक सूरदास की काली काँवर सिद्ध हो रहा है। जिस प्रकार बाबू प्रेमकुमार मुसलमान-सभ्यता के ऊँचे फाटक से आदमियों के साथ

जानवरों को निकालते रहते हैं, उसी प्रकार शंकर आर्य-सभ्यता के संकीर्ण दरवाज़े के भीतर ब्राह्मणों के सिवा दूसरी जाति को नहीं पैठने देता।

इसी विरोधी गुण के कारण प्रेमकुमार प्रायः उससे अपने प्रेम की बातें कहा करते हैं। मतलब, कब उसे पिघलाकर अपने रास्ते बहा ले जायँ। मौसिम बदलने तक प्रेमकुमार की दो-तीन रंगीन प्रेम की घटनाएँ बदल चुकती हैं, तब तक वह बराबर अपना मालकोस गाकर शंकर की शिला में बैजूबावरे के हाथ के मंजीरे छोड़ना चाहते हैं। नैसर्गिक प्रकृति से प्रेमकुमार की भौतिक प्रकृति-चर्चा में शंकर को अधिक रस मिलने लगा, क्योंकि यह और भी शीघ्र बदलनेवाली, और भी आकर्षक, मनुष्य के स्वभाव के और भी निकट है, पर उसकी ओर चलने की शंकर को हिम्मत नहीं होती, क्योंकि धर्म-भीरुता ने उसे वास्तव में भीरु बना दिया है। जब प्रेमकुमार सुनाते हैं—"आज मिस 'सी' ने सिकंदर-बाग़ में बुलाया था। क्या करूँ, किसी का न्यौता टाल तो सकता नहीं, जाना पड़ा, भई, जान देती हैं। पूछने लगीं, कहो, तुम हमेशा के लिये हमारे हो? कहना पड़ा। अब ऐसा प्यार ठुकराया तो जाता नहीं। फिर क्या कहूँ कि क्या-क्या बातें हुईं। वहाँ से हम लोग कार्लटन होटल गए; खाया-पिया, मौज से बारह बजे तक रहे।" सुनकर शंकर चलते मूसल से ऊखल की दशा को प्राप्त होता है, तत्काल वासना वशीभूत कर लेती है। पर पिता की बात, जात जाने का भय हृत्कंप पैदा कर बढ़ने से रोक लेते हैं। जब तक वह अपनी बिगड़ी दशा को राम-नाम जपकर सुधारता है, तब तक बाबू प्रेमकुमार अपनी दूसरी घटना उसके सर पटक देते हैं—"कल मिस लीलावती का पत्र मिला था। लखनऊ में उससे ख़ूबसूरत कोई नहीं, यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ। क्या ग़ज़ब की आँखें हैं! देखती क्या है, पार कर जाती है। रात आठ बजे विक्टोरिया-पार्क में मिलने के लिये बुलाया था। देखो, यह सब इस चेहरे की करामात है। दुनिया में कामयाबी हासिल करना चाहते हो, तो पहले चेहरा सुधारो। मैं कहता हूँ, तुम जैसे मनहूस, मुहर्रमी सूरत बनाए फिरते हो, तुम्हारी बीबी भी तुम्हें नहीं प्यार कर सकती। यह चेहरा ही प्यार करनेवाला नहीं। हाँ, फिर लीलावती से बड़ी दूर तक मंज़िल तय हुई।" शंकर की नसों का ख़ून फिर तेज़ बह चलता है। बेचारा पलकें दबाकर, रीढ़ सीधी कर सँभलता और दस-पाँच दिन बिगड़े हुए मन को सुधारता है, तब तक एक फिर नई ख़बर आ पहुँचती है। इसी तरह उसने तीन साल पार किए। पतिव्रता स्त्रियों के तीसरे कोठे से चौथे तक उतरने की कभी उसे हिम्मत नहीं हुई। सिर्फ़ एक दफ़ा आज़मायश की थी।

प्रेमकुमार धीरे-धीरे प्रेमिका-परिचय में सूक्ष्म से स्थूल होने लगे। पहले केवल अपने व्याख्यान के प्रभाव से खींचने के उद्योग में थे, अब अपने नैसर्गिक सुख के लिखे प्रमाण भी पेश करने लगे।

शंकर उनसे सुन चुका था, किस तरह कुमारियों तथा महिलाओं से आँखें मिलाकर बातचीत की जाती है; आवाज़ कहाँ तक शिष्ट और अलफ़ाज़ कैसे-कैसे, कौन-कौन-से ख़ास तौर से प्रयोग में आते हैं। एक रोज़ एकांत में अपने ही क्लास की एक छात्रा से आज़मायश के लिये उतरकर बुरी तरह फ़ेल हुआ। उसके एक संबोधन-मात्र से जो आग उसकी आँख से निकली, फिर रस्टिकेटेड होने के डर से उसने किसी मिस की तरफ़ आँख नहीं उठाई।

(२)

आज एक पत्र लेकर फड़कते हुए प्रेमकुमार शंकर से मिले, और लिफ़ाफ़ा-सहित शंकर के पास बिस्तरे पर फेककर कहा—"देखो, क्या लिखा है!" शंकर उठाकर पढ़ने लगा। अँगरेज़ी में पत्र यों लिखा है—

मेरे प्रिय प्रेमकुमार,

आज कितने दिनों से कॉलेज जाती हूँ,

तो एक बार तुम्हें अवश्य देखती हूँ। नहीं देखती, तो दिल की आग नहीं बुझती। पर तुम, तुम कितने कठोर हो, मेरी तरफ़ भूलकर भी नहीं देखते! ईश्वर ने तुम्हें यह रूप मुझे जलाने के लिये दिया था। जो चीज़ अपनी नहीं, मैं उसे चाहती हूँ। तुम हँसोगे। न हँसो, यह मेरे भाग्य होंगे। पर क्या मैं आशा करूँ कि मुझे जलानेवाली आग तुम मुझे दोगे? ज़रूर दो, ज़रूर दो, प्यारे, मैं कुछ भी तुमसे इस नश्वर संसार में नहीं चाहती, सिर्फ़ वही आग, वही जलती हुई मुझे जलानेवाली अपने रूप की आग एक बार मुझे दे दो, और देखो, मैं तुम्हारे सामने ही किस तरह जलकर राख हो जाती हूँ। प्यारे, अब यह हाथ जवाब दे रहा है, आँसुओं का तार बँध रहा है, क्या लिखूँ? क्या एक बार, बस एक बार के तुम मेरे प्यासे दृगों को तृप्त करने के लिये कल शाम बनारसी-बाग़ में मुझे मिलोगे? तुम्हारा हमेशा, हमेशा के लिये दिल से आभार मानूँगी—ओफ़्!

९, हिवेट रोड लखनऊ ३-४-३२	तुम्हें न मिल सकनेवाली तुम्हारी शांति

पत्र को बड़े ग़ौर से शंकर ने कई बार साद्यंत पढ़कर कहा—"भई, है तो यह किसी सच्चे दिल की पुकार!"

"है न?" गर्व-पूर्वक प्रेमकुमार ने सर उठाकर कहा—"तुमसे मैं कई बार कह चुका कि और कुछ नहीं, तो ज़रा अपना चेहरा ही भले आदमी की तरह सुधार लो, पर तुम पूरे गँवार ही रहे।"

"लेकिन कहाँ इसने तुम्हें देखा होगा? मुझे कभी-कभी बड़ा तअज्जुब-सा लगता है!"

"कहाँ देखा होगा! मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ, वहीं-वहीं से कहीं देखा होगा, फिर कुछ दूर चलकर, ख़ुद ताँगे से उतरकर ताँगेवाले को पता पूछ आने के लिये कह दिया होगा।"

"अच्छा! ऐसा भी होता है?"

"और क्या। लखनऊ है। फिर जब दिल की लगती है, तब दिल के ख़ुदा रास्ता भी बंदे को बतला देते हैं। मुमकिन, दूसरी तरह पता लगाया हो। किसी गर्ल्स-कॉलेज की लड़की जान पड़ती है। कॉलेज की लड़कियों में मेरी पहचान भी काफ़ी है।"

"लेकिन हरएक तुम्हीं से स्वयंवरा होती है!"

"मुझसे नहीं, देखो, इधर देखो, इस रूप से होती है, यह शाही शान लखनऊ में दूसरी जगह न पाओगे।"

बाबू प्रेमकुमार की तरफ़ एक बार देखकर शंकर ख़ूब प्रसन्न होकर हँसा। प्रेमकुमार कायस्थ हैं। बाल और चेहरे के रंग में बहुत थोड़ा-सा फ़र्क़ है। तेल, साबुन, पाउडर और सेफ़्टी रेज़र की दैनिक रगड़ से मुँह का तो मैल छुट गया है, पर चमड़े का स्याह रंग वार्निशशुदा बूट की तरह और चमकीला हो गया है। काले रंग पर पाउडर की सफ़ेदी देखनेवालों की आँखों में ग़ज़ब ढाती है।

"तुम हँसते क्यों हो?" नाराज़ होकर प्रेमकुमार ने पूछा।

"इसलिये कि तुम जो कुछ कह रहे हो, इसमें कहीं तिल रखने की जगह नहीं। तो क्या जाओगे ही?"

"जाना मेरा फ़र्ज़ है। प्यारवाले कलेजे मोम से भी मुलायम होते हैं, ज़रा-सी आँच नहीं सह सकते, पिघलकर ख़त्म हो जाते हैं। तुम्हें इसका कुछ पता तो है ही नहीं।"

"कहते तो ठीक हो। मुझे तो कहीं से ऐसा न्योता आ जाय, तो पहले तो जाने की हिम्मत न हो, अगर जी कड़ा करके जाऊँ भी, तो मिलने के वक़्त भगवान् जाने क्या हो। सरस्वतीदेवी शायद ही जीभ तक पहुँच सकें।"

प्रेमकुमार हँसने लगे। बोले—"Face is the index of mind (चेहरा मन का सूचीपत्र है)। तुम्हें कहीं से न्योता मिल भी नहीं सकता। तुम ज़रा यह ब्राह्मणों की पोंगापंथी छोड़ो, तो कुछ

दिनों में तुम्हें आदमियों से मिलने लायक़ बना दूँ।"

(२)

शाम को बनारसी-बाग़ में, एक तरफ़ ताँगा खड़ा कर, हिरन, गैंडा, चीते, शेर, चिड़ियाँ, शुतुरमुर्ग़, कँगारू, बाघ, भालू, भेड़िए, गधा और जेब्रा आदि के घेरे-घेरे, पिंजड़े-पिंजड़े प्रेमकुमार चक्कर मारते रहे। प्रिया को वह ख़ुद पहचाननेवाले नहीं, प्रिया द्वारा पहचाने जानेवाले हैं, इसलिये जो भी हसीन, नवीन साड़ी में लिपटी, लपट-सी उठती, उनकी तरफ़ आती हुई देख पड़ती है, पूरे ताव से दो-एक क़दम उसकी तरफ़ बढ़ जाते हैं। बस, उसके साथ की सखी या आदमियों की आलोचना पहुँचती है—"कैसा अहमक़ है, अंधा कहीं का।" बस, पैर रुक जाते, आशा दूसरी तरफ़ फेर देती है। पूरे चार घंटे तक बाग़ में चक्कर लगाते रहे। दो-तीन बार ताँगेवाला आ-आकर, पूछकर लौट गया। जहाँ कहीं बैठी महिलाएँ बातचीत करती हुई देख पड़ीं, यह देर तक उनके चारो तरफ़ कावे लगाते रहे। धीरे-धीरे बाग़ निर्जन हो गया। यह फिर भी बारहदरी के चारो ओर टहलते रहे। शांति न मिली। शांति खोकर शिथिल-देह ताँगे पर आकर बैठे, और होस्टल आ चुपचाप लेट रहे।

दूसरे दिन शंकर ने ख़बर लेने की ग़रज़ से आकर कमरे में प्रेमकुमार को मुरझाए बैठे हुए देखा। यह प्रेमकुमार के प्रेम का ख़ुमार न हो, ऐसा ख़याल कर चेहरे की तरफ़ तारीफ़ की निगाह से देखते हुए पूछा—"क्यों भई, कल पहली पहचानवाली शाम अच्छी तो कटी?" पूछकर बग़ल में बैठ गया।

"हिंदोस्तानी सबसे पहले इसीलिये बदनाम हैं कि वादे के हज़ार पीछे दो भी पक्के नहीं निकलते। तभी तो गले से ग़ुलामी छूटती नहीं। ऐसी-ऐसी गंदी आदतवाले अगर चाहें कि अपना सुधार सामाजिक या राजनीतिक कर लें, तो क्या ख़ाक करेंगे?" झुँझलाए हुए प्रेमकुमार बोले।

"तो कहो, कल वादा-ख़िलाफ़ी रही। मैं तो पहले से तुम्हें सचेत कर रहा था कि कहीं किसी ने मज़ाक़ न किया हो। पर तुम भी ऐरे-ग़ैरे नत्थू-खैरे सबको युधिष्ठिर का अवतार समझ लेते हो।"

"मेरी आदत है, मैं अपनी तरह दूसरे को भी तहज़ीब-पसंद भला आदमी मान लेता हूँ। और लखनऊ में, ख़ासकर पढ़ी-लिखी लड़कियों में ऐसी बेहूदा भी रह सकती हैं, मैं क़यास में नहीं ला सकता।"

पूरी गुस्ताख़ी की निगाह देखते हुए शंकर ने कहा—"तब तो बड़ा धोका हुआ। सारा मज़ा किरकिरा कर दिया!"

सामने चिट्ठीरसा आता हुआ देख पड़ा। प्रेमकुमार उसी पर दृष्टि जमाए हुए थे। वह भी उन्हीं की तरफ़ बढ़ रहा था। पास आ एक लिफ़ाफ़ा दिया। खोलकर पढ़कर प्रेमकुमार प्रसन्न हो गए। कहा—"देखो, हम लोग ग़लती में थे। देखो, कितनी अच्छी साफ़ दिल की तस्वीर है।"

शंकर चिट्ठी लेकर पढ़ने लगा। लिखा है—

प्राणेश प्रेम,

तुम मेरे लिये कल कितने परेशान थे! जब जानवरों के घेरे-घेरे घूमते हुए अपनी शांति की खोज में व्याकुल हो रहे थे, तब मैं अपनी मा के साथ बैंड-स्टैंड के सामनेवाले मैदान में खड़ी उधर से तुम्हें जाते हुए देखकर हँस रही थी। जी चाहता था, दौड़कर तुम्हारी शांति का पता दे दूँ, और पहले पता बताने का पुरस्कार तुमसे क़बूल करवा लूँ, पर मेरी मा साथ थीं, इसलिये तुमसे मिल नहीं सकती थी। पर क्या तुम इतना सोच ले सकोगे कि मैं कितनी बार, कितनी तरह, आँखों से, दिल से, गले से और प्यार से तुमसे मिल चुकी हूँ? मैं वही हूँ, जिसे देखकर तुम चौंके थे, मेरी मौन पुकार सुनकर, मुझे देखकर खड़े हो गए थे, फिर उदास होकर चले गए थे। तुम समझो कि अपनी चाहनेवाली के दिल में कितनी आग तुम फूँक गए हो। वह अपने प्यारे के असली प्रेम की परीक्षा कर न मिल सकने के कारण कितना

तड़प रही है ! आह ! तुम्हें इतना कष्ट अपनी शांति के लिये स्वीकार करना पड़ा ! पर शांति तुम्हें मिलेगी। वह तुम्हारे ही पास रहती है। तुमसे जुदा हो जाय, तो उसकी हस्ती मिट जाय। तुम्हें अवश्य-अवश्य तुम्हारी शांति मिलेगी। कल एल्फ़िस्टन-सिनेमा ज़रूर-ज़रूर आने की कृपा करना।

हिवेट रोड, लखनऊ } तुम्हारी
४-४-३१ } शांति

मुस्किराकर शंकर ने कहा—"यार, इनके पत्र में तो पूरी कविता रहती है !"

"हाँ, काफ़ी पढ़ी-लिखी जान पड़ती हैं। अँगरेज़ी बड़े काट की लिखती हैं।" आत्मगौरव को छिपाने का प्रयत्न करते हुए प्रेमकुमार ने कहा—"जब मा साथ हों, तब कैसे कोई अपने खुले दिल से बातचीत करे ?"

"ऊँचे किसी ख़ानदान की जान पड़ती हैं !" शंकर ने बढ़ाकर कहा।

"ज़रूर, यह काट-छाँट किसी फटीचर घर की लड़की की हो ही नहीं सकती। ख़ानदानी घर की लड़की की मिसाल दूब से दी जाती है, जो बारह साल धूप में झुलसती रहने पर भी दिल से गीली रहती है, इसीलिये जान से बची रहती है। किसी ने ज़रा-सा पानी डाला, या आसमान से चार बूँदें पड़ीं कि चौगुनी हरियाली से लहरा-लहराकर पानी डालनेवाले की तारीफ़ करती रहती है। इस तरह उसकी आँख ठंडी कर फ़ौरन् बदला चुका देती है।"

"बहुत दुरुस्त कहते हो। क्या सिनेमा जाने का विचार है ?" आग्रह ज़ाहिर करते हुए शंकर ने पूछा।

"न जाने की क्या बात हुई ? अगर न्योता और वह भी भले घर का, किसी को मिले, और वह न जाय, तो उससे बड़ी मेरे ख़याल से दुनिया में दूसरी बेहूदगी है ही नहीं।" आईने को सामने की मेज़ पर रखकर सेफ़्टी रेज़र में नया ब्लेड लगाते हुए प्रेमकुमार ने कहा।

"चाहिए ज़रूर जाना। तबियत मेरी भी होती है कि जब तुम मिल लो, तब एक बार उनके दर्शन करूँ। अँगरेज़ी में कविता ज़रूर लिखती होंगी।"

"हाँ, दिल एक सच्चे शायर का है। हर सेंटेंस चोट करता है, है न ?"

"करारी ; चोट तुम पर है, तड़प मुझे हो चली है।"

"कोई लफ़्ज़ निकाल दो, तो सारा मज़मून लँगड़ा।" दाढ़ी में साबुन लगाते हुए प्रेमकुमार ने कहा—"मैं मिल लूँ, फिर वादा करता हूँ, तुम्हें ज़रूर मिला दूँगा। इसी तरह धीरे-धीरे भले आदमी बन जाओ। अब ज़माना ब्राह्मणोंवाले ख़यालात से बहुत दूर बढ़ गया है। तुम बाक़ायदा पढ़े-लिखे आदमी हो, कुछ अपनी तरफ़ से भी समझो। और, मैं तो पहले मिलने-जुलने की आज़ादी मानता हूँ, फिर और।"

(४)

छ का समय है। एलफ़िंस्टन-पिक्चर-पैलेस के सामने लोगों की भीड़ है। 'शैलबाला'-फ़िल्म ज़ोरों से चल रही है। चवन्नी और अठन्नीवाले झरोखे में लखनऊ के पानवाले, हिंदू-मुसलमानों के, आवारागर्द नौजवान लड़के और ग़रीब बाशिंदे एक दूसरे पर चढ़े हुए टिकट के लिये बढ़ते जा रहे हैं। कई प्राइवेट मोटरें आकर लगी हैं। प्रेमकुमार बड़ी देर तक इधर-उधर टहलते रहे। कुछ देर तक तस्वीरें आजवाली और आगे होनेवाली फ़िल्मों की, सुलोचना, ज़ुबेदा, माधुरी, कज्जन, सुरतरी, शीला, कूपर और मुख़्तार बेगम आदि की देखते रहे। यद्यपि इन सबके चित्र उनके कमरे में बड़ी हिफ़ाज़त से रक्खे हैं, और ज़ुबेदा की एक तस्वीर बड़े ख़र्च से, सुनहले बार्डर में, आईने की तरह टेकदार, बँधवाकर मेज़ पर रख दी है। वहाँ तस्वीरों के पास रहने का ख़ास मतलब यह है कि शांति आवेगी, तो जाने के समय मुलाक़ात हो जायगी, और मालूम भी हो जायगा कि वह किस दर्जे में गई। अभी से टिकट ख़रीदकर

कहीं जाकर बैठना बेवक़ूफ़ी होगी। कहीं उस दर्जे में शांति न मिली, न गई, तो? कोई भी प्रवीण नवीन पत्नी का हाथ पकड़े उधर से गुज़रता है, तो प्रेमकुमार उन्हें शांति और उसका बाप समझकर प्रेम से सिहर उठते हैं, फिर तरुणी की जलती दृष्टि से मौन लांछन पा रह जाते और दूसरे वार की प्रतीक्षा करते हैं।

समय केवल दो मिनट खेल शुरू होने को रह गया, तब बहुत घबराए। निश्चय हुआ कि शांति उनके आने से पहले भीतर चली गई, और अतृप्त आँखों से उनकी राह देखती होगी। बड़े बेचैन हुए। कहाँ, किस दर्जे में जायँ, कुछ ठीक नहीं हो रहा। कहाँ वह बैठी उनके नाम की माला जप रही है, कैसे मालूम करें। अंत में, बाहर रहने से भीतर रहना अच्छा। इस विचार से अपना लाइब्रेरी-वाला कार्ड दिखलाकर ऊपर का टिकट कंसेशन से ले लिया। जाते-जाते बत्ती भी बुझ गई, खेल शुरू हो गया। इच्छा थी, ऊपर और जहाँ तक नज़र जायगी, शांति को उजाले में खोजेंगे। दिल बैठ गया।

खेल शुरू हो गया। प्रेमकुमार की घबराहट बढ़ चली। लोग एकाग्र होकर तमाशा देख रहे हैं। प्रेमकुमार चित्त की अपलक आँखों से शून्य शांति का ध्यान कर रहे हैं, उसकी बातें सोच रहे हैं—"उसने लिखा है, मैंने तुम्हें देखा है; तुमने भी मुझे देखा है। सबसे ज़्यादा मैं किसकी तरफ़ खिंचा था! क्या वही है—वह गोरी-गोरी लड़की! पर उधर से तो शायद किसी बेहूदे की दी गाली की आवाज़ आई थी, किसी कंबख़्त ने यों ही छेड़ दिया होगा।"

खेल को एक घंटा हो गया। पर प्रेमकुमार को मालूम नहीं कि क्या-क्या हो गया। केवल शांति के ध्यान में तन्मय हैं।

घंटी बजी। हाफ़ टाइम हुआ। बत्तियाँ जल गईं। प्रकाश में ऊपर-नीचे, कई जगह, सुंदरी-से-सुंदरी युवतियों को बैठे हुए देखा। पर ऐसी हालत में कहाँ जायँ? किसे शांति समझें? जो सबसे ख़ूबसूरत है। ग़ौर से देखने लगे। जिससे निगाह लिपट जाती, प्रकाश में उज्ज्वल आँखें, कोट, कट, चिबुक, मुख उसी के अपूर्व सुंदर लगते हैं। जब जिसे देखते, तब उसे ही शांति समझने लगते हैं। कैसी विपत्ति है! इतनी युवतियों में कौन सबसे सुंदरी है, निर्णय करने में मन सक्षम नहीं। जितनी हैं, उतने रूप के सुख हैं—गोल, लंबे, चकले, सम, सभी सुंदर हैं, सभी निर्दोष। इनमें शांति कौन हो सकती है?

मेहनत करते-करते मन थक गया। रूपों को देखते रहने के लिये वह राज़ी है, पर शांति के निर्णय के लिये पूर्ण श्रांत। उसने युक्ति दी—"इन्हीं में शांति होगी। हर स्त्री अपने ही रूप को सबसे सुंदर समझती है। यदि वह वास्तव में रूपवती है भी; इसलिये खेल समाप्त होने पर रास्ते पर हरएक को देख लेना।"

खेल समाप्त हुआ। रास्ते पर आ प्रेमकुमार ठाट से टहलने लगे। उन्हें शांति न मिली। जितनी शांतियाँ अपने पति को हाथ से पकड़े हँसती हुई शैलबाला की आलोचना में मुखर उधर से निकलीं, सभी बाबू प्रेमकुमार को जला-जलाकर चली गईं।

हताश होकर भी आशा के क्षीण-क्षणिक आश्वासन से हृदय को बाँधकर प्रेमकुमार एक ताँगे पर आ बैठे, और बादशाह-बाग़ चलने के लिये कहा।

प्राणों की प्रेयसी प्रतिमा को पुनः-पुनः धैर्यों के वीर भाव से अणुओं में चूर्ण करने लगे, और वह उन्हीं के प्राणों से शक्ति ग्रहण कर-कर परमाणुओं से सुंदर रूप-बंध में गठित हो-हो—आज की उन्हीं रूपसियों के चेहरे-चेहरे से, जिन्हें वे अच्छी तरह कुछ देर पहले देख चुके हैं, जो कुछ देर पहले उन्हें आँखों की दृष्टि में लांछित कर चुकी हैं—माया-मरीचिका में आँखों की दृष्टि हर-हर, शांति के रूप में उठ-उठ लुभाने लगीं।

निरुपाय प्रेमकुमार होस्टल आ, किराया चुकाकर, चुपचाप अपने कमरे में चले गए। शंकर पढ़ रहा था, पर अभी चलकर बातचीत करना उसने ठीक न समझा।

(५)

सुबह भी शंकर समय बरबाद होने के विचार से प्रेमकुमार से नहीं मिला। उधर प्रेमकुमार भी चिंता-जनक मानसिक स्थिति के कारण सुबह शंकर से आकर नहीं मिल सके।

कॉलेज से लौटकर बाहर से शंकर ने आहट ली। प्रेमकुमार प्रसन्न थे। एक ग़ज़ल मन-ही-मन गुनगुना रहे थे। इस ग़ज़ल को कैनिंग कॉलेज के विद्यार्थी लखनऊ का नैशनल सॉंग (जातीय गीत) कहते हैं। ग़ज़ल है—

"अगर क़िस्मत से लैला के गले का हार हो जाता,
ज़माने-भर की नज़रों में खटकता खार हो जाता।"

आदि-आदि।

शंकर को मालूम हो गया कि या तो कल इनकी क़िस्मत दूर तरह लड़ गई, या आज अब फिर चिट्ठी में कल कहीं मिलने की आशा पहुँची है। मुस्किराता हुआ भीतर गया, और बड़ी उत्सुकता से पूछा—"क्यों भई, कल मुलाक़ात तो हो गई?"

"किसी ने ठीक कहा है।" प्रेमकुमार बोले—"जो मज़ा इंतज़ार में पाया, वह वस्ल में न पाया।"

"तो क्या अभी इंतज़ार ही चल रहा है?" कुछ ताअज्जुब से शंकर ने पूछा।

"बात यह हुई कि कल मैं पहले शो में गया, वह दूसरे में आई। इसीलिये मुलाक़ात न हो सकी। बड़ा ताना देकर चिट्ठी लिखी है। देखो।"

प्रेमकुमार ने चिट्ठी बढ़ा दी, शंकर पढ़ने लगा। लिखा है—

प्यारे प्रेम,

कल दूसरे शो में मैं गई, पर तुम नहीं थे। यह कैसी बात? क्या तुम मुझसे नाराज़ हो गए? मुझे क्षमा करना। तुम्हीं सोचो, मेरा क्या क़सूर था? अगर तुम पहले शो में आए, तो ग़लती की। भला, पहले शो में भी कहीं दिल मिलाने-वाले मिल सकते हैं? जब तक सिनेमा होता, हम लोग गोमती के किनारे बातचीत करते; फिर सिनेमा ख़त्म होने पर मैं घर चली आती। पहले शो में यह मौक़ा शहर की भीड़ में कहाँ मिलता है? अगर पहले शो में तुम गए, तो ज़रूर लड़कियों को देख-कर मेरा अंदाज़ा लगाया होगा, इस तरह तुमने मेरा कितना अपमान किया! अब कल का वादा पूरा होना ही चाहिए। कल गोमती के किनारे, छोटेलाल के पुल पर कुर्सी में रहना। मैं नहाने आऊँगी। तब तुम मुझे दिन को देखकर फिर रात को न भूल सकोगे। फिर हम लोग किसी दिन कहीं मिल जायँगे। कल ज़रूर-ज़रूर तुम्हें तुम्हारी शांति मिलेगी। ठीक आठ बजे दिन को मैं ज़नाने घाट पर हूँगी।

५, ड्विवेट रोड लखनऊ २-४-३२ रात एक	तुम्हारी कब से खोई हुई शांति

पढ़कर शंकर की तबियत फड़क उठी। कहा—"अब क्या, अब तो कल ज़रूर क़िस्मत खुल जायगी।"

"एक-न-एक ऐसा अड़ंगा लग जाता है कि बना-बनाया काम बिगड़ जाता है।" सहजप्रसन्न स्वर से प्रेमकुमार बोले।

"पहले की अड़चन अच्छी होती है। पीछे की सफलता तब बड़ी, स्वादवार जान पड़ती है। प्रेम के लिये तो यह ख़ास बात होगी। मुझे कल्पना से इसका ठोस आनंद कुछ-कुछ मिल रहा है।" शंकर ने चिट्ठी की तरफ़ देखकर कहा।

"कल्पना नहीं, ख़रबूज़े-सा अपना भी हाल समझो। रोज़ साथ किसका होता है? यह उसी का रंग चढ़ रहा है, जो तजवीज़ इतनी चोखी उतर रही है।" प्रेमकुमार ने आत्मप्रसाद के उदात्त भावों से कहा।

"पके ख़रबूज़े को स्यारों से बड़ा डर है।"

(६)

दूसरे दिन पाँच बजे प्रातः नहाकर, पूरा शृंगार कर, प्रेमकुमार छड़ी लेकर छोटेलाल के पुल की ओर, ठीक छ बजे, चल दिए। आठ बजे तक घाट की ओर

टहलते, छुत्री पर उठते-बैठते रहे। आठ बज गए, नौ बज गए, दस बज गए, किसी ने भी उनसे आकर न कहा, प्यारे, तुम इतने परेशान हो मेरे लिये, मैं ही तुम्हारी शांति हूँ। बल्कि एक अज्ञात मनुष्य ने पूरी उद्दंडता से पेश आकर कहा—"आप बड़ी देर से यहाँ टहल रहे हैं, और मैं देखता हूँ, जो भी औरत आती है, आप बुरी तरह घूरते हैं, क्या आपको इस तरह नज़र लड़ाते वक़्त अपनी मा-बहनों की बिलकुल याद नहीं आती?"

पाप बड़ा डरपोक होता है। कुछ जवाब दें, प्रेमकुमार को ऐसी हिम्मत न हुई। चेहरा उतर गया। चुपचाप सीढ़ियों से चढ़कर बादशाह-बाग़ की राह ली। होस्टल में जाकर लेट रहे। उस रोज़ खाना न खाया।

वक़्त पर चिट्ठीरसा फिर चिट्ठी लेकर पहुँचा। प्रेमकुमार मन-ही-मन शांति को शास्ति देने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर रहे थे, उसी समय उसने एक चिट्ठी इन्हें दी। लेकर पढ़ने लगे। लिखा है—

मूर्खाधिराज,

तुम्हें गोमती में भी चुल्लू-भर पानी नहीं मिला?

५, हिवेट रोड लखनऊ	तुम्हारी शांति

पढ़कर प्रेमकुमार के छक्के छूट गए। कुछ देर बाद शंकर भी आया। पत्र वैसा ही खुला मेज़ पर पड़ा था, पढ़ लिया। फिर हँसी को पीकर बोला—"यार, यह तो अच्छा मज़ाक़ किसी ने किया। अब ५ हिवेट रोड पर चलकर देखो तो, कौन रहता है।"

हिवेट रोड पर इन्हीं की नई ब्याहकर आई हुई साली अपने अकेले पति के साथ रहती है, जो इन्हीं के कॉलेज में पहले इन्हीं के साथ रहकर अब रिसर्च-स्कालर है। इन्हें देखकर रमा हँसने लगी। कहा—"आप बड़े बेवक़ूफ़ हैं, शांति तो दीदी का ही राशि का नाम है।"

आयवर क्र्यूगर

[कुँवर राजेंद्रसिंह, युक्त-प्रांत के भूतपूर्व मंत्री]



शिक्षित-समुदाय में ऐसे कम लोग होंगे, जिन्होंने आयवर क्र्यूगर का नाम न सुना हो। इसकी आत्महत्या से संसार-भर में हाहाकार मच गया था। न-मालूम कितनों ने इसी का अनुकरण किया, कितने अमीर से ग़रीब हो गए, कितनी विधवाओं के खाने का ठिकाना न रह गया, कितने अनाथ बच्चे भूखों मरने लगे। आर्थिक संसार में हल-चल पड़ गई थी, बैंक डगमगा गए थे, राज्यों में कोलाहल मच गया था। यह सब आयवर क्र्यूगर के कपट और कूट-नीति का फल था। इसके जीवन में इसका माया-जाल किसी की समझ में नहीं आया। सबका इस पर अपार विश्वास था, और सबके साथ यह विश्वासघात करता था। सिवा अपने स्वार्थ के और किसी का यह मित्र नहीं था। यहाँ तक इसका उत्थान हुआ, और यहाँ तक ख्याति हुई कि लोग इसे 'दियासलाइयों का सम्राट्' कहने लगे थे। किसी ने सत्य कहा है कि धनोपार्जन में इसका ध्यान रक्खो कि उसके साथ विधवाओं और अनाथों की आहें संचित न हो जायँ। प्रकृति का यह कुछ अनिवार्य नियम है कि ऐसा एकत्रित धन केवल पाप का बोझ बढ़ाकर लुप्त हो जाता है—

"चोरी करि होरी रची, भई छिनक में छार।"

आयवर क्र्यूगर का जन्म कालमर में, १८८० में, हुआ था। यह एक बहुत छोटा और देहाती स्थान है। इसका पिता दियासलाइयाँ बनाने का रोज़गार करता था। उसके छोटे-से शिल्प-गृह में केवल १२ आदमी काम करते थे। बचपन ही से आयवर क्र्यूगर अन्य बालकों की तरह नहीं था। वह अत्यंत सलज्ज और गंभीर था। खेलों से उसे रुचि नहीं थी। जीवन-पर्यंत उसने कोई खेल नहीं खेला। बाल्यावस्था ही में उसने एक दफ़ा कहा था कि यदि मैं कभी नेपोलियन का-सा बड़ा आदमी हुआ, तो उसकी तरह सेंटहेलिना में मेरा अंत नहीं होगा। इससे पता चलता है—जैसे एक अँगरेज़ी कहावत भी है—कि जवान कंधों पर एक बुड्ढा सर था। विद्याध्ययन से उसे कोई रुचि नहीं थी। जो लड़के परिश्रम करते थे, उन्हें वह तुच्छ दृष्टि से देखता था। स्वयं जेबों में हाथ डाले इधर-उधर घूमा करता था। बाप के रोज़गार की तरफ़ भी उसका कोई रुझान नहीं था। कौन कह सकता था कि यह युवक एक दिन संसार का बहुत बड़ा धनाधिकारी और अद्वितीय धूर्त होगा।

स्कूल ही से उसके कपट-प्रबंध का पता चलता है। उसने यह सोचा कि परीक्षा के हरएक विषय पर हरएक विद्यार्थी क्यों परिश्रम करे। जिस विषय से जिस विद्यार्थी को रुचि है, वह औरों की परीक्षा में क्यों न सहायता करे। इससे और विद्यार्थियों का परिश्रम बच जायगा, और सबको सफलता मिल जाया करेगी। शायद तब परीक्षा के समय इतनी कड़ी देख-भाल न होती होगी। कुछ भी हो, उसका चक्र चल गया, और उसे सफलता प्राप्त हुई। अपने इस कपट-प्रबंध का उसे सदैव अभिमान रहा। वह कहा करता था कि वह साधारण विद्यार्थियों की भाँति नहीं था, क्योंकि वह सोच सकता था कि सफलता कैसे प्राप्त की जा सकती थी। जिसे आत्म-ग्लानि का भय जाता रहा, वह क्या नहीं कर सकता है?

क्र्यूगर को अब अपना जन्म-स्थान अप्रिय था। वह कहा करता था कि मैं यहाँ नहीं पड़ा रहूँगा। उसका इरादा इंजीनियर होने का था। १६वीं या १७वीं वर्ष की आयु में वह स्टाकहम पढ़ने गया। वहाँ भी उसकी वही दशा थी—न पढ़ना न लिखना.

बस इधर-उधर घूमना। परीक्षा का दिन आ गया। धातु-विद्या की परीक्षा का दिवस था। परीक्षक एक तश्तरी में अनेक प्रकार की धातुओं को मिलाकर ले आया, और परीक्षार्थियों को बाँटता हुआ चला गया। परीक्षार्थियों को वर्गक्रमेण धातुओं का नाम बतलाना था। परीक्षार्थी एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। इतनी कड़ी परीक्षा के लिये शायद तैयार न थे। क्र्यूगर सफल हुआ, और परीक्षक ने बड़ी प्रशंसा की। साथियों ने जब सफलता का कारण पूछा, तो बतलाया कि जिन धातुओं का नाम उसे स्मरण नहीं था, या जिनके लिये उसे संदेह था, उनके टुकड़े उसने जेब में डाल लिए थे। फिर वही कपट—कपट से सदैव उसे सफलता हुई। कपटी यदि पहले दफ़े असफल हो जाय, तो, संभव है, वह सचेत हो जाय। कपट में सफलता ही घातक है।

बीस साल की अवस्था में उसने अमेरिका के लिये प्रस्थान किया। जेब में केवल २० पाउंड थे। वहाँ उसे सफलता नहीं हुई। उसने स्वयं कहा था कि छ सप्ताह में केवल १० पाउंड कमा पाया था। फिर वह सेंट्रल अमेरिका को गया। वहाँ मेक्ज़िको में सेंटाक्रूज़ के पास एक पुल बन रहा था। वहाँ का काम उसकी इच्छा के अनुसार था। वहाँ काम मिल गया। उसी समय वहाँ पीला बुख़ार फैला हुआ था। ११ इंजीनियरों में से केवल दो बचे, ९ मर गए। उन दो में से एक क्र्यूगर भी था। वहाँ उसकी योग्यता की कोई प्रशंसा नहीं हुई। जब वह घर लौटा आ रहा था, तब उसका जहाज़ हैवना में ठहरा। एक लड़की समुद्र में गिर गई। उसको बचाने के लिये क्र्यूगर कूद पड़ा, और लड़की को बचा लाया। जब वह लड़की युवावस्था को प्राप्त हुई, तब उसके माता-पिता ने इच्छा प्रकट की कि उसका विवाह क्र्यूगर से हो जाय, पर क्र्यूगर ने इनकार किया। क्र्यूगर का बचपन में किसी और एक बालिका से स्नेह हो गया था, पर किसी कारण से उसके साथ विवाह न हो पाया था। तब से उसने प्रतिज्ञा कर ली थी कि वह कभी विवाह नहीं करेगा। इस प्रतिज्ञा का पालन दुराचार से करता था। इस ओर भी उसके लाखों रुपए ख़र्च होते थे। हीरे की अँगूठियाँ जेबों में भेंट करने के लिये पड़ी रहती थीं। १९०३ में, लंदन में, एक जगह थोड़े दिनों के लिये नौकरी की। वहाँ से दक्षिणीय आफ़्रिका को चला गया। वहाँ एक होटल बन रहा था। धनाभाव के कारण काम में शिथिलता थी। क्र्यूगर ने कहा, वह रुपए का प्रबंध करा देगा। लोगों ने शर्तें मान लीं, और इसने क़र्ज़ दिलवा दिया। इस लेन-देन में इसे सात हज़ार पौंड मिल गए।

क्र्यूगर को अब भी वही पुरानी धुन थी। जब से अमेरिका से लौटा था, तब से स्टाकहम में कंकरीट से बड़े-बड़े मकानों के बनाने का स्वप्न देख रहा था। १९११ में हिस्सेदार बनाकर एक कंपनी खोली, जिसका नाम क्र्यूगर और टोल था। स्टाकहम ही में बड़ी-बड़ी इमारतें बनाईं, और फिर इस कंपनी की ख्याति नारवे, फिन्लैंड, बर्लिन, रशिया इत्यादि देशों में फैली। उन देशों में भी इसके माल की अच्छी बिक्री होती थी। थोड़े दिनों बाद क्र्यूगर ने अपने बाप के दो छोटे और वहाँ के आठ शिल्प-गृहों को मिलाकर एक दियासलाई की कंपनी की स्थापना की, और थोड़े ही दिनों में जानकोपिंग (जो व्यापार का केंद्र था) के सब शिल्प-गृहों को नीचा दिखा दिया। क्र्यूगर उद्योगी और उद्यमी था। १९१७ में उसने वहाँ की १८ कंपनियों को अपनी कंपनी में मिला लिया, और उसका नाम स्वेडिश-मैच-कंपनी रक्खा। उस समय कंपनी के मूल-धन की संख्या ५,०००,००० पाउंड थी, जो दो साल में २०,०००,००० पाउंड हो गई, और चार ही वर्षों बाद ४०,०००,००० पाउंड बढ़कर पहुँच गई।

स्टाकहम में जहाँ इस कंपनी का कारोबार होता था, और जहाँ वह स्वयं रहता था, वह एक अद्वितीय महल था। उसे देखकर बादशाही प्रासाद का भ्रम होता था। इसे सजाने में दिल खोलकर

रुपया ख़र्च किया गया था। आमोद-प्रमोद की सब सामग्रियाँ वहाँ थीं। एक कमरा ऐसा था, जिसमें किसी तरह की कोई आवाज़ नहीं पहुँच सकती थी। प्रायः इसी में क्र्यूगर बैठकर काम किया करता था। बेतार के तार का मकान-भर में इंतज़ाम था। जब और जिस कमरे से चाहे वह बातें कर सकता था। तीन-तीन, चार-चार बहुमूल्य मोटरें सवारी में रहती थीं। देहात में भी एक विशाल भवन था, जहाँ क्र्यूगर कभी-कभी जाता था। यह मकान उसके चरित्र की हीनता का स्मारक-चिह्न-सा था। यहाँ दावतें होती थीं, नाच होता था। दावतों में बहुमूल्य पदार्थ, जिनका मिलना सुलभ नहीं था, अधिकता से वहाँ दिखलाई देते थे। क्र्यूगर ने न्यूयार्क में एक पार्टी दी, जिसमें १, ५०० पाउंड व्यय हुए थे, और २०० पाउंड उनको दिए गए थे, जिन्होंने केवल १५ मिनट के लिये पार्टी का मनोरंजन किया था। इस पार्टी में केवल १२ या १४ अतिथि थे, और प्रत्येक को सोने का एक सिगरेट-केस दिया गया था, जिस पर क्र्यूगर का नाम हीरों में खुदा था।

धन बढ़ा, धन के साथ आवश्यकताएँ बढ़ीं, आवश्यकताओं के साथ धन-पिपासा बढ़ी, फल-स्वरूप धूर्तता बढ़ी, और क्र्यूगर नर-पिशाच बन गया। अब केवल एक ख़याल था कि किस पर किस तरह से माया-जाल फैलाया जाय कि रुपया हाथ में आवे। पाप का बोझ बढ़ाने के लिये ऐसों को अवसर भी मिल जाते हैं। जर्मन-युद्ध समाप्त होने के पश्चात् योरप के सभी देश धनाभाव से पीड़ित थे। किसी के कुछ बनाए नहीं बनता था। यही चिंता लगी रहती थी कि किस तरह से काम चलेगा। सिक्का अदृश्य था, काग़ज़ का केवल सहारा था। क्र्यूगर ने इस मौक़े को हाथ से जाने नहीं दिया। उसने लोगों को यह विश्वास करने का अवसर दिया कि वह काग़ज़ का प्रबंध कर सकता है। चारो तरफ़ से माँग बढ़ी। उसकी इतनी ख्याति बढ़ी कि १० वर्ष में उसने २५,०००,००० पाउंड जर्मनी को, १५,०००,००० पाउंड फ्रांस को, ७,२००,००० पाउंड हँगरी को, ६,५००,००० पाउंड पोलैंड को, ६,३००,००० पाउंड रोमानिया को, ४,५००,००० पाउंड यूगोस्लाविया को, २,०००,००० पाउंड ग्रीस और टर्की को और १,२००,००० पाउंड से लेकर २००,००० पाउंड के भीतर और कई राज्यों को क़र्ज़ दिलवाए। अब क्या था, संसार-भर में उसकी धूम थी। सभी देशों के राजनीतिज्ञ और अर्थ-शास्त्रज्ञ उसके पंजे में फँसे थे। उसने अपनी कंपनी और स्वयं अपने को ७०,०००,००० पाउंड के लिये उपर्युक्त क़र्ज़ दिलाने में ज़िम्मेदार बनाया था।

जब स्वयं उसे रुपए की आवश्यकता होती थी, तब अपनी संपत्ति, मकान, असबाब, सब रेहन कर देता था, जिनमें से अधिकांश की स्थिति केवल काग़ज़ पर ही थी। संसार-भर में धाक जमी हुई थी। किसे संदेह हो सकता था कि इतना बड़ा पूँजीपति इतना बड़ा वंचक होगा। दूसरे, उसकी कंपनी का हिसाब इस योग्यता से तैयार किया जाता था कि अनुभवी पुरुषों की भी समझ में नहीं आता था, और लाभ-ही-लाभ दिखाई देता था।

उसकी निःशब्दता और मौनता उसकी सहायक थी। शायद ही किसी ने कभी उसे दिल खोलकर बातें करते या हँसते देखा होगा। हँसने से मनुष्य के चरित्र का पता चलता है। जापान के एक वैज्ञानिक का कहना है कि ज़ोर से हा-हा करके हँसना निष्कपटता की पहचान है, और हि-हि से बनावट विदित होती है। स्वास्थ्य पर भी हँसने का बड़ा प्रभाव पड़ता है। इँगलैंड के प्रधान मंत्री डिज़रैली का उदाहरण लीजिए। उसकी ज़िंदगी-भर में लोगों ने केवल दो ही दफ़े उसे मुस्किराते देखा था। परिणाम यह हुआ कि वह सदैव बीमार रहता था।

आयवर क्र्यूगर-जैसे पुरुष के लिये यह कोई आश्चर्य नहीं कि वह किसी का मित्र नहीं था। स्वार्थी कब किसका मित्र होता है? पर आश्चर्य यह कि अपने वृद्ध पिता को अपनी कंपनियों का अनुशासक

बनाकर उसे भी अपने कपट के माया-जाल में फँसाए रहा। जो लोग आयवर क्र्यूगर के सहायक होते थे, उन्हें दिल खोलकर इनाम भी देता था। एक स्पेन देशवाले को, जिसने बड़ी सहायता करने का वचन दिया था, ६६,००० पाउंड दिए थे। वह क्र्यूगर से भी अधिक वंचक निकला। रुपया लेकर बिना काम किए हुए चलता बना। अंत में वह पकड़ा गया, और जब उसे दावा करने की धमकी दी गई, तब उसने कहा कि उसके पास कुछ ऐसे काग़ज़ हैं, जिनके प्रकाशित करने पर बहुत-से उस देश के राजनीतिज्ञों की क़लई खुल जायगी। मामला दबा दिया गया।

आयवर क्र्यूगर जितना धूर्त था, उतना ही चरित्र-हीन भी था। उसे संसार स्त्रीमय दिखाई देता था। इस कपट से संचित धन पानी की तरह बहता था। केवल कठिन कमाई का धन ठहरता है। थिएटर की नटी और नर्तकियाँ उसकी दुर्वासना का केंद्र थीं। वे बिकती थीं, वह ख़रीदता था। ऐसे संबंधों में स्नेह कहाँ! लेन-देन का प्रश्न था।

क्र्यूगर पढ़ने-भर में केवल उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का अँगरेज़ी अनुवाद पढ़ता था। किसी ने सत्य कहा है कि चंचल-प्रकृति के मनुष्य कभी ध्यान-पूर्वक नहीं पढ़ सकते, और स्वार्थी तो पुस्तकों से कोसों दूर भागता है। क्र्यूगर को कहाँ छुट्टी थी कि वह पढ़ता।

क्र्यूगर कहा करता था कि उसकी इच्छाओं में ठहराव नहीं है। एक बार उसने बहुमूल्य हीरे की एक अँगूठी ख़रीदी, पर उसे पहना कभी नहीं। जब उसके मित्रों ने कारण पूछा, तब कहा कि इच्छा की पूर्ति अँगूठी ख़रीदने से हो गई थी, पहनना उद्देश्य नहीं था। इसी तरह किसी ने यह भी पूछा था कि आप अपने देहात के मकान को बेच क्यों नहीं डालते? क्योंकि आप वहाँ कभी नहीं रहते हैं। क्र्यूगर ने उत्तर दिया कि जब तक नहीं बेचता हूँ, तब तक आवश्यकता नहीं मालूम होती है, पर बेचते ही उसे ख़रीदने की फिर इच्छा होगी। लक्ष्मी और मितव्ययता से कोई संबंध नहीं है।

ईश्वर की अद्भुत लीला है। दीपक बुझने के पहले अधिक प्रज्वलित हो जाता है। जैसे पतन के पश्चात् उत्थान अवश्य होता है, वैसे ही उत्थान के पश्चात् पतन होना प्रकृति का एक अनिवार्य नियम-सा है। क्र्यूगर का भाग्य साथ दे रहा था, सफलता उसकी चेरी थी। अब केवल दियासलाइयों के ही बनाने का काम नहीं था, अब अन्य देशों में भी उसकी खनिज और काष्ठादि की कंपनियाँ थीं। एक-एक कंपनी का मूल-धन २,६००,००० पाउंड था। स्पर्धा उसे असह्य थी। जहाँ वह, वहाँ दूसरा क्यों, यह उसकी इच्छा रहती थी। रुपयों की कमी नहीं थी, और यदि कमी होती भी थी, तो कमाने की तरकीब मालूम ही थी। अब वह व्यावसायिक संसार का सम्राट् था। आर्थिक संसार उसका मुँह ताकता था। तब भी शांति नहीं थी। मस्तिष्क में पैसे की धुन थी, आँखें पैसे पर थीं, हृदय में पैसे की इच्छा थी, जिह्वा पर पैसे की रट थी। क्र्यूगर 'बस' का विरोधी और 'और' का पुजारी था।

कर्मों का फल अवश्य मिलेगा, चाहे देर में मिले या जल्दी। वैसे ही, जैसे एक दफ़े अब्राहम लिंकन ने कहा था कि कुछ आदमियों को कुछ समय के लिये और कुछ आदमियों को हमेशा के लिये धोका दिया जा सकता है, पर सब आदमियों को हमेशा धोका नहीं दिया जा सकता। १६३२ के व्यापार में शिथिलता के कारण धन का गति-रोध हो गया। किसी तरफ़ से क्र्यूगर को कोई आशा नहीं रही—माया-जाल भी निष्फल हो गया। देना बहुत था, मिलने की कहीं से आशा नहीं थी। मार्च का महीना था, और एक एप्रिल को ६,०००,००० पाउंड एक बैंक को देना था। १५ मार्च को ८००,००० पाउंड का प्रथम ऋण-भाग एक दूसरे बैंक को देना था। क्र्यूगर की एक कंपनी को ४००,००० पाउंड देना था, और दूसरी कंपनी को २४०,००० पाउंड। अब केवल अमेरिका से आशा रह गई थी, वह अमेरिका गया। वह अब अत्यंत चिंतित रहता था।

क्यूगर को अमेरिका में कोई सफलता नहीं मिली, यहाँ तक कि लोग उसकी कंपनियों के हिसाबों पर संदेह करने लगे।

क्यूगर अमेरिका से हताश लौट आया। विश्वास और अविश्वास के मध्य में हृदय के लिये कोई विश्राम-स्थान नहीं है—विश्वास जाते ही अविश्वास आ जाता है। यही हाल क्यूगर का हुआ। अब किसी का इस पर विश्वास नहीं था, सभी संदेह करते थे। एक कंपनी के रुपया देने का समय भी जाता रहा। फ्रांस में लोग बहुत घबराए हुए थे। वहाँ के अर्थशास्त्रज्ञ एक सभा करके क्यूगर से कुछ प्रश्न किया चाहते थे। क्यूगर वहाँ गया। सभा में अनुलकर प्रश्न पूछे जाने लगे। वह जानता था कि एक प्रश्न का भी उत्तर देने से सब भेद प्रकट हो जायगा। संदेह उसके लिये असह्य था। वह उठ खड़ा हुआ, और बोला—इन सबका उत्तर कल दूँगा।

क्यूगर ने १२ मार्च, १६३२ ई० को पिस्तौल से आत्मघात कर लिया। क्यूगर का निजी ऋण ५०,०००,००० पाउंड था। उसकी क्यूगर और टोल कंपनी का मूल-धन केवल २२,०००,००० पाउंड और देना ८४,०००,००० पाउंड था। ११,०००,००० पाउंड उसकी निज की जायदाद को देना था। केवल इतना ही नहीं, यदि कंपनियों और बैंकों के हिस्सों का हिसाब जोड़ा जाय, तो जोड़ और भी ऊँचा हो जायगा। आर्थिक संसार को इसकी मृत्यु से जो धक्का पहुँचा, उसका असर अब भी बाक़ी है, और नाम तो सदैव जीवित रहेगा। क्यूगर उदाहरण हो गया।

जब क्यूगर की माता ने यह शोक-समाचार सुना, तो चिल्ला उठी, और कहा कि जो कुछ उसके विरोध में कहा जाता है, वह सब झूठ है। मेरा पुत्र ऐसा नहीं था। धन्य मातृ-स्नेह! उस वृद्धा को क्या पता था कि सब सत्य था, जिसका प्रमाण हज़ारों आदमियों के आँसू और आहें दे रही थीं।

विनय-पुष्पांजलि

[श्रीयुत राजा चक्रधरसिंह]

(१)

कालिंदि-कूल कदंब-तले कल कांत कलेवर शांत निकाई ;
कानन में मकराकृत कुंडल, मस्तक मोर-पखा-छबि छाई ।
बाँसुरिया मधुराधर पै, मनभावनि तान सबै सुखदाई ;
मो मन माहिं सदा निबसौ दुख-दारिद-मोचन कृष्ण-कन्हाई !

(२)

बालपने दधि-दूध चुरायो, बढ़े पुनि गोपी के चीर चुराए ;
राधिकाजू को हियो हू चुराय निकुंज-निकुंजन माहिं दुराए ।
पारथ को बर मोह चोरायो, सुदामा-गरीबी चुराय नसाए ;
काहे न हे चित-चोर ! चुरावत मेरे गरीबहु की बिपदाए ।

(३)

पावत चैन न छीर-समुद्र में, देखत देवन को दल भारो ;
शांति न देत जु संत-महंत की भीरन सों निज लोकहु प्यारो ।
कारे हौ कान्ह ! तुम्हैं दुरिबे को जु बांछित है अतिसै अँधियारो ;
आय दुरौ घनश्याम ! इतै, यह हाजिर है हिय कारो हमारो ।

(४)

फूल तिहारे, दुकूल तिहारे, तिहारे ही तो अहैं पौन औ पानी ;
नाथ ! सबै कछु है तुम पै, ऋधि-सिद्धि सबै तुम्हरी हैं बखानी ।
एक हिये की कमी है तुम्हैं, जेहि लै गईं छीनिकै राधिका रानी ;
देत हौं तासों हियो अपनो, यह लीजिए भेंट हरे ! सुख-सानी ।

(५)

सूखत सो भव-सिंधु महा तेहि, रावरी होत कृपा कछु जापै ;
एक दया-भरी डीठि की कोर तुरंत मिटावत आप त्रितापै ।
आनँद-कंद तुम्हैं सुमिरे ब्रजचंद ! कहूँ दुख-दंद न ब्यापै ;
राखौ अभै-बरदायक हाथ सुनाथ ! सदा तुम 'चक्रपिया' पै ।

भाषण *

[श्रीयुत ठाकुर गोपालशरणसिंह]



वियो और सज्जनो,

मेरे लिये यह बड़े गर्व और सौभाग्य की बात है कि आज प्रयाग-निवासी हिंदी-साहित्यिकों की ओर से मुझे पूज्यवर आचार्य द्विवेदीजी तथा दूर और निकट से आए हुए अन्य साहित्य-रसिकों का स्वागत करने का अपूर्व तथा अलभ्य अवसर प्राप्त हुआ है। मुझे अग्रणी बनाकर स्वागत-समिति ने मेरे प्रति जो अपना मोह-भाव तथा विश्वास प्रकट किया है, उसके लिये मैं उसके सदस्यों का अंतःकरण से कृतज्ञ हूँ। मेरी केवल यही प्रार्थना है कि आप लोगों की सहायता और सहयोग से जो कार्य मुझे सौंपा गया है, उसे समुचित रूप से पूरा कर सकूँ। एक बार मैं पुनः सभी आगंतुक साहित्यिकों का सहर्ष और सादर स्वागत तथा समस्त उपस्थित महानुभावों की ओर से आचार्य द्विवेदीजी का श्रद्धा-पूर्ण अभिनंदन करता हूँ।

इस विचार से प्रायः सभी सहमत होंगे कि द्विवेदी-मेला अपने ढंग का, हमारे यहाँ, एक नया आयोजन है। पाश्चात्य देशों में अपने साहित्यिकों तथा अन्य महापुरुषों के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिये जो आयोजन हुए हैं, उन्होंने अवश्य विविध रूप धारण किए हैं। परंतु जहाँ तक मैं जानता हूँ, कम-से-कम किसी भारतीय साहित्यिक महारथी को सम्मानित करने के लिये तो अभी तक इस प्रकार के मेले का आयोजन नहीं हुआ है। जो जातियाँ जाग्रत् हैं, वे अपने साहित्यिक महारथियों का आदर करना जानती हैं। मुझे विश्वास है, इस नए आयोजन द्वारा न केवल हम साहित्य-सत्कार के एक नए मार्ग का प्रदर्शन कर रहे हैं, वरन् अपनी साहित्यिक जागृति और उत्तरदायित्व का परिचय भी दे रहे हैं। फिर इस मेले के साथ जिस महामना का नाम संबद्ध है, वह हमारे उत्सव को एक विशेष महत्त्व प्रदान करता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के बाद यदि किसी ऐसे व्यक्ति का नाम लिया जा सकता है, जिसने हमारे साहित्य के विविध अंगों पर अपनी स्थायी छाप डाली हो, तो वह नाम पूज्यवर आचार्य द्विवेदीजी का है। यह उचित ही है कि हरिश्चंद्र-काल के अनंतर आनेवाले साहित्यिक काल को हम द्विवेदी-युग के नाम से अभिहित करें। हम लोग, जो उस युग के उत्तराधिकारी हैं, आचार्य की सेवा में अपनी श्रद्धांजलि उपस्थित करके न केवल अपने कर्तव्य का पालन करते हैं, वरन् आपके आशीर्वाद से आगे साहित्य-सेवा के मार्ग में सुमति-लाभ करने की साधना कर रहे हैं।

निजी रूप से, इस उत्सव में भाग लेकर, मैंने एक अकथनीय आंतरिक सुख और तृप्ति का अनुभव किया है। मैं अपने को उन भाग्यशाली व्यक्तियों में गिनता हूँ, जिन्हें आचार्य द्विवेदीजी का किंचिन्मात्र ममत्व प्राप्त है। इस बात का मुझे भली भाँति सुखद स्मरण है कि मेरी पहली काव्य-रचना आचार्य के संपादन-काल में ही 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। आचार्य द्वारा मुझे काव्य-रचना के कार्य में सदा प्रोत्साहन और परामर्श मिला है। खड़ी बोली की रचना के प्रति प्रेम तथा उसके भविष्य में दृढ़ विश्वास मुझे आचार्य की कृपा से ही प्राप्त हुआ है। अतएव यह स्वाभाविक ही है कि इस अवसर को मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश करने का अवसर समझूँ, और उससे विशेष रूप से प्रभावित होऊँ। इस मेले का जो यह विशेष अवसर है, उसे आप उपस्थित सज्जन-गण भली भाँति जानते हैं। गत २८ एप्रिल को

* द्विवेदी मेला के स्वागताध्यक्ष का भाषण।—संपादक

आचार्यवर की अवस्था का ६६वाँ वर्ष पूरा हो गया। इसी के उपलक्ष में इस उत्सव का आयोजन किया गया है। अभी परसों, दूसरी मई को, काशी में नागरी-प्रचारिणी सभा ने भी इसी संबंध में बड़े समारोह से आचार्य को एक अभिनंदन-ग्रंथ अर्पित किया है। हम प्रयाग-निवासियों ने इस अवसर को दूसरे ही प्रकार स्मरण करने का आयोजन किया है। प्रयाग से आचार्य का चिर-संबंध रहा है, और हमें पूर्ण विश्वास है, प्रयाग-निवासी अपने सत्कार में किसी प्रकार की त्रुटि का अनुभव न होने देंगे। इस बात का खेद है कि द्विवेदीजी का स्वास्थ्य अब पहले-जैसा नहीं रहा, और अब आपको प्रायः इस अवस्था में बाहर आने-जाने में अनेक प्रकार की असुविधाएँ होती हैं। परंतु यह सब होते हुए भी हम लोगों की श्रद्धा-भक्ति आपको सहर्ष यहाँ खींच लाई, इसका हमें अपार आनंद है। हमारी प्रार्थना है कि ईश्वर आचार्य को चिरायु करे, और हमें आपके जन्म-दिवस-संबंधी इस उत्सव की अनेकानेक पुनरावृत्तियाँ करने का अवसर दे।

इस मेले में क्या होगा, और किस प्रकार होगा, यह तो आप छपे हुए विभिन्न कार्य-क्रम-विवरणों से जान लेंगे। परंतु जिन महामना के सम्मानार्थ यह आयोजन हुआ है, उनके साहित्यिक महत्त्व का संकेत-मात्र ही मैं यहाँ कर सकता हूँ। साहित्य-सेवा का नियमित कार्य तो द्विवेदीजी ने कोई चालीस वर्ष की अवस्था में सँभाला था। इससे पूर्व आप लगभग २२ वर्ष तक रेलवे के कर्मचारी रहे। आपकी प्रारंभिक शिक्षा कुछ तो कुल-परंपरा के अनुसार पुरानी परिपाटी से संस्कृत में और कुछ विभिन्न अँगरेज़ी स्कूलों में हुई। सबसे बड़ी शिक्षा तो वह थी, जो आपने विना गुरु के अपने मनोयोग द्वारा प्राप्त की। प्रारंभ में आप कुछ दिनों तक अपने पिता के पास बंबई में रहे थे, और इस बीच में आपने मराठी तथा गुजराती का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आपकी बहुभाषा-विज्ञता ने आपके संपादकीय कार्य में आपकी बड़ी सहायता की।

यों रेलवे-विभाग में आपका बराबर पद और सम्मान बढ़ता जाता था, परंतु साहित्य-सेवा की प्रेरणा आपको सदा विकल करती रही। रेलवे-विभाग के कर्मचारी रहते हुए भी आपने विद्याभ्यास जारी रक्खा, और आपकी प्रतिभा रचनात्मक रूप में, विशेषकर कविता द्वारा, प्रकट होने लगी थी। इस बीच में आपने अनेक कविताओं की रचना की थी, जो तत्कालीन विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में सम्मान-पूर्वक छपी थीं। तथापि इससे आपको संतोष न होता था। सौभाग्य-वश यह प्रेरणा आपकी इतनी बढ़ी कि अंत में आपने रेलवे के कार्य को छोड़कर और अपनी आर्थिक हानि का कुछ भी ख़याल न कर साहित्य-सेवा में तन्मय होकर काम करने का निश्चय कर लिया। जैसा प्रकट है, यह निश्चय हमारे साहित्य के लिये एक युगांतर करनेवाली घटना थी।

सन् १६०४ में द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' का संपादन-भार ग्रहण किया। इंडियन-प्रेस से जिस प्रकार द्विवेदीजी का संबंध स्थापित हुआ, उसका भी एक छोटा-सा, परंतु रोचक इतिहास है। उक्त प्रेस के तत्कालीन स्वामी स्वर्गीय बाबू चिंतामणि घोष ने स्कूलों के विद्यार्थियों के लिये कुछ रीडरें प्रकाशित की थीं। संयोग-वश द्विवेदीजी की निगाह इन पर पड़ी, और आपको इन में बहुत-सी त्रुटियाँ दिखाई दीं। विद्यार्थियों के हित से प्रेरित होकर आपने तुरंत इन रीडरों की एक विस्तृत और तीव्र समालोचना प्रकाशित कराई। दूरदर्शी चिंतामणि बाबू ने इनसे रुष्ट होने के स्थान पर विशेष आग्रह कर इन्हीं से रीडरें लिखवाईं, और इसके थोड़े ही समय बाद 'सरस्वती' का संपादन-भार भी इन्हीं को सौंप दिया। इससे पहले 'सरस्वती' काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के कुछ सदस्यों द्वारा संपादित होती थी।

द्विवेदीजी स्वयं कवि तथा कविता-प्रेमी थे।

आपकी यह उसी समय निश्चित धारणा हो गई थी कि न केवल कविता के विषय में, वरन् उसकी भाषा में भी परिवर्तन की आवश्यकता है । इसी कारण आपने नवीन प्रकार की कविताओं की न केवल रचना की, वरन् अन्य कवियों को भी ऐसी रचनाओं के लिये प्रोत्साहन दिया । आपने भाषा के विषय में भी सदा बोलचाल की भाषा, अर्थात् खड़ी बोली की ही हिमायत की । आपने आरंभ में ही यह जान लिया था कि व्रज-भाषा कभी इस युग में कविता की भाषा नहीं हो सकती । यद्यपि खड़ी बोली उस समय कविता के लिये सुगठित नहीं हो पाई थी, तथापि आपने उसे कविता का माध्यम बनाए जाने पर ज़ोर दिया । आपकी यह दूरदर्शिता प्रत्यक्ष फल लाई है, और यदि आज दिन हिंदी के क्षेत्र में खड़ी बोली के उत्तमोत्तम कवियों का प्रादुर्भाव हुआ और हो रहा है, तो उसका आदि श्रेय अवश्य ही हमारे पूज्य द्विवेदीजी को प्राप्त होना चाहिए । संपादन-कार्य में व्यस्त रहते हुए भी आपने अनेक उत्तमोत्तम ग्रंथों का प्रणयन, संपादन, संग्रह तथा अनुवाद किया है । सबसे पहले तो समालोचना के लिये कालिदास तथा श्रीहर्ष आदि कुछ संस्कृत के कवियों को हिंदी-संसार के सामने उपस्थित कर आपने कवि-कृतियों की समीक्षा तथा समालोचना की अभिनव प्रणाली का सूत्रपात किया । संस्कृत के छंदों का भी हिंदी-कविता में उपयोग करने की प्रथा आपने चलाई । कुमारसंभव आदि कुछ ग्रंथों के अनुवाद भी आपके अनुपम हुए । कविता-कलाप, स्वाधीनता, शिक्षा, संपत्ति-शास्त्र, महाभारत, रघुवंश, बेकन-विचार-रत्नावली, चरित्र-चित्रण आदि अनेक उत्तमोत्तम ग्रंथ आपके मौजूद हैं, और आपके लेखों के संग्रह भी कई प्रकाशित हैं । मिल, स्पेंसर और बेकन आदि की रचनाओं का जैसा अनुवाद आपने किया है, उससे आपकी अँगरेज़ी की अपूर्व मर्मज्ञता स्पष्ट है । आपकी कृतियों की समीक्षा के लिये एक अलग बृहद् ग्रंथ चाहिए ।

'सरस्वती' के संपादन-काल में आचार्य ने हमारे साहित्य की बहुमुखी सेवाएँ की हैं । परंतु इनमें कदाचित् दो सेवाएँ विशेष महत्त्व रखती हैं—एक तो साहित्यिक भाषा का परिमार्जन और उसे साधारण बोलचाल की भाषा के निकट लाने का भगीरथ और निरंतर प्रयत्न, दूसरे समालोचना-साहित्य का एक प्रकार से मार्ग-निदर्शन । आचार्य के अनेकानेक लेख, जिनमें से बहुत-से अब प्राप्त हो सकते हैं, आपके इन दिशाओं में अध्यवसाय के साक्षी हैं । इन दोनो सेवाओं में रत होते हुए प्रत्येक सुधारक की भाँति आपको कठिनाइयों तथा बाधाओं का सामना करना पड़ा, कटूक्तियाँ सहन करनी पड़ी और बहुधा स्वयं तीव्र प्रहार करने पड़े हैं । परंतु इन सभी अवसरों पर आप सदा शुद्ध बुद्धि से प्रेरित हुए हैं, और जैसा आपकी कोटि के समालोचक के लिये उचित ही था, आपने कदापि व्यक्तित्व के भाव को नहीं आने दिया है । इस स्थान पर उन घटनाओं का उल्लेख भी अनावश्यक है ।

हिंदी-कविता को भाषा तथा भाव दोनो ही की दृष्टि से नई प्रवृत्ति देने में, हिंदी-गद्य-शैली तथा भाषा को उसका बहुत कुछ आधुनिक रूप प्रदान करने में, हमारे आलोचना-साहित्य की उन्नति तथा उसे एक नवीन और उत्कृष्ट आदर्श-पथ पर ले जाने में एवं गद्य तथा पद्य के अनेक मौलिक तथा अनुवादित ग्रंथों की रचना द्वारा हिंदी-साहित्य की श्री-वृद्धि करने में तो हम पूज्यवर आचार्य द्विवेदीजी की प्रत्यक्ष साहित्य-साधना का स्वरूप देख पाते हैं । ये सेवाएँ अत्यंत महत्त्व रखती हैं । परंतु क्या मैं यह कहने का साहस करूँ कि द्विवेदीजी की अप्रत्यक्ष रूप में जो साहित्य-सेवा हुई है, उसका मूल्य इससे सौगुना अधिक है ? वह ऐसी सेवा है, जिसका यथार्थ मूल्य आँकना आज हमारे लिये संभव भी नहीं । हम केवल उसका अनुमान, उसकी कल्पना कर सकते हैं । आचार्य की अप्रत्यक्ष साहित्य-सेवा दो प्रकार की हुई है—एक तो प्रायः बीस वर्ष तक हिंदी

की 'सरस्वती'-ऐसी उच्च कोटि की पत्रिका का संपादन करके आपने अन्य सहयोगियों के लिये एक आदर्श उपस्थित किया है। अनेक पत्र-पत्रिकाएँ 'सरस्वती' की भाषा, शैली तथा संयोजन को अपने लिये आदर्श समझती और इस प्रकार उससे प्रभावित होती रही हैं। पूरे बीस वर्षों तक इस संबंध में 'सरस्वती' की धाक बनी रही है। दूसरे, 'सरस्वती' के द्वारा न-जाने कितने लेखकों और कवियों को (यह कहना अत्युक्ति न होगी) आपने जन्म दिया। हमें यह कदापि न समझना चाहिए कि बीस वर्ष तक 'सरस्वती' में जो सुंदर, सुगठित गद्य तथा पद्य लेख छपे हैं, वे संपादक के दफ़्तर में उसी रूप में प्राप्त हुए थे, जिनमें वे छपे हैं। वास्तविकता इससे बिलकुल भिन्न है। श्रीमान् द्विवेदीजी का आचार्यत्व तो इसी बात से सिद्ध होता है कि इनमें से यदि सर्वांश में नहीं, तो बहुत अंशों में वे लेख, पंक्तिशः ही नहीं, बहुधा अक्षरशः, आचार्य के सुधारे हुए होते थे। इस प्रकार आपने हिंदी-लेखकों की एक पीढ़ी को लेखन-कार्य की शिक्षा दी। इस सेवा में, सच पूछा जाय तो, आचार्य ने अपने को मिटा दिया है, और यद्यपि यह सेवा स्वयं आचार्य के रचनात्मक कार्य के लिये बाधक रही है, तथापि इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारे साहित्य की वृद्धि के लिये हिंदी में आपने अनेक सुलेखकों तथा कविरत्नों की सृष्टि कर दी।

अपने साहित्यिक जीवन के इस दीर्घकाल में नाना प्रकार के मतभेद और विरोधों का सामना करते रहने पर भी आचार्य ने अपने स्वभाव में कटुता नहीं आने दी। अब वह समय आ गया है कि सभी स्कूल के साहित्यिक एकमत से आपकी महत्ता स्वीकार कर रहे हैं।

इस अनवरत साहित्यिक श्रम ने द्विवेदीजी के स्वास्थ्य को बड़ा धक्का दिया है। इसी कारण सन् १९२२ में आपको 'सरस्वती' से अलग होना पड़ा। पर आप विद्या-व्यसनी तो हैं ही। आपका पूर्ववत् लिखना-पढ़ना जारी रहा। फल यह हुआ कि १९२८ में आप फिर भयावह रूप से व्याधि-ग्रस्त हो गए। नीरोग होने पर डॉक्टरों ने साहित्यिक श्रम एकदम बंद कर देने की सलाह दे दी। तो भी नई-नई रचनाओं का अवलोकन करते रहने तथा यथासंभव अपने हाथों पत्रोत्तर देने के कारण आप पर अब भी बहुत श्रम पड़ता है।

इस शुभ अवसर पर एक प्रस्ताव मैं प्रयाग-निवासियों के सम्मुख रखना चाहता हूँ। आचार्यवर द्विवेदीजी की समस्त रचनाओं के एक संस्करण के अभाव का मैं बहुत दिनों से अनुभव कर रहा हूँ। यदि हमारे आचार्य कोई पाश्चात्य व्यक्ति होते, तो निस्संदेह हमें ऐसे संस्करण की कमी का अनुभव न होता। हिंदी-संसार के सामने द्विवेदी-ग्रंथावली और उसके साथ द्विवेदीजी की बड़ी जीवनी, ये ऐसे अभाव हैं, जिनकी शीघ्र पूर्ति होनी चाहिए। क्या मैं इस बात की आशा करूँ कि इस मेले के समाप्त होने से पहले हमारे उपस्थित प्रमुख साहित्यज्ञ इस विषय में निर्णय कर सकेंगे कि ऐसी ग्रंथावली प्रकाशित हो, और उसका आकार, ढाँचा इत्यादि कैसा हो। यह ऐसा कार्य है, जिसकी पूर्ति के लिये मेरी दृष्टि सहसा इंडियन-प्रेस और 'सरस्वती'-पत्रिका के स्वामी तथा स्वर्गीय चिंतामणि घोष के सुपुत्र श्रीहरिकेशव घोष के प्रति जाती है। इंडियन-प्रेस ने अपने जीवन-काल में हिंदी की अमूल्य सेवाएँ की हैं, और आगे भी करेगा। मैं केवल यही कहना चाहता हूँ कि यही संस्था इस संग्रह के प्रकाशन की अधिकारिणी है, और उसकी सेवा का मूल्य बहुत किया जायगा।

इससे पूर्व कि मैं अपने इस भाषण को समाप्त करूँ, द्विवेदी-मेला के सभी सहयोगियों के प्रति मैं कृतज्ञता-प्रकाश करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। जहाँ सभी कार्यकर्ता अपने-अपने कार्य में तत्पर रहे हों, वहाँ किन्हीं विशेष नामों का लिया जाना कदाचित् उचित न समझा जाय। तथापि यह लिखना

आवश्यक है कि द्विवेदी-मेला का विचार सर्व-प्रथम 'बाल-सखा' के संपादक ठाकुर श्रीनाथसिंहजी के मन में उत्पन्न हुआ था। उन्होंने तथा मुंशी कन्हैया-लाल ऐडवोकेट ने इस विचार को विज्ञप्ति देने तथा प्रचारित करने में आरंभ में बड़ी सहायता दी। वयोवृद्ध साहित्य-सेवी पंडित लक्ष्मीधरजी वाजपेयी ने भी इस योग में निरंतर पूर्ण सहायता दी है। सच तो यह है कि यदि वाजपेयीजी आगे आकर इस काम को न करते, तो कदाचित् ही हमें इस मेले में ऐसी सफलता प्राप्त होती। आपके साथ विशेष रूप से हाथ बटाया है हिंदी-प्रेस के स्वामी श्रीयुत रघुनंदन शर्मा ने। शर्माजी स्वर्गीय पं० रामजीलाल शर्मा के सुयोग्य पुत्र हैं। स्वर्गीय शर्माजी हमारे आचार्य के अभिन्न-हृदय मित्र और सहयोगी थे। श्रीरघुनंदनजी ने जिस तत्परता से कार्य किया है, वह द्विवेदीजी के प्रति पितृ-भक्ति का ही द्योतक है। यह बाबू केदारनाथजी गुप्त की कृपा है कि द्विवेदी-मेला इस भवन में हो रहा है। श्रीनिरंजनलालजी भार्गव हमारी विशेष कृतज्ञता के पात्र हैं। आपने द्विवेदी-मेला में सम्मिलित होनेवाले सभी बाहर के साहित्यिकों के रहने इत्यादि के सुपास का पूर्ण भार अपने ऊपर ले लिया। इसी प्रकार हमारे अन्य सहयोगी और कार्यकर्ता भी हार्दिक बधाई तथा धन्यवाद के पात्र हैं। बाहर से आनेवाले साहित्यिकों की सेवा में एक विनम्र निवेदन है। यदि उनके आदर-सत्कार में किसी प्रकार की त्रुटि हुई हो, तो उसे कृपा कर क्षमा करेंगे।

अंत में आप लोगों से मेरा यही अनुरोध है कि आप सब महामना द्विवेदीजी के प्रति, यहाँ उपस्थित होकर, हमें उत्साहित एवं चिर-बाधित करने के लिये अपनी आंतरिक कृतज्ञता प्रकट करें, और ईश्वर से यह प्रार्थना करें कि वह द्विवेदीजी को दीर्घायु करे, और हमें उनके सत्परामर्श और प्रेरणा से लाभ उठाने का बराबर अवसर दे।

मैं नहीं समझ पाता कि अपने निजी श्रद्धा के भाव किन शब्दों में व्यक्त करूँ। अतएव 'कामना'-शीर्षक कुछ पंक्तियाँ पढ़कर अपना विनम्र निवेदन समाप्त करूँगा—

कामना

मैं भी एक कवि बन जाऊँ, यही कामना है,
मेरी प्रतिभा का हो विकास क्षण-क्षण में;
और मैं बटोर लूँ मनोज्ञ, मृदु भाव सभी,
जो भरे पड़े हैं जगती के कण-कण में।
भर दूँ सरलता, मधुरता त्रिलोक की मैं—
निज रचनाओं के सुवर्ण-आभरण में;
फिर वे समस्त भावनाएँ भारती की भव्य
भक्ति से चढ़ा दूँ गुरुदेव के चरण में।

रुबाई

[पं० पद्मकांत मालवीय]

क्या हूँ ? किसने भेजा मुझको ?
हूँ किसलिये यहाँ आया ?
की कोशिश हज़ार मैंने, पर
अब तक कुछ न जान पाया।

जब सब चिंता छोड़, मस्त हो,
भूल गया अपने को भी,
तब अपनापन जाकर सब
बातों का पता लगा लाया।

दरबार की रात

[आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री]

(१)



जोधपुर में मुग़ल-ही-मुग़ल दिखाई पड़ते थे। प्रातःकाल ही से नगर में चहल-पहल थी। बड़े-बड़े सरदार घोड़ों पर चढ़े इधर-उधर दौड़-धूप कर रहे थे। नए-नए अमीर-उमराव बाहर से आए हुए थे। बाज़ारों में भीड़ लग रही थी।

यह वह समय था, जब मारवाड़ में मुग़लों का अधिकार हो गया था। दिल्ली के तख़्त पर प्रतापी औरंगज़ेब का शासन था। वहाँ नया सूबेदार बदलकर आया था। उसका दरबार होनेवाला था। इसमें सभी राजवर्गी पुरुषों को बुलाया गया था, केवल हिंदू-सरदारों को हथियार लेकर आना निषिद्ध था।

सड़कों और गलियों में स्त्रियाँ तथा पुरुष जहाँ-तहाँ भीड़-की-भीड़ खड़े काना-फूसी कर और आते-जाते योद्धाओं को देख रहे थे।

मुग़ल-पलटन की एक टुकड़ी क़ायदे से क़वायद करती हुई क़िले की ओर चली गई। क़िला एक ऊँची दुर्गम पहाड़ी पर स्थित मज़बूत पत्थरों का बना था, और उसका फाटक अभेद्य था।

दरबार का भवन मुग़लों से खचाखच भरा था, परंतु सभी राठौर-सरदार अभी नहीं आए थे। उनकी प्रतीक्षा में दरबार की कार्यवाही अभी स्थगित थी। एक सैनिक अफ़सर ने उत्सुकता से कहा—"सरदार लोग बड़ी देर कर रहे हैं।" और उसने पहाड़ी की तलहटी तक फैली हुई टेढ़ी, तिरछी सड़क की ओर देखा।

सुनहरी धूप में उसे उनके चमकते हुए चंचल घोड़े दिखाई दिए। वे सब धीरे-धीरे बातें करते बढ़े चले आ रहे थे। उनमें से किसी के भी हाथ में हथियार न थे। उसने दूसरे ही क्षण में कहा—"लो वे आ रहे हैं।"

उनमें कुछ उठते हुए युवक थे, जिनकी अभी रेखें भीगी थीं। कुछ वृद्ध पुरुष थे, जिनकी विशाल दाढ़ियाँ हवा में फहरा रही थीं। वे बातें करते और सशंक दृष्टि से मुग़लों से भरे क़िले को देखते हुए बढ़ रहे थे। घोड़े सुनहरी साज़ से सजे थे, और पोशाकें रंग-बिरंगी थीं।

नगर-निवासी तलहटी में सड़क के दोनो ओर खड़े उँगली उठा-उठाकर प्रत्येक के संबंध में अपने-अपने मनोगत भाव प्रकट कर रहे थे। एक ने कहा—

"देखो, यह राव करनसी बघेला जा रहे हैं, जिन्होंने रानी मा की पीठ पर रहकर उनकी रक्षा की थी, जब वह दिल्ली के घेरे को भेदन करके चली थीं।"

दूसरे ने कहा—"यह ठाकुर बख़्तावरसिंह पंचोली हैं, जिनकी तलवार पाँच हाथ की होती है। आज यह निहत्थे दुश्मनों के दरबार में जा रहे हैं।"

तीसरे ने चिल्लाकर, अपनी ओर सबको आकर्षित करके कहा—"और उधर देखो, उस सफ़ेद घोड़े पर कामोद के राव राजा प्रतापसिंह हैं, जिन्होंने उस दिन ख़ाली हाथों नाहर को चीर डाला था। वाह, क्या बाँका जवान है! अभी तो रेखें ही भीजी हैं।"

धीरे-धीरे ये लोग आँखों से ओट हो रहे थे, और ऊपर क़िले तक कोई भी अपरिचित नहीं जा सकता था।

सूर्य पर एक बदली का टुकड़ा आ गया। लोग काना-फूसी करते हुए उस क़िले को ताक रहे थे। उन रहस्यमयी दीवारों के भीतर क्या हो रहा है, यह जानना दुरसाध्य था।

एक ने कहा—"अभी तो और भी सरदार आवेंगे। मुकुंददास खीची—अरे, देखो, वह आ

रहे हैं। सिर से पैर तक लाल वेश है। मारवाड़-भर में ऐसा योद्धा नहीं। पर···देखो-देखो, वह बुढ़िया बेवक़ूफ़ किधर दौड़ी जा रही है, पागल।"

वह बुढ़िया तीर की भाँति पहाड़ी पर से उतर रही थी, उसके मुख पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। सामने ही सशस्त्र सिपाहियों के झुंड के साथ मुकुंददास खीची बढ़े चले आ रहे थे। सभी सशस्त्र थे। मुकुंददास स्वयं एक फ़ौलादी बख़्तर पहने और सिर से पैर तक हथियारों से लदे हुए थे।

वह दुर्गादास के घोड़े के आगे गिर गई। उसके मुख से निकला—"ठाकराँ, वहाँ न जाना, वहाँ ख़ून की नदी बह रही है, दग़ा है, दग़ा! मैं आँखों देखकर आई हूँ।"

वह काँप उठी, और दोनो हाथों से उसने आँखें बंद कर लीं। मुकुंददास खीची घोड़े से कूद पड़े। उन्होंने वृद्धा को हाथ से उठाकर कहा—"बूढ़ी मा, बात क्या है? तुम्हारा अभिप्राय क्या है? क्या क़िले में.........."

उसने सिर उठाकर भयभीत स्वर में कहा—"महाराज, वहाँ प्रत्येक सरदार बकरे की भाँति हलाल किया जा रहा है। बेचारे वीर करनसिंह बघेला और प्रतापसिंह के सिर धरती में लुढ़क रहे हैं। वहाँ प्रत्येक माई का लाल धोखे से, ज्यों ही वह घोड़े से उतरकर ड्योढ़ी पार करता है, मार डाला जाता है। वे दग़ाबाज़, पाजी, कुत्ते तुर्क......मैंने आँखों देखा है, महाराज, आँखों देखा है।"

क्षण-भर को सन्नाटा छा गया। मुकुंददास का सिर नीचे झुक गया, उन्होंने भर्राई आवाज़ में कहा—"उन्होंने बघेला सरदार को मार डाला, और मेरे प्यारे वीर भतीजे को भी, जिसका कंगन अभी नहीं खुला!"

वह कूदकर घोड़े पर चढ़ गए। क्रोध से उनका मुख लाल हो गया। उन्होंने होठ काटकर कहा—"कायरो, पापियो, हत्यारो!" उन्होंने आकाश की ओर मुँह उठाया, और मुट्ठी बाँधकर कहा—"मैं सूर्योदय से प्रथम ही उन्हें धूल में न मिला दूँ, तो मेरा नाम मुकुंददास नहीं।"

उनके प्रत्येक सिपाही ने तलवार सूत ली। मुकुंददास ने शांत स्वर में कहा—"इसकी आवश्यकता नहीं है, ठाकराँ, मेरे साथ आओ।" वह घोड़े से उतर पड़े, और अपने साथियों तथा उस स्त्री के साथ गहन वन में विलीन हो गए।

(२)

वन के अगम्य स्थल पर मुकुंददास ने घोड़ों को रुकवा दिया, और राजपूतों को चुपचाप बैठने की आज्ञा दी। फिर वह बूढ़ी औरत को एक तरफ़ ले गए, और कहा—

"मा, तुमने मेरे प्राण बचाए हैं, एक उपकार और करो। अभी तुम चुपचाप घर में बैठना। संध्या होने से पहले ही तुम नगर में यह देखना कि कौन कहाँ ठहरा है। उन मकानों पर चिह्न कर देना, और संध्या होते ही मुझे इसकी सूचना दे देना।"

वह स्त्री चली गई, और मुकुंददास गंभीर चिंता में डूब गए।

संध्या हो चली। मुकुंददास विचलित भाव से उस वृद्धा की प्रतीक्षा कर रहे थे। वह धीरे-से आई और बैठ गई। एकदम थक गई थी। मुकुंददास ने उसे गंभीर मुद्रा से देखकर कहा—"माता, तुम वह काम कर आईं? उनका क्या हाल है?"

"वे वहाँ आनंद मना रहे हैं, दावतें उड़ रही हैं, और नाच-रंग हो रहे हैं। अभागे नगर-निवासियों से बल-पूर्वक बेगारें ली जा रही हैं। भले घर की बहू-बेटियाँ सुरक्षित नहीं, वे चाहे जिसके घर में घुसकर उनकी लाज लूट रहे हैं। ठाकराँ, आज की रात काल-रात्रि है।"

वह कुछ ठहर गई। उसकी आँखों से आँसू ढरक पड़े। उन्हें दोनो हाथों से पोछकर उसने कहा—

"वे जिन-जिन घरों में ठहरे हैं, मैंने उन पर चिह्न कर दिया है। गलियों में सन्नाटा छा रहा है। सब लोग चुपचाप द्वार बंद किए बैठे हैं। कुछ घर छोड़-

कर भाग गए हैं। जहाँ वे हैं, उन घरों से अबलाओं के चिल्लाने की ध्वनि आ रही है।"

मुकुंददास की आँखों से आग निकल रही थी। उन्होंने कहा—"मा, तुमने बहुत काम किया, अब तुम थोड़ा विश्राम कर लो। आधी रात बीतने पर मेरा काम प्रारंभ होगा।"

आधी रात होने पर मुकुंददास ने अपने सब साथियों को चुपचाप तैयार होने का आदेश दिया। वह स्वयं भी घोड़े पर सवार हो गए, और सब धीरे-धीरे उस ऊबड़-खाबड़ पर्वत-पथ को पार करते हुए नगर की ओर चले। वह स्त्री भी उनके साथ थी। नगर में प्रवेश करते ही वह रुकी, उसने कहा—"ठाकराँ, कुछ और चीज़ तो नहीं चाहिए। यह मेरा घर है।"

"हाँ मा, हमें कुछ मज़बूत रस्सियाँ और सूखा फूस चाहिए।"

"फूस तो छप्पर से लेना होगा, रस्सियाँ मैं लाती हूँ। तुम सिपाहियों से कहो, वे छप्पर पर चढ़ जायँ, और उसे उधेड़ लें। कुछ चिंता नहीं, मैं ग़रीब तो हूँ, पर फिर बनवा लूँगी।"

वह बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए भीतर घुस गई।

मुकुंददास ने सिपाहियों को घोड़े से उतरने का आदेश दिया। वह स्वयं भी घोड़े से उतर पड़े। कुछ ही क्षणों में सबने अपने सिर के साफ़े खोल डाले, और फूस के गट्ठे बाँध लिए। एक-एक रस्सी भी सबके हाथों में थी। उन्होंने जूते भी उतार दिए, और निश्शंक नगर में घुस गए। वृद्धा को उन्होंने छुट्टी दी।

रात अँधेरी थी। जिन घरों पर चिह्न थे, उनके द्वारों को उन्होंने ख़ूब कसकर रस्सी से बाँध दिया, और उन पर साँकलें चढ़ा दीं, ताकि कोई भी बाहर न निकल सके। इसके बाद थोड़ा-थोड़ा-सा फूस द्वार पर रख दिया। देखते-देखते समस्त चिह्नित द्वार रस्सियों से बाँध और फूस से ढाँप दिए गए। फिर मुकुंददास ने एक संकेत किया, और एकबारगी ही समस्त फूस में आग लगा दी गई। तदनंतर सब राजपूत अपने घोड़ों पर सवार होकर, अलग हटकर खड़े हो गए। सबने तलवारें सूत लीं। मुकुंददास ने गंभीर स्वर में कहा—"वीरो! ये पतित, हत्यारे एक भी न बचने पावें। जो बाहर निकले, उसी के दो टुकड़े कर दो। सावधान रहो!"

देखते-ही-देखते आग की लपटें प्रचंड हो गईं। गली-कूचे धुएँ से भर गए। प्रथम धीमा और फिर प्रचंड चीत्कार उठ खड़ा हुआ। कुछ ही क्षण में सारा नगर धायँ-धायँ जलने लगा। फूस की आग से लकड़ी के पुराने विशाल दरवाज़े और दीवारें चर-चर करती जल उठीं। प्रतिक्षण आग प्रचंड होती जाती थी, और अब दूर-दूर तक उसका प्रकाश फैल रहा था, जिसमें राठौर वीरों की भयानक काली मूर्तियाँ नंगी तलवार लिए चुपचाप खड़ी दिखलाई देती थीं।

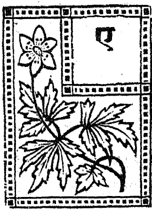
मकानों से भयानक, करुणा-जनक चीत्कारें आ रही थीं। मनुष्य झुलस रहे थे, और डकरा रहे थे। आग की लपटें आकाश को छू रही थीं, सिपाहियों के हृदय फटे पड़ते थे, परंतु मुकुंददास हाथ में नंगी तलवार लिए चुपचाप पत्थर की मूर्ति की तरह अचल खड़े थे।

(३)

रात बीत गई। सूर्य की सुनहरी किरणें उस भस्मी-भूत नगर पर पड़कर एक और ही समा दिखा रही थीं। एक भी मुग़ल जीता न बचा था। मुकुंददास और उनके वे सिपाही वहाँ से चले गए थे, और वह वृद्धा आँखें फाड़-फाड़कर उन जले हुए कंकालों को देख रही थी, जिन्होंने कल ही अत्याचार और क़त्ल के बाज़ार गर्म किए थे।

केनिया में ब्रिटेन का धार्मिक ट्रस्ट

[श्रीयुत बालकृष्ण गुप्त (लंदन से)]



एक नवीन युग का उदय हुआ है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को नैतिक सिद्धांतों के ऊपर स्थित करने का बहाना ग़ायब हो गया है। जापान राष्ट्र-संघ के कोवेनैंट तथा केलोग-पैक्ट को ढिठाई तथा लापरवाही के साथ तोड़ डालता है, योरप अमेरिका को क़र्ज़ देने से इनकार कर देता है। अंतर्राष्ट्रीय सुलहनामों तथा राज़ीनामों की इस टूट-फूट में हमें नई बात नज़र यह आती है कि दिन-दिन अधिकाधिक तादाद में बढ़नेवाले स्टेट अपनी राष्ट्रीय पॉलिसी को, मामूली औज़ार की तरह, ख़ासोआम में ज़ाहिर करते जा रहे हैं, और यह एक साधारण घटना हो गई है।

अब सम्मान, गौरव तथा ईमानदारीवाले पुराने विचार निकम्मे हो गए हैं। उन्हें बाहरी दिल से जो तारीफ़ दिखलावे के तौर पर हासिल थी, वह भी नहीं रह गई। डिप्लोमेसी के माने अब कूट-नीति तथा कपट नहीं रह गए हैं। सरेआम आज वह नंगा नाच कर रही है, जो चाहे देख ले, समझ ले।



मिस्टर चार्ल्स विलियम हाब्ले, सी० एम्० जी०

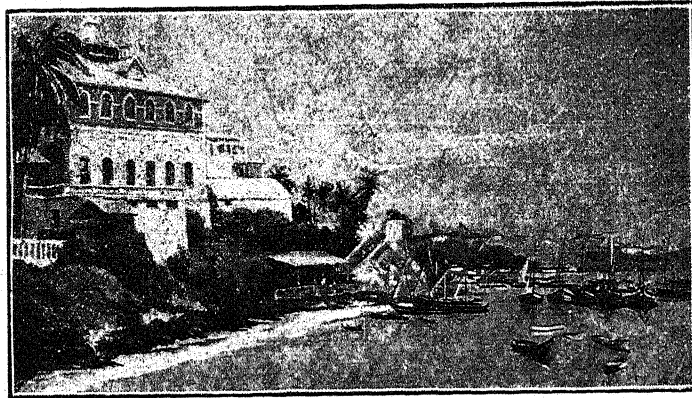
[केनिया के अनुसंधान और शासन में आपका बहुत बड़ा भाग है।]

फिर दुनिया की सर्वोच्च ताक़तों में अग्रणी इँगलैंड भी इस नए कोड (Code) को धारण करने में कैसे पीछे रहे? कुछ महीने हुए, केनिया - उपनिवेश के माननीय गवर्नर महोदय ने कवीरोंडो की काली जाति के मुखियों को नयांजा-ज़िले के हेड-क्वार्टर काकामेगा में आमंत्रित किया। कालों तथा भूरों की इन एकत्र मंडलियों में प्रायः एक सदी से सफ़ेद शासकों का जैसा चिरंतन कर्तव्य होता आया है, यानी खड़े होकर स्पीच दे देना और निम्न श्रेणी की इन जातियों के बहस-मुबाहिसों, प्रश्नोत्तरों में शामिल न होना, उसी परंपरागत प्रथा का पालन करते हुए गवर्नर साहब ने अपनी वाणी व्यक्त

की। उन्होंने मीठी एवं विश्वास दिलानेवाली आवाज़ में, भाव से कहा, और भरोसा दिलाया कि वे गोरे, जो आज उनकी नहरों, नालियों तथा बग़ीचों में सोने की खोज कर रहे हैं, भले आदमी हैं (और गोरे सदा से एशिया तथा आफ़्रिका में भले ही होते आए हैं, भले ही योरप तथा ख़ासकर जेनेवा में एक दूसरे को बदमाश और बेईमान साबित करना हर सुबह-शाम के अख़बारों का काम रहता हो)। वे उन्हें उनकी निजी ज़मीन से न तो जंगली जानवरों की तरह डराकर भगावेंगे, न पालतू पशुओं की ही तरह हाँककर बाहर निकालेंगे। यह धरती हमेशा को उन्हीं की घोषित कर दी गई है।

कवीरोंडो प्रतिज्ञा करते समय कुत्ते का सिर काटकर उपस्थित जन-समूह पर उसके ख़ून के छींटे डालते हैं। तब प्रतिज्ञा पक्की होती है। गवर्नर महाशय से भी यह प्रार्थना की गई कि इस तरीक़े से अपनी प्रतिज्ञा पक्की कीजिए; परंतु आपने जवाब दिया कि गोरे ऐसे रिवाजों के पाबंद नहीं, उनके तरीक़े दूसरी तरह के हैं; मैंने अपना वचन दिया है, इससे अधिक क्या माँगते हो?

कवीरोंडो के स्वत्व १९३० की Native Land Trust Ordinance ने भी गारंटी किए थे। इसने हमेशा के लिये, देशीय कालों के लिये, अलग-अलग ज़मीन के बड़े टुकड़े नियत कर दिए थे, ताकि वे उसे इस्तेमाल कर सकें, और उसका फ़ायदा उठा सकें। सर्वसाधारण के लाभ के लिये या खनिज पदार्थों के निराकरण के लिये इन रिज़र्व हिस्सों में से ज़मीन तभी ली जा सकती थी, जब जाति के बाशिंदे इस बात का, सलाह करने पर, समर्थन करें तथा अनुमति दें। अगर ज़मीन का कोई हिस्सा इस इजाज़त के बाद लिया भी गया, तो उसी के बराबर आकार का, अच्छी ज़मीन का, और मुमकिन होने पर उसी से मिलता-जुलता तथा पास लगा, किसी को पहले न दिया या न बेचा हुआ, खुली सरकारी ज़मीन का हिस्सा उन्हें बदले में दिया जायगा। इसके अतिरिक्त बेदख़ल किए हुए काश्तकारों को, उनकी इमारतों तथा फ़सलों का, वहाँ से दूसरी जगह



मोंबासा का बंदरगाह

आकर बसने के ख़र्च तथा कष्ट का तथा नई-पुरानी छीनी ज़मीन की क़ीमत के फ़र्क़-रूप हर्जाना दिया जायगा। यह क़ानून तथा शाही खरीतों में लिखी बात है।

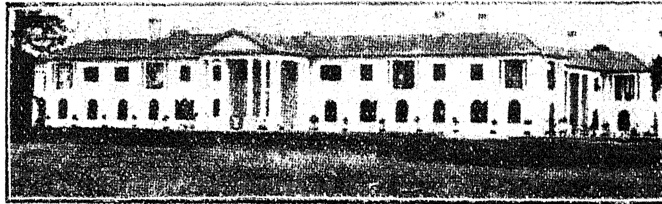
अब होता है कार्य-क्रम शुरू। पहलेपहल सर अलबर्ट कीटसन नाम के इंजीनियर मैदान में आए। नए आकर बसे हुए गोरों की लपलपाती, लोभी जीभों को जाग्रत् करना आपका काम था। कोकामेगा में सोने के होने की उम्मीद बहुत दिनों से की जा रही थी, लेकिन उसको निकालने गई। केनिया-लेजिस्लेटिव-कौंसिल (इसमें गोरों का प्राधान्य तथा एकाधिपत्य है। हाँ, शायद एक-दो भारतीय भी हैं।) में बड़ी जल्दी और सर-गर्मी के साथ एक संशोधन पास हुआ, और विला-यत में, जब पार्लियामेंट अपनी क्रिसमस की धर्म-जनित छुट्टियाँ मना रही थी, बेचारे बादशाह को ग़रीब प्रजा में बदनाम करने को सर फ़िलिप कनलिफ़् लेस्टर ने शाही स्वीकृति प्रदान कर उस पर दस्तख़त कर दिए। बर्नार्ड शा अपनी 'काली बालिका की परमेश्वर की खोज'-नामक पुस्तक में



नैरोबी का प्रधान जन-मार्ग

पर नफ़ा प्राप्त होता है या नहीं, यह संदेहास्पद बात थी। कीटसन ने साबित कर दिया कि ख़ूब नफ़े के साथ उस सुनहरी धरती में से सोना निकाला जा सकता है। अब कालों के सामने अपनी ज़मीन से निकल जानेवाली समस्या पेश हुई। पहली बाधा गवर्नर साहब का वादा था, पर उसे फ़ायदे के लिये विस्मृति के ताक़ पर रख दिया गया। दूसरी बाधा डिप्लोमेसी के नवीन युग की नई लहर के अनुसार तोड़ डाली ठीक ही कहता है कि बादशाह तो गंदे राजनीतिक कारनामे करवाने के लिये रख छोड़ा गया है। उसको पता ही क्या कि पार्लियामेंट में बहुमत के दल के प्रतिनिधि राज्य करते हैं। जब पार्लियामेंट जनवरी में जुड़ी, तो क़ानून बना-बनाया मौजूद। लेबर-पार्टी का छोटा-सा दल अब सवाल पूछकर तथा स्पीचें देकर भी इस अन्याय का विरोध न कर सकता था, कंजरवेटिवों से भरी उस पार्लिया-मेंट में क़ानून को नामंज़ूर कराना तो अलग रहा।

इस संशोधन द्वारा गवर्नमेंट ने अपने सिर से वह बोझ उतार डाला, जो बदले में बराबर की ज़मीन देने और देशी लोगों से ज़मीन छीन-झपट लेने से पहले सलाह करने के क़ानूनी रूप में था। ये क़ानूनी रुकावटें ज़मीन लेने में गोरों को सहज ही कामयाब न होने देतीं। देशी लोग बेदख़ली के लिये सहमत नहीं भी हो सकते थे, उन्हें जितने भी हर्जाने का लोभ दिया जाता। पर गोरों को तो ज़मीन चाहिए ही थी। यह सब सोचकर चीफ़ नेटिव कमिश्नर साहब ने ज़ाहिर किया



गवर्नमेंट-हाउस, नैरोबी

कि चूँकि यहाँ के लोगों के दिल टूट जायँगे, उनके विश्वासों को धक्का लगेगा, उनकी सर्व-मान्य परंपरागत धार्मिक रीतियाँ नष्ट होंगी; इसलिये चुपचाप कार्रवाई की जाय। इसके माने ये हुए कि वे अपनी मरज़ी से अपनी उस ज़मीन से जुदा हो जायँ, जहाँ पर सदैव से वे बसते आए हैं, और जहाँ पर सदैव बसने का उन्हें क़ानूनन् अधिकार है, और इसकी जगह वे ऐसी जगह जा बसें, जहाँ से वे इच्छानुसार खदेड़े जा सकें। ऐसी हालत में अगर उनसे सलाह लेने की कोशिश की भी जाती, तो वह नायर-कमेटी का-सा नाटकीय स्वाँग-मात्र रह जाता।

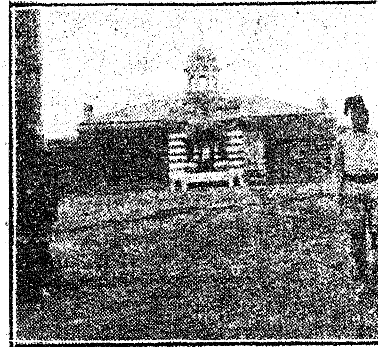
अब उन्हें नई ज़मीन देने की ज़रूरत? सबसे सीधा रास्ता हुआ मूल क़ानून से ऐसी बात की गारंटी को ही ख़ारिज कर देना। अब कवीरोंडो-ज़िले से चिपटा हुआ बंजर भूमि का एक बड़ा-सा हिस्सा ग़ैर-आबाद पड़ा हुआ है। इससे काले बहुत पहले साफ़ किए जा चुके हैं, और अब वह नए बसे गोरों की संपत्ति है, चाहे वे उसे आबाद करें या न करें; और वे शहरी गोरे खानों की उन्नति के कारण अपना इस पास की ज़मीन की क़ीमत में बड़े भारी चढ़ाव की उम्मीद लगाए बैठे हैं। बेदख़ल देशियों को अपनी ज़मीनें वे आसानी से न देंगे। उनका विरोध कालों का-जैसा सरल नहीं, और उनके हथियार कुत्ते के ख़ून के छींटे भी नहीं। कवीरोंडो-जाति का विरोध मामूली बात थी। विलायती अख़बारों में सिवा दो-चार धर्म-भीरुओं, साम्यवादियों, राष्ट्र-हित-विरोधियों के कौन इनकी ओर देखता है? गोरों के पीछे बीस-बीस लाख की बिक्रीवाले 'डेली मेल', 'डेली एक्सप्रेस' से लेकर सारा धनिक गोरा-संप्रदाय खड़ा है।

नवीन डिप्लोमेसी का स्वागत करनेवाले भी संशोधन-आर्डिनेंस के पक्ष में दी हुई कोलोनियल मिनिस्टर की दलीलों से नाउम्मीद हो

जायँगे। मिनिस्टर का कहना है, यह क़ानून थोड़े दिनों के लिये है, केवल ३०० देशी परिवारों को प्रभावित करनेवाला!—इससे केवल ६ में ५ हिस्से सोने की जमीन स्वर्ग-प्रार्थी पर्यटकों के हाथ आती है! फिर खानों की खुदाई द्वारा बहु-मूल्य धातु जमीन से निकाल लेने पर काले और गोरे दोनो को फ़ायदा है, आदि-आदि। लेकिन स्टेट-सचिव की यह बात इस नए युग के माफ़िक़ नहीं। और, ये बातें बहुतों की आँखों में धूल न डाल सकेंगी। हमें पता है कि 'थोड़े दिन के लिये' के माने हैं कि जब तक मिट्टी में सोना है, खानों का काम तब तक जारी रहेगा—गोरे घुमक्कड़ तब तक उस हिस्से को दबाए रहेंगे, जब तक सोने का आख़िरी कण उस हिस्से की धरती से न निकाल लिया जायगा। अधिकांश देशी काले घर-विहीन और पृथ्वी-विहीन कर दिए जायँगे। शायद खानों को खोदने का सख्त काम, कुछ पैसों पर, बारह घंटे दिन के हिसाब से, उन्हें मिल जाय। अगर सर फ़िलिप का मतलब इस महान् लाभ से है, तो कालों को निश्चय ही लाभ हुआ है। खेती-बारी के उनके मनभावने काम को जबरदस्ती छुड़ा देना तथा प्रकृति से सुंदर नयांजा के निकटवाले स्थान की खान में कुलियों का, गंदी बस्ती में, आधी-चौथाई मजदूरी पर, काम करना शायद सर फ़िलिप की परिभाषा में कालों के लिये काफ़ी लाभ है! उस पर अपनी ही ज़मीन पर गोरे मकान-मालिकों का गंदे टीन तथा फूस के घरों के लिये चौथाई से आधी रक़म किराए में देना क्या न्याय्य है?

नफ़े का अधिकांश भाग कुछ इने-गिने व्यक्तियों के पेट में जायगा, और उनमें से एक भी काला न होगा। घटनाओं का यही क्रम दक्षिण-आफ़्रिका के यूनियन में रहा है। कौन माई का लाल कह सकता है कि केनिया में एक दूसरी नीति बरती जायगी?

१९३० में, ईस्ट आफ़्रिका में, नेटिव-नीति पर छपा हुआ पार्लियामेंटरी सफ़ेद पत्र, जिसमें ब्रिटेन का धर्म-ट्रस्ट, देशी कालों के फ़ायदों को प्राधान्य देना कहा गया है, अभी तक बिक रहा है। पर धर्म-ट्रस्टवाली बात तो भूतकाल के गर्भ में विलीन हो गई है। व्यवहार में तो यह कभी आई ही नहीं।



यूगैंडा-अंतर्गत कामपला में वहाँ के शासक का निवास-स्थान

'भक्त'जी और प्रकृति-निरीक्षण

[श्रीपं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला']



कोई स्वर भाषा की वीणा में छेड़िए, उसका श्रुति-सुखद सार्थक रूप राग बन जायगा। इस प्रकार जो भी बीज काव्य के क्षेत्र में अंकुरित हो, वह काव्य-प्रकृति के अंतर्गत कहा जायगा। जहाँ प्रकृति का स्वर सूक्ष्मतम, अश्रव्य, मौन, चिर-समाप्ति में पारवाली आख्या प्राप्त करता है—जिसे लोकोत्तरानंद कहते हैं, वह भी प्रकृति की क्षीणतम अव्यक्त अवस्था है। स्वर, काव्य, रूप आदि में बँधी प्रकृति की प्रत्येक संज्ञा इसी अप्रकट, अनादि स्थिति से संसार में गोचर होती और फिर अपने सुख-दुख का संसरण पूरा कर पूर्व स्थिति में विलीन हो जाती है। इस आख्या के ग्रहण से सभी प्रकार के कवि प्रकृति के निरीक्षक कहे जायँगे। पर पश्चिमी जो प्रथा हिंदी के आलोचनांक में खेलने लगी है, उसके अनुसार केवल शोभामयी बाह्य प्रकृति का पुजारी कवि Nature Poet (प्रकृति का कवि) कहा जायगा। अँगरेज़ी के प्रमुख कवि वर्डस्वर्थ की यही निर्णीत विशेषता है। हमारे सौभाग्य से श्रीगुरुभक्तसिंहजी 'भक्त' बी० ए०, एल्-एल्० बी० हिंदी के प्रकृति-जल पर एक ऐसे ही कमल होकर विकसित हुए हैं। राष्ट्र-भाषा की अन्यान्य दिक्कुमारियाँ जिस प्रकार नई मुस्कान हँसने लगी हैं, बाह्य प्रकृति के आयत नयन उसी प्रकार 'भक्त'जी के मधुर वीक्षण से स्नेह-चंचल हो गए हैं। युग के सूर्य की स्वर्ण-किरण 'भक्त'जी के काव्य-शिखर पर भी पड़ी है।

'भक्त'जी हिंदी के पाठकों के प्रिय चिर-परिचित कवि हैं। अच्छे-अच्छे प्रायः सभी पत्र आपकी रचना-रुचि से भरकर जन-समक्ष निकलते रहते हैं। कितने ही बार आपकी निर्मल शब्द-कलियों का हार गले में धारण कर मैं सुखी हो चुका हूँ। आज यह एक उसी सुगंध की मंद प्रशंसा की।

युक्त-प्रांत का पूर्वीय भाग, बलिया, 'भक्त'जी की स्वर्ग से भी गरीयसी जन्मभूमि है, आपके बालपन के दुर्दम दिनों की रंगशाला। यह भाग प्रकृति की रम्यता के लिये प्रसिद्ध है। मैं पहले 'पवहारी बाबा' आदि पुस्तकों, भ्रमण-कहानियों, लेखों तथा लोक-मुखों से इस प्रांत की बड़ी तारीफ़ सुन चुका हूँ। निकट ही ग़ाज़ीपुर के गुलाब, बेला, जुही आदि के बग़ीचे, पौंड़ के पौंड़े, शकर, गंगा और सरयू दो विशाल नदियों का दक्षिण-उत्तर घेरकर बहना, सुरहा आदि झीलों की कमल-शोभा, जल-स्थल और आकाश की दिव्य प्रकृति और प्रकृति-चर अनेकानेक पक्षियों का एकत्र विहार, झीलों और नदियों के किनारे नीड़ रचकर रहना, उपजाऊ भूमि की लहराती हुई श्याम शस्याभा आदि-आदि स्वभावतः मनुष्यों के मन को दिव्य विभूति से ओत-प्रोत कर देते हैं। इस सुंदरी प्रकृति ने 'भक्त'जी की आँखों में रूप-दर्शन की नई ज्योति भर दी। उनकी कविता चतुर्दिक् के प्राकृत सौंदर्य-जल से पर्वत-हृदय की कंदरा पूर्ण कर झरने की तरह मधुर शब्द-कलकल करती हुई, छंदों में, यति में उठती-गिरती, फिरती-फेरती आँखें वह चली।

आपकी कविताओं के तीन संग्रह—सरस सुमन, कुसुम-कुंज और वंशी-ध्वनि—अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। यहाँ हम आपके रचित प्रकृति के पुष्पोपम पद्यों की बानगी, अपनी साधारण-सी आलोचना के साथ, पाठकों की रुचि के सामने रखते हैं। यद्यपि हमें पूरा-पूरा अनुभव है कि इस आलोचना से पहले ही पाठकों के लोचनों को 'भक्त'जी की कृतियाँ चुरा चुकी होंगी।

'भक्त'जी जैसे कवि हैं, तदनुसार वह प्रकृति के ही अपरापर रूपों पर तूलिका चलाते रहे हैं, और उनका थोड़ा-सा भी वर्णन इस छोटे-से निबंध में होना असंभव है, यहाँ तक कि एक भी पद्य का पूरा-पूरा चित्रण नहीं दिखलाया जा सकता। इसलिये संक्षेप ही में उनके क़लम की ख़ूबियाँ खींची गई हैं।

'कृषक-वधूटी'-शीर्षक पद्य में कृषक-बहू की सुंदर तस्वीर, उसके कार्यों के भीतर से हूबहू वर्णन द्वारा, आपकी आँखों के सामने खड़ी कर दी और साथ-साथ काव्य-रस का उत्स भी खोल दिया है—

फूला खेत देख सरसों का फूली नहीं समाती है;
पहन वसंती सारी प्यारी फूलों में मिल जाती है।

❀　❀　❀

भर-भर अंक उठाकर रखती बालें दानों-भरी हुई;
पवन-वेग से आँचल उड़ते, प्यारी मानो परी हुई।

कितनी सहृदयता किसान-किशोरी के लिये है! रूप से रहित समझी जानेवाली को कवि की लेखनी परी बना देती है, और कितनी ख़ूबसूरती से! इस पद्य में खेत और घर के और भी अनेक सुंदर उल्लेख, जैसे खेत में अंडे सेनेवाली चिड़िया का सभय उड़-उड़ जाना, एक बिल से निकलकर चूहे का दूसरे 'बिल' को भग जाना, होली मनाना आदि प्रसंग-वश आए हैं, जिनका हम उल्लेख स्थान-संकोच के कारण नहीं कर सके।

'नदी' पर आपने कितना सुंदर लिखा है—

हृदय में जो बसी है शैल-वन के,
　सजी है फूल की माला पहनके,
उसी सरसी की यह तटिनी है बाला;
　सरस पय है पिलाकर उसने पाला।
पवन आ-आ हिलाता है हिंडोला;
　कभी तारों से खेली आँखमिचोला।
पहन आबेरवाँ सारी लहरदार—
　किनारा बेल-बूटों से तरहदार—
कभी किरनों के सँग में नाच आई;
　कभी फूलों के सँग में मुस्किराई।
सिवारों से कभी खेली व लिपटी;
　कभी मछली के सँग उलझी औ' झपटी।
यों ही बढ़ती गई, कुछ तन पसारा;
　युवापन को हुई कुछ तेज़ धारा।
तरंगों ने उसे उठ-उठ नचाया;
　बहुत चक्कर भँवर ने भी खिलाया।
लखी हिमगिरि ने इसकी यह अवस्था,
　लगा तब ब्याह की करने व्यवस्था।
करा पाणि-ग्रहण तब मंत्र द्वारा—
　बना जलनिधि को इसका प्राणप्यारा—
बिदा बस कर दिया आँसू बहाकर—
　सहेली और माता से छुड़ाकर।
सहेली साथ खेली छूटने से—
　सरस माता का नाता टूटने से—
नदी बेकल हुई, पड़ता न था कल;
　बहाती ही रही आठो पहर जल।

❀　❀　❀

मिलीं दो-एक सरिता और आकर;
　मिलाकर ले चलीं समझा-बुझाकर।
बहुत दिखलाके ऊँचा और नीचा;
　हृदय बहलाके पति की ओर खींचा।
निकट आ, सिंधु लखकर लाज छाई;
　उसक-सी कुछ गई, सकुची, लजाई।
सकुचते देख बढ़ आया पयोनिधि—
　मिलन की करके तैयारी भली विधि।
निछावर करके मोती, संख, परवाल—
　बहुत मणि-माणिकों से साजकर थाल—
सखिन के संग में डोला उतारा,
　हुए मिल-मिलके दोनो एक धारा।

कैसा सुंदर निकाह है! वर्णन में कितनी सचाई और कितनी सहृदयता! छंद हिंदी का नहीं, इसलिये कहीं-कहीं कवि को भाषा-स्वतंत्रता लेने की ज़रूरत पड़ी है। काव्य का जो मुख्य गुण है—चित्रण सच्चा हो, 'भक्त'जी उसमें निपुण मिलते हैं।

एक अंधे कुएँ पर आप लिखते हैं—

आँख लगी थी जिस पर सबकी,
आज हुआ वह अंधा है;
जीवन दे जो श्रम हरता था,
भूल गया निज धंधा है।
टूटी पड़ी जगत है उसकी,
जगत टूटता था जिस पर;
भूरि-भूरि था जिसे सराहा,
आज गया वह रज से भर!
कभी न टूटा तार धार का,
ऐसा जगता सोता था;
देख विपुल जल-राशि मेघ भी
पानी भर-भर रोता था।

कुएँ के लिये कितना अच्छा कहना है कि जिस पर सबकी आँख एक दिन लगी हुई थी, आज वह अंधा हो गया है; जो जीवन (जल) देकर श्रम हरता था, वही अपना वह धंधा अब भूल गया है; जिस पर जगत् टूटता था, उसकी जगत टूटी पड़ी है; जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गई, आज वह मिट्टी से भर गया; उसका सोता ऐसा जगता था कि धार का तार कभी नहीं टूटा; उसकी विपुल जल-राशि देखकर अपनी क्षुद्रता का विचार कर मेघ भी आँखों में जल भरकर रोता था!

तरह-तरह की उत्तम वर्णना के पश्चात् आपने इस पद्य का रोचक, सहृदय, कला-पूर्ण अंत दिखलाया है। लिखते हैं—

एक बटोहिन सलिल के लिये
आई वहाँ दूर से चल;
रस्सी लेकर साँस खींचती
आँखों में भर लाई जल।

पानी न रहने से साँस खींचती हुई बटोहिन का आँखों में पानी भर लाना कवि की कुशल लेखनी का सुंदर चमत्कार है। ऐसी रचनाएँ हिंदी में थोड़ी हैं, जिनका आदि और अंत दोनो, मनोहर शब्दों की शृंखला से बँधे हुए, एक सार्थक भाव हृदय में भर जाते हों।

अभिसारिका, वर्षा, वियोगिन, धरोहर, पावस-प्रमोद, रिमझिम, नारद-मोह, शरद्-आगमन, भड़-भूँजा, नीलकंठ, ऋतुराज आदि अनेक रचनाएँ हिंदी के पाठकों को हाथ पकड़कर काव्य के रम्य उपवन की सैर करा चुकी हैं। उनकी ग्राम्य, सीधी चितवन में जो स्नेह, जो अपनाव और आकर्षण पाठकों के जीवन को मुग्ध कर लेने के लिये है, कोई भी आलोचक उस सादगी पर अपने को निछावर कर देने के लिये तैयार रहेगा। मैं स्थान तथा समय के संकट के कारण पूरे विवरण के साथ, कम-से-कम एक उचित सीमा तक चलकर, 'भक्त'जी की यथार्थ आलोचना नहीं लिख सका, पर मुझे विश्वास है, हिंदी के सहृदय पाठकगण, मेरे लिखने के पहले ही से, उनकी मनोहर कृतियों से प्रिय परिचय तथा चिर-सामीप्य प्राप्त कर चुके होंगे। अंत में मैं 'भक्त'जी से निवेदन करूँगा, आप अपनी उत्तम-से-उत्तमतर कविताओं द्वारा हिंदी का रिक्त अंचल भरते रहें।

आदान-प्रदान

[श्रीसियारामशरण गुप्त]

निज गुण-जाल से तुम्हारा देश
खींच बड़ी दूर से हे बंधु, मुझे लाया है।
स्वागत-समादर अशेष
तब पाया है।
प्रिय इस परिचय-कलाधर की—
प्रेम-सुधाकर की—
प्रथम कला का जन्म, कुछ भी नहीं है ज्ञात,
किस क्षण, कौन-सी द्वितीया में हुआ था कहाँ?
मेरा पहला ही यह दृष्टिपात
पाता है प्रसन्न पूर्णिमा यहाँ।
जिस क्षण
जो कुछ भी देख-सुन पाता जहाँ,
चंचल अधीर शिशु-तुल्य लुब्ध मेरा मन
झुक-झुक पड़ता उसी पर तुरंत है।
उत्सुकता होती इस उर में दुरंत है।
किंतु बंधु, कौतूहलावेश में
पूछते हो जब तुम,
मेरे दूर देश में
कैसे हैं कुसुम—
और कैसे लता-गुल्म-द्रुम,
कैसे पशु-पक्षियों से पूर्ण हैं वहाँ के वन,
कैसी मृत्तिका है, जल कैसा और कैसे जन,
विस्मय में डूब उठता है तब मेरा मन।
जिन सब क्षुद्र-क्षुद्र वस्तुओं की नूतनता
मेरी दृष्टियों से घिस-घिसके सहस्र बार
मेरे लिये हो चुकी थी दूरगता,
वे सब तुम्हारे लिये कैसी ज्ञेय,
कैसी प्रेय,
कितनी रहस्यागार!
धन्य यह मेरा हुआ आना यहाँ!
पहली ही बार यह जाना यहाँ,
भिक्षुक ही बनकर,
तुच्छता के पंक में ही सनकर,
व्यर्थ नहीं आया हूँ;
दुर्लभता मैं भी कुछ साथ निज लाया हूँ।

श्रीरामचरित-मानस का अयोध्याकांड

(राजापुर की प्रतिलिपि की समालोचना)

[श्रीयुत इंद्रदेवनारायण]



प्रयाग (मुट्ठीगंज)-निवासी लाला सीतारामजी बी० ए० ने हस्त-लिखित, राजापुरस्थ श्रीरामचरित - मानस के अयोध्याकांड की प्रतिलिपि छपवाई है । यद्यपि उसको छपे हुए कई वर्ष हुए, परंतु उसके दर्शन का सौभाग्य मुझे अब प्राप्त हुआ है । कहा जाता है, अयोध्याकांड की यह प्रति श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी के हाथ की लिखी हुई है, और लाला साहब ने भी लिखा है कि एक बार गोस्वामीजी काशी जाने लगे, तो श्रीरामचरित-मानस की एक प्रति अपने हस्त-कमल से लिख और संशोधन कर अपने शिष्य गनपतिजी को प्रेमी जान दे गए। गनपतिजी के वंश में यह प्रति बहुत दिनों तक सुरक्षित रही, परंतु एक दुष्ट साधु उस संपूर्ण पोथी को चुराकर ले भागा, परंतु कतिपय रक्षकों ने उसका पीछा किया, तो उस दुष्ट साधु ने पोथी को जल में फेंक दिया, और आप निकल भागा । जब वह पोथी जल से निकाली गई, तो जल से ओत-प्रोत होने के कारण छ कांड गल गए, केवल बीच का अयोध्याकांड बचा। इसकी पुष्टता में जल से भीगे हुए दस पृष्ठों का फ़ोटो इस प्रति के साथ प्रकाशित किया गया है । वही प्रति आज तक राजापुर में सुरक्षित है, और कठिनाई से उसके दर्शन होते हैं । उसी की प्रतिलिपि लाला साहब ने छपवाकर प्रकाशित की है ।

बहुत दिन हुए डॉक्टर ग्रियर्सन साहब ने इस प्रति की प्रतिलिपि खड्गविलास-प्रेस, बाँकीपुर (पटना) में छपवाकर प्रकाशित की थी, जिसकी समालोचना मैं निज संपादित श्रीरामचरित-मानस की भूमिका में कर चुका हूँ । उस प्रतिलिपि में अनेकानेक अशुद्धियाँ हैं, जिनसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रतिलिपि असावधानता-पूर्वक कराई गई है । राजापुर की प्रति की प्रतिलिपि, जो स्वयं निज हस्त से बाबू गोकर्ण-सिंहजी (कार्याध्यक्ष खड्गविलास-प्रेस, बाँकीपुर) ने की है, निस्संदेह बहुत ही शुद्ध है, जिसमें बिंदु-विसर्ग का भी अंतर नहीं है । इस प्रकार तीन विद्वानों के द्वारा की हुई तीन प्रतिलिपियाँ मेरे देखने में आईं, परंतु सांगोपांग अक्षरशः एक दूसरे से नहीं मिलतीं ।

राजापुर की प्रति को भली भाँति विचारने और मनन करने से इतनी त्रुटियाँ दृष्टिगोचर होती हैं कि उस प्रति के श्रीमद्गोस्वामीजी द्वारा लिखित होने में अत्यंत संदेह है ! उन अनेकानेक त्रुटियों में से कुछ का दिग्दर्शन-मात्र मैं इस लेख में करता हूँ । उन त्रुटियों को अवलोकन कर विद्वज्जन विचार करें कि जिस प्रति में ऐसी-ऐसी मोटी और भद्दी अशुद्धियाँ हैं, वह क्योंकर तत्त्वाचार्यवर्य श्रीमद्गोस्वामीजी की हस्त-लिखित हो सकती है ।

श्रीरामचरित-मानस की शुद्ध प्रति श्रीगोस्वामीजी की शिष्य-प्रणाली में आज तक सुरक्षित है, जिसको प्रायः बीजक भी कहते हैं । उसी प्रति के अयोध्याकांड से इस राजापुर की प्रति को मैंने मिलाया, और जो-जो त्रुटियाँ पाई गईं, उन सबका उल्लेख करने से लेख बृहद् हो जायगा, अतएव इस लेख में कतिपय मुख्य-मुख्य त्रुटियाँ मैं दिखलाता हूँ, जिससे यह निर्विवाद सिद्ध हो जायगा कि राजापुर की प्रति श्रीगोस्वामीजी की हस्त-लिखित नहीं है ।

यहाँ प्रसंग-वश यह उल्लेख करना अनावश्यक न

होगा कि श्रीगोस्वामीजी ने श्रीरामचरित-मानस रचकर श्रीकिशोरीदत्तजी को पढ़ाया, उन्होंने श्रीअलपदत्त योगींद्र को पढ़ाया, उनसे परमहंस श्रीरामप्रसादजी ने पढ़ा। उन्होंने काशी-निवासी विद्वद्वर श्रीशिवलाल पाठकजी को पढ़ाया, उनसे श्रीशेषदत्तजी ने पढ़ा, फिर उनसे श्रीजानकीप्रसादजी ने। इन महानुभावों ने श्रीरामचरित-मानस पर अपूर्व टीकाएँ दोहा-बद्ध रची हैं। इस शिष्य-प्रणाली में श्रीरामचरित-मानस की शुद्ध प्रति सुरक्षित चली आई, जो सर्वथा क्षेपक-रहित और परम माननीय है।

इन अनेकानेक त्रुटियों में प्रथम यह है कि बहुत-से पद राजापुर के पाठ में हैं ही नहीं, जिनसे कथा-प्रसंग की हानि होती है। द्वितीय, पाठांतर भी बहुत हैं। तृतीय, लेख-प्रणाली और अशुद्धियाँ ऐसी हैं, जिनसे स्पष्ट बोध होता है कि यह पाठ श्रीगोस्वामीजी का लिखा हुआ नहीं है। मैं पहले कह चुका हूँ कि मैं बहुत थोड़ी त्रुटियों को इस लेख में दिखलाता हूँ, इसको विचार-शील पाठक ध्यान में रक्खें।

प्रथम कोटि की त्रुटियों की ओर ध्यान दीजिए कि अयोध्याकांड के प्रारंभ में यह चौपाई राजापुर के पाठ में नहीं है—

"सकल सुकृति-मूरति नरनाहू;
राम-सुजस सुनि अतिहि उछाहू।"
(दोहा १ और २ के मध्य में)

मानस-पूर्वपक्षावली में लिखा है—

"वेद-वेद पर दोहरा चरण-चरण प्रति राज;
अवधकांड महँ हेतु केहि, वन महँ दूर विभ्राज।"

अर्थात् अयोध्याकांड में वेद-वेद (चार-चार) चौपाइयों पर दोहा है, परंतु इस पद को निकाल देने से साढ़े तीन चौपाइयाँ रह जायँगी। अतएव इस पद का होना आवश्यक है। अयोध्या में यह नियम है कि चार-चार चौपाइयों पर दोहा है, और पचीस-पचीस दोहों पर छंद और सोरठा है। इसके अतिरिक्त इस चौपाई में महाराज दशरथजी का गुण-वर्णन किया है, जिस कारण—

"नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे;
लोकप रहहिं प्रीति-रुख राखे।"

अतएव इस चौपाई के निकल जाने से कथा-प्रसंग की हानि होती है—

(२) "प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू;
रामहिं राय देहु जुवराजू।"
(दोहा ४ और ५ के मध्य)

यह पद राजापुर के पाठ में नहीं है। इसका कुछ भी कारण अथवा अपना विचार लाला साहब ने नहीं लिखा है, परंतु खड्गविलास-प्रेस द्वारा प्रकाशित राजापुर की प्रति में बड़ी लंबी-चौड़ी दलील दी गई है कि वशिष्ठजी ने तो अपने वचन से श्रीरामचंद्रजी को राज देने को कहा नहीं, तो महाराज दशरथजी क्यों कहेंगे कि गुरु वशिष्ठजी ने प्रसन्न होकर कहा है कि श्रीरामचंद्रजी को युवराज-पद हो, इसका कारण यह क्षेपक है। इस पद पर मानस-पूर्वपक्षावली में यह पूर्वपक्ष है—

"मुनि तो निज वच ते नहीं कहे राज दे राम;
नृप कस झूठ बनाइके कह मंत्रिहिं अभिराम।"

अर्थात् वशिष्ठजी ने अपने वचन से नहीं कहा कि श्रीरामचंद्रजी को राज दो, तो महाराज ने क्यों झूठी बात बनाकर मंत्रियों से कहा कि गुरुजी ने प्रसन्न होकर कहा है कि श्रीरामचंद्रजी को राज दो। ठीक वही पूर्वपक्ष है, जो खड्गविलास-प्रेस की प्रति की भूमिका में कहा जा चुका है। यदि यह चौपाई मूल में न होती, तो कदापि पूर्वपक्षकार पूर्वपक्ष ही नहीं करते। इसका उत्तर मानस-मयंक और मानस-अभिप्राय-दीपक में यह है—

"कैकेई - गरहन - समय सुत को हारी राज;
ताते कहि गुरु-मन-मते, निज मत कहते लाज।"
(मानस-मयंक)

"कैकेई - उद्वाह ढिग सत्य - संध, कुल - दीप;
राज्य हारि तेहि सुअन कहँ गुरु कह एव महीप।"
(अभिप्राय-दीपक)

इन दोनो दोहों का तात्पर्य यह है कि कैकेयी के विवाह के समय महाराज दशरथ ने स्वीकार किया था कि कैकेयी से जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसी को मैं राज्य दूँगा, तब विवाह हुआ। इसी कारण महाराज दशरथ ने मंत्रियों से कहा कि गुरुजी ने प्रसन्नता-पूर्वक श्रीरामचंद्रजी को राज्य देने की आज्ञा दी है। यदि अपना मत प्रकट करते, तो सभी कहते कि महाराज अपनी प्रतिज्ञा के प्रतिकूल काम करते हैं। यदि महाराज को अपनी सत्यसंधता क़ायम रखने की इच्छा न होती, तो गुरु वशिष्ठजी से क्यों कहते—

"नाथ, राम करिअहि जुवराजू ;
कहिअ कृपा करि करिअ समाजू।"

इससे स्पष्ट बोध होता है कि महाराज भरतजी को राज्य न देकर श्रीरामचंद्रजी को देना चाहते हैं, इस अवस्था में जिनको महाराज के असत्य बोलने पर शंका होती है, उनको महाराज की अनर्थ इच्छा पर क्यों नहीं शंका होती? जब महाराज अपनी प्रतिज्ञा के प्रतिकूल अपनी इच्छा वशिष्ठजी से प्रकाशित कर चुके, तो मंत्रियों से अपना दोष बचाने के लिये यह कहना कि गुरुजी ने श्रीरामचंद्रजी को राज्य देने को कहा है, कौन-सी बड़ी बात थी? मुनि ने भी तो मना नहीं किया, यथा—

बेगि बिलंब न करिअ नृप, साजिअ सबुइ समाज।

पुनः—"हरषि मुनीस कहेहु मृदु बानी ;
आनहु सकल सुतीरथ-पानी।"

से "जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा,
सो तेहि काज प्रथम जनु कीन्हा।"

तक इन पदों से यह सिद्ध होता है कि मुनि ने राज्याभिषेक की तैयारी करने की आज्ञा दी, इस अवस्था में महाराज ने झूठ कैसे कहा?

यद्यपि वशिष्ठजी ने गूढ़ भाव से कह दिया कि राज्य होने में विघ्न की संभावना है, परंतु प्रकट तो महाराज के विचार से सहमत थे, इस कारण महाराज का वचन मंत्रियों के प्रति अप्रयोजनीय और असत्य नहीं है। पुनः महाराज ने पंचों की सम्मति ले लेने को मंत्रियों को आदेश किया, यथा—

"जौं पाँचहिं मत लागइ नीका ;
करहु हरषि हिय रामहिं टीका।"

(३) बीजक (सांप्रदायिक प्रति) का पाठ है—

"भरत-बचन सब कहँ प्रिय लागे;
राम-सनेह-सुधा जनु पागे।
लोग बियोग-बिषम - बिष-दागे—
मंत्र सबीज सुनत जनु जागे।"

भावार्थ यह कि भरतजी का वचन सबको प्रिय लगा, मानो राम-प्रेमामृत में वह वचन पगा हुआ था। लोग जो राम-वियोग के दारुण विष से दगे हुए थे, वे भरतजी के सजीव मंत्रवत् वचन सुनकर जाग उठे।

राजापुर का पाठ यह है—

"भरत-बचन सब कहँ प्रिय लागे ;
मंत्र सबीज सुनत जनु जागे।"

इसमें रूपक अलग्न है, क्योंकि जिस पर सबीज मंत्र का प्रयोग किया जाता है, उसका मूल में कथन ही नहीं है, यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है। दोनो रूपक स्पष्ट होने चाहिए। इस साहित्य-नियम-प्रतिकूल पद से सिद्ध होता है कि राजापुर की प्रति में दो चरण छूटे हुए हैं।

(४) बीजक (सांप्रदायिक प्रति) का पाठ है—

"सकुचउँ तात, कहत एक बाता ;
अरध तजहिं बुध सरबस जाता।
तुम कानन गवनहु दोउ भाई ;
फेरिअहि लषन सीय रघुराई।
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता;
भे प्रमोद - परिपूरन गाता।"

राजापुर का पाठ है—

"सकुचउँ तात, कहत एक बाता ;
भे प्रमोद - परिपूरन गाता।"

भावार्थ यह है—वशिष्ठजी कहते हैं कि हे तात, एक बात कहने में मैं सकुचता हूँ कि चतुर लोग जहाँ सर्वस्व जाता हो, वहाँ आधा त्यागकर आधा संग्रह कर लेते हैं, इस कारण तुम दोनो भाई वन को पयान करो, और श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजी और जानकीजी फेर दिए जायँ। इस सुंदर वचन को सुनकर दोनो भाई भरतजी और शत्रुघ्नजी का शरीर आनंद से परिपूर्ण हो गया। राजापुर के पाठ का यह अर्थ है कि हे तात, एक बात कहते मैं सकुचता हूँ। शरीर आनंद से परिपूर्ण हो गया। विचारने की बात है कि जिस बात को कहने में सकुच होती है, वह बात तो कही ही नहीं, और शरीर प्रमोद से परिपूर्ण हो गया। यहाँ यह भी स्पष्ट नहीं होता कि किसका शरीर प्रमोद से परिपूर्ण हो गया। इस कारण यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि चार चरण राजापुर के पाठ में छूटे हुए हैं।

(५) बीजक (सांप्रदायिक प्रति) का पाठ है—

"करि प्रणाम तब राम सिधाए ;
रिषि धरि धीर जनक पहिं आए।
राम-बचन गुरु नृपहिं सुनाए ;
सील - सुभाय - सनेह - सुहाए।"

इसका भावार्थ यह है कि श्रीरामचंद्रजी प्रणाम करके चले गए, और वशिष्ठजी धीरज धारण कर राजा जनकजी के पास आए, और श्रीरामचंद्रजी के वचन को वशिष्ठजी ने महाराज जनकजी को सुनाया। राजापुर का पाठ है—

"करि प्रणाम तब राम सिधाए ;
सील - सुभाव - सनेह - सुहाए।"

इस पद से प्रकरणानुकूल कोई अर्थ नहीं निकलता। इसके अतिरिक्त इस पाठ में वशिष्ठजी का महाराज जनक के पास जाना कहा ही नहीं गया है, और आगे प्रकरण-विरुद्ध यह लिखा है—

"महाराज, अब कीजिय सोई—
सबकर धरम-सहित हित होई।"

वशिष्ठजी का राजा जनक के पास जाना तो लिखा नहीं है, परंतु वार्तालाप दिया है। अतएव निस्संदेह दो चरण राजापुर के पाठ में छूटे हैं।

(६) बीजक (सांप्रदायिक प्रति) का पाठ है—

"सुनत बचन सुर-गुरु मुसुकाने ;
सहस-नयन बिनु लोचन जाने।
कह गुरु बादि छोभ-छल छाँड़ू ;
इहाँ कपट करि होइहिं भाँड़ू।
मायापति-सेवक सन माया—
करिय त उलटि परइ सुरराया !"

राजापुर का पाठ है—

"सुनत बचन सुर-गुरु मुसकाने;
सहस-नयन बिनु लोचन जाने।
मायापति-सेवक सन माया—
करिय त उलटि परइ सुरराया !"

मूल का भावार्थ यह है—जब सुरेश्वर इंद्र ने अपने गुरु से कहा कि हे प्रभु ! छल-पूर्वक ऐसा उपाय कीजिए कि श्रीरामचंद्रजी और भरतजी से भेंट ही न हो, इस वचन को सुनकर सुर-गुरु बृहस्पति मुस्किराए, और सहस्राक्ष इंद्र को निपट अंधा समझा, और कहने लगे हे इंद्र ! तुम्हारे हृदय में जो व्यर्थ छल-क्षोभ उत्पन्न हुआ है, उसको छोड़ दो, क्योंकि यहाँ कपट करने से भ्रष्ट हो जाना पड़ेगा। हे सुरेश्वर ! मायापति श्रीरामचंद्रजी के सेवक के साथ कपट करने से उलटा अपने ऊपर पड़ता है। जो कुछ बृहस्पति ने कहा है, वह राजापुर के पाठ में पूर्ण कथित नहीं है। इस कारण यह सिद्ध होता है कि राजापुर के पाठ में ये पद छूटे हुए हैं।

(७) अब दूसरी कोटि की त्रुटियों की ओर ध्यान दीजिए कि कितने पाठांतर हैं—

राजापुर का पाठ— बीजक (सांप्रदायिक प्रति) का पाठ—

(क) यस्यांके च विभाति भूधरसुता ; वामांके च विभाति भूधरसुता ;

(ख) फलित बिलोकि मनोरथ-बेली ; फुलित बिलोकि मनोरथ-बेली ;

टिप्पणी—मानस-मयंक में लिखा है—'फूली बेली समौ फर बूढ़े नृप फल जोह।' अर्थात् मनोरथ-बेली में फूल लग गया, अब फल की प्रतीक्षा सभी कर रहे हैं। भाव, विवाह हो गया, अब राजा होने की प्रतीक्षा हो रही है। राजापुर के पाठ के अनुसार क्या फल लगा? अतः फलित पाठ अनुपयुक्त है।

(ग) तुम्ह जानहु सब राम-प्रभाऊ ; तुम्ह जानहु सब राम-सुभाऊ ;

यहाँ प्रकरणानुसार सुभाउ पाठ ही उपयुक्त है।

(घ) चली बिचारि बिबिधि मति पोची ; चली बिचार बिबुध-मति पोची ;

यहाँ 'बिविधि'-शब्द का प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है, अतः बीजक का पाठ 'बिबुध'-शब्द शुद्ध है, जिसका अर्थ देवता है।

(ङ) देउ भरत कह राज बजाई ; देउ भरत कह राज बड़ाई ;

(च) लषी नरेस बात फुरि साँची ; लषी नरेस बात सब साँची ;

'फुरि' और 'साँची' का अर्थ एक ही है, अतः पुनरुक्ति है, इस कारण बीजक का पाठ सब सही है।

(छ) गए सुमंत तब राउर पाहीं ; गे सुमंत तब राउर माहीं ;

गए पाठ में छंदोभंग दोष है। पाहीं से माहीं उत्तम पाठ है।

(ज) मिलेहि माँझ बिधि बात बेगारी ; मिलेहिं माँझ बिधि बात बिगारी ;

बेगारी शब्द से छंदोभंग-दोष होता है।

(झ) मिटा सोच जनि राषइ राऊ ; इहै सोच जनि राषइ राऊ;

अर्थ यह है कि यही शोच है कि महाराज कहीं रोक न रक्खें। राजापुर के पाठ का अर्थ बिलकुल प्रतिकूल होगा।

(ञ) तुम्हहिं जान बन कहिहिं न काऊ ; तुम्हहिं जान बन कहिहिं न राऊ;

अर्थ यह है कि चाहे लोक-परलोक नष्ट हो जाय, मगर महाराज तुमको जाने को नहीं कहेंगे। 'काऊ' कोई दूसरे से कुछ संबंध नहीं है।

(ट) सबकै सार सँभार गोसाईं ; सबकर सार सँभार गोसाईं ;

'कै'-शब्द का स्त्रीलिंग में प्रयोग होता है। यथा 'लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती', अतः यह शब्द यहाँ अशुद्ध है।

(ठ) बरनहिं लषन भरत बन जाहीं ; बहुरहिं लषन भरत बन जाहीं ;

अर्थ है—लषमणजी फिर जायँ, (बहुरहिं) भरत जी रामजी के साथ वन जायँ। 'बरनहिं'-शब्द का कुछ अर्थ नहीं, अतः अशुद्ध है।

(ड) जद्यपि राम सीय समता की, जद्यपि राम सींव समता की;

अर्थ यह है कि यद्यपि रामजी समता की मर्यादा हैं। यहाँ 'सीय'-शब्द अशुद्ध है।

इसी प्रकार इतने पाठांतर इसमें भरे पड़े हैं कि कोई मर्मज्ञ इसको पूज्यपाद गोस्वामीजी का लिखा कहने को उत्सुक न होगा। अब तीसरी कोटि की ओर ध्यान दीजिए, तो स्पष्ट बोध होगा कि लेख-प्रणाली बिलकुल अशुद्ध है, किसी अमर्मज्ञ ने लिखा है—

१—मनहु महिप मृदु लछ्छ - समाना।— लछ्छ अशुद्ध है।

२—राम सषा रिषं बरबस भेटा—रिषं बिलकुल प्रमाद-पूर्वक लिखित है।

अब विचारशील पाठक-वृंद इस क्षुद्र लेख को पढ़कर स्वयं विवेचना करें कि राजापुरस्थ अयोध्याकांड भगवत्पाद श्रीगोस्वामीजी का हस्त-लिखित हो सकता है या नहीं?

बँगला-साहित्य का एक भाग और उसका परिचय

[श्रीप्रभातकुमार बनर्जी]



हम बँगला-साहित्य के जिस भाग के विषय में लिखना चाहते हैं, उसके पहले पाठकों के सुबीते के लिये बँगला-भाषा का कुछ आदि परिचय दे देते हैं। बँगला-भाषा की आदि जननी संस्कृत है, परंतु बौद्ध युग में प्राकृत-भाषा का प्रभाव उस पर बहुत कुछ पड़ा था। हिंदू-धर्म के पुनरुत्थान में साथ-साथ बँगला-भाषा का संस्कृत-भाषा के साथ फिर से गहरा संबंध हो गया, परंतु प्राकृत का कुछ हिस्सा रह गया। बँगाल हिंदोस्तान के पूर्व भाग में एक छोर पर है, अतएव मुसलमानी या दूसरी-दूसरी हिंदोस्तान की पश्चिमीय भाषाओं का असर बँगला-भाषा पर अधिक न पड़ सका, इसलिये उसका संस्कृत से घनिष्ठ संबंध रहा। हम यों कह सकते हैं कि संस्कृत से प्राकृत, प्राकृत से बँगला और अंत में बँगला ने अपने नए रूप को लेकर संस्कृत से संबंध जोड़ लिया था। मुसलमानी और अँगरेज़ी भाषाओं का असर उस पर कुछ-कुछ है।

अब हम इस लेख में उस युग का परिचय देना चाहते हैं, जिस युग के अधिक असर से बँगला-भाषा आज बढ़ी-चढ़ी है। इस युग को यदि हम छोड़ दें, तो हम बाद के कवियों और लेखकों का इतना नाम सुन नहीं पाते। यह भी सही है कि इस युग के पहले का युग भी यदि कुछ न होता, तो हम इस युग को भी इस अवस्था में नहीं पाते। एक से एक का संबंध है, यह सच है। तो भी यह युग मार्के का है। इस युग को हम कृष्णचंद्रीय युग कह सकते हैं। इस युग में कृष्णचंद्र नाम के एक नामी राजा हो गए हैं। इस युग के पहले के युग में वैष्णवों और वैष्णव-कवियों को घने काले बादल देखकर कृष्ण की याद आती थी, और वे मस्त हो जाते थे। इस युग के श्रेष्ठ और प्रधान कवि भारतचंद्र राय गुणाकर के शिष्य कदंब और अनार देखकर बुरी चिंताओं में रात बिताते थे। इस समय बंगाल में महाराष्ट्र-वर्गियों का बहुत ही पीड़न था। इसी समय नवद्वीप में, जो वैष्णवों का प्रधान स्थान है, किसी संक्रामक व्याधि से एक तिहाई लोग मर गए, और "सन् १७८० ई० में डाकुओं ने बंगाल के ४० हज़ार मकान और दो सौ लोग आग में जला दिए।" (हंटर साहब का अनल्स् ऑफ़् रयूरल बंगाल, पृष्ठ २००) इस समय भारतचंद्र अपने मालिक के लिये 'कामोद्दीपक वटिका' बना रहे थे। 'कामोद्दीपक वटिका' का अर्थ वैद्यों से पूछ लिया जाय। इस जातीय चरित्र की नीचता के कारण भविष्य राष्ट्र-विप्लव का रास्ता साफ़ हो गया था। इस विप्लव की बाढ़ में ("डुबे मरे मृदंगी मृदंग बुके करि। कालो यात मरिल वीणार लाउ धरि।")—"डूब मर रहे हैं मृदंगी मृदंग को छाती पर धर। गवैए मर रहे हैं वीणा के तुंबे को पकड़कर"—ऐसी हालत हो गई थी। अयोध्या के वाजिदअली (शाह) भी इसके गवाही हैं। दोषों में भी गुणों की सृष्टि होती है। इन कुरीतियों के टूटे वृक्ष के सहारे कोमल कला की लता उग उठी, और वह फहराती हुई बढ़ने लगी। राजा कृष्णचंद्र की सभा में विश्रामख़ाँ गवैया उस्ताद के गानों की मूर्च्छना, पंडित गदाधर तर्कालंकार के पुराण-पाठ और कवि भारतचंद्र की कविताओं से शहद निकलने लगी। वह इस राजनीतिक बादल के बीच मनोरम धूप की तरह मृदु हास्य करने लगी। नवद्वीप से एक समय स्वार्थ-हीन और विमल प्रेम की रफ़्तनी होती थी, और अब नवद्वीप से भारतचंद्र की कविता, शांतिपुर की बंगाली महीन धोती और कृष्णनगर के सुंदर खिलौने बिक्री के लिये देश-विदेशों को भेजे जाने लगे। धूर्तता,

कपटाचार और चरित्र-हीनता के साथी नवद्वीप की राजसभा में इन सबों की शिक्षा के लिये जैसे एक तरह की पाठशाला ही खुल गई। जो कुछ हो, इस युग के पहले के युग के वैष्णवों का प्रभाव इस युग पर सूक्ष्मतया कुछ था। इसके बाद यदि हम राजा कृष्णचंद्र के बारे में थोड़ा-बहुत कहें, तो अनुचित न होगा, क्योंकि जिसके युग के संबंध में जानना चाहते हैं, उनके बारे में कुछ जानना चाहिए।

सन् १७१० ई० में राजा कृष्णचंद्र ने जन्म ग्रहण किया था। यह बड़े कूट-राजनीतिज्ञ थे। यह संस्कृत के ज्ञाता थे। और, इनकी सभा में केवल कवियों ही की क़द्र होती हो, ऐसा नहीं, प्रत्युत दर्शन, न्याय, स्मृति, धर्म इत्यादि विषयों की भी वहाँ चर्चा होती थी। इन्होंने इन सब विषयों के बड़े-बड़े पंडित अपनी सभा में रक्खे थे, जिनके नामोल्लेख की यहाँ ज़रूरत नहीं है। यह ख़ुद उनके साथ उन विषयों की चर्चा किया करते थे। यह कौतुक-प्रिय भी बहुत थे। इनकी सभा में तीन भाँड़ थे, और हमेशा हँसी-मज़ाक़, दिल्लगी-तमाशा हुआ करता था। यह ख़ुद इसमें भाग लेते थे। इनकी सभा का प्रधान भाँड़ देश-विख्यात 'गोपाल भाँड़' था।

राजा शास्त्र की आलोचना करते, राज्य की रक्षा और उसके बढ़ाने के लिये प्रयत्न करते, शिल्प की उन्नति के लिये चेष्टा करते और भारतचंद्र के द्वारा तोटक छंद में कविताएँ लिखाते थे। कृष्णचंद्र शिव और शक्ति के उपासक थे। शास्त्र-चर्चा, कोमल कलाओं के प्रति अनुराग, कूट-नीति, बुरी भावना और विलास की इच्छा से इस युग का साहित्य एक तरह की खिचड़ी बन रहा था। राजा के संबंध में इतना ही लिखना बस होगा।

अब केवल धार्मिक साहित्य नहीं रहा—काम-कला-पूर्ण साहित्य बन गया। कवि संस्कृत, फ़ारसी, उर्दू आदि की अच्छी-अच्छी कविताओं का सहारा लेने लगे। कवि भारतचंद्र राय गुणाकर इस युग के प्रथम लब्धप्रतिष्ठ कवि थे। उनके संबंध में अधिक समालोचना करनी पड़ेगी। परंतु साथ-साथ अन्यान्य ज़रूरी बातों पर भी ध्यान देना होगा। इस युग के साहित्य में एक नया आदर्श ले लिया गया, जो कि मुसलमानों से लिया हुआ है। इसका अधिक चलन पहले नहीं था, और न अब है। मुसलमानों की किताबों से 'कुटनीपन' ले लिया गया, जिसने नवयुवकों को आकृष्ट भी किया था। 'ज़ुलेख़ा', 'बदरमाच', 'लैला-मजनूँ' तथा और-और मुसलमानी किताबों से इस तरह के भाव लिए गए थे। इन साहित्यों के प्रभाव से 'हिंदू-साहित्य' में 'हीरामालिनी', 'सोनामुखी' इत्यादि का आविर्भाव हुआ है। इससे हम यह कह सकते हैं कि इस युग के बँगला-साहित्य पर मुसलमानों का प्रभाव पड़ा था। इन भावों ने इस युग को मस्त कर दिया था, परंतु आगे चलकर हम देखेंगे कि ये अनिष्ट करनेवाले भाव अधिक दिनों तक नहीं टिक सके।

बँगला-साहित्य में मुसलमानी साहित्यों के बुरे आदर्श भले ही ले लिए गए, परंतु बंगाल के कवि अपने निराले ढंग से ऐसी कविताएँ लिखने लगे कि उन्होंने अपने को अनंत काल के लिये विख्यात बना लिया। वे आदर्श बिना लिए काम चलता भी नहीं, क्योंकि बंगाल में उस समय मुसलमानों का अधिकार था, और उन्हीं की सभ्यता उस समय अधिक चलती थी। यह सच है कि जिनका राज्य होता है, उनका प्रभाव भी देश पर अधिक पड़ता है।

इस युग का श्रेष्ठ काव्य 'विद्यासुंदर' है। इस काव्य के विषय में लिखने के पहले हमें मुसलमानी भावों के कुटनीपने के आदर्श का नमूना दे देना उचित होगा, क्योंकि ऐसे आदर्श ही 'विद्यासुंदर' में लिए गए हैं। मुसलमानी किताबों में कुटनी-दासी के बारे में बहुधा पाते हैं। 'ज़ुलेख़ा' की दासी उससे कह रही है—"के तोमाके ठकाइयाछे, बल ? तोमार फुल्लेर वर्ण मुख हरिद्रार न्याय विवर्ण केन ? तुमि चंद्रेर मत दिन-दिन क्षय पाइतेछ केन ? आमि बोध करि, तुमि काहारओ प्रेमेर फाँदे पड़ियाछ, बल,

से के ? यदि से आसमानेर चाँद हय, तबे ताहा के जमिने फेलिया तोमार निकट बंदी करिब । से यदि पाहाड़-वासी देवता हय, तबे मंत्र बले ताहा के शिशिते पुरिया तोमार निकट हाजिर करिब । यदि से मनुष्य हय, तबे तुमि याहार दासी हइते इच्छा करितेछ, से आमार कुहके तोमार दास हइया पदानत हइबे ।" (ज़ुलेख़ा) अर्थात्, कहो तो सही, किसने तुमसे बाज़ी मारी ? तुम्हारा सुंदर फूल-ऐसा मुँह पीला क्यों पड़ गया ? तुम चाँद की तरह दिनों-दिन घटती क्यों जाती हो ? मैं समझती हूँ, तुम किसी के प्रेम के जाल में फँसी हो, बोलो, वह कौन है ? यदि वह आसमान का चाँद हो, तो मैं उसे ज़मीन पर उतारकर तुम्हारे पास बाँध दूँगी, वह यदि पहाड़-वासी देवता हो, तो मंत्र-शक्ति से उसे शीशी के अंदर भरकर तुम्हारे पास हाज़िर करूँगी । यदि वह मनुष्य हो, तो तुम जिसकी दासी बनना चाहती हो, वह मेरे फंदे में पड़कर तुम्हारा दास बनकर तुम्हारे क़दमों पर रहेगा ।" और एक नमूना देखिए । बँगला लैला-मजनूँ से उद्धृत—"कुटनी आछिल एक सेइ सहरेते । तेमन कुटनी केह नाछिल देशेते । मन भुलाइते सेइ कथाय-कथाय । जमिनेते चंद्र-सूर्य करित उदय—" (मुसलमानी किताब) अर्थात्, "उस शहर में एक कुटनी थी । वैसी कुटनी देश में और न थी । वह बात-की-बात में मन मोहती थी । ज़मीन में चाँद-सूरज उगाती थी ।"

अब 'विद्यासुंदर', 'अन्नदा मंगल' इत्यादि के रचयिता, श्रेष्ठ कवि श्रीभारतचंद्र राय गुणाकर की जीवनी के बारे में थोड़ा-सा जानकर उनकी कविताओं पर ध्यान दीजिए । भारतचंद्र राय गुणाकर क़रीब सन् १७१२ ई० में बंगाल के हुगली-ज़िले के भुरसुट परगने के पेंड़ो बसंतपुर-नामक गाँव में पैदा हुए थे । उनके पिता नरेंद्रनारायण राय भुरसुट के ज़मींदार थे । उन्हें 'राजा' की पदवी मिली थी । कहा जाता है, नरेंद्रनारायण राय ने किसी ज़मीन-जायदाद की सीमा ठीक करने के झगड़े में वर्द्धमान के महाराज कीर्तिचंद्र की माता महारानी विष्णुकुमारी को गाली दी थी । महारानी ने इस पर ग़ुस्से में आकर आलमचंद्र और क्षेम-चंद्र-नामक अपने दो सेनापतियों को उनके विरुद्ध भेज दिया । उन्होंने बड़ी सेना ले जाकर नरेंद्र राय के 'भवानीपुरगढ़' और पेंड़ोगढ़ इत्यादि स्थानों को ज़बरदस्ती दख़ल कर लिया । नरेंद्रनारायण इसके बाद ग़रीब हो गए । भारतचंद्र अपने मामा के घर नावापाड़ा नाम के गाँव को चले गए, और ताजपुर की संस्कृत-पाठशाला में पढ़ने लगे । उन्होंने मंडलघाट परगना के शारदा नाम के गाँव में, केशरकुनि आचार्यों के मकान में, एक कन्या के साथ विवाह किया । विवाह के समय उनकी अवस्था सिर्फ़ १४ वर्ष की थी । इनके माता-पिता और भाई इस विवाह के विरोधी थे । उन पर गालियाँ पड़ने पर, वे मकान छोड़कर हुगली के देवानंदपुर के रहनेवाले रामचंद्र मुंशी-नामक एक धनी कायस्थ के पास चले गए । उनकी सहायता से उन्होंने फ़ारसी सीखी । इन्हीं मुंशी महाशय के मकान पर एक समय 'सत्यनारायण' की कथा के समय, १५ वर्ष की अवस्थावाले कवि भारतचंद्र ने श्रोताओं को अपनी लिखी हुई 'सत्य पीर' की कथा सुनाकर मुग्ध कर दिया था । इस समय इन्होंने दो सत्य पीर की कहानियाँ रचीं । एक चौपदी छंद में, जिसका साल १७२७ ई० (बँगला सन् ११३४ साल) लिखा जाता है, यह समय उन्हीं की पुस्तक से पाया जाता है । इनके बाद नरेंद्र राय फिर अपने मकान को लौट आए, और अब इनके माता-पिता-भाई इन पर ख़ुश हुए, क्योंकि इन्होंने विद्या में थोड़ा-बहुत नाम कमा लिया था । इसके बीच नरेंद्र राय ने फिर से वर्द्धमान के महाराज से थोड़ी-बहुत ज़मीन-जायदाद बँदोबस्त में ले ली । भारतचंद्र 'कर' या 'टैक्स' देने के लिये वर्द्धमान भेजे गए । वहाँ यह अचानक किसी गोलमाल

में पड़ने के कारण क़ैद कर लिए गए। जेलख़ाने से किसी हिकमत से छूटकर भारतचंद्र श्रीक्षेत्र या जगन्नाथपुरी को चले गए। वहाँ यह पंडों के हाथ में फँसे, लेकिन बच गए। इनके बचानेवाले थे एक सूबेदार महाशय, जिनका नाम शिवभट्ट था। यह वहाँ सूबेदार महाशय की कृपा से रोज़ एक क़िस्म का भोजन ('बलरामी आटके' नाम का) पाने लगे। इस समय यह वैष्णव-धर्म के प्रति आकृष्ट हुए—कहा जाता है; परंतु इनके लेख से मालूम होता है कि इनकी दबी हुई दिल्लगी थी। इनके लेखों में दबी हुई हँसी प्रकट होती है। यथा—

"चल याइ नीलाचले। खाइया प्रसाद भात,
माथाय मुछिब हाथ, नाचिब गाइब कुतुहले।"

इसका हिंदी में अर्थ यह है—"चलो, चलें नीलाचल को। खाकर प्रसाद भात, सिर पर हाथ पोछूँगा, आनंद से नाचूँगा-गाऊँगा।" इस लेख से श्रीजगन्नाथ-तीर्थ के प्रति इनकी आदर-पूर्वक दिल्लगी प्रकट होती है। जो कुछ हो, कवि वैष्णव-धर्म के प्रति इतने आकृष्ट हुए कि इन्होंने वृंदावन जाकर वैरागी बनना निश्चय किया। रास्ते में, हुगली-ज़िले के खानाकुल गाँव में, इनकी साली के पति रहते थे। इन्होंने इस नए संन्यासी को लौटाया। इसके बाद कवि वृंदावन को न जाकर धीरे-धीरे अपनी ससुराल शारदा गाँव को चले गए।

कुछ समय ससुराल में रहकर, उनकी स्त्री उनके मकान पर न भेजी जाय, यह कहकर वह फरासडाँगा को चले गए। वहाँ वह विख्यात दीवान इंद्रनारायण चौधरी के यहाँ रहने लगे। यहाँ कुछ दिन रहने के बाद इंद्रनारायण चौधरी ने इन्हें महाराज कृष्णचंद्र के पास भेजा। महाराज कृष्णचंद्र ने भारतचंद्र को ४० रु० मासिक वेतन पर अपना सभा-कवि बनाया। इस राजसभा में इनकी असली प्रतिभा की पहचान हुई। वृंदावन के रास्ते से लौटे हुए पथिक कवि ने यहाँ पर अपनी 'विद्यासुंदर' नाम की विख्यात पुस्तक की रचना शुरू की। यह पुस्तक सन् १७५२ ई० में ख़तम हुई थी। इसके बीच महाराज ने कवि को मूलाजोड़ नाम का गाँव इजारे में दे दिया, और उनके मकान बनाने में सहायता की। बाद में यह गाँव कृष्णचंद्र महाराज को वर्द्धमान राजा के कर्मचारी रामदेव नाग को पत्तनी में देना पड़ा। इन नाग महाशय के अत्याचारों को सहते हुए कवि ने एक सुंदर नागाष्टक की रचना की। यह संस्कृत-भाषा में लिखी गई। इसके एक तरफ़ हँसी, दूसरी तरफ़ रोना—इस तरह कटु-मधुर हुई। कृष्णचंद्र उसे पढ़कर हँसी न रोक सके। उन्होंने दया-पूर्वक कवि को आनरपुर के गुस्ते गाँव में बहुत-सी ज़मीन (बँगला-हिसाब से १०५ और एक आना बीघे) जो आजकल के हिसाब से बहुत है, और बहुत क़ीमती है, और मूलाजोड़ गाँव में कुछ ज़मीन (बँगला-हिसाब से १६ और एक आना बीघे जिसकी आजकल के हिसाब से क़ीमत बहुत है) बग़ैर किसी लगान के दी। ४८ साल की उम्र में, सन् १७६० ई० में, पलासी की लड़ाई के तीन साल के बाद, महाकवि भारतचंद्र ने बहुमूत्र (Diabetes) की बीमारी से प्राण त्याग दिए। कृष्णचंद्र महाराज ने अपने प्रिय कवि को 'राय गुणाकर' की पदवी दी थी।

अब 'विद्यासुंदर' की 'हीरामालिनी' के बारे में देखिए—

"सूर्य याय अस्तगिरि, आइसे यामिनी;
हेन काले तथा एक आइल मालिनी।
कथाय हीरार धार, हीरा तार नाम;
दाँत छोला माजा दोला हास्य अविराम।
गाल भरा गुया पान, पाकि माला गले;
काणे कड़ि कड़े राँड़ि कथा कय छले।
चुड़ा बाँधा चुल परिधान सादा साड़ी;
फुलेर चुपड़ि काँखे फिरे बाड़ी-बाड़ी।
आछिल बिस्तर ठाट प्रथम वयसे;
एबे बुड़ा तबु किछु गुड़ा आछे शेषे।
छिटा फोंटा मंत्र-तंत्र जाने कत गुलि;
चेंगड़ा भुलाए खाय जाने कत ठुलि।

बातासे पातिया फाँद कोंदल भेजाय;
परसी ना थाके काछे कोंदलेर दाय।
मंद-मंद गति चन-चन हात नाड़ा;
तुलिते वैकाले फूल आइल सेइ पाड़ा।"

हिंदी-भावार्थ—"सूर्य अस्ताचल को जा रहा है, और रात आ रही है । ऐसे समय वहाँ एक मालिन आई। बातों में वह हीरा की धार थी, और उसका नाम भी हीरा था। वह बातचीत करते समय मटकती और हँसती। गालों के अंदर गुया (एक क़िस्म का पान का मसाला, ख़ुशबूदार सुपारी इत्यादि) मिला हुआ पान सदैव रहता था, और गले पर एक असली माला पड़ी थी। कानों पर कौड़ीवाली छुटपन से बनी हुई लचकदार राँड़ छल-चातुरी के साथ बातें बोलती थी। चूड़ा के आकार में उसके बाल बँधे हुए थे, और उसके पहनाव में एक सफ़ेद साड़ी थी। वह फूलों की एक टोकरी काँख या कमर पर धर घर-घर घूमती थी। उसका ठाट या उसके नख़रे उसकी पहली उमर में बहुत थे। अब वह बुड्ढी हो गई है, तिस पर भी नख़रे कुछ-कुछ अब भी हैं। वह छोटे-मोटे तंत्र-मंत्र थोड़े-बहुत जानती थी। लफंगों को भुलाकर वह खाती थी, और वह कितनी ही चालाकी जानती थी। हवा पर फंदा बिछाकर वह झगड़े लगवाती थी। पड़ोसी झगड़े के सबब उसके पास न रहते थे। मटक-मटककर धीरे-धीरे चलना उसकी चाल थी, और हमेशा वह हाथ हिलाती थी। वह उस मुहल्ले में शाम के वक़्त फूल तोड़ने आई।"

कई प्रकार के दोष रहने पर भी 'विद्यासुंदर' की इतनी चाह बंगाल में क्यों थी, और अब भी क्यों है, इसका कारण यही है कि भारतचंद्र के शब्द-मंत्रों में गहरी आकर्षण-शक्ति है। संसार की कोमल भाषाओं में से बँगला भाषा एक है, और उसमें कहीं शब्द-मंत्र तैयार किए जायँ, तो कई पक्षियों की मीठी बोलियों की तरह कहीं अर्थ-हीन भी हों, तो वे चित्त को हर लेने में सफल हैं। भारतचंद्र के भाव उतने गहरे कहीं न भी हों, तो भी इनके शब्द-संगठन में विशेषता थी। यह बंगाल के बड़े शब्द-कवि कहे जा सकते हैं। इनकी तरह बातों से हृदय और मन को आकृष्ट करने में, पुराने ज़माने में, कोई न था। एक बात और है, इनके पहले का युग भावों में प्रधान था, और यह स्वाभाविक है कि भाव-युग के पश्चात् शब्द-युग आता है। बँगला-भाषा की कोमलता में कितनी आकर्षण-शक्ति है, यह यदि कोई जानना चाहे, तो वह भारतचंद्र की लिखी हुई 'विद्यासुंदर' को पढ़कर अच्छी तरह समझ सकेगा। बाँसुरी की आवाज़ से हरिण फंदे में गिरता है, हाथी कीचड़ में फँसता है, और भारतचंद्र के ललित शब्दों से मोहित होकर एक समय कितने ही युवक गड्ढे के अंदर गिर गए थे। ऐसा नहीं कि भारतचंद्र की पुस्तकों में भाव बिलकुल नहीं है, और वह सराहनीय नहीं है। परंतु उनके भाव भी इतने ऊँचे हैं, जो कम-से-कम मामूली से बहुत ही अच्छे हैं। इस युग में इनका इतना प्रभाव था कि हम यदि महाराज कृष्णचंद्र के नाम से इस युग का नाम नहीं डालते हैं, तो हम इस युग को बिना किसी अड़चन के 'भारतचंद्रीय' युग कह सकते हैं।

'विद्यासुंदर' काव्य में विद्या है नायिका, और सुंदर है नायक, और हीरा मालिन है इन दोनो को मिलानेवाली। और भी कितने ही चरित्र हैं। हीरा मालिन विद्या के घर फूल दिया करती थी।

भारतचंद्र राय गुणाकर के 'विद्यासुंदर' का एक नमूना और देखिए—

"शुन लो मालिनी, कि तोर रीति;
किंचित हृदये ना हय भीति!
एत बेला हैल, पूजा ना करि!
क्षुदाय तृष्णाय ज्वलिया भरि!
बुक बाड़ियाछे कार सोहागे;
कालि शिखाइब मायेर आगे।
बुड़ा हलि तबु ना गेल ठाट;
राँड़ हैये येन षाँड़ेर नाट।

रात्रे छिल बुझि बँधुर धूम ;
एत चणे तेइ भाँगिल घूम ।
देख देखि चेये कतेक बेला !
मेये पेये बुझि करिस हेला ।
कि करिबे तोरे आमार गालि ;
बापारे बलिया शिखाब कालि ।
हीरा थर-थर काँपिछे डरे ;
झर-झर जल नयने झरे ।
काँदि कहे सुन राजकुमारी ,
चम अपराध, आमि तोमारी ।
चिकन गाँथने बाड़िल बेला ;
तोमार काजे कि आमार हेला ?
बुझि ते नारिनु विधिर फंद ;
करिनु भालरे हइल मंद ।
भ्रम बाड़िबारे करिनु श्रम ;
श्रम वृथा हैल, घटिल भ्रम ।
विनयेते विद्या हइल वश ;
अस्त गेल रोष, उदय रस ।
विद्या कहे, देखि चिकण हार ;
ये गाँथनि आइ नहे तोमार ।
पुनः कि यौवन फिरे आइल ?
किंवा कोन बँधू शिखाए गेल ?
हीरा कहे तिति आँखिर नीरे ;
यौवन-जीवन गेले कि फिरे ?"
(विद्यासुंदर)

हिंदी-भावार्थ—"सुन री मालिनि, यह तेरी कौन-सी रीति है ? दिल में ज़रा भी डर नहीं है ! इतना दिन हो गया है, पूजा नहीं की ! भूख-प्यास से तड़प रही हूँ ! किसके प्यार से इतनी शेख़ी हुई है । कल मा के सामने सिखाऊँगी । बुड्ढी हो गई है, तिस पर भी तेरे नख़रे अभी नहीं गए हैं । राँड़ होकर जैसे साँड़-सरीखी नाचती फिरती है । रात को शायद यारों की धूम थी, इसीलिये अब तेरी नींद खुली है । देख, भला कितना दिन चढ़ गया है ! मुझे लड़की पाकर शायद तू मेरी परवा नहीं करती है । मेरी गालियों से तेरा क्या होनेवाला है । बाप से कहकर तुझे कल सिखाऊँगी । 'हीरा' डर के मारे काँप रही है । आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है । रोकर कहती है—'राजकुमारी, सुनो । मेरे अपराध को चमा करो, मैं तुम्हारी ही हूँ । बारीकी से गूँथने के कारण दिन चढ़ गया है । तुम्हारे काम में क्या मैं लापरवाही कर सकती हूँ ? भाग्य के फंदे को मैं समझ न सकी । अच्छे के लिये की, और हुई बुराई । ग़लती न हो, इसमें मैंने मिहनत की । मिहनत फ़ज़ूल गई, और ग़लती हो गई ।' उसके विनय से 'विद्या' वश में आ गई । ग़ुस्सा चला गया, और हर्ष उत्पन्न हुआ । 'विद्या' बोली—'देखें बारीक हार । यह गुँथाई, बुड्ढी अम्मा, तेरी नहीं है । फिर से क्या तेरी जवानी लौट आई है ? या कोई प्रेमिक सिखा गया है ?' हीरा ने आँखों में आँसू भरकर कहा—'जवानी और ज़िंदगी चले जाने से क्या फिर लौटती है ?'"

यह कहानी वररुचि की लिखी हुई पुस्तक से ली गई थी । इस कहानी की घटना, मूल-ग्रंथ के अनुसार, उज्जयिनी या उज्जैन में हुई थी । कई कवियों ने, इस कहानी के सहारे, अपने-अपने ढंग से कितने ही विद्यासुंदर रच डाले । बंगाल में विद्यासुंदर के पहले रचयिता कृष्णराम नाम के कवि थे । फिर उनके बाद हुए भक्त-कवि रामप्रसाद सेन कविरंजन । तीसरे हैं हमारे भारतचंद्र राय गुणाकर । इन्होंने 'अन्नदा मंगल' नाम की एक पुस्तक बनाई । इसी पुस्तक में ज्ञान के लेख और कविताएँ थीं । 'विद्यासुंदर' उनमें से एक है । इनके बाद भी प्राणाराम नाम के एक कवि ने 'विद्यासुंदर' लिखने की कोशिश की थी; परंतु यह पागल-सरीखे नदी-किनारे बैठकर कुआँ ही खोदते रहे । इन्होंने सफलता बिलकुल ही प्राप्त नहीं की ।

कवि रामप्रसाद सेन ने 'विद्यासुंदर' लिखने की बहुत कुछ कोशिश की थी, परंतु यह भी सफलता न प्राप्त कर सके, और अपनी प्रिय 'मा काली' के

नाम पर गीत रचने लगे, जिसमें इन्होंने अच्छी सफलता प्राप्त की थी। महाराज कृष्णचंद्र ने इन्हें भी सन् १७२८ ई० में बहुत-सी ज़मीन-जायदाद दी, जिसका लगान न लेते थे। बँगला-हिसाब से इस सब ज़मीन का परिमाण एक सौ एक आना बीघे था। महाराज कृष्णचंद्र इनके गाँव कुमारहट्ट को आते थे, और उन्होंने इन्हें 'कविरंजन' की पदवी दी थी। दूसरे, दो धनी भी इन्हें अच्छी तरह सहायता देते थे। इनमें से एक इन्हें ३० रु० माहवार पेंशन देते थे। यह ख़ुद भी घर के अच्छे थे। इनकी लिखी हुई 'विद्यासुंदर' का भी एक नमूना देख लीजिए। रानी और उसकी गर्भवती लड़की विद्या का उत्तर—

'आलो गर्भेर लक्षण सर्व;
विद्या बले, बातासे कि जन्मे गर्भ?
आलो उदर डागर तोर;
विद्या बले, उदरी हयेछे मोर।
आलो स्तने केन क्षरे पय;
विद्या बले, ए रोगे बांचा संशय।
आलो शयन केन भूतले;
विद्या बले, निरंतर देह जले।
आलो मुखे बिंदु-बिंदु घर्म;
विद्या बले, निदाघकालेर धर्म।

हिंदी-भावार्थ—"'अरी, गर्भ के लक्षण सब मौजूद हैं।' विद्या उत्तर देती है—'हवा से क्या गर्भ होता है?' 'अरी, पेट तेरा फूला हुआ है।' विद्या—"उदरी' (पेट फूलने की बीमारी) हुई है।' 'अरी, स्तनों से क्यों दूध निकल रहा है?' विद्या—'इस रोग में जीना संदिग्ध है।' 'अरी, तू ज़मीन पर क्यों सोती है?' विद्या—'शरीर में हमेशा जलन होती है।' 'अरी, मुँह पर बूँद-बूँद पसीना क्यों?' विद्या—'यह दोपहर का धर्म है।'" यह बात-चीत विद्या अपनी मा से कर रही थी। गर्भकर्ता को शायद पाठक जान गए होंगे—वह थे गुप्त प्रेमिक सुंदर।

इस लेख में उद्धरण ही देते जायँगे, तो लेख बहुत ही बढ़ जायगा। लेख बढ़ने के डर से दूसरी-दूसरी बातों को भी छोड़ना पड़ा। इस युग में और कई अच्छे-अच्छे कवि हो गए हैं। एक मुसलमान कवि भी हो गए हैं, जिन्होंने कुछ नाम कमाया था। ऐसे तो कई मुसलमान कवि हो गए हैं। लेख बढ़ जाने के भय से भारतचंद्र के 'विद्यासुंदर' के और दूसरी-दूसरी पुस्तकों के नमूने हम नहीं दे सके, तिस पर भी हमें विश्वास है कि पाठक इस युग के बारे में थोड़ा-बहुत समझ गए होंगे। कवि भारतचंद्र राय गुणाकर ने 'अन्नदा मंगल' को छोड़ हिंदी, बँगला और संस्कृत में बहुत-सी कविताएँ रची थीं। आधुनिक युग के कवि और लेखक इन्हीं के युग से बँगला-भाषा और साहित्य की असली उन्नति हुई बतलाते हैं।

प्रेम

[श्रीयुत लक्ष्मीनारायण अग्रवाल]



आज प्रेम और मित्रता के नाम पर संसार में कितना अत्याचार हो रहा है। समस्त मनुष्य, मुख्यतः हमारे नवयुवक, प्रेम और मित्रता का सच्चा अर्थ न समझकर अपना सर्वस्व प्रेमाग्नि में भस्म करके बेचारे प्रेम पर झूठा कलंक लगाते हैं। बाज़ारों में गुंडे, स्कूल और कॉलेजों में विद्यार्थी, किसी भी सुंदर रूप को देखकर चट मोहित हो उसकी ओर दौड़ पड़ते हैं। उससे मित्रता और प्रेम करने के लिये—नहीं-नहीं, उसके रूप और यौवन से प्रेम करने के लिये—लाखों उचित और अनुचित उपाय करते हैं। यही कारण है कि आज पूजनीय प्रेम और मित्रता पर कलंक की कालिमा लगाई जा रही है। ग़रीब इश्क़ पर मुफ़्त की बदनामी का बोझ लादा जा रहा है। लोग मोह को प्रेम और स्वार्थ को मित्रता समझ बैठे हैं। एक महाशय कहते हैं—

Love is a blind guide, and those that follow him, too often lose their way.

आपने बेचारे प्रेम को अंधा पथ-प्रदर्शक बनाया है। उर्दू के प्रसिद्ध कवि 'मीर' साहब लिखते हैं—

आग थे इब्तदाए इश्क़ में हम ;
अब तो हैं ख़ाक, इंतिहा है यह।

प्रेम के प्रारंभ में हम आग की भाँति जलते थे, परंतु अब वही जलते-जलते ख़ाक हो गई है, अर्थात् प्रेम में शिथिलता आ गई है। ऐसा मालूम होता है कि यह प्रेम का अंत है।

परंतु प्रेम ऐसा नहीं है। प्रेम वह पथ-प्रदर्शक है, जिसके द्वारा अंधे और भूले यात्री भी सच्चा मार्ग ग्रहण करते हैं, जिसके द्वारा बेकाम मनुष्य भी काम का हो जाता है। प्रेमाग्नि वह अग्नि है, जो न जलाने से जलती है, और न बुझाने से बुझती है। सदा सुलगती ही रहती है। तब फिर उस आग में ख़ाक होना कैसा। जनाब, वह प्रेम नहीं, मोह है।

हम प्रेम-पात्र पर प्रेम करें, और हमारा प्रेम-पात्र हम पर प्रेम करे। हमें छोड़ किसी अन्य से वह प्रेम न करे, आदि तुच्छ विचार प्रेम के नहीं, नाशकारी मोह के हैं। उसके प्रेम न करने पर यदि हमारे प्रेम में कुछ कमी आ जाती है, यदि हम व्याकुल हो जाते हैं, तो न तो हम प्रेमी हैं, और न हमारा प्रेम सच्चा प्रेम है। यदि हमारा भाव यह है—

ग़ैर लें महफ़िल में बोसे जाम के ;
हम रहें यों तिश्ना लब पैग़ाम के।

अर्थात् महफ़िल में दूसरे लोग तो आनंद-पूर्वक शराब के प्याले ढालें, और हम बात करने के लिये ही प्यासे बने रहें, तो हमें समझ लेना चाहिए कि हम अभी प्रेम से कोसों दूर हैं। प्रेम और मित्रता में तो ख़ुदग़रज़ी के लिये ज़रा भी जगह नहीं। बदले की भावना वहाँ ढूँढ़े पर भी नहीं मिलती। जिसमें बदला है, वह दोस्ती नहीं, एक तिजारत है—

दोस्ती और किसी ग़रज़ के लिये ;
यह तिजारत है, दोस्ती ही नहीं।

प्रेम और मित्रता तो स्नेह का एक कोमल कच्चा धागा है, जो दो दिलों को बाँधकर एक कर देता है। यों तो फूल और भौंरे में भी मित्रता होती है, प्रेम होता है, परंतु कब तक के लिये? जब तक भौंरे को पुष्प से मधुर रस मिलता है। इसके बाद भौंरा फूल के पास फटकता भी नहीं। सच्ची मित्रता तो जल और मीन की है। दूध और पानी में भी अनुपम मित्रता है। दोनो दिलवरों के दिल कैसे घुल-मिलकर एक हो गए हैं। दूध और पानी मिल जाने पर एक ही भाव बिकते हैं, इसी प्रकार आग में पानी अपने को पहले

जला डालता है, तब दूध पर आँच आने देता है।

प्रेम तो कामनाओं से रहित, प्रतिक्षण बढ़नेवाला, एकरस और सूक्ष्म है। वास्तव में आत्मा के अनुकूल केवल एक प्रेम ही है। आत्मा स्वतः प्रेम-स्वरूप है। प्रेम अत्यंत उज्ज्वल और पवित्र है। वह अचल है। प्रेम से हृदय कोमल हो जाता है। ममता उत्पन्न होती है। प्रेम के लिये क्या कठिन है? वह पत्थर को भी पिघलाकर पानी कर देता है—

इश्क़ वह शै है कि पत्थर को दम में आब करे।

इसी प्रकार अपने प्रेम-पात्र के चरणों पर सर्वस्व न्योछावर कर देनेवाला ही प्रेमी कहा जा सकता है। सच बात तो यह है कि सर्वस्व त्याग ही प्रेम और सर्वस्व त्यागी ही प्रेमी है। उसका प्रेम प्रेम के निमित्त होता है। वह प्रेम करता है, परंतु क्यों करता है, यह नहीं जानता। कदाचित् प्रेम करना उसका स्वभाव होता है।

प्रेमी ही सच्चा शूरवीर है। जिसे अपने प्राणों तक का मोह नहीं, वह कितना ऊँचा, कितना सच्चा और कितना पराक्रमी न होगा। आत्मबलिदान का रहस्य प्रेमी ही समझ सकता है। अपने हाथ से अपना सिर उतारकर रख देना, अपने अहंकार को प्रेमाग्नि में भस्म कर देना हरएक का काम नहीं। प्रेमी होना, प्रेम करना, आशिक़ होने का दम भरना हरएक बाज़ारू आदमी के हिस्से में नहीं आया है। विषयी और प्रेमी में कौड़ी-मोहर का अंतर है।

प्रेमी का प्रेम-पात्र उससे दूर थोड़े ही रहता है। वह या तो उसके पास ही रहता है, या उसमें ही समाया रहता है। प्रेमी के रोम-रोम में उस राम-रहीम का घर बना रहता है। प्रेमी कहीं बीन या बाँसुरी सुनने नहीं जाता। सारे बाजे और बजानेवाला भी उसे अपने हृदय-मंदिर में बैठा मिल जाता है। प्रेमी का सर्वस्व उसके प्रेम-पात्र पर ही अवलंबित रहता है। उसे अपनापन दिखाने का हक़ ही नहीं रहता। जो कुछ भी उसमें है, सब उसके प्रेम-पात्र का ही है—

मेरा मुझको कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर ;
तेरा तुझको सौंपता, क्या लागत है मोर। (कबीर)

प्रेमी को लोक-परलोक की परवा नहीं रहती। कितना ही उसका अपमान हो, कितने ही उस पर कलंक लगाए जायँ, पर वह अपनी धुन में मस्त रहेगा। तन चला जाय, मन चला जाय, और चाहे प्राण ही क्यों न चले जायँ, परंतु प्रेमोन्मत्त प्रेमी पथ से हटने का नहीं। वह तो प्रेम पर कुछ-न-कुछ चढ़ाते-चढ़ाते एक दिन अपने को ही प्रेम की प्यारी वेदी पर बलि कर देगा। एक कृष्णानुरागिनी गोपिका कहती है—

कोऊ कहो कुलटा, कुलीन-अकुलीन कहो,
कोऊ कहो रंकिनि, कलंकिनि कुनारी हौं ;
कैसो परलोक, नरलोक बर लोकन में,
लीनी मैं अलीक, लोक लोकन ते न्यारी हौं।
तन जाव, मन जाव, 'देव' गुरुजन जाव,
जीव क्यों न जाव, टेक टरत न टारी हौं ;
वृंदावन वारी बनवारी के मुकुट पर,
पीतपट वारी, वहि मूरत पै वारी हौं।

कितना ऊँचा आत्मोत्सर्ग है! धन्य!

तन जाव, मन जाव, 'देव' गुरुजन जाव,
जीव क्यों न जाव, टेक टरत न टारी हौं।

जब उसने ऐसी कठिन टेक पकड़ ली है, तब भला वह पीतपटवाला साँवला उसे क्यों न निहाल करेगा। तुलसीदासजी ने भी लिखा है—

जाकर जापर सत्य सनेहू ;
सो तेहि मिलहि न कछु संदेहू।

इसके अतिरिक्त विश्व-विख्यात प्रेमी मजनूँ का ही उदाहरण लीजिए। हालाँकि उसका प्रेम ईश्वर पर न होकर एक व्यक्ति विशेष के प्रति था, परंतु कितना ऊँचा, कितना सच्चा और कितना पवित्र था। मजनूँ के प्रेम में कितना उच्च आदर्श था। एक दिन परमात्मा ने प्रकट होकर पूछा—"पगले! तू मेरी उपासना क्यों नहीं करता? क्यों एक मामूली स्त्री के प्रेम में अपने को नष्ट कर रहा है?" इस पर पगला

मजनूँ अल्लाह को उत्तर देता है—"मुझे क्या पड़ी है, जो तुझे पूजता फिरूँ ? क्या हुआ, अगर तू ख़ुदा है, तू मेरी लैला तो नहीं ? अगर तू लैला होता, तो यह ख़ाकसार ज़रूर अपना सिर तेरे क़दमों पर रख देता, तुझे अपनी आँखों पर बिठा लेता, और दिल में जगह देता । परंतु अफ़सोस, मुश्किल तो यह है कि तू एक मामूली ख़ुदा है, लैला नहीं ।" वास्तव में प्रेम का रूप यही है, और प्रेम का आदर्श यही है ।

सौ बात की बात तो यह कि यदि तुम जीवन को सफल बनाना चाहते हो, तो किसी के हो जाओ, और किसी को अपना बना लो । अगर यहाँ आकर तुम्हें कुछ सीखना है, तो किसी के होकर ही कुछ सीख सकोगे । ज़फ़र ने क्या अच्छा कहा है—

न हम कुछ हँसके सीखे हैं, न हम कुछ रोके सीखे हैं;
जो कुछ थोड़ा-सा सीखे हैं, किसी के होके सीखे हैं ।

प्रेमियों का इसी प्रकार धर्म और मत भी होता है । वह धर्म, वह मज़हब एकदम अनोखा, संसार के अन्य धर्मों से परे और विलक्षण होता है । उसके ज्ञानकांड, कर्मकांड और उपासनाकांड अन्य धर्म की पुस्तकों से मेल भी खाते हैं, और नहीं भी खाते । उसका नाम सब धर्मों में है, और किसी में भी नहीं । वह घोर नास्तिक और परम आस्तिक भी है । कभी अपनी मस्ती में वह यह गाने लगता है—

मक्का, मदिना, द्वारिका, बद्री और केदार ;
विना प्रेम सब झूठ है, कहे 'मलूक' विचार ।

तो कभी उसी शान में यह अलाप उठता है—

जब इश्क़ के दरियाव में होता नहीं ग़रक़ाब तू ;
गंगा, बनारस, द्वारिका, पनघट फिरा तो क्या हुआ ।

वह तो यह कहता है कि भाई, चाहे मुझे नास्तिकों में गिनो, चाहे आस्तिकों में, मेरा धर्म तो बस प्रेम है । काफ़िर कहो या पापी, इसका मुझे गिला नहीं—

याँ यूँ भी वाह वा है, और यूँ भी वाह वा है ।

प्रेमी को प्रेम रोग होता है । यह रोग क्या है ? कदाचित् यह अकथनीय है । बताया नहीं जा सकता, अनुभव किया जा सकता है ।

"सहते ही बने कहते न बने, मन-ही-मन पीर पिरैबो करै ।"

प्रेम रोग स्वादिष्ठ भी कहा गया है । अँगरेज़ी-कवि शेली कहता है—

Love's pain is very sweet.

मीराबाई गाती है—

हे री, मैं तो प्रेम-दिवानी, मेरा दरद न जाने कोय ।

जायसीजी लिखते हैं—

प्रेम-घाव-दुख जान न कोई, जेहि लागै जानै पै सोई ।

इस पर भी आश्चर्य तो यह है कि प्रेम का रोगी अपना इलाज नहीं कराना चाहता । दवा से तो वह कोसों दूर भागता है । कहता है—

तेरे इश्क़ ने दिल में जो दर्द दिया,
तो कुछ उससे मज़ा मैंने ऐसा लिया ;
न करूँ, न करूँ, न करूँ मैं दवा,
मैंने खाई है अब तो दवा की क़सम ।
(नज़ीर)

परंतु यह रोग असाध्य नहीं है । इस रोग का नुसख़ा उस प्यारे के ही पास है, जिसका वह प्रेमी है । वही रोग का कारण है, वही वैद्य है, और वही औषध भी है । प्रेम-पगली 'मीरा' कहती है—

दरद की मारी बन-बन डोलूँ, बैद मिला नहिं कोय ;
'मीरा' की तब पीर मिटैगी, जब बैद सँवलिया होय ।

परंतु जब उसका प्रेम-पात्र—वैद्य—आता है, तो रोगी का चेहरा खिल जाता है । आँखों में गुलाबी रंगत आ जाती है, और होठों पर एक हलकी मुस्किराहट । न दर्द रहता है, न घबराहट । वैद्य बेचारे को बड़ा आश्चर्य होता है, यह कैसी बीमारी है ? बात यह है कि नेक-दिल मरीज़ अपने सारे दर्द और रंज को उस हकीम के आगे दबा देता है । यह क्यों ? यह इसलिये कि उसकी कोमल आँखों को बीमार की यह हालत देखकर कहीं कुछ ठेस न लग जाय । अपने प्यारे हकीम का उसे इतना अधिक ध्यान है । अपने शोक-समूह से वह प्रेमी कहता है—

ठेस लग जाए न उनकी हसरते-दीदार को ;
ऐ हुजूमे - ग़म, सँभलने दे ज़रा बीमार को ।

कैसा हृदय-भेदी भाव है।

प्रेम का पंथ अत्यंत कठिन और आश्चर्य-जनक है। ज्ञान-पंथ, धर्म-पंथ इत्यादि पंथों का पार करना उतना कठिन नहीं, जितना प्रेम-पंथ का। सचमुच प्रेम-पंथ तो खड्ग की धारा है। जैसा कि बोधा ने कहा है—

यह प्रेम को पंथ करार महा, तरवार की धार पै धावनो है।

इस मार्ग में अंधकार का नाम-निशान भी नहीं। यह पथ अत्यंत आनंददायी है, मगर है कठिन। इसे पार करना सुगम नहीं। महा कठिन साधना है। मोम के घोड़े पर चढ़कर आग के अंदर से निकलना है। इस पथ पर चलना नेज़े की नोक पर चलना है—

प्रिय का मारग कठिन है, खाँड़ा हो जैसा।

प्रेम की गली बड़ी पेचीदा है। यहाँ एक नहीं, दो-दो चीज़ें लापता हो जाती हैं। खोजनेवाला और खोजनेवाले का दिल दोनो लापता हो जाते हैं। खोजनेवाला दिल को और दिल खोजनेवाले को खोजता है। कैसी अनोखी पहेली है।

तेरी गली में आकर खोए गए हैं दोनो;
दिल मुझको ढूँढता है, मैं दिल को ढूँढता हूँ।

जिस प्रकार प्रेम का पंथ कठिन है, उसी भाँति प्रेम-निर्वाह करना, उसे एक-सा जीवन-भर निबाह ले जाना और भी कठिन है। प्रेम का संबंध तो प्रत्येक मनुष्य जोड़ सकता है, परंतु प्रेम का निभाना सदाचारियों और शूर-वीरों का ही काम है, विषयी और कायरों का नहीं। यों तो दो-चार दिन के लिये सभी प्रेमी बन जाते हैं, पर उनका प्रेम 'चार दिन की चाँदनी, फेर अँधेरो पाख' के समान होता है। फिर कौन किसकी याद करता है? सांसारिक नेह का नशा चार ही दिन रहता है। वास्तव में उस प्रेम को प्रेम कहना ही मूर्खता है।

यों तो मनुष्य के नेत्र सुख-दुख और अनेकों अवसरों पर अश्रु बहाया करते हैं, परंतु प्रेमाश्रु के बूँदों की महिमा अकथनीय है। प्रेम के आँसू स्वयं छलककर न-जाने क्या-क्या छलका जाते हैं। जिन आँखों ने प्रेम का नीर नहीं बहाया, उनका फूट जाना ही अच्छा।

फूट जाएँ आँख वह जिनमें कभी—
प्रेम का आँसू उमड़ आता नहीं।
('हरिऔध')

फिर आगे सिंहजी प्रेमियों के आँसू को आँसू न कहकर कहते हैं कि प्रेमी के हृदय में फफोला पड़ गया था, वही आज अचानक फूटकर बह रहा है। उसका इतना बड़ा अरमान आज कुछ बूँदें बनकर निकल रहा है—

था जिगर पर जो फफोला-सा पड़ा;
फूट करके वह अचानक बह गया।
हाय! था अरमान जो इतना बड़ा;
आज वह कुछ अश्रु बनकर बह गया।

ख़ैर, अच्छा हुआ, जो फफोला फूट गया। दर्द कुछ कम हो गया। रो लेने से दिल कुछ-न-कुछ हल्का तो अवश्य हो जाता है। इससे—

चल दिल, उसकी गली में रो आवें;
कुछ तो दिल का ग़ुबार धो आवें।
(हसन)

अच्छा भाई, रो लो। अगर तुम्हारे दिल का ग़ुबार इस तरह कुछ धुल जाय, तो जाओ, उसकी गली में रो आओ। मगर बिहारीजी की तरह—

गोपिन के अँसुवन-भरी, सदा असोस अपार;
डगर-डगर नै ह्वै रहत, बगर-बगर के बार।

डगर-डगर में, गली-गली में, घट-घर के द्वार पर गोपिकाओं के आँसुओं से भरी अपार नदी न बहाना।

'मीर' साहब ने भी रो-रोकर अपने यार की गलियों में कई बार दरिया की धारें बहाई थीं—

उन्हीं गलियों में जब रोते थे हम 'मीर';
कई दरिया की धारें हो गई हैं।
(मीर)

पर नेक-दिल नज़ीर को अपनी प्यारी बस्ती का अब भी बहुत-कुछ ध्यान है। वह ग़रीबों के घरों की ख़ैर मनाते हैं, उन्हें डुबोना नहीं चाहते। इसीलिये आप अपने यार की गली में रोने नहीं जाते।

अगर वहाँ कहीं जाकर हज़रत ने रो दिया, तो हरएक घर के पास पानी-ही-पानी हो जायगा। कहते हैं—

रोऊँगा आके तेरी गली में अगर मैं यार,
पानी-ही-पानी होगा हरएक घर के आस-पास।

मेहरबान, ख़ुदा के वास्ते, ऐसा भूलकर भी न कीजिएगा।

प्रेमाश्रु की महिमा कौन गा सकता है? अपनी यह अश्रु-धारा हमें बड़ी प्यारी है, क्योंकि यह हमें प्यारे की प्रीति के उपहार में प्राप्त हुई है—

क्यों न हो हमारी अश्रु-धार अति प्यारी हमें;
वह तो तुम्हारी प्रीति का ही उपहार है।
(गोपालशरणसिंह)

और इन आँसुओं से हमारी इज़्ज़त-आबरू है—

किसी को किसी तरह इज़्ज़त है जग में,
मुझे अपने रोने से ही आबरू है।
(दर्द)

सच मानिए, ये प्यारे आँसू न होते, तो हमारे घायल दिल के आज सैकड़ों टुकड़े हो गए होते—

हम कहेंगे क्या, कहेंगे यह सभी—
आँख के आँसू न होते ये अगर,
बावले हम हो गए होते कभी;
सैकड़ों टुकड़े हुआ होता जिगर।
('हरिऔध')

हमारे पापों ने धोकर यदि हमें शुद्ध किया है, तो इन प्रेम के आँसुओं ने ही। ग़ालिब ने क्या अच्छा कहा है—

रोने और इश्क़ में बेबाक़ हो गए;
धोए गए हम इतने कि बस पाक हो गए।

यद्यपि संसार में सच्चे प्रेमी वास्तव में बहुत कम हैं, परंतु उनका सर्वथा अभाव नहीं है। अब भी कुछ आदर्श प्रेमी आदर्श-स्वरूप पाए जाते हैं। प्रेम-पक्षी पपीहा प्रेम पर जीना भी जानता है, और मरना भी। प्रेम के मार्ग पर एक यही सच्चा प्रणवीर देखने में आया है। मरते-मरते मर जायगा, पर अंत तक अपना प्रण भंग न करेगा। क्या ही ऊँचा प्रण है—

पपिहा पन को ना तजै; तजै, तो तन बेकाज;
तन छूटे, तो कछु नहीं; पन छूटे, अति लाज।
(कबीर)

प्रेम की प्यास में कितनी तड़प है, इसे वह पपीहा ही जानता है। कूप, नदी, तालाब, कुंड आदि जलाशय उसके किस काम के? समुद्र तक तो उसकी प्यास नहीं बुझा सकता। वह केवल स्वाति-जल का ही प्यासा है। एक बहेलिए ने किसी पपीहे के बाण मार दिया। घायल पक्षी छटपटाता हुआ गंगाजी में गिरा। पर उस प्यास से पपीहे ने मरते समय भी पतित-पावनी जल में अपनी चोंच न डुबोई। टेक निबाहते हुए शरीर छोड़ दिया—

ब्याधा-बध्यौ पपीहरा परयो गंग-जल जाय;
चोंच मूँद पीवै नहीं, पिऊँ तो मो प्रन जाय।
(तुलसी)

धन्य है प्रेमी पपीहे को। कितना पवित्र प्रेम है उसका।

मीन क्या आदर्श प्रेमी नहीं है? क्यों नहीं, उसकी प्रीति तो अतुलनीय है, अकथनीय है। यों तो कहने को जल के अनेक जीव हैं। मगर भी पानी में रहता है, साँप भी पानी में रहता है, मेंढक का भी वहीं घर है, और कछुए का भी वहीं रहना होता है; पर मीन का जो जल से प्रेम है, वह दूसरे जलचरों में कहाँ? और जीवों का तो जल केवल घर है, पर मीन के लिये तो वही घर और जीवन भी है। उससे बिछुड़ते ही उसकी दृष्टि में जीवन का मूल्य नहीं। मछली जीते-जी तो जल को छोड़ेगी ही क्यों, मरने पर भी उसी को चाहती और उसी का प्रेम माँगती है। मरकर काटे जाने पर भी पानी ही से साफ़ होती है। और पकाकर खाए जाने पर भी जल की ही चाह करती है। रहीम ने कहा है—

मीन काटि जल धोइए, खाए अधिक पियास;
'रहिमन' प्रीति सराहिए, मुएहु मित्र की आस।

एक और सज्जन इसका समर्थन करते हैं—

प्रेमी प्रीति न छाँड़हीं, होत न प्रन ते हीन;
मरे परे हू उदर में, जल चाहत है मीन।

इसी प्रकार लौ लगाकर लौ से लिपट जाना पतंगा ही जानता है। उसका प्रेमालिंगन अनुपम है। प्रेमाग्नि में अपने को नष्ट कर देना हर किसी का काम नहीं—

ख़ाके-परवाना से आती हैं सदाएँ पैहम—
ज़िंदगी है ग़मे-दिलबर में फ़ना हो जाना।
(जिगर)

पतंगे की ख़ाक से बराबर यह आवाज़ उठ रही है कि ग़मे-दिलबर में फ़ना हो जाने का नाम ज़िंदगी है। प्यारे के वियोग-दुःख में अपने को नष्ट कर देना ही जीवन है। कैसी उच्च और पवित्र भावना है। दिल चाहता है, उस प्रेम के फ़क़ीर की यह सदा हम भी गली-गली लगाते फिरें—

"ज़िंदगी है ग़मे-दिलबर में फ़ना हो जाना।"

भाई! ज़िंदगी की उलझन इसी तरह प्रेम की लौ में फ़ना हो जाने से ही सुलझेगी। फिर क्यों न हम पतंगे के जीवन-दान से प्रेम का पवित्र पाठ पढ़ लें?

और भी प्रेम-जगत् में कितने ही आदर्श प्रेमी हैं। उस चाह-भरे चुंबक का लोहे को खींचकर गले से लगा लेना कौन नहीं जानता? चीर के प्रति नीर का प्रेम क्या साधारण है?

आइए! अब हम लोग भी मोह को छोड़कर प्रेम के अनुगामी बनें, और इन आदर्श प्रेमियों का अनुसरण करने का प्रयत्न करें।

ग्रंथ-रूपी-गुरु

[श्रीगिरिधरजी शर्मा 'नवरत्न']

दिखरावें जग-रूप, देवें ज्ञान तत्त्वन को,
'नवरत्न' जासों कौन जन सुख पावें ना,
उक्तियाँ कबिंदन की मधुर-मधुर भाषें,
सौ-सौ बार पूछे हू बतावें, उकतावें ना,
विश्व के महान मतिमान विद्वानन की
बानियाँ सुनावें, सरसावें, गरबावें ना,
ऐसे शांत, ऐसे दांत, ऐसे गुरु ग्रंथ ही हैं,
बंद हू किए ते जौन ऊन मन लावें ना।

सिनेमा

[श्रीयुत गुप्तेश्वरप्रसाद गौतम]



सिनेमा का नाम कौन नहीं जानता? इस आश्चर्य-जनक वस्तु को तो सभी जानते होंगे, क्योंकि इसकी धूम भारतवर्ष ही में क्या, सारे संसार में मची हुई है। ऐसा कोई भी नागरिक न मिलेगा, जिसने इस कौतूहल का दर्शन न किया हो। वह कौन-सी वस्तु है, जो मनुष्य को प्रथम बार दर्शन करने से आश्चर्य में डाल देती और विचार-मग्न कर देती है, नेत्र एकटक देखने लगते हैं, शरीर शिथिल पड़ जाता है, मनुष्य निज स्थान पर प्रतिमा-सदृश बैठा रह जाता है, काटने पर रक्त का नाम नहीं, कर्णों में पात्रों का वार्तालाप प्रवेश नहीं करता। क्षण-मात्र में परिवर्तन करनेवाली वस्तु सिनेमा है, सिनेमा है, सिनेमा है। उस व्यक्ति को, जिसने एक बार भी सिनेमा-भवन में पदार्पण किया है, ऐसी चाट लग जाती है कि आजन्म नहीं छूटती। ऐसी वस्तु के विषय में सोचना मनुष्य-मात्र का कर्तव्य है। सिनेमा है क्या, जिसने जनता के सुकुमार हृदय को प्रेम-शीतल रश्मियों से बेध डाला है।

आइए, विचारिए—सिनेमा है क्या? यह नाटक अथवा थिएटर के सिवा कोई नई वस्तु नहीं है। सिनेमा नाटक ही का रूपांतर है। नाटकों की भरमार, प्राचीन काल में, भारत में क्या, पाश्चात्य देशों में भी थी। हरएक उत्सव पर नाटक खेला जाता था। महाभारत-काल में, जब युधिष्ठिर ने राजसूय-यज्ञ किया था, 'शांता' नाम का नाटक खेला गया था। प्राचीन पुस्तकों के अध्ययन करने से भी ज्ञात होता है कि नाटक खेले जाते थे। कभी भारतवर्ष में नाट्य-कला की अत्यधिक उन्नति हो चुकी थी। परंतु काल परिवर्तनशील है, समय ने पलटा खाया, और हमारी नाट्य-कला का अधःपतन होने लगा। वह समय भी निकट आ गया था कि इसका नाम सुनने को भी न मिलता। कितने ही मुसलमान बादशाहों ने संगीत-कला और नाट्य-कला का विरोध किया। इसके उपलक्ष में, दिल्ली में तो शोक प्रकट करने के लिये, संगीत-कला की लाश बनाकर निकालते थे। परंतु ईश्वर को यह स्वीकार न था कि दो प्रिय वस्तुओं का विनाश हो जाय। उन्होंने सूर और तुलसी को हिंदुओं की खिन्नता दूर करने के लिये भेजा। प्रथम ने भगवान् कृष्ण का चरित जनता के सामने रक्खा, द्वितीय ने राम-कथा श्रवण कराई। अब संगीत-कला की उन्नति के ढंग प्रकट होने लगे। सूर और तुलसी ने कृष्ण और राम के स्मरणार्थ कृष्ण-लीला और राम-लीला की स्थापना कराई। कितना सुंदर मंतव्य था! उस वस्तु का अधिक प्रभाव पड़ता है, जो प्रत्यक्ष कर दी जाती है, इसी कारण लीलाओं की स्थापना की गई।

आज से पंद्रह वर्ष पूर्व राम-लीला और कृष्ण-लीला की देश में भरमार थी। कृष्ण-लीला तो हरएक उत्सव में कराई जाती थी। फिर उसका स्थान थिएटरों ने ले लिया। इनका भी भारत में अधिक मान रहा, परंतु इनकी विजय-दुंदुभी सिनेमा ने बंद कर दी, अब तो इनका भी रिवाज उठता-सा जा रहा है। अब तो सिनेमा की चारो ओर धूम है, उसी की पताका प्रत्येक नगर में, सिनेमा-भवन-रूप में, लहरा रही है।

अब हमें विचार करना चाहिए कि सिनेमा और नाटक में क्या भेद है? यदि मोटी निगाह से देखें, तो ज्ञात होगा कि सिनेमा और नाटक दोनो एक ही वस्तु हैं, परंतु बारीक दृष्टि से देखें, तो ज्ञात होगा कि इन दोनो में आकाश-पाताल का अंतर है।

साधारणतः ज्ञात होगा कि सिनेमा नाटक ही तो है—वही नाटक, जो रंग-भूमि पर खेला जाता है, परंतु उसके हरएक कार्य के चित्र फ़िल्मों में हैं, जो प्रकाश द्वारा पर्दे पर आते जाते हैं। आप ध्यान से मनन करें, तो प्रकट होगा कि नाटक के पात्रों में वह सजीवता नहीं, जो सिनेमा के पात्रों में पाई जाती है। ऐसा ज्ञात होता है कि नाटक-पात्र भँड़ैती कर रहे हैं। सिनेमा में प्रत्येक कार्य का अवलोकन होता है। उदाहरणार्थ हरिश्चंद्र-नाटक को ही ले लीजिए। इस नाटक का आनंद उसके सिनेमा के सामने तुच्छ मालूम होगा। सिनेमा में हरिश्चंद्र-भवन, अयोध्या, बावरा का मनोहर तीर, काशी जाते समय तीनो प्राणियों का जंगलों में होकर जाना, काशी का बाज़ार, वेश्या का विशाल भवन, काशी का मनिकर्णिका-घाट, शैव्या का पुत्र के शव को लेकर जाना इत्यादि दृश्य वैसे ही मिलेंगे, जिस प्रकार हरिश्चंद्र को प्रतीत होते थे। ऐसा ज्ञात होगा कि हम सतयुग के हरिश्चंद्र को कलियुग में वैसे ही कार्य करते देख रहे हैं। नाटकों के अंदर ये बातें नहीं मिलेंगी।

नाटक में आनंद तब आता है, जब नृत्य होता है। परंतु यह भी आनंद पूर्णतया नहीं प्राप्त होता, क्योंकि शैतान लोग हाय-हाय कर शोर मचा देते हैं। छ आनेवालों की ख़ूब बन आती है। बेचारे दो-दो चार-चार रुपएवाले न तो गाना ही सुनने पाते हैं, और न अच्छी तरह नृत्य ही देखने पाते हैं। सिनेमा के अंदर यह बात नहीं। पात्रों की बोली ज़ोर से और साफ़ सुनाई पड़ती है। पात्रों की फ़ोटो भी बड़े-बड़े आकारों में होती है, इसलिये स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इसके अंदर सबसे बड़ा आनंद जो मिलता है, वह प्रकृति-दर्शन का है।

आप सिनेमा-भवन में बैठकर, केवल चार आने में, संसार की अद्भुत वस्तुओं का अवलोकन कर सकते हैं। न्यूयार्क की गगन-स्पर्शी विशाल अट्टालिकाओं को देख सकते हैं, काश्मीर की रमणीय, स्वर्गीय झेलम-घाटी का दर्शन कर सकते हैं। हिमालय की उच्च बर्फ़ीली चोटियों को और उनके ऊपर अजगर के समान चलती हुई हिम-धारा को नेत्रों के सामने पा सकते हैं। आफ़्रिका के विक्टोरिया-प्रपात का मधुर शब्द सुन सकते और देखकर उसका आनंद लूट सकते हैं। "नव-उज्ज्वल जल-धार हार-हीरक-सी" सुशोभित भागीरथी गंगा को चित्र-पट पर देख सकते हैं। अमेज़न और कांगो जैसे भयानक जंगलों को, जहाँ हाथी, चीता, शेर इत्यादि जीव स्वतंत्र विचरते हैं, देख सकते हैं। वालपेरोसे की अनुपम घाटी नेत्रों में अंकित हो सकती है। पक्षियों के कलरव को सुनकर मुग्ध हो सकते हैं। भयानक जंतुओं की बोली सुनकर हृदय पक्का बना सकते हैं। ऐसे रमणीक दृश्य सिनेमा में ही मिल सकते हैं, न कि नाटकों में।

सिनेमा में मनुष्य के भाव बदलने की अनुपम शक्ति है। वह थोड़ी-सी देर में हँसा देता है, और पल-भर ही में रुला देता है। जब हम सिनेमा में हरिश्चंद्र-नाटक देखते हैं, तो अयोध्या के परम मनोहर, श्रेष्ठ भवन चित्र-पट पर आ जाते हैं। मन विशाल भवनों को देखकर चकित हो जाता है। काशी-पथानुगामियों को जंगलों में जाते हुए देखते हैं। शैव्या पैर से काँटा निकालती है, विश्वामित्र फटकार बताते हैं कि जल्दी-जल्दी चलो। इसे देखकर उनकी दीन दशा पर नेत्रों से अश्रु-धारा बहने लगती है। शैव्या मृतक पुत्र को मरघट पर ले जाती है, हरिश्चंद्र कर माँगते हैं। जब शैव्या नहीं देती, तो हरिश्चंद्र चीर फाड़ते हैं, इधर दर्शकों का हृदय विदीर्ण होने लगता है। यह शक्ति सिनेमा में ही है, जो क्षण-भर में मनुष्य के भावों को परिवर्तित कर देता है। यह शक्ति नाटकों में नहीं।

हमारे देश में अभी सिनेमा का अधिक प्रचार नहीं है, परंतु योरप और अमेरिका में ख़ूब है। वहाँ हरएक वस्तु सिनेमा द्वारा दिखाई जाती है। यदि भूगोल पढ़ना है, तो कुछ आने के टिकट में

ही अमेरिका का सविस्तर हाल आप जान सकते हैं, जिसे कभी भूल नहीं सकते। मास्टर की बताई बातें चाहे भूल जायँ, परंतु सिनेमा से सीखी हुई बातें स्मरण रहती हैं, किताब पढ़ने और रटने की आवश्यकता नहीं रहती। इतिहास तो इतना जल्द याद हो सकता है, जितना और किसी तरह नहीं हो सकता। अब अमेरिका-जैसे देशों में साइंस-जैसे गूढ़ विषय सिनेमा द्वारा सुगमता-पूर्वक सिखाए जायँगे। बस, आप समझ सकते हैं, सिनेमा से कितना लाभ उठाया जा रहा है, और भविष्य में और लाभ उठाने की कितनी संभावना है। सिनेमा-जैसा आचार्य शायद ही प्राप्त हो सके, जो थोड़े-से दाम में विद्या पढ़ा सके। इसीलिये कहते हैं कि सिनेमा एक अच्छा आचार्य है।

सिनेमा केवल उपर्युक्त बातें ही नहीं बतलाता, प्रत्युत देश की प्राचीन और अर्वाचीन दशा की ओर भी ध्यान आकर्षित करता है। यह सिनेमा का ही काम है कि वह प्रत्येक देश की कुप्रथा और सुप्रथा को बतला देता है—उस जनता को, जिसने अपने प्राचीन पुरुषों के गौरव को नष्ट कर डाला है, उन्नति-पथ का पथिक बना सकता है। सिनेमा मृतक-तुल्य देश के लिये संजीवनी औषध है। वह देश को, जो सैकड़ों वर्षों से दासता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ हो, स्वतंत्र करा सकता है—राष्ट्र-वीरों के कानों में स्वतंत्रता का मंत्र फूँक सकता है। कितने ही देश आलस्य-निद्रा को त्यागकर इसी तरह उन्नत हो गए हैं। तभी तो सिनेमा को गुरु कहते हैं।

उस परमपिता परमात्मा ने जीव को मानसिक और शारीरिक उन्नति के लिये ही संसार में भेजा है, न कि भोग-विलासादि सामग्रियों के सेवनार्थ। जीव के संसार में प्रवेश करते ही ये दो महाऋण सिर पर आरूढ़ हो जाते हैं। इसलिये हरएक जीव का धर्म है कि वह इन ऋणों से उऋण हो जाय। वे चार पदार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—जिनसे हरएक मनुष्य परिचित है, हरएक समय मान-चित्र की भाँति नेत्रों के सामने लटकते हुए दिखाई पड़ते हैं, और मनुष्य इन अमूल्य पदार्थों के पाने के लिये तन मन से प्रयत्न करता है, परंतु असफल होता है। यदि एक ऐसा उपाय बता दिया जाय, जिसमें चारो पदार्थ मिल जायँ (जिस प्रकार महात्मा तुलसीदास को महाकाव्य श्रीरामचरित-मानस के रचने से प्राप्त हुए हैं), तो कितना आनंद हो?

आइए, यदि वास्तव में आपको चारो पदार्थ पाने का हार्दिक स्नेह है, तो सिनेमा में प्रवेश कीजिए। आप पूछेंगे, सिनेमा में प्रवेश होने से कैसे प्राप्त कर सकते हैं? प्रत्येक मनुष्य की कामना रहती है कि चारो पदार्थ प्राप्त कर ले। जिस समय कामना पूर्ण हो जायगी, उसी समय चारो पदार्थ प्राप्त हो जायँगे। प्रथम पुरुष की अभिलाषा रहती है अर्थ अर्थात् धन कमाने की। यदि आप सिनेमा में भर्ती होंगे, तो धन-कामना पूर्ण हो जायगी, क्योंकि सिनेमा में भारी वेतन मिलता है। विदेशों में तो पात्रों का वेतन तीस-तीस हज़ार तक है। अब धर्म किस प्रकार से प्राप्त हो? यदि अर्थ है, तो धर्म अच्छी तरह कमा सकते हैं। धन को असहाय, पीड़ित, दुःखित और दीन पुरुषों को दीजिए, जिससे उनके मुख से हमेशा आशीश निकलता रहे। दूसरे, सिनेमा के अंदर ऐसे खेल खेले जाते हैं, जो धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और सामयिक होते हैं, जिनका जनता के ऊपर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। इससे बढ़कर और कौन-सा धर्म हो सकता है?

तीसरी कामना मनुष्य को यश की रहती है। वह धनी और धार्मिक होने से प्राप्त हो जाती है। संसार में दो प्रकार के आदमियों का ही नाम होता है—(१) धनी का और (२) धार्मिक का। जब मनुष्य की तीन अभिलाषाएँ—अर्थ, धर्म और काम—पूर्ण हो जाती हैं, तब उस पुरुष के समान कौन भाग्यशाली होगा, और कौन सुखी होगा? सुख ही का नाम मोक्ष है, दुःख ही नरक है। हम प्रतिदिन अपने नेत्रों के सामने मोक्ष और नरक देखा करते हैं। जिस

समय हम धनी पुरुष को देखते हैं कि बैठे हुए हैं, आगे-पीछे और दाएँ-बाएँ नौकर खड़े हुए हैं, पंखा सिर पर झला जा रहा है, इत्रों की झड़ी लग रही है, तब मुख से निकल पड़ता है कि यही स्वर्ग है, यही मोक्ष है। इसी प्रकार दुःखित, नग्न, दीन और असहाय भिखारी को देखते हैं, तो नरक का चित्र नेत्रों के आगे खिंच जाता है। हम अब कह सकते हैं कि सिनेमा चारो पदार्थों का देनेवाला है।

ऐसे सिनेमा को देखकर बहुत-से पुरुषों की धारणा हो चली है कि इसे देखना पाप है। मनुष्य कहा करते हैं कि पात्रों के गुणों का प्रभाव बच्चों, स्त्रियों और नवयुवकों के ऊपर अधिक पड़ता है। पात्र रंग-मंच पर आकर अश्लील गाने गाते हैं, पात्रियों के साथ कुव्यवहार करते हुए देखे जाते हैं, चुंबनों का ढेर लग जाता है। पात्रियाँ अधिकतर वेश्याएँ होती हैं, जो मुस्किराना, कटीले नैन चलाना इत्यादि दुष्कार्य कर कोमल हृदय को डावाँडोल कर देती हैं। बच्चों के ऊपर कैसा प्रभाव पड़ता होगा? कहीं शीरीं फ़रहाद के लिये मर रही है, तो कहीं मजनूँ लैला की जूती के लिये समुद्र में कूद रहा है! ऐसे ही दुश्चरित्र-पूर्ण अभिनय खेले जाते हैं, जिन्हें देखकर वैसे ही प्रयोग घर आकर होने लगते हैं, और लैला-मजनूँ तथा शीरीं-फ़रहाद के नए नाटक रचे जाते हैं। यही कारण है कि भारतवर्ष में व्यभिचार बढ़ता जाता है। पत्र-पत्रिकाओं में भी ऐसे ही लेख नित्यप्रति निकला करते हैं। फिर बताइए, सिनेमा देखना पाप नहीं है? क्या धर्म है?

सिनेमा में अश्लील नाटकों की भरमार रहती है। कहीं कोई स्त्री को चुराकर भागा जा रहा है, कहीं बलात्कार कर व्यभिचार के लिये आरूढ़ है, कहीं दुराचार से संतान उत्पन्न हो रही है, कहीं डाका डाला जा रहा है, कहीं गले में फाँसी की रस्सी डाली जा रही है, कहीं तलवार हृदय-रक्त का पान कर रही है, कहीं गुंडों और सतियों में बाज़-कबूतर की-सी झपटें हो रही हैं, कहीं त्राण करनेवाले के हाथों पर शिलारोहण किया जा रहा है, कहीं अट्टालिका पर चढ़ी हुई रमणी को देखकर प्रेम के लिये प्रार्थना की जा रही है। धिक्कार है ऐसे नाटकों पर और देखनेवालों पर!

कहीं वेश्याओं के साथ चौबीस घंटे रहकर जीवन पवित्र और सदाचार-पूर्ण रह सकता है, जब कि पर-रमणी को देखकर ही काम-विद्युत्-धारा प्रवाहित हो उठती है? क्या वे बटन दबा देंगे, और काम-शक्ति स्थिर हो जायगी? क्या पापिष्ठ पात्र-पात्रियों का देखना धर्म है? न-मालूम इस सिनेमा ने कितने घरों को बिगाड़ डाला है, कितनी स्त्रियों का पति-प्रेम और पातिव्रत-धर्म छुड़ा दिया है, कितने बच्चों को पिता की आज्ञा भंग करना सिखा दिया है, कितनी सुकुमार बालाओं को शीरीं और लैला बना डाला है! ये जीते-जागते चित्र भारतवर्ष के कोने-कोने में दिखाई पड़ते हैं।

परंतु कुछ जनता का मत है कि सिनेमा देखने से हानि नहीं, लाभ होता है, यदि इसका सदुपयोग किया जाय। लोग सिनेमा देखने जाते हैं, तो अच्छी वस्तुओं का अवलोकन नहीं करते, इसी से लाभ नहीं होता। यदि शुभावलोकन करें, तो लाभ हो सकता है। सिनेमा में जाकर उसकी शिक्षाओं को ग्रहण करें, न कि दुर्वृत्ति व्यवहारों को। अपनी बुद्धि की तराज़ू पर तौलें, कौन-सी वस्तु अच्छी है, और कौन-सी बुरी। बुद्धि की परीक्षा ऐसे समय में ही की जाती है। परमेश्वर ने बुद्धि इसीलिये दी है। कौन नहीं जानता कि सोना कंकरीली चट्टानों के अंदर पाया जाता है, कितनी कठिनाइयों का सामना करके बाहर निकाला जाता है, इसी कारण सोना महँगा बिकता है। इसी प्रकार हीरे की कथा है, जो सोने से भी महँगा मिलता है। यदि हीरा और सोना कौड़ियों की भाँति मिलता, तो कौड़ियों के मोल ही बिकता!

जिस प्रकार हीरा और सोने को प्राप्त करने के लिये हम कंकड़-पत्थरों को पृथक् कर देते हैं, इसी प्रकार

यदि शिक्षा ग्रहण करना चाहें, तो बुराइयों को त्यागकर, कुवचनों को तिलांजलि देकर शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। यदि पहले ही से रंग चढ़ा है, तो फिर रंग चढ़ने में क्या देर है। स्वयं पवित्र हो, तो धब्बा नहीं लग सकता। यदि स्वयं दग़ीले हों, तो पवित्र नहीं बन सकते। यह प्रकृति का नियम है।

सिनेमा के अंदर अच्छे-बुरे सभी प्रकार के नाटक खेले जाते हैं, जिनमें डकैती, हत्याकांड, दुराचार, सदाचार, प्रेम, शत्रुता आदि का चित्रण रहता है। जिस शीरीं-फ़रहाद के नाटक से संतान शीरीं-फ़रहाद बन सकती है, उसी खेल से फ़रहाद के समान प्रेमी और दृढ़प्रतिज्ञ बन सकती है। जिस लैला-मजनूँ के खेल से संतान भ्रष्ट बनती है, उसी खेल से सच्चा प्रेमी—मजनूँ—बन सकती है, जो प्रेमिका के लिये प्राण की भी आहुति दे सकती है। संतानवाले माता-पिता शिक्षा ले सकते हैं कि पुत्री-पुत्र किस प्रकार अपना जीवन सुखमय बना सकते हैं। जिस घर में पति-पत्नी में प्रेम नहीं होता, वह गृहस्थ नष्ट हो जाता है। जिस गृहस्थ में दंपति प्रेमी-प्रेमिका की भाँति जीवन-निर्वाह करते हैं, वह सदैव आनंदमय रहता है, वरना फ़ज़ीते होते रहते हैं। यदि लैला की शादी मजनूँ के साथ होती, तो कितना सुखमय गृहस्थ बनता, आपदा की आँच की लपक भी न लगती।

जिस समय 'अभिमन्यु-वध'-खेल खेला जाता है, उस समय वीर की सुकुमारता पर दया आती है, उसकी वीरता पर रोम-रोम प्रफुल्लित हो उठता है, भुजाओं में रक्त दौड़ जाता है, उसकी दीन प्रार्थना पर—जब कि दुर्योधन से नियमानुकूल शस्त्र माँगता है—दिल भर आता है। उसकी मृत्यु पर नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग जाती है। इस प्रकार यह खेल मनुष्य के विचारों को क्षण-क्षण-भर में परिवर्तित कर देता है। यह शक्ति सिनेमा के खेलों में ही है।

क्या पर-रमणियों के साथ रहने से ही मनुष्य दुराचारी हो जाता है? कभी नहीं। यदि प्राचीन इतिहास को देखें, तो ज्ञात होगा कि नग्नावस्था में भी स्त्रियों के देखने से जब मन विकारमय नहीं होता, तो सवस्त्राओं से कैसे हो सकता है? शुकदेव घर से रूठकर जाते हैं। कोमलांगिनी महिलाएँ नग्न होकर स्नान कर रही हैं, परंतु शुकदेव को इससे कुछ मतलब नहीं। व्यासजी जाते हैं, तो रमणियाँ वस्त्र-भूषिता हो जाती हैं। व्यासजी के पूछने पर एक रमणी कहती है—"पर्दा उनके लिये है, जो व्यवहार जानते हैं, अव्यवहारी के लिये नहीं। शुकदेव युवतियों का मूल्य नहीं जानते, इसलिये पर्दा नहीं किया। परंतु आपसे किया है। क्योंकि आप उपयोग जानते हैं।" यदि शुकदेव के-से विचारोंवाली संतान हो, तो दुराचार का नाम नहीं रह सकता। तब कैसे उत्तम विचारवाले आदमी थे कि स्त्री-व्यवहार तक नहीं जानते थे। गृहस्थी में प्रवेश करने पर ही इस संबंध में ज्ञान प्राप्त करते थे। यदि ऐसे विचारवाले मनुष्य हों, तो उन पर अश्लील बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। एक नग्ना क्या, सहस्र नग्ना हों! पंजाब में रमणियाँ नग्न नहाती हैं, तो क्या कोई उन वीरांगनाओं से हाथ लगा सकता है? कैसी बहादुर रमणियाँ होती हैं, इसे सब जानते हैं। यदि एक बार मान लिया जाय कि पात्र-पात्री दुश्चरित्र होती हैं, तो उनके चरित्र से क्या मतलब? हमें तो नाटक देखकर शिक्षा लेना है, न कि उनके अवगुण देखना है। यदि वेश्याएँ सिनेमा में अधिक पार्ट लेती हैं, तो अन्य पापों से तो बचती हैं। और, किसी स्त्री को अन्य वेश्याओं की भाँति फुसलाती तो नहीं! यह तो संसार का कार्यालय है कि पाँच भले तो चार बुरे। यह तो होता ही रहता है।

आप कहेंगे कि सिनेमावाले अश्लील नाटक खेलते हैं, पर इसमें भी आश्चर्य की कोई बात नहीं। क्योंकि जैसी जहाँ की जनता होती है, वैसे ही वहाँ नाटक खेले जाते हैं। जिस स्थान की जनता प्रेम की प्यासी होती है, वहाँ शीरीं-फ़रहाद-जैसे नाटक बनते हैं। जो धार्मिक और वीर-रस-पूर्ण नाटक चाहते हैं, उनके लिये 'पद्मिनी' और 'अभिमन्यु'-जैसे नाटक

दिखाए जाते हैं। यदि किसी स्थान की जनता धार्मिक खेल चाहे, और सिनेमावाले प्रेम-रस का नाटक भेजें, तो क्या वह जनता कभी देखना स्वीकार करेगी? कभी नहीं। सिनेमावालों को क्या पड़ी है, जो व्यर्थ में पैसा व्यय करें। बुरे खेलों का खेला जाना जनता ही के कारण होता है, न कि सिनेमाधिपतियों की इच्छा के कारण।

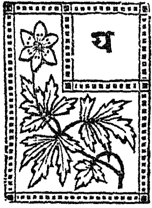
अब हमें देखना चाहिए कि सिनेमा जनता के लिये क्या-क्या कर सकता है। सिनेमा किसी भी देश के वीर पुरुषों के चरित्रों को सामने रख सकता है। किसी देश का इतिहास जानने में पर्याप्त सहायता पहुँचा सकता है। सिनेमा किसी देश के आचार-विचार, रहन-सहन, चाल-चलन, कुप्रथा-सुप्रथा इत्यादि बातों को भले प्रकार बता सकता है। सिनेमा मृतक देश के लिये अमृत का काम करता है। आलस्य में मस्त देश को उसका प्राचीन गौरव दिखाकर उन्नति के पथ पर ला सकता है। कायर पुरुषों में वीर-रस की विद्युत्-धारा प्रवाहित कर सकता है। उन धनिकों के व्यय में कमी कर सकता है, जो दुर्व्यसनों में व्यर्थ ही धन व्यय करते हैं। दुर्व्यसनियों को अच्छे मार्ग की ओर फेर सकता है। गुंडे पुरुषों के गुंडपने को छुड़ा सकता है, जो सौंदर्यमयी युवतियों पर छापा मारते हैं। दृढ़प्रतिज्ञता, प्रेमी-प्रेमिका-मान-रक्षण, देश-सुधार, ज्ञान-विज्ञान, सत्यपरायणता, धार्मिक वृत्ति आदि गुणों को सिनेमा जनता को सिखा सकता है।

अब यह विचारना चाहिए कि सिनेमा-मालिकों ने भविष्य के लिये कौन-सा ध्येय अपने सामने रक्खा है। सिनेमाधिपति देश के धन को व्यर्थ में नष्ट करवाना नहीं चाहते, और न धन खींचकर स्वयं धनपति—कुबेर—बनना चाहते हैं। परंतु हाँ, वे यह अवश्य करते हैं कि अपनी मज़दूरी ले लेते हैं। ऐसा कोई नहीं कि दिन-भर हाड़ तोड़े, और शाम को मज़दूरी न ले। यदि ऐसा न करे, तो काम कैसे चले? सिनेमावाले हमेशा देश-सुधार की बातें सोचते हैं। आजकल कितने 'अभिमन्यु', 'लंका-दहन', 'कालिया-मर्दन' इत्यादि खेल दिखाए जाते हैं! वे इस लांछना को भी कि वेश्याएँ सिनेमा में रहती हैं, शीघ्र दूर करनेवाले हैं। अभी हम यद्यपि इस काम में अधिक सफलीभूत नहीं हुए, क्योंकि अच्छे कुलवाले स्त्री-पुरुष सिनेमा में आने से हिचकिचाते हैं। परंतु अब कितने ही बी० ए० इस काम में हाथ बटा रहे हैं। कितनी ही पढ़ी-लिखी लड़कियाँ सिनेमा में अभिनेत्रियों का काम कर रही हैं। अब इन सिनेमाओं का भविष्य अच्छा प्रतीत होता है।

कला का मूल्य

[श्रीयुत हर्षवर्धन नैथाणी एम्० ए०]

(१)



वन-सरदार—"इस चित्र का क्या मूल्य है ?"

चित्रकार ने उस चित्र को लपेटते हुए लापरवाही के साथ उत्तर दिया—"क्या कीजिएगा पूछकर ! अब मैं इसे बेचना ही नहीं चाहता।"

"तो तुम मेले में आए ही क्यों ?"

चित्रकार ने पहले तो कुछ शांत भाव से कहा—"ऐसे ही", और फिर झुँझलाकर उत्तर दिया—"मेरी इच्छा।"

"अपनी ही इच्छा से सब काम नहीं हुआ करते। यह चित्र तुमको मेरे हाथ बेचना ही पड़ेगा।"

"क्या कहा, बल-पूर्वक मेरा चित्र ले लोगे ? तुम कौन हो ऐसी धौंस जमानेवाले जी ?"

यवन-सरदार ने हँसते हुए उत्तर दिया—"मालूम होता है, तुम इधर नए ही आए हो। मैं यहाँ का क्षत्रप पौलीवियस हूँ। अब समझे। अच्छा, कहो, अपने चित्र की उचित क़ीमत। नहीं तो...।"

"नहीं तो क्या ?"

"मुझे बल-प्रयोग करना होगा।"

"परंतु इससे डरता ही कौन है !"

यवन-सरदार इस उत्तर को सुनकर क्रोधित हो उठा, और कड़ककर अपने सिपाहियों से बोला—"कर लो गिरफ़्तार इस पाजी भारतीय को, और ले चलो मेरे गढ़ में।"

चित्रकार इस अवसर के लिये पहले ही से तैयार था।, म्यान से तलवार निकालते हुए बोला—"अच्छा, तो लो भारतीय तूलिका का न सही, कृपाण का ही मज़ा चखो।"

यवन क्षत्रप उसकी इस निर्भयता को देखकर कुछ सहम गया, और अपने सैनिकों को रोकते हुए बोला—"ऐं ! क्या तुम क्षत्रिय हो ?"

"नहीं, मैं ब्राह्मण हूँ, परंतु तुम्हारा इस प्रश्न से तात्पर्य ?"

"यही कि मैंने तो सुना था कि भारत में शूद्र ही चित्रकारी करते हैं, और क्षत्रिय ही कृपाण धारण करते हैं।"

"सुना होगा। परंतु अब तो ऐसा नहीं रहा। तुम विदेशियों ने हमें ऐसा करने के लिये बाध्य कर दिया है।"

"अच्छा भाई, अब यह भी तो बतलाओ कि तुम वह चित्र क्यों नहीं बेचना चाहते ? उसे बेचने ही के लिये तो यहाँ लाए थे न ?"

"तुम लोग कला का मूल्य नहीं जानते। आज सात दिन बीत गए यवनों के लगाए हुए इस मेले को, और किसी ने इस ओर ताका तक नहीं। मेरे ही निकट एक यवन चित्रकार ने भी दूकान लगाई थी, उसके अश्लील चित्र तो सब-के-सब दो ही दिन में बिक गए। बस, मैं समझ गया, तुम लोग अमृत के इच्छुक नहीं हो, शराब के प्यासे हो।"

"क्या कला में भी यूनान को भारत से कुछ सीखना है ?"

"रहने दो इसको भविष्य के ही गर्भ में।"

चित्रकार ने इसके उपरांत अपना सामान ठीक किया, और "अच्छा, अब मैं जाता हूँ।" कहते हुए वह एक ओर चला गया।

मालूम नहीं, क्यों यवन क्षत्रप ने भी उसे छेड़ना उचित न समझा।

(२)

कार्नेलिया—"पापा, ले आए आप वह चित्र ?"

पौलीवियस—"नहीं बेटी !"

"क्यों ?"

"चित्रकार उसे बेचना ही नहीं चाहता था।"

"क्या कहा ! बेचना ही नहीं चाहता था ? कल ही तो मेरे पूछने पर उसने उसकी क़ीमत एक सौ स्वर्ण-मुद्राएँ बतलाई थी ?"

"बतलाई होगी। परंतु आज तो उसने बेचने से साफ़ इनकार कर दिया। मैं बल-पूर्वक लेना चाहता था, परंतु वह भी लड़ने को तत्पर हो गया। अंत में मैंने यह ठीक न समझा।"

"वह बेचना क्यों नहीं चाहता था ?"

"वह कहता था कि यवन कला का मूल्य ही नहीं जानते, और मैं उनके हाथ अब अपना चित्र न बेचूँगा।"

इस पर कार्नेलिया ने हँसते हुए कहा—"आपके बल-प्रयोग से तो कुछ ऐसा ही सिद्ध होता है।"

"हाँ, और यदि तुम ऐसी अवस्था में होतीं, तो क्या करतीं ?"

"मैं...मैं...मैं उसे दिखला देती कि यवन कला का मूल्य पहचानने में किसी प्रकार भी भारतीयों से कम नहीं हैं।"

"सो कैसे ?"

"अब इस समय किस प्रकार बतलाऊँ !"

(३)

उसे देखते ही बुढ़िया की धुँधली आँखों में आशा की ज्योति चमक उठी, और वह बड़ी उत्सुकता के साथ बोली—"कितना धन मिला बेटा ?"

चित्रकार ने एक बार ऊपर देखा, और फिर दुःखित होकर उत्तर दिया—"कुछ नहीं मा ! मेरे चित्र को मोल लेनेवाला कोई ग्राहक ही वहाँ न था।"

"क्या कहा, तुम्हारे चित्र का कोई मूल्य ही न दे सका ? इतना अधिक मूल्य क्यों लगाया था बेटा ?"

"मैं तो उसे सस्ता ही बेच देता, परंतु कोई उसके गुणों को समझे भी तो। अच्छा, अब मगध की ओर जाऊँगा। मैंने तो सुना था कि यवन कला के अच्छे मर्मज्ञ होते हैं, परंतु मेरे दुर्भाग्य से यह भी असत्य निकला। वे लोग कला को आत्मिक उन्नति का साधन नहीं बनाना चाहते। कला को तो वे मानव-हृदय की पाशविक वासनाओं का हेतु समझकर प्यार करते हैं। मुझ भारतीय ब्राह्मण की तूलिका में यह गुण कहाँ से आता मा !"

बुढ़िया ने निराशा-पूर्ण शब्दों में कहा—"तब फिर ?"

"अब इस समय क्या बतलाऊँ। भूख लगी है। भोजन के लिये कुछ बचा हुआ है मा ?"

बुढ़िया की आँखों में आँसू भर आए। अपने बेटे के सिर पर हाथ फेरते हुए बड़ी कठिनता से कहने लगी—"आह ! घर में कुछ नहीं है बेटा ! जब से तुम गए, मैंने केवल दो बार भोजन किया। क्या ज्ञात था मुझ अभागिनी को, नहीं तो वह भी न करती, या कुछ बचा लेती ! वत्स, मैं तो तुमसे सदैव ही कहा करती थी कि चित्रकला में मत पड़ो, परंतु मेरा दुर्भाग्य था, तुमने कभी न माना।"

चित्रकार को भी अपने व्यवसाय पर क्रोध आ ही रहा था कि बाहर एक डुग्गी पिटती हुई सुनाई दी, वह भी उस ओर ही चल दिया। डुग्गी पीटने-वाला ज़ोर-ज़ोर से कह रहा था—"शीघ्र ही हमारे महाराज विजयसिंह और विदेशी क्षत्रप पौलीवियस में युद्ध होनेवाला है। जो शूर-वीर इस समर-यज्ञ में भाग लेना चाहें, वे मंत्रिवर से मिलें।"

(४)

मंत्रिवर—"तुम्हारा नाम ?"

चित्रकार—"श्रीमन्, मुझे लोग विष्णुदत्त कहते हैं।"

"परंतु हमें तो इस समय केवल क्षत्रियों की आवश्यकता है। नाम से तो तुम ब्राह्मण विदित होते हो ?"

"श्रीमन्, मैं ब्राह्मण होने पर भी अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग भली भाँति जानता हूँ।"

"तुम्हारे पास इसका क्या प्रमाण है ?"

"वैसे तो मेरे पास कोई प्रमाण नहीं, परंतु हाँ, आप जिस प्रकार चाहें, परीक्षा ले सकते हैं।"

"बहुत अच्छा। यदि ऐसी बात है, तो सुनो, तुम्हें इस क्षत्रिय युवक शौर्यभानु के साथ लड़ना होगा। परंतु ज्यों ही हम आज्ञा दें, तुम दोनो हट जाना।"

"जैसी आपकी आज्ञा।"

मंत्रिवर की आज्ञा पाते ही दोनो वीर आपस में लड़ते हुए अपने-अपने हाथ दिखलाने लगे। लड़ते-लड़ते एक अवस्था ऐसी आ पहुँची कि दोनो के वार एक दूसरे पर गिरने ही वाले थे कि इतने में अमात्यवर पुकार उठे—"बस करो अब।"

यह सुनते ही विष्णुदत्त ने तो अपना हाथ खींच लिया, किंतु शौर्यभानु से ऐसा न हो सका। उसकी तलवार थोड़ी-सी विष्णुदत्त के कंधे से लड़ ही गई। अब जब तक अमात्यवर कुछ कहते कि विष्णुदत्त ने अपनी पगड़ी का एक किनारा चीरा, और तुरंत ही घाव को बाँधते हुए बोला—"और कोई प्रमाण चाहते हैं श्रीमन्!"

"नहीं, बस। परंतु हाँ, अब यह बतलाओ, तुम तो ब्राह्मण हो, क्या और भी कोई कला-कौशल जानते हो?"

"जी हाँ, मैं चित्रकला भी कुछ-कुछ जानता हूँ।"

"चित्रकला हमारे इस समय किस काम की? क्या नक़्शा खींचना भी जानते हो?"

"जी हाँ।"

मंत्रिवर ने कुछ सोचकर पूछा—"क्या तुम गुप्तचर का काम करने को तैयार हो?"

चित्रकार ने कुछ सोचकर उत्तर दिया—"मैं स्वाभिमान की रक्षा करते हुए सभी कार्य करने को तत्पर हूँ।"

"अच्छा, तो सुनो, हम तुम्हें तुम्हारे ही योग्य काम बतलाते हैं। जाओ, किसी प्रकार पाँच दिन के अंदर यवन क्षत्रप पौलीवियस के गढ़ के भीतरी भाग का एक नक़्शा हमारे पास ले आओ। सफलता पाने पर तुम्हें मुँह-माँगा इनाम दिया जायगा।"

"परंतु मैं इस समय भी कुछ चाहता हूँ।"

"क्या?"

"मेरी दो प्रार्थनाएँ हैं।"

"वे क्या हैं? कहो।"

"एक तो यह कि यदि मैं अपने कर्तव्य का पालन करता हुआ वीर-गति को प्राप्त हुआ, तो मेरी वृद्ध माता के पालन-पोषण का भार राज्य अपने ऊपर ले ले, और दूसरी यह कि एक सौ स्वर्ण-मुद्राएँ मुझे इसी समय दे दी जायँ।"

"मेरा तुम पर विश्वास है, और तुम्हारी दोनो प्रार्थनाएँ स्वीकार की गईं।"

(५)

एक यवन सैनिक—"देखो, यह कोई गुप्तचर मालूम पड़ता है। गढ़ की ओर से आया है।"

दूसरा—"हाँ, मैं भी यही समझता हूँ।"

तीसरा—"तो बस, कर लो गिरफ़्तार।"

चौथा—"हाँ, चलो, देर करना व्यर्थ है।"

इतना कहकर वे चारो यवन सैनिक विष्णुदत्त पर टूट पड़े। विष्णुदत्त भी यों ही कैसे हाथ आता। अकेले ही चारो से युद्ध करने लगा। युद्ध हो ही रहा था कि अचानक कहीं से आकर एक युवक उस अकेले भारतीय की ओर से लड़ने लगा। वह अभी उसके विषय में जान भी न सका था कि एक यवन सैनिक का वार विष्णुदत्त पर आता हुआ दिखाई दिया। परंतु इसी समय वह नवागंतुक युवक बीच में आ गया, और यवन सैनिक का वार विष्णुदत्त पर न गिरकर उसी पर जा गिरा। चोट लगते ही एक आह भरकर वह युवक भूमि पर जा गिरा। इधर उसका गिरना था कि यवन सैनिक न-मालूम क्या देखकर एक ओर भाग गए। विष्णुदत्त ने उसके घाव को बाँधा, और पूर्णतया सचेत होने पर पूछा—"वीरवर! क्या यह भी बतलाएँगे कि आप कौन हैं? और आपने क्यों मेरी रक्षा में अपने प्राणों को संकट में डाला? आपकी मुखाकृति और रंग-रूप से तो यही विदित होता है कि आप अवश्य ही किसी राजवंश को सुशोभित करते होंगे।"

उस युवक ने एक धीमी हँसी हँसते हुए उत्तर दिया—

"मैं...मैं...मैं कोई नहीं हूँ। मैं जानता था कि आप गुप्तचर नहीं, एक चित्रकार हैं। यहाँ कोई प्राकृतिक दृश्य देखने आए होंगे, और ये दुष्ट व्यर्थ ही आपको कष्ट दे रहे हैं। बस, इसीलिये... ... ।"

"क्षमा कीजिएगा मेरी धृष्टता को! क्या मैं भी किसी प्रकार आपकी कृपा का बदला चुका सकता हूँ?"

"जब आपने यह प्रश्न कर ही दिया, तो मैं भी कहूँगा कि क्षमा कीजिएगा मेरी स्वार्थ-परायणता को, मैं भी आपसे कुछ चाहता हूँ।"

चित्रकार—"निःसंकोच होकर कहें। मुझसे जो कुछ हो सकेगा, आपकी भेंट करूँगा।" यह कहते हुए अपनी जेब में हाथ डालकर कुछ निकालना ही चाहा था कि वहाँ से चित्र के आकार का लपेटा हुआ काग़ज़ का एक बंडल भूमि पर जा गिरा। उस युवक ने झट बंडल को भूमि पर से उठाते हुए कहा—"बस, मैं आपका यह चित्र ही चाहता हूँ।"

चित्रकार "नहीं-नहीं" कर कुछ कहना ही चाहता था कि उस युवक ने अपने गले से एक मोतियों का हार उतारा, और उसे चित्रकार की ओर फेंक एक तरफ़ भागते हुए बोला—"लीजिए यह मोतियों का हार, इसका मूल्य एक हज़ार स्वर्ण-मुद्रा है। आपने अपने इस चित्र का मूल्य मेले में मुझसे एक सौ स्वर्ण-मुद्राएँ बतलाया था।"

भागते समय उस युवक के सिर के बाल खुल गए, और अब चित्रकार को विदित हुआ कि उसका रक्षक और कोई नहीं, यवन क्षत्रप की कन्या कार्नेलिया ही थी। उसने ठहरो! ठहरो! कहकर उसे पकड़ना चाहा, परंतु वह कहाँ हाथ आ सकती थी! हाँ, भागते ही उसने एक बार फिर मुड़कर पीछे देखा, और मुस्किराते हुए यह अवश्य कहा—"अब तो किसी से न कहिएगा न कि यवन कला का मूल्य नहीं जानते?"

(६)

कार्नेलिया हाँफते-हाँफते ही पौलीवियस के निकट आई, और हँसते हुए कहने लगी—"पापा, लो, ले आई मैं वह चित्र। चित्रकार को भी पता चल गया होगा कि यवन कला की क्या क़ीमत करते हैं।"

पौलीवियस ने उत्सुकता से पूछा—"कैसे लाई बेटी! लाओ, दिखाओ तो मुझे भी वह चित्र। हाँ, अब बतलाओ वे विशेषताएँ, जिनके विषय में तुम कहा करती थीं कि यूनान की कला में वे नहीं पाई जातीं।" कार्नेलिया ने "लीजिए" कहकर बड़े गर्व के साथ उस लिपटे हुए काग़ज़ को खोलना शुरू किया। उसने अभी उसे पूरा खोला भी न था कि "आह!" कहकर भूमि पर आ गिरी। घाव का बंधन खुल गया, और रक्त बह चला। पौलीवियस यह दृश्य देखकर घबरा उठा। उसने कार्नेलिया! बेटी कार्नेलिया! कहकर उसे अपनी गोद में उठाया, और कुछ पूछना ही चाहता था कि कार्नेलिया ने फिर एक बार उस काग़ज़ की ओर देखा, और—"आह! क्या भारतीय कला का मूल्य?..." कहकर अपनी आँखें मूँद लीं।

पौलीवियस ने भी अब जो उस काग़ज़ की ओर ध्यान-पूर्वक देखा, तो स्तंभित रह गया। वह तो उसी के गढ़ के भीतरी भाग का एक नक़्शा था!

परमाणु से विश्व का आविर्भाव

[श्रीरामचंद्र शर्मा]



महर्षि कणाद का वैशेषिक सूत्र इसी सिद्धांत का समर्थक है। इसके मत में कैसी स्पष्टवादिता भरी है, इसका पाठक स्वयं आगे चलकर अनुमान कर सकते हैं। महर्षि कणाद का परमाणुवाद जड़-जगत् तथा सूक्ष्म (अतींद्रिय) कार्य के प्रति भी परमाणु को ही नित्य अव्यक्त नैमित्तिक कारण मानता है—जैसे पट के प्रति समवायी-असमवायी-निमित्त। एतत्स्थूल कारणत्रय का जनक सूक्ष्म कारण कौन हुआ ? वही अदृष्ट कपास-बीज-गत नित्य निरवयव सूक्ष्म परमाणु है ! हाँ, स्थूल कारणों का ज्ञान होने पर सूक्ष्म कारण का ज्ञान होता है। इसी सिद्धांत की रक्षा के लिये आवश्यक है कि प्रथम पट के स्थूल कारण (तंतु) सूत, (तुरी-वेमादिक) कर्घा, जुलाहे आदि का ज्ञान हो ; परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि पट के प्रति नित्य कारण सूत-कर्घा आदि ही हैं। जैसे ईश्वर-ज्ञान के लिये मूर्ति साधन है, परंतु मूर्ति ही ईश्वर नहीं। सूक्ष्म पदार्थ के ज्ञानार्थ सूक्ष्मदर्शक यंत्र है, परंतु इसका यह तात्पर्य नहीं कि यंत्र ही सूक्ष्म पदार्थ है। इसी तरह स्थूल जगत् के स्थूल साधन असमवायी-समवायी होने पर भी नित्य-नैमित्तिक कारण वही अतींद्रिय परमाणु है! जब तक बालक अज्ञ है, तब तक माता के स्तनों को ही पय का भंडार समझता है, लेकिन जब उसे समझ होती है, तब वह समझ जाता है कि दूध का भंडार स्तन नहीं, किंतु पय-ज्ञान का साधन-मात्र स्तन है। इसी तात्पर्य से 'वैशेषिक' के सप्तम अध्याय में "अणो-र्महतः चोपलब्धी अनुपलब्धी नित्ये व्याख्याते" अर्थात् परमाणु की बड़ाई (व्यापकता) का पता नहीं चलता, क्योंकि सभी जगह विद्यमान है। और, उसकी बड़ाई का पता लग जाता है, जिसे अणु (अत्यंत अल्प) कहते हैं। अतः उसे नित्य कहते हैं, व्यापकता उसका तद्गत धर्म है। आगे कहते हैं—"कारणबहुत्वाच्च अधिककार्यजनकत्वात्" अर्थात् बड़े-बड़े सभी कार्यों के कारण होने से 'अतो विपरीतमणुः' अर्थात् अणु शब्द के अर्थ से (अणु) भिन्न है, अर्थात् परमाणु है। आगे पुनः कहते हैं—"अणु महदिति तस्मिन् विशेषभावात् विशेषाभावाच्च" अर्थात् उस अणु में महत् इस विशेषण का अभाव है (क्योंकि अणु अत्यंत छोटे को कहते हैं, इसलिये लघुत्व और महत्त्व दोनो विरोधी पदार्थ एक जगह नहीं रह सकते)। और अणु इस विशेष्य का भी; क्योंकि अणुत्व-गत धर्म में अव्यापकता की जगह व्यापकता, लघुत्व की जगह गुरुत्व, ये धर्म दिखाई दे रहे हैं (एककालत्वाच्च)। अर्थात् ये दोनो विरोधी धर्म के एक समय अणु में होने से परम (बड़ा) अणु (छोटा) अर्थात् परमाणु है। यही कारण है, महर्षि प्रशस्तपाद ने अपने वैशेषिक-भाष्य में सृष्टि-क्रम की व्याख्या करते समय कहा है—"पवनपरमाणुषु कर्मोत्पत्तौ तदनंतरमाप्येभ्यः परमाणुभ्यः महान् सलिलनिधिरुत्पन्नः जलनिधौ पार्थिवेभ्यः परमाणु-भ्योद्व्यणुकादिप्रक्रमेण महापृथिवीसमुत्पन्ना संहता-वतिष्ठते। तस्मिन्नेव महोदधौ तैजसेभ्योऽणुभ्यो द्व्यणुकादिप्रक्रमेणोत्पन्नो महांस्तेजो राशिर्देदीप्यमान् तिष्ठति।" अर्थात् वायवीय परमाणु में कर्म की उत्पत्ति, तदनंतर जलीय परमाणु से स्थूल जल उत्पन्न हुए। तैजस परमाणु से द्व्यणुकादि की उत्पत्ति हुई। इसी तरह संसार के संपूर्ण स्थूल जगत् की उत्पत्ति परमाणुवाद मानता है। दो परमाणु के संयोग से एक त्र्यणुक; त्र्यणुक-परमाणु-संयोग से एक एतद्द्रव्य भिन्न स्थूल की समुत्पत्ति, इसी तरह अत्यंत स्थूल से स्थूल विश्व की सृष्टि हुई है। परंतु सबका निमित्त

कारण एक-मात्र परमाणु है। इसी सिद्धांत को व्यक्त करते हुए आचार्य वल्लभजी ने 'न्यायलीलावती' में कहा है—"स्थूलजगदुत्पादकत्वम् परमाणौ एवेति।" अर्थात् स्थूल जगत् की उत्पादिका शक्ति परमाणु में ही है। आगे चलकर कहते हैं—"विश्वम् प्रति कारणतापि विज्ञेया।" अर्थात् संसार के प्रति एकमात्र कारण भी इसी को समझो।

परमाणुवाद कार्य-द्रव्य की उत्पत्ति भी सांख्य-वेदांत आदि से भिन्न तथा स्वतंत्र ही मानता है। जैसे पार्थिव परमाणु में कर्म की उत्पत्ति हुई; घड़े के गिरने या ठुकरा जाने से तदनंतर जलीय और पृथिवीय तथा तैजस परमाणुओं के संयोग का फल घड़ा (कार्य-द्रव्य) नष्ट हो गया। परमाणु-संयोग से कार्य की उत्पत्ति तथा उसके विभाग से द्रव्य का नाश। पाठक, यह सोचने की बात है, जैसे एक अज्ञ बालक हाथ में शीशे का ग्लास लेकर नाचने लगे, और वह ग्लास गिरकर टूट जाय, तो ग्लास के ध्वंस का कारण कौन हुआ? प्रश्न अत्यंत गंभीर है। किसी ने ध्वंस का कारण लड़के के स्थूल हाथों के कंपन को सिद्ध किया, और किसी ने उसके नृत्य को, तथा किसी ने ईश्वरेच्छा, भवितव्यता आदि को। परंतु परमाणुवाद (परमाणु-क्रिया) मन की प्रवृत्तियों की दुर्बलता को कारण मानता है। अर्थात् आत्मा-जन्य परमाणु विवेक का अणु मन से संयोग न होना ही इस ग्लास के ध्वंस का कारण है। तात्पर्य यह कि आत्मा के गुण बुद्धि से द्रव्य मन का संबंध न होना ही ग्लास के नाश का कारण है। और, ग्लास का नाश क्यों हुआ? तद्गत परमाणुओं के विभाग होने से। अगर आत्माजन्य विवेक गुण से मन का संयोग होता, तो बालक की मानसिक प्रवृत्ति नाचने से रोकती, या नृत्य की प्रवृत्ति उत्पन्न न होती। अगर ऐसी शंका हो कि हाथ-पैर न होने पर प्रवृत्ति क्या कर सकती है? हाँ, हाथ-पैर न होने पर भी प्रवृत्ति दाँत से ग्लास दबाकर नाचने के लिये बाध्य करती। अब पाठक समझ गए होंगे कि बालक को या उसके नृत्य को कारण बनाना या सिद्ध करने की चेष्टा करना कहाँ तक भ्रम-पूर्ण है। परमाणुवाद के इस सिद्धांत की (कि परमाणु संयोग से संसार के यावत् कार्य-द्रव्यों की उत्पत्ति) व्याख्या स्वयं भाष्यकार "द्व्यणुकादिक्रमेण कार्यद्रव्यमुत्पद्यते, तत्र च कारणगुणप्रक्रमेण रूपाद्युत्पत्तिः" यहाँ से १२ पृष्ठ पर्यंत लिख गए हैं, और स्वयं आचार्य महाशय ने, अपने सरल शब्दों द्वारा, उदयनाचार्य की किरणावली में भी इस विषय पर प्रकाश डाला है। परमाणुवाद भी प्रकृति को मानता है, परंतु सांख्यवालों की तरह (सत्त्वरजः तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः) "प्रकृतेर्महान्महतोऽहंकारोऽहंकारात् पंचतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुषः।" (सांख्यप्रवचनभाष्य)—इसकी प्रकृति नहीं; परमाणुवाद की प्रकृति वही है—"परमाणुद्वयजन्यसंयोगजकार्यद्रव्यरूपा प्रकृतिः" अर्थात् दो परमाणु के संयोग से उत्पन्न वस्तु के स्वरूप को प्रकृति कहते हैं। पाठक, अब आप स्वयं निष्पक्ष बुद्धि से परमाणुवाद की प्रकृति को तथा सांख्यवाद की प्रकृति को एवं परमाणुवादी के परमाणु को तथा सांख्यवादी के पुरुष को तौलें, आप ही पता चलेगा। परमाणुवादी संसार का कर्ता एक ही मानता है, परंतु सांख्यवादी "पुरुषस्तु पलाशवन्निर्लेपः" आदि कहकर भी कारण प्रकृति-पुरुष दोनो को ही मानता है। एक और दो में कितनी आपत्तियाँ उपस्थित हो सकती हैं, और हुई हैं, यह निष्पक्ष हृदय-संपन्न पाठक स्वयं सोच लें। परमाणुवाद आत्मा को क्या मानता है? 'आत्मत्वाभिसंबंधादात्मा' इसी को ऋषि ने सूत्र-रूप में कहा है—"विभवान्महाकाशः तथा चात्मा" अर्थात् जैसे आकाश बड़ा और एक है, वैसे ही आत्मा भी बड़ा और एक है। उपाधि-भेद से 'एतद्घटनिष्ठ आकाश' ऐसा व्यवहार होता है, तद्वत् मनुष्य-जीव, पशु-जीव आदि व्यवहार भी उपाधि-भेद से अर्थात् स्थूल पृथिवी के सूक्ष्म परमाणु आत्मा के संबंध होने से भिन्न-भिन्न आत्मा का

बोध होता है ; वस्तुतः एक महत् परमाणु अखिल अव्यक्त और अनादि है । इसीलिये स्वयं सूत्रकार कहते हैं—"सुखदुःखज्ञाननिष्पत्त्यविशेषादैकात्म्यम् ।" अर्थात् सुख-दुःख और ज्ञान की उत्पत्ति विशेष न होने से आत्मा एक है, और उसके गुण सुख, दुःख, इच्छा, बुद्धि, धर्म, अधर्म, संस्कार, द्वेष, प्रयत्न आदि हैं *। पाठक, आपको यहाँ शंका हो सकती है कि ये गुण शरीर के हैं। क्योंकि आत्मा निर्गुण है, सुखादि का ज्ञान शरीर करता है । रुदन आदि क्रियाएँ शरीर की हैं। परंतु परमाणुवाद कहता है कि सुखादि का ज्ञान अगर शरीर करता है, तो मृत व्यक्ति को भी अग्नि की ज्वाला से दाह-जन्य कष्ट होना चाहिए, तथा मुर्दे को रुदन-ध्वनि भी सुनाई पड़नी चाहिए ? मृत शरीर को दुःखादि का अनुभव न होने से परमाणुवाद निश्चय करता है कि आत्मा सगुण है। अगर आप कहें कि मन के नाश होने से मृत शरीर को सुखादि का ज्ञान नहीं होता, तो परमाणुवाद कहता है कि आत्मा का शरीर से विच्छेद होते ही मन का नाश स्वयं सिद्ध कर देता है कि हमारी इयत्ता स्वतंत्र नहीं ; हमारा जनक तथा आधारभूत सर्वस्व वही अव्यक्त, अनादि आत्मा है, और परमाणुवाद दूसरा प्रत्युत्तर देता है कि मन भी वही परमाणु है, जो आत्मा है। कार्य-भेद से भिन्नत्व का बोध हो, किंतु अणुत्वेन रूपेण भिन्न तो है ही नहीं। जैसे 'विष-पूरितः घटः', 'पय-पूरितः घटः' आदि अध्याहार होने पर भी घट एक है; संयोग, उपाधि, कार्य भले ही भिन्न क्यों न हों। हाँ, कुछ आचार्यों की राय ऐसी है कि उत्पन्न द्रव्य एक क्षण अगुण रहता है, परंतु यह सिद्धांत नहीं। महर्षि कणाद का सिद्धांत है कि अखिल परमाणु भी सगुण है, क्योंकि संयोगादि गुण उसमें भी विद्यमान हैं। निर्गुण, निर्लेप पुरुष की कल्पना वहाँ भी अपने पक्ष की पुष्टि में विचलित हो उठती है। परमाणुवाद सप्त पदार्थों (द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव) से संसार की सृष्टि मानता है। सप्त पदार्थ को परमाणुवाद अनादि मानता है। द्रव्य इसके मत में (पृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाशकाल-दिगात्ममनांसि) नौ हैं। द्रव्य ही में उस प्रमेय परमाणु का अंतर्भाव है, जो समस्त दृश्य पदार्थों तथा अनित्य वस्तुओं का उत्पादक है। आत्मा उस परमाणु से भिन्न है, क्योंकि अनित्य ज्ञान तथा संस्कार आदि गुण इसमें रहते हैं, जो अखिल अव्यक्त, अचिंत्य परमाणु में नहीं रहते। परंतु दोनो एक ही वस्तु हैं। पाठक कहेंगे, तब यह भिन्नता क्यों ? इसका कारण परमाणुवाद बतलाता है कि जैसे श्वेतत वस्त्र में हल्दी के संपर्क से श्वेतत्व की जगह पीतत्व-गुण की उत्पत्ति हो जाती है, एवं मृग-कस्तूरी-संयोग से वस्त्र में, थोड़ी देर के लिये ही सही, गंध आ जाती है, उसी तरह अनित्य शरीर तथा इंद्रियों के संबंध से यह नित्य आत्मा संस्कारादि गुणों के अधिकरण होने से विकृत हो जाता तथा कुकर्म-जन्य कलंक से अपनी स्वतंत्रता खो बैठता है, इसलिये उस अखिल परमाणु से भिन्न है । कार्यभेदात्, वस्तुतः नहीं । अस्तु । परमाणुवाद लकीर का फ़क़ीर भी नहीं, यह तर्क की कसौटी पर विषय की पूर्ण परीक्षा कर अनुमान की अग्नि में तपाता है, तब उसे अंगीकार करता है। परमाणुवाद महाप्रलय भी नहीं मानता। हाँ, खंडप्रलय मानता है, किंतु महाप्रलय में कोई प्रबल प्रमाण न होने से उसकी उपेक्षा कर देता है। यह बात सभी को खटकती है, क्योंकि किसी-न-किसी रूप में सभी इसकी सत्ता स्वीकार करते हैं । परमाणुवाद मुक्ति भी मानता है, परंतु यज्ञादि को मुक्ति का साधन नहीं मानता, इसके यहाँ मुक्ति वही है—सद्-ज्ञान, अर्थात् सात पदार्थों का सद्ज्ञान हो जाना ही इसके यहाँ मुक्ति है। यह विचार परमाणुवाद का अधिकतर औरों से मिलता है। "ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि

---

* बुद्ध्यादिषट्कं संख्यादि पंचकं भावना तथा ;
धर्माधर्मौ गुणा एते आत्मनः स्युश्चतुर्दश ।
(मुक्तावली)

भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन", "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" आदि का यही अभिप्राय है कि सद्ज्ञान होने से आत्मा-शरीर-जन्य कर्मों का नाश होता है, तथा संस्कार के बंधन से आत्मा का पिंड छुटता है, और यह भ्रमित होकर संसार में भटकता नहीं फिरता।

परमाणुवाद गुण का नाश मानता है। जैसे घट में रहनेवाले पीत गुण को अग्नि में जला दिया, इसके बाद पीत गुण का नाश होकर रक्त गुण की उत्पत्ति हुई, अतः परमाणुवाद कहता है कि इस घट में पूर्वस्थित गुण का नाश हो गया (जिसे दूसरे परिवर्तन कहते हैं); क्योंकि नाश का अर्थ यही है—'जिसकी सत्ता का अस्तित्व न हो।' परमाणुवाद सांख्यवाद के "प्रकृतिं पश्यति पुरुषः प्रेक्षकवदवस्थितः स्वस्थः तेन निवृत्तेत्यादि" (सांख्यकारिका) इस सिद्धांत को नहीं मानता, क्योंकि गुणी पुरुष नित्य ज्ञान-संपन्न होकर नर्तकी की तरह प्रकृति को देखता है। परमाणुवाद कहता है—'पश्यति'। इस क्रिया का ज्ञान तभी होगा, जब देखनेवाले का स्थूल शरीर हो, और देखनेवाला भी तभी कह सकता है कि 'देखता हूँ', अन्यथा इस क्रिया में दुष्ट अनुमान तथा कल्पना-जन्य आदि दोष आ पड़ेंगे। पुनः परमाणुवाद कहता है—'पश्यति' (देखता है)। ऐसा कहने से बोध होता है कि प्रथम नहीं देखता था। जैसे 'बालक बोलता है', इस वाक्य का अर्थ यही हुआ कि पूर्व नहीं बोलता था, या न बोलना भी इसी में है। इस 'पश्यति' से पुरुष में अव्यापकता आदि कई दुष्ट दोष आ जाते हैं। परमाणुवाद कहता है कि प्रकृति-पुरुष को मानना सांख्यवाद के लिये असंभव है, क्योंकि पुरुष की छाया में रहकर प्रकृति संसार का कार्य करती है। परंतु पुरुष को उसके कार्य के निरीक्षण की आवश्यकता क्यों हुई? क्या प्रकृति भ्रम में पड़ सकती है, या पुरुष प्रकृति का नृत्य देखने का इच्छुक है? क्या पुरुष में सर्वशक्तिमत्ता नहीं? उसे प्रकृति से कार्य कराने की आवश्यकता क्यों हुई? इच्छा-संख्या-नित्य ज्ञान होने से निर्गुण भी नहीं। क्या प्रकृति या स्वयं पुरुष इस संसार का एक कारण नहीं हो सकता? अगर हो सकता है, तो प्रकृति-पुरुष को मानने की ज़रूरत क्या? एक को मान सकते हो। दो में कई दोष आ जाते हैं, जिनका समाधान नहीं हो सकता निष्पक्ष भाव से। आगे पुनः परमाणुवाद "मूल-प्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः" इत्यादि (सांख्य-तत्त्व-कौमुदी) इस शब्द-समूह पर कैसा भयंकर आपत्तियों का शिला-खंड पटकता है, जिसकी चोट से सांख्यवादी चूर-चूर हो जाते हैं। परमाणुवाद कहता है कि विश्व के प्रति प्रकृति को ही कारण मानते हो, तो पुरुष में जनकता होने से अनित्यता आ जायगी, या दोनो को कारण मानते हो, तो "अजां एकां लोहितशुक्लकृष्णां" इत्यादि श्रुति-विरोध होता है, तथा "एकं विश्वस्य कारणम्" (श्वे० श्व० उ०) अनेक आर्ष वचन से विरोध पड़ता है। अगर प्रकृति को ही कारण मानते हो, तो भी अकर्मण्यत्व-निरर्थकत्व, प्रयोजन-विरहत्व आदि दोष पुरुष को धर दबाते हैं। "पुरुष-सिद्धि में कोई प्रबल प्रमाण न होने से पुरुष का प्रत्याख्यान कर दो" यही परमाणुवाद कहता है। परमाणुवाद का मुख्य सिद्धांत 'सूक्ष्म से स्थूल' अर्थात् छोटे से बड़े की सृष्टि यह बात सब पर विदित है। एक बालक भी जानता है कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म सूत से बृहद् वस्त्र तथा कांग्रेस-पंडाल तक की उत्पत्ति एवं सृष्टि होती है, जिसकी छाया में लाख व्यक्ति बैठते हैं। यही नहीं, संसार के समस्त स्थूल पदार्थ अणु से ही बृहद् होते हैं। अत्यल्प मिट्टी के कणों से ईंट की सृष्टि और ईंट से बड़े-बड़े क़िले तथा भवनों का आविर्भाव होता है। ये ही नियम परमाणु-जन्य सारे पदार्थों के लिये लागू हैं। जैसे वट-वृक्ष तथा पीपल-वृक्ष के बीज अत्यंत छोटे होते हैं, परंतु जलीय-पृथिवीय परमाणुओं के संयोग से भयंकर, विशदकाय शाखाएँ उत्पन्न हो जाती हैं, और वे वृक्ष

अपने अणु-बीज-गत अखिल परमाणु की प्रचंड शक्ति की वैजयंती संसार में फहराने लगते हैं।

पाठक, यह निबंध लिखने का अभिप्राय यही है कि परमाणुवाद की स्पष्टवादिता का पूर्ण पता चले, तथा परमाणुवाद के विषय में फैले हुए भ्रमवाद का हिंदी-साहित्य-संसार एवं संस्कृतज्ञ समाज से मूलोच्छेद हो। मुझे पूर्ण विश्वास है कि परमाणुवाद की प्रतिभा से पक्षपात-जन्य अंधकार का नाश अवश्य होगा, और साथ ही सहृदय पाठक परमाणुवाद की सूक्ष्मता-स्वाभाविकता पर विचार करेंगे, तो मैं भी पुनः 'मायावाद' और 'परमाणुवाद' की सरसता का स्वाद चखाऊँगा।

सूक्तियाँ

[श्रीद्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेंद्र']

रामायण

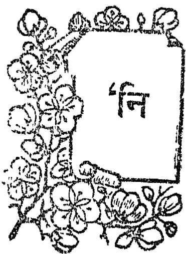
प्यारी भारती की, जगती की ज्योति न्यारी, पूज्य,
कृति है कृती की, तुलसी की कीर्ति-कारिणी;
ललित लता है कविता की लहराती सदा,
वीरता प्रभा की, प्रभुता की है प्रसारिणी।
'रसिकेंद्र' प्रतिमा है मानस के मंदिर की,
प्रकट सजीवता की छटा मन-हारिणी;
राम-भक्ति-आगर, उजागर सु नागर को,
रामायण जानो भवसागर से तारिणी।

मुग्धे!

चंचल, चपल लोचनों की न चलेगी कला,
बिचला सकेगी नहीं तरुणाई तन की;
जोश है बढ़ाया, छवि-छाया का घटाया दर्प,
आया होश, मोहती न माया है मदन की।
वीरता-वधू के साथ भेंट करने के लिये—
कामना किए है रण-भूमि के गमन की;
रोके न रुकेगा वीर, तकेगा न तेरी ओर,
मिट न सकेगी पीर, मुग्धे! तेरे मन की।

'निराला' की 'अप्सरा'

[श्रीयुत पं० नलिनविलोचन शर्मा]



'निराला'जी जानसन की तरह कर्मठ और अध्यवसायी, लॉर्ड बाइरन-से उद्भट प्रत्यालोचक, कीट्स और टैगोर की तरह सु-कवि और टाल्सटाय, ह्यूगो और शा की तरह निर्भीक, उत्क्रांतिकारी औपन्यासिक हैं। उनके कला-संबंधी अनेकानेक लेख, और भी कई पांडित्य-पूर्ण निबंधादि, पंतजी की कविताओं की निर्भीक समालोचना और 'साहित्यिक-सन्निपात' का युक्ति-पूर्ण खंडन, 'परिमल'—उनकी कविताओं का संग्रह—और पत्र-पत्रिकाओं में आए दिन प्रकाशित उनके 'गीत' आदि, और उनकी अद्वितीया 'अप्सरा' हमारे कथन की सप्रमाण परिपुष्टि करते हैं।

'वर्तमान धर्म' का मूल्य हिंदी-साहित्य-संसार अब समझ रहा है—इस विद्वत्ता-पूर्ण लेख के लिये उन्हें ख्याति मिल रही है; पंतजी के 'पल्लव' की निष्पक्षता-पूर्ण समालोचना के लिये उनकी पीठ ठोंकी जा चुकी है; 'प्रसाद', पंत और 'निराला' की 'वृहत्त्रयी' हिंदी-साहित्य-प्रेमियों से समादृत हुई है, और हो रही है; फिर भी समालोचकों के शैथिल्य से उनकी 'अप्सरा' की कोई भी समालोचना न निकली—उसके गुण-दोष की चर्चा न हुई। 'निराला'जी हिंदी-साहित्य-संसार में कवि, समालोचक और निबंध-लेखक की हैसियत से सुविख्यात थे, और जब उनकी 'अप्सरा' प्रकाशित हुई, तो चाहिए था कि उसकी उचितरीत्या समीक्षा होती, लेकिन वैसा हुआ नहीं। यदि 'निराला'जी-सा ख्यातनामा कवि योरपीय देशों में होता, और वह उपन्यास भी लिखने लग जाता, तो उसकी समालोचनाओं का कहीं ठिकाना न रह जाता—धूम मच जाती। एक उदाहरण लीजिए। 'डगलस फ्रेयरबैंक्स' बड़ा भारी 'सिनेमा-स्टार' था। अब वह 'रिटायर' हो गया है। आज अगर वह एक छोटी-सी आख्यायिका भी लिख डालता है, तो धूम मच जाती है। लोग सोचते हैं—"ज़रा देखें तो सही, फ्रेयरबैंक्स ने सिनेमा में तो इतना यशोपार्जन किया, अब कहानी किस प्रकार की लिखता है।" एक असाहित्यिक आदमी का, साहित्यिक क्षेत्र में पदार्पण करने पर, इतना नाम केवल अन्य कार्यों द्वारा उपार्जित यश के कारण ही तो होता है? फिर 'निराला'जी भी तो साहित्य-क्षेत्र में पहले ही से अद्वितीय कवि समझे जाते थे। यदि साहित्य के दूसरे अंग—उपन्यास—की भी वह पूर्ति करने लग गए, तो उनका स्वागत तो हिंदी-संसार को सहर्ष करना ही चाहिए था। इतनी उपेक्षा की तो स्वप्न में भी आशा नहीं की जा सकती थी। समालोचक-गण 'निराला'जी की क्रांतिकारी हरकतों से रुष्ट रहा करते हैं। यदि ऐसी ही बात है, तो प्रशंसा के दो शब्द मुँह से न निकले, तो क्या छिद्रान्वेषियों को कोई दोष भी ढूँढ़े न मिला, जो वे एकदम चुप्पी साधकर बैठ गए?

यदि हमारे पूज्य समालोचकों ने इस काम का भार अपने ऊपर लिया होता, तो मैंने 'अप्सरा' की समालोचना-जैसे दुष्कर कार्य-संपादन की कदापि धृष्टता न की होती। उन्हीं की उदासीनता ने मुझे यह काम करने को उकसाया। मैंने भी, जैसा बन पड़ा, अपने विचारानुसार यह समालोचना लिख डाली—एकदम कुछ नहीं से तो थोड़ा भी अच्छा है।

कवि-सम्राट् पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' कभी हिंदी के प्रतिनिधि कवि माने जाते थे, लेकिन अब उनका स्थान पूर्वोक्त कवित्रय ने और गुप्तजी ने

छीन लिया है। औपन्यासिक-सम्राट् प्रेमचंदजी भी उपन्यास-लेखकों और कहानी-लेखकों में प्रतिनिधि माने जाते थे। अब भी कुछ थोड़े-से लोग पुराने प्रेमचंद के भक्त हैं, लेकिन साधारणतः सभी उपन्यास या कहानी-प्रेमी आजकल के प्रेमचंद को उसी हेय दृष्टि से देखते हैं, जिससे कविता-प्रेमी 'हरिऔध'जी की नवीन रचनाओं को देखते हैं। जन-साधारण का तो यही मत है कि 'प्रियप्रवास' के बाद 'हरिऔध'-जी की और 'सेवासदन' और 'रंगभूमि' के बाद प्रेमचंद की प्रतिभा काफ़ूर हो गई—और यह बात, यह अप्रिय सत्य, उनकी आजकल की अभ्यास द्वारा रचित कृतियों से स्पष्ट झलका करती है। लेकिन अब एक समस्या आ उपस्थित होती है—कविता का प्रतिनिधित्व तो 'प्रसाद', पंत, 'निराला' और गुप्तजी के हाथों लग गया; कहानी का भी प्रतिनिधित्व 'प्रसाद', जैनेंद्रकुमार या शास्त्रीजी को दिया जा सकता है; किंतु प्रेमचंद से छिने हुए उपन्यास-प्रतिनिधित्व को किसको दिया जाय, इसका निर्णय अब तक नहीं हो सका। उपन्यास-प्रतिनिधित्व तो 'सेवासदन' या 'रंगभूमि'-से अभिनव-ग्रंथ के रचयिता को ही दिया जा सकता है। लेकिन वैसे उपन्यास तो, 'अप्सरा' को छोड़, मुझे दिखलाई नहीं पड़ते! तो क्या हिंदी-संसार 'निराला'जी का उपन्यास-प्रतिनिधित्व ग्रहण करना पसंद करेगा? उत्तर तो 'हाँ' होना चाहिए, लेकिन एक शर्त है—यदि 'निराला'-जी की 'अलका' भी 'अप्सरा'-सी ही सर्व-गुण-संपन्न हुई, तब।

हाँ, अब 'अप्सरा' की ख़ूबियों के बारे में प्रश्न उठ सकता है, जिनका दिग्दर्शन करा देना मैं कर्तव्य समझता हूँ। जिस 'अप्सरा' के लिये 'निराला'जी को, हिंदी-संसार को—आज नहीं, तो कल—उपन्यास-प्रतिनिधित्व देना पड़ेगा, उसका गुण-प्रदर्शन—और यदि दोष हों, तो उनका भी प्रदर्शन—करना हमारा कर्तव्य है।

यह साधारण-सी बात है कि मनुष्य अपनी प्रिय वस्तु को सुंदर, समलंकृत देखना चाहता है। यही कारण है कि आप पिताओं को अपनी संतति को रंगीन कपड़े पहनाते-उढ़ाते देखते हैं। यही कारण है कि वे यथाशक्ति अपनी संतानों के नाम सयत्न चुनने के लिये व्यग्र रहते हैं। लेखक को सबसे प्रिय क्या है? निस्संदेह उसकी कृतियाँ। वह उन्हीं संतान-कल्प कृतियों को सुंदर 'गेट-अप' के रँगीले वस्त्र पहनाता है, और मनोहर साहित्यिक नामों से अभिहित करता है। यदि ग्रंथ बहुत-से फुटकर लेखों का संग्रह हुआ, तो यह कार्य बहुत ही सरल है। समय पर और कुछ नहीं सूझा, तो उन्हीं लेखों से किसी एक का शीर्षक लेकर किताब का नाम रख दिया। किंतु वैसी पुस्तक—जिसमें फुटकर कृतियाँ संगृहीत नहीं, वरन् एक ही कृति रहती है—नाम-ग्रहण में मिहनत लेती है। ऐसी पुस्तक का नाम रखना अत्यंत दुष्कर है, क्योंकि ऐसे नाम का सुंदर होना तो निश्चय ही, साथ-साथ सार्थक होना भी नितांत ही आवश्यक है। उदाहरणार्थ गुप्तजी का 'साकेत' बहुत सुंदर नाम हुआ है, लेकिन उसकी सार्थकता में लोगों ने शंकाएँ की हैं। 'अप्सरा' में यह 'साकेत'-वाला दोष नहीं पाया जाता। 'अप्सरा'-नाम के सौंदर्य का तो कहना ही क्या! लेखक की सूझ को बधाई है। यह सौंदर्य इसकी सार्थकता से द्विगुणित भी हो जाता है। उपन्यास के प्लाट के अनुसार शायद इससे उत्तम कोई दूसरा नाम मिल ही नहीं सकता। यदि इसका नाम 'वेश्या' या 'वारांगना' या यों ही कुछ रक्खा जाता, तो यह सौंदर्य न रह जाता, यद्यपि अर्थ में कुछ विशेष फ़र्क़ न पड़ता। उधर हमारे हृदय में घृणा का भी संचार हो जाता। 'अप्सरा' इस शब्द-विशेष में एक आकर्षण है, और है 'वेश्या' या 'वारांगना'-शब्द के घृणा-संचारक प्रभाव का अभाव। यदि 'कनक' को 'अप्सरा' के बदले 'निराला'जी ने वेश्या का नाम दिया होता, तो 'कनक' के चरित्र की वह असाधारण महत्ता फीकी पड़ गई होती। वह जन्म से तो वेश्या है, लेकिन उसका चरित्र देखिए—वहाँ

वेश्यापन की बड़ी न्यूनता है। पार्थिव वेश्याओं से उसकी तुलना नहीं हो सकती—स्वर्वेश्याओं (अप्सराओं) से भले हो, और तब, आप स्वयं देखेंगे, 'अप्सरा'-शीर्षक कितना सुंदर एवं सार्थक है! उसमें अप्सराओं की सभी विभूतियाँ मौजूद हैं—रूप, विद्या, गीत, नृत्य, कला, परंतु हमारी वेश्याओं के कलुषित चरित्र से उससे कुछ संबंध नहीं। इसी ज़रा-सी बात को ध्यान में रखकर 'निराला'जी ने अपनी दूरदर्शी बुद्धि का पूर्ण परिचय दिया है। कैसा हृदय-विमोहन और साथ ही सार्थक है यह नाम!

किसी भी पुस्तक की सफलता का तारतम्य उसकी भाषा है। भाषा पुस्तक के अनुसार ही अलंकृत, गंभीर, चटपटी होनी चाहिए। कविता की भाषा अलंकृत होनी चाहिए, गद्य की गंभीर और हास्य या व्यंग्य की चटपटी। यदि कविता की भाषा गद्य में या गद्य की कविता में व्यवहृत की जाय, तो पुस्तक की सफलता संदिग्ध है। 'निराला'जी इस बात से भली भाँति परिचित मालूम पड़ते हैं। यद्यपि उनकी कविता की भाषा संस्कृत-बहुला हुआ करती है, तथापि उनकी 'अप्सरा' उपन्यास के उपयुक्त बोलचाल की ही भाषा में है। यत्र-तत्र जो दृश्य-वर्णन या पात्र-वर्णन आ गए हैं, उन्हीं में, कवित्व-पूर्ण लेखन-शैली में, कविता-सा ही मज़ा देनेवाली संस्कृत-बहुला भाषा व्यवहृत हुई है। 'हृदयेश'जी के उपन्यास असफल क्यों हुए? उनकी भाषा की कृत्रिमता ही असली कारण है। इसका फल यह हुआ कि कहीं तो संस्कृत के समासों की झड़ी लग गई है, और कहीं भाषा में इतनी शिथिलता आ गई है कि जी भिन्ना जाता है। लेकिन 'निराला'जी में यह बात नहीं; उन्होंने अथ से इति तक—पहले के कथनानुसार ही दृश्य या पात्र-वर्णन को छोड़—एक प्रकार की भाषा लिखी है, और शिथिलता या कृत्रिमता का तो वहाँ नामो-निशान तक नहीं। और भी, 'प्रसाद'जी के 'कंकाल' में जहाँ पात्रों की लंबी-लंबी कवित्व-पूर्ण-स्पीचों से कृत्रिमता की बू आने लगती है, वहाँ 'निराला'जी बस काम के ही अकृत्रिम वार्तालाप लिखकर छुट्टी पा लेते हैं। यद्यपि 'प्रसाद'जी का 'कंकाल' उपन्यास है, तथापि इसमें 'प्रसाद'जी का कवि-हृदय ही प्रतिबिंबित होता है—उपन्यास में भी 'प्रसाद'जी कवि ही बने रहते हैं—औपन्यासिक नहीं बन पाते। 'कंकाल' में उपन्यास-कला की पूर्णता में जो यह त्रुटि दिखाई पड़ती है, वह 'अप्सरा' में एकदम नहीं। 'निराला'जी अपने कवि-हृदय को वहीं स्वतंत्र विचरने देते हैं, जहाँ उन्हें प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करना या पात्र-पात्रियों के बारे में कुछ अपनी ओर से कहना होता है। लेकिन 'डायलग' को तो उन्होंने इतना अकृत्रिम बनाया है, मानो कोई आपस में बात कर रहा हो, और उसे ही वह 'नोट' करते जा रहे हों। प्रेमचंद को सफल बनाने में इस 'डायलग' की अकृत्रिमता का ही हाथ है। प्रेमचंद का यह बड़ा भारी गुण है, जो 'निराला'जी में भी वर्तमान है। हाँ, प्रेमचंद की भाषा में जो लचरपन और शिथिलता है, वह यहाँ नहीं—इनमें प्रेमचंद के गुण तो हैं, किंतु दोष नहीं!

'There is a budding morrow in midnight' (Keats) 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' किसी कार्य का यदि प्रारंभ ही ठीक नहीं हुआ, तो लोगों की धारणा हो जाती है कि उस कार्य का मध्य और अंत भी वैसा ही होगा, क्योंकि कार्य का शुभ प्रारंभ ही तो आगे के शुभ की अभिव्यक्ति है। उपन्यास में यह सत्य सबसे अधिक लागू होता है। बहुत-से ऐसे उपन्यास हैं, जिनका प्रारंभ बहुत बुरी तरह, ऊटपटाँग ढंग से, किया जाता है। ऐसे उपन्यास से तबीयत ऊब जाती है, और उसका पठन असंभव हो जाता है। किसी भी उपन्यास को मनोहर बनाने के लिये यह आवश्यक है कि पहले ही से घटनाओं का ऐसा ताँता बँध जाय कि पाठक उसे समाप्त किए बिना छोड़ें ही नहीं।

'निराला'जी उपन्यास-कला-मर्मज्ञ हैं। उन्हें मालूम है कि पुस्तक कैसे 'अपीलिंग' बनाई जा सकती है। प्रारंभ में ईडन-गार्डन का वह सुंदर, कवित्व-पूर्ण वर्णन, अनिंद्य सुंदरी 'कनक' की उपस्थिति, उस पर कामांध गोरे अफ़सर का आक्रमण, 'राजकुमार' द्वारा उसकी रक्षा, ये सब ऐसी बातें हैं, जो नायक-नायिका का 'रोमांटिक' मिलन तो कराते ही हैं, साथ-ही-साथ उनके प्रति हमारी सहानुभूति और प्रेम भी आकर्षित कर लेते हैं। 'नेटिव' से गोरे का पिट जाना साधारण बात नहीं। अतः हम बड़ी व्यग्रता से राजकुमार के भाग्य के बारे में जानने के लिये पन्ने उलटने लग जाते हैं; हम पार्कवाली घटना के बाद के 'डेवेलपमेंट' को जानने के लिये उत्सुक हो उठते हैं, और यह औत्सुक्य का उद्रेक उपन्यास की सफलता का एक लक्षण है। इसके अनंतर तो घटनाओं की ऐसी शृंखला बँध जाती है कि पुस्तक एक सुर में ख़त्म किए बिना रहा ही नहीं जाता। 'अप्सरा' के प्रारंभ में सागर के कूल पर उठनेवाली उत्ताल तरंगें हैं, मध्य में उदधि के बीचवाला गांभीर्य है, और फिर अंत में प्रारंभ ही-सी तुंग तरंगें उठने लगती हैं। प्रारंभ में भी 'कनक' का 'राजकुमार' से 'रोमांटिक' मिलन होता है, और 'राजकुमार' ही द्वारा उसकी रक्षा होती है, अंत में भी वही 'रोमांस' दिखलाई पड़ता है। 'कनक' का महल से बच निकलना, राजकुमार से मिलन और उसी ईडन-पार्कवाले गोरे अफ़सर से फिर ट्रेन पर राजकुमार द्वारा ही उसकी रक्षा। कहने का तात्पर्य यह कि प्रारंभ और अंत तो बहुत ही 'रोमांटिक' हुआ है, और मध्य भाग—जो 'मिस्अंडरस्टैंडिंग' पर बना हुआ है—वैसा ही गंभीर। 'अप्सरा' में 'रोमांस', 'मिस्अंडरस्टैंडिंग', घटना-वैचित्र्य, स्वाभाविकता, इनका ग़ज़ब का परिपाक हुआ है। हिंदी में 'निराला'जी ने ही इतनी सफलता के साथ 'रोमांस' को अपने उपन्यास में प्रविष्ट किया है।

अब हमें 'अप्सरा' के आदर्श और चरित्र-चित्रण पर भी ध्यान देना चाहिए। टॉमस हार्डी अपने समय का श्रेष्ठ औपन्यासिक था, लेकिन उसे 'नोबुल-प्राइज़' नहीं मिला। इसका कारण यह था कि 'नोबुल-प्राइज़' देनेवाले महापुरुष के सदिच्छानुसार यह 'प्राइज़' उसी मनुष्य को दिया जाता है, जो संसार के सामने किसी भी रूप में कोई आदर्श उपस्थित करे। और, और सभी गुण होते हुए भी 'हार्डी' की कृतियों में आदर्शवाद की बड़ी कमी थी। 'फ़ॉर फ़्रॉम दि मैडिंग क्राउड' और 'टेस ऑफ़ डरबर वाइल्स' उसके दो सर्वश्रेष्ठ उपन्यास हैं। पहले की नायिका 'बाथशेबा' और दूसरे की 'टेस' है। ये दोनो असहाया, सरला ग्रामीण युवतियाँ हैं। 'हार्डी' ने उनकी भूलों का, कमज़ोरियों का, उनके ऊपर किए गए लंपट पुरुषों के अत्याचारों का वर्णन किया है। उसने दिखलाया है कि कैसे वे नवयुवतियाँ अपनी सरलता के कारण उन कामुकों के हाथों लग गईं, और इसी कारण उन्हें कितने कष्ट झेलने पड़े। वह अपनी प्रभावशालिनी लेखनी से हमें प्रभावान्वित कर देता है, रुला देता है, पात्र-पात्रियों के प्रति हमारी सहानुभूति वशीकृत कर लेता है, और अपनी ज़ोरदार वर्णना-शक्ति द्वारा अपने को श्रेष्ठ औपन्यासिक भी मनवा लेता है। लेकिन यह सब कुछ होते हुए भी वह हमारे सामने कोई आदर्श नहीं उपस्थित करता। अतः उसे 'नोबुल-प्राइज़' नहीं मिला। मैं इस उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि औपन्यासिक का आदर्श चरित्र की सृष्टि भी कर्तव्य होना चाहिए। इसके बिना उसकी कृति पूर्णरूपेण सफल नहीं हो सकती। यही तो कारण है कि—एक और उदाहरण पेश करता हूँ—व्यासजी-से सिद्धहस्त लेखक का 'अशांत' सफल नहीं हुआ। किंतु 'निराला'जी का एक-एक चरित्र हमारे लिये आदर्श है—राजकुमार की गोरे अफ़सर से भी भिड़ जानेवाली निर्भीक प्रकृति हमारे कायर, निर्बल, चाटुकार युवकों के लिये एक उच्च आदर्श स्थापित करती है, इसमें तो किसी को संदेह हो ही नहीं

सकता। फिर रंगमंच पर, एम्० ए० होने पर भी, उसका उतरना, इतनी सफलता-पूर्वक अभिनय करना हमारे साहित्यिक युवकों के लिये एक आदर्श है ही। उसका आत्मसम्मान, उसकी एक स्त्री की सहायता से बरी होने की अनिच्छा से प्रकट होकर, आत्माभिमान-रहित नवयुवकों के लिये एक सीख है, आदर्श है। वेश्या के घर भी उसे भोजन कर लेने में इसलिये आपत्ति नहीं कि वह एक वेश्या का घर है, वरन् उसे आपत्ति इसलिये है कि वह नहीं चाहता दूसरों के टुकड़ों पर रहना, किसी का एहसानमंद होना। यह हमारे उन युवक भाइयों के लिये—जो छुआछूत पर विश्वास रखते हों, दूसरों के घर की रोटी तोड़कर पौरुष को चरितार्थ करते हों—क्या एक आदर्श नहीं रखता? राजकुमार का अपने मित्र को ख़तरे में देखकर, ऐशोइशरत को लात मारकर चला आना, उसकी क्रांति-संबंधी पुस्तकों पर उसके हितार्थ अपना नाम लिखकर अपने यहाँ रख लेना भी आजकल के विश्वासघाती मित्रों के लिये एक आदर्श है, उसकी बाल-सुलभ सरलता, तुनुक-मिज़ाजी, अल्हड़पन, कर्तव्य-परायणता, विशुद्ध प्रेम—ये सब एक आदर्श युवक के सफल चित्र हैं।

कनक की कृतज्ञता, उसकी उदारता, ख़तरे में भी प्रत्युत्पन्नमतित्व, वेश्या होने पर भी सुशिक्षिता और ललित कलाओं में प्रवीण होना, अचंचल प्रेम, शालीनता, ये सब हमारे महिला-समाज के लिये आदर्श हैं।

'निराला'जी ने केवल प्रधान पात्रों को ही आदर्श नहीं बनाया है, बल्कि साधारण पात्रों को भी आदर्श बनाया है—यथा तारा, चंदन आदि। यहाँ तक कि उस ग्रामीण हरपालसिंह को भी आदर्श रूप दिया है।

चरित्र-चित्रण में इस आदर्शवाद के पुट से हम उल्लसित हो जाते हैं, उत्साहित हो जाते हैं—निराश नहीं होते, हँसने लगते हैं—रोने नहीं लगते; तरुण-भारत के आदर्श-विकास पर हम गर्वित हो जाते हैं—उसके दोषों को पढ़कर लज्जित नहीं हो जाना पड़ता। 'उग्र' का 'चाकलेट' पढ़िए—आप अभिनव-भारत से घृणा करने लग जायँगे, अपने को पृथ्वी के बदले नरक में स्थित पावेंगे; लेकिन 'निराला' की 'अप्सरा' पढ़िए—आप अपनी जन्मभूमि—अभिनव-भारत—पर गर्व करने लगेंगे, अपने को पृथ्वी के बदले स्वर्ग में विचरते हुए पावेंगे, नरक में नहीं। यह आदर्शवाद ही अकेले 'निराला'जी को औपन्यासिकों में अग्रगण्य बनाने को काफ़ी है।

यों तो 'अप्सरा' की एक-एक पंक्ति में कुछ-न-कुछ विशेषता है, किंतु यह संभव नहीं कि इस छोटी-सी समालोचना में एक-एक विशेषता का, ख़ूबियों का वर्णन किया जा सके, अतः उपरि-लिखित लघु समालोचना से ही पाठकों को संतुष्ट होना पड़ेगा। फिर भी इसके पहले कि मैं इस लेख को समाप्त करूँ, यह कहने का लोभ संवरण नहीं कर सकता कि 'अप्सरा' को चाहे जिस दृष्टि-कोण से देखें—मौलिकता, चरित्र-चित्रण, भाषा, वर्णन-शैली, उत्कृष्टता, सफलता—सभी तरह वह अद्वितीय है। अंत में हिंदी-साहित्य भी विश्व-साहित्य के योग्य वस्तुओं का अब सृजन करने लगा है, इस पर मैं चलते-चलाते उसको अपना हार्दिक साधुवाद देता हूँ। और, मुझे आशा ही नहीं, पूरा विश्वास भी है कि 'निराला'जी इसी तरह की अन्य पुस्तकें लिखकर अपने को अमर करते हुए हिंदी-साहित्य को भी संजीवनी-शक्ति से पूर्ण करते रहेंगे।

उपवास

[डॉ० छैलविहारीलाल एम्० डी०, डी० सी० एच्० एम्०]



उपवास का जितना महत्त्व समझा जाना चाहिए, नहीं समझा जाता। उपवास से जो लाभ उठाया जा सकता है, उसे लोग जानते ही नहीं।

उपवास का लाभ-जनक होना बहुत प्राचीन समय से समझा जाता रहा है। इसकी प्रथा कोई नई चीज़ नहीं। पिछले ज़माने में और अब भी हमारे भारतवर्ष में उपवास धर्म के साथ-साथ मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक पवित्रता के लिये अनिवार्य माना जाता है। हमारे ऋषि-मुनियों ने इसी कारण उपवास के लिये कुछ दिन नियत कर दिए हैं, पर आजकल के सभ्य मनुष्य इन पुरानी बातों को बिलकुल बेकार समझते और मज़ाक़ में टाल देते हैं। रोग दूर करने के लिये भी उपवास प्राचीन काल से ही काम में लाया जाता रहा है। प्राचीन मिस्र (Egypt) के पुजारी इसको मानते थे, और यहूदियों के रहस्यात्मक दर्शन में इसका उल्लेख है। बाइबिल के इतिहासानुसार हज़रत मूसा ने अस्सी साल की अवस्था में एक सौ बीस दिन का व्रत रक्खा था। हज़रत ईसा की जीवनी में हमको बहुत-से हवाले मिलते हैं कि उपवास आरोग्यकरण का उत्तम उपाय है। हज़रत ईसा के चालीस दिन के व्रत को लोग जादू (Miracle) समझते थे, लेकिन वह स्वयं कहते थे कि जो कुछ उन्होंने किया, दूसरे लोग भी कर सकते हैं।

हमारा शरीर एक मशीन के समान है, और यह मशीन है बड़ी ही विचित्र। यह तो सभी जानते हैं कि जब मशीन ठीक काम नहीं करती, तो यह समझा जाता है कि इसमें कोई ख़राबी आ गई है। उसे ठीक चलाने के लिये उसकी सफ़ाई की जाती है। ठीक इसी प्रकार अपने शरीर को समझना चाहिए। जब कोई रोग उत्पन्न हो, तो समझना चाहिए कि सफ़ाई की ज़रूरत है। शरीर का ईंधन भोजन है, और इसी भोजन से रक्त बनता है, जिस पर शरीर का चलना निर्भर है। यदि भोजन भले प्रकार नहीं पचता, तो ठीक रक्त भी नहीं बनता, और ऐसी दशा में शरीर नीरोग नहीं रह सकता। शरीर को नीरोग रखने के लिये यह आवश्यक है कि भोजन ठीक प्रकार से हज़म हो। जितने रोग हैं, सब पेट की ख़राबी से ही उत्पन्न होते हैं। अतः शरीर स्वस्थ रहने के लिये पेट का स्वस्थ रहना आवश्यक है।

पेट को स्वस्थ रखने के लिये यह तो आवश्यक है ही कि उचित भोजन, उचित मात्रा में, किया जाय, पर साथ ही यह भी बहुत ज़रूरी है कि मल का विसर्जन नियम-पूर्वक होता रहे। यदि ग़लती से ज़्यादा खा लिया जाय या अनुचित भोजन कर लिया जाय, तो पेट को साफ़ करने

की ज़रूरत पड़ जाती है । ज्यादा खा लेने पर यह ध्यान रखना चाहिए कि जब तक खाया हुआ भोजन पच न जाय, दुबारा न खाना चाहिए। अगर पेट में क़ब्ज़ रहे, तो भी मल का निकास होने की आवश्यकता है। जब पेट से ज्यादा और अनुचित काम लिया जाता है, तभी उसमें कोई-न-कोई ख़राबी पैदा हो जाती है । इन ख़राबियों का सबसे अच्छा इलाज यह है कि पेट को आराम करने का मौक़ा दिया जाय । ज्यादा या गरिष्ठ चीज़ें खाने से (जैसा आज-कल आम तौर से लोग करते हैं) पाचन-क्रिया में बहुत देर लगती और पेट को बड़ी मेहनत करनी पड़ती है। बेचारा बेजबान पेट काम करते-करते थक जाता और लाचार हो काम बंद कर देता है । यदि हम स्वस्थ रहना चाहते हैं, तो हमें अवश्य पेट की ओर ध्यान देना होगा, और उसे कभी-कभी आराम भी। आराम देने का सबसे सरल और उत्तम उपाय उपवास है। उप-वास से पेट को आराम मिलेगा। थके हुए हिस्सों को आराम मिलने से उनमें फिर पहले की-सी शक्ति आ जाती है, और वे अपना काम ठीक-ठीक करने लगते हैं । उपवास से पेट की गंदगी भी आसानी से निकल जायगी। बस, ध्यान यह रखना चाहिए कि थोड़ी-थोड़ी देर बाद थोड़ा ठंडा जल पी लिया जाय। जल बढ़ती हुई गर्मी को शांत और मल-निरोध में मदद करता है।

स्वास्थ्य के नियमों से अलग चलने पर ही कोई-न-कोई रोग आ घेरता है। जब कोई रोग हो जाता है, तब प्रकृति स्वयं बतलाती है कि इसका इलाज है उपवास। यह क्योंकर मालूम हुआ, सुनिए। जब मनुष्य को कोई बीमारी हो जाती है, तो उसे खाने की इच्छा नहीं होती। इसलिये उपवास हरएक रोग का एक अच्छा इलाज है। कारण, वह प्रकृति के अनुकूल ही है। जहाँ किसी प्रकार के इलाज से लाभ नहीं होता, वहाँ उपवास से बहुधा फ़ायदा होता है, और यह तरीक़ा बिलकुल प्राकृतिक है। हम देखते हैं, जब जानवर बीमार होते हैं, खाना बंद कर देते हैं, और जब तक स्वस्थ नहीं हो जाते, खाने का ख़याल भी नहीं करते । उपवास से ही उनके समस्त रोग दूर हो जाते हैं। वास्तव में उपवास शरीर की गंदगी को, जो निर्बलता और रोग उत्पन्न करती है, दूर करने में बड़ी सहायता देता है। पर सभ्य मनुष्य की दशा जानवरों से भी गई-बीती है, जो इच्छा न होते हुए भी कुछ खा लेना अपना वैसा ही कर्तव्य समझता है, जैसा मल-मूत्र त्याग करना ।

जिन लोगों ने कभी उपवास नहीं किया, उनको बिना भोजन के रहना असंभव तथा कठिन मालूम होता है । उनका ख़याल है, बग़ैर दिन में कई बार भोजन किए उनका शरीर दुर्बल हो जायगा। वे ग़लती पर हैं । यदि वे एक बार भी उपवास के लाभ को देख पावें, तो सदा उपवास की सराहना करते रहें।

यह तो ऊपर बता ही चुका हूँ कि उपवास रोग दूर करने में कितना सहायक हो सकता है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उपवास-चिकित्सा के नियम बिलकुल सरल हैं—हरएक सरलता से समझ सकता है। आप-को मालूम होगा कि डॉक्टर लोग भिन्न-

भिन्न मर्ज़ का भिन्न-भिन्न कारण और भिन्न-भिन्न बाह्य चिह्न (Outward symptoms) बतलाते हैं, पर इन सबका मूल कारण एक ही है—विजातीय पदार्थ (Foreign matter) की विद्यमानता, और इसका कारण है अधिक और अनुचित भोजन। यही भोजन शरीर के अंदर जहर बन जाता है, जो शरीर में एकत्रित होता जाता है। यही विजातीय पदार्थ है, और यही समस्त रोगों की जड़ भी। अतः रोग दूर करने के लिये विजातीय पदार्थ निकालने की आवश्यकता है। यह काम उपवास द्वारा सरलता-पूर्वक लिया जा सकता है। जब खाना पेट में न जायगा, तो शरीर की शक्ति (Energy) बजाय इसके कि नए खाए हुए भोजन को पचाने में ख़र्च हो, इस कूड़े को बाहर निकालने में लग जायगी, और जितनी ही जल्दी शरीर से विजातीय पदार्थ निकल जायगा, उतनी ही जल्दी वह स्वस्थ हो जायगा। डॉ० डिवी उपवास-चिकित्सा के संबंध में कहते हैं—"Take away food from a sick man's stomach and you have begun not to starve the sick man, but to starve the disease." अर्थात् रोगी का खाना बंद कर दो, इस प्रकार तुम रोगी को नहीं, बल्कि रोग को भूखों मार सकोगे।

उपवास-चिकित्सा के संबंध में यह विचार प्रचलित है कि यह ख़तरनाक है। लोग कहते हैं, यह संभव है, कुछ दशाओं में उपवास से कुछ फ़ायदा हो जाय, पर ज्यादातर इससे बजाय फ़ायदे के नुक़सान का खटका है। जिन लोगों का ऐसा विचार है, वे ग़लती पर हैं। उपवास कदापि ख़तरनाक नहीं है, यदि समझ-बूझकर किया जाय। उनका यह विचार केवल इसलिये है कि उन्होंने इस विषय में काफ़ी खोज नहीं की।

अब मैं उपवास-चिकित्सा-संबंधी कुछ नियम बताऊँगा। पूरे उपवास (Complete Fast) से मतलब है कि सिवा पानी के और कुछ भी पेट में न जाय। उपवास के समय रोगी जितना पानी पीना चाहे, पी सकता है। बाज़ समय मामूली पानी का स्वाद अच्छा नहीं मालूम होता, ऐसी दशा में नींबू के रस के कुछ बूँद डाल लेना अच्छा होगा। इससे मल-निरोध में भी मदद मिलेगी। एनीमा का प्रयोग भी प्रति सप्ताह दो-तीन बार आवश्यक है। बात यह है कि ऐसी दशा में कभी-कभी अँतड़ियाँ अपना काम अच्छी तरह नहीं करतीं, जो पानी पीते रहने और एनीमा लेने से ठीक हो जाती हैं। रोगी को काफ़ी ताज़ी हवा मिलनी चाहिए, और बहुधा हालतों में थोड़ा-बहुत व्यायाम भी ज़रूरी है। जो रोगी बहुत दुर्बल हों, उनको अच्छी तरह आराम करना चाहिए।

उपवास के मध्य में कुछ ऐसे चिह्न प्रकट होते हैं, जो साधारणतः चिंता-जनक जान पड़ते हैं, पर घबराना न चाहिए। वास्तव में यह इस बात का चिह्न है कि शरीर अपने को साफ़ करने का प्रयत्न कर रहा है। उपवास के आरंभ में सुस्ती, सिर-दर्द, पेट का दर्द, दिल की धड़कन, मतली इत्यादि चिह्न प्रकट होते हैं।

ये आम तौर से तीन-चार रोज़ के अंदर ही दूर हो जाते हैं। कुछ दशाओं में ऐसा भी होता है कि रोगी को ये शिकायतें एक भी नहीं मालूम होतीं, बल्कि उपवास के आरंभ से ही उसको फ़ायदा जान पड़ता है। एक चिह्न, जो प्रत्येक रोगी में मिलता है, यह है कि ज़बान पर मैल जमा रहता है। ऐसा हाल उपवास शुरू करते ही आरंभ हो जाता है, और तीन-चार दिन बाद बहुत ज्यादा मैल इकट्ठा हो जाता है। उपवास के एक सप्ताह बाद से ज़बान साफ़ होने लगती है, और जब शरीर की गंदगी दूर हो जाती है, बिलकुल साफ़ हो जाती है। ज़बान का साफ़ हो जाना भी यह ज़ाहिर करता है कि उपवास को अपने कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। उपवास के समय श्वास में भी दुर्गंध आती है, जो साफ़ साबित करती है कि पेट में कितना विकार है। उपवास के भले प्रकार समाप्त होने पर यह दुर्गंध भी दूर हो जाती है। उपवास के बाद प्राकृतिक भूख भी मालूम होने लगती है, जो एक ऐसा सुंदर अनुभव है, जिसका वर्णन वे ही लोग कर सकते हैं, जिन्हें ऐसा अनुभव हुआ है। शरीर का वज़न भी घट जाता है। उपवास के आरंभ में वज़न ज्यादा-ज्यादा घटता है, पर अंत में कम।

अब देखना यह है कि उपवास कितने रोज़ का करना चाहिए। इस विषय में कोई नियम नहीं बनाया जा सकता। यह बहुत कुछ वैयक्तिक दशाओं पर निर्भर है। बाज़ दशाओं में लंबे उपवास की आवश्यकता होती है, बाज़ में एक सप्ताह का उपवास काफ़ी होता है। मामूली मर्ज़ों के लिये तो सबसे उत्तम तरीक़ा यह है कि भोजन ठीक प्रकार का दिया जाय, और भोजन की मात्रा कम कर दी जाय। केवल कम और उचित भोजन करने से ही बहुत लाभ उठाया जा सकता है।

उपवास तोड़ते समय बड़ी सावधानी की ज़रूरत है। यदि इसमें ज़रा भी चूके, तो नुक़सान का अंदेशा है। आरंभ में पके फलों—संतरा, नीबू, अंगूर—का रस देना चाहिए। एक-दो रोज़ फल के रस पर रहना चाहिए। इसके बाद थोड़ी मात्रा में फल खाना चाहिए। तब आहिस्ता-आहिस्ता थोड़ा-थोड़ा जल्द पचनेवाला भोजन देना चाहिए, और धीरे-धीरे भोजन की मात्रा बढ़ानी चाहिए। यह याद रहे कि जल्दी ही कोई ठोस खाना न दिया जाय। उपवास के बाद शरीर का वज़न बढ़ता है—उतनी जल्दी, जितनी जल्दी उपवास के समय घटता है, क्योंकि पाचन-शक्ति बहुत बढ़ जाती है।

साधारणतः प्रत्येक मनुष्य को यह नियम बना लेना चाहिए कि सप्ताह में छ दिन भोजन करके एक दिन का भोजन छोड़ दे। इससे यह मतलब नहीं कि छ दिन तक अनाप-शनाप भोजन किया जाय, बल्कि इन दिनों भी प्रत्येक चौबीस घंटे में दो बार से अधिक भोजन न किया जाय, और वह भी सादा। हाँ, जल-प्रयोग को अपवाद समझिए।

आर्य-संस्कृति

[श्रीचंद्रराज भंडारी 'विशारद']

मानवीय इतिहास के अंतर्गत अब तक भिन्न-भिन्न प्रकार की अनेक संस्कृतियों का उत्थान और पतन हुआ है। पर यदि महानता की दृष्टि से देखा जाय, तो इनमें तीन-चार संस्कृतियाँ ही ऐसी दृष्टिगोचर होंगी, जिन्होंने अपने महान् और व्यापक सिद्धांतों पर मानव-समाज के एक बहुत बड़े विभाग को आकर्षित कर अपने नाम को विजयी और सार्थक किया, तथा जिन्होंने वैज्ञानिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक और सामाजिक सभी क्षेत्रों में अपना महत्त्व-पूर्ण स्थान प्राप्त किया। इन संस्कृतियों में आत्मभाव-प्रधान आर्य-संस्कृति, भ्रातृभाव-प्रधान इस्लाम-संस्कृति तथा मैत्रीभाव-प्रधान क्रिश्चियन-संस्कृति के नाम उल्लेखनीय हैं।

मगर संस्कृति का जो वैज्ञानिक पैमाना है, उसको सम्मुख रखकर यदि तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाय, तो उपर्युक्त तीनो संस्कृतियों में भी आर्य-संस्कृति का नंबर सबसे पहला रक्खा जायगा। इतिहास इस बात को डंके की चोट बतला रहा है कि भारतवर्ष के अंतर्गत आर्य-संस्कृति ने जिस शांति और सुव्यवस्था के साथ अपना वैज्ञानिक क्रम-विकास किया, वह अतुलनीय है। हो सकता है, आज विज्ञान और सुधार के इस युग में—जब कि संस्कृति का प्रवाह वायु-वेग से प्रवाहित होता हुआ चला जा रहा है—हमें इस संस्कृति की बहुत-सी व्यवस्थाएँ त्रुटि-पूर्ण और उसके बहुत-से सिद्धांत ग़लत दिखलाई दें, और उसमें कई स्थानों पर आमूल परिवर्तन करने की आवश्यकता भी प्रतीत हो, फिर भी इस दलील से इस संस्कृति का इतिहास के तुलनात्मक क्षेत्र में जो महत्त्व है, वह किसी प्रकार कम नहीं हो सकता।

यह एक इतिहास-सिद्ध बात है कि भारतवर्ष के अंतर्गत इस महान् संस्कृति ने राजनीति, समाजनीति, अर्थनीति, विवाह-संस्था, कुटुंब-व्यवस्था इत्यादि मानवीय जीवन की सभी संस्थाओं में एक सुव्यवस्थित शास्त्रीय योजना की स्थापना की, और हरएक संस्था की नींव किसी-न-किसी महान् सिद्धांत पर प्रतिष्ठित की। इस लेख में हम यही देखने का प्रयत्न करेंगे कि समाज की प्रधान-प्रधान संस्थाओं के संबंध में इस संस्कृति ने जो आदर्श स्थापित किया, वह संस्कृति-तत्त्व की वैज्ञानिक कसौटी पर कहाँ तक ठीक उतरता है।

सैद्धांतिक रूप में यदि देखा जाय, तो इस महान् संस्कृति ने बहुत ही उच्च सिद्धांतों के पाए पर अपनी नींव रक्खी थी। इसके विधायकों ने मानव-समाज की प्रत्येक संस्था की व्यवस्था समता, योग्यता और मनुष्यता, इन तीन दिव्य तत्त्वों को मद्दे-नज़र रखकर दी है। हमारे व्यवस्था-ग्रंथों में जब हम इन संस्थाओं के संबंध में किए हुए विवेचन को पढ़ते हैं, तब इनके विधायकों की दूरदर्शिता और उदार बुद्धि पर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। मानवीय प्रकृति और मानवीय आदर्श के बीच में इन मनीषी महापुरुषों ने जैसा समीकरण किया है, वह सचमुच मानवीय इतिहास में अभूतपूर्व है। समता के इस विज्ञानमय युग में भी हमारे इन मूल-सिद्धांतों की नवीनता वैसी ही चमकती हुई दृष्टिगोचर होती है।

मगर इतना सब कुछ होने पर भी यह कठोर सत्य मानने के लिये हमको बाध्य होना ही पड़ेगा कि इतनी भव्य संस्कृति के अंतर्गत प्रतिपालित होनेवाली जातियों का जैसा महान् इतिहास निर्माण होना चाहिए, अपना वैसा महान् इतिहास आर्य-संस्कृति निर्माण न कर सकी, तथा जिस शांति और सुव्य-

वस्था की आशा ऐसे दिव्य सिद्धांतों से की जा सकती है, उसका शतांश भी यहाँ के व्यावहारिक जीवन में दृष्टिगोचर न हो सका। केवल इतना ही नहीं, प्रत्युत सिद्धांत-जगत् में इतनी सुंदर दृष्टिगोचर होनेवाली यह विशाल संस्कृति व्यवहार-जगत् में आकर अत्यंत असफल और भयंकर सिद्ध हुई। इसके अत्यंत सुंदर दिखलाई देनेवाले राजकीय सिद्धांतों में से स्वेच्छाचारी राजतंत्र का, धर्म-सिद्धांतों में से भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वार्थी मत-मतांतरों का, समाज-सिद्धांतों में से जाति-प्रथा, छुआछूत और शूद्रत्व का तथा विवाह-सिद्धांतों में से भीषण वैधव्य और नारी-दासत्व आदि अनेक प्रकार के भीषण सामाजिक रोगों का प्रादुर्भाव हुआ। इसका भीषण परिणाम यह हुआ कि जिस महान् जाति को परम स्वतंत्र और संसार की सिरताज होकर रहना चाहिए था, वह बहुत ही शीघ्र अपनी स्वतंत्रता से भ्रष्ट हो राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और मानसिक सभी प्रकार की ग़ुलामियों में इतनी भीषणता के साथ फँसी कि हज़ारों वर्ष बीत जाने पर भी आज तक वह अपना उद्धार न कर सकी!

इस भयंकर ऐतिहासिक परिणाम का कारण क्या है? क्या आर्य-जाति के इतिहास में घटी हुई ये सब घटनाएँ आकस्मिक थीं? नहीं, इतनी बड़ी ऐतिहासिक घटनाएँ कभी आकस्मिक नहीं कही जा सकतीं। इसकी मूल तह में कारण है, और बहुत मज़बूत कारण है। यह सच है कि हमारी संस्कृति के व्यवस्थापकों ने बहुत दूरदर्शिता के साथ इस संस्कृति के विधानों की रचना की थी। मगर इसके साथ ही यह भी सच है कि उनके द्वारा कई ऐसी मौलिक भूलें भी अवश्य घटित हुईं, जिनकी वजह से हमारी संस्कृति का यह सुंदर क़िला परिपूर्ण होने के पूर्व ही स्थान-स्थान पर खंडित हो गया, और जिसने असमय ही में आर्य-जाति के सुंदर स्वास्थ्य का नाश कर दिया।

इनमें सबसे पहली मौलिक भूल—हमारे विचार से—इन विधायकों ने यह की कि हमारी समाज-नीति और राजनीति को हमारी धर्म-नीति के साथ अस्वाभाविक तरीक़े से जकड़ दिया। इन इहलौकिक नीतियों का इस पारलौकिक नीति के साथ बेमेल मिक्श्चर बना देने का दुष्परिणाम यह हुआ कि राज्य-संस्था और समाज-संस्था के मेल से हमारी धर्म-संस्था विलास-मय और कूटनीति-प्रधान हो गई, वह अपनी असलियत और पवित्रता से दूर जा पड़ी, और इधर धर्म-नीति के संसर्ग से हमारी राज्य-संस्था और समाज-संस्था ने पारलौकिक उन्नति को ही असली महत्त्व देकर सांसारिक उन्नति की उपेक्षा कर दी, और एक अप्रत्यक्ष सिद्धांत पर प्रत्यक्ष की बलि दे दी। इस प्रकार इन तीनो संस्थाओं के लक्ष्य-भ्रष्ट हो जाने से समाज में स्वार्थी लोगों की पौबारह पच्चीस हो गई। स्वार्थी धर्माधिकारियों ने राज्य और समाज के अधिकारियों से मिलकर ऐसी मनमानी व्यवस्थाओं की रचना करवाई, जिनकी वजह से समता और योग्यता के महान् सिद्धांतों की प्रचारक यह आर्य-संस्कृति विषमता और स्वेच्छाचारिता की प्रधान जननी बन गई।

मानवीय इतिहास में केवल आर्य-संस्कृति ने ही यह भूल की हो, सो बात नहीं है; संसार की और भी कई महान् संस्कृतियों ने यही भूल करके इसके भयंकर परिणामों को सहन किया है। योरपीय संस्कृति के इतिहास में भी एक समय ऐसा देखने में आता है, जिसमें वहाँ की राज्य-संस्था और समाज-संस्था वहाँ की धर्म-संस्था के अंतर्गत थीं, और धर्म-संस्था के आचार्य पादरी लोग ही समाज और राज्य के सर्वेसर्वा माने जाते थे। उनकी एक टेढ़ी भ्रुकुटि ही हज़ारों के प्राण लेने को काफ़ी थी। जिस इन्क्विज़िशन अदालत के रोमांचकारी वर्णनों को योरप के इतिहास में पढ़कर आज भी मनुष्यता की छाती दहल उठती है, वह भी इन धर्म-गुरुओं के ही अधिकारों में थी। उस समय का योरप का इतिहास क्या है? हत्या और रक्तपात का इतिहास है। पाशविकता और क्रूरता का तांडव-नृत्य है।

उस समय योरप की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दशा कितनी भयंकर थी, यह इतिहास के पृष्ठों पर स्पष्ट अंकित है। यदि कुछ समय तक यह स्थिति और रहती, तो वहाँ की सामाजिक स्थिति कितनी भयंकर हो जाती, यह आज कल्पना से भी परे है। मगर सौभाग्य-वश वहाँ के कुछ महापुरुषों को संस्कृति-तत्त्व की यह महान् भूल समझ में आ गई, और उन्होंने प्राणों पर खेलकर, अपना सर्वस्व नष्ट करके भी, वहाँ की राजनीति और समाज-नीति को धर्म-नीति से बिलकुल स्वतंत्र कर दिया। बस, उसी दिन से योरप का इतिहास अपनी सोलह कलाओं से फलने-फूलने लगा। ज्ञान और विज्ञान की तरक़्क़ी होने लगी, जो अब तक बराबर जारी है।

इसी प्रकार इस्लाम-संस्कृति के इतिहास में भी कमालपाशा के पूर्वकाल तक राजनीति और समाज-नीति पर धर्म-नीति का शासन रहा। उस समय का इस्लाम का इतिहास भी कितना भयंकर और पिछड़ा हुआ था, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। मगर ज्यों ही वीर कमालपाशा ने इस कमज़ोरी को समझकर वहाँ की धर्म-नीति से इन दोनो नीतियों को स्वतंत्र कर दिया, त्यों ही टर्की के इतिहास में कितना अभिनंदनीय परिवर्तन हो गया।

रूस की इस आकस्मिक उन्नति और बोल्शेविज़्म की इस विद्युत्-सफलता का मूल-रहस्य क्या है? अगर महामना लेनिन इस सारे संगठन पर धर्म-नीति का शासन रखते, तो क्या उन्हें वह सफलता मिल सकती थी? स्वयं लेनिन ने इस प्रचलित धर्म-नीति को एक मादक वस्तु की तरह माना है। और, जहाँ तक संभव था, उन्होंने अपने को, अपने देश को और अपने संगठन को इससे बचाए रक्खा।

सच पूछा जाय, तो धर्म-नीति एक पारलौकिक नीति है, और उसका आधार एक अप्रत्यक्ष सत्य पर स्थित है। मगर समाज-नीति और राजनीति इहलौकिक नीतियाँ हैं, और उनका आधार हमेशा प्रत्यक्ष सत्य पर रहता है। मनुष्य की प्रकृति जितनी टेढ़ी-मेढ़ी है, उतना ही इन नीतियों का मार्ग भी टेढ़ा-मेढ़ा और कंटकाकीर्ण रहता है। मगर धर्म-नीति का मार्ग हमेशा साफ़-सुथरा और नीतिमत्ता से परिपूर्ण रहता है। यह नीति अपने आदर्श के सम्मुख सांसारिक और सामाजिक सफलता की परवा नहीं करती। प्रत्यक्ष सफलता से इसको कोई मोह नहीं रहता। क्योंकि इसका आदर्श हमेशा पारलौकिक और अप्रत्यक्ष रहता है। यही कारण है कि इस नीति के सच्चे उपासकों का क्रीड़ा-क्षेत्र संसार से दूर—समाज के संसर्ग से एकदम अलग—वन-उपवनों में ही माना गया है। ऐसी स्थिति में अगर परलोक की महान् चिंता में लीन धर्मवीर पुरुष अपनी आत्मचिंता छोड़कर समाज के विलास और कूट-नीतिमय वातावरण में आ जायँ, और समाज के मनीषी परलोक की बात में लगकर अपनी सामाजिक उन्नति की चिंता छोड़ दें, और उस हालत में यदि समाज के अंतर्गत अव्यवस्था का दौरा हो जाय, तो क्या आश्चर्य?

वास्तविक बात यह है कि यद्यपि सांसारिक और पारलौकिक उन्नति में तत्त्वतः कोई विरोध नहीं है, यद्यपि दोनो का मंज़िले-मक़सूद एक ही है, तो भी मार्ग भिन्न-भिन्न हैं; लक्ष्य एक होने पर भी दोनो के साधनों में अंतर है। और, जहाँ तक साधनों का संबंध है, दोनो अपने-अपने क्षेत्र में बिलकुल स्वतंत्र हैं। धर्म-नीति अपने क्षेत्र में स्वतंत्र है, उसमें समाज-नीति और राजनीति बाधा नहीं दे सकती। इसी प्रकार समाज-नीति और राजनीति भी अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र हैं। मतभेद के नाम पर उसमें बाधा देने का धर्म-नीति को कोई अधिकार नहीं है।

दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि धर्म-संस्था किसी भी राज्य के एज्युकेशन-डिपार्टमेंट की तरह है, और राजनीति तथा समाज-नीति ज्युडिशियल तथा रेवेन्यू-डिपार्टमेंट की तरह है। यद्यपि इन तीनो का

मंज़िले-मक़सूद एक ही है, मगर इनकी कार्य-प्रणाली भिन्न है, और ये अपने-अपने क्षेत्र में स्वतंत्र हैं। यदि ये विभाग अपनी मर्यादा छोड़कर परस्पर एक दूसरे की स्वाधीनता में बेजा हस्तक्षेप करने लगें, तो व्यवस्था में खलबली होना अनिवार्य है।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् हम सहज ही इस महत्त्व-पूर्ण तथ्य पर पहुँच सकते हैं कि आर्य-संस्कृति के विधायकों ने इस संस्कृति के विधानों की रचना करने में, हज़ार स्थानों पर, जहाँ अत्यंत गंभीर और गवेषणात्मक बुद्धि से काम लिया, वहाँ राजनीति और समाज-नीति के ऊपर पारलौकिक धर्म-नीति का शासन स्थापित करके उन्होंने एक महत्त्व-पूर्ण, मौलिक भूल भी की। इस भूल की वजह से समाज में कई भीषण और अनिष्टकारक रोग पैदा हुए, जिनमें वैधव्य, अछूतत्व, संप्रदायवाद, जातिवाद तथा प्रारब्धवाद उल्लेखनीय हैं।

वैधव्य—अगर सूक्ष्म और निष्पक्ष बुद्धि के साथ, संस्कार-जन्य अज्ञान को दूर करके देखा जाय, तो स्पष्ट पता चल जाता है कि मनुष्य-जाति के अंतर्गत विवाह-संस्था की उत्पत्ति एक आवश्यक कर्तव्य को मद्दे-नज़र रखकर हुई है। इसका उद्देश्य विशुद्ध सामाजिक है। मनुष्य की उच्छृंखल व्यभिचार-वृत्ति पर नियंत्रण करने तथा समाज की Might is Right के निरंकुश सिद्धांत से रक्षा करके उसमें सुमधुर दांपत्य जीवन का समष्टिगत योग-क्षेम करने के लिये ही इस संस्था का उदय हुआ है। मगर भारतीय विधायकों ने इस विशुद्ध सामाजिक कर्तव्य के पैरों में धर्म-नीति की मज़बूत बेड़ी डाल दी। पति-पत्नी का संबंध धर्म-नीति के उस मज़बूत धागे में बाँध दिया, जो कभी टूट ही नहीं सकता। और, इसमें भी नैतिक कमज़ोरी यह रख दी कि पुरुष यदि चाहे, तो इस धागे की उपेक्षा करके दूसरा विवाह भी कर सकता है, मगर स्त्री तो उसके जीते-जी या उसके मरने पर भी दूसरे विवाह की कल्पना नहीं कर सकती। इस अप्राकृतिक धार्मिक विधान से समाज में एक साथ दो बुराइयों का उदय हुआ। एक तो यह कि हमारे यहाँ का दांपत्य जीवन क्षीण और नष्टप्राय हो गया, और दूसरे, समाज में अनंत वैधव्य का उदय हो गया।

आज हमारे दांपत्य जीवन की क्या हालत है? माता-पिता अपने लड़कों और लड़कियों का संबंध विना उनकी अनुमति के, विना उनके स्वभाव का निरीक्षण किए, मनमाने ढंग से कर देते हैं। उसका परिणाम यह हो रहा है कि सैकड़ों महत्त्वाकांक्षी नवयुवक योग्य पत्नियों के अभाव और अयोग्य पत्नियों के संसर्ग से अपने जीवन को जेल के क़ैदियों की तरह बिता रहे हैं, उनकी महत्त्वाकांक्षाएँ नष्ट हो रही हैं, उनके आनंद का झरना सूख रहा है, उनकी शक्ति की आग बुझी जा रही है। उन्हें घर में सेविका नसीब हो जाती है, परिचारिका मिल जाती है, वासना-पूर्ति की मशीन प्राप्त हो जाती है, मगर वह आनंदमयी पत्नी, जिसकी कल्पना उन्होंने किसी सुंदर संध्या में मलाबार-हिल या अपोलो-बंदर पर बैठे-बैठे बनाई थी, उन्हें इस जीवन में कभी नसीब नहीं होती। यही कारण है कि हमारे देश में दांपत्य जीवन का पौदा सूखता चला जा रहा है।

और इसके स्थान पर वैधव्य का महाकाल-वृक्ष हरा-भरा हो रहा है। हमारे देश में लाखों ऐसी विधवाएँ हैं, जिनके पास हृदय है, जिनके पास सौंदर्य है, जिनके पास यौवन है, जिनके हृदय में आकांक्षाएँ हैं, उत्साह है, शक्तियाँ हैं, जिनका प्रेम का कटोरा लबालब भरा हुआ है, मगर धर्म के इस कल्पना-मूलक बंधन ने उनकी क्या स्थिति कर रक्खी है? उनकी आकांक्षाओं को कुचल दिया है, उनके उत्साह को नष्ट कर दिया है, उनकी शक्तियों को जर्जर कर दिया है। इस विधान की कृपा से वे अच्छी तरह खा नहीं सकतीं, पहन नहीं सकतीं, स्वतंत्र रूप से विचार नहीं सकतीं, समाज की सेवा नहीं कर सकतीं, शुभ कार्यों में सम्मिलित नहीं हो

सकतीं। प्रेम करने की तो कल्पना भी उनके लिये भयंकर है। उनकी आकांक्षाएँ अगर खिलती हैं, तो उनके स्वर्गस्थ पति घबराते हैं; वे स्वतंत्र विचार करती हैं, तो समाज का सदाचार नष्ट होता है; वे अगर सुख की कल्पना करती हैं, तो धर्म-विधान लज्जित होता है। इस प्रकार इस निष्ठुर धर्म-विधान की फ़र्ज़ी बलि-वेदी पर आज हमारी लाखों नारियों का जीवन बलिदान हो रहा है, और उनकी करुण आहों से सारा जगत् व्याप्त हो रहा है।

अछूतत्व—वैधव्य ही की तरह अछूतत्व का रोग भी विधान की इसी भूल से समाज में उत्पन्न हुआ। वास्तविकता तो यह है कि ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व या शूद्रत्व मा के पेट से कहीं भी उत्पन्न नहीं होता। मनुष्य को जिस प्रकार का वातावरण मिलता है, जिस प्रकार का कर्म उसे करना पड़ता है, उसी के अनुसार उसकी मनोवृत्तियाँ और उसके संस्कार बनते हैं। इसी प्रकार के संस्कारों की वजह से समाज में कोई उच्च कर्म करके ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है, कोई हीन कर्म के ज़रिए चंडाल हो जाता है। मगर यह सारी व्यवस्था एक प्रकार की सामाजिक सुविधा को ख़याल में रखकर दी जाती है। यह एक शुद्ध सामाजिक विधान है, और जिस समय चाहें, इसमें परिवर्तन किया जा सकता है। मगर इस सामाजिक विधान पर भी धार्मिकता का अड़ंगा लग जाने से यह भी अखंडनीय और अपरिवर्तनीय हो गया। इसी भयंकर भूल की वजह से इस विधान का संबंध कर्म से छूटकर जन्म से जा लगा, जिसका भयंकर परिणाम यह हुआ कि जो एक बार अपनी व्यक्तिगत दुर्बलता से नीच वर्ण में जा पड़ा, उसको और उसकी संतति को अनंत काल तक ऊपर उठने का मौक़ा नहीं मिल सकता, उसका संबंध मनुष्यता से टूट जाता है। इसी के भीषण परिणाम-स्वरूप आज हमारे यहाँ अछूतों की संख्या बढ़ते-बढ़ते सात करोड़ हो गई है। ये लोग इसी नृशंस विधान की वेदी पर मनुष्यत्व से जुदा कर दिए गए हैं। आर्य-शास्त्रों में भगवान् को 'पतित-पावन' की संज्ञा से संबोधित किया जाता है, मगर अब तो वह भी इनको पावन करने में असमर्थ हैं। हाँ, यदि इनका संसर्ग उनसे हो जाय, तो वह ज़रूर पतित हो जाते हैं। जब स्वयं पतित-पावन भगवान् इनके संसर्ग से पतित हो जाते हैं, तब फिर इनका उद्धार ही कौन कर सकता है?

इस प्रकार दो करोड़ विधवाएँ और सात करोड़ अछूत तो इस मनुष्यत्व-विहीन विधान की वेदी पर प्रत्यक्ष बलिदान हो रहे हैं। इनकी शक्तियों से तो हमारा समाज सोलहो आने वंचित है। अब शेष मानवीय शक्ति की क्या हालत है, यह देखना है।

संप्रदाय-भेद—धर्म-नीति के इस बेमेल मिक्श्चर ने केवल वैधव्य और अछूतत्व की सामाजिक बुराइयाँ पैदा करके ही दम नहीं लिया, इन बीमारियों के अतिरिक्त इस विधान ने सांप्रदायिकता की तीसरी भयंकर बीमारी को पैदा किया। उच्च कहे जाने-वाले हिंदू धर्म के पवित्र नाम पर हज़ारों संप्रदायों में विभक्त हो रहे हैं, और परस्पर में राग, द्वेष, कलह का बाज़ार गर्म हो रहा है। जाति-भेद और संप्रदाय-भेद इस समय हमारी राष्ट्रीय प्रगति और मनुष्यत्व-प्राप्ति के मार्ग में कितनी बाधा पहुँचा रहे हैं, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं।

मतलब यह कि संस्कृति-तत्व की इसी एक मौलिक भूल की वजह से हमारा समाज ग़ुलामी की भयंकर यंत्रणाओं में शताब्दियों से तड़पता चला आ रहा है। आज देश के इस आंदोलन में तथा हमारी स्वाधीनता के मार्ग में कौन-सी बात सबसे अधिक बाधक हो रही है? कहना होगा कि मंदिर बाधक हो रहे हैं, मसजिदें बाधक हो रही हैं, पंडित बाधक हो रहे हैं, मुल्ला और मौलवी बाधक हो रहे हैं, वैधव्य बाधक हो रहा है, अछूतत्व बाधक हो रहा है। अगर आज मंदिरों और मसजिदों के नेपथ्य से उठनेवाली आवाज़ हमारे हृदयों को कलुषित करना छोड़ दे, अगर ये पवित्र क्षेत्र बस्ती के कोलाहलमय क्षेत्र से हटाकर प्रकृति के सुरम्य क्षेत्रों में

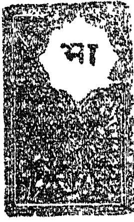
स्थापित किए जायँ, और अगर आज हिंदू और मुसलमान इस कठोर और संकीर्ण धर्म-नीति से तटस्थ हो अपनी सामाजिक और राजनीतिक उन्नति की तरफ़ लक्ष्य करने लगें, अगर आज हमारे देश से अछूतत्व, वैधव्य और संप्रदाय-भेद के नाम पर होनेवाले अत्याचारों का अंत हो जाय, तो क्या उस हालत में हमको अपनी स्वाधीनता के लक्ष्य पर पहुँचने में कुछ विलंब लग सकता है?

इससे हमारा इकतर्फ़ा फ़ायदा होगा, ऐसी बात नहीं। प्रत्युत धर्म-नीति के इन सांसारिक नीतियों से स्वाधीन हो जाने पर उसमें भी एक नैतिक तेज का प्रादुर्भाव होगा, और नई दुनिया के लोग जो इसे एक मादकता समझकर इसके ख़िलाफ़ बग़ावत का झंडा उठा रहे हैं, वे भी इसका समर्थन करने लग जायँगे। और, ये धर्म-स्थान, जो आज बस्तियों में होने के कारण कलह के केंद्र हो रहे हैं, यदि जंगल में चले जायँ, तो अपूर्व शांति के केंद्र हो जायँगे।

संसार में नवीन संस्कृति का उदय हो रहा है, प्राचीनता की तमाम कड़ियाँ, जो बहुत दिनों से मनुष्य को ग़ुलामी के बंधन में जकड़े हुए थीं, खटाखट टूट रही हैं। संसार में नवीन ज्ञान का प्रकाश चमक रहा है। ऐसी स्थिति में हमारे देश के संस्कृति-तत्व की कमज़ोरियाँ भी अवश्य नष्ट होंगी, और उनके स्थान पर नवीन और सुंदर विधानों की रचना भी होगी, जो सारी मानव-जाति की उन्नति में सहायक होंगे। हमें इसकी बहुत कुछ आशा है।

कालिंजर का क़िला

[श्रीयुत भगवतीप्रसादसिंह]



रतवर्ष के इतिहास में बुंदेलखंड के सुप्रसिद्ध और सुदृढ़ कालिंजर-नामक दुर्ग का स्थान सर्वोच्च श्रेणी में आता है। इतिहास का प्रत्येक विद्यार्थी इस क़िले से संबंध रखनेवाली घटनाओं के विषय में अवश्य कुछ-न-कुछ जानता है, किंतु खेद से कहना पड़ता है कि बहुत ही कम लोगों ने इस स्थान को देखा है। मेरा तो अनुमान है कि यदि कोई एक बार भी कालिंजर को देख ले, तो उसके हृदय-पटल पर अपने देश के पूर्व-गौरव का ऐसा सुंदर चित्र खिंच जायगा, जैसा कई उत्तेजक पुस्तकों को पढ़ने से भी न होगा। अन्य प्रांतवालों की तो कौन कहे, हमारे संयुक्त-प्रांत और विशेषकर प्रयाग के विद्यार्थीगण भी, इतने सन्निकट होने पर भी, कालिंजर तक जाने का कष्ट नहीं उठाते। यह स्थान अगम्य नहीं है, यहाँ के लिये सवारी इत्यादि बड़ी आसानी से मिल सकती हैं।

इलाहाबाद से एक गाड़ी चार बजे संध्या को झाँसी के लिये रवाना होती है। यह मानिकपुर, चित्रकूट होती हुई रात को साढ़े दस बजे अतर्रा-नामक स्टेशन पर पहुँचती है। स्टेशन से लगा हुआ अतर्रा का बाज़ार है, जो बुंदेलखंड की रियासतों के माल के लिये एक बड़ी मंडी है। यहाँ हर वक़्त बैलगाड़ियाँ मिलती हैं। अतर्रा से नरेनी जाना होता है। नरेनी यहाँ से नौ-दस मील है, और सड़क पक्की है। यदि साथ में दो-चार साथी हों, तो रात ही में नरेनी के लिये चल देना चाहिए, बैलगाड़ी तड़के ही वहाँ पहुँच जायगी। नरेनी में दो-तीन घंटे ठहरकर और स्नान, भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर कालिंजर के लिये रवाना हो जाना चाहिए। नरेनी से कालिंजर २२ मील है। सड़क पक्की तो नहीं, पर अच्छी है, और सफ़र आराम से ६ घंटे में तय हो जाता है। कालिंजर के क़िले के नीचे बस्ती है, जहाँ रात्रि को ठहरने के लिये पं० गजाधरप्रसाद दुबे के ठाकुरद्वारे में अच्छी तरह प्रबंध हो सकता है। पहुँचने के दिन यदि दोपहर ढल गई हो, और सफ़र की थकावट मालूम होती हो, तो उस दिन आराम ही करना चाहिए। कालिंजर का क़िला पहाड़ के ऊपर है, और वहाँ तक पहुँचने के लिये थोड़ी चढ़ाई पड़ती है। इसके अतिरिक्त क़िले के सब दर्शनीय स्थानों को देखने के लिये कम-से-कम सात-आठ घंटे चाहिए। इसलिये दूसरे रोज़ पूरा दिन क़िले के लिये रख लेना ठीक होगा। प्रातःकाल नित्यकर्मादि से निवृत्त हो कुछ भोजन और कोई पथ-प्रदर्शक साथ लेकर, सूर्योदय होते-होते, चल देना चाहिए। इस गाँव में बहुत-से लोग चार-छ आने में क़िला दिखा लाते हैं। हमारा गाइड रामस्वरूप वल्द जुगल चंदेल था।

कालिंजर का क़िला कब और किसने बनवाया, यह ज्ञात नहीं। विल्सन साहब का कहना है, इस स्थान का उल्लेख वेदों में एक तपस्या-स्थान नाम से आता है। महाभारत के तीर्थों में कालंजराद्रि और उसकी पवित्रता का वर्णन है। पद्मपुराण में यह पर्वत सुप्रसिद्ध नौ प्रधान तीर्थों में गिनाया गया है। यह पर्वत सदा से सुरक्षित और बड़े-बड़े ऋषियों-मुनियों की तपस्या का स्थान रहा है, और इसी कारण इसकी प्रसिद्धि हुई है। कालांतर में यह क़िले के रूप में परिणत होकर ईसा की ११वीं शताब्दी में बुंदेलखंड के चंदेल राजों के हाथ में पाया जाता है। इसके पूर्व इस दुर्ग का अस्तित्व कलचुरि राजों के समय में, ईसा की दूसरी शताब्दी में भी,

लेखों में मिलता है। सन् १०१६ ई० में महमूद ग़ज़नवी ने कालिंजर पर चढ़ाई की, लेकिन उसे हारकर वापस जाना पड़ा। उस समय यहाँ के राजा गंडदेव चंदेल थे। सन् १०२२ में महमूद ने फिर धावा किया, पर इस बार भी वह क़िला न ले सका। उसने राजा से सुलह कर ली। सन् १२०३ में कुतुबुद्दीन ऐबक ने चढ़ाई की। उस समय राजा परमाल थे। वह बड़े कमज़ोर थे, अतः उनके मंत्रियों ने उन्हें मार डाला, और शत्रु से मिल गए। उसी समय यह दुर्ग मुसलमानों के हाथ में आया। पर इतना होने पर भी मुसलमान लोग अपना क़ब्ज़ा न रख सके। लूट-मार बार-बार हुई, पर क़िला रहा हिंदुओं के हाथ में ही।

सन् १५३० ई० में शेरशाह सूर ने इस क़िले पर धावा बोला, पर वह भी बुरी तरह इस चढ़ाई में मारा गया। अकबर ने मेल-मिलाप द्वारा, सन् १५६६ में, यह क़िला रेवा के बघेलराज से ले लिया। तब से औरंगज़ेब के समय तक यह देहली की हुकूमत में रहा। क़रीब सवा सौ वर्ष के बाद सुप्रसिद्ध महाराज छत्रसाल ने इसे अपने हाथ में कर लिया। उन्होंने कुछ चौबे ब्राह्मणों को यहाँ का क़िलेदार मुक़र्रर करके यह दुर्ग उन्हें दे-सा डाला। क़रीब १०० वर्ष बाद इन लोगों से अँगरेज़ों से अनबन हो गई, और सन् १८१२ में अँगरेज़ों ने कालिंजरी पहाड़ी पर से इस पर गोले बरसाए, पर नतीजा कुछ न हुआ। तब उन्होंने चौबे लोगों से संधि कर ली, और उन्हें जागीरें देकर उनसे यह क़िला ले लिया। कुछ दिनों तक इस क़िले में अँगरेज़ों की पलटनें रहती थीं, पर सन् १८५७ ई० के विद्रोह के बाद इसके मार्के के स्थान ध्वंस कर दिए गए। अब यहाँ कोई नहीं रहता, यह जंगल पड़ा हुआ है।

कालिंजर का क़िला एक समतल पहाड़ी के ऊपर बना हुआ है, जो गाँव से ७०० फ़ीट ऊँची है। ऊपर के समतल भाग की परिधि क़रीब ५ मील लंबी है, और हर तरफ़ सुदृढ़ एवं चौड़ी दीवार से सुरक्षित है। यही पाँच मील की दीवार क़िले की अजेय चहार-दीवारी है। दीवार की बनावट आश्चर्य-जनक है, और उसके ऊपर दो बैलगाड़ियाँ एक साथ बड़े आराम से चल सकती हैं। आजकल ऐसी दीवार बनाने में कम-से-कम फ़ी मील एक करोड़ रुपए का ख़र्च है। अस्तु। अब हम लोग इस पाँच मील के घेरेवाले क़िले की ओर प्रस्थान करते हैं।

क़िले तक पहुँचने के लिये बीच में सात फाटक पड़ते हैं, जिनके नाम हैं आलम-दरवाज़ा, गणेश-दरवाज़ा, चंडी या चतुर्भुजी दरवाज़ा, बुद्धिभद्र-दरवाज़ा, हनुमान-दरवाज़ा, लाल दरवाज़ा और बड़ा दरवाज़ा। ये सातो द्वार एक-से-एक बढ़कर मज़बूत हैं, और प्रत्येक की बनावट में भिन्न-भिन्न प्रकार की गढ़-निर्माण-कला का परिचय मिलता है। कहीं-कहीं पर दुश्मन को धोखा देनेवाली 'मारें' बनी हैं। इनकी बनावट सीढ़ी या ऊपर जानेवाली पगडंडी-सी है। शत्रु यदि एक दरवाज़ा जीतकर आगे बढ़ता है, तो उसे दूसरे दरवाज़े तक पहुँचने के पूर्व ही एक छिपा, ऊपर जाने का मार्ग-सा मिलता है, और वह प्रसन्न होकर उसके द्वारा छिपकर ऊपर निकल जाना चाहता है। पर यह मार्ग ऐसे मार्के से बना हुआ है कि अगले दरवाज़े से इस पर मार या गोलियों की बौछार बहुत ही आसान है। नतीजा यह होता है कि शत्रु चुन-चुनकर शिकार बनते हैं। इन मारों के अतिरिक्त बड़ी-बड़ी बृहदाकार श्रमण और देवतों की मूर्तियाँ, छोटी-छोटी गुफाएँ और लेख मिलते हैं, जो प्रत्येक फाटक पर विद्यमान हैं। लेख यात्रियों अथवा निर्माणकारों द्वारा खोदे गए हैं। सबसे पुराना दरवाज़ेवाला लेख संवत् ११६६ का चंडी-दरवाज़े पर है।

सातवें फाटक पर हम ऊपरी समतल भूमि या क़िले पर पहुँच जाते हैं, और यहीं से दोनो ओर प्राचीर प्रारंभ होती है। नीचे के छ दरवाज़े प्राचीर के बाहर हैं, और पहाड़ी की चढ़ाई पर एक के बाद दूसरे हैं।

ऊपर पहुँचने पर हम इस प्राचीर की दीवार के ऊपर-ऊपर बाईं ओर चलते हैं। कुछ दूर पर दाहनी

ओर बहुत-से पुराने महलों के ध्वंसावशेष हैं। इनको देखने से मुसलमानों के आगमन-काल से लेकर अँगरेज़ों के आगमन-काल तक के प्रासादों का कुछ अनुमान हो सकता है। दरबार के भवन, स्त्रियों के निवास-स्थान, रक्षकों के रहने की जगह इत्यादि आज-कल से बहुत कुछ भिन्न थी।

आगे बढ़ने पर प्राचीर के नीचे की ओर 'पहाड़ में' अजंता या इलोरा के नमूने की एक कोठरी, चट्टान में पत्थर खोदकर, बनाई गई है। भीतर ताक़ बने हैं, और दीवार में एक कोचनुमा पत्थर की चौकी बनी है। इस पर अनेक शिला-लेख हैं, जो यहाँ पर रहनेवाले साधुओं के हैं। संवत् १६०० तक के लेख मिलते हैं। मालूम होता है, पहाड़ काटकर बनाई हुई इस कोठरी के द्वार पर काठ का दरवाज़ा लगता था, जो भीतर से काठ के ब्योंड़े (डंडे) द्वारा बंद होता था। यह स्थान दर्शनीय है। इसको सीता-सेज या राम-शय्या कहते हैं। इस कोठरी के बाएँ तरफ़ एक चट्टान के नीचे भद्दी तौर से खुदी हुई मूर्तियाँ हैं।

सीता-सेज के बग़ल ही में, तीन-चार सीढ़ी नीचे उतरकर, चट्टानों से निकले हुए जल का एक छोटा-सा कुंड है, जिसे सीता-कुंड कहते हैं। इसकी बनावट प्राकृतिक है, और इसके ऊपर एक चट्टान की छाया है। सीढ़ियों पर ऊपर बहँगी लिए हुए एक श्रमण की मूर्ति खुदी हुई है, जिस पर संवत् १६४० का एक लेख है।

इसके बाद दीवार का कुछ भाग टूटा होने के कारण ऊपर चढ़कर फिर दूसरी ओर दीवार पर उतरना पड़ता है। दीवार पर पहुँचते ही पाताल-गंगा-नामक विचित्र सुरंग-रूपी कूप मिलता है। यह पत्थर में कटी हुई एक चक्करदार सुरंग है, जो ४० या ५० फ़ीट नीचे तक गई है। रास्ते में सीढ़ियाँ बनी हैं, और नीचे स्वच्छ जल मिलता है। जल में बाहर से कुछ प्रकाश-सा दिखलाई पड़ता है, पर यह प्रकाश का स्थान बाहर ढूँढ़ने पर नहीं मिलता। इस सुरंग के बीच में एक स्थान खुला है, और वहाँ से बग़ल में एक बैठने का स्थान मिलता है। यहाँ पर एक लेख संवत् १५४० का है। नीचे चलकर फिर एक जगह लेख मिलते हैं, जिनमें एक ९३६ हिजरी का है, और उसके पास बादशाह हुमायूँ का नाम लिखा है। इतिहासकारों के अनुसार उस समय कालिंजर का क़िला हुमायूँ के हाथ में था।

पाताल-गंगा देखकर फिर उसी प्राचीर की दीवार के सहारे आगे बढ़ने पर पांडु-कुंड मिलता है। यह एक छोटी-सी गुफा के अंदर अत्यंत शांत और शीतल स्थान है। कुंड क़रीब ४ गज़ लंबा है, और इसका जल एक पहाड़ी सोते से आता है। कुंड से बहकर जल पहाड़ी के नीचे कल-कल नाद करता हुआ गिरता है।

इसके आगे प्राचीर फिर टूटी हुई है। यह अँगरेज़ों की लड़ाई का स्मारक है। इसके सामने कालिंजरी-नामक पहाड़ी पर से ब्रिटिश सेना ने कालिंजर पर गोले बरसाए थे, पर फिर भी इस मार्ग से उसका प्रवेश न हो सका था। जो काम इन प्रचंड गोलों की वर्षा से न हो सका, वह राजनीति के अनुक्रमण द्वारा सरलता से हो गया, और क़िला चौबे लोगों के हाथ से (जो उस समय क़िलेदार की हैसियत से मालिक थे) सन् १८११ ईस्वी में अँगरेज़ों के हस्तगत हो गया।

इसके आगे 'बुढ़िया का तालाब'-नामक एक पक्का लंबा-सा तालाब है, जिसमें चारो ओर सीढ़ियाँ बनी हैं। कहा जाता है, यह तालाब विक्रम की बारहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में बना था। इस तालाब के इर्द-गिर्द पुरानी इमारतों के ध्वंसावशेष विद्यमान हैं।

कुछ दूर चलकर प्राचीर की दीवार फिर गिरी हुई मिलती है, और गिरे हुए पत्थरों में से होकर एक रास्ता नीचे की ओर बग़ल में जाता है। इस रास्ते पर जाने से सिद्ध की गुफा-नामक एक बड़ा-सा ताक़ खड़ी चट्टान में बना है, जहाँ किसी समय महात्मा लोग तपस्या करते रहे होंगे। इसी के पास भगवान्-सेज-नामक सीता-सेज-कोठरी के नमूने की कोचनुमा पत्थर की चौकी है, और पानी की अमन-नामक

एक तंग गुफा है। यह गुफा इतनी तंग है कि घुटने के बल होकर अंदर जाना हो सकता है। यह स्थान भी तपस्या का है। इस प्रकार की एक छोटी गुफा झाँसी-स्टेशन के पास एक पहाड़ी पर है, और ऐसी ही विचित्र गुफाओं का कुछ वर्णन मैडम ब्लेवाट्स्की (मिसेज़ एनीबेसेंट की गुरु और थियॉसॉफ़िकल सोसाइटी की संस्थापिका)-कृत पुस्तक Through Jungles and caves of Hindustan में मिलता है। इन स्थानों को देखकर फिर ऊपर लौट आना चाहिए।

आगे पन्ना-दरवाज़ा मिलता है, जो अब चुनवा दिया गया है। किसी समय इस मार्ग से बड़ी-बड़ी सवारियाँ निकली होंगी, और बड़े-बड़े लोग आए-गए होंगे। पर काल की कुटिल गति है, और संसार परिवर्तनशील है।

इस फाटक के पास ही नीचे की ओर एक पगडंडी जाती है, जिससे भैरव-कुंड और मांडूक्य भैरव जाना होता है। ये स्थान पास ही हैं, पर रास्ता विकट है। लेकिन क़िले की दर्शनीय वस्तुओं में मुझे वह विशालकाय भैरव की नग्न तांडव (संहारकारिणी) मूर्ति एक अत्यंत आश्चर्य-जनक चीज़ मालूम हुई। लोग कहते हैं, यहाँ पर कभी-कभी भव्यकाय जटाधारी साधुओं के दर्शन होते हैं, जिन्हें देखकर चित्त में भय का संचार होता है, और जिन्हें लोग भूत समझते हैं। यह भी कहते हैं कि भैरवजी के स्थान को अप्राप्य रखने के लिये मधु-मक्खियों और रीछों का पहरा रहता है। पर भैरवनाथ की कृपा से हम लोग वहाँ बड़े आनंद से पहुँच गए थे। अस्तु। यह स्थान अवश्य देखना चाहिए।

भैरव-कुंड के ऊपर खड़ी चट्टान में आठ-दस फ़ीट ऊँची भैरवजी की नग्न मूर्ति है। इनके पैर के पास एक छोटा-सा उभरा हुआ चबूतरा है। भैरवजी मुंड-माला धारण किए हैं, और उनके अनेक हाथों में विविध प्रकार के शस्त्र इत्यादि हैं। उनके सामने एक ताक़ में मनुष्याकार एक भैरवी की मूर्ति है। मूर्ति शायद नग्न है, पर वहाँ तक पहुँचने के लिये भैरवजी के चबूतरे पर चढ़ना पड़ता है, और ऐसा करने की यहाँ हिम्मत नहीं पड़ती। भैरवी की मूर्ति अत्यंत मनोहर है। भैरवजी के नीचे अनेकानेक लेख संवत् ११६४ से लेकर संवत् १६०० तक के खुदे हुए हैं।

मांडूक्य भैरव से लौटकर आगे बढ़ने पर मृगधारा-नामक सोता मिलता है, जहाँ पत्थर के मृगों के मुखों से जल बहता है। मालूम होता है, यह जल बगल-वाले कोटितीर्थ से आता है। यह कोटितीर्थ एक बहुत बड़ा तालाब है, जिसमें स्थान-स्थान पर सीढ़ियाँ बनी हैं। पास में मंदिर और ठहरने के स्थान भी हैं। कहा जाता है, यह मंदिर महाराज छत्रसाल ने बनवाया था। इसी स्थान के पास राजा अमानसिंह पन्नावाले का महल भी है।

यहाँ पर एक क़ब्र अँगरेज़ी ढंग की बनी है, जिसमें सन् १८१८ के बुंदेलखंड के कलेक्टर मिस्टर वाचोप गड़े हैं। क़ब्र के पास ही एक डाक-बँगला बना है, जिसमें ज़िले के अफ़सर इत्यादि ठहरते हैं।

यहाँ से आगे बढ़ने पर अनेक टूटे-फूटे मंदिरों और बैठकों के अवशेष मिलते हैं, और उनके बाद क़िले का सर्वप्रसिद्ध स्थान श्रीनीलकंठेश्वर का मंदिर आता है। यह मंदिर नीचे की ओर बना है, और रास्ते में बराबर सीढ़ियाँ बनी हैं। कहा जाता है, जब यह मंदिर बना था, तब सात खंड का था, और अब केवल एक ही खंड बचा है। मंदिर अवश्य बहुत बड़ा रहा होगा। उसके पास पलटन इत्यादि का सब स्थान बना है। मंदिर की बना-वट प्राचीन ढंग की है, और अंदर परिक्रमा के लिये मंदिर के भीतर-ही-भीतर चारो ओर सुरंग गई है। शिवजी की लिंगाकार मूर्ति में मुखाकार भी बना है। भीतर देवी इत्यादि की मूर्तियाँ भी हैं। द्वार पर संगमूसा पत्थर की एक बड़ी-सी शिला पर, संवत् १२१८ का, राजा परमाल का एक बड़ा-सा लेख संस्कृत-भाषा में है। इस लेख में राजा की

विजय और कीर्ति का बड़ा लंबा-चौड़ा वर्णन है। यह राजा परमाल सुप्रसिद्ध महोबेवाले, पृथ्वीराज तथा जयचंद के समकालीन और आल्हा-ऊदल के आश्रयदाता थे। इस शिला-लेख के वर्ष-दो वर्ष बाद ही कुतुबुद्दीन ऐबक ने कालिंजर पर क़ब्ज़ा कर लिया था।

शिला-लेख के पास मनुष्य के पूर्ण आकार की गोरखनाथ की मूर्ति रक्खी है, जिसका सिर मुसलमानों द्वारा तोड़ डाला गया है। पास ही टूटे खंभों में कुछ अश्लील, तांत्रिक आसन-मूर्तियाँ हैं।

मंदिर के नीचे भैरवजी की क़रीब ३० फ़ीट ऊँची मूर्ति बनी है, जिसका कुछ अंश पानी में है। दूसरी ओर स्वर्गारोहण-नामक कुंड है। यह एक बड़ी-सी प्रकृति-निर्मित बावली है। ऊपर चट्टान की छत है, जिसमें खंभे खुदे हुए हैं। स्नान की सुविधा है, क्योंकि जल का प्राचुर्य है। कार्तिक-सुदी पूर्णिमा और मकर-संक्रांति को स्वर्गारोहण और नीलकंठ का बड़ा मेला होता है, जिसमें पाँच-छ हज़ार यात्री आते हैं।

नीलकंठ के बाद कोई विशेष दर्शनीय स्थान नहीं है। लौटने के समय खंभोर-नामक स्थान से तीसरे दरवाज़े के पास नीचे आ सकते हैं। दिन-भर की थकावट के बाद रात्रि को विश्राम कीजिए, और प्रातः-काल नरेनी के लिये रवाना हो जाइए। संध्या तक अतर्रा पहुँच जायँगे, और वहाँ से रात को साढ़े सात बजे की गाड़ी से चलकर दूसरे दिन साढ़े सात बजे सबेरे इलाहाबाद पहुँच जाइए। इस प्रकार तीन दिन में यह यात्रा अच्छी तरह हो सकती है। यदि अवकाश हो, तो रास्ते में चित्रकूट भी अवश्य देखना चाहिए। बड़ा रमणीक और शांतिदायी स्थान है। वहाँ के लिये कम-से-कम दो-तीन दिन रखने चाहिए।

नीति के दोहे❀

[श्रीप० शिवरत्न शुक्ल 'सिरस']

(१)

तीव्र-मंद बनि जात बुध काल-चाल को पाय ;
तपत न रवि लखि हिम शिशिर, ग्रीषम देत गलाय।

(२)

कठिन-हृदय जन जे जगत, दुख पावत ते भूरि ;
सड़क परत काँकर उपल ह्वै जाते पिस धूरि।

(३)

शांति करत शीतल हृदय, क्रोध देत तिहि जार ;
मंद पवन सुख देत तरु, आँधी फारत डार।

❀ अप्रकाशित 'नीति-सतसई' से।

विश्व-कवि-समाज में गोस्वामी तुलसीदास का स्थान

[श्रीयुत व्योहार राजेंद्रसिंह]



तुलसीदास अपने से पहले तथा बाद में होनेवाले कवियों के बीच में खड़े हुए हैं।

कहा जाता है, कवि अपने पूर्व-वर्तमान कवियों का फल-स्वरूप होता है। गुसाईंजी अपने पहले के कवियों का आधार लेकर उनसे बहुत आगे बढ़ गए। प्राचीन कवियों में जो अच्छी बातें थीं, वे अधिकांश में उनमें पाई जाती हैं। उन कवियों की अच्छी बातें लेकर उनमें जो त्रुटियाँ थीं, उनकी पूर्ति गुसाईंजी ने की। प्राचीन आदर्श में नवीनता उत्पन्न कर आज के कवियों के लिये नया आदर्श उपस्थित किया। प्राचीन कवियों की बराबरी में अच्छी तरह से खड़े हो सकते हैं, बल्कि अनेकों से तो वह आगे निकल जाते हैं।

प्राचीन कवियों का आधार गुसाईंजी ने बहुत लिया है। उनके ग्रंथों में वेद-उपनिषदों से लेकर पंडितराज तक के ग्रंथों की छाया पाई जाती है। धार्मिक बातों के लिये उन्होंने वेद, उपनिषद् और पुराण तथा षट्शास्त्रों का आश्रय लिया। कथाओं के लिये पुराण, महाभारत और रामायण आदि का आधार लिया। रामचरित्र के लिये महारामायण, वाल्मीकीय रामायण, भुशुंडि-रामायण, अध्यात्म-रामायण, प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक से कथाएँ और भाव तथा जगन्नाथ, भर्तृहरि और हितोपदेशकार आदि से नीति के भाव लिए। फुटकर भाव कालिदास, भवभूति, पंडितराज तथा अन्य कवियों से लेकर, अपने एक ही ग्रंथ में, प्राचीन भारतीय साहित्य में जो कुछ भी अच्छा था, वह सब रख दिया। प्राचीन कवियों के विचारों और भावों को उन्होंने अपने ग्रंथों में लेकर उनमें से जो बातें तथ्योपयोगी जँचीं, उन्हीं पर अधिक ज़ोर दिया। इनकी भाव-संकलन-शक्ति अनुपम थी। दूसरे के भावों पर यह तुलसीदासत्व की छाप बड़ी योग्यता के साथ लगाते थे। इन सब बातों से गुसाईंजी का अद्वितीय विद्वान् होना सिद्ध होता है।

उपनिषदों और ऋषियों के समान तुलसीदास के काव्य भी सूत्र रूप से गागर में सागर भर देते हैं। बहुत-से वचनों और उपनिषद्-वाक्यों में बिलकुल भेद ही नहीं मालूम होगा। पुराणों के सब लक्षण भी मानस में पाए जाते हैं। भागवत, विष्णुपुराण, शिवपुराण आदि के बहुत-से वाक्य ज्यों-के-त्यों पाए जाते हैं। गीता का भी बहुत आधार मिलता है। उपर्युक्त रामायणों की जो बातें उन्हें अच्छी लगीं, वे ले लीं, बाक़ी छोड़ दीं। किसी को विस्तार-रूप से कहा, किसी को संक्षेप में। शेष ग्रंथों में फुटकर वचनों का अनुवाद या आधार पाया

जाता है । भ्रमर के समान सबमें से सार ग्रहण कर उन सबसे बढ़कर एक अद्वितीय मधु तैयार कर देना तुलसी-भ्रमर का ही काम था।

सूत्र लिखने में तुलसी उपनिषदों और दर्शन-शास्त्रों की बराबरी करते हैं । प्राचीन इतिहास और कथाओं में वह पुराण, महाभारत और रामायणों से होड़ लगाते तथा राम-चरित को सर्वांग-पूर्ण करने में पूर्व की रामायणों तक से आगे बढ़ जाते हैं। धार्मिक सिद्धांतों के सामंजस्य और एकता में गीता की बराबरी करते हैं, नीति-शास्त्र में भर्तृहरि आदि से समानता करते हैं। इस प्रकार ब्रह्मज्ञान के लिये मानस हमारे लिये वेद, उपनिषद् और दर्शनों के समान है, इतिहास और पुरावृत्त में महाभारत के समान है, कथाओं की दृष्टि से पुराणों के समान है, नीति की दृष्टि से नीति-शास्त्र है, तथा राम-चरित के लिये तो सब रामायणों से श्रेष्ठ ही है।

उनकी काव्य-रूप में नाटकों के समान रचना प्राचीन नाट्यकारों के समान है, तथा काव्य प्राचीन महाकवियों की तुलना में किसी प्रकार कम नहीं ।

वाल्मीकि और व्यास के समान उनका काव्य सरलता और सरसता में अद्वितीय है । कालिदास और भारवि आदि के नाटकों के समान नाट्य-कला भी उसमें कम नहीं । उनकी कल्पना और प्रतिभा नैषध की याद दिलाती है । उनके लंबे-लंबे समास कभी-कभी बाण का स्मरण दिलाते हैं, तथा प्रचुर शब्द-संपत्ति माघ को सामने लाती है । उपमाओं में वह कालिदास की बराबरी करते हैं, किंतु रूपकों में उनसे भी बढ़ जाते हैं। अर्थ-गौरव में भारवि से भी आगे निकल जाते हैं । पद-लालित्य में दंडी से भी आगे बढ़े हुए नज़र आते तथा तीनो गुणों की एकता में माघ की समता करते हैं । कालिदास के समान वह केवल कवित्व-प्रदर्शन को अपना उद्देश्य नहीं समझते, न शृंगार को अपना आराध्य विषय मानते हैं। हाँ, बाहरी प्रकृति के परिज्ञान में वह कालिदास की बराबरी नहीं कर पाते । किंतु मानवी प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण में उनसे भी अधिक बारीकी दिखलाते हैं । भवभूति के समान वह उच्च आदर्श तो बतलाते हैं, और उपमाएँ भी उन्हीं के समान देते हैं, किंतु उनके समान काव्याडंबर के वन में भावों को लुप्त नहीं हो जाने देते ।

अँगरेज़ी-कवियों में वह मिल्टन के समान धर्म और अधर्म का युद्ध कराते हैं । शेक्सपियर के समान भिन्न-भिन्न गुण-स्वभावों के चरित्रों की अवतारणा करते और अपना चरित्र-चित्रण-कौशल दिखलाते हैं ।

किंतु उनसे भी ऊँचे आदर्श चरित्र का चित्रण भी करते हैं । शेक्सपियर के समान वह अपना आदर्श नहीं भूल जाते और न अपने व्यक्तित्व को ही छिपाए रहते हैं। महाकवि वर्ड्सवर्थ के समान वह प्रकृति-प्रेमी हैं ।

हिंदी-कवियों में तो गुसाईंजी अद्वितीय ही हैं। वीर-गाथा गानेवाले प्राचीन कवियों से तो वह हर तरह श्रेष्ठ हैं ही, राज-प्रशस्ति कहनेवाले चारण या भाट कवियों से भी आगे निकल गए हैं । प्रेम-कथा की उच्चता में भी जायसी आदि मुसलमान कवियों से बहुत आगे हैं, और भक्त कवियों में तो वह अग्रगण्य ही हैं । वीर कवियों

में वह चंदबरदाई, और भूषण की कविता की बराबरी करते हैं । राजदरबार के कवियों की प्रशस्तियाँ उनकी 'उमरदराज राव राज, रावरी चहत हों' के सामने फीकी जान पड़ती हैं । उनके उच्च आदर्श तथा भाषा की प्रौढ़ता के सामने जायसी वग़ैरा नहीं ठहर सकते । भक्त कवियों की लंबी समाज में केवल महाकवि सूरदास प्रतिभा, कल्पना और हृदय-ग्राहिता में गुसाईंजी की बराबरी कर सकते हैं, किंतु भावों की उच्चता, विषयों की विभिन्नता तथा भाषा के सर्वांगीण सौंदर्य में वह भी पीछे छूट जाते हैं । वह भी शृंगार को बहुत अधिक आश्रय देने के कारण कविता की पवित्रता में गुसाईंजी की बराबरी नहीं कर सकते । वीर-रस तथा प्रौढ़ कविता में केशवदास बराबरी करते हैं, पर चरित्र-चित्रण आदि में वह भी समता नहीं कर सकते । शृंगारी कवियों में देव भाषा की प्रांजलता आदि बातों में गुसाईंजी की समता करने के लिये आगे बढ़ते हैं, किंतु काव्य की पवित्रता आदि अन्य बातों में वह भी पीछे रह जाते हैं । उक्ति-वैचित्र्य में कभी-कभी बिहारी होड़ लगाते हैं । इन सब शृंगारी कवियों के काव्य गुसाईंजी की पवित्रता के सामने फीके पड़ जाते हैं । 'सूर सूर, तुलसी शशी'-वाला दोहा बहुत काल से प्रचलित है, किंतु यह शायद शब्दों की समानता ही के कारण कहा गया है । न-जाने किसने तुलसीदास को गंग कवि की बराबरी में रख दिया है, जिनका नाम भी उनके साथ लेना अनुचित जान पड़ता है ।

तुलसीदास के बाद आज तक हिंदी में कोई कवि ऐसा नहीं हुआ, जिसका नाम उनके साथ लिया जा सके । इस प्रकार हिंदी-कवियों में गुसाईंजी अपनी समता के एक ही नजर आते हैं । भिन्न-भिन्न कवियों ने अलग-अलग प्रकार की कविता की है, और अच्छी की है, किंतु चरित्र-चित्रण, कल्पना-शक्ति, भक्ति, भाषा, उक्ति-वैचित्र्य और सरलता आदि सब विषयों में इनके सामने कोई भी कवि खड़ा नहीं हो सकता । यदि गुसाईंजी न होते, तो हिंदी-साहित्य अपूर्ण रह जाता, और इनके होने से आज वह सर्वांग-संपन्न हो गया है । इनके होते हम और किसी की आवश्यकता नहीं समझते । एक अकेले इन्हीं को लेकर हम विश्व-कवि-समाज में अभिमान के साथ खड़े हो सकते हैं ।

जैसे गुसाईंजी पर उनके पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव पड़ा था, उससे भी अधिक परवर्ती कवियों पर उनका प्रभाव पड़ा । उनके अनुकरण पर अनेकों रामायणें बन गईं, किंतु उनकी रामायण को एक भी न पा सकी ।

धनुर्वेद

[श्रीयुत विश्वेश्वर रिसर्च स्कालर]



ओरपीय विद्वानों के दृष्टि-कोण से इतिहास में आज की बीसवीं सदी का पर्व सबसे उज्ज्वल पर्व है, और आधुनिक युग शिक्षा और सभ्यता का ऊँचे-से-ऊँचा युग है, क्योंकि उसने विज्ञान को अपनाया है। आए दिन संसार में नित्य नए-नए आविष्कार होते जा रहे हैं, जिनकी गणना कर सकना भी कठिन है। तोप और बंदूकों के आविष्कार बहुत पुराने हो चुके हैं। अब इस युग में वे शायद अपने जीवन की घड़ियाँ गिन रहे हैं। वह दिन दूर नहीं, जब तोप और बंदूकों को पेंशन देकर उनकी जगह बिजली और घातक गैसों के नए आविष्कारों की भर्ती की जायगी। फिर भला इस सभ्यता के युग में हमारे धनुष-बाणों को कौन पूछता है! योरप और अमेरिका के युद्ध-क्षेत्रों में उनके लिये स्थान नहीं, वे जंगली और हबशी लोगों के औज़ार हैं। जिन दिनों मि० डार्विन के बंदरों की पूँछ घिसकर मनुष्य की उत्पत्ति हुई थी, और मानवीय जीवन का बिलकुल प्रारंभिक युग था, उस समय मनुष्य ने इन धनुष-बाणों का आविष्कार किया था। यह भाव है हमारे योरपीय स्कालरों का। यद्यपि यह ठीक है कि आधुनिक युग की तोप, बंदूक और गैस के मुक़ाबले धनुष-बाणों का रखना कुछ अयुक्त-सा प्रतीत होता है (और यह प्रतिद्वंद्विता देखकर तो हँसी आ जाती है), मगर हमारा विश्वास है कि जो काम योरप तोप, बंदूकों और गैसों से कर सकता है, वह सब-का-सब भारतीय इन्हीं धनुष-बाणों द्वारा कर सकते थे। उनके अग्न्यस्त्र, वायव्यास्त्र, मेघास्त्र, वरुणास्त्र, ब्रह्मशिरास्त्र, पाशुपतास्त्र निस्संदेह दैवीशक्ति-संपन्न थे, जिनका मुक़ाबला आधुनिक वैज्ञानिक नहीं कर सकते। इसके सिवा भारत के उस भग्नावशेष साहित्य के आधार पर, जो मुसलमान बादशाहों के हम्मामों की राख में दबा-दबा बचा रहा है, हम कह सकते हैं कि प्राचीन भारत के युद्ध-क्षेत्र भी इन तोप और बंदूकों से बिलकुल ख़ाली न थे। शुक्र-नीति ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में इन अस्त्रों का उल्लेख किया है। बंदूक़ के लिये शुक्राचार्य लिखते हैं—

मूलाग्रयोर्लक्ष्यभेदि तिलबिन्दुयुतं सदा;
यंत्राघाताग्निकृद्‌द्रावचूर्णमूलककर्णकम्।
सुकाष्ठोपांगबुध्नञ्च मध्यांगुलबिलान्तरम्;
स्वान्तेऽग्निचूर्णसन्धात्री शलाकासंयुतं दृढम्।
लघुनालिकमप्येतत् प्रधार्यं पत्तिसादिभिः;

अर्थात् पदाति (पैदल) सेना और सादी-नामक सवारों के हाथ में लघुनालिक (बंदूक़) होनी चाहिए। कैसी बंदूक़? जिसके मूल और अग्र भाग में (नली पर) लक्ष्य-भेदि तिल-बिंदु हो (जैसे आजकल बंदूकों की नली पर मक्खी लगी रहती है), और जो यंत्राघाताग्नि-कृत हो, अर्थात् यंत्र जो घोड़ा, उसके दबाने से जो आघात, उससे जिसमें अग्नि पैदा हो जाय, और द्रावचूर्ण (बारूद) वही है मूल अर्थात् चलाने का हेतु जिसका, ऐसी कर्णक (गोली) से युक्त और जिसकी शलाका (नली) स्वांतेऽग्निचूर्णसंधात्री हो, अर्थात् जिसके भीतर बारूद अच्छी तरह रक्खी जा सके, और जिसकी नली मध्यांगुलबिलांतरम् हो, ऐसी बंदूक़ पत्ती और सादियों को धारण करना चाहिए। उसके आगे बंदूक़ की गोली और बारूद बनाने की विधि लिखते हैं—"सीसस्य लघुनाल्यर्थे" गोलियाँ सीसे की होनी चाहिए। इसी प्रकार आगे

तोप और उसके चलाने आदि का वर्णन शुक्राचार्य ने बड़े स्पष्ट शब्दों में किया है, जिससे हम बड़ी सरलता के साथ इस परिणाम पर पहुँच सकते हैं कि भारत के प्राचीन वैज्ञानिक भी शतघ्नी (तोप) और भुशुंडी (बंदूक़) बना सकते थे। इसीलिये महर्षि दयानंद ने भी इस बात को स्वीकार किया है, और ज़ोरदार शब्दों में भारतीय विज्ञान एवं शिल्प की स्तुति की है। यह सब कुछ है, प्राचीन आर्य सब कुछ जानते थे, मगर करते नहीं थे, क्यों? इसलिये कि वे इसे अधर्म समझते थे। पूर्व और पश्चिम की प्रवृत्ति में ३६ के ३ और ६ का संबंध है। पूर्व जिस बात को घृणित दृष्टि से देखता था, पश्चिम उसी को अपना आदर्श मानता है। यह केवल उसकी पाशवीय प्रवृत्तियों का प्रभाव है। भारतवर्ष में भी युद्ध होते थे। दोनो पक्ष अपनी-अपनी विजय का ख़याल रखते थे। वे अपने सिद्धांत की रक्षा के लिये हँसते-हँसते अपने प्राणों की बाज़ी लगा देते थे, मगर उसकी जड़ में भी वह भाव काम करता रहता था, जो भारत की मौरूसी जायदाद है, और जिसकी आवाज़ उसके दरो-दीवार से आ रही है, इसीलिये दिन-भर युद्ध-क्षेत्र में चचा और भतीजे जानी दुश्मन की तरह एक दूसरे से लड़कर रात को एक साथ बैठकर भोजन कर सकते थे *, इसीलिये निष्पक्ष योरपीय विद्वानों ने भी मुक्त कंठ से भारतीय युद्ध-नियमों की प्रशंसा की है।

यही भारतीय प्रवृत्ति थी, जिसने उन्हें इन पाशवीय युद्ध-प्रथाओं से अलग कर रक्खा था, और वे सब इन प्रयोगों को जानते हुए भी यथासंभव उनसे दूर रहते थे। धनुर्युद्ध में भी दिव्यास्त्रों का प्रयोग ज़्यादा अच्छा नहीं समझा जाता था, नहीं तो अर्जुन एक पाशुपतास्त्र से सारा काम तमाम कर सकते थे, और भगवान् कृष्ण ज़रा-सी देर में सुदर्शन-चक्र से सारी कौरव-सेना का संहार कर सकते थे, मगर नहीं। इस भीषण नर-हत्या से उनका हृदय काँप उठता था, वे जानते थे कि इस भीषण नर-हत्या का पाप अपने सिर लेने से कोई भी फ़ायदा नहीं। यदि हम किसी तरह शत्रु-समाज को कम-से-कम हानि पहुँचाकर अपने सिद्धांत पर जा सकते हों*। मगर इस समय लोगों की प्रवृत्ति कुछ और ही होती जा रही है, उनकी शारीरिक शक्ति बहुत कुछ क्षीण हो चुकी है। वे बहुत अंशों तक भोगी-विलासी और क्षीणजीवी होते जा रहे हैं, इसीलिये साहस और बाहु-बल की जगह कौशल और श्रमलाघव से काम निकालने की आयोजना करते रहते हैं। इसीलिये संसार में नित्य नए-नए यंत्रों और गैसों के आविष्कार होते चले जा रहे हैं।

इधर भारतवर्ष अपने स्थान से बहुत पीछे हट चुका है। इस समय इसके पास न तो वह शक्ति है, और न वह कला-कौशल। फिर भला उसके धनुष-बाण किस भरोसे पर तोप और बंदूक़ों के मुक़ाबले में खड़े हों। इसीलिये इस विज्ञान के युग में इस धनुर्विद्या का मान पाना असंभव-सा प्रतीत होता है। फिर भी हम अपने पाठकों से उसके जीवित और जाग्रत् रखने का उद्योग करने की अपील करते हैं, और वह केवल आर्य-संस्कृति की रक्षा के नाम पर।

यह सूर्य के प्रकाश की भाँति निश्चित है कि आधुनिक युग और इस बीसवीं शताब्दी के विस्तृत क्षेत्र में हमारे इन धनुष-बाणों, उस धनुर्विद्या को स्थान नहीं, मगर उसके साथ ही यह भी निश्चित और अमिट सचाई है कि आज से कुछ दिन पहले अर्थात् १७वीं शताब्दी तक न केवल भारत में ही, बल्कि संसार के हरएक देश और जाति के भीतर इस विद्या ने सम्मान पाया था (हम अपने इस कथन की पुष्टि में संसार के इतिहास की ज़ोरदार साक्षी देकर अगले किसी परिच्छेद में विचार करेंगे), मगर

* पृथ्वीराज और सूरजमल (चित्तौर)

* इसीलिये भगवान् मनु ने लिखा है—

मदयंत्राणि वर्जयेत्। मनुः

किञ्च—

न कूटैरायुधैर्हन्यात् युद्ध्यमानो रणे रिपून्;
न कर्णिभिर्नापि जपैर्नाग्निज्वलिततेजनैः।

यहाँ हम पहले मधुसूदन स्वामी की पंक्तियों को अक्षरशः उद्धृत किए देते हैं, उसके बाद उसका भावार्थ भी। उन्होंने लिखा है—

तत्र प्रथमो दीक्षापादः द्वितीयः संग्रहपादः तृतीयः सिद्धिपादः चतुर्थः प्रयोगपादः।

तत्र प्रथमे पादे धनुर्लक्षणमधिकारिनिरूपणञ्च कृतम्। तत्र धनुःशब्दश्चापे रूढोऽपि चतुर्विधायुध-वाचको वर्तते। तच्चतुर्विधम् आयुधम्—

(१) मुक्तम् (२) अमुक्तम् (३) मुक्तामुक्तम् (४) यन्त्रमुक्तञ्च। अमुक्तं खड्गादिः मुक्तं चक्रादिः मुक्तामुक्तम् शल्यावान्तरभेदादिः यन्त्रमुक्तम् शरादिः।

तत्र मुक्तमस्त्रमुच्यते अमुक्तं शस्त्रमित्युच्यते। तदपि ब्राह्मवैष्णवपाशुपतप्राजापत्याग्नेयादिभेदादनेक-विधम्। एवं साधिदैवतेषु समग्रेषु चतुर्विधायुधेषु येषामधिकारः क्षत्रियकुमाराणां तदनुयायिनाञ्च ते सर्वे चतुर्विधाः—पदातिरथतुरगगजारूढाः।

एवं दीक्षाभिषेकशाकुनमङ्गलकरणादिकञ्च सर्वमपि प्रथमे पादे निरूपितम्।

सर्वेषामस्त्रशस्त्रविशेषाणां आचार्यस्य लक्षणपूर्वकं संग्रहणं संग्रहपादे द्वितीये दर्शितम्।

गुरुसम्प्रदायसिद्धानां शस्त्रास्त्रविशेषाणां पुनः पुनरभ्यासो मन्त्रदेवतासिद्धिकरणादिकं तृतीये पादे। एवं देवतार्चनाभ्यासादिभिः सिद्धानामस्त्रशस्त्रविशेषाणां प्रयोगश्चतुर्थे पादे निरूपितः।

अर्थात् उन चारो पादों में से पहला दीक्षापाद, दूसरा संग्रहपाद, तीसरा सिद्धिपाद और चौथा प्रयोग-पाद कहलाते हैं। प्रथम पाद में धनुर्लक्षण (जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं। धनुः के अंदर चारो प्रकार के अस्त्र-शस्त्र आ जाते हैं) और अधिकारियों का निरूपण है।

चार प्रकार के अस्त्र ये हैं—

(१) मुक्त, जैसे चक्रादि, (२) अमुक्त, जैसे खड्गादि, (३) मुक्तामुक्त, जैसे भाला बरछा आदि और (४) यंत्रमुक्त, जैसे तीर, गोली आदि।

मुक्त को अस्त्र और अमुक्त को शस्त्र कहते हैं—अस्त्र भी ब्राह्म, वैष्णव, प्राजापत्य और आग्नेयादि नाना प्रकार के होते हैं।

इसी प्रकार इस धनुर्विद्या के अधिकारी भी चार विभिन्न विभागों में विभक्त किए जा सकते हैं—

पदाति, रथी, गजारोही और अश्वारोही। यह सब प्रथमपाद का विषय है। इसके अतिरिक्त अभि-षेक-शाकुन, मंगलादि का निरूपण भी इसी पाद में है।

संग्रह-नामक द्वितीयपाद में आचार्य का लक्षण और सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्रादि का प्रतिपादन किया गया है।

तीसरे पाद में गुरु-परंपरा-सिद्ध विशेष-विशेष अस्त्र, उनके अभ्यास, मंत्र, देवता और सिद्धि आदि विषय हैं।

चौथे और अंतिम प्रयोगपाद में देवतार्चन और अभ्यासादि सिद्ध अस्त्रों की प्रयोग-विधि का प्रतिपादन किया गया है।

यह है एक विषय-सूची और संक्षिप्त विवरण विश्वामित्र-प्रणीत। यजुर्वेद के उपवेद धनुर्वेद का यही धनुर्वेद, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, इस विषय का मूल-मुख्य और सिद्धांत-ग्रंथ है। इसमें इस विद्या का संपूर्ण विषय, चाहे वह विस्तार में न हो, अवश्य होना चाहिए, तभी इस शास्त्र को हम पूर्ण और सर्वांग-सुंदर कह सकते हैं। परंतु मधुसूदन स्वामी के इस संक्षिप्त विवरण को हमने एक बार नहीं, कई बार 'अ' से 'ह' तक पारायण किया, परंतु उससे हमें कोई लाभ न हुआ। वह समस्या, जिसको हम हल करना चाहते थे, ज्यों-की-त्यों बनी रही। उसका हल इस मधुसूदन के विवरण के आधार पर हम कर सकते हैं, विश्वामित्र का धनुर्वेद न कर सका।

"युद्धशस्त्रास्त्रकुशलो रचनाकुशलो भवेत्।"

शुक्राचार्य का यह श्लोक हम ऊपर भी उद्धृत कर चुके हैं। इस श्लोक के रचना-शब्द को टीकाकारों ने शस्त्रास्त्र की रचना, बनाने की तरकीब के अर्थ में लिया है। मगर उनके इस अर्थ को रखते हुए

'शास्त्रमिदं निर्विषयं प्रविरलविषयं वा स्यात्' धनुर्वेद के इस लक्षण का विषय शायद मिल ही न सकेगा, क्योंकि धनुर्वेद का कोई ऐसा प्रसंग अभी तक हमारे सामने नहीं आया, जिसमें शस्त्रास्त्रों के बनाने की तरकीब ही हो। इसीलिये जिस समय 'प्रस्थान-भेद' का पूर्वोक्त प्रकरण हमारे सामने आया, हमने बड़ी आशा और उत्सुकता के साथ ध्यान-पूर्वक उसे पढ़ना शुरू किया। शायद इसमें उसके बनाने की तरकीब दी हो, परंतु ज्यों-ज्यों आगे बढ़े, आशा की रेखा क्षीण होती चली गई, और उस प्रकरण के अंत होते ही हमारे आशा-मंदिर का भी अंत हो गया। हमें उसमें एक भी शब्द ऐसा न मिला, जो हमारी समस्या को हल कर सकता। अस्तु। हमारी समझ में शुक्राचार्य के इस रचना-शब्द का अभिप्राय शस्त्रास्त्र की रचना नहीं, बल्कि व्यूहादि की रचना से है। यही अर्थ शास्त्रीय दृष्टि से संगत, उपयोगी और उत्तम जान पड़ता है, लौकिक दृष्टि से भी हमारी समझ में यही अर्थ ठीक जँचता है।

जो व्यक्ति घड़ी या फ़ाउंटेन पेन का उपयोग करता है, उसे उनके बनाने की तरकीब जानने की ज़रूरत नहीं, और न वह जान ही सकता है। ठीक इसी प्रकार एक क्षत्रिय-कुमार के लिये, जो युद्ध-क्षेत्र में हर प्रकार के अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग करता है, उनके बनाने की तरकीब जानने की आवश्यकता नहीं। यह विषय धनुर्वेद की सीमा से निकलकर शिल्प-शास्त्र की सीमा में पहुँच जाता है। शस्त्रास्त्र बनाने का काम तो शिल्प-शास्त्रियों का है, क्षत्रिय-कुमार को उसके जानने की आवश्यकता नहीं।

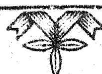
हमारी समझ एवं शुक्राचार्य की दृष्टि में भी रचना-शब्द का यही अर्थ था, क्योंकि उन्होंने स्वयं शुक्र-नीति में धनुर्वेद का कुछ विषय प्रतिपादन किया है। मगर वहाँ उन्होंने भी शस्त्रास्त्र बनाने की तरकीब का उल्लेख नहीं किया। इसके सिवा 'उशना' के नाम से उन्होंने औशनस् धनुर्वेद की रचना भी की है, जिसका कुछ अंश अभी उपलब्ध हुआ है, उसमें भी इसका कोई ज़िक्र नहीं। अगर धनुर्वेद में शस्त्रास्त्र बनाने की तरकीब का होना आवश्यक होता, तो कम-से-कम शुक्राचार्य अपने प्रैक्टिकल और थ्योरिटिकल जीवन में सामंजस्य दिखलाकर हमारे सामने कम-से-कम एक आदर्श उपस्थित कर जाते।

सुधा-चित्रावली



मिस युनिवर्स

[आप तुर्की सुंदरी हैं। आप बेलजियम की सौंदर्य-प्रतियोगिता में, ३२ देशों की प्रतिनिधियों में, मिस युनिवर्स घोषित हुई हैं।]









मिस ई० जरसर्सकाजा

[आप सुप्रसिद्ध रूसी नर्तकी हैं। माइकेल सिश्रोलोकॉफ़ के मशहूर नवीनतम उपन्यास के आधार पर बनाई गई फ़िल्म में आपने प्रमुख पार्ट किया है।]





कविवर ठा० गोपालशरणसिंह

[द्विवेदी-मेला के आप स्वागताध्यक्ष थे। मेला की सफलता का बहुत कुछ श्रेय आपको है।]



दियासलाई का राजा क्यूगर

[आप दियासलाई के सबसे बड़े व्यापारी थे। आपकी जीवनी पृष्ठ ६३७ पर देखिए।]



श्रीकृष्णचंद्र तिवारी

[आप भारतवर्ष के प्रसिद्ध दौड़ाक हैं। दौड़ने की प्रतियोगिता में आपने कई मेडिल प्राप्त किए हैं। सन् २२ में, कलकत्ते में, जो ९० मील की दौड़ हुई थी, उसे आपने ७¾ घंटे में पूरा किया था। सन् ३६ में अमेरिका में जो दौड़ होगी, उसमें शामिल होने के लिये आपको भारत-सरकार वहाँ, अपने ख़र्च से, भेज रही है।]



पं० गौरीशंकरजी भार्गव

[आप अजमेर के सुप्रसिद्ध नेता, समाज-सुधारक और राजस्थान-हरिजन-संघ के सभापति हैं। अभी हाल में आपने महात्मा गांधी के व्रत-भंग के अवसर पर संघ द्वारा आयोजित सभा में सभापति का आसन ग्रहण किया था।]



१. तुमसे

तुम एक बार मिल जाना।
जीवन की गोधूली में
सुधि करके श्रांत सदन की
उड़ने को फड़क रही हों
पाँखें जब प्राण-विहग की,
उस क्षण तुम उडु-सा आकर
कुछ अपना पता बताना। तुम०
अपना प्रकाश जब खोकर
मेरी रजनी हो रोती,
सुधि में निष्फल आँसू से
आँचल को व्यर्थ भिगोती,
उस क्षण बन स्वर्ण-सबेरा
कुछ भी तो दया दिखाना। तुम०
अरुणाचल की लाली में
बस, एक बार पा जाऊँ,
सुख-दुख दोनो खिल जाएँ,
तम-सा तुममें मिल जाऊँ।
देखना—भूल मत जाना!
हाँ, एक बार मिल जाना। तुम०

परमानंद शुक्ल

× × ×

२. व्यापारिक खादों का प्रयोग

गत वर्षों से भारतवर्ष में व्यापारिक खादों का प्रयोग बढ़ता जाता है, परंतु इनके विषय में हमारे किसानों का ज्ञान यहीं तक परिमित है कि 'विलायती खादों' से उपज बढ़ जाती है। दूकानदार उन्हें 'आलू की खाद' और 'गेहूँ की खाद' आदि नाम लेकर अच्छी तरह लूटते हैं। उन बेचारों को यह भी पता नहीं होता कि जिस वस्तु का मूल्य हम दे रहे हैं, वह मिट्टी के अतिरिक्त कुछ और भी है, या नहीं? हमें यही वस्तु ख़रीदनी चाहिए, या इससे सस्ती और अच्छी वस्तुएँ भी मिल सकती हैं? खाद को कब और कितनी मात्रा में प्रयोग करना चाहिए? आज इस लेख में हम इन्हीं प्रश्नों पर विचार करेंगे।

किसी भी खाद के मोल लेने से पहले हमें यह जान लेना अनिवार्य है कि हमारी फ़सल की आवश्यकताएँ क्या हैं, और उनकी पूर्ति हमारी भूमि पूर्ण रूप से कर सकती है, या नहीं। मुख्यतः हमारे देश में तीन ही वस्तुओं की कमी पड़ती है, और खादों द्वारा हम उसकी पूर्ति करते हैं। उन वस्तुओं के नाम हैं—नाइट्रोजन, पोटाश और फ़ॉसफ़ॉरस। गोबर अथवा कूड़े-करकट की खादों (Compost) में उपर्युक्त तीनो वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं। परंतु व्यापारिक अथवा कृत्रिम खादों (Commercial or artificial fertilisers) से केवल एक और अधिक-से-अधिक दो वस्तुएँ प्राप्त हो सकती हैं। तीनो खनिज पदार्थों

के लिये हमें भिन्न-भिन्न खादों का मिश्रण करना पड़ता है। व्यावहारिक कार्यों तथा खाद की मात्रा जानने के लिये निम्न-लिखित तालिका से उचित सहायता मिलेगी। तालिका में एक एकड़ भूमि के लिये भिन्न-भिन्न फ़सलों की आवश्यकताएँ पौंडों में दी जाती हैं, जिनसे भरपूर पैदावार मिल सकेगी—

फ़सल का नाम	नाइट्रोजन	फ़ॉसफ़ॉरस	पोटाश
गन्ना अथवा ईख	७५	२०	०
धान	३६	३६	०
तरकारियाँ	३०	०	०
तंबाकू	२५	८०	७५
आलू	३८	१८	०
कपास	४०	०	०
गेहूँ	५०	०	०
ज्वार, मक्का के चारे	२५	०	०

अपनी फ़सल की आवश्यकताओं के पश्चात् उन व्यापारिक खादों का ज्ञान होना आवश्यक है, जिनसे हमारी फ़सल की आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हो सकें। नीचे हम कुछ खादों का नाम देते हैं, जिनसे वे तीन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अंशों में मिल सकती हैं—

नाम खाद	नाइट्रोजन	फ़ॉसफ़ॉरस	पोटाश
		प्रतिशत	
१. अमोनियम सल्फ़ेट	२०·५	०	०
२. चिलियन नाइट्रेट	१५·७	०	०
३. अमोनियम क्लोराइड	२५·०	०	०
४. केल्शियम नाइट्रेट	१५·०	०	०
५. „ सिनेमाइड	१८से२०	०	०
६. पोटाशियम नाइट्रेट	१४	०	३५
७. हड्डी का चूरा	३से४	२५	०
८. सुपर फ़ॉसफ़ेट	०	२६से३८	०
९. बेसिग स्लेग	०	२०	०
१०. अमोनियम फ़ॉसफ़ेट	१८	१८	०
११. म्यूरेट ऑफ़् पोटाश	०	०	५०·६०
१२. सल्फ़ेट ऑफ़् पोटाश	०	०	४६

इन खादों के अतिरिक्त कुछ कंपनियाँ अपना एक 'पेटेंट' मिश्रण रखती हैं, जिसमें किसी एक फ़सल की आवश्यकताएँ पूर्ण करने की शक्ति होती है, जैसा ऊपर दिया गया है। खाद का पूरा भाग उपयोगी नहीं होता, अतएव खाद मोल लेते समय हमें उपयोगी अंश का ही ध्यान रखना चाहिए। किसी खाद में उपयोगी अंश दूसरे से अधिक होता है, परंतु इसके साथ ही उसका मूल्य भी अधिक होता है, अतएव हमें खाद के भावों का उपयोगी अंश की उपस्थिति से ही हिसाब लगाना उचित है। यह आवश्यक नहीं कि जिस खाद में उपयोगी अंश की मात्रा अधिक हो, वही लेना चाहिए। किंतु जिससे हमें इच्छित वस्तुएँ सस्ती पड़ती हों, वही मोल लेना उचित है। सस्ती खाद का पता लगाने की विधि अतीव सरल है। निम्न-लिखित दृष्टांत से हमें उपर्युक्त कथन के समझने में अच्छी सहायता मिलेगी।

मान लीजिए, आपको एक एकड़ आलुओं के लिये व्यापारिक खाद मोल लेना है। उपर्युक्त तालिका से हमें ज्ञात हो गया कि एक एकड़ आलुओं के लिये ३८ पौंड नाइट्रोजन और १८ पौंड फ़ॉसफ़ोरस की आवश्यकता होगी। दूकान पर आपको बताया गया है कि अमोनियम सल्फ़ेट का मूल्य ४॥) मन है, जिसमें २० प्रतिशत नाइट्रोजन होगा, और चिलियन नाइट्रेट ४।) मन है, जिसमें १५.५ प्रतिशत नाइट्रोजन है। हमें इन दोनो खादों में से एक खाद लेना है, जिसमें ३८ पौंड नाइट्रोजन मिल सके। परंतु इस दशा में यह कहना सहज नहीं कि दोनो में से कौन सस्ती है। इसके लिये हिसाब लगाने से पता चलेगा कि ३८ पौंड नाइट्रोजन के लिये २ मन १३ सेर अमोनियम सल्फ़ेट का मूल्य लगभग ११) है, और उतने ही पौंड नाइट्रोजन के लिये ३ मन चिलियन नाइट्रेट का मूल्य १२॥।) है। अब निश्चय हो गया कि अमोनियम सल्फ़ेट का प्रति मन मूल्य अधिक होते हुए भी चिलियन नाइट्रेट से सस्ता रहा, अतएव चिलियन

नाइट्रेट का प्रति मन सस्ते होने के कारण ही से हमें उसे न ख़रीदना चाहिए। ऐसी दशा में किसान धोका खा जाते हैं। इसी प्रकार १८ पौंड फ़ॉसफ़ोरस के लिये सबसे सस्ती खाद का मोल लिया जाना उचित है। उन दोनो के मिला देने पर हमें आलू के एक एकड़ खेत के लिये पर्याप्त खाद मिल जायगी।

व्यापारिक खादों का मिश्रण भी सावधानी से करना चाहिए, ताकि खेत में खाद का प्रभाव एक-सा रहे। इन खादों में कुछ ऐसी भी हैं, जिनको एक साथ ही न मिलाना चाहिए, अन्यथा नाइट्रोजन गैस के रूप में परिणत होकर नष्ट हो जायगी। सुपर फ़ॉसफ़ेट के साथ तो किसी भी नाइट्रोजनवाली खाद को न मिलाना चाहिए। इनका प्रयोग करते समय एकदम मिलाकर खेत में दी जा सकती है, परंतु मिलाकर कुछ देर भी रखने से भारी हानि होती है।

खाद मोल लेते समय यह विचार भी कर लेना आवश्यक है कि हमें इसके प्रभाव का लाभ किस समय लेना है। कुछ खादें अपना प्रभाव शीघ्र दिखाती हैं, कुछ देर में। खड़ी हुई फ़सल (Top dressing) में वही खाद देना लाभदायक है, जो जल्दी ही पौदों को भोजन के रूप में मिल जाय, और यदि फ़सल बोने के पूर्व ही खाद देने की आवश्यकता हो, तो देर में प्रभाव दिखलानेवाली खादों का प्रयोग ही लाभकारी होगा। चिलियन नाइट्रेट अति शीघ्र और अमोनियम सल्फ़ेट कुछ दिनों पश्चात् अपना प्रभाव दिखलाते हैं।

अंत में खाद को भूमि में मिलाने की विधि के विषय में जानने की आवश्यकता है। थोड़ी-सी असावधानी से पूरी फ़सल चौपट हो जाती है। खाद देने के दो नियम हैं—१. पानी में घोलकर और २. मिट्टी में मिलाकर।

इन दोनो नियमों का तात्पर्य केवल यही है कि खाद की शक्ति कम कर दी जाय, अन्यथा किसी पेड़ अथवा पत्ती पर यदि असली खाद पड़ जाती है, तो वह जल जाती है। मिट्टी सूखी होनी चाहिए, जिसको खेत में एक-सा छिड़का जा सके। खड़ी हुई फ़सलों पर इसका प्रयोग बड़ी सावधानी से करना चाहिए, और जड़ों के चारो ओर खाद फैलाकर खुरपी से गोड़ देना चाहिए। बड़े क्षेत्रों में पानी में घोलकर खाद देना असंभव है, परंतु थोड़ी भूमि पर ऐसे भी उपयोग की जा सकती है। कुछ लोग सिंचाई के समय पानी के बरहे पर बैठकर थोड़ी-थोड़ी खाद बहते हुए पानी में छोड़ते जाते हैं, ताकि पानी के साथ घुलकर खाद पूरे खेत में पहुँच सके। परंतु इस प्रकार खाद का प्रभाव एक-सा नहीं दिखाई पड़ता। व्यापारिक खादों के प्रयोग के पश्चात् खेत को गोड़कर पानी अवश्य दे देना चाहिए, अन्यथा ये खादें सब फ़सल को शीघ्र ही जला देंगी। खड़ी हुई फ़सल में इनका प्रयोग तभी करना चाहिए, जब फ़सल एक फ़ुट ऊँची हो। प्रतिवर्ष एक खेत में एक-सा खाद डालना हानिकारक है, इससे भूमि ऊसर बन जाती है, अतएव इन खादों का प्रयोग बड़ी सावधानी से करना उचित है। एक समय ही सब खाद न देकर थोड़ी-थोड़ी दो, अथवा तीन बार में देना अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है।

व्रजेंद्रप्रसाद पालीवाल

× × ×

३. दाँत और उनका सौंदर्य

सौंदर्य परमात्मा की सर्वोत्तम कृति है। सुंदरता या ख़ूबसूरती ही दुनिया में सार है। संसार की यह एक महान् शक्ति है। और, आकर्षण तो इसमें इतना है कि इसके ध्यान अथवा देखने से ही हमारा हृदय स्नेह तथा प्रेम की हिलोरें लेने लगता है। जिस प्रकार चेहरे के सौंदर्य में कान, आँख, मुँह और ओष्ठ इत्यादि का योग है, इनमें से किसी एक के भी भद्दे अथवा कुरूप होने से सौंदर्य जाता रहता है, उसी प्रकार चेहरे की सुंदरता दाँतों पर भी निर्भर है। किसी स्त्री के समस्त अंग सुंदरता में एक-से-एक बढ़कर हों, परंतु केवल दाँत भद्दे या टेढ़े-मेढ़े हों,

तो हम उसे सुंदर नहीं कह सकते। केवल दाँतों का गंदा होना ही उसकी सुंदरता को नष्ट कर देता है। अतएव स्पष्ट है कि दाँतों का स्वच्छ, सुंदर और मनोहर होना एक अत्यंत आवश्यक गुण है। योरप की अनेक स्त्रियाँ भद्दे दाँत निकलवाकर नक़ली दाँत लगवा लेती हैं। केवल इसीलिये कि वह सुंदर लगें। कैसी भी कुरूपा स्त्री क्यों न हो, यदि उसके दाँत सुंदर और स्वच्छ हैं, तो निस्संदेह उसकी छवि में एक मनोहरता की आकृति दिखाई पड़ेगी।

सौंदर्य ही के लिये नहीं, वरन् शरीर-रक्षा या स्वास्थ्य के लिये भी दाँतों का साफ़ तथा सुंदर होना आवश्यक है। भोजन दाँतों से चबाकर खाया जाता है। चबाते समय मुँह से एक प्रकार की लार-सी निकलकर भोजन में मिल जाती है। यह लार भोजन के पचने में बहुत सहायक होती है। अतएव जितना ही खाना ज़्यादा चबाया जायगा, लार अधिक मिलेगी, और भोजन जल्दी पच जायगा। भोजन के भले प्रकार पचने पर ही स्वास्थ्य निर्भर है। यदि दाँत न हों, अथवा गंदे, भद्दे हों, तो लार भी कम या ख़राब निकलेगी, और स्वास्थ्य बिगड़ जायगा। दाँत ख़राब होने से जो खाना हम खायँगे, उसमें से थोड़ा तो दाँतों के अंदर ही रह जायगा, और कुछ पेट में जाकर कुपथ्य कर देगा। इसीलिये दाँतों को मोतियों की लड़ी के समान साफ़ और अनार के दानों की तरह सुगठित रखना चाहिए।

दाँतों की सफ़ाई के लिये तीन उपाय करना मुख्य हैं—(१) कुल्ली आदि, (२) दातौन अथवा ब्रश और (३) मंजन आदि। दाँतों को साफ़ रखने से मनुष्य अनेक रोगों से बचा रहता है, और असावधानी रखने से दाँतों में कीड़े लग जाते हैं। रक्त बहने लगता है, पीड़ा होने लगती है, और पाइरिया आदि अनेक बीमारियाँ होकर दाँत गिर जाते हैं। इसीलिये जहाँ तक हो सके, दाँतों की सफ़ाई के लिये कुल्ला करना बहुत ज़रूरी है। बहुत-से मनुष्य भोजन करने के उपरांत केवल ऊपर ही से मुँह धो लेते हैं, कुल्ले नहीं करते, उनकी जूठन दाँतों में जम जाती है, और दाँत टूटने लगते हैं। मसूढ़े सड़ जाते हैं, और जो कुछ खाते हैं, वह भी ख़राब हो जाने से अपथ्य हो जाता है, जिससे उनकी तंदुरुस्ती ख़राब होने लगती है। अतएव भोजन के उपरांत कुल्ला करना परम आवश्यक है। कुल्ला न करने से मुँह में दुर्गंध आने लगती है। कुल्ला करने से खाद्य पदार्थ मुँह में अथवा दाँतों में रह जाता है, वह निकल जाता है, और मुँह की बदबू दूर होकर दाँत साफ़ हो जाते हैं। दोपहर तथा शाम के भोजन के पश्चात् १०-१५ कुल्ले अवश्य करने चाहिए। सोने से पहले कुल्ले कर लेने से किसी चीज़ को दाँत में लगे रहकर रात्रि में सड़ने का मौक़ा नहीं मिलता।

दातौन अथवा ब्रश—परंतु केवल कुल्ला करने ही से दाँतों की पूरे तौर पर सफ़ाई नहीं हो पाती, उसके लिये दातौन या ब्रश करना ज़रूरी है। यद्यपि आजकल दातौन को छोड़कर लोग ब्रश अधिक प्रयोग में लाते हैं, परंतु सफ़ाई की दृष्टि से ब्रश से दातौन कहीं अच्छी और अधिक लाभदायक है। अतएव जिन्हें मिल सके, उन्हें दातौन अवश्य करनी चाहिए। दातौन १२ अंगुल लंबी और हाथ की सबसे छोटी उँगली के समान मोटी होनी चाहिए। दातौन कई तरह की होती हैं—जैसे नीम, पीपल आदि की। बबूल, आम, खजूर, बेला, गूलर, चंपा इत्यादि की भी दातौनें अच्छी होती हैं। मगर नीम और बबूल की दातौनें अति उत्तम हैं। दातौन हरी तथा ताज़ी होनी चाहिए। दातौन करने से खिवलिबापन, विरसता, दुर्गंध आदि जीभ के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। प्रायः देखा गया है कि मुसलमान लोग एक ही दातौन को कई रोज़ तक काम में लाते हैं। परंतु दातौन को अलग रखना ही उचित है, और एक दिन की प्रयोग की हुई दातौन दूसरे दिन उपयोग में न लानी चाहिए।

आजकल दातौन की प्राप्ति कठिन होती है।

विशेषकर बड़े नगरों में तो असंभव ही है। इसलिये आजकल ब्रश का प्रयोग अधिक किया जाता है। इसके अतिरिक्त अँगरेज़ी फ़ैशनवाले दातौन के बजाय ब्रश से दाँत साफ़ करने को अच्छा और फ़ैशन समझते हैं। ख़ैर, अगर ब्रश से दाँत साफ़ करें, तो उसकी सफ़ाई की ओर भी ध्यान देना चाहिए। आजकल ब्रश के प्रयोगकर्ता उसकी सफ़ाई की ओर यथेष्ट ध्यान नहीं देते। वे दाँत साफ़ कर, ब्रश को धोकर (बहुत-से तो विना धोकर ही) डाल देते हैं, यह ठीक नहीं। ब्रश के गंदे होने से अनेक प्रकार की बीमारियाँ हो जाती हैं। यही कारण है कि आजकल ब्रश-प्रयोग करने पर भी अनेक लोग पाइरिया आदि रोगों से ग्रस्त होते हैं। ब्रश को २-३ दिन बाद गर्म पानी या सोडे से ख़ूब धोकर धूप में सुखाना चाहिए। एक ब्रश एक व्यक्ति के लिये ही प्रयुक्त होना ज़रूरी है, और उसे एक या डेढ़ महीने के अंदर ही बदल देना चाहिए।

मंजन—दाँतों की सफ़ाई का तीसरा उपाय मंजन करना है। जो लोग दातौन या ब्रश आदि नहीं करते, वे मंजन से अपने दाँत साफ़ कर सकते हैं। इससे दाँतों की बीमारियाँ दूर हो जाती हैं, और दाँत साफ़, सुदृढ़, सुंदर और चमकीले हो जाते हैं। अगर दाँतों में दर्द वग़ैरा होने लगे, तो मंजन से ही दाँत साफ़ करना चाहिए, दातौन से नहीं। आजकल दाँतों को साफ़ करने के लिये बहुत-से मंजन तथा अँगरेज़ी टूथ-पाउडर बाज़ारों में मिलते हैं। इसके अलावा अनेक घरों की महिलाएँ स्वयं मंजन बना लेती हैं। ऐसे देशी मंजनों के अनेक नुस्ख़े हमारी माताएँ घर-घर जानती हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार की वस्तुएँ भी मंजन के रूप में, दाँत साफ़ करने के लिये, प्रयोग की जाती हैं। प्रायः मैं देखती हूँ कि यमुना-तट पर स्त्रियाँ यमुना-नदी की रेत से दाँतों को साफ़ करती अथवा मलती हैं। यह ख़तरे की बात है। मगर इससे दाँत ज़रूर साफ़ हो जाते हैं, क्योंकि यह खुरखुरी और नील वर्ण लिए होती है।

दाँतों की सफ़ाई के उपरांत प्रश्न रह जाता है उनके सौंदर्य का। इसकी आवश्यकता मैं पूर्व ही बतला चुकी हूँ। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियों के सौंदर्य में दाँत कितने आवश्यक तथा उपयोगी हैं। अतएव दाँतों को हमेशा सुगठित, सुंदर और साफ़ बनाने का उद्योग करना चाहिए। हमारे देश में स्त्रियाँ दाँतों की सुंदरता बढ़ाने के लिये पान खाती हैं, मिस्सी लगाती हैं। कुछ अपने दाँतों में सोने के फूल तथा तार आदि बँधवाती हैं। पान खाने से कुछ लाभ है। एक तो मुँह की बदबू दूर हो जाती है, मुख सुंदर, सुगंध-युक्त हो जाता है। दूसरे, दाँतों की कुछ सफ़ाई भी हो जाती है। फिर पान खाने से चेहरे की सुंदरता में यथेष्ट वृद्धि हो जाती है। अतएव दिन-भर में एक-दो पान खा लेने से कुछ अधिक हानि नहीं है, परंतु अधिक पान का उपयोग करना अथवा आदत डालना ठीक नहीं। तंबाकू तो कभी न खाना चाहिए। इससे बहुत हानियाँ होती हैं। दाँतों की सुंदरता उनके स्वच्छ, मोती-जैसे होने में है। परंतु अधिक पान खाने से मसूड़े काले पड़ जाते हैं, दाँतों की सुंदरता नष्ट हो जाती है, और थोड़े ही दिनों में दाँत गिर पड़ते हैं।

अनेक महिलाएँ दाँतों की सुंदरता के लिये उनमें सोने के तार, फूल आदि जड़वा लेती हैं। मेरे विचार से तो इससे सुंदरता के स्थान पर भद्दापन मालूम पड़ता है। आरंभ में चाहे यह बुरा न लगे, परंतु कुछ काल बाद, जब दाँतों का सोना घिस जाता है, दाँतों का सौंदर्य भद्दा मालूम होने लगता है। सोना गिर जाने पर दाँत और भी छेददार प्रतीत होते हैं। जिस उपाय से दाँतों का सौंदर्य स्थायी न रहे अथवा हानि पहुँचे, उससे तो दूर ही रहना अच्छा।

दाँतों की सुंदरता बढ़ाने का तीसरा उपाय मिस्सी है। कुछ स्त्रियाँ दाँतों में मिस्सी लगाकर उन्हें चमकीला और साफ़ बनाती हैं। परंतु अब यह रिवाज कम होता जा रहा है, यद्यपि कहते हैं कि उससे

दाँत मज़बूत हो जाते हैं, और उनमें पीड़ा नहीं होती। यदि ऐसा हो भी, तो उसके लिये टूथ-पाउडरों तथा अच्छे-अच्छे मंजनों का उपयोग करना ज़रूरी है। मिस्सी का प्रयोग करने से मसूढ़े काले पड़ जाते हैं, अतएव इसका इस्तेमाल न करना ही उत्तम है।

राधारानी सकसेना

× × ×

४. रोग क्या है ?

यह विषय ऐसा है, जिसके संबंध में बहुत वाद-विवाद है, और जिसके समझने में बड़ी ग़लतियाँ की जाती हैं।

साधारणतः जब मनुष्य को कोई कष्ट होता है, जैसे सर का दर्द, दाँत का दर्द, पेचिश इत्यादि, तब वह समझता है कि उसे रोग हो गया है, और हर प्रकार के कष्टों को भिन्न-भिन्न रोग समझता है। ऐसा ख़याल करना ग़लत है। रोग (Disease) केवल एक ही है, और विविध रोग उस एक ही रोग के विविध चिह्न (symptoms) हैं। प्रश्न होता है कि तब फिर रोग क्या है ?

सुनिए। शरीर में विजातीय पदार्थ (foreign matter) की विद्यमानता को रोग कहते हैं। रोग की यही वास्तविक परिभाषा है। प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डॉ० लूईकूने ने इस परिभाषा को आविष्कृत किया है। यह विजातीय पदार्थ ऐसी सूक्ष्म दशा में हमारे शरीर के अंदर रहता है कि उसे हम देख नहीं सकते। इसकी विद्यमानता केवल बाह्य चिह्नों (outward symptoms) से मालूम होती है, जो ऐसे पदार्थ के होने से उत्पन्न होते हैं और जिन्हें हम ग़लती से रोग कहते हैं।

विजातीय पदार्थ हमारे शरीर में कैसे प्रवेश करता है ? केवल दो बड़े रास्ते हैं—एक नाक और दूसरा मुँह। नाक के द्वारा फेफड़ों में और मुँह के ज़रिए पेट में। इन रास्तों के रक्षक नाक और जिह्वा हैं। लेकिन जब हम इनका कहना नहीं मानते, तो वे भी अपने काम में ढील करने लगते हैं, और आहिस्ता-आहिस्ता हानिकारक पदार्थों को शरीर में बिना रोक-टोक चले जाने देते हैं।

प्रकृति ने हमारे लिये कितने ही स्वादिष्ठ खाद्य पदार्थ बनाए हैं, पर वर्तमान सभ्यता के युग में, हमारे सामने, खाने के समय, कितने ही प्रकार की, प्रकृति के प्रतिकूल भोजनों की रकाबियाँ रक्खी जाती हैं, जो केवल इसी ख़याल से खाई जाती हैं कि वे मसाला इत्यादि के लगाने से स्वादिष्ठ हो गई हैं, न कि उनकी पोषक शक्ति के ख़याल से। ऐसे अप्राकृतिक भोजन को आजकल के सभ्य पुरुष अत्यावश्यक समझते हैं। कारण, वे इसके आदी हो गए हैं। ऐसा भोजन सिवा हानि पहुँचाने के और कर ही क्या सकता है ? साँस लेने को भी ताज़ी हवा नहीं मिलती, विशेषकर शहरों में। घनी बस्तियों और अँधेरे घरों में, जहाँ वायु में नाना प्रकार के रोगों के कीटाणु रहते हैं, हमारे स्वास्थ्य की रक्षा कैसे हो सकती है ?

हमारे शरीर को जितने भोजन की आवश्यकता है, उससे अगर तनिक भी ज़्यादा खा लिया जाय, तो वही ज़हर का काम करता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि जो कुछ भी पेट में जाय, उसका पचना ज़रूरी है। अब यह प्रश्न होता है कि भोजन की मात्रा क्या होनी चाहिए ? उत्तर में केवल यह कहना काफ़ी है कि जितना आसानी से पच जाय। यह मनुष्य की पाचन-शक्ति पर निर्भर है। जो मनुष्य शारीरिक परिश्रम करता है, वह अधिक भोजन पचा सकता है—उस मनुष्य की अपेक्षा, जो दिन-भर एक जगह पर बैठा रहता है। जो भोजन उचित मात्रा से अधिक होता है, वह ज़हर है; अगर शरीर से बाहर न निकाला गया, तो विजातीय पदार्थ बन जाता है। इस विजातीय पदार्थ का क्या होता है ? शरीर इसको बाहर निकालने की चेष्टा करता है, फेफड़ों से साँस द्वारा और पेट से मल के रूप में। ऐसा भी होता है कि पहले विजातीय पदार्थ ख़ून में प्रवेश

करता है, और तब पसीना, पेशाब और निःश्वास के रूप में बाहर निकलता है—खाल, गुर्दा और फेफड़ों द्वारा।

इस तरह, हम देखते हैं, हमारा शरीर यथा-संभव चेष्टा करता है कि विजातीत पदार्थ बाहर निकल जाय, और हमें कष्ट न हो। अतः हमारा धर्म है कि हम भी शरीर पर ज़्यादा बोझ न लादें। जब हम उस पर बहुत काम लाद देंगे, तब वह अपना काम करने में असमर्थ हो जायगा, तब उसे विजातीय पदार्थ को अपने अंदर ही जगह देनी पड़ेगी। यह पदार्थ ख़ून के दौरान में रुकावट डालता और हाज़मे को बिगाड़ता है। यह धीरे-धीरे अनेक स्थानों, विशेषतः मल-निरोधक स्थानों, पर जमा हो जाता है। ऐसा होना जब एक बार आरंभ हो गया, तब उसी पर जल्दी-जल्दी तह-की-तह जमती जाती है, यदि रहन-सहन में शीघ्र परिवर्तन न किया जाय। ऐसी दशा में शरीर को रोगी समझना चाहिए, चाहे मनुष्य को मालूम न हो या इसके कारण उसको उस समय कोई कष्ट न हो। सब बातों को सोचते-समझते हुए हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि शरीर के मल-निरोधक प्रयत्नों का नाम ही अनेक रोगों का परिचायक बन गया है। वस्तुतः वे सब प्रयत्न भी एक ही मूल-प्रयत्न के अनेक रूप हैं, और वे सब रोग भी एक ही रोग की भिन्न-भिन्न शाखाएँ।

(डॉक्टर) छैलबिहारीलाल
(एम्० डी०, डी० सी० एच्० एम्०)

× × ×

५. पूजा

(१)

"यह तन प्रभु का मंदिर है",
मन में विचार जब आया,
धो-धोकर अपने तन को
तब मैंने स्वच्छ बनाया।

(२)

फिर चंदनादि का शीतल
मस्तक पर लेप लगाया;
आवाहन कर मंत्रों का
अपना उर-कमल खिलाया।

(३)

निज आसन-हित जब प्रभु ने
हो सदय, उसे अपनाया;
सुध-बुध सब भूल गए तब,
ऐसा सौरभ सरसाया।

(४)

माया ने फिर भी आकर
अपना था जाल बिछाया;
हरि-भक्ति-शक्ति ने सत्वर
सब भ्रम-भय-भूत भगाया।

(५)

मन-मानस में श्रद्धा का
पावन प्रवाह उमड़ाया;
प्रभु - पद - प्रक्षालन - हित तब
नयनों ने नीर बहाया।

(६)

हर्षित हो हृत्तंत्री ने
फिर राग अनोखा गाया;
उन अद्भुत झंकारों का
यह सार समझ में आया—

(७)

"यह तन ही तो मंदिर है,
अब भेद-भाव सब तजकर
इसको पवित्र रख करिए
प्रभुवर की पूजा 'शंकर'।"

गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'

× × ×

६. दांपत्य जीवन

क्रांति आवश्यक है। समय-समय पर संसार में जो क्रांतियाँ हुई हैं, उनकी तह में किसी-न-किसी हार्दिक उद्विग्नता का आभास मिलता है, जिसकी दारुण असह्यता क्रांति का रूप धारण करती है। वर्तमान युग क्रांति-युग है। भारतवर्ष में जो चतुर्मुखी क्रांति का शंखनाद सुनाई पड़ रहा है, उससे पता चलता है कि मानव-जीवन सहनशीलता की सीमा का अतिक्रमण कर चुका है। अब वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रांति चाहता है, रूढ़ियों के दासत्व-पिंजर से एकदम तड़पकर निकल जाना चाहता है, वह प्रकाश-मार्ग में उड़कर पहुँचने के लिये व्याकुल है, वह शास्त्रों और धार्मिक विचारों की गुलामी से ऊब उठा है, वह मर्यादा-संबंधी श्लोक सुनने के लिये तैयार नहीं है, वह तो मनुष्य बनने और समझे जानेवाले मंत्रोपदेश का आह्वान कर रहा है, उसके प्रतीक्षा-पथ पर सर्वस्व लुटाने में आज गौरव का अनुभव कर रहा है। अस्तु।

क्रांति ज्वालामुखी है। उसके सम्मुख ठहरना मुश्किल है। वर्तमान क्रांति अपनी सहस्रों वर्ष से धधकती हुई अंतर्ज्वाला का बिना शमन किए हुए दम न लेगी, उसे अनुकूल वातावरण भी प्राप्त है। अतएव शांति-पूर्वक विचार कर देखा जाय, तो क्रांति आवश्यक है। यह नवजीवन-प्रदायक है, यह नव संदेश-दायक, विजय-वाहिनी रणचंडी है। अतः क्रांति का स्वागत मनुष्यता का धर्म है। क्रांति भयावह नहीं, अपितु 'शिवं, सुंदरं' है। अपवाद-स्वरूप क्रांति कभी-कभी विकृतावस्था में भयावह और अनर्थकर हो जाती है, किंतु इससे घबराना नहीं चाहिए। प्रत्येक वस्तु की एक सीमा होती है। इन्हीं क्रांति के विचारों से ओत-प्रोत होकर या वर्तमान स्वातंत्र्य युगकालीन विचारों से प्रभावित होकर देश के गण्य-मान्य, संभ्रम व्यक्ति किसी-न-किसी असीम वेदना से द्रवीभूत हो उठे, और अपनी सदाशयता से उन करुण कथाओं में परिवर्तन करने के लिये अग्रसर हुए। भारतीय क्रांति (सामाजिक) का वर्तमान इतिहास विशेषतः अछूत और स्त्री-समस्या के स्तंभों में बिखर रहा है। अतः मैं क्रांति का सहर्ष स्वागत करते हुए कुछ नम्र निवेदन करना चाहती हूँ। आशा है, पाठक-पाठिकाएँ ध्यान-पूर्वक विचार करेंगी। प्रकृति स्वतंत्र है, क्योंकि वह नियम-बद्ध है। किसी भी समाज की नियम-बद्धता ही उसका प्राण है, स्वतंत्रता है, अबद्धता ही मरण है, उच्छृंखलता है। श्रीप्रेमचंदजी के शब्दों में 'प्रेम ने बड़ी तपस्या के बाद घर का वरदान पाया है' कितनी सत्यता है। वैवाहिक जीवन की पद्धति कितनी विधायक और दूरदर्शिता की पोषक है, यह वर्णनातीत है। यह गूँगे का गुड़ है। भारतवर्ष की महत्ता का मूल-स्रोत इसी मंगल-मय गृहस्थाश्रम में सन्निहित है (जैसा विश्व-वंद्य रवींद्र ने 'रामायणी कथा' की भूमिका में मुक्त कंठ से स्वीकृत किया है)। हमारे पूर्वज आप्त पुरुषों ने समाज की इसी कल्याणकर भावना से प्रेरित होकर दांपत्य जीवन को कितना महत्त्व दिया है। यह सचमुच असीम पवित्र बंधन है। अगर आज यह बंधन न होता, और धार्मिक या पवित्र कर्तव्य के प्रश्रय में इसकी जड़ न होती, तो भारत में तो करुणा-सागर उमड़ पड़ता। अतएव मनुष्य का पुनीत कर्तव्य है कि वह दांपत्य जीवन को सुखी बनानेवाले साधनों की अभिवृद्धि करे। मेरी हिंदू-समाज से विनम्र प्रार्थना है कि वह अपनी इस अक्षय विभूति के भांडार से हाथ धो रहा है, यह बड़े ही लज्जा का विषय है। भारतीय हिंदू-संस्कृति आदर्शवाद की भित्ति पर है। वह सब प्रकार की विपत्तियों में पड़कर घबरानेवाली नहीं है, इसलिये हमारी क्रांति का आधार आदर्शवाद ही होना चाहिए। इसके विरुद्ध क्रांति स्थायी न होगी। इसलिये मैं डॉक्टर सर हरिसिंह गौड़ के विवाह-संबंध-विच्छेद-बिल को लाभदायक नहीं समझती हूँ। इस बिल की तह में पाश्चात्य संस्कृति के पुजारी मस्तिष्क की विह्वलता है। देवता-स्वरूप भाई परमानंदजी ने ठीक ही इसका विरोध किया है। हम आदर्शवादिनी हैं, हम पूज्या सावित्री और गांधारी

की संतति हैं। क्या हमारे लिये यह शोभा की बात होगी कि दैवी विधान से दुखी पति की करुणावस्था (जो बीच में हो जाय) में हम उसे छोड़ जायँ? मैं क्यों चाहूँगी कि स्त्रियों के अधिकार न बढ़ें? किंतु लाभ के स्थान पर हानि क्यों चाही जाय? सर गौड़ को वास्तव में यह बिल पास कराना चाहिए था कि पुरुष पत्नियों का परित्याग न कर सकें (गुज़ारा देने की बात नहीं), तो अभिनंदनीय कार्य होता। मैं इस बिल को दांपत्य जीवन का विध्वंसक समझती हूँ। यह बिल हमारी सहनशीलता की जड़ हिला देगा, हममें उच्छृंखलता और प्रेम के बंधन को ढीला कर देने की शक्ति पैदा कर देगा। जिस प्रेम का आदर्श बलिदान (Sacrifice is love) है, उस पवित्र प्रेम से घृणा करना सिखलावेगा। अतः मेरी सम्मति में दांपत्य जीवन को सुखी बनाने के लिये किसी और योजना की आवश्यकता है। इसमें संदेह नहीं कि गौड़जी का हृदय मर्मांतक पीड़ा से ही पीड़ित होकर तलाक़-बिल के निर्माण में अग्रसर हुआ है, जिसके लिये वह धन्यवादार्ह हैं। किंतु हिंदू-समाज की वर्तमान सुषुप्तावस्था में यह बिल हानिकर ही सिद्ध होगा। यद्यपि यह कटु सत्य है कि हिंदू-समाज स्त्रियों और अछूतों की उन्नति का घोर विरोधी रहा है, और एक प्रकार से अब भी पूरी शक्ति के साथ है। फिर भी नवीन क्रांति के अनेक लीडर सच्चे हृदय से हमारी सर्वतोमुखी उन्नति चाहते हैं। अतः हमें स्वयं विशेष सावधानी से अपने प्रस्ताव (आदर्शवादी) उनके सम्मुख रखने चाहिए—

(क) इसमें ज़रा भी संदेह नहीं कि हिंदू-समाज का दांपत्य जीवन सुखी नहीं है, भले ही उसकी विषम वेदना का वर्णन वर्तमान समाचार-पत्रों में न प्रकाशित हो! उसकी मूक-वेदना को बालक-रुदन की भाँति समाज समझने में असमर्थ है। स्त्रियाँ अंदर-ही-अंदर रोती और अंत में माथा ठोंककर बैठ जाती हैं कि 'बहन, भाग्य में यही लिखा था।' कितना सारल्य, कितना त्याग है! इसलिये आवश्यकता है कि वैवाहिक पद्धति में गुण-कर्मानुसार परिवर्तन किया जाय।

प्रचलित वर्तमान विवाह-पद्धति सुखी जीवन में विशेष बाधा है। बाल्य विवाह, पुरोहितों के लग्न-मुहूर्त के विचारों में विषमता तो अनर्थ करते ही हैं, सबसे बड़ा और भयंकर अनर्थ वर खोजनेवाले करते हैं। वे रंग-रूप, गुण-कर्म की चिंता नहीं करते, वे तो गले मढ़ने की एक रस्म-सी अदा करते हैं। वे तो अपनी पसंद देखते हैं, और कुल। उन्हें क्या परवा कि लड़की काश्मीर-कुसुम है, तो लड़का...। इसी भाँति लड़के के लिये भी है। प्राचीन समय की स्वयंवर-प्रथा बहुत उत्तम थी। मैं पाश्चात्य देशों के कोर्ट-शिप का समर्थन नहीं करती। किंतु समाज से इतना अवश्य चाहती हूँ कि लड़के-लड़कियों को वयस्क होने पर शिक्षा और रूप का ध्यान रखकर ही विवाह-सूत्र में आबद्ध करे, अन्यथा दांपत्य जीवन काफ़ूर हो जायगा। एक दूसरे की कम-ज़्यादा शिक्षा वैषम्य का बीज-वपन करता है, और एक दूसरे का असौंदर्य प्रेम में बाधक है। "Beauty requires no Explanation" सौंदर्य में आकर्षण है। आकर्षण प्रेम का कारण है। तात्पर्य यह कि सुखी जीवन में शिक्षा, रूप-रंग, गुण और कर्म की पूर्ण आवश्यकता है।

(ख) वर्तमान दांपत्य जीवन में पुरुष स्त्रियों को मनुष्य नहीं समझते। उनके दुःख-दर्द को, उनके रोगों को, उनकी आवश्यकताओं को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। 'शूद्र, गँवार, ढोल, पशु, नारी'-वाला राग आज भी पंचम स्वर में अलाप रहे हैं, पैर की जूती समझते हैं। मंगल कवि 'टेनीसन' का यह वाक्य "Man is the hunter and woman is his game" आज भी उनकी कामुकता का परिचय दे रहा है। अतः आवश्यक है कि पुरुष-समाज अपने दृष्टि-कोण में परिवर्तन करे, तभी वह पूर्ण सुखी रह सकता है। उसे स्त्रियों को मनुष्य समझना और उनके प्रति मानवता ही का व्यवहार करना चाहिए। उनका दुःख-दर्द अपना और उनका सुख

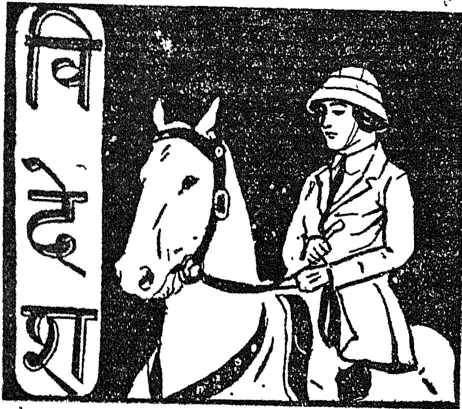
अपना, अर्थात् उनको अपने में और अपने को उनमें केंद्रीभूत करना चाहिए।

(ग) स्वास्थ्य इत्यादि का ही ध्यान रखकर कार्य करने के घंटों की व्यवस्था करनी चाहिए। स्त्रियों को किसी प्रकार की मशीन समझना भारी भूल है। कार्य की अंधाधुंध बहुलता संतति के रक्षण-पोषण में विशेष बाधक है, जो दांपत्य जीवन-पुष्प के सुंदर फल हैं।

(घ) सब कुछ करते हुए भी पुरुष-समाज की कठोरता का कदाचित् स्त्रियों के प्रति अंत नहीं हुआ है। तभी तो संपत्ति की अधिकारिणी पूर्ण रूप से वे नहीं हैं। प्रायः देखा जाता है कि यदि संतति हुई, तो चाहे धन-संचय की चिंता करके कुछ छोड़ जायँ, अन्यथा मरने के पश्चात् विधवा पत्नी को आर्थिक संकट में अवश्य डाल जायँगे। हा! कितना जघन्य दुष्कृत्य है! 'देश-दर्शन'-नामक पुस्तक में श्रीठाकुर शिवनंदनसिंहजी ने एक ऐसी ही घटना का उल्लेख किया है। पुरुषों को चाहिए कि वे प्रारंभ ही से व्यय में पत्नी की सम्मति लें, केवल अपनी इच्छा-पूर्ति में समस्त धन स्वाहा कर देना महापाप है।

(ङ) स्त्री-पुरुषों को व्यावहारिक कार्य-कुशलता में दक्षता प्राप्त करनी चाहिए। आपस में शिक्षा आदि का आदान-प्रदान होना और एक दूसरे का गुण ग्रहण करना चाहिए। पड़ोस के पारस्परिक गृह-दाह से शिक्षा लेनी चाहिए।

सुंदरीदेवी



१. चीन में फ़ैसिज़्म



पान ने चीन के उत्तरीय भाग का २५० स्कायर मील रौंद डाला है। चीन इस समय घोर संकट में है। वह जापान से लड़ना चाहता है। एक जापानी के पीछे २० चीनी जान देना चाहते हैं, पर राष्ट्रीय चीन की सेना इतनी असंगठित है कि बार-बार चीन हारता जाता है, और युवक चीन क्रोध-पूर्वक होंठ काट रहा है। अतएव चीनी युवक राष्ट्रीय सरकार के स्थान पर एक नई शासन-प्रणाली स्थापित करना चाहते हैं, और आजकल उनकी आँख योरप के मुसोलिनी, हिटलर, स्टेलिन या पिलसुडस्की की ओर उठ रही है। उनका यह विश्वास हो गया है कि बिना निरंकुश शासन हुए चीन का उद्धार नहीं होगा।

किंतु जब राजनीतिकता का दिवाला निकल जाता है, और राष्ट्रीय दरिद्रता से बचने का कोई उपाय नहीं सूझता, उस अवसर पर फ़ैसिज़्म की सूझती है। आज चीन में फ़ैसिज़्म की लहर ज़ोरों से आ गई है। परंतु क्या फ़ैसिज़्म से चीन का उद्धार हो सकता है? क्या चीन फ़ैसिज़्म को अपनाने के लिये तैयार है? ये ही प्रश्न हैं। और, इन प्रश्नों पर शंघाई (चीन) से प्रकाशित होनेवाले अँगरेज़ी पत्र 'पीपुल्स ट्रिब्यून' में 'राजनीति के एक विद्यार्थी' ने विचार प्रकट किया है। फ़ैसिज़्म की बारीकियों की छान-बीन करने के बाद वे चीन में उसकी उपादेयता की मीमांसा करते हैं—

"पहले तो क्या चीन की आर्थिक इमारत पूँजीवाद की उस मंज़िल तक पहुँच गई है कि उसका गिर जाना अवश्यंभावी हो जाय? इसका उत्तर निश्चित रूप से 'नहीं' है। आर्थिक रूप से चीन अभी नवीन युग से एक शताब्दी पीछे है।

"दूसरे, क्या चीन में प्रजातंत्रात्मक शासन इस सीमा तक पहुँच गया है कि अब उसकी नैतिकता भ्रष्ट होती जा रही है? बिलकुल नहीं, क्योंकि अभी वास्तव में यहाँ राजनीतिक विचार से जन-तंत्रात्मक शासन शुरू ही नहीं हुआ है।

"तीसरे, क्या चीनी-समाज में फ़ैसिज़्म की जड़ डाली जा रही है? नहीं, केवल कुछ थोड़े-से प्राचीन पूँजीवाद के समर्थक लोग ही इसके समर्थक हैं, पर वे जनता के सच्चे नेता नहीं हैं।

"चौथे, क्या चीन अपनी ऐसी दशा में पूँजीवाद तथा साम्राज्यवाद का विरोधी होकर रहे, या समर्थक? समर्थक होने पर उसे अन्य फ़ैसिस्ट-शक्तियों का पदा-नुसरण करना पड़ेगा। प्रत्येक प्रत्यक्षदर्शी के लिये उत्तर स्पष्ट है। चीन को तुरंत अपनी दासता मिटा देनी चाहिए, तथा जी-जान से साम्राज्यवाद से लोहा लेना चाहिए, और साम्राज्यवाद से

ही उत्पन्न फ़ैसिज़्म से भी विग्रह करना चाहिए। अब, जब हमारी आर्थिक इमारत बैठा चाहती है, हमको चाहिए, हम अपनी जनता का विदेशी पूँजीपतियों द्वारा धन-अपहरण रोक दें, और अपने देश की आर्थिक उन्नति के सभी साधनों को एकत्रित कर उनसे देश का उद्धार करें। औद्योगिक सभ्यता तथा वातावरण से दूर चीन फ़ैसिज़्म को किस प्रकार अपना सकता है? इस प्रकार का अप्राकृतिक कार्य राष्ट्र के लिये आत्मघातक होगा।"

किंतु चीन में फ़ैसिज़्म के समर्थक यह कहते हैं कि वे विदेशों के फ़ैसिज़्म को पूरी तरह से अपने देश में प्रचलित नहीं करना चाहते। वे तो चाहते हैं कि फ़ैसिज़्म के कतिपय आवश्यक अंगों तथा स्वर्गीय डॉ० सन-यात-सेन (चीनी प्रजातंत्र के पिता) के प्रजातंत्रवाद के कतिपय अंगों को मिलाकर एक नवीन शासन-प्रथा चलाई जाय। इसका उत्तर वही विद्वान् 'विद्यार्थी' इस प्रकार देता है—

"पहले तो फ़ैसिज़्म इटालियन राष्ट्रीयता नहीं, किंतु उससे बहुत दूर की चीज़ है। यह एक प्रकार से प्राचीन रोमन-साम्राज्यवाद का एक अंग है, जिसका लक्ष्य प्राचीन रोमन-वैभव को प्राप्त करना और जूलियस सीज़र के सैनिक कार्य क्रम का अनुसरण करना है। पर यही बात डॉ० सन-यात-सेन के सिद्धांत से बिलकुल उलटी है। उनके सिद्धांत का एक यह भी उद्देश्य था कि चीन को अन्य राज्यों के समान पद दिलाकर, उनके साथ सहयोग कर, संधि तथा शांति की रक्षा कराई जाय, और पड़ोसियों के साथ तथा विश्व-भर में सबका सद्भाव प्राप्त किया जाय। दूसरे, फ़ैसिज़्म का सिद्धांत है निरंकुशता-प्रजातंत्र के विपरीत कार्य! दूसरे शब्दों में इससे 'डिक्टेटरशिप' का जन्म होता है। प्रजातंत्र का एक ढाँचा रह जाता है, जो एक उपहास-मात्र ही होता है—जनता के अधिकार तथा स्वाधीनता टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। राजनीति से केवल धनियों की सेवा का काम लिया जाता है।

"किंतु राजनीतिक सिद्धांत के विचार से डॉ० सन-यात-सेन के कार्य-क्रम में तथा फ़ैसिज़्म में बड़ा अंतर है। डॉ० सेन एक ऐसी योजना बना चुके थे, जिसके अनुसार चीन में पहले क्रांति हो, यानी वह सैनिक युग हो, फिर शिक्षा-युग हो (जनता को वैध-शासन की शिक्षा दी जाय), और अंत में वैध-शासन-प्रणाली का युग हो। शिक्षा-युग ही परिवर्तन का युग है, और इस बीच में कुओ-मिंग-तांग (राष्ट्रीय दल) को जनता को वैध-शासन के लिये तैयार कर देना चाहिए। अभी चीन में डॉ० सेन का कार्य-क्रम पूरा नहीं किया जा रहा है। अस्तु। यद्यपि फ़ैसिज़्म एक नई शक्ति है, पर चीन के योग्य नहीं।"

इन पंक्तियों से फ़ैसिज़्म के सिद्धांत की भी ख़राबी मालूम हो जाती है।

× × ×

२. सत्याग्रह और निरस्त्रीकरण

हाल ही में, कैंब्रिज में, विद्यार्थी-संघ (National Union of Students) में भाषण देते हुए, प्रसिद्ध वक्ता और लेखक पी० सी० ई० एम्० जोड ने एक रोचक व्याख्यान दिया था। मि० जोड का कहना था कि "निरस्त्रीकरण-सम्मेलन का केवल यही उद्देश्य है कि महासमर भले ही हो, पर उससे राजनीतिज्ञों को कोई हानि न पहुँचने पावे।" आपने यह भी कहा कि ज्यों-ज्यों समर को अधिक मानवीय बनाने की चेष्टा की जा रही है, त्यों-त्यों बात उलटी होती जा रही है। यदि भावी महासमर को रोकने की चेष्टा नहीं की जाती, तो आगामी पाँच वर्ष में "मेरे सामने बैठे हुए सभी लोग मर जावेंगे।" इसके बाद उत्तेजित होकर वह बोले—

"क्या ऐसी दुरवस्था को रोकने का कोई उपाय है? आपके पास केवल एक ही उपाय है। कोई नया तरीक़ा सोचिए। सबसे महत्त्व-पूर्ण तरीक़ा यह है कि हरएक आदमी लड़ना अस्वीकार कर दे। यदि पूछा जाय कि तुम्हारे देश पर हमला होगा, तो क्या करोगे, तो उत्तर देना कि 'आज्ञा नहीं मानी जायगी।'

"चारो ओर हड़ताल कर दी जायगी। सामान,

माल, सब स्टेशनों और बंदरगाहों पर पड़ा रहेगा। सरकारी नौकर या कर-दाता सभी समान रूप से आज्ञा मानना अस्वीकार कर देंगे।

"पिछली लड़ाई में समर के विरोधियों की—जिनको उससे धार्मिक विरोध था—संख्या नगण्य थी। भावी समर में यह संख्या इतनी अधिक होगी कि उनके उत्पात से बचने के लिये उन्हें गोली मारनी पड़ेगी। पर वे इतने अधिक होंगे कि गोली मारने से भी कम न होंगे!"

भावी महासमर के विरुद्ध यह शुद्ध सत्याग्रह की सीख है! पता नहीं, यही बात यदि अनुचित क़ानून की अवज्ञा के लिये कही जाय, तो वह 'काले-क़ानून' के अंतर्गत क्यों आ जाती है?

× × ×

३. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार

मौजूदा अर्थ-संकट तथा व्यापार की अंतर्राष्ट्रीयता का क्या संबंध है, इस पर लॉर्ड मेलचेट ने एक गंभीर, पर छोटे-से लेख में बड़ा सूचना पूर्ण प्रकाश डाला है। यहाँ उस लेख का अविकल अनुवाद दे देना आवश्यक है—

"व्यापार में कितनी भयंकर मंदी आ गई है, इसका पता अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के अद्भुत-रूप से कम हो जाने से लगता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बहुत गिर गया है। आर्थिक इतिहास में यह अभूतपूर्व घटना है। ऐसी मंदी कभी नहीं आई थी, इससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बहुत ही कठिन हो गया है, और हमारे (इँगलैंड)-ऐसे आयात के व्यापार पर निर्भर देश के लिये यह विकट समस्या है।

"आज बहुत-से देश यथाशक्य स्वावलंबी होना चाहते हैं। वे विश्व-संकट से अपने को छुड़ाना चाहते हैं। उनके अनुसार विश्व का आर्थिक नियंत्रण चला गया है। ऐसा होने पर विश्व का राजनीतिक नियंत्रण भी जाता रहता है। देशों का विश्वास हो रहा है कि यदि वे दुनिया से अपना मुख मोड़ लें, अपना द्वार बंद कर लें, पहले की विलासिता की कुछ वस्तुओं से हाथ खींच लें, तो उनकी समस्या हल हो जायगी। ऐसे तर्क को काटना बड़ा कठिन होता है।

"निस्संदेह आज विज्ञान की भी यही प्रवृत्ति है कि सभी देशों को, २० या ३० वर्ष पहले की तुलना में, कहीं अधिक स्वावलंबी बना दे। औद्योगिक देशों की दशा के अध्ययन से यही बात सिद्ध होती है। एक ख़ास चीज़ थी, जिसे अमेरिका बाहर से ही मँगाता था। विशेषतः इँगलैंड से माल जाता था। अमेरिका ने उसे स्वयं बनाना शुरू किया, और स्वावलंबी हो गया। उसी चीज़ में हम जापान को स्वावलंबी बनते देख रहे हैं। चीन भी उसी चीज़ को बनाना शुरू करनेवाला है। अगले बीस वर्ष में चीन भी इस वस्तु के निर्माण द्वारा स्वावलंबी हो सकता है।

"औद्योगिक तथा वैज्ञानिक ज्ञान की प्रगति के कारण प्रायः सभी देश स्वावलंबी बनते जा रहे हैं। जब इस युग का इतिहास लिखा जायगा, तो उसमें यह लिखा होगा कि उद्योग-धंधा छोटी मात्रा में इँगलैंड में जन्म लेकर योरप के कुछ भाग तक फैल गया। इँगलैंड इसका अगुआ था। अब यह समूचे विश्व में फैल गया है। इस समय हम औद्योगिक जगत् की संगठित प्रगति देख रहे हैं। आगामी पचास वर्षों में क्या होनेवाला है? जब ये सभी देश स्वावलंबी हो जायँगे, तो क्या भावना होगी?

"मेरी सम्मति में इसका यह अर्थ नहीं कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में कमी होगी। शीघ्र ही देशों को पता लग जायगा कि एक देश के लिये यही विशेष लाभदायक है कि वह एक विशेष प्रकार की ही वस्तु तैयार करे, और शेष को दूसरे से ख़रीद ले। अधिक दृढ़ आर्थिक भित्ति पर बुद्धिमत्ता-पूर्ण बँटवारा हो जायगा। आपस में यही भावना होगी कि बड़े-बड़े राज्यों के टुकड़ों में दुनिया को बाँटकर उसे स्वावलंबी गुटों का एक समुच्चय बना दिया जाय। इन गुटों में सबसे बड़ी सफलता यही प्राप्त की जायगी कि परस्पर वस्तुओं का स्वतंत्र विनिमय होगा। अनुसंधान, नई

खोज आदि का सरलता-पूर्वक परिवर्तन होता रहेगा।

"कोई देश आविष्कारों पर एकाधिकार नहीं प्राप्त कर सकता। कुछ देशों के पास, लोगों के अधिक शिक्षित होने तथा अध्ययन के लिये अवसर रहने के कारण, नई खोज करने का अधिक अवसर है, पर इन खोजों पर उनका एकाधिकार नहीं हो सकता। यदि ऐसा होता भी, तो भी अंत में यही मालूम पड़ता कि नई खोजों के सभी देशों द्वारा स्वतंत्र उपयोग से ही विशेष लाभ होता है। शीघ्र ही विज्ञान तथा उद्योग की अंतर्राष्ट्रीय प्रगति होगी, और लोग एक छोटे-से टुकड़े की प्रगति से संतुष्ट न होकर विश्व की प्रगति को अधिक लाभदायक मानने लगेंगे।

"आर्थिक एकत्व कैसे, किस प्रकार स्थापित हो, इस प्रकार के भाव, मेरी समझ में, योरप में, लोगों के मन में उठने लगे हैं। योरप में 'आर्थिक संयुक्त राज्य योरप' की स्थापना की चेष्टाएँ असफल हुई हैं, पर यह बात बड़ी स्वतंत्रता-पूर्वक सोची जा रही है, और संभव है, बहुत शीघ्र ही आर्थिक दृष्टि से योरप एक संयुक्त राष्ट्र बन जाय।

"इस दिशा में रूस का भी विचार रखना पड़ेगा। यह स्वयं एक महाद्वीप है, इसका एक ही आर्थिक गुट है। इतने धनी देश की अयोग्य जनता का भाग्य एक दुस्साध्य शासन-प्रणाली के हाथों में है। लोगों को आश्चर्य है, क्या भविष्य में इस देश की अयोग्य जनता उतनी प्रगति कर सकती है, जितनी दूसरे देश की योग्य जनता? संभव है, रूसी जनता सफल हो। यदि ऐसा होगा, तो संसार के सामने अद्भुत समस्या उपस्थित हो जायगी। इस सफलता से योरपीय देशों को आर्थिक एकता की शीघ्र ही स्थापना में सहायता मिलेगी।

"हम एक सुदूर पूर्वीय—प्रशांत महासागरीय—संघ की भी कल्पना कर सकते हैं, जब उसके तट के देशवासी राष्ट्रीय विरोध भूलकर आर्थिक संघ की स्थापना कर लेंगे। इससे वे अपनी आर्थिक समस्याओं को हल कर लेंगे। इनमें सबसे बड़ा, स्पष्ट तथा सरलतम ब्रिटिश-साम्राज्य का संघ है। विश्व का एक चौथाई भाग—मनुष्य की आवश्यकता की, कच्चे मालों की, आबोहवा की सभी ज़रूरतों को पूरा करनेवाला राज्य ब्रिटेन के हाथ में है।"

× × ×

४. निरस्त्रीकरण-सम्मेलन की असफलता

जेनेवा में महीनों तक परिश्रम करने के बाद अंत में निरस्त्रीकरण-सम्मेलन असफल हो गया। क्यों असफल हुआ, क्यों किसी प्रकार का निपटारा न कर सका; तथा इसकी समस्याएँ क्या हैं, इस पर बंबई के 'फ़्री प्रेस जर्नल' ने एक सूचना-पूर्ण संपादकीय नोट लिखा है—

"अंत में फ़्रांस तथा उसके मित्रों ने निरस्त्रीकरण-सम्मेलन को असफल करा ही दिया। बिना अपनी रक्षा का स्वत्व स्वीकार कराए फ़्रांस ने अपनी भारी तोपों को कम करना, सीमित करना या 'टैंक' या वायुयानों की संख्या कम करना अस्वीकार कर दिया। रक्षा के लिये ब्रिटेन तथा अमेरिका केवल 'आक्रमणकर्ता के विरुद्ध अंतर्राष्ट्रीय समझौता' को ही एकमात्र गारंटी समझते हैं। पर फ़्रांस का कहना है कि जब वास्तव में लड़ाई छिड़ जाती है, इस प्रकार की गारंटी कोई काम नहीं देती। जब तोपें गरजने लगती हैं, और वायुयान घहराने लगते हैं, उस समय संधि और शांति उनके नारकीय शोर में ही दफ़न हो जाती हैं। फ़्रांस चाहता है कि या तो निरस्त्रीकरण की बात ही न हो, यदि हो, तो पहले दूसरों का निरस्त्रीकरण कर, विशेषकर जर्मनी का, तब उसकी बात चलाई जाय। यदि ऐसा नहीं हो सकता, तो वर्तमान परिस्थिति बनी रहेगी, और जर्मनी का पद बहुत समय तक नीचे के लिये गिरा रहेगा।

"इधर बाल्कन के छोटे राज्य चतुःशक्ति-समझौते के विरुद्ध उठ खड़े हुए हैं; क्योंकि वह समझौता योरप की राजनीतिक शक्ति जर्मनी, इटली, फ़्रांस तथा इँगलैंड के हाथ में केंद्रित कर देता है, वार्सेले-संधि

की पुनरावृत्ति की गुंजाइश करता है। यदि संधियों को दुहराया जायगा, तो उनकी गहरी हानि होगी, और बुरे ढंग से जो नई राज्य-सीमा उन्हें प्राप्त हो गई है, वह भंग हो जायगी। इसीलिये वे ऐसी चेष्टाओं का विरोध कर रहे हैं, जिससे वे बड़ी शक्तियों की दया पर आश्रित हो सकते हैं।"

फिर भी छोटे राज्यों ने ब्रिटिश विदेशी मंत्री सर जॉन साइमन से यही कहा है कि यदि चतुःशक्ति-संधि पर हस्ताक्षर होगा, 'तभी हम राष्ट्र-परिषद् छोड़ेंगे, अन्यथा नहीं।'

ब्रिटेन और अमेरिका जिस 'आक्रमणकारी प्रतिबंधक'-नियम की रचना कर फ्रांस आदि की 'रक्षा' की गारंटी देना चाहते हैं, उसमें 'आक्रमणकारी'-शब्द की परिभाषा के लिये एक समिति नियुक्त हुई थी। इसके अनुसार पाँच प्रकार के देश आक्रमणकारी हो सकते हैं—(१) जो युद्ध की घोषणा करे, (२) सशस्त्र सेना द्वारा, बिना युद्ध की घोषणा किए, हमला करे, (३) स्थल, जल या वायु-मार्ग से किसी राज्य, उसकी जल या वायु-सेना पर आक्रमण करे, (४) किसी राज्य के सामुद्रिक तटों को बंद करा दे, (५) किसी राज्य पर आक्रमण करनेवाले सशस्त्र गरोहों की सहायता करे। यह परिभाषा सोवियट-रूस की परिभाषा के आधार पर तैयार की गई है। पाँच सदस्यों का एक कमीशन होगा, जो 'आक्रमणकारी' के कार्यों की रिपोर्ट की जाँच कर, यदि उसे दोषी पावेगा, तो, अन्य सभी राज्य उस आक्रमणकारी के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिये 'बाध्य' होंगे।

फ्रांस को इस 'बंधन' पर भरोसा नहीं है।

परिपूर्णानंद वर्मा



१. कहानियाँ

मैं क्रांतिकारी कैसे बना ?—लेखक, श्रीराम-विलास शुक्ल 'उदय'; प्रकाशक, हिंदी-राष्ट्रीय सदन, दिल्ली; पृष्ठ-संख्या १००; मूल्य ॥)

पुस्तक पढ़कर अनायास ही मुँह से निकल पड़ा—"नाम बड़े, दर्शन थोड़े।" नवीन लेखक की रचना की ऐसी कड़ुई आलोचना करने का जी नहीं करता था, फिर भी रहा न गया। पुस्तक का शीर्षक कितना सुंदर है! कितना आकर्षक है! शीर्षक देने में लेखक ने बड़े-बड़े विज्ञापनबाज़ों के भी कान काट लिए हैं।

पुस्तक का नाम पढ़कर मैंने पुस्तक हाथ में उठा ली। क्रांतिकारी का जीवन-चरित्र पढ़ने के लिये जी मचल पड़ा। परंतु कहाँ का क्रांतिकारी! कैसा क्रांतिकारी! मैंने तो वहाँ एक आशिक़ पाया, जिसने पहले मीरा पर दिल उछाल दिया, तथा कुछ दिनों बाद एक मुसलमान-युवती गुलशन पर फ़रेफ्ता हो गया, और अंत में उस अलहड़ युवक ने गुलशन से निकाह भी कर लिया। यही नायक की वीरता है, यही उसकी बहादुरी है, जिसने उसे क्रांतिकारी की उपाधि से विभूषित कर दिया। कहानी का अंत बड़ी उतावली में किया गया है। मालूम होता है, लेखक महोदय लिखते-लिखते थक गए, जी ऊब गया, जैसे-तैसे कहानी का अंतिम अध्याय समाप्त कर दिया। उपसंहार का सिर-पैर कुछ समझ ही में नहीं आता।

दो कहानियाँ और भी हैं—वे पहली कहानी से भी बढ़कर हैं। भाषा में प्रौढ़ता नहीं है—कहीं-कहीं सजीवता अवश्य है। अँगरेज़ी-शब्दों का जहाँ कहीं भी प्रयोग है, सर्वथा अशुद्ध रूप में है। 'सीट' को 'सिट', 'टाइमपीस' को 'टाईपीस' लिखना अनुचित है। हो सकता है, ये प्रूफ़ की ग़लतियाँ हों, परंतु एक ही ग़लती की पुनरावृत्ति लेखक की भूल प्रकट करती है।

आजकल कहानियों के संग्रह और उपन्यास बड़ी धूम से प्रकाशित हो रहे हैं। यदि हम नवीन लेखकों की रचनाओं की त्रुटियों की आलोचना किए बिना ही छोड़ दें, तो हम अपने कर्तव्य से च्युत होते और उनके उन्नति के मार्ग को रोकते हैं। 'उदय'जी की प्रस्तुत पुस्तक सुधार तथा संशोधन के योग्य है।

× × ×

२. नाटक

कुंदमाला (नाटक)—मूल-लेखक, महाकवि दिङ्नाग; अनुवादक, श्रीयुत पं० वागीश्वर विद्यालंकार; प्रकाशक, विश्व-साहित्य-ग्रंथमाला, लाहौर; पृष्ठ-संख्या १०६; मूल्य १)

संस्कृत के विद्वानों में महाकवि दिङ्नाग के

सुप्रसिद्ध नाटक 'कुंदमाला' का बड़ा मान है। कुंदमाला में लोकापवाद से बचने के लिये मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के अन्याय-पूर्ण कारनामों का लेखा है, सती सीता के निर्वासन की करुण कहानी है, पति-वियोग में दुखी अबला के विलाप का हृदय-द्रावक चित्रण है। नाटक का कथानक बड़ा चुटीला है, हृदय में दर्द पैदा कर देता है।

श्रीपं० वागीश्वर विद्यालंकारजी ने इसी नाटक का हिंदी में उल्था किया है। आपने महाकवि दिङ्नाग की महान् कृति को केवल पंद्रह ही दिन में हिंदी का चोला पहना दिया है। संपादक श्रीचंद्रगुप्तजी का कहना है—"जो लोग मूल-संस्कृत के साथ इस अनुवाद का मिलान करेंगे, उन्हें इस अनुवाद की श्रेष्ठता का अंदाज़ा आसान से लग सकेगा।" आगे चलकर श्रीचंद्रगुप्तजी कहते हैं—"मुझे विश्वास है कि इस अनुवाद की बदौलत हिंदी-प्रेमी इस 'छिपकर रहनेवाले कवि' की क़ीमत पहचान सकेंगे।" मालूम नहीं, अनुवादक की किस पंक्ति पर रीझकर संपादक ने यह प्रशंसा-पत्र दे डाला। मैं तो संपादक चंद्रगुप्त के इस वाक्य की पुष्टि के लिये कुंदमाला का कोना-कोना चिराग़ लेकर ढूँढ़ आया, और अंत में हताश होकर बैठ रहा। नमूने पर ग़ौर कीजिए—

धान्य-लता वह पकड़ हाथ में अपने बाएँ,
रखकर दायाँ हाथ और घुटने पर दाएँ।
कदम-कदम पर मेरे अपना कदम जमाएँ,
धीरे-धीरे आप धैर्य धर आर्ये! आएँ।

बाएँ, दाएँ, जमाएँ, आएँ आदि की तुकबंदी ही यदि कवि की प्रतिभा प्रदर्शित करती है, तो संपादक चंद्रगुप्तजी का सर्टीफ़िकेट नंबर दो सही है। यही नहीं, जितनी भी पद्य-पंक्तियाँ हैं, लगभग सभी नीरस हैं, शुष्क हैं, कल्पना-शून्य हैं। संभव है, यदि पाठक ब्राह्म-मुहूर्त में एकाग्र-चित्त होकर कुंदमाला का मनन करें, तो 'छिपकर रहनेवाले कवि' की क़ीमत पहचान सकें।

हमने मूल-रचना से अनुवाद का मिलान नहीं किया है, फिर भी कुंदमाला को बड़े ध्यान से पढ़ा है। हम केवल इतना ही कह सकते हैं, अनुवाद ख़ासा है, बुरा नहीं। अनुवाद में भाषा की भूलें हैं, अशुद्धियाँ हैं। केवल पंद्रह दिन में एक महाकवि की सुप्रसिद्ध कृति का अनुवाद कर डालना तो सहल है, परंतु ऐसे अनुवाद में पूर्ण सफलता प्राप्त करना कठिन ही नहीं, असंभव है। यदि अनुवाद इतनी उतावली में न किया गया होता, तो, संभव था, इतनी अशुद्धियाँ नज़र न आतीं।

भाषा की कुछ भूलें केवल उदाहरणार्थ पेश की जाती हैं। पृष्ठ ४१ पर वागीश्वरजी लिखते हैं—"किंतु ये इतने चिंतातुर हैं कि 'आगे चल रहे भी' मुझे नहीं देखते।" 'आगे चल रहे भी' कहाँ की भाषा है? क्या ऐसी भाषा का भी साहित्यिक रचनाओं में प्रयोग होता है?

उसी पृष्ठ पर आप फिर लिखते हैं—"तपस्वियों के मुख में यह संबोधन शोभा नहीं देता।" मुख 'में' नहीं, मुख 'से'। क्या यह भी बताने की आवश्यकता है, क्यों?

पृष्ठ ४८ पर विद्यालंकारजी लिखते हैं—"पक्षी आपस में चोचले कर रहे थे।" क्या पं० वागीश्वरजी ने कभी चोचले के अर्थ तथा प्रयोग पर भी ग़ौर किया? शायद पंडितजी 'चुहलें' लिखना चाहते थे, परंतु पंद्रह ही दिन में अनुवाद समाप्त कर देने की जल्दी में 'चोचले' लिख गए।

बहुत-सी भूलों में से दो-चार भूलों का उल्लेख किया गया है। क्या ही अच्छा होता कि ऐसे उत्तरदायित्व-पूर्ण कार्य को तनिक सावधानी तथा सतर्कता से किया गया होता।

दिङ्नाग की कुंदमाला साहित्य की चीज़ है। प्रस्तुत अनुवाद की छपाई, सफ़ाई, जिल्द आदि सभी कुछ सुंदर है। देखने में भव्य है, पढ़ने में रोचक।

× × ×

३. जीवनी

अशोक—लेखक, श्रीपं० रामनरेश त्रिपाठी ; प्रकाशक, हिंदी-मंदिर, प्रयाग ; पृष्ठ-संख्या ६३ ; मूल्य।)

हिंदी-मंदिर-चरितावली का दूसरा पुष्प । लेखक हैं बालोपयोगी साहित्य के सुप्रसिद्ध तथा सुपरिचित निर्माता श्रीपं० रामनरेश त्रिपाठी । 'अशोक' नसीहतों का भंडार है । कुरूप राजकुमार अशोक पिता को फूटी आँख भी न सुहाता था । अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल से वह राज्य का अधिकारी हुआ। दूसरी ओर उसका भाई सुसीम पिता का लाड़ला तथा कृपा-पात्र होते हुए भी अपने उद्दंड तथा चिलबिले स्वभाव के कारण मंत्री का बुरा बन बैठा, तथा अपनी इस कमज़ोरी के कारण वह राज्याधिकार से भी वंचित हो गया । इस छोटी-सी घटना से बालकों को शिष्टाचार तथा बड़ों के प्रति सदैव आदर-सम्मान का व्यवहार करने की अमूल्य शिक्षा मिलती है ।

सम्राट् अशोक कैसा क्रूर शासक था, उसके जीवन में कैसा घोर परिवर्तन हुआ, अंत में वह कैसा प्रजा-वत्सल, न्याय-प्रेमी तथा दयालु शासक हुआ, इन सभी बातों का इस नन्ही-सी पुस्तक में ब्योरा मिलता है।

पुस्तक में कहीं-कहीं प्रूफ़ की भूलें रह गई हैं । बच्चों की पुस्तकों में प्रूफ़ की ग़लतियाँ होना अनर्थ-कारी है । भोले-भाले, विवेक-हीन बालक एक बार शब्दों के अशुद्ध रूप को शुद्ध समझकर अपना लेंगे, तो उनके मस्तिष्क से उन भूलों का दूर करना कठिन हो जायगा ।

× × ×

पं० मदनमोहन मालवीय—लेखक, श्रीयुत इंद्र विद्यावाचस्पति ; प्रकाशक, अर्जुन-प्रेस, देहली ; पृष्ठ-संख्या ४८ ; मूल्य ≈)

प्रोफ़ेसर इंद्र ने अपनी सरस लेखनी द्वारा महामना पं० मदनमोहन मालवीय का संक्षिप्त जीवन-चरित्र इस पुस्तक में, बड़े सुंदर रूप में, अंकित किया है । २०) मासिक पानेवाला एक अध्यापक पैंतीस करोड़ नर-नारियों का उपास्य देव कैसे बन गया, यदि यह जानना हो, तो पाठक प्रोफ़ेसर इंद्र की लिखी हुई यह पुस्तक पढ़ें ।

पृथ्वीपालसिंह (बी० ए०, एल्-एल्० बी०)

× × ×

मंडन मिश्र—लेखक, श्रीकमलनारायण झा, 'कमलेश' ; प्रकाशक, पुस्तक-भंडार, लहरिया सराय ; पृष्ठ-संख्या ३७ ; मूल्य।) ; छपाई साधारण ।

प्रस्तुत पुस्तक पुस्तक-भंडार द्वारा प्रकाशित चारु चरितमाला की आठवीं पुस्तक है । इसमें स्वामी शंकरा-चार्य से शास्त्रार्थ करनेवाले मंडन मिश्र व उनकी सहधर्मिणी सरस्वती के चरितों का वर्णन करने की चेष्टा की गई है । यह पुस्तक शंकर-दिग्विजय के आधार पर लिखी गई है । पुस्तक अच्छी है ।

जीवनचंद्र जोशी (एम्० ए०)

× × ×

४. धार्मिक

बदरीनाथ—संपादक, पं० दयाशंकरजी दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०; प्रकाशक, पं० विद्याभास्कर शुक्ल, दारागंज, प्रयाग ; मूल्य ≈)

हिंदू-तीर्थ-माला का यह छत्तीसवाँ पुष्प है। बदरीनाथ-विषयक सभी ज्ञातव्य बातें इसमें आ गई हैं। तीर्थ-यात्रियों की सुविधा के लिये सभी बातें संक्षिप्त रूप में बताई गई हैं। प्रत्येक यात्री को यह पुस्तक ख़रीदनी चाहिए। दो सुंदर चित्र और बदरी-नाथ का नक़्शा भी दे दिया गया है । इससे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है ।

× × ×

मथुरा-वृंदावन—संपादक, पं० दयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०; प्रकाशक, धर्मग्रंथावली दारागंज, प्रयाग; मूल्य ≡)॥

मथुरा-वृंदावन बहुत प्राचीन नगर हैं। भगवान् कृष्ण की यह क्रीड़ा-स्थली है। कृष्ण ने मथुरा के आस-पास के जंगल में गायों को चराकर ब्रजवासियों को

आनंदित किया था, और इसी भूमि में रहकर गोपिकाओं के साथ रास रचा था।

इसी प्रकार वृंदावन भी कृष्ण भगवान् की रंग-भूमि है। वृंदावन तो आजकल शिक्षा का एक मुख्य केंद्र हो रहा है। यहाँ पर आर्य-समाज द्वारा संस्थापित गुरुकुल और राजा महेंद्रप्रताप द्वारा संस्थापित प्रेम-महाविद्यालय हैं। दोनो संस्थाएँ अपने-अपने ढंग की अनोखी हैं। इसी छोटी-सी पुस्तक में मथुरा और वृंदावन के सभी दर्शनीय स्थान बतलाए गए हैं—जैसे ठहरने के स्थान, मंदिर, आने-जाने का मार्ग, रेलवे-स्टेशन, शिक्षा-संस्थाएँ, साहित्यिक संस्थाएँ, ऐतिहासिक स्थान आदि। चार सुंदर आर्ट-पेपर पर छपे हुए चित्र और एक नक़्शा भी दिया गया है।

सब बातों का वर्णन रहते हुए भी दो बातें छोड़ दी गई हैं, जो खटकने योग्य हैं। एक तो प्रसिद्ध व्यापारी क्षेत्रपाल शर्मा के बृहत् कारख़ाने का कहीं भी ज़िक्र नहीं है। दूसरे, वृंदावन की भारतीय ग्रंथ-माला का कहीं उल्लेख नहीं है।

दुबेजी से मेरी प्रार्थना है, अगले संस्करण में यह भूल-सुधार अवश्य कर दें। पुस्तक उपादेय और संग्रहणीय है।

× × ×

काशी—संपादक, पं० दयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०; प्रकाशक, धर्म-ग्रंथावली, दारागंज, प्रयाग; मूल्य ≡)॥

काशी संस्कृत का मुख्य केंद्र है। संस्कृत के धुरंधर विद्वान् काशी में ही उत्पन्न हुए हैं। काशी भारत की नाक कही जाती है। यही नहीं, हिंदी के उद्भट विद्वान् भी काशी में हुए, और अब भी हैं। और, पूज्य मालवीयजी की कृपा से तो अब प्रायः बहुत-से विषयों के विद्वानों का अभाव आपको काशी में मिलेगा। इतना महत्त्व-पूर्ण स्थान होते हुए भी कहीं एक जगह इस पुण्य भूमि का संपूर्ण वर्णन नहीं मिलता था। ऐसे तीर्थ-स्थान के लिये तो एक बहुत बड़ी पोथी बनने की आवश्यकता थी। किंतु फिर भी दुबेजी ने इस छोटी-सी पुस्तक को लिखकर एक बड़ी भारी कमी की पूर्ति की है। काशी के विषय में जितना वर्णन होना चाहिए था, सभी आ गया है। काशी-यात्रा करनेवाला कोई भी व्यक्ति इस पुस्तक को लेकर संपूर्ण तीर्थ का दर्शन बिना किसी के पूछे कर सकता है। इस महत्त्व-पूर्ण पुस्तक का संग्रह प्रत्येक पढ़े-लिखे को करना चाहिए। पुस्तक का विषय और महत्ता देखते हुए मूल्य तो बहुत ही थोड़ा है।

'ग'



इस स्तंभ में हम हिंदी-प्रेमियों की जानकारी और सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई पुस्तकों के नाम देते हैं। पिछले महीने में निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—

(१) 'केदारनाथ'—संपादक, पं० दयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०; मूल्य =)

(२) 'अयोध्या'—संपादक, पं० दयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०; मूल्य =)॥

(३) 'हरिद्वार'—संपादक, पं० दयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०; मूल्य =)॥

(४) 'भक्त ध्रुव' (जीवनी)—लेखक, श्रीहर्ष-वर्धन शुक्ल ; मूल्य ।)

(५) 'उज्जैन'—संपादक, पं० दयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०; मूल्य =)

(६) 'भगवान् रामचंद्र' (जीवनी)—लेखक, श्रीपं० विद्याभास्कर शुक्ल, साहित्यालंकार ; मूल्य ।)

(७) 'मधुवन' (उपन्यास)—लेखिका, श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर; मूल्य १।)

(८) 'हत्यारे का ब्याह' (कहानी-संग्रह)—लेखक, मुंशी कन्हैयालालजी एम्० ए०, एल्-एल्० बी०; मूल्य १॥)

(९) 'भ्रम' (कहानी-संग्रह)—लेखिका, श्रीमती यशोदादेवी ; मूल्य १॥)

(१०) 'सुखी जीवन' (स्त्रियोपयोगी)—लेखक, श्रीविजयबहादुरसिंह बी० ए०; मूल्य १)

(११) 'संगीत-सौरभ' (संगीत)—लेखक, श्रीकिरणकुमार मुखोपाध्याय; मूल्य २)

(१२) 'बलिदान की चिनगारियाँ'—लेखक, श्रीएम्० एल्० सोजतिया; मूल्य ।॥)

(१३) 'जीवन-पथ' (उपन्यास)—लेखक, श्रीप्रफुल्लचंद्र ओझा; मूल्य ॥)

(१४) 'सूर्यकांता' (उपन्यास)—लेखक, श्रीबालमुकुंद खत्री; मूल्य १)

(१५) 'दीप-निर्वाण' (उपन्यास)—लेखक, श्रीप्रफुल्लचंद्र ओझा; मूल्य ॥)

(१६) 'वीर दुर्गादास'—लेखक, पं० कृष्ण-रमाकांत गोखले; मूल्य २॥)

(१७) 'विद्रोही सरदार' (उपन्यास)—लेखक, श्रीयुत विश्व; मूल्य १)

(१८) 'श्रीकृष्ण-चरित्र'—लेखक, पं० जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ; मूल्य १)



१- हिंदी में आलोचना

आलोचना साहित्य का मस्तिष्क है। अतः साहित्य के विकास का श्रेय अनेक अंशों में इसे ही प्राप्त है। हृदय का महत्त्व लेकर निकलनेवाली कविता भी यदि विचार और शृंखला से संबद्ध नहीं, तो शैशव-संलाप की तरह भावोच्छ्वास-मात्र है, उससे साहित्य को कोई बड़ी प्राप्ति नहीं हो सकती। काव्य-साहित्य के बड़े-बड़े आलोचक ऐसा ही कहते हैं, और पहले भी कह चुके हैं। एक उदाहरण लीजिए—

"हस्ते लीलाकमलमलके बालकुंदानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पांडुतामानने श्रीः;
चूडापाशे नवकुरवकं चारुकर्णे शिरीषं
सीमंते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ।"

(मेघदूते कालिदासस्य)

अर्थात् वहाँ, अलका में, वधुओं के हाथ में क्रीड़ा-कमल रहता है, केशों में कुंद की नई कलियाँ। लोध्र-पुष्पों के पराग से उनके मुखों की श्री पांडुता लिए हुए है। उनके चूड़ा-पाश में नया कुरवक खोंसा हुआ है, सुंदर कानों में शिरीष और माँग में (हे मेघ!) तुम्हारे आगम से पैदा हुआ कदंब-पुष्प।

इस वर्णन से, एकाएक, हाथ में लीला-कमल लिए, केशों में कुंद की कलियाँ चुने, लोध्र-रज मुखों में लगाए, चूड़ा-पाश में नया कुरवक और कानों में शिरीष खोंसे और माँग पर कदंब लगाए हुए अलकापुरी की सुंदरी वधुएँ दृष्टिगोचर होती हैं। जो आलोचक नहीं, वह इस पद्य का अंतर्महत्त्व न समझेगा, फूलों-से उज्ज्वल, नारियों का विकच सौंदर्य देखकर कालिदास को 'धन्य कवि, धन्य कवि' कहकर केवल धन्यवाद देगा। उसे फूल ही-से महाकवि कालिदास के हृदय के सिवा, संयुक्त, कंटकाधार मस्तिष्क—जिस पर यह कोमल कला टिकी हुई है—कदापि अनुभूत न होगा। वह चौंकेगा, जब आलोचक एकाएक पूछेगा, क्यों भाई, कुंद तो हेमंत-ऋतु का फूल है, वर्षा में वह खिलता ही नहीं, फिर महाकवि कालिदास ने मेघ से, जो आषाढ़ के पहले दिन रवाना होता है, कैसे कह दिया कि अलका की बहुएँ केशों में कुंद की कलियाँ चुन रखती हैं? केवल हृदय को काव्य में महत्त्व देनेवाला वह मनुष्य तब कालिदास पर निश्चय ही दोषारोप करेगा। दोष एक ही नहीं, लोध्र जाड़े में, कुरवक वसंत में और शिरीष ग्रीष्म में खिलते हैं। फिर एक ही समय, एक साथ, इतने फूल अलका की सुंदरियों को कैसे प्राप्त हो जाते हैं? केवल कमल और कदंब वर्षा में मिलते हैं।

जब तत्त्व, किसी आलोचक का सुझाया हुआ, उसकी समझ में आएगा, तब वह देखेगा, कालिदास

ने यहाँ मस्तिष्क से काम लिया है। कमल का यद्यपि वसंतांत से खिलना जारी हो जाता है, तथापि जल-पूर्ण शरद्-ऋतु में उसका पूरा विकास होता है, हेमंत के हिम से मुरझाने से पहले। इसलिये महाकवि कालिदास वर्षा के बादवाली शरद्-ऋतु से श्रीगणेश कर छहों ऋतुओं के पुष्प-विशेषों से अलका की रूपवती बहुओं को भूषित करते हैं। शरद् में हाथ में कमल देकर, हेमंत में कुंद की कलियाँ गूँथकर, शिशिर में लोध्र-पुष्प की रज द्वारा, वसंत में कुरवक खोंसकर, गीष्म में शिरीष और वर्षा में कदंब लगाकर। पुष्पों का क्रम देखिए, कितना अच्छा है। इस प्रकार महाकवि के हृदय के साथ मस्तिष्क का परिचय मिलने पर कविता कितनी खिल जाती है! कालिदास सुकुमारी बधुओं पर एक साथ इतने फूलों का भार नहीं रखते, सौंदर्य-ज्ञान के इतने कोमल कवि हैं; एक ही पुष्प प्रति ऋतु में अलका की सौंदर्य से हलकी परियों-सी बहुओं को देते हैं। "त्वदुपगमजम्" से स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि ने ऋतुओं के नामों को एक ही शब्द-बंध से, संक्षेप में इंगित कर, ज़ाहिर किया है।

यदि यह आलोचना न की गई होती, आलोचकों ने यह सौंदर्य न खोला होता, तो आज बड़े-बड़े पंडित एक ही साथ इतने फूलों की शोभा के भार से अलका की बहुओं को पीड़ित करते रहते। इस प्रकार आलोचना काव्य के भी विकास का कारण है। यहाँ कालिदास की आलोचना, मस्तिष्क-शक्ति अधिक परिस्फुट है, जिससे काव्य-सौंदर्य और बढ़ गया है।

हमारी हिंदी में सबसे बड़ा अभाव यही है कि उत्तम कोटि के आलोचक कम हैं, जो काव्य तथा साहित्य के ऊपर विषयों की विशद व्याख्याएँ कर-कर नवीन साहित्यिकों का उत्कर्ष-पथ मार्जित तथा सुगम कर दें। खड़ी बोली के विकास-युग से आज तक प्राचीन कई आलोचकों ने इस क्षेत्र पर प्रयत्न किया है, पर उनमें दो-एक ही ऐसे हैं, जिन्हें आलोचक का ऊँचा दर्जा दिया जा सकता है। इधर नए कुछ से कुछ अच्छे आलोचक निकले हैं, पर वे प्राचीन साहित्यिकों के ब्रह्म-परिवार में अभी अंत्यज ही हैं। उदाहरण में हम कबीर, सूर और तुलसी का साहित्य लेते हैं। प्राचीन जितने भी आलोचक हैं, एक-एक करके सबको देखते जाइए, किसी ने भी उक्त कवियों की अच्छी आलोचना नहीं की। आलोचना अच्छी वह है, जो कृति से पीछे न रहे, चाहिए कि बढ़ जाय। बढ़ने और बराबर रहने की तो बात ही जाने दीजिए, किसी ने इन कवियों को अच्छी तरह समझा भी हो, इसमें भी संदेह है। यही कारण है कि वर्तमान साहित्य की प्रगति इतनी मंद है। वर्तमान साहित्यिकों को उनके पूर्वाचार्य बहुत बड़े-बड़े विचार नहीं दे सके, वे उनके मस्तिष्क का सुधार नहीं कर सके। केवल रस, अलंकार और नायिका-भेद की सीढ़ियों से चढ़ना-उतरना काव्य-ज्ञान का प्रकृष्ट परिचय नहीं। हमारे अब तक के हिंदी के आचार्य इससे अधिक कुछ नहीं कर सके। कॉलेजों में हिंदी लेकर एम्० ए० पास करनेवाले विद्यार्थियों के कर्ण-कुहर अध्यापक महोदयों के अद्भुत समालोचन-स्वर से, मोरी के मुख की तरह, साहित्य और काव्य-विज्ञान से भरते रहते हैं। वह मैल कानों से चलकर हृदय पर जमता है, और उनके जीवन तक नहीं छूटता। सत्साहित्य और परिपक्व विचारों की वहीं समाप्ति हो जाती है। ऐसी भारतीयता-शक्ति के सिंह-वाहन बनकर वे बाहर निकलते हैं।

आलोचना का सार्वभौम विकास आज हमारे साहित्य के लिये ज़रूरी हो रहा है, जिससे दूसरे देशों की साहित्य-महत्ता से मिलकर हमारा साहित्य अग्रसर हो, साहित्य का विश्व-बंधुत्व जन-समाजों में स्थापित हो, हम दूसरे देशों के साहित्य से, व्यावसायिक आदान-प्रदान की तरह, अपने भावों का भी परिवर्तन कर सकें। जिस भारतीयता के गर्व से दूसरे तुच्छ जान पड़ते हैं, वह अपनी ऐसी भारतीयता में कुछ रूढ़ियों से चलती हुई अभारतीयता है। हमारे

साहित्य में ऐसे विचार रखनेवाले बहुत थोड़े, नहीं के बराबर हैं। इसीलिये आलोचक, प्राय: देश, काल और रीति आदि के बंधनों में, तीन सौ वर्ष के पुराने विचारों से रँगे हुए, आज के साहित्य पर गहन उद्‌गार करते हुए वज्रपात करते रहते हैं। कुछ ऐसे हैं, जो अँगरेज़ हैं; कुछ ऐसे, जो पूरे भारतीय। उन्हें मालूम होना चाहिए कि आलोचना में भारतीय अभारतीय कोई रंग नहीं, वह केवल आलोचना है, जिसके साथ मनुष्य-मात्र के मन का संबंध है, और यह ज्ञान खोकर ही हम अब तक नहीं उठ सके।

संस्कृत में आलोचना का बड़ा विस्तृत महत्त्व है। जितने वाद-विवाद हुए हैं, वे धार्मिक होने पर भी आलोचनात्मक ही हैं, यों हर शाखा में मतभिन्नता प्रत्यक्ष होती है। एक मंत्र के जो अनेक अर्थ हुए, वे किस प्रकार व्याकरण-सम्मत, विचारानुकूल और मनुष्य-मात्र के मन से सहयोग करनेवाले हैं, देखकर यहाँवालों की बुद्धि के विकास तथा आलोचना-प्रणाली पर दंग रह जाना पड़ता है। दर्शन का यह महत्त्व यहाँ काव्य में भी प्रविष्ट हुआ। यह उच्चता स्वाधीन भारत की कितनी बड़ी उज्ज्वलता है, पाठक संस्कृत-साहित्य के अध्ययन से अवगत होते हैं।

उधर योरप की समृद्ध भाषाओं का भी यही हाल है। प्लेटो की उदारता विश्व-विश्रुत है। सुक़रात, अरस्तू संसार के मनुष्य हैं। ढाई हज़ार वर्ष पहले जो कुछ विश्व-मानवता के संबंध में प्लेटो ने कहा है, आज रवींद्रनाथ उससे अधिक कुछ नहीं कह पाए, बल्कि यहाँ का वेदांत और वहाँ की विश्व-नागरिकता, ये ही रवींद्रनाथ के मानव-धर्म-प्रचार के मुख्य अङ्ग हैं। योरप के अनेकानेक विवर्तनों को यदि आलोचनात्मक विवर्तन कहें, तो ठीक ही होता है। मनुष्य-मन ही साहित्य है, और आलोचना ही मानसिक परिवर्तन का मूल। तब से अब तक के परिवर्तन-जन्य जीवन या मृत्यु के आलोचनात्मक साहित्य को देखते जाइए, आप समझेंगे, आप भी उस समय वैसा ही करते। वह सब साहित्य मनुष्य के मन के इतने नज़दीक है। यही दृश्य अँगरेज़ी-साहित्य की वर्तमान धारा के मूल में देख पड़ेगा। पर हिंदी का आलोचनात्मक वर्तमान साहित्य देखकर किताब फाड़कर फेंक देने की तबियत होती है, वह मानवीय मन से इतनी दूर है, इतना स्थूल, इतना जड़ है। अभी इसमें बड़ी उन्नति की आवश्यकता है।

× × ×

२. निरस्त्रीकरण-परिषद्

जिनेवा में इस समय बड़े-बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधि निरस्त्रीकरण पर विचार कर रहे हैं। इँगलैंड, फ़्रांस, इटली और जर्मनी, चार बड़े राष्ट्रों ने इस विषय पर एक प्रकार समझौता कर लिया था, पर परिस्थिति फिर विपरीत रूप धारण कर रही है। इसका कारण यह है कि ज़रा-सी छेड़-छाड़ से सब चौकन्ने हो जाते हैं, और निश्चय धूल में मिल जाता है। यह सभी राष्ट्र समझते हैं कि निरस्त्रीकरण राष्ट्र के कल्याण के लिये ज़रूरी है। पर सब राष्ट्र एक दूसरे से घबराते हैं कि कहीं इसने शक्ति बढ़ा ली, तो क्या होगा? यह अविश्वास इस परिषद् को सफल नहीं होने देता। जर्मनी के चांसलर हर हिटलर ने कहा कि हमें निरस्त्रीकरण मंज़ूर तो है, पर हम किसी शक्ति से पीछे नहीं रहना चाहते। इँगलैंड के प्रधान मंत्री मि० मैकडानल्ड की योजना जर्मनी को पसंद नहीं। फ़्रांस के मंत्री पौल ने कहा, जब तक शस्त्रों पर नियंत्रण और संख्या-परिमाण निश्चित करनेवाली हमारी माँग पूरी न की जायगी, तब तक हम बड़ी तोप आदि घटाने की बातचीत पर कुछ बोलेंगे ही नहीं। फ़्रांस की जो यह माँग थी कि सब राष्ट्रों की शक्ति मर्यादित रहे, इसके ख़िलाफ़ कार्यवाही की गई, दूसरे राष्ट्रों को शस्त्र भेजे गए, देशी राष्ट्रों ने अपने यहाँ के कारख़ानों पर नियंत्रण न किया। पहले इँगलैंड ने नियंत्रण रक्खा था, पर जब दूसरे राष्ट्रों ने बेचना शुरू किया, तब इँगलैंड ने भी शुरू किया। यह नियंत्रण संसार-भर में हुए बिना फ़्रांस को यह समझौता स्वीकार नहीं। तुर्की के प्रतिनिधि तेफ़िक रशीद ने दारे-दनियाल में क़िला बना-

कर तोपें रखने का अधिकार माँगा। इससे सब और चौंके। केवल अमेरिका दिलोजान से निरस्त्रीकरण के लिये तैयार है। सो इसलिये कि गोले-बारूद आदि में ये राष्ट्र व्यर्थ अपना रुपया फँसावेंगे, कारोबार उसी रक़म से करेंगे, तो हमारा दिया हुआ युद्ध-ऋण वसूल हो जायगा, हमारे पास काफ़ी रुपया आ जायगा।

इस तरह यह निःशस्त्रीकरण समस्या एक मज़ेदार स्वार्थ-साधन-समस्या हो रही है। राष्ट्र अपनी शक्ति घटाना नहीं चाहते। उधर यह भी देखते हैं कि व्यर्थ धन-नाश होता है। यदि यह समस्या हल हो जाय, तो योरप की बेकारी भी बहुत कुछ दूर हो जाय। हमारे विचार से तो—

"एक संग नहिं होहिं भुवालू!
हँसब ठठाय, फुलाउब गालू।"

अतः आप लोग एक दूसरे पर विश्वास करके बल घटाइए, या ऐसे ही नाटक करते जाइए, और जनता की शक्ति का अर्जित धन मशीनगन, मेन् ऑफ़् वार, हवाई जहाज़ और गोला-बारूद में ख़र्च कीजिए।

× × ×

३. आचार्य अमर हों!

उस दिन उनका, प्रयाग में, कैसा अभूतपूर्व स्वागत हुआ था! देश के कोने-कोने से राष्ट्र-भाषा के पुजारी, अपने इष्टदेव के चरणों में श्रद्धा के स्नेहमय फूल चढ़ाने के लिये—उनकी एक झलक से अपने जीवन को सफल बनाने के लिये—उमड़ पड़े थे। वह उस दिन कैसे भव्य लगते थे! कभी उनके मुख-मंडल पर बृहस्पति का पांडित्य प्रतिबिंबित हो उठता था, तो कभी स्वयं सरस्वती की प्रतिभा। सहस्रों साहित्य-सेवियों के बीच में वह भोले-भाले, दंभ-हीन, विनयशील महापुरुष हीरे की तरह चमक रहे थे। वह हिंदी-भाषा के प्रकांड पंडित हैं। हिंदी-भाषा के सर्व-श्रेष्ठ संपादक, समालोचक और लेखक हैं। हिंदी-भाषा कैसे लिखी जाती है, यह उन्होंने लिखकर दिखा दिया, पत्र का संपादन कैसे किया जाता है, यह उन्होंने स्वयं संपादन करके बता दिया, समालोचना क्या वस्तु है, यह उन्होंने अपनी समालोचनाओं द्वारा व्यक्त कर दिया।

वह आधुनिक हिंदी के निर्माता हैं—विधाता हैं—सर्वस्व हैं। वह राष्ट्र-भाषा हिंदी के मूर्तिमान् स्वरूप हैं। उन्हें लोग आचार्य कहते हैं—वह सचमुच आचार्य हैं। आधुनिक हिंदी की उन्नति और विकास का अधिकांश श्रेय उन्हीं आचार्य को है।

वह तो अपने को राष्ट्र-भाषा के विनम्र सेवक बतलाते हैं, राष्ट्र-भाषा उन्हें अपना निर्माता कहकर पुकारती है। दोनो एक दूसरे के अनन्य भक्त हैं—प्रगाढ़ प्रेमी हैं। हम दोनो ही के उपासक हैं। राष्ट्र-भाषा हमें प्राणों से प्यारी है, आचार्य भी हमें उतने ही प्रिय हैं।

वह इतने बड़े होकर भी हमसे कितने प्यार से बोलते हैं। वह इतने ऊँचे होकर भी हम तुच्छ साहित्य-सेवियों से किस स्नेह से मिलते हैं। यह उनकी उदारता है—बड़प्पन है। वह हमें पथ-भ्रष्ट होते देख चुमकारकर, बड़े मधुर शब्दों में, चेतावनी देते हैं—कभी रौद्र-रूप धारण कर झिड़की नहीं देते। वह हमें ग़लती करते देख कटु शब्द नहीं कहते, वरन् बड़े प्यार से हमें सावधान करते तथा हमारी भूल संशोधन करते हैं।

ऐसे स्नेही पथ-प्रदर्शक, ऐसे उदार गुरु, ऐसे भक्त-वत्सल देवता, ऐसे निरभिमान आचार्य पाकर हम अपने को धन्य समझते हैं। आचार्य हिंदी के गौरव हैं। हिंदी-संसार ने ऐसे असाधारण, असामान्य तथा अलौकिक व्यक्ति की जयंती मनाकर वास्तव में अपना आदर किया है। आचार्य सचमुच आदर तथा उपासना के पात्र हैं। वह चिरायु हों—अमर हों, हमारी परमेश्वर से यही प्रार्थना है।

× × ×

४. आचार्य द्विवेदीजी और डी० लिट्० की पदवी

गत तीन-चार वर्ष से पूज्यपाद आचार्य द्विवेदीजी को 'डॉक्टर ऑफ़् लिटरेचर' की पदवी प्रदान करने का प्रस्ताव हो रहा है। परंतु युक्त-प्रांत की किसी

भी युनिवर्सिटी की ओर से अब तक हमें कोई ऐसा संकेत नहीं मिला, जिससे यह प्रकट हो कि अधिकारीगण इस प्रस्ताव का सम्मान करेंगे, अथवा करने की तैयारी कर रहे हैं। अधिकारियों से इस संबंध में हम कह ही क्या सकते हैं। क्या वे आचार्य को नहीं जानते ? क्या वे उनके महत्त्व से अपरिचित हैं ? क्या वे नहीं जानते कि हिंदी की उन्होंने कैसी सेवा की ? और, क्या उन्हें इस बात का भी पता नहीं कि आज यदि वे आचार्य द्विवेदीजी का डी० लिट्० की डिगरी से समुचित सम्मान करेंगे, तो इससे उनकी ही शोभा बढ़ेगी ?

हम इस प्रस्ताव के सबसे अधिक समर्थक रहे, परंतु आज एकाएक ही इसका खोखलापन हमें नज़र आया है। हम चाहते हैं, हिंदी-जनता की ओर से किसी भी युनिवर्सिटी से आचार्य द्विवेदीजी को डी० लिट्० की पदवी प्रदान करने का प्रस्ताव अब उपस्थित न किया जाय। ऐसा करने की आवश्यकता क्या है ? क्या डी० लिट्० की डिगरी हमारे निकट द्विवेदीजी के महत्त्व से अधिक मूल्यवान् है ? क्या डिगरी प्राप्त होने से द्विवेदीजी महाराज का महत्त्व कुछ बढ़ जायगा ? और सबसे बड़ी बात तो यह कि जो पूज्य है, महान् है, और हमारे निकट श्रद्धा का पात्र है, यदि कोई आदमी कहने और समझाने से भी उसके सम्मुख भक्ति-भाव से अपना माथा नहीं झुकाता, और उसकी पूजा करना अपना कर्तव्य नहीं समझता, तो उससे ज़्यादा अनुरोध और विनती करना स्वयं अपनी मूर्खता प्रदर्शित करना है।

× × ×

५. हिंदोस्तानी-एकेडेमी और हिंदोस्तानी-पत्रिका

प्रयागस्थ हिंदोस्तानी-एकेडेमी नाम की अर्द्ध-सरकारी संस्था द्वारा हिंदोस्तानी नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित होती है। इस पत्रिका के प्रकाशन, संपादन एवं ऐसे ही अन्य आवश्यक आयोजन के लिये एकेडेमी प्रतिमास पर्याप्त धन व्यय करती है। इस धन का जैसा चाहिए, वैसा सदुपयोग हो रहा है या नहीं, इस प्रकार की चर्चा कुछ दिन से अँगरेज़ी के प्रसिद्ध दैनिक 'लीडर' में हम पढ़ रहे हैं। यदि हिंदी-जनता को इसका पता नहीं है, तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं ; क्योंकि हिंदोस्तानी-एकेडेमी का सब काम, वहाँ के दफ़्तर की लिखा-पढ़ी और उसके संबंध की प्रत्येक कार्यवाही, प्रायः अँगरेज़ी द्वारा ही संपन्न होती है। हिंदोस्तानी-पत्रिका का प्रकाशन हिंदी के लिये उपयोगी है या नहीं, इसकी चर्चा हिंदी-पत्रों में हमने नहीं पढ़ी। ख़ैर।

पत्रिका के ग्राहक इने-गिने हैं, इसलिये इसका प्रकाशन बंद कर देना चाहिए, यह कोई दलील नहीं है। किसी आर्थिक लाभ की दृष्टि से पत्रिका का प्रकाशन नहीं हो रहा है। परंतु प्रश्न यह है कि हिंदोस्तानी-पत्रिका के पाठक कितने हैं ? हिंदी समझनेवाले कितने व्यक्तियों के पास वह पहुँचती है ? उसके प्रकाशन आदि में इस समय जितना व्यय हो रहा है, क्या उसमें कुछ कमी की जा सकती है ? क्या कोई ऐसा भी उपाय है, जिसके द्वारा पत्रिका को अधिक लोक-प्रिय बनाया जा सके ? अथवा क्या उसका संपादन और प्रकाशन केवल उन्हीं विद्वानों के लिये है, जो उसमें लेख लिखते हैं ? यदि उसके पाठकों की संख्या उतनी ही सीमित है, जितनी उसके लेखकों की, तो यह अवस्था सचमुच ही अत्यंत शोचनीय है।

यहाँ हम एकेडेमी के प्रकाशन के संबंध में भी दो बातें कहना चाहते हैं। एकेडेमी ने अब तक ऐसा कौन-सा महत्त्व-पूर्ण प्रकाशन किया है, जो सर्व-साधारण में लोक-प्रिय हुआ हो। गाल्सवर्दी के नाटकों का कैसा प्रचार हुआ ? 'चर्म बनाने के सिद्धांत' कितने लोगों ने पढ़े और समझे, और कितने लोगों ने उनसे लाभ उठाया ?

क्या एकेडेमी ने अपने लिये प्रकाशन की कोई नीति भी अख़्तियार की है ? यदि की है, तो उसका रूप क्या है ? अथवा जो पुस्तक सामने आई, उसी को वह प्रकाशित कर डालती है ? अपने ग्रंथों

अधिक लोक-प्रिय और अधिक उपयोगी बनाने का वह क्या प्रयत्न करती है ? हमारी तुच्छ सम्मति में तो हिंदी-पाठकों को गाल्सवर्दी, शा और शिलर के नाटकों की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही अपने देश के प्रसिद्ध लेखकों की सुंदर कृतियों की भी है। हिंदी के अर्द्ध-पठित समाज को वैज्ञानिक और टेक्निकल विषय के जटिल ग्रंथों की उतनी ज़रूरत नहीं है, जितनी कि सरल, सुबोध और लोक-प्रिय शैली में लिखी गई छोटी-छोटी, सस्ती किताबों की।

देखें, एकेडेमी की इस संबंध में क्या सम्मति है।

× × ×

६. स्व० गाल्सवर्दी और नोबुल-पुरस्कार

इस वर्ष साहित्य का नोबुल-पुरस्कार स्वर्गीय जॉन गाल्सवर्दी को मिला था। नोबुल-पुरस्कार प्राप्त करने के कुछ दिन बाद ही उनकी मृत्यु हो गई। न्यूयार्क के बुकमैन-नामक अँगरेज़ी पत्र में उनके नोबुल-पुरस्कार मिलने के संबंध में एक नोट प्रकाशित हुआ है। उस जगह यह पढ़कर हमें आश्चर्य हुआ कि ब्रिटिश पत्रों ने पुरस्कार प्राप्त होने की इस महत्त्व-पूर्ण घटना को जैसा चाहिए, वैसा गौरव प्रदान नहीं किया। 'टाइम्स'-जैसे प्रसिद्ध पत्र ने कोई संपादकीय टिप्पणी नहीं लिखी, केवल समाचार प्रकाशित करके ही संतोष कर लिया। 'मॉर्निंग' पोस्ट ने चलती हुई भाषा में केवल इतना ही लिखा—"मि० गाल्सवर्दी अँगरेज़ी-साहित्य के प्रतिनिधि हैं।" 'डेली टेलीग्राफ़' ने लिखा—"यह उचित हुआ। उनकी (गाल्सवर्दी की) रचनाएँ अब आलोचना के परे हो गई हैं।" 'आबज़र्वर' और 'संडे टाइम्स'-जैसे पत्र इस अवसर पर बिलकुल चुप रहे। मासिक पत्रों में 'लंदन-मर्करी' ने सबसे अधिक उदासीनता दिखाई। जो टिप्पणी उसने लिखी, उसमें अधिकतर इसी बात पर खेद प्रकट किया गया कि टॉमस हार्डी-जैसे लेखक इस सम्मान से वंचित ही रह गए। 'न्यू स्टेट्समैन ऐंड नेशन' ने बहुत साधारण ढंग से लिखा कि "पुरस्कार बहुत पहले ही मिलना चाहिए था।" 'एवरी मैन' ने लिखा कि "जो लेखक सब प्रकार से 'अँगरेज़ी' है, उसका सम्मान होना चाहिए था।"

इन उद्धरणों से गाल्सवर्दी के प्रति ब्रिटिश पत्रों की मनोवृत्ति बहुत स्पष्ट है। जान पड़ता है, यह प्रसिद्ध लेखक अपने देश में उतना लोक-प्रिय नहीं था, जितना कि देश के बाहर। इसका कारण क्या यह है कि गाल्सवर्दी ने अँगरेज़ी-समाज का बहुत सच्चा चित्रांकन किया है ?

× × ×

७. यहूदियों की समस्या

हिटलर के चांसलर होते ही जर्मनी में महान् परिवर्तन हो गया है। चारो ओर एक अपूर्व क्रांति के चिह्न प्रकट हो गए हैं। इस क्रांति का रूप कहीं दिव्य है, तो कहीं आसुरिक ; इसके द्वारा कहीं शांति स्थापित हुई है, तो कहीं उपद्रवों की उत्पत्ति। ग़रज़ यह कि जर्मनी ने नए ही वस्त्र धारण कर लिए हैं, और नई ही महत्त्वाकांक्षाओं को ले वह संसार-क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ है।

हम मानते हैं, हिटलर जातीय अभ्युत्थान का अभिलाषी है। हम स्वीकार करते हैं, वह राष्ट्रीय उत्कर्ष के लिये जी-जान से चेष्टाएँ कर रहा है। हमें यह विश्वास है कि हिटलर अपने देश के विलुप्त गौरव को पुनः प्रकट और विस्तीर्ण करना चाहता है। हम यह भी समझते हैं, वह जर्मनी को शक्तिशाली ही नहीं, महान् और आदरणीय भी बनाने का आकांक्षी है, परंतु फिर भी यह कहना ही पड़ता है कि उसके भावों में औदार्य और शालीनता की उतनी पुट नहीं, जितनी अभीप्सित है।

हिटलर की जर्मनी में विशुद्ध जर्मनों के लिये ही स्थान है, अन्य जातिवालों के लिये नहीं। विशेषतः यहूदियों के लिये तो जर्मनी इस समय नरक से भी अधिक यंत्रणा-स्थल हो गया है। जर्मनी की राष्ट्रीय संकीर्णता का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है ? हिटलरवाद में जहाँ जातीय उत्कर्ष के लिये इतनी उत्कट आकांक्षा और इतना विशद स्थान

है, वहाँ इस प्रकार की वर्णिक या वर्गीय संकीर्णता का होना वास्तव में आश्चर्यप्रद है। जर्मनी के इस कलुषित व्यवहार से सभ्य-संसार में बड़ी खलबली मची है।

यहूदी योरप के अंत्यज हैं। इनसे सभी देश और सभी जातियों का काम पड़ा है, और पड़ेगा, परंतु सभी योरपियन जातियों ने अपना मतलब निकल जाने के बाद इस जाति को कोसा, और गालियाँ दी हैं। यहूदी धन-प्रेमी हैं, व्यवसाय-कुशल हैं, एवं व्यवहार-प्रवीण हैं। इनमें बहुत-से अत्यंत ही कुशाग्र-बुद्धि होते हैं। जगद्विख्यात वैज्ञानिक अलबर्ट आइंस्टीन और संसार-प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ रूफुस आइज़ेक्स, अर्ल ऑफ़् रीडिंग (भारत के भूतपूर्व वाइसराय) यहूदी हैं। भारत के एक सेक्रेटरी ऑफ़् स्टेट, एडविन मांटेगू, यहूदी ही थे। और भी कई यहूदी ऐसे हैं, जो संसार में प्रचुर ख्याति लाभ कर चुके हैं। आज दिन सारा संसार आइंस्टीन को अपनाने के लिये तैयार है, किंतु हिटलर की जर्मनी में ऐसे यशस्वी वैज्ञानिक के लिये भी स्थान नहीं। आइंस्टीन के विरोध में यही कहा जाता है, वह यहूदी है; यही उसका अभिशाप और अपराध है!

यहूदियों की समस्या नई नहीं, यह कल्प-पुरातन है। योरपियन जातियाँ सदा से ही यहूदियों पर अत्याचार करती आई हैं। योरपियन ईसाइयों के दुर्व्यवहार से जो कष्ट, जो पीड़ा यहूदियों को पहुँचती थी, उसका बहुत कुछ आभास पुरानी पुस्तकों के पढ़ने से होता है। यहूदियों के भावों का अपूर्व चित्रण इँगलैंड के अमर कवि शेक्सपियर ने किया है। इसके विश्व-विख्यात नाटक, मरचेंट ऑफ़् वेनिस, में यहूदियों की पीड़ाओं का बड़ा ही मर्मस्पर्शी और करुणा-जनक वर्णन है। शेक्सपियर के शायलाक में यहूदियों के गुण-दोषों का अपूर्व समन्वय है।

इतनी शताब्दियों के उपरांत आज फिर शायलाक का क्रंदन सुनाई पड़ा है। शेक्सपियर के शायलाक को वेनिस के नागरिकों के प्रति अश्रद्धा थी। इस बीसवीं शताब्दी के शायलाक को बर्लिन के पौरों के प्रति अविश्वास है। हिटलर ने संभवतः सोचा था कि उसके जय-घोष के आगे यहूदियों की अंतर्व्यथा का स्वर मध्यम पड़ जायगा, उनकी करुण कहानी संसार तक नहीं पहुँचेगी, परंतु यह उसकी भ्रांति थी। यहूदियों की आह ने असर दिखलाना प्रारंभ कर दिया है, और उनके आँसुओं ने संसार का ध्यान आकृष्ट कर लिया है। नाज़ियों के बिगुल-निःसृत शब्द से यहूदियों की करुण पुकार अधिक बलवती प्रमाणित हुई है।

इस युग में अंक ही प्रमाण माने जाते हैं, अतः यहूदियों की कष्ट-कथा को व्यक्त करने के लिये भी योरपियन लेखकों ने अंकों का ही आश्रय लिया है। जर्मनी के प्रख्यात पत्र 'वोइस ज़ींट' के भूतपूर्व संपादक, रीखस्टॉग के भूतपूर्व सदस्य, जॉर्ज बर्नहार्ड, के अनुसार हिटलर की नीति से क्षुब्ध और दुःखित हो लगभग २,००,००० यहूदियों ने जर्मनी का परित्याग कर दिया है। स्मरण रहे, जर्मनी में कुल ५,५०,००० यहूदी हैं। इतने यहूदियों के एकाएक जर्मनी छोड़ने के कारण संसार में बड़ी खलबली मची है। इन गृहत्यागी यहूदियों में से बहुतों ने तो यहाँ तक शपथ उठा ली है कि वे आजन्म जर्मनी नहीं लौटेंगे। ऐसे यहूदियों में विश्व-विख्यात वैज्ञानिक अलबर्ट आइंस्टीन भी हैं। आप इस समय बेलजियम में हैं, पर शीघ्र ही फ़्रांस जानेवाले हैं। सुनते हैं, आपके लिये पेरिस के विद्यालय में एक विशिष्ट पद की सृष्टि की गई है। विद्वान् की सर्वत्र पूजा होती है। जर्मनी से निर्वासित होने के कारण आइंस्टीन की कुछ हानि नहीं हुई। यदि हानि हुई है, तो हिटलर के यश की।

इधर कुछ वर्षों से योरप में यहूदियों के प्रति विद्वेष और विरोध की मात्रा बढ़ रही है। इसी से आशंकित हो बहुत-से यहूदियों ने यह आंदोलन प्रारंभ कर दिया है कि यदि यहूदियों के लिये योरप में स्थान न समझा जाय, तो कहीं अन्यत्र उनके

निवास की व्यवस्था की जानी चाहिए। उनका कहना है, यदि सभी देश और सभी राष्ट्र उन्हें अंत्यज समझ उन्हें ठुकराने को तैयार हों, तो कम-से-कम जेरूसेलम में तो उनके लिये समुचित व्यवस्थाएँ की जानी चाहिए। जेरूसेलम यहूदियों का आदि और पवित्र स्थान है, यहाँ पर यहूदी अपना पैत्रिक अधिकार-सा समझते हैं, अतः अन्य देशों में आश्रय न पाने पर ये यहीं, अपने पुराने पितृ-स्थान में ही, लौट आना चाहते हैं।

यहूदियों की यह विज्ञप्ति सरल और सहज ज्ञात होती है, तथापि इसके अनुसार कार्य होना इतना आसान नहीं। जेरूसेलम में इस समय कई सहस्र अरबी बसते हैं। इन ख़ूँख़ार अरबों को हटाना टेढ़ी खीर है। यहूदियों ने इधर कुछ वर्षों से अरबों की जायदाद ख़रीदना प्रारंभ किया है, परंतु अब अरबी भी समझ गए हैं। ये यहूदियों को अपने यहाँ आने ही नहीं देना चाहते। ऐसी स्थिति में यहूदियों को जेरूसेलम में बसाना सांप्रदायिक रोषानल को प्रदीप्त करना है।

यहूदी चाहते हैं, अरबी अपनी ज़मीन उनके हाथों बेच दें, परंतु वे धन के लिये अपना घर-द्वार छोड़ने को तैयार नहीं। हों भी क्योंकर? यदि कल वे अपना घर-द्वार यहूदियों के हाथों बेच दें, तो उन्हें स्वयं अपने आश्रय के लिये संसार का कोना-कोना ढूँढना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में भला ऐसा कौन है, जो अपने पैरों आप ही कुल्हाड़ी मारने को तैयार हो? परिस्थिति वास्तव में कठिन है। अभी तक रूस में ही यहूदियों पर अत्याचार हुए थे, अब जर्मनी में भी प्रारंभ हो गए हैं, हंगरी और बलगेरिया में भी यहूदियों के प्रति विद्वेष बढ़ रहा है। कौन कह सकता है, यह विद्वेषाग्नि कहाँ तक फैलेगी? संभव है, अनतिदूर भविष्य में यह विष-वल्लरी योरप के अन्य राष्ट्रों में भी फैल जाय। यदि ऐसा हुआ, तो योरप में यहूदियों की जो दुर्दशा होगी, उसका चिंतन भी हृदय में कंप उत्पादित करने में समर्थ है।

हर बर्नहार्ड का कहना है कि ऐसी अवस्था में राष्ट्र-संघ का यह कर्तव्य है कि वह हिटलर को समझावे, और यहूदियों पर अत्याचारों को न होने दे। हमने माना, संघ का यह कर्तव्य है कि सशक्त के हाथों अशक्त की रक्षा करे, पर क्या संघ के पास इतनी शक्ति है कि वह हिटलर के कान गरम कर सके? चीन और जापान, बोलीविया और पैरेगुए, पीरू और कोलंबिया के झगड़ों को रोकना भी तो संघ का कर्तव्य था, पर...? संभव है, बर्नहार्ड की पुकार संघ की प्रसुप्त शक्ति को चैतन्य कर सके, पर हमारा तो अनुमान है कि यहूदियों की समस्या ऐसी नहीं कि सहज ही हल हो जाय।

बर्नहार्ड यह भी कहता है कि अन्य देशों को चाहिए कि जर्मनी के निर्वासित यहूदियों को अपने यहाँ आश्रय दें। बर्नहार्ड की यह भावना सुंदर है, परंतु बेकारी के इस घोर युग में जब अपने ही देश-वासियों का पोषण कठिन हो रहा है, तब भला कौन राष्ट्र ऐसा होगा, जो दूसरे की बला अपने सिर लेगा?

जर्मनी के लेबर मिनिस्टर शेल्ट का कहना है कि जर्मनी में अत्याचार नहीं हुए हैं, और यहूदियों के कष्टों की जो ख़बरें पत्रों में छप रही हैं, वे कपोल-कल्पित हैं। हम शेल्ट से सहमत नहीं। संभव है, अत्याचारों के वर्णन में पत्रों ने कल्पना का आश्रय लिया हो। संभव है, यहूदियों के प्रश्न को लेकर जर्मनी के प्रच्छन्न शत्रु ही उसके विरुद्ध प्रचार कर रहे हों, जैसा कि शेल्ट का कहना है, परंतु यह हम नहीं मान सकते कि वहाँ पर यहूदियों पर अत्याचार हुए ही नहीं। २,००,००० मनुष्य अकारण ही गृह-त्याग नहीं करते, यहूदियों का प्रश्न दिन-दिन विकट होता जायगा, इसमें संदेह नहीं।
